श्रीकृष्ण-चरित

[पूर्वार्ध]

सुदर्शन सिंह

दो शब्द

'एषु प्रवाहेषु स एव मन्ये क्षणोऽपि धन्यः पुरुषायुषेषु।
आस्वाद्यते यत्र कयापि तृष्णा नीलस्य बालस्य निजं चरित्रम्॥'

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की 'श्रीकृष्ण-गीतावली' के उलटे-सीधे अनुवाद से लिखने का व्यवस्थित क्रम प्रारम्भ हुआ—यह कहना तो कठिन है; किंतु वृन्दावन पहुँचने पर त्रिभुवन-सुन्दर ('संकीर्तन' मेरठ के श्रीकृष्णचरिताङ्क का वास्तविक नाम) ही पहली पुस्तक लिखी गयी और उसे लिखते-न-लिखते यह प्रतीत होने लगा कि चरित तो बहुत अपूर्ण रह गया है। उसे समाप्त करके उसी समय पुनः उद्योग में लगा, पर वह भी वैसा ही रहा। आज उस बात को चौदह-पंद्रह वर्ष होने को आये हैं। परिस्थितियों के प्रवाह में इतस्ततः लुढ़कते-लुढ़कते अस्त-व्यस्त जीवन में प्रायः सदा ही यह आकाङ्क्षा रही है हृदय में कि 'कहीं व्यवस्थित हो पाऊँ, ठीक समय मिले, तो गोविन्द का एक सुन्दर चरित्र लिख लूँ।' भला, कभी कोई इस विश्व में व्यवस्थित भी हुआ है? यहाँ भी 'ठीक समय?'

परिस्थिति-क्रम से ही यहाँ आया और इतनी सुविधा, इतना अनुकूल वातावरण क्या सदा ही प्राप्त होता है? लेकिन प्रारम्भ करने के कुछ ही काल पश्चात् लगने लगा है—'यह तो बहुत अपूर्ण हो रहा है!' इससे संतोष के स्थान पर सदा अधूरेपन का बोध हुआ है और जब आज पूर्वार्ध के ये दो शब्द लिखने बैठा हूँ—'यह तो कुछ भी नहीं हुआ। इतने दिनों की आकाङ्क्षा, श्यामसुन्दर के इतने भुवनमोहन मङ्गलायतन चरित और उनका यह रूप—कुछ भी नहीं हुआ यह तो!' हृदय जैसे कुड़मुड़ कर रहा है। आज—आज भली प्रकार प्रतीत हो रहा है कि 'श्रीरामचरितमानस'-कर्ता ने क्यों अपने आराध्य के चरित के सम्बन्ध में कहा था—'सेस सहस मुख सकहिं न गाई।'

उस सच्चिदानन्दघन, नवजलधरसुन्दर, मयूरमुकुटी के मधुरिमामय मङ्गलचरित—नित्य नूतन हैं वे। कोई भी हृदय—कोई भी चित्त उस माधुर्य के अपार पारावार का एक शीकर भी ग्रहण कर ले—अहोभाग्य उसका! और यहाँ तो जैसा चित्त मिला है—ठीक ही है, जो है, वही तो है अपने पास। इस चित्त में, इस मन में आता ही कितना क्षुद्रतम अंश है उस सुषमासिन्धु की मोहिनी क्रीड़ा का और जितना आता है, लेखनी कहाँ उसे भी व्यक्त कर सकती है। शब्दों में—इन काले-काले अक्षरों में मानस के भावों की बहुत छोटी ही टुकड़ी तो उतर पाती है! हाथ मन के साथ दौड़ पाते—पर शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता ही बहुत अल्प है।

जो भी, जैसा भी हुआ, यह—उस वनमाली का चरित है। इसे लिखने में मुझे जो सुख मिला है—मेरे लिये महान् है इतना ही पुरस्कार! न किसी से क्षमा माँगनी है और न कोई निवेदन करना है। यह श्याम का चरित—श्याम तो सभी का है न! जो जिस रूप में देखे उसे, जैसे चाहे उसे, उसके लिये वह तो वैसा ही है। उस परम सत्य को लेकर वाणी जो भी कहे—भला, उसमें असत् आ कैसे सकता है। उस चिर-चपल का वर्णन तो होने से रहा; पर उसे लेकर जो कहा जाय—सभी तो उसमें सत्य ही है। फिर ये लेखनी से जो मैंने कागज़ काले किये हैं—अपने ही लिये किये हैं। 'स्वान्तःसुखाय' के इस उद्योग में दूसरों से कहना भी क्या है।

श्रीमद्भागवत तो अपना उपजीव्य है। उसके कथा एवं भाव-बीज सुरक्षित रहें, भरसक ऐसा प्रयत्न किया है। अनेक स्थलों पर उलटा-सीधा अनुवाद करने का प्रयत्न किया है श्रीशुकदेवजी की पावन वाणी का। अन्यत्र कहीं से कुछ नहीं लिया है, यह बात तो नहीं है; पर मन में यह रहा है कि सात्वत-संहिता श्रीमद्भागवत से दूर न हो जाय कोई भी अंश। कौन जाने यह भावना कहाँ तक सफल हुई है। रही तुष्टि की बात, सो मन में तो वही है—'यह तो कुछ भी न हुआ!' क्या बस ! अस्तु,—

'कमनीयकिशोरमुग्धमूर्तेः
कलवेणुक्वणितादृताननेन्दोः।
मम वाचि विजृम्भतां मुरारे-
र्मधुरिम्णः कणिकापि कापि कापि ॥' —श्रीलीलाशुक

मंगलवार, ज्येष्ठ कृष्ण ८, सं० २००७ वि०
गीता बगीचा, गोरखपुर

सुदर्शनसिंह

उनको—

जो कन्हैया के हैं और कनूं जिनका अपना है !

—सुदर्शन

अध्याय-सूची

१—माङ्गलिका ३
२—गोकुल ८
३—मथुरा १४
४—श्रीबलराम २२
५—श्रीकृष्णचन्द्र २८
६—कंस की कूटनीति ३८
७—जय कन्हैयालाल की ४४
८—वंदे नंदनंदनं देवं ५३
९—पूतना-परित्राण ६२
१०—दुग्धपान ७४
११—शकट-भञ्जन ७८
१२—नामकरण ८५
१३—भूमि का भाग्य ९०
१४—व्रजराज के प्राङ्गण में ९३
१५—अन्न-प्राशन ९९
१६—तृणावर्त-त्राण १०४
१७—वर्षगाँठ १०९
१८—बालक्रीड़ा ११३
१९—मृद्-भक्षण ११८
२०—फल-विक्रयिणी १२४
२१—विप्र का सौभाग्य १२८
२२—व्रजजनानन्द १३२
२३—माखन-चोर १३६
२४—तस्कराणां पतये नमः १३९
२५—दामोदर १४७
२६—कर्ण-वेध १५७
२७—गोकुल-परित्याग १६१
२८—वृन्दावन १६९
२९—ऊधम १७२
३०—गोदोहन १७६
३१—गोपाल १८१
३२—वेणु-वादन १८६
३३—वत्सोद्धार १९१
३४—बक-वध १९५
३५—व्योम-वध १९९
३६—अघ-मर्दन २०३
३७—वन-भोजन २१०
३८—विधि-विडम्बना २१४
३९—ब्रह्म-स्तुति २२१
४०—गो-चारण २२६
४१—कालिय-मर्दन २३३
४२—धेनुक-वध २४५
४३—दधि-दान २५०
४४—दुपहा की होली २५५
४५—प्रलम्ब का पाखण्ड २५८
४६—दावानल-पान २६३
४७—गोवर्धन-पूजन २६९
४८—गिरिधर २७५
४९—गोविन्द २८३
५०—दिव्यदर्शन २८८
५१—चीर-हरण २९४
५२—विप्र-पत्नियाँ ३०२
५३—मदन-विजय ३१०
५४—मान-भङ्ग ३१९
५५—महारास ३२८
५६—सुदर्शन-उद्धार ३३३
५७—शङ्खचूड़-वध ३३८
५८—अरिष्ट-संहार ३४१
५९—केशी-वध ३४६
६०—अक्रूर का आगमन ३५१
६१—मथुरा-प्रस्थान ३६०
६२—नगर-दर्शन ३७०

६३—रजक-मोक्ष ३७४
६४—सुदामा माली ३७८
६५—कुब्जा पर कृपा ३८१
६६—धनुर्भंग ३८४
६७—गजोद्धार ३८८
६८—मल्ल-मर्दन ३९२
६९—कंस-कदन ३९९
७०—पितृदर्शन ४०२
७१—यादव महाराज उग्रसेन ४०५
७२—बाबा की विदाई ४०९
७३—माता रोहिणी मथुरा को ४१३
७४—उपनयन ४१८
७५—गुरुकुल में ४२३
७६—गुरुपुत्रानयन ४३२
७७—कुब्जा ४३९
७८—उद्धव व्रज में ४४२
७९—श्रीराधा ४५८
८०—भद्र ४६२

पृष्ठ—भूमि

"योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो
यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ।
य सम्पद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलाय यथा
त कैवल्यनिरस्तयोनिमभय ध्यायेदजस्र हरिम् ॥"

—भागवत १०।८७।५०

हम जो कुछ देखते, सुनते, खाते, पीते, छूते या सोचते है—हमारा वह जगत् उतना ही नहीं है, यह तो प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है। हमारी इन्द्रियाँ बहुत थोडी शक्ति रखती हैं और हमने जो कुछ देख या सुनकर सीखा है मन वही तो सोच सकता है। बडे से बड़ा आज का वैज्ञानिक भी कहता है कि हम अब तक जो कुछ जान पाये हैं, वह अनन्त विश्वब्रह्माण्ड एवं असीम ज्ञान-राशि का तुच्छतम भाग कहने योग्य भी नहीं है। जैसे स्थूल जगत् मे हम अभी इस पृथ्वी के ही अनेक भागों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण अन्धकार मे हैं असख्य नक्षत्र-राशियों की अब तक कल्पना भी हममे नहीं है वैसे ही ज्ञान की दृष्टि से भी हमारी शक्ति पङ्गुप्राय ही है। नित्य नवीन रहस्य सम्मुख आते है और हमें चकित विमूढ कर जाते हैं। हमारे श्रेष्ठतम वैज्ञानिक अभी जीव की मरणोत्तर गति जीव की सत्ता के विषय मे कुछ नहीं जानते, जब कि स्थिति ऐसी नहीं है कि साहसपूर्वक वे उसे अस्वीकार कर सकें। हम जिन्हें असभ्य, बर्बर, जंगली कहते हैं, उन जातियों में अब भी कितने ऐसे चमत्कार है जो विज्ञान के लिये न सुलझने वाली पहेलियाँ ही हैं। वे नगे पावों जलते अगारों पर चलते, तथा शरीर मे चाकू या कोई शस्त्र भोंक लेते हैं किंतु न तो उनके अङ्ग जलते और न शरीर से रक्त निकलता है वर शरीर पर कोई चिह्न तक नहीं रह जाता शस्त्र हटा लेने पर। अफ्रिका प्रशान्त महासागर के द्वीप तथा और भी दुर्गम काननों मे रहनेवाले ये असभ्य लोग अपनी अनेक क्रियाओं मे विज्ञान को चुनौती ही देते हैं। इन अज्ञात प्रान्तों की घटनाओं के अतिरिक्त समाचार पत्रों मे जो अनेक आश्चर्यभरी घटनाये छपती हैं, उनका क्या अब तक समाधान हो सका है? कभी कहीं आकाश से रक्त की वर्षा का विवरण और कभी सागर मे किसी प्रेत-जहाज का दर्शन! अमेरिका—जैसे सुसभ्य देश मे भी ये प्रेत-जहाज पहुँच जाते है और बदरगाह से तोप के गोले दागनेपर भी जब उनका पता नहीं लगता तब विध्वसक दौडते हैं और जब वह जहाज सहसा अदृश्य हो जाता है, तब कहीं पता लगता है कि वह तो प्रेत-जहाज था। अस्तु, मेरा उद्देश्य इन अद्भुत घटनाओं का सकलन करना नहीं है। तात्पर्य इतना ही है कि हमे यह समझ लेना चाहिये कि हम जिस विश्व में हैं, जिसमें जीते, श्वास लेते, चलते-फिरते है, वह अनन्त रहस्यों से पूर्ण है। हम उसके सम्बन्ध में जो कुछ जानते है, वह ज्ञान नितान्त नगण्य है और कौन कह सकता है कि वह हमारी तथ्यहीन कल्पना ही नहीं है। इतने पर भी जब हमारा दीप्त अहंकार कहता है—'यह कैसे, यह कैसे सम्भव है! यह हो नहीं सकता!' तो तर्क के जाल मे हम अपने को उलझाकर सत्य से दूर ही करते जाते हैं, क्योंकि सत्य का पथ आस्था का पथ है। भारत की प्राचीनतम वाणी है कि जो भाव प्रत्यक्ष नहीं किये जा सकते, उनके विषय में तर्क करना निरर्थक है। आप्त वचनों पर आस्था करके ही उनका निर्णय हो सकता है।

जगत् का मिथ्यात्व

आज हम अपने जिस जगत को देखते हैं, वह और उसके पदार्थ क्या हैं ? बहुत दिनों तक साठ, सौ या ऐसी ही कुछ निश्चित संख्या के परमाणु बताये जाते थे, जो पदार्थों के मूल कारण थे विज्ञान की दृष्टि में। आज परमाणु का भी विभाजन हो गया है और उसके केन्द्रीय अणु को भी तोड़ा जा सकता है, यह मान लिया गया है। परमाणु टूट गया—अतः मूल में कुछ संख्या में परमाणु हैं, यह धारणा तो गई; पर रह क्या गया ? शक्ति। परमाणु टूटने पर शक्ति को छोड़कर रह क्या जाता है। उष्णता, प्रकाश और शक्ति ये एक ही विद्युत् के अनेक रूप हैं, यह तो विज्ञान का सामान्य विद्यार्थी भी जानता है ! इस शक्ति से ही सभी पदार्थ घनीभूत हुए हैं और आइन्स्टीन का सापेक्षवाद बतलाता है कि पदार्थों की आकृति, लम्बाई-चौड़ाई-मोटाई तथा उनके सब गुण केवल गति-सापेक्ष हैं। अर्थात् किसी पदार्थ में जो रूप, आकार, गुण आदि दीख पड़ते हैं—वे वस्तुतः नहीं हैं। वे तो गति के एक विशेष रूप में होते रहने के परिमाणस्वरूप प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार यह समस्त दृश्यमान जगत् है नहीं—प्रतीत हो रहा है और यह प्रतीति गति-सापेक्ष है। विज्ञान का यह सापेक्षवाद स्थूल प्रयोगों से सिद्ध किया हुआ सिद्धान्त है। यद्यपि भारतीय दर्शन के 'जगत् के मिथ्यात्व' वाले सिद्धान्त से इसका पर्याप्त अन्तर है, फिर भी हम देखते हैं कि किस प्रकार विज्ञान हमें उसके समीप लिये जा रहा है।

दृश्यमान जगत् गति-सापेक्ष है और उसका मूल है शक्ति—परमाणु के टूट जाने पर जो शक्ति बचती है, वही शक्ति; फिर उसे विद्युत् या और कोई भी नाम क्यों न दिया जाय। यह शक्ति या इसके पीछे भी कुछ हो तो वह परम मूल जड है या चेतन ? विज्ञान के पास इसका अभी तक कोई उत्तर नहीं। डार्विन का विकासवाद और हक्सले का जडाद्वैतवाद आज पिछले युगों के अशुद्ध तर्क हो गये हैं। समाज में और पाठशालाओं में इनकी चाहे जितनी महिमा हो, आइन्स्टीन-जैसे महान् वैज्ञानिकों के समाज में अब इनका कोई महत्व नहीं। आज वैज्ञानिकों ने भली प्रकार शोध करके देख लिया है कि किसी भी प्राणी में कृत्रिम रूप से अथवा अकस्मात् जो विशेषता लाई जाती है, वह प्रकृति को सह्य नहीं। प्रकृति उसे उसकी संतति में कदापि आने नहीं देती। अतः विकास-क्रम से प्राणियों की रचना सम्भव नहीं। इसी प्रकार अनुकूल भूमि एवं जलवायु में भी बिना बाहर से बीज आये वर्षों तक एक तृण भी उग नहीं पाता। परमाणु कभी भी जीवाणु नहीं बनता, अतः मूल सत्ता जड है—इस धारणा के लिये कोई भी स्थान नहीं है। जीवाणु वर्षों तक जड अणुओं की भाँति सुप्त रह सकते हैं और उन्हें परमाणु से भिन्न करना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है। अभी जीवाणु का विभाजन परमाणु की भाँति सम्भव नहीं हुआ है और होगा भी, यह आज के महत्तम वैज्ञानिकों के लिये भी संदिग्ध है; पर वे स्पष्ट कहने लगे हैं कि मूलसत्ता चेतन ही जान पड़ती है, यद्यपि यन्त्रों के लिये वह सदा अज्ञेय रहेगी। बात यही ठीक है—नियम है कि दो सर्वथा विपरीत धर्मवाले तत्वों का सम्पर्क सम्भव नहीं होता। जड स्थूल यन्त्र चाहे जितने भी परिष्कृत क्यों न हों, वे चेतन से, जो उनसे सर्वथा विपरीतधर्मी है, सम्पर्क नहीं कर सकते। हम बुद्धि और मन से चाहे मनन करें अथवा विज्ञान के यन्त्रों से अन्वेषण, हमारा मार्ग 'नेति नेति' का मार्ग ही रहेगा। ये आन्तरिक एवं बाह्य साधन प्राकृतिक हैं। इनसे प्रकृति का ही ग्रहण होगा; किन्तु निपुण समीक्षा से प्राकृत तत्वों का मिथ्यात्व सिद्ध होता जायगा। इनसे सत्य का साक्षात्कार होने से रहा। अवश्य ही उसके सम्बन्ध में अनुमान हो सकता है।

जगत् की भावरूप सत्ता

वस्तुओं का रूप, रंग, लंबाई, चौड़ाई, मोटाई, आकार, परिमाण आदि सब सापेक्ष हैं—गति-सापेक्ष ! इनमें से कोई भी सत्य अथवा तथ्य नहीं है, यह तो सापेक्षवाद ने ही सिद्ध कर दिया है; पर पदार्थों का मूल क्या है ? क्यों गति इतने विविधरूपों में व्यक्त हुई ? परमाणु

के विभाजित होने पर जो शक्ति रह जाती है, वह परमाणु और उससे पदार्थ बनी ही क्यों ? विज्ञान अभी इसका उत्तर दे नहीं सका है। मूलतत्व चित्स्वरूप, चेतन है—यह अनुमान ही हो सकता है विज्ञान द्वारा; पर जो मूलतत्व है—जब वही अज्ञात है, तब उससे यह दृश्यमान जगत् कैसे बना, यह पता कैसे लग सकता है ? पदार्थ सत्य हैं, इस प्रकार जड की सत्ता स्वीकार करके उनकी छानबीन करने के मूल में ही भूल है। जब मूलतत्व चेतन है, तब उसे चेतन के कार्यों से ही ढूँढना चाहिये। जड के द्वारा—जो केवल एक सापेक्षिक भ्रम प्रमाणित हो चुका—उस चित् को कैसे पाया जा सकता है। भ्रान्ति में सत्य का अन्वेषण भ्रान्ति ही तो देगा।

चेतन के अन्वेषण के लिए हमें दूर नहीं जाना है। हम, आप, सब चेतन ही तो हैं। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'—जो हममें है, वही ब्रह्माण्ड में है। हमने जिस जगत् की सृष्टि की, पदार्थों को जो रूप हमने दिया, वह रूप कहाँ से आया ? हमारे मन में भाव उठा, क्रिया हुई और तब बाहर वह रूप प्रकट हुआ। कुम्हार जो घड़ा बनाता है, चित्रकार जो चित्र बनाता है, वह सब बाहर प्रकट होने से पूर्व उसके भाव में होते हैं। उन रूपों की पूर्ण सत्ता भाव में विद्यमान है।

हमारे संकल्प शक्तिहीन हो गये हैं, हम स्थूलरूपों में इतने असक्त हो गये हैं कि बिना किसी स्थूल आधार के हमारा भाव स्थूलरूप धारण नहीं कर पाता; किन्तु हम देखते हैं कि निपुण बाजीगर कोई पदार्थ न होने पर भी केवल अपने संकल्प से पदार्थों की प्रतीति बहुसंख्यक दर्शकों को करा देता है। बाजीगर के संकल्प मात्र से दर्शकों को उस पदार्थ के रूप, रंग, गन्ध, स्वाद, परिमाणादि सबकी प्रतीति होने लगती है। यदि बाजीगर अपने मनोबल से किसी पदार्थ की प्रतीति कुछ क्षणों के लिये पूर्णतः करा सकता है तो उससे अत्यधिक मनोबल सम्पन्न व्यक्ति कुछ वर्षों तक के लिये भी पदार्थ को व्यक्त कर सकता है और हमारे समस्त पदार्थ कुछ वर्षों की ही तो आयु रखते हैं। ऐसे सिद्ध पुरुषों के वर्णन ग्रन्थों में बहुत हैं और अब भी ऐसे व्यक्तियों के यदा-कदा मिलने में किसी आस्थायुक्त व्यक्ति को संदेह न होगा, जो पदार्थ को स्थायी रूप से प्रकट कर सकते हैं या दूसरे पदार्थ के रूप में बदल सकते हैं। ऐसा वे अपने दृढ़ मनोबल से ही तो करते हैं। शरीर के छोटा-बड़ा करने, अदृश्य होने, पदार्थ व्यक्त करने, अदृश्य करने, रूपान्तरित करने आदि-आदि सिद्धियों के समस्त वर्णन असत्य हैं—ऐसा कहने वाला कुतार्किक ही कहा जायगा। पर प्रश्न यह है कि ऐसे अवसरों पर स्थूल परमाणुओं का क्या होता है ? परिमाण, आकार कहाँ जाते हैं ? यदि दस मन का पत्थर दो तोले का, छोटा-सा हो गया तो उसका शेष आकार और परमाणु गये कहाँ ? यदि हम इस पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि पदार्थों का यह स्थूल रूप ही बाजीगर के दिखाये पदार्थों की भाँति केवल मानसिक है। इनके रंग-रूप-परिमाण सब मानसिक हैं। स्वप्न में देखे पदार्थ, बाजीगर के दिखाये पदार्थ और जगत् के पदार्थ—इनमें तथ्य की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं। केवल इनके स्थायित्व का अन्तर ही हमें भ्रम में डालता है। अन्यथा सिद्धि का तत्व ही यह है कि समस्त जगत् भावरूप है। जगत् का स्थूल रूप जड प्रतीति के रूप में मिथ्या है और भावरूप में सत्य है। यह भाव ही स्थूल जगत् की अभिव्यक्ति का मूल है।

भाव एक ही व्यक्ति में कितने आ सकते हैं, आते हैं, इसकी संख्या करना कठिन है; किन्तु भाव होते हैं चेतन के। हममें—हमारे मन में चाहे जितने भाव आते हों, पर हम एक ही हैं। हमें उतने रूपों में विभक्त नहीं किया जा सकता और यदि व्यक्तियों के स्थूल शरीरादि में आबद्ध अहंकार को निकाल दें तो 'अहं' का पार्थक्य रह नहीं जाता। तब एक ही सत्ता रह जाती है और वह चेतन है। इसे हम यों भी समझ सकते हैं कि जो भाव हमारे मन में आते हैं, वेही दूसरे के मन में भी आ सकते हैं। यदि भावों की उद्गमरूप चित् सत्ता एक ही नहीं है तो ऐसा कैसे सम्भव है।

एक सच्चिदानन्द सत्ता

पदार्थ भावरूप हैं, यह तो ठीक; पर भाव क्या हैं? हमारा मन भावों का निर्माण करता है, यह कहना कठिन है। क्योंकि हम देखते हैं कि हमारे मन में वही भाव आ सकता है, जिसे हमने बाहर देखा या सुना हो। स्वप्न में भी हम बाहर के संस्कारों को ही मूर्त रूप में देखते हैं, फिर चाहे वे कितने ही अस्तव्यस्त क्यों न हों। लेकिन एक बात स्मरण रखने की है कि ज्ञान बाहर से नहीं आता। बाह्यशिक्षा केवल भीतर के ज्ञान को जाग्रत् करने के लिये निमित्त बनती है और इसी मान्यता के आधार पर बालकों की प्रवृत्ति के अनकूल शिक्षा का सिद्धान्त स्थिर होता है। दूसरे, तुकाराम प्रभृति ऐसे अनेक संत हुये हैं, जिन्हें बाह्य शिक्षा अत्यल्प या सर्वथा नहीं प्राप्त हुई और फिर भी उनका ज्ञान लोकोत्तर सिद्ध हुआ। यदि ज्ञान बाह्य उपकरणों से ही प्राप्त हो सकता हो तो ऐसा कभी सम्भव नहीं था। यही बात सिद्ध कर देती है कि हमारे भीतर जो चित् सत्ता है, वह ज्ञानमयी है और उसको किसी वाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं है ज्ञान के लिये।

सत्ता है और वह ज्ञानमयी है; पर एक वस्तु अभी रही जाती है और वह है सुख। समस्त प्राणियों का प्रयत्न सुख—आनन्द के लिये है और बिना विस्तार किये भी यह समझना कठिन नहीं होना चाहिये कि पदार्थों में सुख हो तो एक ही पदार्थ सबको सुख दे सकता। जैसे बाह्य उपकरण हमारे अन्तर्ज्ञान को जाग्रत् करने के निमित्त बनते हैं, वैसे ही वे हमारे भीतर के सुख को भी जाग्रत् करते हैं। सुख-आनन्द भी भीतर से ही आता है और तब उस मूलसत्ता को सच्चिदानन्द रूप में पहिचानने में कठिनाई नहीं होनी चाहिये।

यह प्रत्येक व्यक्ति का दैनिक अनुभव है कि चञ्चलता से, व्यग्रता से हमारा ज्ञान विस्मृत होता है, हमारा आनन्द लुप्त होता है। स्थिरता—एकाग्रता में ही हम अपने ज्ञान एवं सुख को उपलब्ध कर पाते हैं। समस्त साधन इसी मानसिक स्थिरता की प्राप्ति के लिये ही होते हैं। यदि सत्ता स्वतः चञ्चल हो तो चञ्चलता में भी उसके ज्ञान एवं आनन्द रूप की उपलब्धि हो सकती; और सीधी बात तो यह है कि जो एक ही सत्ता है और सर्वव्यापक है, उसमें गति कैसे सम्भव है। सत्ता यदि व्यापक न हो तो हम यह कैसे आशा करेंगे कि सर्वत्र हम भावों को उपलब्ध कर सकेंगे। लेकिन हम चाहे जहाँ जायँ, हमारी चेतना में अन्तर नहीं आता; अतः सत्ता व्यापक ही माननी होगी और तब वह एकरस, निर्विकल्प भी सिद्ध ही है।

सगुणसत्ता

एक अनिर्वचनीय सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वतसत्ता है—यह तो ठीक; किंतु हमारे इस जगत् का प्रश्न इतने से ही हल नहीं होता। पदार्थ चाहे इस रूप में सत्य हों या भावरूप में; पर इनमें भेद क्यों है? जगत् में इन नाना रूपों, नाना आकृतियों की प्रतीति कैसे होती है? इसे अज्ञानजन्य विवर्त—भ्रम कहना कुछ बहुत संगत नहीं है। हम स्पष्ट जानते हैं कि अज्ञान भेद का कारण नहीं हुआ करता। उलटे, भेद तो ज्ञान से बढ़ते हैं। अन्धकार में समस्त वस्तुएँ एकाकार हैं, रंगज्ञानहीन अंधे के लिये सभी रंग एक से हैं; जो संगीत-शास्त्र नहीं जानता, उसके लिये सभी आलाप केवल पें-पें हैं; पर जो इन विषयों को जितना जानता है; उसे इनमें उतने ही सूक्ष्म भेदोपभेद प्रतीत होते जाते हैं। दूसरे, भ्रम का भी आधार होता है। शास्त्र कहते हैं कि संसार मिथ्या है—रस्सी में सर्प की भाँति, सीप में चाँदी की भाँति और विज्ञान भी कहता है कि पदार्थों की सत्ता केवल आपेक्षिक प्रतीति है। हम ऊपर कह आये हैं कि पदार्थ इस रूप में असत् हैं, प्रतीति मात्र हैं; उनकी सत्ता केवल भावरूप है; पर सीप में चाँदी या रस्सी में सर्प तभी प्रतीत होगा, जब हमें पृथक् रूप से सीप, चाँदी, रस्सी, सर्प की सत्ता उपलब्ध हो। भ्रम का आधार और रूप दोनों अस्तित्व रखते हैं, उनकी अन्यत्र प्रतीति ही भ्रम कही जाती है। जिस 'शशशृङ्ग' का अस्तित्व

ही नहीं, उसका भ्रम भी कहीं सम्भव नहीं। तब यह जो विश्व में अनेकता की प्रतीति है, इसका आधार सत्य क्या है ? यदि यह यहाँ मिथ्या है तो सत्य कहाँ है ?

भाव और पदार्थों के नानात्व के अतिरिक्त एक वस्तु है शब्द—वाणी। ज्ञान तो हमारे भीतर से आता है; पर उसे प्रकट करने के जो शब्द हैं, वे हम दूसरों से ही सीखते हैं। भाषा हम सुनकर-पढ़कर ही पाते हैं। जो लोकोत्तर ज्ञान सम्पन्न संत हुए हैं, उन्हें भी अपनी ही भाषा से काम चलाना पड़ा है। भाषा के मूल रूप में परिवर्तन नहीं होता, उसके बाहरी रूप ही बदलते हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसा कोई शब्द बना नहीं सकता, जिसके पर्यायवाची शब्द पहिले से ही प्रचलित न हों और यदि ऐसा शब्द बना भी सके तो वह निरर्थक होगा; क्योंकि बिना पहिले से पर्याय-बोध हुए कौन कैसे समझेगा उसे। मैक्समूलर आदि पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों ने भी माना है कि भाषा के मूलरूप में सृष्टि की आदि से अब तक एक नूतन 'धातु' भी नहीं बढ़ी। भाषा एक आन्तरिक साधन है, जो अपने अर्थ के साथ प्राप्त हुई है। हम वेदों को इसीलिये श्रुति कहते हैं कि वे अनादि हैं, उनका कोई निर्माता नहीं। सृष्टिकर्ता को भी वे श्रवण-परम्परा से ही प्राप्त हुए हैं। इतनी महान् वस्तु है। वही हमारी वाणी हमारे समस्त भावों की मूल है; क्योंकि भाव भी तो शब्दरूप में ही मन में आते हैं। किंतु यह वाणी स्वतः प्राप्त नहीं होती, यह किसीसे प्राप्त हुई है। वाणी का यह साधन देनेवाला भी तो होगा ही और इतनी विविध अर्थ, धातु, भावमयी वाणी देनेवाला क्या निर्विशेष, निर्गुण ही होगा ?

जहाँ तर्क की गति न हो, उन अचिन्त्य विषयों में तर्क का सहारा लेना व्यर्थ एवं भ्रामक ही होता है। शास्त्र ही वहाँ प्रमाण होते हैं। यदि थोड़े-से शब्दों में शास्त्रों का तात्पर्य उद्धृत करें तो वह इस प्रकार होगा—

नित्यधाम और देवजगत्

एक अनिर्वचनीय सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत सत्ता है। उसी के दो रूप हैं—एक निर्गुण, निर्विकार स्वरूप और दूसरा निखिल ऐश्वर्य, माधुर्य, आनन्द, अचिन्त्यानन्त सद्गुणगणों का धाम स्वरूप। ये दोनों स्वरूप एक के ही हैं और अभिन्न हैं। उस एक सगुण स्वरूप की भी अनेक मूर्तियाँ हैं। उन लीला-विग्रहों के धाम हैं, वहाँ वे अपने स्वरूपभूत नित्य पार्षदों के साथ लीला-विहार करते हैं। ये धाम, पार्षद आदि सब नित्य, चिन्मय हैं। इनमें वही निर्गुण तत्व सगुण रूपों में नाना होकर नित्य क्रीड़ा करता है। जैसे निर्गुण स्वरूप विभु है, वैसे ही ये सगुण स्वरूप भी अपने धाम, पार्षदादि के साथ सर्वत्र व्यापक हैं। सभी सगुण स्वरूप, सभी लीलाएँ सदा सर्वत्र व्याप्त हैं। देश-काल की कल्पना वहाँ नहीं जाती। वस्तुतः तो जैसे स्वप्न का देश और काल है, जैसे वहाँ स्थान न होने पर भी अनन्त देश है और क्षण में ही युग बन जाते हैं, वैसे ही हमारा यह जाग्रत् का देश-काल भी है। हमारी कल्पना का—हमारा देश-काल उसी प्रकार उस चिन्मय धाम एवं रूप की क्रीड़ा में अस्तित्वहीन है, जैसे जाग्रत् में स्वप्न का देश-काल।

वह शाश्वत सत्य शक्ति एवं शक्तिमान्-उभय स्वरूप है। शक्ति और शक्तिमान् परस्पर अभिन्न होकर भी भिन्न, और भिन्न होकर भी अभिन्न हैं। वस्तुतः ये अभिन्न ही हैं, उनका भेद क्रीड़ा के लिये ही है। यह भेद वैसे ही अभेदरूप है, जैसे निर्गुण एवं सगुण का भेद होकर भी अभेद। इसी भेद से निर्गुण एवं सगुण शक्तिमान् सत्-चित्-आनन्द तत्वशक्ति के रूप में त्रिधा होकर संधिनी, संवित् और ह्लादिनी रूप में स्थित है। सगुण स्वरूपों की भाँति ये शक्तियाँ भी परस्पर तथा शक्तिमान् से भी अभिन्न ही हैं।

"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि"

व्यापक तत्व के एक पाद—एकांश में ही मायाशक्ति का आवरण है और उसी में अनन्त अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। तीन पादों में योगमाया का विस्तार है। वहाँ नित्यधाम हैं, जहां निर्गुण व्यापक तत्व अपनी ह्लादिनी शक्ति के साथ सगुण-साकार होकर क्रीड़ा करता है। शक्तिमान् के सगुण रूप

के अनुसार ही वे चिन्मयधाम हैं और उसी के अनुरूप उस एक ही ह्लादिनी शक्ति के राधा, सीता, लक्ष्मी, उमा, त्रिपुरा आदि नाम तथा रूप हैं।

व्यापक तत्व के सत्, चित्, आनन्द जहाँ चिन्मय नित्य धाम में त्रिधा नित्य होकर शक्ति-स्वरूप मूर्तिमान् हैं, वे ही माया में क्रमशः तम, रज एवं सत्वगुण का नाम पाते हैं। ये ही त्रिगुण स्थूलता, ज्ञान एवं क्रिया (गति) तथा सुख का रूप लेते हैं जगत् में और व्यष्टि में समस्त मनोभावों के त्रिविध मूल के रूप में मिलते हैं। सत्व हममें अनुराग—प्रेम और विकृत होने पर काम-राग-लोभ आदि बनता है। रज यदि शुद्ध हो तो ज्ञान, वैराग्य, धर्म एवं कर्तव्यनिष्ठा बनता है विकृत होने पर क्रोध, द्वेष, हिंसा का रूप धारणकरता है; तथा तम शुद्ध रूप में शान्ति के और विकृत होने पर प्रमाद, मोह, अज्ञान के रूप में व्यक्त होता है। बहिर्जगत् और अन्तर्जगत्—सभी इन्हीं तीन मूल भावों के विकार हैं। समस्त भाव इन्हीं तीनों के नाना रूप हैं और भाव स्वरूप पदार्थ भी इन्हीं के परिणाम हैं। प्रकृति नित्य इन तीनों गुणों से युक्त रहती है।। सत्वगुण निर्मल होने से पहिले दिव्य जगत् की उसी में अभिव्यक्ति होती है। दिव्य (सत्वात्मक) जगत् ही मूल सृष्टि है। जैसे सूर्य से किरणें, किरणों से प्रतिबिम्ब; वैसे ही नित्यधाम से भावस्तर और उनसे दिव्य जगत्।

हमारा जगत्

जगत् का कोई भी ऐसा उदाहरण नहीं, जो उस अचिन्त्यमहाशक्ति लीलामय की लीलाश्र के सम्बन्ध में पूर्णतः घटित होता हो। सभी उदाहरण अपूर्ण संकेतमात्र करके रह जाते हैं। यही दशा इस बिम्ब-प्रतिबिम्ब वाद की है। अस्तु, जैसे एक ही बिम्ब से अनन्त प्रतिबिम्ब हो सकते हैं, वैसे ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड और उनके दिव्य जगत् हैं। जैसे व्यष्टि में हमारे समस्त मनोभाव त्रिगुणात्मक हैं, वैसे ही समष्टि भी त्रिगुणात्मक ही है और सत्व, रज, तम के अधीश्वररूप से प्रत्येक ब्रह्माण्ड की स्थिति, उत्पत्ति एवं संहार के लिये उसी दिव्यजगत् में स्थित अखिलेश अंशरूप से ब्रह्माण्डों में विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्ररूप से अवस्थित होता है। ब्रह्माण्डों के ये अधीश्वर—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अनन्त हैं और आदिनारायण या भगवान् महाशिव से इनका रूपसाम्य भले हो, ये हैं केवल उनके अंशांश मात्र ही।

ये प्रतिबिम्ब कहाँ हैं? नित्य चिन्मय धामों को आवेष्टित किये बिरजा का चिन्मय प्रवाह है। वही प्रतिफलित होता है कारणार्णव में और उस कारणार्णव में वे अनन्तशायी अपने ही स्व-रूपभूत अनन्त की शेषशय्या पर शयन करते हैं। वह कारणार्णव ही इन अनन्त ब्रह्माण्डों का बीज है और उसी में ये नन्हे बुलबुलों की भाँति उठते और विलीन होते रहते हैं। इन बुद्बुद्-रूप ब्रह्माण्डों में दिव्य लोकों का प्रतिरूप प्रतिफलित होकर देवजगत् के रूप में व्यक्त होता है और जैसे व्यक्ति में मन के समस्त भावों के पीछे चित् सत्ता है, वैसे ही ब्रह्माण्डों में देवजगत् का भी नियन्त्रण, समस्त ब्रह्माण्ड के संचालकरूप से नित्यधाम की अपनी संधिनी, संवित् और ह्लादिनी शक्तियों के अंशांश सहित अपने अंशांश रूप ब्रह्मा, विष्णु, महेशस्वरूपों में वे ही सर्वेश करते हैं।

हमारा यह स्थूल जगत् भावरूप है, जैसे जल में पड़े सूर्य के प्रतिबिम्ब की छाया दर्पण में पड़ी है। देव जगत् ही हमारे भाव जगत् का अधिष्ठाता है। यों समझ लीजिये कि हम कोई भाव उत्पन्न नहीं करते। जैसे रेडियो का यन्त्र जिस स्तर में शब्द ग्रहण करने की स्थिति में रखा जाय, उसी स्तर के शब्द वह ग्रहण करने लगता है, स्वयं उसका कोई शब्द नहीं, वैसे ही हमारा मन भी स्वयं कोई भाव उत्पन्न नहीं करता। भावों के अनन्त स्तर हैं। मन जिस स्तर में पहुँचता है, उस स्तर की बातें मन में स्फुरित होने लगती हैं। प्रत्येक भाव देवजगत् से सम्बन्धित हैं, उसके अधिष्ठाता कोई एक देवता हैं। क्योंकि स्थूल जगत् की बाह्य सत्ता केवल भावरूप है, अतः सभी पदार्थों के शास्त्रों ने अधिष्ठाता देवता माने हैं। हमने मकान बनाया और जब मकान बन गया, उसके अधिष्ठाता देवता की हम पूजा करते हैं। बात यह है कि भावरूप में मकान पहिले हमारे मन

में आया, तब बाहर आया। भाव नित्य है, उसके अधिष्ठाता ही उस भावस्तर के अधीश्वर हैं; अतः जब भाव स्थूलरूप में प्रकट हुआ, उस स्थूलरूप के भी वे ही अधीश्वर एवं संचालक हैं, भले यह स्थूलरूप हमारे मन एवं कार्यों के माध्यम से व्यक्त हुआ हो।

दिव्य जगत् भावरूप से देव जगत् में आया और देवजगत् से वह भावस्तर होकर स्थूल जगत् के रूप में व्यक्त हुआ। प्रतिबिम्ब में सदा ही बिम्ब का कुछ सादृश्य और अपनी विकृति भी होती है। सूर्य के प्रतिबिम्ब में अल्पता, चञ्चलतादि अपने होते हैं और प्रकाश तथा उष्णता बिम्ब के अंश। दुःख, रोग, शोक, विकृति आदि जगत् के अपने विकार हैं और ज्ञान, सत्ता, आनन्द, भाव, अनुरागादि दिव्य गुण उस मूल बिम्ब के अंशलेश।

स्थूल जगत् का यह आकृतिभेद, यह नानात्व—इसका मूलाधार तो नित्य दिव्यधामों की विविधता ही है। अवश्य ही ये रूप बहुत विकृत रूप में यहाँ हमें दीखते हैं; क्योंकि पदार्थ की छाया में अनेक प्रकार के आकृतिभेद तथा प्रकाशहीनता आदि दोष आते ही हैं। फिर भी ये छाया हैं; अतः इनमें सादृश्य भी हैं ही, वह सादृश्य चाहे कितना भी अल्प क्यों न हो। किसी भी भाव का नैष्ठिक आलम्बन भगवान् के दिव्यरूप का साक्षात्कार करा सकता है। भगवान् अनुरागी आराधक को उसके भाव के अनुरूप रूप में ही दर्शन देते हैं और भगवान् का वह रूप तत्काल धारण किया हुआ रूप नहीं होता। उनके सभी रूप नित्य हैं, यह शास्त्र कहते हैं और तब यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् चिन्मय दिव्य रूपों के मूलाधार में ही भावों का उद्‌गम है। ऐसा कोई भाव सम्भव नहीं, जो उनके नित्य रूप से उद्भूत न हुआ हो; क्योंकि प्रत्येक भाव की परिणति उनके तदनुरूप नित्यरूप की प्राप्ति में होती है।

जीव की स्थिति

एक ही तत्व—निर्गुण और सगुणरूप और उसके दोनों रूप व्यापक, नित्य, चिन्मय, सच्चिदानन्दघन। सगुण स्वरूप शक्ति-शक्तिमान् रूप से अभिन्न होकर भी लीला के लिये भिन्न। सगुणरूपों के अनन्त नित्य चिन्मय धाम। नित्य धामों के भावस्तर, उनसे देवजगत् और देव-जगत् से स्थूल जगत् के भावस्तर और फिर भावरूप स्थूल जगत्। इस सब क्रम में जीव की कहाँ क्या स्थिति है, यह और शेष रह गया है।

हम जहाँ भी घड़ा बना देंगे, वहीं आकाश का एक अंश उसमें घटाकाश बन जायगा। ब्रह्माण्डों में वही सगुण विभु अपने अंशांश से त्रिदेव हुआ और उसी का अंश भावरूप देहों में जीव बना है। विभुरूप से तो वह सर्वत्र है ही और सर्वसमर्थ रूप से भी वह प्रत्येक जीव के साथ अन्तर्यामीरूप से हैं। उसके नित्यलोक के पार्षदों के अंशांश ही जब जीव हैं—वे ही जीव हैं भावरूप पिण्डों में और तब उनका नित्यसखा वहाँ से पृथक् कैसे रह सकता है। श्रुति कहती है—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया"

प्रत्येक पिण्ड में, चाहे वह देवशरीर हो या कोई कीटदेह, विभु चेतन के अतिरिक्त भी द्विविध चेतन सत्ता है—एक तो उस पिण्ड का अभिमानी प्रारब्धप्रेरित जीव और दूसरा सर्वसमर्थ अन्तर्यामी। उस नित्यदिव्य धाम के ये प्रतिरूप दृश्य और इनमें ये जीव—जैसे इस माया में प्रतिफलित वे सत्, चित्, आनन्द इन तम, रज एवं सत्व गुण के रूप में प्रतिभासित हुए; जैसे उस नित्यलोक की चिन्मय आकृतियों की यहाँ ये भावरूप छाया-परिणतियाँ इन कुत्सित नश्वर रूपों में प्रकट हुईं; वैसे ही इन आकृतियों के अधिष्ठाता जीव भी इन आकृतियों में 'अहं, मम' के दृढ़ बन्धन से आबद्ध हो गये। यह 'अहं' और 'मम' की आसक्ति उन्हें अपने कर्मों से संश्लिष्ट किये हुए है और अनादि काल से कर्म विवश जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़े वे नाना योनियों में भटक रहे हैं। अविद्या के द्वारा वे भ्रान्त हुए हैं और अपने समीप ही स्थित अपने नित्य सहचर उस अन्तर्यामी की ओर नहीं देख पाते, जो सदा समुत्सुक है उन्हें अपना लेने के लिये।

अवतार

इस मायिक जगत् में जीव तो अनादिकाल से भटक रहे हैं। देव, दानव, मानव, पशु, पक्षी, कीट, तृण आदि—पता नहीं किन-किन योनियों में अपने ही कर्मों के परिणामस्वरूप वे जन्म लेते और प्रारब्ध समाप्त होने पर फिर दूसरे शरीर धारण के लिये पहिले शरीर को छोड़ देते हैं; किंतु कभी-कभी वे सर्वेश भी अपने दिव्यरूपों में यहाँ आते हैं। उनके अवतारों की कोई मिति—इयत्ता नहीं; फिर भी उनके कुछ निश्चित अवतार भी हैं, जो अपने समय पर होते हैं।

जीव अविद्यालिप्त होकर इस संसार में भटक रहा है। उदाहरण के लिये हम उसे दहकते कोयले की अग्नि कह सकते हैं, जिसमें कोयले से पृथक् अग्नि का ग्रहण सम्भव नहीं; पर भगवान् अपनी योगमाया का आश्रय करके स्वेच्छा से पधारते हैं। वे जीव की भाँति कर्मवश जन्म नहीं लेते और न जीव की भाँति प्रारब्ध-परतन्त्र उनका चरित होता है। वे अपनी इच्छा से ही इस स्थूल जगत् में अपने को व्यक्त करते हैं। अपनी इच्छा से ही लीलाओं को प्रकट करते हैं और अपनी इच्छा से ही सबका तिरोभाव कर लेते हैं। दीपक की ज्योति-कलिका जैसे शुद्ध अग्नि है, उसमें दीपक, बत्ती या तेल का अंश नहीं, वैसे ही—उससे कल्पनातीत विशुद्ध रूप में भगवान् का अवतार-विग्रह सच्चिदानन्दघन होता है। उसमें न पञ्चभूतों का स्पर्श, न स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरों का भेद और न माया का स्पर्श ही होता है। वह तो एकरस घन सच्चिदानन्द है। श्रीविग्रह ही नहीं, भगवान् के वस्त्र, आभरण, आयुध, माल्य आदि सब अमायिक चिन्मय तत्व ही होते हैं।

सच्ची बात तो यह है कि सर्वेश के सभी साकार विग्रह अपने धामादि के साथ विभु हैं और वे कभी मायिक जगत् में आते नहीं हैं। प्रभु कृपापूर्वक कभी इस जगत् के किसी अंश में अपनी लीला व्यक्त कर देते हैं, स्थूल जगत् से अपने दिव्य जगत् का सामञ्जस्य कर देते हैं और जब चाहते हैं, उस लीला को तिरोहित कर लेते हैं। ललितोपाख्यान में एक कथा है—किसी राजा के पास देवर्षि नारद के आने पर राजा ने पूछा कि आप इस समय कहाँ हैं? मेरे मानस जगत में स्वप्न-कल्पना की भाँति स्थित हैं या बाह्य जगत् में दृश्य सत्ता की भाँति? देवर्षि ने कहा—'मैं तुम्हारे सम्मुख हूँ। तुम्हारे लिये तो तुम्हारे स्थूल जगत् में ही हूँ; क्योंकि तुम अपने सभी पदार्थों से मेरी पूजा कर रहे हो और मैं उसे स्वीकार कर रहा हूँ। तुम मुझे स्वप्न की भाँति असत् नहीं कह सकते; किन्तु मैं तुम्हारे स्थूल जगत् में भी नहीं हूँ। मैं अपने ही देश-काल में हूँ और तुम्हारे लिये ही मैंने इच्छापूर्वक अपने देश-काल का तुम्हारे देश-काल से सम्बन्ध कर दिया है; लेकिन यदि यहाँ कोई दूसरा मनुष्य आवे तो वह मुझे नहीं देख सकेगा। वह मुझे छू भी नहीं सकेगा। क्योंकि मैं अपने ही देश-काल में हूँ। इतना ही नहीं, तुम जो पदार्थ मुझे दोगे, मैं जब उसे ले लूँगा तब वे पदार्थ मेरे देश-काल में आने के कारण उस मनुष्य के लिये अदृश्य एवं सत्ताहीन होते जायँगे।' भगवान् भी इसी प्रकार नित्य अपने ही चिन्मय धाम में रहते हैं और अवतार के समय केवल अपनी इच्छा से उस नित्यधाम को इस स्थूल जगत् में व्यक्त कर देते हैं। उनकी जो लीलाएँ यहाँ होती दीखती हैं, वस्तुतः वे उनके उसी धाम में होती हैं और इसीलिये उस लीला भूमि का समस्त स्थल, सभी प्राणी, वृक्ष, पशु, पक्षी आदि दिव्य ही होते हैं। इसीलिये वहाँ इतनी अद्भुत बातें होती हैं कि उन सबको स्थूल जगत् में घटित करते समय हमारी बुद्धि भ्रान्त हो जाती है और उसे हम कल्पना कहने लगते हैं।

अवतार क्यों?

अन्ततः अवतार होते ही क्यों हैं? क्या आवश्यकता है उस आत्मकाम आनन्दघन सर्वेश को कि वह इस मायिक जगत् में आता है? क्यों अपनी लीला यहाँ व्यक्त करता है वह? इसका उत्तर तो गीता में उसने स्वयं दिया है—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥'

'धारणाद् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः'—धर्म ही लोकों को धारण करनेवाला है। वही समस्त प्रजा को स्थित रखता है और जब धर्म का ह्रास होने लगता है, अधर्म बढ़ जाता है, लोग धर्म के तत्व को भूलकर अधर्म में लग जाते हैं, छल, कपट, दम्भ, हिंसा, संघर्ष, अशान्ति, दुःख से विश्व पूर्ण हो जाता है, वह करुणामय—वह जीवों का नित्य सुहृद् यह कष्ट, यह व्यथा अपने सुहृदों की सह नहीं पाता। वह प्रत्येक युग में धर्म की रक्षा के लिये अवतार लेता है। स्वयं तप करके, धर्माचरण करके धर्म की वृद्धि करता है। उसके नर-नारायण, कपिल आदि ऐसे ही अवतार हैं, जो लोक की मङ्गल-कामना से, लोक की स्थिति के लिये तपोरत हैं। जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के रूप में जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहार के लिये प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थित है, वही यदि लोक की स्थिति के लिये स्वयं धर्म को पुष्ट करता है तो क्या आश्चर्य।

उसे अनेक कारणों से आना पड़ता है। मुख्यतः वह आता है साधुओं के परित्राण के लिये। जब उसके लाड़ले भक्त उसे पुकारते हैं, उसके लिये व्याकुल होते हैं और उसे यहीं देखना चाहते हैं, यहीं उसके साथ क्रीड़ा करना चाहते हैं तो उनकी तुष्टि के लिये वह आता है। उसके यदि लोक-मङ्गल भुवन-पावन चरित न हों तो कैसे जीव का त्राण हो, साधु—सत्पथगामी जीवों का कल्याण हो। वे उसके दिव्य रूप, पावन गुण एवं मङ्गलमय चरितों का ध्यान, चिन्तन, श्रवणादि करके इस अविद्या के दुःखमय चक्र से छूट जायँ, इसलिये वह अपनी लीलाओं को यहाँ व्यक्त करता है और उसकी सभी लीलाएँ ऐसी ही परम पावनी हैं।

जब तप, धर्माचरणादि से कोई इतना प्रबल हो जाता है कि स्थूलजगत् एवं देवजगत् की भी कोई शक्ति उसे दबा नहीं सकती और तप आदि से प्राप्त उस शक्ति के बलपर वह मर्यादाओं का नाश करके लोक को त्रस्त करने लगता है, तब भी सर्वेश का अवतार होता है। दुर्मद, प्रबलतम उस दुष्ट का नाश करके जगत् में शान्ति की स्थापना के लिये वे पधारते हैं। वाराह, हयशीर्ष, नृसिंहादि उनके दुष्ट-दलनार्थ हुए अवतार हैं।

जीव अल्पशक्ति हैं। तुच्छ बुद्धि है उनकी। जीवों में एक मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है और मनुष्य बिना सिखाये कुछ सीखता ही नहीं। प्रकृति अधोगामिनी है। सभी मायिक पदार्थ ह्रासोन्मुख ही रहते हैं। मनुष्य का ज्ञान भी क्षीण होता जाता है। दीर्घकाल में वह भूल ही जाता है श्रुति-शास्त्रानुमोदित ज्ञान एवं धर्माचरण को। बार-बार उसे सिखाना पड़ता है। बार-बार धर्म की स्थापना करनी पड़ती है भ्रान्त, अबोध मनुष्य के लिये और इस प्रयोजन से भी उन सर्वेश का अवतार होता है। वे व्यास, नारद, सनकादि, मनु, प्रजापति आदि के रूप में धर्मसंस्थापन के लिये युग-युग में पधारते ही रहते हैं।

अवतार-भेद

जो सर्वेश है, सर्वसमर्थ है, वह कब, कैसे, कहाँ प्रकट होगा, इसका कोई नियम नहीं हो सकता। वह किस मूर्ति में आवेगा, कौन कह सकता है। लेकिन इस जगत् के नियम हैं और वे अटल-प्राय हैं। जगत् के ह्रास-उत्थान, युग-परिवर्तन आदि सभी उन नियमों के अनुसार होते हैं। यद्यपि वह निखिल-नियन्ता किसी नियम के परवश नहीं; फिर भी जब जगत् में युगादि का निश्चित काल है, इसके ह्रासोत्थान का समय है, तब इसमें कब दुष्टों के दमन, धर्मस्थापनादि की आवश्यकता होगी, इसका भी समय है और उन समयों पर सर्वेश जिन रूपों में प्रकट होते हैं, उन रूपों को युगावतार कहा जाता है। ये युगावतार अपने-अपने युगों में प्रायः होते ही हैं। वामन, नृसिंह, परशु-राम, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि आदि युगावतार माने हैं शास्त्रों ने और श्रीकृष्ण तो अट्ठाईस मन्वन्तरों के पश्चात् कलि एवं द्वापर के संधिकाल में पधारे थे। इन चिर-चपल के आने का कोई समय कैसे निश्चित हो सकता है।

संसार की स्थिति के अधीश्वर भगवान् नारायण हैं—ब्रह्माण्ड के अधीश्वर भगवान् विष्णु। अतः सभी अवतार उनके अंश ही माने जाते हैं; क्योंकि अवतार होने का कारण ही जगत् में मर्यादा, धर्मादि की स्थापना तथा दुष्टों का नाश है। लेकिन इस अंश का यह अर्थ नहीं कि अवतार-विग्रह पहिले नहीं था और भगवान् विष्णु ने अंशरूप में वह शरीर धारण किया। भगवान् के सभी रूप, सभी लीलायें नित्य हैं। अवतार-विग्रह भी नित्य हैं। वे नित्य रूप में ही भगवान् विष्णु के अंश हैं और जब स्थिति के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु को प्रतीत होता है कि जगत् में अवतार-विग्रह के प्राकट्य की आवश्यकता है, उनकी इच्छा से ही आवश्यकता के अनुरूप उस नित्य अवतार-विग्रह का जगत् में आविर्भाव हो जाता है। यह तो हुई सामान्यतः अंशावतार की बात; किंतु कभी-कभी वे लीलामय परात्पर पुरुष भी जगत् के जीवों पर दया करके स्वयं जगत् में पधारते हैं। वे साकेत से श्रीराम-रूप में पधार सकते हैं, गोलोक से श्रीकृष्णरूप में व्यक्त हो सकते हैं या और किसी नित्यधाम से उसके अनुरूप रूप में। जब यह पूर्णावतार होता है, उस समय जो भगवान् विष्णु का अंशावतार—युगावतार होने वाला होता है, वह भी उसी पूर्णरूप में मिल जाता है। उदाहरण के लिये श्रीकृष्णचन्द्र का यह पूर्णावतार था। श्रीमद्भागवतकार ने ही कहा—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' और फिर 'सितकृष्ण-केशा' भी आता है। श्री वसुदेवजी ने जो सायुध, साभरण चतुर्भुज मूर्ति देखी—वह युगावतार, श्रीनारायण का अंशावतार हो सकता है और द्वारिका में अर्जुन के साथ क्षीरसागरशायी के सम्मुख जाने पर उन भूमा पुरुष ने श्री कृष्णचन्द्र को अपना अंश बताया भी; पर—

'एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

के सम्बन्ध में विचार करें तो उपर्युक्त अंशावतार से पृथक् परात्पर पूर्णावतार का भी व्याख्यान भागवत ही करता है और तब स्वतः यह बात स्मरण होती है—

"नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥"

आत्मभूत ज्ञानियों के लिये भी दुर्लभ ये गोपकुमार श्याम-सुन्दर ही परात्पर पूर्ण तत्व हैं, यह कहाँ संदिग्ध रह जाता है और वे तो नित्य नन्द-नन्दन हैं। मथुरा और द्वारिका से उन्हें प्रयोजन भी क्या। शास्त्र ही कहते हैं कि वे व्रज को छोड़कर एक पद भी बाहर नहीं जाते। व्यक्त व्रजलीला-काल में भगवान् विष्णु के जो युगावतार उनमें अन्तर्हित थे; उन्होंने ही मथुरा एवं द्वारिका के चरित पूर्ण किये और यह उन्हीं स्थिति-स्थापक के उपयुक्त था। लीलाविहारी गोपाल को इन बातों में क्या रस! अस्तु,

दिव्यलोकाधीश, नित्यलीलाविहारी, परात्पर, परतत्व भगवान् स्वयं कब पधारेंगे, कोई नहीं कह सकता। वे किसी धाम से, अपने किसी दिव्यरूप में आ सकते हैं; पर जब भी वे आवेंगे, उस समय के युगावतार उनमें अन्तर्भूत हो जायँगे। इसके अतिरिक्त ये युगावतार या अंशावतार भी पूर्ण ही हैं। उस अनन्त पूर्ण का कोई अंश अपूर्ण नहीं होता। जिस अवतार को जगत् में जितनी शक्ति, ऐश्वर्यादि के उपयोग की आवश्यकता होती है, उतनी ही शक्ति या ऐश्वर्य प्रकट होता है उस अवतार में और इस प्रकट हुई शक्ति के अनुसार ही अंश की कल्पना की जाती है; किंतु उस अवतार-विग्रह में उतनी ही शक्ति है, यह सोचना तो भ्रम ही नहीं, अपराध भी होगा। सभी सर्वथा पूर्ण अचिन्त्यशक्ति एवं ऐश्वर्यमय ही होते हैं; भगवान् के रूप और उनमें तत्वतः कोई भी भेद हुआ नहीं करता। भेद तो केवल बाह्यप्रतीति मात्र है।

अवतारों की अभिव्यक्ति के अनुसार भी दो भेद अवतारों के किये जाते हैं—ऐश्वर्यावतार एवं लीलावतार। मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंहादि भगवान् के अवतार ऐश्वर्यावतार हैं। इन अवतारों में न कोई उनकी माता है और न कोई पिता। वे अपने ऐश्वर्य से ही प्रकट हो गये और फिर अवतार का प्रयोजन पूरा होने पर अन्तर्हित भी हो गये। श्रीराम, श्रीकृष्णादि भगवान् के लीलावतार हैं। इनमें भगवान् नरलीला का अनुकरण करते हैं। वे वात्सल्यादि रसों के सम्यक् आस्वादन के लिये

माता-पिता बनाकर ठीक सामान्य शिशु की भाँति जन्म-ग्रहण की लीला करते हैं। यद्यपि सामान्य शिशु की भाँति उन सर्वेश का गर्भवास या माता के उदर से जन्म नहीं होता, उनका आनन्दघन चिन्मय श्रीविग्रह पिता-माता के रज-वीर्य से बना नहीं होता; किंतु वे वात्सल्य की पूर्ण पुष्टि के लिये ठीक जन्म का ही अनुकरण करते हैं और माता उन्हें अपना उदरजात तथा पिता औरस पुत्र ही मानते हैं।

एक साथ अनेक अवतार

एक बात अवतार-विग्रह के सम्बन्ध में और जान लेने की है कि एक ही समय भगवान् के अनेक रूपों में अवतार हो सकते हैं और उनके परस्पर सम्बन्ध के वचन भी शास्त्रों में मिल सकते हैं। जैसे नर-नारायण—ये भगवान् के आदि युग के अवतार हैं और कल्पान्त तक लोक-मङ्गल के लिये तप करते हुए वे स्थित रहेंगे। महाभारत में अनेक स्थानों पर अर्जुन और श्रीकृष्ण को नर-नारायण का अवतार कहा गया है। भगवान् के श्रीविग्रह सभी नित्य हैं; अतः उनका अमुक अवतार ही अमुक हुआ, इसका यह अर्थ नहीं कि पहिला रूप अब नहीं है और वही दूसरे रूप में हो गया। नर-नारायण ही अर्जुन-श्रीकृष्ण हैं या श्रीराम ही द्वापर में श्रीकृष्ण हुए—इसका यह अर्थ नहीं कि द्वापर में श्रीकृष्ण के अवतार धारण करने पर श्रीनारायण या श्रीराम के मङ्गल-विग्रह नहीं रहे। वे मङ्गल-विग्रह तो शाश्वत हैं। श्रीराम ही श्रीकृष्ण हुए—इसका तात्पर्य इतना ही है कि दोनों परस्पर अभिन्न तत्व हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं। जैसे हम कहते हैं कि जो तत्व निर्गुण निराकार है, वही अपने चिन्मय धाम में निखिल दिव्य सद्गुणगणैकधाम साकार है, ठीक इसी प्रकार श्रीनारायण और श्रीकृष्ण का, श्रीराम और श्रीकृष्ण का अथवा और किन्हीं अवतारों का एकत्व बताया जाता है। वैसे उनके श्रीविग्रह तो सभी नित्य हैं और उनमें से स्थूल जगत् में एक साथ अनेक श्रीविग्रह व्यक्त रहें, इसमें कुछ भी असम्भाव्य या अद्भुत नहीं है।

भगवान् मूर्त जगत् में एक साथ अपने अनेक रूपों से प्रकट रहें, इसमें तो आश्चर्य की कोई बात है ही नहीं। भगवान् के नित्यपार्षद तथा उनके परम प्रिय अनुरागी जीव भी एक साथ अनेक रूपों से जगत् में रह सकते हैं। ऐसे भगवत्कृपाप्राप्त अनुग्रह-समर्थ जीव अपने अंश रूप से विश्व में एक या एकाधिक रूपों में रहते और उन-उन रूपों के अनुरूप कार्य करते हैं। उनके ये सब रूप वास्तविक होते हैं, कायव्यूह या इन्द्रजाल के समान नहीं होते। उदाहरण के लिये देव-माता अदिति और प्रजापति महर्षि कश्यप कल्पान्त अमर हैं और अब भी हैं। श्री वसुदेव-देवकीजी पूर्वजन्म में कश्यप-अदिति थे, यह बात स्वयं भगवान् ने ही कही है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि कश्यप-अदिति अब वसुदेव-देवकी हो गये तो कश्यप-अदिति नहीं रहे। सामान्य जीव एक शरीर का त्याग करके ही दूसरा जन्म ले सकता है; किंतु अनुग्रह करने में समर्थ भगवान् के निज जनों के लिये ऐसी बात नहीं है। वे संसार में कर्म-पराधीन होकर तो जन्म लेते नहीं। वे तो भगवान् की इच्छा से भगवान् की लीला में योग देने आते हैं; अतः वे एक साथ अपने अंशरूप से अनेक स्थानों पर अनेक रूपों में, अनेक प्रकार के चरित करते हुए रह सकते हैं। भगवान् के समान ही उनके पार्षद भी अपने सगुण साकार रूप में ही विभु हैं, यह बात पहिले कही जा चुकी है।

नित्यपार्षद और पार्षदजीव

हमारा स्थूलजगत् उस चिन्मय नित्यधाम का ही प्रतिबिम्ब है, भले वह देवजगत् के माध्यम से प्रतिफलित हुआ हो, और यहाँ इन भावरूप शरीरों में जो चेतन जीव हैं, वे उन नित्य धाम के पार्षदों के ही अंशांश हैं—यह बात पहिले स्पष्ट कर दी गयी है। अविद्या के परिमाणरूप इस विकारी दुःखमय प्रपञ्च में आसक्ति करके 'अहं' 'मम' के सम्बन्ध से आबद्ध जीव अपने ही कर्मों के चक्र में पड़ा नाना उच्च-नीच योनियों में अनादि काल से भटक रहा है। इस कर्मचक्र के छुटकारे का उपाय यही है कि या तो वह ज्ञानमार्ग का आश्रय लेकर अपने 'अहं' के अभिमान को सर्वात्मा

में एक कर दे और अपनी सत्ता को विभु, निर्गुण, निर्विकल्प सत्ता में विलीन कर दे; अथवा किसी एक भाव का आश्रय करके, उसमें दृढ़ निष्ठा से एकाग्र होकर उस भाव के मूल के साक्षात् सम्पर्क में आवे और तब चिन्मय धाम में उसका अपना जो वास्तविक रूप है, उसे पहिचान ले। जहाँ उसने अपने उस वास्तविक रूप को पहिचाना, जहाँ उसे अपनी उस वस्तुस्थिति का पता लगा, अविद्या के तुच्छ आवरण उसे आबद्ध रखने में स्वतः असमर्थ हो जायँगे। वह अपने नित्य करुणासागर सेव्य से तब पृथक् रह नहीं सकता। धन्य होता है वह क्षण जब विश्व के त्रयताप में संतप्त कोटि-कोटि जन्मों से भ्रान्त जीव अपने नित्यधाम की स्थिति को जानता और अपने अंशी, अपने नित्य पार्षद-देह के साथ एकत्व प्राप्त करता है।

जब वे सच्चिदानन्दघन अवतार-विग्रह में प्रकट होते हैं, उनका चिन्मय धाम और उनके नित्य पार्षद भी पधारते हैं। ये पहिले, साथ या पीछे तक भी लीलानुरूप क्रम से जगत् में व्यक्त होते हैं। इस समय जगत् के असंख्य कृतकृत्य जीव अपने इन अंशियों से एक होने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं। जैसे कभी वसुश्रेष्ठ द्रोण और उनकी पत्नी धरा ने घोर तप किया और उनकी एकमात्र इच्छा थी कि वे सर्वेश को पुत्ररूप में प्राप्त करके उनका लालन-पालन करें। उनमें वात्सल्य-भाव हो। भगवान् ब्रह्मा ने उन्हें वरदान दे दिया। गोकुल में वे ही द्रोण गोपराज नन्द हुए और धरा हुईं व्रजेश्वरी यशोदा, यह श्रीमद्भागवत का कहना है। श्रीकृष्ण नित्य नन्दनन्दन हैं और उनकी बालक्रीड़ा उनके चिन्मय धाम में शाश्वत है अतः व्रजराज नन्दबाबा और व्रजेश्वरी मैया यशोदा तो नित्य हैं उस चिन्मय नित्य गोलोक में। अवतार के समय जैसे भूमि के व्रज में वह दिव्य लोक मूर्त हो गया, वैसे ही नित्य व्रजराज एवं व्रजरानी के साथ द्रोण एवं धरा ने एकत्व प्राप्त किया। यह तो एक उदाहरण मात्र है। श्रीकृष्णचन्द्र को वात्सल्य, सख्य, माधुर्य के भावों से अपना करके अनुभव करनेवाले और भी अनन्त जीव होंगे और उन्होंने अपने अंशी उन-उन भावों के नित्य आधार पार्षदों के साथ तादात्म्य प्राप्त किया होगा। यह तादात्म्य तो सभी लीलावतारों के समय और सर्वदा ही चलता है। सदा ही जीव भाव के आश्रय से उस भाव के नित्याधार दिव्यलोकस्थित अपने अंशी पार्षद के साथ एकत्व प्राप्त करता है। यह क्रम अवतार के प्रकट होने और अन्तर्हित होने पर भी समान रूप से चलता है; क्योंकि तादात्म्य प्राप्त करने के अधिकारियों के लिये तो उनके आराध्य तथा आराध्य का धाम एवं लीलाएँ नित्य व्यक्त—नित्य प्रत्यक्ष ही हैं।

प्राकृत दृष्टि

भगवान् के नित्य चिन्मय दिव्य अवतार-चरितों को जो लोग सामान्य मानव-चरितों की सीमा में ही आबद्ध करना चाहते हैं; जो उन सर्वसमर्थ लीलामय की लीलाओं को भी अपने-जैसे साधारण व्यक्ति की ही क्रियाएँ मानने का प्रयत्न करते हैं, वे उन दिव्यचरितों का भौतिक जीवन में अनेक स्थलों पर कोई सामञ्जस्य नहीं कर पाते। उनकी बुद्धि भ्रान्त होती है और तब वे अनेक लीलाओं के पीछे की कल्पना करते हैं अथवा उसका कोई और अर्थ करने का प्रयत्न करते हैं। वे भगवच्चरित्र को मानवचरित के चाहे जितने उच्चस्तर से देखें, अन्ततः उस अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्य-धाम को अपने तुच्छ आदर्श में कहाँ तक परिसीमित कर सकते हैं। तब या तो अनेक दिव्य चरितों को वे अस्वीकार कर देते हैं या बड़ी सचाई से पूरे चरित को ही 'अन्तर्द्वन्द्व का रूपक' कहकर संतोष कर लेते हैं। तब वे यह स्वीकार ही नहीं करते कि इसी धरापर वह दिव्य चरित कभी प्रकट हुआ था। क्योंकि उनकी कल्पना का क्षेत्र भी इतना संकुचित होता है कि चरित की अलौकिकता उसमें समा नहीं पाती।

'पुराण-व्याख्या त्रिधा—आधिभौतिकी आधिदैविकी आध्यात्मिकी च।' पुराण की तीन प्रकार की व्याख्याएँ हुआ करती हैं—१–आधिभौतिकी अर्थात् सत्य इतिहास, २–आधिदैविकी अर्थात् देवजगत् से सम्बन्धित और ३—आध्यात्मिक अर्थात् अन्तर्जगत् से सम्बन्ध रखनेवाली। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि जो कुछ नित्य दिव्य लोकों में है, वही भावस्तर के रूप में अबाधक

में प्रतिफलित होता है। यही अध्यात्म तथ्य है और यही भावस्तर में या देवजगत् में मूर्त होकर अधिदेव बनता है। देवजगत् अर्थात् अधिदेव ही फिर भावरूप से अधिभूत के रूप में व्यक्त हुआ अर्थात् स्थूल जगत् बना। अतः यह तो सम्भव है कि स्थूलजगत् से देवजगत् में और देवजगत् से नित्य भगवद्धामों में अपार विस्तार एवं बाहुल्य हो और ऐसा है ही; पर यह सम्भव नहीं कि जो नित्य धाम में नहीं, वह देवजगत् में उपलब्ध हो या जो देवजगत् में नहीं, वह धरापर स्थूलरूप में प्राप्त हो। ऐसी जितनी उपलब्धियाँ होंगी, वे केवल विकृतियाँ ही हो सकती हैं। फलतः हमारे जगत् में जिसे हम कल्पित करेंगे, उसकी देवजगत् या नित्यधाम में सत्ता ही न होगी। यहाँ जो इतिहास है, सत्य है, वही अधिभूत अधिदेव एवं अध्यात्म में सत्य हो सकता है। पुराणों के वर्णन क्योंकि ऐतिहासिक रूप में अभ्रान्त सत्य हैं, इसी से उनकी आधिदैविक एवं आध्यात्मिक व्याख्या भी सत्य है। जो इतिहास में सत्य न होकर केवल रूपक होगा, उसकी देवजगत् या अन्तर्जगत् में कोई सत्ता ही न होगी, यह हमें भली प्रकार अवगत कर लेना चाहिये।

श्रीकृष्णचरित में चीर-हरण और रास को लेकर पता नहीं क्या क्या लोग कहते हैं और अपनी कलुषित बुद्धि का कालुष्य वहाँ भी देखना चाहते हैं। अनेक सद्भाव-सम्पन्न भावुक-हृदय इन दूषित तर्कों से क्षुब्ध होते हैं और वे प्रयत्न करते हैं इन लीलाओं का कोई आध्यात्मिक अर्थ करने के लिये। लेकिन बहुत सीधी बात है कि अपने ही विकारों से अंधा व्यक्ति यदि तनिक भी विचार करने की स्थिति में हो तो देख लेगा कि क्यों श्रीकृष्ण के परमद्वेषी शिशुपाल ने इन घटनाओं की चर्चा तक नहीं की। शिशुपाल जब श्रीकृष्ण की अच्छाइयों को भी दोष देखकर गाली दे रहा था, उसे इतने बड़े अपने अनुकूल कारण क्यों नहीं सूझे ?

"एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ।"

व्रज में श्रीकृष्णचन्द्र कुल ग्यारह वर्ष, छः महीने, चार दिन ही रहे हैं। श्रीमद्भागवत के विद्वान् व्याख्याकारों का मत है कि इन वर्षों को नाक्षत्र वर्ष मानना चाहिये। यदि ऐसा करें तो ये ग्यारह वर्ष भी नहीं रह जाते। तब तो इनमें से प्रत्येक वर्ष चान्द्रमान के एक वर्ष से लगभग एक मास और कम हो जाता है। अर्थात् चान्द्र या सौर वर्ष से श्यामसुन्दर केवल साढ़े दस वर्ष की अवस्था तक व्रज में रहे। इस गणना को न मानें, तब भी 'एकादशसमाः' तो स्पष्ट ही है। लगभग सात वर्ष, तीन मास की अवस्था में चीर-हरण और आठ वर्ष, एक मास की अवस्था में शरत्पूर्णिमा को रास किया उन्होंने। यदि श्रीकृष्णचन्द्र परात्पर पूर्णपुरुष सर्वशक्तिमान् हैं, जो कि शास्त्रों का नित्यानुमोदित सत्य सिद्धान्त है, तो उनके लिये बाल्य एवं कैशोर का बन्धन क्या। जो कारागार में माता देवकी के सम्मुख सायुध साभरण चतुर्भुज व्यक्त हुआ, वह यदि अपनी नित्य सहचरियों के लिये किशोर हो गया तो हुआ क्या ? श्यामसुन्दर की वे सहचरियाँ भी तो उससे नित्य अभिन्न हैं। फिर जो सर्वान्तर्यामी है, वही सर्वेश ही तो सबका वास्तविक पति है। उसके लिये 'पर' कौन ? वह तो कृपा करके ही अपनाता है न। जीव का परम सौभाग्य—परम प्राप्य यही तो है कि वह सर्वेश वरण करले उसे। वह स्वयं वरण न करे तो जीव कैसे पा सकता उसको ?

'यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः ।'

लेकिन शङ्का तो उन्हें होती है, जो कृष्णचन्द्र को मानव मानने चलते हैं, फिर उनका वह मानव चाहे जितना महान् क्यों न हो। ऐसे लोगों से इतना ही कहना पर्याप्त है कि वे उस समय के व्रजसुन्दर के वय की ओर से दृष्टि बंद न करें। आज भी जहाँ ग्रामों में नगरों की दूषित वायु नहीं पहुँची, आठ-नौ वर्ष तक के बालक-बालिकाएँ नंगे खेलते-कूदते हैं। उस समय तो द्वापर था। इन बालविनोदों में क्या सोचने की बात है भला, ऐसे महान् विद्वानों के लिये जो श्रीकृष्णचन्द्र के चरितों की 'न भूतो न भविष्यति' व्याख्या करने में समर्थ हैं।

हाँ, इनमें से श्रीराधा के सम्बन्ध में भी बड़ी वितण्डा है। परमहंस शुकदेवजी तो अपने आनन्द में नित्य लीन रहनेवाले अवधूत ठहरे। उन्हें क्या पता था कि वे जिस महाभाव-मूर्ति को

रहस्य के आवरण में छिपाकर रख रहे हैं, उस निखिल माधुर्यमयी का लोग अस्तित्व ही स्वीकार न करना चाहेंगे। जो लोग केवल तर्क ही करना चाहते हैं; उनसे विजय पाने की वेदमूर्ति ब्रह्माजी की कामना भी कदाचित् असफल ही होगी; पर ऐसे कुटिल तर्कों से भावुक प्राणों को व्यथित होने की आवश्यकता नहीं है। उनके लिये श्रुति के ये शाश्वत मन्त्र बहुत कुछ कह जाते हैं। श्रुति ने उन महियासयी का केवल नाम-स्मरण ही नहीं किया, उनके परमपूज्य पिता के परिचय का संकेत भी किया है—

'स्तोत्रं राधानां पते'—ऋग्वेद १।३०।५

'त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि'

—ऋग्वेद ३।१५।३

केवल बात रह जाती है कुब्जा के सम्बन्ध की। इस विषय में इतना ही कहना है कि स्तुति करते हुए ब्रह्माजी ने गोपाल से कहा है—

"तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन् नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥"

—भागवत १०।१४।८

ऐसी दशा में यदि दासी कुब्जा उन भुवन-मोहन का क्षणिक स्पर्श एवं सामीप्य पाकर उनके लिये आकुल हो गयी, उसके प्राण उसी मयूर-मुकुटी को प्रतीक्षा में अस्त-व्यस्त हो गये तो क्या अपराध उसका? और—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

कहने वाला गीतागायक क्या मुँह लेकर कुरुक्षेत्र में यह घोषणा कर पाता, यदि उसने अपने लिये आकुल उस दासी की प्रतीक्षा सत्य न की होती।

सामाजिक स्थिति

लीलाओं के सम्बन्ध में शङ्काएँ तो होती ही हैं; शङ्काएँ होती हैं उस समय के ऐश्वर्य-वैभव के वर्णन को लेकर। हम भूल जाते हैं भारत के प्राचीन ऐश्वर्य को। हमारे मन में आज की कंगाल स्थिति घर कर गयी है और हम जब मणि, स्वर्ण, स्फटिक, कौशेयवस्त्र आदि की विपुलता और उनके महादान की बात पढ़ते, सुनते हैं तो हमारा चित्त उसे ग्रहण ही नहीं कर पाता। हम इन वर्णनों को काव्यवैभव कहकर उड़ा देने का प्रयत्न करते हैं। इतिहास के नन्हे से काल में जो चीनी या विदेशी यात्री भारत में आये, यदि हम उनके वर्णनों पर ध्यान दें तो हमें भारतीय वैभव की एक छाया प्रतीत हो सकेगी। स्मरण रखने की बात है कि इन यात्रियों ने जिस भारत को देखा, वह द्वापर या त्रेता के भारत के सम्मुख उतना ही या उससे भी कंगाल है, जितना आज का भारत उन यात्रियों द्वारा वर्णित भारत के सम्मुख हीन। 'श्रीकृष्णचन्द्र ने पृथ्वी को छोड़ दिया!' इस वर्णन को भागवत में देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि परीक्षित् के समय ही कितना कंगाल, कितना दुःखी देश प्रतीत हुआ उस समय के लोगों को। पाण्डव देश की उस दुर्दशा को सह नहीं सके। धर्मराज सम्राट् युधिष्ठिर ने रोते हुये अनुमान कर लिया दीन-हीन देश को देखकर 'अवश्य श्रीकृष्ण-चन्द्र इस अभागिनी भूमि को छोड़कर स्वधाम चले गये!' उसी समय यह दशा हो गयी थी। और वह हीनतर होती ही गयी। विदेशी यात्रियों ने जो वर्णन किये हैं, वे लगभग चार सहस्र पीछे के नितान्त दरिद्र भारत के वर्णन हैं और वे वर्णन आज ऐश्वर्य की मूर्ति का परिचय देते हैं, तब द्वापर का भारत—कल्पना भी वहाँ तक पहुँच नहीं पाती।

हम आज स्थूलदर्शी हो गये हैं। हम पदार्थों को सत्य मानकर इतिहास को भूमि के भीतर ढूँढ़ने लगे हैं। पदार्थ भावरूप हैं और उनका आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है, यह बात हमारी समझ में ही नहीं आती। लेकिन जो सत्य है, वह हमारी भ्रान्ति से अन्यथा तो होने से रहा। पदार्थ भावरूप हैं—जब जगत् में दिव्य धर्मभाव का आधिक्य होता है, वे स्वतः प्रकट हो जाते हैं।

'गिरयोऽविभ्रदुन्मणीन्'—तब खनिज खोदने नहीं पड़ते और जब अधर्म का राज्य बढ़ता है, पदार्थ स्वतः तिरोहित हो जाते हैं। आज सहस्रों गज भूमि नाना स्थानों पर खोद ली गयी, पर स्वतःप्रकाश मणि, गजमुक्ता, चन्द्रकान्त आदि का अस्तित्व ही उपलब्ध नहीं है। मणिस्तम्भ की बात तो दूर, मुकुटों में लगाने को अच्छे रत्न गिने-चुने ही हैं विश्व में।

भारत में अन्न, फल, घी, दूध की तो तब भी राशि बिखरी थी, धारा प्रवाहित थी, जब विदेशी यात्री यहाँ आये थे। द्वापर के भारत में स्थित वैभव की कल्पना ही व्यर्थ है। मणि, स्वर्ण, रत्न, कोई मूल्य इनका रहा हो तो कदाचित् आज की मिट्टी से भी कुछ कम हो। लेकिन भारत में सम्पन्न और भिक्षुक के व्यवहार का अन्तर वैसा नहीं था, जैसा हम आज सोचते हैं। दासियाँ, दास सब गृह के सदस्य ही थे और गृह-सेवा, अतिथि-सत्कार, गोसेवा, देव-पूजन के लिये भूमि-सम्मार्जनादि कार्य तो किसी भी सम्राट् या सम्राज्ञी के लिये भी गौरवास्पद थे। कोटि-कोटि गोधन ही भारत का परमोपास्य धन था और सभी श्रेणी के लोग 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के पावन आदर्श को बुद्धि में ही नहीं, व्यवहार में भी देख सकते थे। प्रमाद, आलस्य, विलास—ये भारतीय जीवन में विदेशी सम्पर्क से ही प्रविष्ट हुए। सरल, उदार, श्रमशील, स्फूर्तिमय, ओजस्वी, सादा और साथ ही लोकोत्तर वैभव-सम्पन्न भारतीय जीवन, जो पुराणों में उपलब्ध होता है, वह अपने उज्वल उदात्त भाव से ही व्यक्त हुआ।

व्रज एक गोपावास ही था, आप यह कहें तो किसी को क्या आपत्ति होनी है। यह दूसरी बात है कि आज के विश्व का एकत्र वैभव भी व्रज के ऐश्वर्य के सम्मुख कंगाल ही है; परंतु वे मणि-सौध भी उस समय नगर नहीं बना पाये थे। उस समय के नगरों के सम्मुख व्रज गोपावास ही था। अवश्य ही भारत के परमाराध्य गोधन का वह केन्द्र नगरों के लिये भी स्पृहा की ही वस्तु था; क्योंकि तब धन का माध्यम धातु और पत्थर नहीं थे। वे तो पर्याप्त लुढ़कते रहते थे। धन का माध्यम थीं गायें और व्रज इस धन का सबसे महान् धनी था।

भौगोलिक स्थिति

सामाजिक स्थिति के समान ही भौगोलिक स्थिति भी हमें अनेक उलझनों में डाल देती है। सच्ची बात तो यह है कि वे लीलामय आते हैं अपने चिन्मय धाम में ही। उनके साथ उनका धाम भी आविर्भूत होता है। जैसे वे अचिन्त्य लीलाशक्ति के परम निवास हैं, उनके धाम की महिमा भी वैसी ही अतर्क्य है। उनका नित्यधाम भौतिक तो है नहीं, भले वह धरा पर व्यक्त हो गया हो। जैसे वे लीलामय नरवपु का नाट्य करते हैं, वैसे ही धाम भी भौतिक-सा लगता है; किंतु न तो इस नाट्य से भगवान् का श्रीविग्रह पाञ्चभौतिक होता और न उनका धाम। जैसे वे अपनी इच्छा से ही कभी द्विभुज और कभी चतुर्भुज होते हैं, कभी अपने मुख में निखिल ब्रह्माण्ड दिखला देते हैं, वैसे ही उनका चिन्मय धाम भी स्थूल देश प्रतीत होने पर भी ऐश्वर्यमय ही होता है। भगवान् जैसी लीला करना चाहते हैं, उसके अनुरूप वह संकुचित एवं विस्तीर्ण होता रहता है। कभी उसके एक कक्ष में कोटि-कोटि गौओं के साथ समूचा व्रज समा सकता है और कभी नन्दग्राम से गोवर्धन तक की दूरी कुछ क्षणों में ही पार हो जाय, इतनी अल्प हो जाती है। उस मणिभूमि में कहीं दर्पण-सदृश निर्मलता है और कहीं कन्हैया के लोट-पोट होने के लिये धूलि या कंधों तथा उदर पर नन्हे अरुण करों से डालने के लिये कीचड़ भी। उस दिव्य भूमि का वही रूप उस समय जब उसके अधिष्ठाता जैसी लीला करना चाहें।

अब स्थूल जगत् में व्रजभूमि की बात लें तो व्रज में गत पाँच सहस्र वर्षों में कितना भौतिक परिवर्तन हुआ है, कौन कह सकता है। गिरिराज गोवर्धन के अतिरिक्त वहाँ और तो कुछ स्थिर है नहीं। गिरिराज भी धीरे-धीरे भूगर्भ में चले जा रहे हैं। उनके अधिकांश भाग भूमि के बराबर हो गये हैं, यह सभी जानते हैं। ऐसी दशा में यह कैसे कहा जा सकता है कि द्वापर में गिरिराज का विस्तार एवं ऊँचाई का परिमाण क्या था।

"वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥"

—१०।११।३६

श्री मद्भागवत की यह वाणी स्पष्ट करती है कि श्रीगिरिराज नन्दग्राम और बरसाने से बहुत दूर नहीं थे। नन्दग्राम एवं बरसाने की वर्तमान पहाड़ियाँ गिरिराज के विस्तार के अङ्ग ही हैं, जो गिरिराज के धीरे-धीरे भूप्रविष्ट होने से अब पृथक् हो गये हैं। साथ ही श्री यमुनाजी भी नन्दग्राम, बरसाने के पास से ही प्रवाहित होती थीं। उनकी धारा तो हटती-बढ़ती रहती है। उनका प्रवाह हटता गया और फलतः उनके तट का वृन्दावन कालक्रम से इतनी दूर जा पड़ा। इस सुदीर्घ काल में धारा का इस प्रकार दूर हो जाना सहज सम्भाव्य है। गिरिराज एवं नन्दग्राम बरसाने के समीप अब भी झाऊ के झुरमुट मिलते हैं, जो सूचित करते हैं कि वहाँ कभी स्रोत था। स्मरण रखने की बात है कि झाऊ सरिता-तट पर ही होने वाला वीरुध् है।

गोकुल तो मथुरा के सम्मुख यमुना जी के उस पार अब भी है ही। वैसे पूरे चौरासी कोस के भीतर की भूमि है और यह पूरी ही भूमि पावन है। यहाँ श्यामसुन्दर ने अपनी अनेक दिव्य लीलाएँ की हैं। व्रजभूमि का तो स्मरण ही परम पावन है, अतः उस परम तीर्थ की महिमा में काल द्वारा हुए नगण्य परिवर्तनों की गणना भी क्या।

नाम-रूप-लीला-धाम की दिव्यता

यह ठीक है कि वे सच्चिदानन्दघन परात्पर परमपुरुष इस जगत् में नहीं आते, उनके साथ उनका चिन्मयधाम ही व्यक्त होता है और अपनी इच्छा से ही वे स्थूलजगत् के किसी स्थल में अपने धाम का सामञ्जस्य कर देते हैं; पर उन अनन्त का सम्पर्क-प्रभाव भी तो अनन्त है। उनके चिन्मय धाम से युक्त होने के कारण धरा का वह स्थल भी दिव्य अपार शक्तिमय हो उठता है और यह शक्ति सदा रहती है वहाँ।

"सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।"

—भागवत १०।१२।३९

उन सच्चिदानन्दघन की मनोमयी—कल्पित मूर्ति एक पल के लिये भी हृदय में स्पष्ट हो जाय तो भागवती गति—उनके नित्यधाम का निवास प्राप्त हो जाता है। उन परम सत्य की भावना भी सत्य ही होती है; फिर उनके नित्यधाम का धरा पर जहाँ आविर्भाव हुआ, वह भूमि क्या चिन्मय होने से शेष रह गयी। उस पारस के सम्पर्क से भी वहाँ क्या भौतिकता के दोष रह सकते हैं? वह तो धाम है और उसका अपार प्रभाव है। हमारे दूषित अन्तःकरण उस प्रभाव को अनुभव करें या न करें, वह तो है और जो भाग्यवान् वहाँ पहुंचते हैं, वे उस प्रभाव से परिपूत भी होते ही हैं। वे अनुभव न करें, यह सर्वथा भिन्न बात है।

वह परम दिव्य भगवद्धाम! पर सभी तो वहाँ पहुँच सकें, ऐसा सौभाग्य लेकर नहीं आये हैं इस मर्त्यधरा में। किंतु श्यामसुन्दर की नित्य दिव्य लीलाएँ—ये लीलाएँ तो हुई ही इसलिये कि भव के ताप-तप्त प्राणी उनके श्रवण, मनन, चिन्तन, कथन, पठन-पाठन आदि से अपने अन्तःकरण को पवित्र करें और वहाँ उस भुवनमोहन का वह त्रैलोक्य-विमोहन रूप प्रकट हो उसका दिव्य रूप, उसके मङ्गलमय परम पावन नाम, उसकी परम मङ्गलमयी लीलाएँ और उसका परम दिव्य धाम—इनमें जिसकी रति हो, इनमें से एक को भी जो अपना सके, वही धन्य है। कृतकृत्य है वह जीवन! समस्त देवता, समस्त लोक-पाल, समस्त भाव-जगत् के अधिष्ठाता कृपा करें! श्रीलीलाशुक के शब्दों में एक ही विनय है उनके चरणों में—

"साष्टाङ्गपातमभिवन्द्य समस्तभावैः, सर्वान् सुरेन्द्रनिकरानिदमेव याचे ।
मन्दस्मितार्द्रमधुराननचन्द्रबिम्बे, नन्दस्य पुण्यनिचये मम भक्तिरस्तु ॥"

श्रीकृष्ण-चरित

[पूर्वार्ध]

No. 403 मुरली मनोहर S. S. B.

माङ्गलिका

उपासतामात्मविदः पुराणं परं पुमांसं निहितं गुहायाम् ।
वयं यशोदाशिशुबाललीलाकथासुधासिन्धुषु लीलयामः ॥

—श्रीलीलाशुक

वह नन्दनन्दन, त्रिभुवनमोहन, यशोदाकुमार, मयूरमुकुटी, कमललोचन, मुरलीमनोहर, वनमाली, त्रिभङ्गसुन्दर, नवजलधरश्याम, केकीकण्ठाभनील, विद्युद्वसन, गोपाल—इसकी नित्य चिन्मय आनन्दघन, भुवनपावनी लीलाएँ—क्षीरसिन्धु में से महामन्थन के पश्चात् एक कलश मात्र अमृत प्राप्त हुआ, किंतु यह चिर-चपल—यह तो अमृत-सिन्धु का पल-पल सृजन करता है और इसका कथामृत—उस क्षीराब्धि से प्राप्त अमृत का भी कोई सागर बन पाता—उसे भी कोई शेषशायी अपने ही करों से मथता—उससे कोई सुधाकलश उत्थित होता उसका सारभूत—कहना कठिन ही है कि वह भी इस व्रजेन्द्रनन्दन के सुकुमार सौन्दर्यमय चपल-चरितों की मधुरिमा पाता या नहीं।

श्रुति कहती है—हृदय-गुहा में—अन्तर के मूल केन्द्र में एक सूक्ष्मतम अधोक्षज ज्योति है। चिन्मय, आनन्दमय, निर्विकार, एकरस शान्तज्योति। आत्मतत्त्ववेत्ता समाधि के द्वारा उसी का अपरोक्ष साक्षात्कार करते हैं। वह ज्योति—वह ज्ञानघन प्रकाशरूप, वही तो परमपुरुष, शाश्वत—पुरातन अध्यात्म के अन्वेष्य अवाङ्मनसगोचर चिन्मय तत्व हैं। बात ठीक; किंतु कदाचित् कन्हैया की नखमणिचन्द्रिका की अस्पष्ट किरणें ही हैं वे। यदि ऐसा न होता—अध्यात्मतत्त्व, अध्यात्मशास्त्र के परमप्रेरक भगवान् शङ्कर, परम वीतराग सनकादि—क्या पड़ती है इनको कि वे अपनी हृदय-गुहा में भी इसी चिर-चपल के श्रीचरण स्थापित करने का सतत प्रयत्न करते हैं उस नित्योपलब्ध अधोक्षज ज्योति को भूलकर। भला, महर्षि शुकदेव तो हैं ही इस नटनागर के लीला-शुक और देवर्षि तो नित्य पथिक हैं, वे समाधि न लगावें तो कोई बात नहीं, वे स्वयं चञ्चल हैं, अतः उन्हें यह महाचपल बहुत प्रिय है—पर भोले बाबा, वे शशाङ्कशेखर, मुण्डमाली, भुजगभूषण, वीतरागमुकुट-मणि, गङ्गाधर, योगीश्वर, विश्वनाथ—उनको क्या हो जाता है? वे क्यों इसके चिन्तन, वर्णन, गुण-गान में अपनी सहज समाधि को विस्मृत होकर गद्‌गदकण्ठ, पुलकितवदन, प्रेमाम्बुपूर्णनयन, विभोर होते हैं? यह कनूँ—यह गोविन्द—है ही यह ऐसा। क्या पता इस नवनीत चोर को किस-किसके परम परिशुद्ध, उज्ज्वल, स्नेह-स्निग्ध हृदय रुचे और इसने चुरा लिया धीरे से—उज्ज्वलता और स्निग्धता हो तो यह चुराये बिना मानता जो नहीं।

> *"यावन्निरञ्जनमजं पुरुषं जरन्तं*
> *संचिन्तयामि मनसा जगति स्फुरन्तम् ।*
> *तावद् बलात्स्फुरति हन्त हृदन्तरे मे*
> *गोपस्य कोऽपि शिशुरञ्जनपुञ्जमञ्जुः ॥"*

कोई करे भी क्या, जन्म-जन्मान्तर के पुण्य प्रयत्नों से परमार्थ में रुचि हुई, सतत साधन के चिरकालीन अभ्यास ने अन्तर को उज्ज्वल किया। कालिमा का सूक्ष्मतम कण तक जब बाहर हुआ—उसमें हृदय-गुहा की वह दिव्य ज्योति प्रकट हुई। यहाँ तक तो ठीक—कोई उस चिन्मय तत्व में ही आत्माराम रह सके तो कोई बात नहीं, किंतु वह चिद्घन क्या आनन्दघन से पृथक् है—आनन्द का उद्रेक और परम प्रेम नाम ही तो दो हैं ये। उज्ज्वल अत्यन्त स्नेह स्निग्ध हुआ और नवनीत-चोर दबे पैर पहुँचा। युग-युग के प्रयत्न से सब प्रकार की समस्त कालिमा को बलात् पृथक्

[illegible] धारा—वह अपने प्रवाह को ही जीवन कहे तो क्या उपाय। कोई मृत्यु के कराल मुख की ओर ठेलते ढकेलते क्षणों को ही जीवन-क्षण समझे—प्रायः यही क्षण जीवन-क्षण कहे जाते हैं—क्या उपहास है इस भ्रमपूर्ण स्थिति का। जीवन-क्षण—जीवन तो इस केलीकलाकुशल व्रजेन्द्र-कुमार में है! इसके स्मरण के क्षण—जीवन के अमर क्षण—वे ही वास्तविक जीवनक्षण हैं।

'क्या सहज सरल हैं वे जीवन-क्षण? यह त्रिभङ्गसुन्दर, चिरचञ्चल, क्या मानस में यों ही आता है? मानस—कितना दुर्बल, कितना भोगासक्त, कितना विकृत मानस है और यह कन्हाई, यह [illegible] स्निग्ध नवनीत का प्रेमी? लेकिन इसके चरित—इसका यह अनन्त सौन्दर्य, इसकी अमर्त्य माधुरी—एक बार यह आ गया मानस में और फिर आ गया। विकार—प्रलोभन-आकर्षण, चुनौती सबको! अपनी दुर्बलता? छिः! श्याम है न, उसकी मधुरिमा से भी कुछ और लोभनीय है? सब आवेंगे—विनोद उत्थित करेंगे और स्वतः थकित होकर निवृत्त हो रहेंगे। मोहन की एक झाँकी, वह एक जीवन-क्षण—प्रकाश की एक नन्हीं किरण—युग-युग का अन्धकार भी क्या उसे आच्छादित कर सकता है?

> *"ते ते भावाः सकलजगतीलोभनीयप्रभावा-*
> *नानातृष्णासुहृदि हृदि मे काममाविर्भवन्तु।*
> *वीणावेणुक्वणितलसितस्मेरवक्त्रारविन्दा-*
> *न्नाहं जाने मधुरमपरं नन्दपुण्याम्बुपूरात्॥"*

कल्पना—मेरी कल्पना, जब मानव निरन्तर कल्पना ही करता है, जब वस्तुतः सभी जीव कौशेय-कीट की भाँति सदा कल्पना के अपने सूत्र में अपने को बाँधकर मूर्छित करने के प्रयास में ही हैं—मेरी प्रकाश की, उस परित्राण के पावन नीलोज्ज्वल प्रकाश की कल्पना ही क्या अनन्त विराट में निराधार रह सकती है।

असत् की कल्पना—असत् की आकाङ्क्षा जीवन को जगती में—असत् में युग-युग से आबद्ध किये है और सत् की—उस सुकुमार सत् की आकाङ्क्षा, उस शाश्वत श्याम सत् की कल्पना आस्था प्राप्त करके स्थिर—धन्य होने में असमर्थ ही रहेगी?

कल्पना और यथार्थ—पर एक ऐसा भी भाव है, जहाँ हमारा यह दृश्यमान यथार्थ ही कल्पना हो उठता है। जिसकी उज्ज्वल नखमणिचन्द्रिका के आलोक में ही कल्पना मूर्त—यथार्थ होती है। वह भावमय—किसी भी कल्पना का उत्थान क्या उसका आलोक पाये बिना अन्धकार में ही होता है?

कनूँ—मेरे अच्छे कनूँ, मेरी कल्पना ही क्या तेरा यथार्थ नहीं बन सकती? तू उसे अपने श्रीचरणों में सार्थक तो हो जाने दे! भैया, तेरे अरुण मृदुल किसलय-कोमल परम चपल कर—तू अपने आप साज-सम्हाल और सत्य तो तेरी स्वीकृति का ही दूसरा नाम है न?

श्याम, तेरे चारुचरित—किसे पता है कि तू कब क्या करता है और कर सकता है। तूने क्या किया है—भगवती वीणापाणि और भगवान् शशाङ्कशेखर के अमल मानस भी क्या उसे अपने में ही अङ्कित कर पाते हैं? कोई क्या इसी से तुझे छोड़ देगा? तुझे छोड़ दे—कहाँ जावेगा, कहाँ पायेगा यह स्निग्ध अनन्त माधुर्य? तू है ही पूरा नटखट, पूरा अद्भुत, पूरा विचित्र—यह सखाओं द्वारा वनधातुओं से चित्रित तेरा श्रीअङ्ग—लेकिन तू इससे भी विचित्र है और चरित—फिर भला, तेरे चरितों का क्या कहना!

तुझे छोड़कर रहा तो नहीं ही जा सकता—जीवन में तो कोई रह भी ले, मन में जब तुझे छोड़कर रहा जाय—मृत मानस है वह। मन में तो तुझे लेकर ही आत्माराम आप्तकाम महापुरुष रहते हैं, ऋषि-मुनि-सिद्ध रहते हैं और सनकादि, देवर्षि तथा भगवान् शंकर रहते हैं। मृत्यु से जीवन की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, पतन से उत्थान की ओर मुख फेरने का अर्थ ही

है इस हमारे दृश्य यथार्थ से तेरी ओर—सभी 'अन्तर्मुखता के अभ्यासी मन में तुझे ही तो बसाना चाहते हैं। सभी की अभीप्सा तो एक झाँकी—एक झलक के लिये ही आतुर होती है।

मन—मन तो कल्पना करता है, कल्पना किये बिना वह रह जो नहीं सकता। मोहन—तू आ, तू मेरी कल्पना को यथार्थ करता आ! कहते हैं इस मन को कल्पना—तेरी, तेरी कल्पना और तू—तू मेरी कल्पना को स्वीकृति देता चल! तुझ से लगकर—तेरी कल्पना कहलाकर भी कुछ असत् रहेगा—रह सकता है?

मेरी यह माङ्गलिका—श्याम, जानता है न, यहाँ भी कुछ इच्छा है, कुछ बात है—कुछ बात। और तू उसकी उपेक्षा कर सकेगा? तुझे उपेक्षा करना आता है? देख, मैं जय गणेश! जय सरस्वती भगवती! कहकर अब कहने चला हूँ—

"भासतां भवभयैकभेषजं मानसे मम मुहुर्मुहुर्मुहुः।
गोपवेषमुपसेदुषः स्वयं यापि कापि रमणीयता विभोः॥"

गोकुल

"श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः ।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥"

गोकुल—गोकुल और गोलोक, पर्यायवाची ही तो हैं दोनों। नाम में, अर्थ में और स्वरूप में भी गोकुल अपने गोलोक का ही पर्याय है। परात्पर नित्य जगत् का जब वह लीलामय अधिष्ठाता अभी बीते इस श्वेतवाराह कल्प के अट्ठाईसवें द्वापर के अन्त और हमारे इस कलियुग के प्रारम्भ के संधिकाल में इस धरणी को धन्य करने चला—वह क्या कभी प्राकृत जगत् में आता है? वह आता ही अपने दिव्यधाम, दिव्यभाव, दिव्यरूप में है। उसका वह दिव्यधाम—वह गोलोक उससे पूर्व ही धरा के प्राकृत जगत् को आत्मसात् करके मूर्त हो गया। कालिन्दी का वह वामकूल, वह बृहद्वन धन्य हो गया। वह गोकुल—गोलोक मूर्त हो गया था वहाँ और फिर उसके पादपपुञ्ज, लताकुञ्ज, तृण-दल, पशु-पक्षी, कीट-भृङ्ग, नर-नारी, बाल-वृद्ध—वह नित्य जगत् ही तो मूर्तिमान् हो गया था वहाँ।

नित्यलीला के नित्यपरिकर पधारे, उस लीला के उच्चतम अधिकारी पधारे, उत्कट अभीप्सु पधारे और—और युग-युग की श्रुतियों की कामना सफल हुई। उनका चिरन्तन लक्ष्य उनके मध्य आवेगा—वे व्रजदेवियों में पधारें नहीं तो क्या यह सुयोग पुनः प्राप्त होने को है। मुनियों के मञ्जु मानस, साधनपरिशुद्ध--स्नेहस्निग्ध अन्तर इस गोकुल के तृण, लता, कुञ्ज, भृङ्ग, कीट, पक्षी, मृग, मर्कट आदि के रूप में तृप्त होने—कृतार्थ होने को मूर्त हुए हैं।

गोलोक या गोकुल—चाहे जो नाम दीजिये इसे, है यह गौओं का अपरिमित गोष्ठ—गौओं का, उन गौओं का जिनकी चरणरेणु कामधेनु का सर्जन करती है, जिनकी हुंकृति में श्रुतियाँ सार्थक होती हैं और जिनका धवल क्षीर क्षीरसागर-शायी को भी पिपासु—उत्कण्ठित पिपासु बना देता है। यह नन्दिनी, कपिला, श्यामा, भद्रा का गोकुल—अमल धवल प्रेमाश्रुओं के द्वारा ही इसका कण-कण घनीभूत हुआ है। युग-युग की अनन्त साधना, कल्प-कल्प की उन्मद अभीप्सा अन्तर में संचित किये आकुल हृदय ही यहाँ इन विविध रूपों में आ पाये हैं और इनके मध्य—इनके मध्य ये चिद्घन, आनन्दघन नित्यप्रेमघन श्याम के ये शाश्वत परिकर—इनके आये बिना क्या वह लीलामय आ सकता है?

गोकुल भूमि पर मूर्त हुआ—भूमि की अल्पता उसे आबद्ध तो करने से रही; किंतु भूमि-वासियों की अल्पता की भी एक प्रतीति है और हमारी इसी प्रतीति में वह गोकुल है। गोकुल—जैसे वह नित्यधाम धरा पर आकर गोकुल हो गया है, धरा को धन्य करने के लिये वह धरा के अनुरूप, उसके इस प्रान्त को आत्मसात् करके भी तदाकार हो गया—वैसे श्रीव्रजराज और श्रीव्रजेन्द्र पट्टमहिषी—बाबा और मैया—जब श्याम को आना है तो उन्हें तो पहले ही आना चाहिये न?

गोलोक इस धरा पर—भगवान् ब्रह्मा की इस सृष्टि में तदनुरूप साकार हुआ—गोलोक के अधिपति को भी तो स्रष्टा का मानवर्धन करना ही चाहिये। बाबा और मैया—श्याम की नित्य लीला, वह मोहन का शाश्वत धाम और वहाँ बाबा और मैया की शाश्वत उपस्थिति न हो तो लीला चलेगी कैसे? लेकिन गोलोक आज गोकुल हो गया है! धरा के एक भाग का रूप लेकर ही मूर्तिमान् हुआ वह, तब स्रष्टा की कला को भी कृतार्थ होना चाहिये।

सृष्टि के आदि में वसुश्रेष्ठ द्रोण और उनकी पत्नी भगवती धरा ने भगवान् पितामह के पावन पदों में प्रणिपात किया 'प्रभो, आप कहते हैं कि हम सृष्टि का अभिवर्धन करें; आपकी आज्ञा अनुलङ्घनीय है; किंतु—किंतु जब आप हमें सृष्टि में ही लगाते हैं तब हमें आशीर्वाद दें, परात्पर प्रभु जब भूमि पर प्रकट हों, हमारा वात्सल्य उनमें अविच्छिन्न हो !'

अच्छा वरदान है, बड़ी उत्तम प्रार्थना है—पर भगवान् ब्रह्मा के आठों नेत्र एक क्षण को बंद हो गये। वे ध्यानस्थ-से हुए और जैसे स्वतः उनके मुख से निकल गया हो-'एवमस्तु !' एक क्षण को स्वयं वे कमलासन चौंके—यह हुआ क्या ? उस साधनातीत को क्या प्रदान किया जा सकता है ? लेकिन स्रष्टा की वाणी तो अज्ञान एवं असत्य का आश्रय नहीं करती। पितामह ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका लिया—जो उस अचिन्त्य अपरिमेय लीलामय की इच्छा !

भगवान् द्रोण और भगवती धरा—कम से कम स्रष्टा की दृष्टि में तो गोकुल में यही व्रजाधिप नन्दराय और श्री यशोदा हो रहे हैं इस द्वापर के अन्त में। बाबा ने अपने अंश को आत्मरूप दे दिया—भगवान् द्रोण उनमें एकीभूत हो गये, जैसे सागर का जल-कण पुनः उसमें आ मिला हो और मैया का ही अंश तो धरा में आता है। उसी के वात्सल्य, क्षमा के अपार सागर के सीकर तो निखिल सृष्टि की माताओं में स्नेह का आविर्भाव करते हैं; पर यह बात स्रष्टा की ज्ञानसीमा से परे है और इसी भाँति हमारी ज्ञानसीमा से परे है यह गोलोक का मूर्तरूप।

× × ×

गोकुल—मथुरा के ठीक सम्मुख श्री यमुनाजी के दूसरे तट पर बसा यह गोकुल, वहाँ असंख्य गायें और उनके संरक्षक गोपगण। गोकुल के अधिपति श्रीव्रजेन्द्र और मैया—मैया यशोदा—बस ! यह सीधी-सादी बात ही समझ में आ जाय तो बहुत। हम अपने गोकुल की ही बात करें।

महाराज ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश में महाराज दशार्ह की परम्परा में महाराज वृष्णि इतिहास-प्रसिद्ध हैं। वृष्णि-वंश में विदूरथपुत्र महाराज देवमीढ़ की वंश-परम्परा मुख्य-रूप से द्विधा हो गई। महाराज देवमीढ़ की दो पत्नियों में एक क्षत्रियकन्या और एक वैश्यकन्या थीं। क्षत्रियकन्या के द्वारा उनके पुत्र हुए शूर और इन्हीं महाराज शूर की पत्नी मारिषा के हुए महाभाग श्री वसुदेवजी। महाराज देवमीढ़ की दूसरी पत्नी जो वैश्यकन्या थीं, उनके पुत्र पर्जन्यजी हुए। वैश्यकन्या के पुत्र होने के कारण पर्जन्यजी गोप माने गये। महाराज देवमीढ़ ने उन्हें मथुरा-मण्डल का व्रजाधिप निश्चित किया। इस प्रकार भारत में यादव-राजधानी मथुरा में यह नवीन परम्परा प्रारम्भ हुई कि राज्य के समस्त गोधन का आधिपत्य नरपति के हाथ में नहीं रहा। पर्जन्यजी ने श्री यमुनाजी के दूसरे तटपर अपना केन्द्र बनाया। उनका गोष्ठ-केन्द्र—उनका गोकुल मथुरा से कम वैभवशाली, शक्तिशाली नहीं रहा। गोधन—भारत का सर्वश्रेष्ठ धन जिसका अपना हो, उसके वैभव, उसके ऐश्वर्य की शोभा और महत्ता स्पर्धा से परे है।

शास्त्र नहीं कहते कि क्षत्रिय के अतिरिक्त कोई और भी शासन-दण्ड सम्हाले। अपने वर्णाश्रमाचार का पालन ही कल्याणप्रद है। मथुरा यदु-राजधानी है—गोकुल उससे अमर्ष करे क्यों। अन्ततः मथुरा-नरेश व्रजाधिप के बन्धु ही तो हैं और वह बन्धुत्व—उसमें अधिकार का मद तो पीछे—बहुत पीछे आया।

व्रजाधिप पर्जन्य की पट्टमहिषी वरीयसी ने पाँच कुमार प्राप्त किये, पञ्चम पुरुषार्थ ही उनकी गोद में जैसे पञ्चधा हो गया हो। उपनन्द, अभिनन्द, संनन्द, नन्द और नन्दन। नन्दिनी और सुनन्दा—दो कन्याएँ भी आयीं उनकी पावन गोद में। गोष्ठाधिपत्य कोई साम्राज्य नहीं, जो वंश-परम्परा से ही चले और ज्येष्ठ पुत्र को ही प्राप्त हो। गोकुल के गोप—वे सहयोगी, सहकर्मी, सहधर्मी ही नहीं—भ्राता होते हैं। उनकी समिति ही अपना अधिपति चुना करती है। गोकुल के गोपों ने व्रजाधिप के मध्यम कुमार नन्दराय को अपना अधिपति चुन लिया। बड़े भाई उपनन्द और अभि-नन्द तो प्रस्तावक और समर्थक ही थे और तब भला, छोटे भाई क्या उस उल्लास में योगदान करने से पीछे रह सकते थे।

वह दिन--उल्लास, आनन्द, उत्सव का वह दिन ब्रज में क्या विस्मृत होने को है कभी--उस दिन ब्रजाधिप पर्जन्य ने श्रीनन्दराय के मस्तक पर अपनी पगड़ी बाँधी, बड़े भाइयों ने दण्ड लेकर दोनों पार्श्वों में उपस्थिति ग्रहण की और छोटे भाइयों ने पृष्ठभाग में रक्षा का भार लिया। वृद्ध गोपों ने आशीर्वाद दिया। तरुणों ने अभिवादन किया और युवकों ने जयनाद से गगन गुञ्जित कर दिया। महर्षि शाण्डिल्य का वेदपाठ और विप्रों के स्वस्तिवाचन--सब परिपूत-से हो गये उस दिन।

माता पाटली की प्राणप्रिय कन्या, महागोप सुमुख की जगत्पावनी पुत्री और बाबा पर्जन्य की शीलमयी पुत्र-वधू--आज ब्रजेश्वरी बनी वह। बड़ी जेठानी तुङ्गी ने उसे स्नान कराया, छोटी जेठानी पीवरी ने पट्टवस्त्र दिये, देवरानी कुवला ने आभरण अङ्गों में सजाये और छोटी देवरानी अतुला--वह अनुजा-सी तो आज पदों में लाक्षाद्रव सज्जित करते तुष्ट ही नहीं होती। यशोदा--ब्रजेश्वरी यशोदा--और सचमुच ब्रज का सौभाग्य-सुयश उस ब्रजेश्वरी का दान ही तो है।

आज श्रीनन्दराय ब्रजेश्वर हो गये। आज उनका अभिषेक हो गया है। ब्रजाधिप--गोकुल तो ब्रजाधिप का अपना गोष्ठ है। वे तो मथुरा-मण्डल के--पूरे चौरासी कोस ब्रजमण्डल के अधिपति हैं। पूरा ब्रज उनका है--उनका अपना ही परिवार तो है। श्रीपर्जन्य जी से बरसाने के अधिपति श्रीमहीभानु जी की प्रगाढ़ मैत्री रही है और जब श्रीनन्दराय जी ब्रजेश्वर हुए--श्रीवृषभानुजी बरसाने के अधीश्वर को लगा, वे स्वयं ही गोष्ठेश्वर हो गये हैं। वे स्वयं ब्रजपति हो गये होते तो इतने आनन्दित हो पाते--कहना कठिन ही है। श्री नन्दरायजी से उनकी बालमैत्री है। दोनों कुमारावस्था के सखा और किशोरावस्था के सहपाठी हैं। बरसाना--ब्रज में वही तो गोकुल के पश्चात् सर्वश्रेष्ठ गोष्ठ है। ब्रजपति का तिलक बरसाने के स्वामी के करों से ही तो साङ्गता प्राप्त करता है और साङ्गता का प्रश्न ही कहाँ रहा, जब वृषभानुजी ने दण्ड लेकर ब्रजेश्वर के अभिषेक में हठात् संनन्दजी के साथ पृष्ठरक्षक का स्थान लेकर सबको चौंका दिया। चौंका तो दिया वृद्ध महीभानुजी ने--सबसे प्रथम उपहार वे आवेदित करेंगे--आशा किसे थी। उन्हें तो ब्रजपति अभिवादन करते पितृपदों में प्रणत होने के साथ और वे आशीर्वाद दे देते; किंतु--किसे पता था कि वे इस प्रकार तिलक क्रिया सम्पन्न होते ही स्वयं इतनी शीघ्रता से उठेंगे और उनका उपहार--उसकी परिगणना कौन करे! उन्होंने तो उपहार के निश्चित नियम एक ओर ही रख दिये। अमूल्य रत्नराशि, अपार गोधन और यह वस्त्राभरण--यह तो प्रथा नहीं है। प्रथा तो केवल उपहार का नाम करने की है--एक पात्र दधि और बस! ब्रजपति क्या कर लेते हैं? प्रेमोपहार--प्रथापूर्ति; किंतु जब स्नेह सीमाओं को अतिक्रान्त कर उमड़ता है, कौन उसे वारित कर सकता है। 'ब्रजेश, यह भी तुम्हारा एक अनुचर है--इसे अपनाये रहना' स्नेहगद्गद-स्वर पिता का संकेत पाकर जब सचमुच वृषभानुजी ने मस्तक झुकाकर चरण-स्पर्श ही करने का प्रयत्न किया--श्रीनन्दराय ने कब उनको उठाकर हृदय से लगा लिया--यह देखना कुछ सहज नहीं था। सभासदों के नेत्र स्नेह-सिक्त हो गये--जब ब्रजपति ने अविलम्ब श्री महीभानुजी के पदों में जब मस्तक रक्खा और जब उन पूज्य ने चुपचाप उठाकर हृदय से लगा लिया उन्हें। वाणी आशीर्वाद दे--क्या आवश्यकता इसकी और इतनी शक्ति आवे भी कहाँ से। सच्चा अभिषेक तो अब हो रहा है। नेत्रों की इस स्नेह-सुधा से किस तीर्थोदक की तुलना की जाय।

× × ×

श्रीनन्दराय--ब्रजेश्वर श्रीनन्दराय--जैसे ब्रज नवीन हो गया एक ही दिन में। ब्रज और ब्रजपति--सदा ही यह बन्धुत्व का ही सम्बन्ध रहा है। ब्रज का प्रत्येक गोष्ठ, गोष्ठ का प्रत्येक गोप ब्रजपति के लिये जीवनोत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहा है और ब्रजपति--ब्रजपति ने ही कब जाना है कि उनका भी कोई गोष्ठ है, उनका भी कोई गृह है। उनके लिए प्रत्येक गोष्ठ, प्रत्येक गृह अपना ही रहा है; किंतु अब--अब तो बात ही अद्भुत हो गई है। पता नहीं क्या हो गया है--गोपों को

लगता है, उनके गोष्ठ उनकी अपेक्षा व्रजपति के अधिक स्नेह-भाजन हैं। अब तो अपना गोष्ठ, अपना गृह, अपना शरीर—जैसे सब एक कोटि में आ गया है और प्राण—प्राण तो इन शरीरों में नहीं—वह तो व्रजपति के रूप में साकार हो गया है। व्रजपति—भला, ऐसा भी कहीं किसी ने कोई अधिपति पाया होगा—उन्हें अपने गृह और गोष्ठ का पता ही नहीं। व्रजेश्वरी स्वयं गोष्ठ न सम्हालें तो बहत्तर कोटि गायों का बन्धन कैसे होगा—जैसे वे सोच ही नहीं सकते; किंतु गोकुल ही नहीं, पूरे व्रज में, व्रज के एक-एक गोष्ठ में, एक एक गोप के यहाँ कितनी गायें हैं, उनके प्रतिमास कितने बछड़े होते हैं, किसके गोष्ठ में किन-किन रंगों की गायें हैं, किस गौ या वृषभ की क्या विशेषता है, किस बछड़े या बछड़ी की विशेषता कैसे बढ़ायी जाय—जैसे सब वे वहीं बैठे प्रत्यक्ष देखते-से रहते हैं। पशुओं के जल, तृण, सेवा, स्थान आदि का प्रबन्ध गोप भला, क्या करें ? वे कुछ सोचें—इससे पूर्व तो व्रजपति का आदेश उसे सम्पन्न भी करा देता है।

किसी के घर जन्म, गोचारण, विवाह—कोई मङ्गलकृत्य होनेवाला है—इतना बड़ा व्रज, नित्य महोत्सव ही रहता है उसमें। गोप सोचते ही रह जाते हैं—व्रजेश्वर को आमन्त्रित करने का सौभाग्य मिलेगा उन्हें, कहाँ—व्रजाधिप तो आमन्त्रण से बहुत पूर्व स्वयं आकर महोत्सव का प्रबन्ध ले लेते हैं। व्रज में वे ही तो कुलपति हैं। सभी गृहों के विशेष प्रबन्ध वे कैसे सम्हाल लेते हैं—वे ही जानें।

ये गोप—ये कदाचित् सोते समय स्वप्न भी यही देखते होंगे कि व्रजराज की कौन-सी सेवा वे कर सकते हैं। यह गौ सुगन्धित दूध देती है, यह वृषभ अत्यन्त पुष्ट और सरल है, यह बछड़ी पञ्चचिह्नों से सुचिह्नित है, यह अश्व तो श्यामकर्ण है, यह मणि तो नन्दभवन में ही शोभित होगा—ये बड़े उपहार ही नहीं, फल, पुष्प, दल—छोटे-बड़े का प्रश्न ही कहाँ है। ऐसा क्या पदार्थ है, जो व्रजेश को देने के समय कुछ भी महत्वपूर्ण प्रतीत हो। पर ये गोप—इन्हें तो कहीं विशेषता भर दृष्टि पड़ जाय—'यह तो नन्दराय को देना है'—ये उसी समय दौड़ेंगे और व्रजपति—वे कैसे किसी के स्नेह को अस्वीकार कर दें। यह दूसरी बात कि उपहार के बदले उससे शतगुणित उपहार उसके घर पहुँच जाता है।

ये गोपियाँ—ये तो पुरुषों से भी आगे ही रहना चाहती हैं। सब कहीं तो अनुगामिनी हैं और व्रजेश्वरी की सेवा—भला, यह भी पीछे रहने की बात है। गोप कुछ घर लाते हैं और इन्हें सूझती है—'यह तो व्रजरानी के उपयुक्त है।' गोप भी तो प्रोत्साहित ही करते हैं। यह नव-तरु का फल है, यह प्रथम नवनीत है गाय के बछड़ा देने के पश्चात् और जो मैके से ये उपहार आये हैं—जैसे व्रजरानी को दिये बिना कुछ काम में लेने योग्य हो ही नहीं सकता। कोई करे भी क्या—कोई दिन तो ऐसा नहीं बीतता, जब नन्दभवन से उन व्रजेश्वरी का कोई न कोई उपहार प्रत्येक गृह में न पहुँच जाता हो। आज नागपञ्चमी है, आज तृतीया है, आज गणेशोत्सव है—श्रीव्रजपति के महोत्सवों की भी कोई गणना है और भला, ऐसा भी महोत्सव कैसे हो सकता है जब कम से कम गोकुल के नर-नारी भी नन्दभवन में भोजन न करें। व्रजेश्वर की चले तो पूरा व्रज प्रत्येक महोत्सव में आवे और व्रजेश्वरी तो समझ ही नहीं पातीं कि प्रत्येक महोत्सव में सब गोष्ठ क्यों नहीं आ सकते; किंतु दूरस्थ गोष्ठों की सुविधा, उनके अनुनय का सङ्कोच भी तो रखना ही पड़ता है। मास में दो-एक बार वे एकत्र हो जाते हैं यहाँ, यही क्या कम कृपा है सबकी।' व्रजपति को किसी प्रकार संतोष करना पड़ता है।

× × ×

'श्रीव्रजराज के कुमार होता' बड़ी तीव्र लालसा है व्रज की। लालसा—उत्कण्ठा—अभीप्सा—आतुरता, दिन बीते, मास बीता और मास व्यतीत होने लगे। लालसा—यह तो कब की आतुरता बन चुकी और अब तो आराधना चलने लगी है। गोप भगवान् सूर्य को अर्घ्य

दे करके प्रार्थना करते हैं, गोपियाँ तुलसी के समीप सायंकाल दीपक रखकर अञ्चल फैलाती हैं, गायों के पर्दों में पुष्पाञ्जलि देकर प्रत्येक गोष्ठ में प्रत्येक अन्तर बड़ी आतुर भावना से माँगता है--'व्रजराज को एक कुमार !'

ये नन्दराय--कहने पर भी ये कोई अनुष्ठान कहाँ करते हैं। ये तो बहुत आग्रह करने पर हँस देंगे और कह देंगे--'श्रीनारायण प्रसन्न रहें, यही क्या कम है।' व्रजरानी - यशोदाजी--ये पति से अधिक सन्तोषी, उन्हें कौन क्या सिखावे। इनके लिये तो बस, व्रजपति प्रसन्न रहें--एक ही प्रार्थना जैसे विश्व में बनी ही है।

'श्रीनन्दराय के केशों में उज्ज्वलता दर्शित होने लगी, गोपों की आकुलता बढ़ गई। क्या उन्हें युवराज प्राप्त नहीं होगा ? 'व्रजरानी का शरीर तो कुछ स्थूल हो चला !' गोपियों की प्रार्थना ने व्रत का रूप ले लिया। गोपों ने अनुष्ठान आरम्भ कर दिये। समस्त गोकुल—पूरा व्रजमण्डल एक युवराज चाहता है--न चाहें व्रजराज, न करें प्रार्थना व्रजेश्वरी--पूरे व्रज की प्रार्थना, वर्षों की आराधना, व्रत, अनुष्ठान--वे श्रीनारायण क्या इतनी उपेक्षा कर देंगे ? उन्हें एक युवराज चाहिये--युवराज !

× × ×

इधर गोकुल पर वे सर्वेश्वर, दयामय श्रीनारायण परम प्रसन्न हैं; नहीं तो क्या ये मूर्तिमान् तप—ये महर्षिगण, कहीं इस प्रकार कृपा करते हैं ? अब तो अनेक तापसों ने समीप ही आश्रम बना लिया है। अनेक तपोधन, श्रुतिपारंगत, लोकप्रतिष्ठित विप्रवर्य स्वतः गोकुल चले आये हैं और नित्य इस प्रकार के अतिथि श्रीव्रजराय पर कृपा करने पधारते हैं—किसका पुण्य है इतना महान्, जो व्रजराय से स्पर्धा करे इस सौभाग्य में।

आज ये कोई तापसी पधारी हैं। ये तपस्विनी—ये मानवी हैं ? महाशक्ति जगदम्बा इस वृद्धा तपस्विनी के रूप में नहीं पधारीं—कैसे विश्वास हो ! इतना तेज—इतना प्रभाव मानव तो क्या, देवता में भी क्या शक्य है ? समस्त अन्तःपुर ससम्भ्रम खड़ा हो गया। श्रीनन्दरानी ने उनके चरणों में मस्तक रक्खा, अञ्चल फैलाकर।

'मङ्गल हो !' ओह, इतना स्निग्ध, इतना कोमल, इतना वात्सल्यपूर्ण स्वर ! स्नेह के कारण आशीर्वाद जैसे गद्‌गद कण्ठ में ही रह गया हो। ये उज्ज्वल रजतमय केश, यह तेजोमय बलीवलित गौरवर्ण शरीर और यह भुवन का परम प्रेम प्रदान करती वाणी—जगज्जननी, भगवती अखिलेश्वरी ही आर्या हैं, इसमें गोपियों की और व्रजरानी का अब कहाँ संदेह है।

'माँ, श्रीचरणों से यह सेविका का गृह कुछ काल पवित्र हो और मुझे सेवा का सौभाग्य मिले !' श्रीयशोदा जी ने चरण धोये, अर्चा की विधिपूर्वक और अन्त में प्रार्थना की। आज कितना अहोभाग्य है उनका, इस भव्य रूप में कितनी प्रसन्नता से भगवती ने उनकी पूजा स्वीकार की है।

'ना, मैया ! तू मुझे इस प्रकार टाले तो मैं टलने से रहा !' भगवती के साथ यह जो सुन्दर, सुघर सुकुमार बालक है पाच-छः वर्ष का—कितना चपल, कितना भोला है। व्रजरानी का वात्सल्य तो इसे देखते ही उमड़ पड़ा था। वे तो संकोचवश ही उससे अबतक सम्मान का व्यवहार करती रही हैं। हृदय तो कहता है, उसे अङ्क में ले लो। वह उनके अर्पित नैवेद्य का कितना प्रसन्न होकर भोग लगा रहा है; पर वह मैया किसे कहता है ? वह क्या भगवती का पुत्र है ? लेकिन वह तो व्रजेश्वरी से कह रहा है—'मैया, मैं तेरा नवनीत छोड़कर अब कहीं जाने से रहा ! मैं तो यहीं रहूँगा—बस, यहीं रहूँगा।'

'मधुमङ्गल तनिक चपल है !' अच्छा, तो इसका नाम मधुमङ्गल है ! भगवती ने व्रजरानी के इस भाव को बोलते ही लक्ष्य कर लिया। उन्होंने परिचय दिया—'मुझे लोग पूर्णमासी कहते हैं और यह अवधूत वृत्ति से रहनेवाला बालक मधुमङ्गल है। योग के प्रभाव से हम लोग सदा

इसी वय में रहते हैं। यह चपल है, विनोदी है; पर कहता सच है। मैं स्वयं व्रजराज से प्रार्थना करने आयी हूँ कि मेरे लिये तुम्हारे नगर से बाहर एक उटज का प्रबन्ध हो जाय—मेरी इच्छा इस गोकुल के सांनिध्य में ही रहने की है!'

'गोकुल का और व्रजराज का अहोभाग्य!' नन्दरानी ने चरणों में आनन्दातिरेक से मस्तक रक्खा। कोई फल माँगे और उसे कल्पतरु ही प्राप्त हो जाय—आज तो उनके उल्लसित हृदय ने यही अनुभव किया है।

भला, यह भी कोई आदेश देने की बात है—सेविका ने दौड़कर व्रजराज को संवाद दिया! निपुण सेवक स्वयं व्रजराज के लघुभ्राता लेकर आश्रम की व्यवस्था करने चल पड़े तत्काल और श्रीनन्दराय को तो अब उन तपस्विनी के चरणों में अपना भाल पवित्र करना है।

'तुम्हारी गोद पूर्ण हो!' भगवती पूर्णमासी ने अपने अभिनव आश्रम का संवाद पा लिया और उठीं, नन्दभवन से चलते समय उन्होंने चरणों में प्रणत व्रजरानी को आशीर्वाद दिया।

'मैया, मेरा सखा आवेगा! मेरा सखा!!' यह भगवती का बाल अवधूत—यह आशीर्वाद का भाष्य कर रहा है।

'यह क्या कहा भगवती ने?' श्रीनन्दराय ने विचित्र भाव से सुना। श्रीनन्दरानी ने दृष्टि ऊपर की आश्चर्य के भाव से।

'भगवती ने आशीर्वाद दिया। व्रज में युवराज आवेगा।' गोपियाँ, दासियाँ—उनके आनन्द का कौन वर्णन करे। गोकुल के उत्कण्ठित कर्णों ने सुना भगवती का आशीर्वाद और उनके हृदय ने दुहराया—'व्रज में युवराज आवेगा!'

मथुरा

मातरं पितरं भ्रातॄन् सर्वांश्च सुहृदस्तथा ।
घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥

—भागवत १० । १ । ६७

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रलयपयोधि के मध्य उन शेषशायी भगवान् नारायण की नाभि से निखिल-लोकात्मक पद्म और उस अनन्त सरोज की कर्णिका पर अरुणवर्ण, चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा—उन लोक-स्रष्टा चतुरानन के मानस पुत्रों में ही तपोमूर्ति भगवान् अत्रि और महर्षि अत्रि की पत्नी महासती अनसूया का त्रिभुवन-विख्यात पातिव्रत्य-प्रभाव क्या विवेचना की अपेक्षा करता है ? महर्षि कर्दम की उन लोकपूज्या पुत्री ने अपने तपोबल एवं पातिव्रत्य के प्रभाव से त्रिदेवों को अपना पुत्र बनाया । लोकस्रष्टा भगवान् ब्रह्मा ही अपने अंश से अत्रि-तनय चन्द्रदेव हुए।

भगवान् चन्द्रदेव के पुत्र बुध और उस प्राद्यकल्प से इस वर्तमान श्वेतवाराहकल्प के इस अट्ठाईसवें कलियुग तक चला आता परम प्रतापी क्षत्रियों का सोमवंश—कैसे सम्भव है कि कोई इतनी दीर्घ परम्परा की नामावली भी रख सके । वर्तमान मन्वन्तर में सोमवंश में महाराज ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु की राजधानी मथुरा हुई । महाराज यदु के पुत्र क्रोष्टा के वंश में ही महाराज दशार्ह की परम्परा में सात्वत हुए । इन्हीं के नाम पर यादवगण सात्वतीय कहे जाते हैं और दाशार्ह भी । महाराज सात्वत के पुत्रों में वृष्णि परम धार्मिक हुए । अपने पूर्वज महाराज ययाति के शाप को आदर देने के लिये उन्होंने राजसिंहासन अस्वीकार किया और सिंहासन पर उनके भाई अन्धक आसीन हुए । महाराज अन्धक का ही दूसरा नाम महाभोज है और इसी से उग्रसेनादि भोजवंशी कहे जाते हैं। यद्यपि श्रीवृष्णिजी ने सिंहासन स्वीकार नहीं किया, फिर भी वे मथुरा में महाराज का ही सम्मान पाते रहे और आगे भी उनके वंशज महाराज अन्धक के वंशजों के लिये सम्मान्य ही रहे । इसी से जब दोनों वंशों में पर्याप्त अन्तर हो गया, तब अन्धक-वंशीय राजकुल ने वृष्णि-वंश में अपनी कन्याएं देना अपने लिये गौरव की बात समझा ।

महाराज वृष्णि के वंश में आगे विदूरथ जी हुए और उनके पुत्र देवमीढ़ जी के ही पुत्र हुए शूरसेन जी । श्रीकृष्णचन्द्र अपने पूर्वज महाराज वृष्णि के कारण वार्ष्णेय और पितामह शूरसेनजी के कारण ही शौरि कहे जाते हैं । श्रीशूरसेन जी की पत्नी महादेवी मारिषा के दस पुत्र हुए—श्रीवसुदेवजी, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक । श्रीवसुदेवजी के जन्म के समय आकाश देवताओं की दुन्दुभियों के निनाद से गुञ्जित हो गया था और इसी से उनका एक नाम आनकदुन्दुभि भी पड़ गया ।

महाराज अन्धक के वंश में आगे महाराज आहुक हुए। महाराज आहुक के दो पुत्र हुए, देवक और उग्रसेन । श्रीउग्रसेन जी ही पिता के पश्चात् मथुरा के सिंहासन पर अभिषिक्त हुए । श्रीउग्रसेन जी के नौ पुत्र हुए—कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टिमान् और तुष्टिमान् । इनके अतिरिक्त महाराज उग्रसेन के पाँच कन्याएँ हुईं—कंसा, कंसवती, कङ्का, शूरभू और राष्ट्रपालिका । इन कन्याओं का विवाह वसुदेवजी के भाइयों से हुआ । महाराज उग्रसेन के भाई देवकजी के चार पुत्र और सात कन्याएँ हुईं । पुत्रों के नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव और देववर्धन तथा कन्याओं के नाम हैं—धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी ।

श्रीवसुदेव जी का विवाह महाराज उग्रसेन के भाई देवक की बड़ी कन्या धृतदेवा से हुआ और फिर देवक जी ने अपनी दूसरी पुत्री शान्तिदेवा का भी उन्हीं से विवाह कर दिया। इसी क्रम से उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता और सहदेवा का पाणिग्रहण भी वसुदेवजी ने किया। इस कुल से बाहर श्रीरोहिणी जी का पाणिग्रहण भी किया उन्होंने। अन्त में महाराज उग्रसेन, श्रीदेवक जी और युवराज कंस का आग्रह था कि देवकी का विवाह भी उन्हीं के साथ हो।

कंस—वह परमपराक्रमी शूर, यह ठीक है कि वह उद्धत—उच्छृङ्खल प्रकृति का है और उसने अपनी प्रकृति के नरेशों से ही मित्रता कर रक्खी है; किंतु उसी की शक्ति पर मथुरा का सिंहासन चक्रवर्ती हुआ है। दूसरों की तो क्या चर्चा, मगधराज जरासंध ने युद्ध में उससे संतुष्ट होकर अपनी दोनों कन्याओं का उससे विवाह कर दिया है। मथुरा की सेना का वही महासेनानायक है और सेना में उसने अपनी प्रकृति के ही असुर नायक एकत्र कर लिये हैं। उसका आग्रह कैसे टाला जा सकता है। अपने चाचा की सबसे छोटी कन्या से वह बहुत स्नेह करता है। उसकी सब बहिनें जब वसुदेवजी के ही गृह में उनकी या उनके भाइयों की पत्नियाँ हैं, तब यह सबसे छोटी बहिन अकेली कहाँ जाय? बहिनों के साथ तो उसको कहीं भी परायेपन का बोध एक दिन भी न होगा। भला, मथुरा से बाहर उसे कैसे विवाहा जाय और मथुरा में तो ये वृष्णिश्रेष्ठ श्रीवसुदेवजी ही सर्वोत्तम पात्र हैं। कंस के आग्रह की रक्षा करनी ही थी श्रीवसुदेवजी को।

× × ×

मथुरा के दिग्विजयी युवराज कंस की सर्वाधिक स्नेह-भाजन, सबसे छोटी बहिन देवकी का विवाह है। युवराज के उल्लास का कोई ठिकाना नहीं; किंतु पता नहीं क्यों श्रीवसुदेवजी को इस धूम-धाम में अभिरुचि नहीं हो रही है। उन्हें लगता है, यह राजस आवेग है और इसपर भरोसा नहीं किया जा सकता। कोई अज्ञात आशङ्का उन्हें अकारण ही क्लान्त, शिथिल कर रही है और ये यदुकुल के परमाचार्य, दैवज्ञ-शिरोमणि महर्षि गर्ग—इतनी उमंग तो इनमें कभी देखी नहीं गयी। पता नहीं क्यों बार-बार उनका शरीर रोमाञ्चित होता है, उनको नेत्र पोंछने पड़ते हैं और गद्‌गद स्वर उनके मन्त्रपाठ को थकित, विरमित कर देता है। ऐसी क्या बात है? पूछने पर भी वे कुछ बतायेंगे, ऐसी कहाँ आशा है और जो गूढ़ोक्ति वे कह जाते हैं, भला कौन समझ सकता है उसे।

विवाह सम्पन्न हुआ। महाराज उग्रसेन ने अपार भेंट दीं दम्पति को और युवराज कंस तो संतुष्ट ही नहीं हो रहे थे। बहिन को क्या दे दें—जैसे उनके लिये सम्पूर्ण सम्भार आज अत्यन्त तुच्छ था। महाभाग देवकजी ने चार सौ ऐरावत के कुल में उत्पन्न स्वर्णमालाओं से सुसज्जित महागज, पंद्रह सहस्र श्यामकर्ण अश्व और छः सहस्र तीन सौ रथ एवं अपार मणि-रत्न, दास-दासियाँ आदि प्रदान किये—अन्ततः यही तो उनकी सबसे छोटी कन्या का विवाह था।

'युवराज, अब लौटें!' श्रीवसुदेवजी ने रथ पर बैठने के लिये प्रस्तुत होते हुए आग्रह किया।

'आप, विराजें!' यह क्या—क्या मथुरा के चक्रवर्ती साम्राज्य के युवराज सूत का काम करेंगे? लेकिन कंस तो कूदकर सूत के स्थान पर बैठ चुके और रथरश्मि सम्हाल ली उन्होंने। बेचारा सूत एक ओर खिसक गया।

'मैं युवराज के इस सम्मान-दान से ही अनुगृहीत हूँ!' भला, हठी कंस के सम्मुख श्रीवसुदेवजी का आग्रह टिक सकता है और आज तो बहिन के स्नेह में जैसे अपने को ही भूल गया है।

'युवराज के लिये इतना ही बहुत है! अब आप वसुदेवजी को आज्ञा दें।' महर्षि गर्ग की वाणी में आग्रह, आदेश, आशङ्का; क्या है—कहा नहीं जा सकता।

'मैं देवकी को उसके सौध तक पहुँचाकर लौटता हूँ।' कंस ने हाथ जोड़कर मस्तक तो झुका दिया आचार्य को; किंतु उसकी वाणी का गर्व स्पष्ट है—वह आदेश मानने को प्रस्तुत नहीं।

'प्रभु मङ्गल करें!' यह भी कोई समयोचित आशीर्वाद है—कौन पूछे आचार्य से। उनकी कालातीत दृष्टि तो पता नहीं क्यों एक बार ऊपर उठी और अत्यन्त गम्भीर हो गये वे।' अवश्य ही युवराज ने उनका आदेश स्वीकार नहीं किया, यह उन्हें रुचिकर नहीं लगा। लेकिन युवराज कहाँ ध्यान देते हैं! विनय कहाँ है उनके स्वभाव में।

× × ×

'मूर्ख, कंस!' कंस स्वयं सारथि बनकर श्रीवसुदेवजी एवं देवकी को रथ में बैठाये लिये जा रहा था। यह इस प्रकार कौन उसे पुकारने का साहस कर रहा है। रथ की रश्मि उसने खींच ली। अश्व स्थिर हो गये। क्रोध से नेत्र जल उठे कंस के। उसने इधर-उधर देखा। वह चिल्लाना ही चाहता था, पर शब्द तो ऊपर से आ रहा है। श्रीवसुदेवजी, देवकी और रथ का सूत भी चौंक गया। सब आश्चर्य से ऊपर देखने लगे। ऊपर—ऊपर आकाश में न तो कोई विमान है और न देवता; किंतु शब्द तो बहुत स्पष्ट हैं। वह किसी अलक्ष्य की वाणी कह रही है—'मूर्ख कंस! तू जिसे इतने सम्मान से लिये जा रहा है, उसी के आठवें गर्भ से उत्पन्न संतान तेरा वध करेगी!'

'मेरा वध!' कंस चौंका। 'उसका वध होगा! उसकी मृत्यु होगी! वह तो त्रिभुवन-विजयी होना चाहता है। वह तो मृत्यु को भी जीतकर बंदीगृह में बंद कर देने की बात सोच चुका है। उसका वध होगा? वह मरेगा?' बात तो यही आकाश से आते उन शब्दों में कही गयी और अब तो वह शब्द भी समाप्त हो गये। कंस के हाथ से रथ की रश्मि छूट गयी। उसे लगा—आज ही उसका वध होने जा रहा है। मृत्यु की कल्पना ही उसके लिये भयप्रद थी। वह तो अमर होना चाहता है।

'मेरा वध और इस देवकी की संतान के द्वारा!' एक क्षण में उसके नेत्रों से अङ्गार झड़ने लगे। उसने अधर दाँतों से काट लिया। रथ से कूद गया नीचे। सब स्नेह, सब सौहार्द, सब भ्रातृत्व एक क्षण में ही पता नहीं क्या हो गया। जहाँ शरीर और शरीर का सुख ही सब कुछ है, वहाँ कैसा प्रेम और कैसा सौहार्द। वहाँ तो अपने सुख, अपने स्वार्थपर जब तक कोई धक्का न लगे, वहाँ तक सब ठीक और जहाँ अपने स्वार्थ पर धक्का लगने की आशङ्का भी हुई, एक क्षण भी नहीं लगता मित्रता को घोरतम शत्रुता में परिवर्तित होते। वह आकाशवाणी सुनी वसुदेवजी ने और देवकी ने भी। उन्हें कम क्षोभ या आश्चर्य नहीं हुआ; किंतु कोई कुछ सोचे, इससे पूर्व तो कंस ने झपटकर देवकी के केश बायें हाथ से पकड़ लिये और उसके दाहिने हाथ ने झटके से कोष से खड्ग खींच लिया।

'अरे, अरे, आप यह क्या करने जा रहे हैं!' वसुदेवजी ने शीघ्रतापूर्वक कंस का हाथ पकड़ा और देवकी तथा कंस के मध्य में झुककर खड़े हो गये। कंस क्रोधावेश में अनर्थ कर सकता था; किंतु अनर्थ करने-जैसी क्षमता भी उसमें रही नहीं थी। वह देवकी को खींच लेने के लिये बल लगा रहा था और यह निश्चित ही था कि उस दैत्य से वसुदेवजी देर तक देवकी को बचा नहीं सकते थे।

'आप तनिक रुकिये और सोचिये तो—सभी शूरों में आपके गुणों की प्रशंसा होती है, भोज-वंश के यश को उज्ज्वल किया है आपने और भला, आप ही एक स्त्री का वध करेंगे और वह भी अपनी छोटी बहिन का, फिर इस विवाह के मङ्गल अवसर पर? भला, आपके द्वारा यह घोर कर्म कैसे हो सकता है!' वसुदेवजी ने समझाने का प्रयत्न किया।

'यह आकाशवाणी—यह तो आप जानते ही हैं कि जन्म के साथ प्राणी की मृत्यु निश्चित हो जाती है। कोई आज मरे या सौ वर्ष पश्चात् मरे—जिसने जन्म लिया, उसका मरना तो निश्चित ही है।' लेकिन वसुदेवजी की बात कंस की समझ में कैसे आये। वह मरना कहाँ चाहता है।

'सब अपने ही प्रारब्ध कर्मों का फल भोगते हैं। प्रारब्ध समाप्त होने पर जीव शरीर छोड़ देता है और दूसरे शरीर को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार शरीर तो बार-बार मिलता रहता है। वह कोई दुर्लभ वस्तु नहीं और प्रारब्ध पूर्ण होने से पूर्व उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। जो जैसा कर्म

करता है, उसे वैसे ही शरीरों में जन्म लेना पड़ता है। जैसे हम जो सोचते हैं, स्वप्न में भी वही देखते हैं, वैसे ही मृत्यु के पश्चात् भी हमें अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। इस शरीर के साथ मोह करके व्यर्थ ही लोग भ्रम में पड़ते हैं। उचित तो यह है कि किसी से भी शत्रुता न की जाय; क्योंकि द्वेष का परिणाम मृत्यु के पश्चात् भी भयानक होता है। आप तो बुद्धिमान् हैं—यह आपकी छोटी बहिन है, दुर्बल है, अत्यन्त दीन हो रही है; यह आपकी पुत्री के समान है; आप तो दीनों का पालन करनेवाले, दुर्बलों पर दया करनेवाले हैं, आपको इसे नहीं मारना चाहिये। यह कर्म आपके योग्य नहीं है।' चिकने घड़े पर जल की बूँदें तो चाहे पल भर टिकती भी हों, कंस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा इन बातों का। उसने कुछ सुना भी, कहा नहीं जा सकता। वह तो देवकी के केश पकड़कर खींच लेने को उद्यत है। वसुदेवजी बीच में पूरी शक्ति से उसे रोके हुए भी हैं और देवकी—वधिक के पास में बँधी गौ—क्या वर्णन करे कोई उस दशा का। रथ के स्तम्भ दोनों सुकुमार हाथों में पकड़ कर जैसे रथ से एक हो गई हैं वे। उनके कण्ठ में भय के आधिक्य से चीत्कार भी नहीं।

'कंस को समझाया नहीं जा सकता इस समय।' वसुदेवजी ने देख लिया। विद्युत् तो बहुत मन्दगति होती है, इस समय उनके मस्तिष्क में विचारों का अंधड़ उठा था। 'एक अबला नारी, अभी-अभी उन्होंने अग्निदेव को साक्षी रखकर उसका पाणि-ग्रहण किया है। वे पति हैं—रक्षा करना ही उनका परम धर्म है। यह परम दुर्धर्ष कंस—अपने प्राणों की आहुति देकर भी आशा नहीं कि वे देवकी को इस नृशंस से बचा सकें।' एक क्षण—एक क्षण तो एक कल्प से भी बड़ा दुस्सह प्रतीत हुआ वसुदेवजी को, देवकी को और कदाचित् कंस को भी। वह क्रूर भी शीघ्रता करने में प्राणपण से लगा था। सहसा एक विचार आया वसुदेवजी के मन में—'इस समय तो इसकी रक्षा ही प्रधान कर्तव्य है। क्या पता, मेरे पुत्र होंगे भी या नहीं। पुत्र हुए भी तो क्या ठिकाना कि आठवें पुत्र के होने तक कंस जीवित ही रहेगा। इसके विचार भी तो बदल ही सकते हैं, क्रोध का आवेश शान्त होने पर इसे सद्‌बुद्धि भी आ सकती है। यह सब न भी हो, तो भी उपस्थित भय को तो दूर ही करना है। भविष्य में होने वाले पुत्रों को भय है; पर इस समय तो इसके प्राण बचते हैं।'

सहसा वसुदेवजी ने कंस को रोकने का प्रयत्न शिथिल किया और किसी प्रकार मुख को प्रसन्न बनाया। 'आप को भला, देवकी से क्या भय है? उस आकाशवाणी ने तो इसकी संतान के द्वारा आपकी मृत्यु बताई थी!'

'मैं भय की इस जड़ को ही समाप्त कर देता हूँ।' कंस ने दाहिना हाथ उठाया।

'लेकिन मैं इसके पुत्रों को उत्पन्न होते ही आपको दे दूँगा।' शीघ्रता से वसुदेवजी ने वाक्य पूरा किया।

'आप पुत्रों को उत्पन्न होते ही दे देंगे?' कंस का उठा हाथ धीरे से नीचे आ गया। केशों को पकड़नेवाली मुट्ठी भी तनिक शिथिल हुई।

'हाँ, आपको भय तो पुत्रों से है! मैं उन्हें उत्पन्न होते ही आपके पास स्वयं ले आऊँगा! इसे तो आप छोड़ दें। इससे तो आप को कोई भय नहीं।' वसुदेवजी ने स्वर को स्थिर कर लिया था।

'नहीं, इससे तो कोई भय नहीं है!' कंस ने केश छोड़ दिये। खड्ग कोष में चला गया। 'आप अपने वचन का ध्यान रखिये!' और अब उसमें इतनी शिष्टता नहीं थी कि किसी से क्षमा माँगे या विदा ले। वह मुड़ गया पैदल ही राजसदन की ओर।

देवकी—उन्हें तो प्राणदान ही मिला था। भय के कारण उन्होंने सुना ही कहाँ कि उनके पूज्य पतिदेव ने इस महाक्रूर को कैसे समझाया।

× × ×

माता देवकी को सन्तान होने वाली है। वृष्णिवंश के लिये इससे शुभ, उत्साहप्रद, मंगल समाचार कुछ नहीं हो सकता था; किंतु—किंतु क्रूर कंस, उसका भय—आनन्दोल्लास के स्थान पर विषाद ही बढ़ गया है सर्वत्र।

'महाराज उग्रसेन से आवेदन किया जाय! यादव सभासद्-गण इस पर विचार करें!' अनेकों ने अपने विचार प्रकट किये। अनेकों ने वसुदेवजी को मथुरा त्याग देने की मन्त्रणा भी दी; किंतु जब वचन दिया जा चुका—कैसे किसी के प्रति विश्वासघात किया जा सकता है। श्रीवसुदेवजी ने किसी प्रकार का बचाव स्वीकार नहीं किया।

वह दिन भी आया—एक कंगाल के भी पुत्र होता है तो वह अपनी फूटी थाली ही बजा लेता है। यहाँ महाराज उग्रसेन—चक्रवर्ती यादवसम्राट् के दौहित्र हुआ; किंतु किसी को पता तक न लगा। न वाद्य बजे, न आचार्य बुलाये गये, न वन्दियों ने यशोगान किया। श्रीवसुदेवजी ने पुत्रोत्पत्ति का संवाद सुना और मस्तक पर दोनों हाथ रख लिये। नेत्रों में अश्रु आवें—इतना भी बल हृदय में नहीं था—वहाँ शोक की ज्वाला थी। किसी प्रकार सम्हल कर उठे और वैसे ही सूतिकागार की ओर चल पड़े।

'देवि........!' कण्ठ से शब्द निकल नहीं पाता, वसुदेवजी ने दोनों हाथ फैला दिये। सत्य—कितना भीषण, कितना दुःखद सत्य है सम्मुख! उन्होंने कंस से कहा है—'पुत्रों को उत्पन्न होते ही पहुँचा दूँगा।'

'मेरा लाल!' माता ने नवजात शिशु को भली प्रकार देखा भी नहीं। अभी उसका नालोच्छेद भी नहीं हुआ और........

'हमारे भाग्य में वह नहीं! समझ लो, हुआ ही नहीं!' अब यहाँ ठहरा नहीं जा सकता। हृदय के साहस की भी सीमा है। नहीं—एक क्षण भी ठहरने से सत्य पर स्थित रहना कठिन हो जायगा। धात्री दे पुत्र को, इसकी अपेक्षा किये विना ही स्वयं उन्होंने उठा लिया और शीघ्रता से मुड़ पड़े। उन्होंने सुना एक चीत्कार और भागे—भागे वेग से। नवप्रसूता मूर्छित हो गयी, मन, प्राण—सब यही कह रहे हैं; पर यदि रुक जायँ—चरण फिर नहीं उठ सकेंगे। संतान को हृदय से तो हाथों ने स्वतः लगा लिया है, पर वे उसकी ओर देखने में भी भयभीत हो रहे हैं; कहीं ममत्व विजय पाले हृदय पर—सत्य! सत्य! और वे भागे जा रहे हैं कंस के राजसदन की ओर।

× × ×

'युवराज, यह तुम्हारा भानजा! देवकी का प्रथम पुत्र........!' कंस के सम्मुख उस नवजात बालक को रखकर अब वसुदेवजी ने देखा है। कुसुम-सुकुमार, कच्चे मांस का लौंदा, सौन्दर्य की मूर्ति और वह तो हँस रहा है, उन्हीं की ओर देख रहा है। मार्ग में भी उसने रोने का नाम नहीं लिया।

'आप सचमुच सुख-दुःख में एकरस रहनेवाले समदर्शी महात्मा हैं। आपका सत्यानुराग प्रशंसनीय है!' कंस ने देखा एक साधारण दृष्टि से बालक को और फिर उसी बालक की ओर एकटक देखते प्रेमविभोर वसुदेवजी को। वह हँसा और हँसते-हँसते ही बोला—'मैं बहुत प्रसन्न हूँ! आप इस बच्चे को ले जायँ। आप के अष्टम पुत्र से मेरी मृत्यु होगी, ऐसा आकाशवाणी ने कहा था; यह तो प्रथम पुत्र है। इससे मुझे कोई भय नहीं।' जैसे अब देवकी से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। 'कोई भय नहीं, अतः यह बच्चा लौट जाय—बस!' इससे अधिक के लिये न तो कंस के हृदय में स्थान था और न किसी शिष्टाचार की उसे आवश्यकता जान पड़ी।

'जैसी आपकी इच्छा!' वसुदेवजी ने धीरे से पुत्र को उठा लिया और लौटे। मन में कोई उल्लास, कोई उत्साह नहीं। चरणों में कोई वेग नहीं। जैसे कोई बहुत थका व्यक्ति किसी प्रकार मार्ग काट रहा हो, ठीक ऐसे लौट रहे थे वे।

'मेरा लाल!' माता ने ललककर पुत्र को हृदय से लगा लिया। आनन्द के आवेश में उन्होंने पति से यह पूछना ही भूल गयीं कि बच्चा कैसे लौटा।

'इतना मोह ठीक नहीं!' वसुदेवजी ने अत्यन्त व्यथित कण्ठ से कहा। कंस—उस क्रूर पर मुझे विश्वास नहीं। उसका विचार कितने क्षण स्थिर रहेगा, कौन कह सकता है। तुम्हें मिल

भैया--ऐसा समझना ही भूल होगी। जबतक है, देख लो इसे!' सचमुच वे स्वयं एकटक उस शिशु को ही देख रहे थे। उनके नेत्रों से अब धारायें चल रही थीं। जैसे वे कहते हों--इतना आनन्द, इतना सौन्दर्य, इतनी मुग्धता लेकर तुम्हें क्या मुझ भाग्यहीन के गृह में ही आना था!'

× × ×

'वसुदेव कितने सच्चे, कितने धीर, कितने सीधे हैं। उस शिशु में कितना स्नेह था उनका!' कंस कुछ ऐसा ही सोच रहा था बैठा। वह वसुदेवजी को चुप-चाप जाते देखता रहा था और वैसे ही बैठा रह गया था।

'जय नारायण! जय मधुसूदन चक्र-गदा-करधारी!' दूर--दूर से वीणा की झंकार के साथ स्वर आया और कंस तो चौंक ही गया--'नारायण, मधुसूदन, चक्र-गदाधारी!-- कहाँ? कहाँ?' उसे लगा, कहीं उसे मारने वे नारायण चक्र-गदा लेकर पहुँच तो नहीं गये।

'ओह, ये तो नारदजी हैं!' ऊपर दृष्टि गयी और अपनी व्याकुलता पर स्वयं उसी को हँसी आ गयी। उसने झट से आसन ठीक कर दिया। 'पधारें देवर्षि!'

'क्या सोच रहे थे युवराज?' देवर्षि तो कहीं स्थिर रहते नहीं, अतः कुशल-मङ्गल में व्यतीत करने के लिये उनके पास समय भी नहीं होता। वे सीधे मुख्य बात से प्रारम्भ करने के अभ्यासी हो गये हैं।

'मैंने अभी-अभी वसुदेवजी के प्रथम पुत्र को लौटा दिया, पर वे उसे ले जाते समय कुछ विशेष प्रसन्न नहीं दीखे। ऐसा क्यों हुआ, यही सोच रहा था। राजनीति सर्वत्र शङ्कालु होती है और उसमें भी जो शरीरासक्त हैं, उन्हें दूसरों से मिथ्या शङ्का ही चैन नहीं लेने देती। कंस को वसुदेव जी के निरुत्साह लौटने में भी कोई गूढ़ रहस्य जान पड़ा। वह उसी समस्या में उलझा था।

'तुमने वसुदेव के पुत्र को लौटा दिया?' देवर्षि ने इस प्रकार पूछा, जैसे उन्हें विश्वास ही न हुआ हो।

'क्यों, यह तो प्रथम पुत्र था। मेरी मृत्यु तो उनके अष्टम पुत्र से बतायी गयी है?' कंस ने जिज्ञासा की।

'बतायी तो अष्टम से ही गयी है; पर तुम्हें पता भी है कि ये वसुदेव-देवकी कौन हैं?' नारदजी ने भूमिका बना दी।

'कौन हैं ये?' कंस का कुतूहल बढ़ गया।

'ये तथा अन्य सब वृष्णिवंशी देवता हैं--देवताओं के अंश से उत्पन्न हैं और यही नहीं, गोकुल में जो वृष्णिवंशी नन्दादि गोप हैं, वे भी सब देवता ही हैं। इन सबकी स्त्रियाँ देवाङ्गनाएँ हैं।' देवर्षि ने परिचय दिया।

'स्वर्ग के देवता भी मुझसे पराजित हो गये हैं; ये तो देवताओं के अंश ही हैं और फिर कोई हों, अपने ही वंश के तो हैं।' कंस के समझ में बात आई नहीं अब तक।

'तुम अपने को ही यदि जानते--असुरश्रेष्ठ कालनेमि, तुम अपने को ही भूल गये हो। तुम्हारे ये मित्र, सेना-नायक, साथी नरेश, सब असुर हैं। देवासुरसंग्राम में देवताओं ने सबका वध किया और जब तुमलोग इस रूप में पृथ्वी पर मानव योनि में आये, ये तुम्हारे पुराने शत्रु तुम्हारा नाश करने यहाँ भी पहुँच गये। चक्र से तुम्हारा वध करने वाले विष्णु ही देवकी से उत्पन्न होनेवाले हैं। रही अष्टम गर्भ की बात, सो तुम तो जानते ही हो कि विष्णु परम मायावी हैं। तुम इतना भी नहीं समझते कि प्रत्येक गर्भ अष्टम हो सकता है।' देवर्षि ने जो कुछ कहा, कंस को लगा--सब ठीक ही तो है। उसका सदा से देवताओं से सहज द्वेष, पूजा-पाठादि से घृणा--अवश्य वह असुर है। ये वृष्णिवंशी, ये सदा उसका विरोध करते हैं, ये जन्म-जात शत्रु हैं उसके।

'प्रत्येक गर्भ अष्टम गर्भ?' यही बात उसकी समझ में नहीं आयी। यह कैसे हो सकता है?

'बताओ तो, इसमें अष्टम रेखा कौन-सी है?' देवर्षि ने तनिक झुककर भूमिपर गोलाई में अंगुली से कल्पित आठ रेखाएँ खींच दीं। रेखाएँ उस कुट्टिम भूमि पर बनी नहीं; किंतु कंस को

उनका तात्पर्य समझने में इससे कोई बाधा नहीं हुई। वह एक क्षण उस रेखाहीन स्थान को ही इस प्रकार देखता रह गया, जैसे वहाँ कोई अत्यन्त महत्वपूर्ण दृश्य हो।

'ओह!' उसने अपने ओष्ठ दाँत से दबाये, कोष से खड्ग खींचा और देवर्षि तो आसन से उड़कर आकाश में दृष्टि-पथ से भी पार हो चुके।

× × ×

'युवराज!' हाथ में नंगी करवाल लिये, क्रोधावेश में अत्यन्त उग्र बना, अस्तव्यस्त कंस पैदल राजपथ से दौड़ा जा रहा था। उसे सेवकों को पुकारने का भी ध्यान नहीं रह गया था। कुछ सेवक उसके साथ दौड़े। मार्ग में उसका यह उग्र वेश जिसने देखा—चकित, भयभीत हो गया वह।

श्रीवसुदेवजी ने भी देखा कंस को आते। अभी नान्दीमुख श्राद्ध भी नहीं हुआ था। बालक का नालोच्छेदन भी नहीं हुआ—लेकिन इसकी उन्हें पहिले से सम्भावना थी। अभी हुए कितने पल उन्हें पुत्र को सूतिकागृह में देकर बाहर आये। कंस ने कठोर दृष्टि से उनकी ओर देखा और वसुदेवजी ने चुपचाप सूतिका गृह की ओर संकेत कर दिया और वहीं मस्तक झुकाये खड़े रह गये।

एक चीत्कार आयी सूतिका गृह से और कंस शिशु का एक पैर पकड़े, उसे लटकाये निकल आया। वसुदेवजी ने नेत्र नहीं उठाया, पर उनके मानस नेत्रों ने देख लिया—समझ लिया कि उनकी सद्यःप्रसूता पत्नी दौड़ी हैं 'भैया!' कहकर उस पिशाच का पैर पकड़ने के लिये और यह 'धम्' वे सम्भवतः सूतिका-गृह के द्वार-देश पर ही गिर गयी हैं मूर्छिता होकर। पृथ्वी जैसे घूम रही है, नेत्रों के सम्मुख अन्धकार—ज्वाला—पिशाच—और वसुदेव जी संज्ञाहीन-से बैठ गये वहां।

कंस—उसने कहीं, किसी ओर नहीं देखा। भवन से बाहर एक शिला—हाथ के शिशु को घुमाकर पटक दिया उस प्रेताधम ने, एक हल्की ध्वनि और शिला रक्त से अरुण हो गयी। कंस अपनी हत्या के रक्त के छींटों से रँग गया।

'पकड़ लो इन दोनों को! सावधानी से सुदृढ़ शृङ्खलाओं में बाँधकर कारागार पहुँचा दो।' शिशु-हत्या के पश्चात् कंस जैसे अपने साथ आये सेवकों को देख सका। उसने तुरंत आज्ञा दे दी देवकी एवं वसुदेव को बंदी करने के लिए।

× × ×

'वसुदेवजी के पुत्र की हत्या की गयी। कंस ने स्वयं हत्या की। वसुदेवजी अपनी सद्यः-प्रसूता पत्नी के साथ कारागार में डाल दिये गये।' नगर में बात फैलते कितनी देर लगती थी। भय, आतङ्क, उत्तेजना—सभी कुछ एक साथ व्याप्त हो गया।

'वृष्णिवंशी प्रधान सामन्तों को पकड़ लो। शूरसेन के सभी पुत्रों एवं परिवार को बंदी-गृह पहुँचा दो।' कंस असावधान नहीं था। उसने सेना के प्रधान असुर नायकों को अविलम्बित आदेश दिया। सेना उसके हाथ में, उसके पक्ष के सैनिकों से पूर्ण थी।

'कंस, मेरा पुत्र सही; परंतु ऐसे पुत्र से तो पुत्र-हीन रहना अच्छा है। वह बंदी किया जायगा। राजसभा उसके अपराध का विचार करेगी। दण्ड दिया जायगा उसे।' कुछ लोगों ने महाराज उग्रसेन को समाचार दिया। महाराज ने आश्वासन दिया और साथ ही पार्श्वरक्षक को आज्ञा दी—'कंस बंदी करके उनके सम्मुख उपस्थित किया जाय।'

'यह वृद्ध—यह अब इस योग्य नहीं कि राज्य-संचालन कर सके। यह शत्रु-पक्ष से मिल गया है। बन्दी करो इसे।' कंस ने महाराज की आज्ञा सुनी और जल उठा। अपने असुर नायकों के साथ वह सीधे राजसदन पहुँचा। महाराज कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि उनका पुत्र उनके सम्मुख आकर भी इतना उद्धत हो सकता है। महाराज के विश्वस्त सेवक आहत हो गये, उनके पार्श्व-रक्षक बन्दी हो गये।

'तू मेरा वध कर!' महाराज ने उसी तेजस्विता से धिक्कारा पुत्र को, जिससे सिंहासना-सीन होनेपर वे उसे धिक्कार सकते थे। 'तू मेरा त्याज्य पुत्र है। मैं तेरा मुख देखना नहीं चाहता। तुझे जो मन में आवे, कर!' उन्होंने मुख फेर लिया।

कहीं स्वार्थान्ध पशुप्राय मदाविष्ट भी इस प्रकार लज्जित किये जा सकते हैं। राज्य के लोभी नारकीय मानव कहाँ माता-पिता आदि की चिन्ता करते हैं। कंस ने अट्टहास किया—ऐसा अट्टहास जो असुर के ही उपयुक्त था। उसके आदेश से महाराज बन्दी बना लिये गये।

मथुराधिपति कारागार में बन्दी हो गये। कंस स्वयं मथुरा के सिंहासन पर बैठा। अब वह निरङ्कुश हो गया। वसुदेवजी के सभी भाई बन्दी हो गये। वृष्णिवंशियों में कुछ बन्दी हुए, कुछ ने कंस को आश्वासन दिया उसके अनुकूल रहने का, बहुत-से लोग वन एवं गिरि-गुहाओं में और बहुत-से कुरु, पाञ्चाल, मत्स्य, कोसल, विदर्भादि दूसरे राज्यों में अपने प्राण एवं परिवार को लेकर भाग गये। मथुरा कंस और उसके असुर नायकों का क्रीड़ाक्षेत्र हो गयी।

× × ×

कंस का वह कारागार—एक ही कक्ष में लौहश्रृङ्खलाबद्ध वे जगज्ज्योति दम्पति—उनके कष्ट, दुःख, मर्मपीड़ा का वर्णन न करना ही अच्छा है। एक वर्ष—ठीक एक वर्ष पश्चात् कारागार में ही उस बन्दिनी की गोद में एक शिशु और आया—सुषेण। कारागार के रक्षकों ने अपने महाराज को दौड़कर सूचना दी। भूमिष्ठ शिशु का रोदन सुनते ही वे दौड़ गये।

'नारायण—विष्णु—आया तो नहीं वह। वही कंस का भयातुर भाव, वही उसका दौड़ना, वही प्रवेश कारागार में और वही शिशु का पैर पकड़कर निकलना। शिला-आघात—रक्त और'''। चलता रहा यही पैशाचिक कर्म प्रतिवर्ष। भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन और भद्र—ये नाम, ये नाम ही मात्र हैं, वे अबोध बच्चे, वे भूमिपर आये और न आये। उनका रक्त—शिला पर वह सूखकर काला भले हो जाय, अखिलेश के अङ्क में वह घना-घना—गाढ़नील ही होता गया। कौन जाने, उसी ने उसे वह नीलोज्ज्वल वर्ण दिया हो, जो कंस की क्रूरता के परिपाक की प्रतीक्षा कर रहा था भूभार-हरणार्थ भूमिपर आने के लिये।

श्रीबलराम

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।
त्वंपासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥

—भागवत १०।२।४०

देवासुर-संग्राम में देवताओं द्वारा पराजित दैत्य पृथ्वी पर अवतीर्ण हो गये। नरेशों के, शूरों के गृहों में जन्म लिया उन्होंने। स्वभावतः वे यज्ञ, हवन, तर्पण, वेदपाठ के विरोधी थे। आहुति से देवताओं का और श्राद्ध से पितरों का पोषण होता है। यदि मनुष्य यजन एवं श्राद्ध छोड़ दे—देवता स्वतः दुर्बल हो जायँगे। सम्मुख युद्ध में पराजित होकर दैत्यों ने देवताओं का आहार बंद कर देना चाहा। पृथ्वी और उसपर भी मनुष्य ही तो निखिल लोकों के पोषक हैं। दैत्यों ने नृप-वंशों में उत्पन्न होकर शासन-सूत्र सम्हाल लिया। प्रजा तो शासक का अनुगमन करती है।

भार—स्थूलशरीर के लिये स्थूल पदार्थ का भार होता है; किंतु सूक्ष्म के लिये तो सूक्ष्म ही भारी होगा। सत्वगुण धारक—पालक है और तमोगुण विनाशक। सत्व वायु के समान धारण-कर्ता है और तमस् अन्धकार एवं मृत्यु के समान नष्ट करनेवाला। हमारे इस स्थूल जगत् का धारण जो आधिदैविक शक्तियाँ करती हैं, उन सूक्ष्म शक्तियों—देवताओं के लिये स्थूल पदार्थों का भार क्या; किंतु जब जगत् में तमस् बढ़ जाता है—अधर्म का प्राबल्य होता है, वे दिव्य शक्तियाँ आकुल हो उठती हैं। उनके लिये अन्याय, अत्याचार, कदाचार के जो सूक्ष्म तामस भाव हैं, असह्य हो उठते हैं और भूमि—हमारी इस पृथ्वी की अधिष्ठातृ भूमिदेवी जब ऐसे भार से पीड़ित होती हैं, वे प्रजापति महेन्द्र के पास ही तो जा सकती हैं। देवराज का ही तो कर्तव्य है कि वे समस्त देवताओं के कार्यों का सामञ्जस्य बनाये रक्खें।

द्वापर का अन्त—जगत् में, विशेषतः धर्मभूमि भारत में असुर नरेशों का प्राबल्य हो गया। भूमि के लिये असह्य हो गया उन उद्धतों का अत्याचार। भूकम्प, जलप्लावन, ज्वालामुखी, महामारी—लेकिन यह कुछ शक्य नहीं था। असुरों की शक्ति, उनका पराक्रम, उनकी बुद्धि और विद्या इन सबों को परास्त कर चुकी थी। असुरों ने देवधानी को त्रस्त और आतङ्कित कर दिया था।

भूमि का कष्ट अकेला ही तो नहीं था, देवताओं के हविष्य भी बंद होते जा रहे थे। देवराज के समीप कोई उपाय नहीं था। देव-शक्ति से ये मर्त्यधरा के असुर अधिक प्रबल हो चुके थे। महेन्द्र के पास एक ही उपाय था कि वे सृष्टिकर्ता की शरण लें। भगवान् ब्रह्मा ने सुरों को देखा, भू देवी को देखा और उनके साथ देखा विनाश के अधिष्ठाता भगवान् शशाङ्कशेखर को। देवराज कैलाश से भगवान् शंकर को साथ ले गये थे। इस सृष्टिकाल में असुरों का यह उच्छृङ्खल भाव उन महारुद्र को भी अभिप्रेत नहीं था। स्रष्टा क्या करें? वे तो सृष्टि के अधिष्ठाता हैं। निर्माण ही आता है उन्हें। नियमन—शासन, यह भला वे क्या जानें। सबको लेकर वे क्षीरसागर-तटपर तो पहुँचने ही वाले थे। वे पालनकर्ता शेषशय्या पर आनन्दरूप अवस्थित होंगे। आर्तजन उनको छोड़कर आश्वासन के लिये भला, किसे पुकारें।

भगवान् ब्रह्मा जानते थे—वे सान्द्रनील लक्ष्मीनिवास प्रभु अन्वेषण से प्राप्त नहीं होते। सृष्टि के आरम्भ में अपने कमल के नालछिद्र से वे उन्हें पाने का युगों तक विफल प्रयास कर चुके थे। उन्हें तो आतुर उत्कण्ठा की कातर पुकार से ही पाया जा सकता है। देवताओं ने स्रष्टा के

नेतृत्व में प्रार्थना प्रारम्भ की और प्रार्थना करते-करते पितामह ध्यानस्थ हो गये। अन्तर के आलोकमय प्रान्त में ही तो वे हृषीकेश निवास करते हैं।

'प्रभु का प्रसाद प्राप्त होगा! वे यदुवंश को कृतार्थ करेंगे! आप सब उनकी सेवा के लिये अपने अंशों से पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करें!' अन्तर के आदेश को पितामह ने सुना दिया। देवता सदा से असुरों के अनुज हैं और अब पृथ्वी पर वे पीछे ही तो प्रकट होंगे। अवतार—अवतार तो होगा ही। जब मानव प्रयास, नैसर्गिक उपद्रव और देव-शक्तियाँ भी भूमि के हृदय भारत में कदाचार का वेग रोक नहीं पाते—जब मानव प्रकृति पर, देवताओं पर भी विजय करके अपने गर्व में मत्त हो जाता है, तभी तो अवतार होता है।

× × ×

'माता देवकी के गर्भ में मेरे अंश भगवान् अनन्त पहुँच चुके, आप उन्हें वसुदेवजी की दूसरी पत्नी जो गोकुल में नन्दभवन में हैं, उनमें आकर्पित कर दें!' उन अनन्तशायी ने योगमाया को आदेश दिया। द्वापर के युगावतार तो शेषावतार श्रीबलरामजी ही हैं। इतना ही क्रम तो सदा चलता है। योगमाया ने मस्तक झुकाकर आदेश स्वीकार कर लिया।

श्रीवसुदेवजी की अन्य पत्नियाँ कंस के नृशंस अत्याचार के भय से ही श्रीवसुदेवजी के बन्दी होते ही मथुरा छोड़कर गुफाओं में चली गयीं सम्बन्धियों के साथ; किंतु श्रीरोहिणीजी को तो पति का गृह किसी दशा में छोड़ना स्वीकार नहीं था। अन्ततः कंस ने उन्हें कारागार में जाकर पति-सेवा की आज्ञा दे दी और देवकी के सप्तम गर्भ के साथ जब उनमें भी गर्भ के लक्षण व्यक्त हुए, श्रीवसुदेवजी ने उन्हें गोकुल में श्रीनन्दराय के यहाँ रहने की आज्ञा दी। कहीं दुरात्मा कंस उनकी संतान को मार न दे। इच्छा न होने पर भी पति की आज्ञा माननी पड़ी उन्हें।

'इतना ही नहीं!' तब इस बार क्या कोई और विशेपता होगी? प्रभु ने अब रहस्य-भरा संकेत किया—'इसके पश्चात् मैं आऊँगा माता देवकी की गोद में और कुछ देर को तुम्हें भी नन्द-पत्नी माता यशोदा की बालिका बनना है!' अच्छा? यह सब क्यों? पर योगमाया को पूछने की आवश्यकता नहीं थी। इस बार उनके परमप्रभु पधार रहे हैं। उनकी लीला को साङ्गता देनी है। ये शेषशायी प्रभु उसे साङ्गता देंगे और कुछ क्षणों को ही सही वे परात्पर लीलामय की अनुजा बनेंगी! माता यशोदा—सचमुच उनकी पुत्री होने का सौभाग्य प्राप्त हो गया! योगमाया ने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया।

× × ×

माता देवकी—कंस के क्रूर कारागार की वे बन्दिनी—वे चिर दुःखिनी, आज निद्रा में वे किस आनन्द-लोक में हैं? वे तो सदा स्वप्न में भी चीत्कार करके चौंक पड़ा करती हैं। आज यह मन्दस्मित—वर्षों के पश्चात् उनके अधरों ने स्वप्न में यह स्मित पाया है। वे स्वप्न देख रही हैं—'एक अनन्त विशाल उज्ज्वल स्निग्ध प्रकाश और उसके मध्य मृणाल-गौर सहस्रशीर्षा भगवान् शेष। उनके प्रत्येक मस्तक की मणियों से निकलती महाज्योति और उनके कुण्डलाकार भोग पर चरण फैलाये, अर्धोत्थित नवजलधर-सुन्दर वे परम ज्योतिर्मय। उनका मन्दस्मित-शोभित मुखमण्डल, अरुणाभ विशाल लोचन, धनुषाकार पतला भ्रूमण्डल।' माता की दृष्टि ही और किसी अङ्ग पर नहीं गयी। 'कितना सुन्दर, कितना मोहक है यह मुख!' वे देखती रह गयीं उसे।

'अरे, यह किशोर वय और केश पक गये!' स्वप्न में भी माता चौंकीं। घुँघराली काली अलकों में एक—केवल एक उज्ज्वल केश चमक रहा था। सहसा उन भूमा पुरुष ने हाथ मस्त की ओर किया और केश को बिना देखे ही निकाल लिया अलकों से। एक काला केश उसके साथ और आ गया। उन्होंने काले केश को हाथ में रक्खा और श्वेत को बढ़ा दिया माता की ओर। केश तो उड़ा आ रहा है, उड़ा आ रहा है और वह माता के मुख में प्रविष्ट हो गया।' निद्रा टूट गयी। चौंककर उन्होंने देखा। यह क्या—उनके आराध्य भी इसी समय निद्रा से चौंके हैं। उन्होंने भी कुछ ऐसा ही स्वप्न देखा है।

दिन बीते, मास बीते, और सेवकों से कंस ने सुना—'देवकी को सप्तम संतान होनेवाली है।'

'सप्तम संतान!' कंस का भय बढ़ता ही जा रहा है। 'सप्तम—अष्टम इसके पश्चात् ही तो आता है।' उसने सेवकों को अधिक सावधान रहने का आदेश दिया।

'देवकी का गर्भ नष्ट हो गया!' सहसा कंस द्वारा नियुक्त धात्री ने उसे एक दिन सूचित किया। धात्री को स्वयं आश्चर्य था। न तो कोई शरीर में विकृति और न उदर में—ऐसा कैसे हो गया? चाहे जैसे हुआ हो, गर्भ था और उदर में कुछ नहीं है तो दूसरा क्या अर्थ हो सकता है।

'देवकी का गर्भ नष्ट हो गया!' कंस आश्चर्य एवं भय से चिल्लाया। अब तो अष्टम ही अवेगा न?

'गर्भ नष्ट हो गया—भ्रूणस्राव! कितना बड़ा अनर्थ! कितना भयंकर महापाप!' पुर-वासियों में घर-घर यही चर्चा। जब कि बिना वृद्ध हुए या किसी के मारे कोई मरता नहीं था, उस काल में गर्भस्राव—अकल्पित अनर्थ था, महाभयंकर दुर्घटना थी। 'पता नहीं क्या होने वाला है! कंस के दुष्कर्मों का फल है यह।' जितने मुख, उतनी बातें। कंस के भय से किसी ने स्पष्ट कुछ नहीं कहा; किंतु उससे अनेकों ने संकेत किया यह किसी बहुत बड़े अनर्थ की सूचना है।

'अष्टम गर्भ आने वाला है! पता नहीं क्या होगा!' कंस भी कम भयभीत नहीं हुआ अन्तर में; किंतु बाहर उसने उपेक्षा का भाव ही दिखाया।

योगमाया—कहाँ आकर्षित करें वे माता देवकी के इस शुक्लकेश-सम्भूत को? माता रोहिणी के अंक में आने के लिये तो उस नित्य गोलोकविहारी का अग्रज आ रहा है। अच्छा है—व्रजलीला हो—तब तक यह उस संकर्षण में आकर्षित होकर एक रहे। अन्ततः भूभार-हरण के लिये इस महिमामय को मथुरा में व्यक्त भी तो होना है और वह संकर्षण—दाऊ—जब उसका अनुज 'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति' का व्रती है तो उसका अग्रज क्या उसे छोड़कर कहीं जा सकता है। वह तो नित्यव्रजविहारी है। भूमि का संरक्षण तो यह युगावतार ही करेगा; किंतु इस मञ्जुलीला के आविर्भाव में यह एकीभूत रहे अपने उस आदिकारण पर-स्वरूप से। संकर्षण—श्रीबलराम—दाऊ—वे तो नित्य श्रीरोहिणीनन्दन हैं। यह तो उससे एक होकर आगे मथुरा में व्यक्त होनेवाला अंश आया और—एक हो गया।

× × ×

माता रोहिणी—व्रज-सौभाग्य की वे साकार प्रतिमा गोकुल में आयीं और जैसे गोकुल में महालक्ष्मी उनकी छाया का अनुगमन करती आयी हों। व्रजेश्वरी ने समझा उन्हें बड़ी बहिन प्राप्त हो गयी। उन्होंने एक दिन भी तो नन्दभवन में अपने को अतिथि की भाँति नहीं रक्खा। जैसे सदा से यहीं रहती आयी हों, वस्तुभण्डार, सेवक, अन्न, वस्त्र, पूजाद्रव्य, दान की वस्तुएँ—... उन्होंने पहुँचते ही सम्हालना प्रारम्भ कर दिया। उन्हें व्यवस्था देनी नहीं थी किसी को और न उन्होंने किसी से पूछा। वे तो जन्मजात व्यवस्थामयी हैं। क्या कहाँ रहना चाहिये, किसे कैसे रक्षित रखा जायगा, किस वस्तु की कब आवश्यकता होगी, किस सेवक को क्या करना चाहिये—एक राजरानी अचानक गोष्ठाधिप के पूरे प्रबन्ध को सहसा सम्हाल ले, है आश्चर्य जनक ही; किंतु उन्होंने तो व्रजेश्वरी को भी चकित कर दिया और उन्हें व्रजपति की आराधना, गोपियों के सत्कार और गोपूजन तक सीमित रहने को विवश कर दिया। वे बड़ी हैं, उनका आदेश टाला भी कैसे जा सकता है।

उस दिन तो गोकुल में आनन्द-समुद्र ही उमड़ आया। श्रीनन्दराय ने महर्षि शाण्डिल्य को बुलाया है। व्रजेश्वरी ने उन्हें एकान्त में कहा है 'जीजी की गोद पूर्ण होनेवाली है!' गोकुल में, नन्दभवन में बालक आवेगा। अभी तो दोहद के संस्कार ही होने हैं; पर उल्लास तो ऐसा है जैसे वह आ गया उनके मध्य। 'गोकुल में तो भला, एक शिशु आवेगा!' जैसे सबके अपने ही पुत्र होनेवाला है! प्रथम पुत्र—माता रोहिणी का ही नहीं, वह तो गोकुल का प्रथम स्नेहभाजन आ रहा है।

घर-घर उसके लिये पूजन, अनुष्ठान चलने लगे हैं। नन्दभवन तो उत्सवमय हो गया है। और अब वे महा-भागी उदर में तीन मास का तेज लेकर नन्दभवन आयी हैं तो अब नन्दरानी का अङ्क भी तो भरेगा ही।

माता रोहिणी—कितना सौभाग्य, कितना ऐश्वर्य, कितना वरदान लेकर आयी हैं वे व्रजमें ; अभी उनकी वह चिर-प्रतीक्षित संतति आयी नहीं। कितनी महिमामय, कितनी दिव्य होगी वह संतान ! व्रज के लोगों को लगता है एक वर्ष हो गया—जैसे एक युग ही गया। इतने दिन व्यतीत हो गये और अब भी वह अज्ञात स्नेहभाजन आया नहीं। भला, कोई सामान्य संतति हो सकती है ऐसी। लोकोत्तर दिव्य पुरुष ही इस प्रकार दीर्घकाल तक माता के उदर में रहने में समर्थ होते हैं। अभी से पता नहीं कितनी भव्यभावनाएँ उन स्नेहपूर्ण हृदयों में उठने लगी हैं।

दाऊ आ रहा है ! माता रोहिणी को संतति होने वाली है और गोकुल में अनेक गृहों में बालकों के आने के लक्षण प्रकट हो चुके। दाऊ आ रहा है ! उसके नित्य सहचर भी तो उसके लगभग साथ ही आवेंगे। माता रोहिणी जैसे गोकुल के लिये दैवी वरदान हो गयी हैं। उनके प्रति प्रेम, आदर और अब तो भक्ति भी बढ़ती जा रही है सबके मन में। व्रज में और बालक आने वाले हैं—सबको लगता है, यह उन्हीं का प्रभाव है। उन्हीं के आगमन का परिणाम है।

माता रोहिणी—स्वयं उनकी बड़ी विचित्र दशा हो गयी। इतना आनन्द—इतना उल्लास—इतनी उमंग भी मन में आ सकती है, वे सोच भी कैसे सकती थीं। व्रजेश्वरी हठात् अब उन्हें कोई कार्य करने नहीं देतीं; किंतु उनके शरीर में तो अवसाद के स्थान पर जैसे स्फूर्ति का प्रवाह फूट पड़ा है। शक्ति—शक्तिमय ही जैसे शरीर हो गया है। 'किंतु वे अपने आराध्य पतिदेव से दूर हैं' यह विचार आते ही उनकी सब उमंग, सब उल्लास जैसे मूर्छित हो जाता है।

'यह क्या होता है ?' कोई स्वप्न दिखायी पड़े तो बात दूसरी; किंतु दिन में, जाग्रत् दशा में यह क्या देखती हैं वे बार-बार ? एक, दो, चार, पाँच मुखों के, अनेक नेत्रों एवं बाहुओं के, अनेक वर्णों के ये दिव्य पुरुष—उन्होंने जो सुना और जाना है, उसके आधार पर इनमें से अनेकों को वे पहिचान सकती हैं; पर उन्हें अपनी पहिचान में संदेह हो गया है। भला, ब्रह्माजी, भगवान शङ्कर, देवराज इन्द्र, गणेशजी, स्वामिकार्तिक, यम, वरुण आदि देवता क्यों उन्हें प्रणाम करेंगे। ये दिव्य-पुरुष तो बार-बार आते हैं, बार-बार हाथ जोड़कर कुछ स्तुति-सी करते हैं, बार-बार उनकी प्रदक्षिणा करते हैं। वैसा ही वेश, वैसे ही वाहन—पता नहीं देवताओं के समान ये दिव्यपुरुष कौन हैं।

कोई वृद्ध, कोई युवा, कोई बालक और उनमें वे तेजोमय चार दिगम्बर शिशु—जटा, माला, तिलक,—माता जानती हैं कि ये ऋषिगण होंगे; पर देवताओं की भाँति वे भी क्यों उनकी स्तुति-प्रदक्षिणादि कर जाया करते हैं ?

माता तक ही यह आश्चर्य सीमित नहीं है। उनके समीप रहनेवाली दासियाँ तक जानती हैं कि आजकल उनके लिये सहसा अद्भुत सुगन्ध से कक्ष का परिपूर्ण हो जाना साधारण बात है। चाहे जब अलक्ष्य भाव से सहसा दिव्यपुष्प गिरने लगते हैं और वे प्राङ्गण में ही नहीं, माता के ऊपर कक्ष में भी गिरते हैं और इतने गिरते हैं कि उनकी अच्छी ढेरी लग जाती है। वे दिव्यसुमन—वे तो मुरझाना जानते ही नहीं।

माता के शरीर से अद्भुत कान्ति निकलने लगी है। उन्हें स्वयं लगता है, अलक्ष्य भाव से अनेक शक्तियाँ उनकी रक्षा और सेवा कर रही हैं। कौन होंगी वे ? माता स्वयं सोच नहीं पातीं। उस दिन महर्षि शाण्डिल्य के नेत्र प्रेमाश्रु से भर आये थे। उन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया था और कह गये थे—'जो आरहा है, वह समस्त बल का अधिष्ठाता है। समस्त प्राणियों के लिये परित्राण है।' और जाने क्या क्या। श्रीव्रजेश्वर कहते हैं—'श्रीनारायण प्रसन्न हुए हैं !' माता को लगता है—कुछ अद्भुत तो है, पर भला क्या अद्भुत होगा ? एक शिशु—शिशु ही तो आवेगा !

× × ×

बुधवार का मध्याह्न—स्वाती नक्षत्र—भाद्रशुक्लषष्ठी, की वह परम मङ्गल धन्य तिथि—दाऊ आया ! व्रज-सौभाग्य की वह मूर्ति, गोलोक का वह नित्य अग्रज, तेज-ओज-बल-स्नेह-सौहार्द की वह

मञ्जु प्रतिमा—व्रजेश्वर ने सुना और आनन्दातिरेक में एक क्षण वे ज्यों-के-त्यों रह गये। गोकुल उमड़ आया। आचार्य शाण्डिल्य तो समाचार पाने से पूर्व ही नन्दभवन की ओर चल चुके थे। वे सर्वज्ञ महर्षि—वे आत्माराम भी कदाचित् आतुर अभीप्सा लिये इस शिशु के आगमन-क्षण की ही प्रतीक्षा कर रहे थे।

दाऊ आया—गोपों के जयनाद, शङ्ख एवं तूर्य-घोष में देव-दुन्दुभियों का नाद भी मन्द प्रतीत होने लगा। आकाश के सुमनों और गोप-गोपियों के करों से उछलते दधि-बिन्दुओं में जैसे प्रतिद्वन्द्विता चल पड़ी। गोपियों के कण्ठ भाव-क्षुब्ध हो उठे और मैया के आनन्द का तो पार ही नहीं है। वह तो समझ ही नहीं पाती कि किसे कितना क्या देना है। जैसे आज सब देकर—विश्व का समस्त वैभव देकर भी वे सन्तुष्ट नहीं होंगी। सन्तुष्ट तो नहीं हो रहे हैं उनके क्षुद्रतम सेवक एवं सेविकाएँ, वे भी अपना सर्वस्व इस उमंग में किसी को दे देना चाहते हैं; फिर जो व्रजपति के अपने हैं, जो गोष्ठ रखते हैं, उन गोप-गोपियों की क्या चर्चा कोई करे। श्रीरोहिणीजी की गोद भूषित होने ही वाली है!' व्रजपति ने गुप्त रूप से मथुरा के कारागार में यह संवाद भेज दिया था। वहाँ का आदेश है—'इसे प्रकट न होने दिया जाय!' कंस अत्यन्त दुष्ट है। श्रीव्रजेश्वर का हृदय—कितनी उमंग है उसमें और व्रजरानी—वे तो असन्तुष्ट-सी हैं। उन्हें किसी प्रकार समझाया है श्रीनन्दराय ने—'बालक के जीवन का प्रश्न है!' उत्सव न मनाने में ही कुशल है। यह जो कुछ हो रहा है, वह तो नित्य उत्सवमय गोकुल की सहजचर्या है। उत्सव तो मथुरा से छिपाना ही है।

दाऊ आया—भाद्रपद की बढ़ी हुई सरिताओं का जल सहसा निर्मल हो गया। सरों में सहसा रंग-बिरंगे कमल विकसित हो गये। लताएँ पुष्प-गुच्छों से और तरु फल-भार से झूम उठे। रत्नाकर ने सुदीर्घ लहरों से अपने पुलिन को मुक्तामय कर दिया। जैसे वह अनन्त भी अपने आराध्य के आगमन में जगती को अपने उपहार न्योछावर करने को आतुर हो उठा हो।

दाऊ आया—ब्राह्मणों के आहवनीय कुण्डों में अग्निदेव बिना आहुति के ही प्रज्वलित हो उठे। ध्यानस्थ ऋषियों के मन सहसा अतर्क्य आनन्द से आपूरित हो गये। गौओं ने हुंकार की और उनके स्तनों से दुग्ध-धारा चलने लगी। दिशाओं में जैसे कुछ अद्भुत आनन्द प्रदीप्त हो गया हो एक बार ही।

दाऊ आया—सहसा असुरों के हृदय काँप गये। उनके आयुध छूट गये हाथों से और वे क्यों खड़े रहने में असमर्थ हो रहे हैं, यह समझना सरल नहीं था उनके लिये। उन्हें लगा, कोई अलक्ष्य कर उनके गले की ओर बढ़ा-बढ़ा-बढ़ा आरहा है। भय से एक बार ही विह्वल हो गये वे। द्विविद ने एक शिखर से दूसरे पर कूदने की इच्छा की थी—जीवन में पहिली बार वह लक्ष्यच्युत हुआ, गिरा और आहत हुआ। प्रलम्ब मल्लयुद्ध करने उठा था, वह स्वतः स्खलित हुआ—ऐसा उपहास उसका कभी नहीं हुआ था और कंस—उसकी वाम भुजा, वाम नेत्र एक साथ क्यों फड़के? चौंककर उसने हाथ रक्खा खड्ग की मूठ पर और यह खड्ग आज अपने-आप कोश से खिसक कर धरा पर गिर रहा है! यही या ऐसा ही कुछ—सभी असुरों को अमङ्गल चिह्न प्राप्त हुए। दाऊ—वह दुष्टदलन जो आ गया भूमि पर।

दाऊ आया—जैसे पूरा व्रज आज नन्दभवन में ही एकत्र हो जायगा। गोष्ठ से गायें, पशु तक भाग आये हैं और वे भी नन्दद्वार से बाहर एकत्र होकर बार-बार हुंकार कर रहे हैं। सब जयनाद कर रहे हैं तो वे क्यों पीछे रहें, उन्हीं का तो यह पालक आया है।

दाऊ—प्रभात जाम्बूनद भी ऐसी द्युति कहाँ से पाये! प्रसूतिका-गृह में जैसे कोई अपूर्व सुधाकर माता रोहिणी की गोद में आ बैठा है। गोद में ही तो आ बैठा वह। माता को तनिक-सी निद्रा—एक आनन्द भरी तन्द्रा-सी ज्ञात हुई और सहसा उनका हृदय गद्गद हो गया। उनकी गोद में यह अलौकिक प्रकाश की मञ्जुमूर्ति, यह नन्हा-सा सुकुमार माता की पूरे चौदह महीने की प्रतीक्षा के पश्चात् आया और आते ही वह जैसे गम्भीर हो गया है। जैसे एकाकी आना उसे रुचा नहीं, वह गम्भीरता से किसी की प्रतीक्षा करने लगा है अभी से। उस कक्ष के स्निग्ध मञ्जु प्रकाश ने

ही धात्री को आकृष्ट किया, अन्यथा माता तो आनन्दमग्न—पता नहीं कब तक अपने इस लाल को नीरव एकटक देखती रहतीं। तभी-तभी स्मरण आया माता को—'पतिदेव समीप होते!' आनन्द विषाद में डूब गया उनका।

दाऊ—अभी उसके लिये नान्दीमुख श्राद्ध होगा। बाबा प्रस्तुति में लगे हैं और महर्षि शाण्डिल्य तो विप्रों के साथ आ भी गये। दाऊ—वह भला क्या रोना जाने। वह तो पता नहीं कब, कैसे माता की गोद में पहुँच गया। वह तो मैया को देख रहा है—एकटक मैया को देख रहा है जैसे कुछ नेत्रों में पूछता हो, और मैया—व्रजेश्वरी ने उठा लिया उसे गोद में।

दाऊ आया—कंस के उस क्रूर कारागार में भी संदेश तो किसी न किसी प्रकार व्रजेश्वर ने पहुँचाया ही और यह संदेश—किंतु आनन्द अन्तर से नेत्रों तक ही आबद्ध हो गया। एक प्रति-संदेश आया गोकुल वहाँ से—'जन्म-संस्कार के अतिरिक्त शेष संस्कार स्थगित रहें—भाग्य सुयोग दे तो पीछे होते रहेंगे!' मन मारकर श्रीनन्दराय को वह स्वीकार करना है।

× × ×

दाऊ आया—वह गोकुल में क्या आज आया है? वह तो नित्य ही वहीं का है; पर अब से उसके प्रकट होने के लक्षण व्यक्त हुए—व्रज तो उसी दिन से नित्य नूतन शुभ-संवादों से परिपूर्ण होने लगा है और अब तो वह आ गया है न स्वयं माता की गोद में। अभी परसों भाद्रशुक्ल षष्ठी को ही वह आया है और आज यह संवाद आया व्रजपति के समीप बरसाने से—'श्रीवृषभानुजी की भाग्यमयी पत्नी की गोद अपने पिता के घर ही कन्या से परिपूत हुई है। बरसाना व्रजेश्वर के स्वागत की आतुर प्रतीक्षा में पलकें बिछाये है!'

दाऊ आया है न—उसके जन्म-महोत्सव की क्या परिसमाप्ति होनी है। श्रीव्रजराज आतुरतापूर्वक बरसाने चल पड़े हैं और अब तो चला यह क्रम। अब तो उन्हें किसी-न-किसी प्रधान गोष्ठपति के पुत्रोत्सव का सम्भार नित्य ही स्वीकार करना है। उनके गृह में दाऊ जो आ गया है और सब कहते हैं—अब नन्दरानी की अङ्क भरकर रहेगी। बाबा से पूरा बरसाना अभी से तो यही पूछने को उत्सुक है, इस कुमारिका का टीका वे कब ले रहे हैं—जैसे अब तो उनकी स्वीकृति की ही देर है।

श्रीकृष्णचन्द्र

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥—गीता

भगवान् अनन्त के पश्चात् तो उन अनन्तशायी को ही आना चाहिये न! वसुदेवजी ध्यान कर रहे थे। कंस के कारागार के वे बन्दी थे और थे भी बन्दीगृह में ही, लेकिन वे अन्ततः महाराज उग्रसेन के जामाता थे। कंस ने उन्हें तथा देवकी को शृङ्खलाएँ (बेड़ियाँ) पहिना दी थीं; किंतु उनकी सुविधा का प्रबन्ध भी बन्दीगृह में था। अवश्य ही वह प्रबन्ध बन्दीगृह का था, पर वसुदेवजी अपनी पत्नी के साथ अपने उस बन्दीकक्ष में एकाकी ही रहते थे। कंस के द्वारपाल भी वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते थे। उनकी सेवा आदि की समुचित व्यवस्था थी।

हाँ—वसुदेवजी ध्यान कर रहे थे अपने आराध्य भगवान् अनन्तशायी नारायण का। आज भगवान् नारायण जैसे प्रत्यक्ष हो गये हैं। उन शङ्ख-चक्रधारी प्रभु के करों में यह एक काला केश—केश तो उन करों से छूटा और यह आया—आया और जैसे वसुदेवजी के मुख में प्रविष्ट हो गया हो। हैं—चौंके वे ध्यानस्थ! हृदय में एक साथ मानों सहस्र-सहस्र आदित्य उदित हो गये हों। वह महाज्योति और उसके मध्य पीताम्बर-परिवेष्टित सायुध चतुर्भुज सजल-जलद-नील भगवान् नारायण—वसुदेवजी स्थिर हो गये, मन डूब गया। उन्हें पता नहीं कि उनकी पत्नी कितनी भक्ति से उन्हें प्रणाम कर रही हैं। उनके पतिदेव में यह जो सहसा महाप्रकाश प्रकट हो गया—देवकी को आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने तो सदा से अपने पति को परमात्मरूप ही माना है। आज कृपा करके अपना वह रूप प्रकट किया उन्होंने।

'वसुदेवजी!' कंस सेवकों से समाचार पाकर कारागार में आया; किंतु वसुदेवजी के सम्मुख तो सम्बोधन भी अधूरा रह गया। उसके महाशूर रक्षकों ने समाचार दिया था कि 'वसुदेवजी की ओर तो वे अब देखने का ही साहस नहीं कर पाते। पता नहीं क्या हो गया है, उनके सम्मुख आते ही हृदय बैठने लगता है। अब यदि वे कारागार से बलपूर्वक निकलना चाहें तो उन्हें रोका नहीं जा सकता।' कंस क्या कहे, क्या करे—उसकी बुद्धि जैसे है ही नहीं। उसे लगा, वह यहाँ ठहर नहीं सकता। उसने अपने सम्बोधन का उत्तर पाने की भी प्रतीक्षा नहीं की; जैसे आया था, लौट गया। इतना तेज—जैसे दूसरे सूर्य ही भूमि पर आ गये हों! कैसे कोई ठहरे उनके सम्मुख।

'कल व्यवस्था करूँगा, तब तक सावधान रहो! द्वार सब बंद कर दो भली प्रकार।' कंस ने सेवकों को आदेश दिया। उसे सोचने को अवकाश चाहिये। वसुदेवजी तो सबके लिये दुर्धर्ष हो गये हैं। अब उन्हें कैसे नियन्त्रित रक्खा जा सकता है।

वसुदेवजी—वे तो जैसे किसी दूसरे लोक में पहुँच गये हैं। यह लोक, यह बन्दीगृह, यह कंस और उसके सेवक—जैसे वे कुछ नहीं देखते। वह सान्द्रघनद्युति पीताम्बरधर चतुर्भुजमूर्ति, वह महाज्योतिर्मय साकार आनन्दघन—वह उनके हृदय में स्थिर हो गया है। वे उसी आनन्द में निमग्न हैं। क्या करते हैं, क्या करना है, जैसे कुछ पता नहीं उन्हें।

श्रीदेवकीजी ने पति को देखा—वे श्रीशूरसेन-तनय—उनके सम्पूर्ण शरीर के रोम खड़े हो गये हैं, उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु झर रहे हैं, वे जैसे सारे कार्य परप्रेरित कर रहे हों और उनके अङ्गों से जो यह परमतेज बन्दीगृह को प्रकाशित करता निकल रहा है—अत्यन्त संयत चित्त से,

श्रद्धापूर्वक देवकीजी ने पति के करों को अपने कर में लिया और.......और वे स्वयं उसी आनन्द में निमग्न हो गई। पारस को स्पर्श करके सुना है लोहा स्वर्ण हो जाता है; किंतु उस नील पारस का स्पर्श पारस ही कर देता है। हृदय-कमल की कर्णिका पर वह नीलोज्ज्वल विद्युद्वसन शङ्ख-गदा-चक्र-पद्मधारी चतुर्भुज किशोरमूर्ति मन्द-मन्द हँसती सी खड़ी है। जैसे एक आनन्द की धारा पति-देह से अपने देह में मन की गति से आयी और वह हृदय में घनीभूत होकर मूर्त हो गयी। देवकीजी स्थिर हो गयीं।

वसुदेवजी जैसे समाधि से उत्थित हुए हों। उन्हें अबतक सचमुच यह सब दृश्य दीख-कर भी नहीं दीखा था। अब वह महानन्दमूर्ति उस रूप में हृदय में नहीं। वह तो शम्पा की भाँति चमकी और वह गयी—वही तो गयी और नेत्र पत्नी के मुख पर स्थिर हो गये। यह स्निग्ध प्रकाश—अन्तर के उस प्रकाश की एक झलक जिसे मिलती है, वह तो युगों तक उसे भूल ही नहीं पाता। वही तो अब इस मुख से निकलने लगा है।

'सर्वेश ने मुझे पिता का गौरव दिया और अब यह माता बन गयी है!' वसुदेवजी को कुछ समझना-समझाना नहीं था। जो उनके अन्तर में स्थिर—मूर्त रहा है, उसकी आलोक-रश्मि की छाया पाकर भी कुछ अज्ञात या अज्ञेय नहीं रहता।

'यह शोभा, यह स्निग्ध आलोक!' वसुदेवजी देखते रहे। 'वे जगदाधार जगन्निवास इस मन्दिर में आ विराजे हैं। जगत् पवित्र हो जाता इस लोकोत्तर छटा से।' एक बार दृष्टि इधर-उधर गयी। यह प्रसाधन, यह बन्दीगृह—भला यहाँ क्या शोभा—यहाँ क्या विकास उस सौन्दर्यराशि का। जैसे अग्नि की शिखा रोक दी गयी हो भस्म के आच्छादन में।

× × ×

कंस को रात्रि में निद्रा नहीं आयी—वसुदेव का क्या हो?' वह कोई मार्ग नहीं पाता। प्रातः काल उसे कारागार आये बिना चैन कहाँ। वह किसी से कैसे कहे कि वसुदेवजी को वह अब दबाने में अपने को असमर्थ पाता है। कारागार पर सभी असुर नायक नियुक्त हैं; पर वे क्या पर्याप्त हैं? यदि वसुदेवजी इस समय शस्त्र लेकर विरोध करें—शस्त्र तो वे सहज ही किसी के हाथ से छीनने में समर्थ लगते हैं।

'अच्छा!' कंस ने कारागार में आकर जो देखा, उससे उसका आश्चर्य दूर ही हुआ। वसुदेवजी में वह तेज नहीं जो कल था; पर तेज कहीं गया नहीं। यह तो अब भी है। यह क्या?—देवकी के शरीर से वही तेज निकलकर सम्पूर्ण बन्दीगृह को प्रकाशित कर रहा है। 'यह दीना, दुःखिनी देवकी और इसके मुखपर कैसा पवित्र उज्ज्वल स्मित है! मुझे देखकर भी इसे न तो भय लगता और न यह चौंकी। ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ। यह तो मुझे देखते ही भय से काँपने लगती थी, पीली पड़ जाती थी और इसके कण्ठ से शब्द नहीं निकल पाता था। इतना प्रकाश मनुष्य में तो होता नहीं। इस देवकी में तो ऐसा भाव कभी नहीं आया। यह कभी ऐसी नहीं रही।' कंस देखता रहा—देखता रहा दो क्षण और तब भय से स्वतः उसके पद पीछे हट गये। वह काँप गया।

'हरि—मेरा वह प्राणघातक शत्रु निश्चय इसकी हृदय-गुहा में आ गया!' कंस ने इधर-उधर देखा, कोई नहीं आया उसके साथ। कुछ भी हो, यह बन्दीगृह उसकी बहिन का अन्तःपुर है। उसी ने तो आदेश दे रक्खा है कि कोई उसके साथ भी भीतर न आये। शत्रु आ गया—सामने आ गया! इस देवकी की हृदयगुहा में ही तो है! कंस—मनस्वी कंस क्या भाग जाय? हृदयगुहा में—तब वहीं उसे मार दिया जाय? उसका हाथ खड्ग की मूठ पर गया। कह नहीं सकते भय से आत्म-रक्षा के लिये या आघात की भावना लेकर।

'कहीं मैं प्रहार करूँ और वह व्यर्थ हो जाय!' उसे स्मरण आया कि प्रह्लाद पर हिरण्य-कशिपु के समस्त प्रहार व्यर्थ हो गये थे। हाथ जहाँ-का-तहाँ रह गया। मस्तक झुक गया। वह सोचने लगा—'इसमें तो सन्देह नहीं कि मेरा प्राणहर्ता शत्रु ही इसके हृदय में है; पर इस समय

करना क्या चाहिये ? मेरा पराक्रम यदि व्यर्थ हो जाय—मेरी शक्ति की धाक ही नष्ट हो जायगी। असुर सहायकों का क्या ठिकाना और यदुवंशी तो अवसर की प्रतीक्षा में ही हैं। धाक गयी और.... नहीं, ऐसा उपाय होना चाहिये कि पराक्रम व्यर्थ न जाय।' उपाय कहाँ मिल रहा है मन को।

'यह स्त्री है, मेरी छोटी बहिन है और उसपर भी गर्भवती है ! यदि मैं इसे मार दूँ, मेरा यश नष्ट हो जायगा ! मेरी बड़ी निन्दा होगी।' मन पराजय मानना जानता ही नहीं और वह भी आसुर मन। कंस के मन ने अपनी दुर्बलता का रूप परिवर्तित किया—मार तो देगा; भला, उसका पराक्रम कैसे व्यर्थ होगा, पर—भीतर की आशङ्का ही यह 'पर' बन गयी है।

'लोग निन्दा ही तो करेंगे, कर लेंगे और जिसमें शक्ति है, उसकी निन्दा करने का साहस कौन करेगा; पर........' अन्तर में जो भय है, वह आघात करने के स्थान पर पहुँचाकर हटा देता है। 'ऐसा कर्म तो घोर पाप है। इससे तो ऐश्वर्य—लक्ष्मी भी तत्काल नष्ट हो जाती है। जिस ऐश्वर्य के लिये सब उद्योग है, यदि वही न रहे तो........।' विचार बड़ी तीव्रता से चल रहे हैं। जैसे मस्तक में अंधड़ चल रहा हो।

'लक्ष्मी कैसे चली जायगी !' ठीक तो है, जो देव-विजयी है, जो हरि को नष्ट करने जा रहा है, उसके ऐश्वर्य का लोप करने का साहस कौन-सी देवशक्ति करेगी। 'यदि तत्काल यह हरि प्रकट हो जाय और मार डाले ? आयु भी समाप्त हो जायगी आज ही !' सचमुच यह तो बड़ी भयङ्कर बात है। मायावी हरि का क्या ठिकाना। वह प्रह्लाद के लिये पत्थर के खम्भे को फाड़कर निकल पड़ा था और यहाँ तो हृदयगुहा में है ही। इस प्रकार सहसा मृत्यु को आमन्त्रण देना तो बुद्धिमानी नहीं है।

'अच्छा, इस बिचारी को जीने दो अभी। अत्यन्त नृशंस बर्ताव अच्छा नहीं; क्योंकि मरने पर ऐसे नृशंस को लोग गाली देते हैं और निश्चय ही ऐसा शरीराभिमानी घोर नरक में जाता है।' जैसे शिशुओं की हत्या तो नृशंसता नहीं थी और लोग उससे मरने पर प्रशंसा करेंगे। अपनी दुर्बलता, अपने भय का अहंकारी मानव इसी प्रकार उन्नत रूप देकर अपने को ही धोखा दिया करता है।

कंस ने किसी से कुछ कहा नहीं। वसुदेवजी एक बार उसे खड्ग पर हाथ ले जाते देख चौंके थे। वह महापिशाच—उसके लिये कुछ अकार्य नहीं और वह आघात करता तो रोकने में समर्थ भी कौन था। लेकिन अपने-आप ही वह तर्क करता रहा। निखिललीलामयी योगमाया उसकी बुद्धि का भी तो सञ्चालन करती हैं। मस्तक झुकाये हुए ही वह लौटा कुछ सोचता-सा और द्वार से बाहर हो गया। किसके सिर भूत चढ़ा है जो इससे बोलने जाय।

× × ×

माता देवकी तो विश्ववन्द्य हो गयी हैं। उन निखिलदेवमय की समस्त देवता नित्य ही स्तुति करते हैं। वे देखती हैं और जानती भी हैं—'ये चार मुख के अरुणवर्ण लोकस्रष्टा, ये त्रिनयन नीलकण्ठ अहिभूषण शशाङ्कशेखर, ये वज्रधर देवराज, ये दण्डपाणि महिषवाहन।' वे भले सबको पहिचानती न हों, इन प्रधान देवताओं को तो जानती ही हैं। ये सब प्रकाशरूप, रत्नमाला, दिव्य-देहधारी लक्ष-लक्ष वाहनों, विमानों से आते हैं—नित्य गगन में दूर विमान छोड़कर वे आकर उनको बद्धाञ्जलि मस्तक झुकाते हैं। पता नहीं क्या-क्या स्तुति-सी करते हैं और प्रदक्षिणा करके तब बड़ी नम्रता से जाते हैं।

वसुदेवजी देखते हैं कि सहसा दिव्यगन्ध बार-बार प्रकट होती है। बार-बार कक्ष दिव्य सुमनों से पूर्ण हो जाता है। उनको कोई आश्चर्य नहीं। 'नारायण उनके यहाँ आ रहे हैं !' उन्हें विश्वास है और पत्नी के कुतूहल को उन्होंने शान्त कर दिया है। अब कंस सदा की भाँति नहीं आता। द्वार-रक्षा का प्रबन्ध कठोर हो गया है। द्वार सदा बंद ही रहता है। अब कोई उनसे मिलने भी नहीं आ पाता; किंतु मन में अज्ञात रूप से एक अद्भुत आश्वासन—आनन्द का भाव आ गया है। पत्नी तो सदा किसी दूसरे लोक में रहने लगी हैं। वे तो जैसे अब जानती ही नहीं कि वे कहाँ हैं।

एक अलक्ष्य आनन्द का भाव—कभी-कभी कंस का स्मरण आता है और तब दोनों चौंक पड़ते हैं; किंतु जैसे दूसरे ही क्षण सब भूल जाता है। कोई है, कोई अज्ञात रूप से साथ लगा रहता है सदा और उसकी शक्ति रक्षा करने को नित्य उद्यत है—हृदय को पता नहीं क्यों, यह निरन्तर अनुभव होता है और उस शक्ति को वे जानें या न जानें, उस अज्ञेय अज्ञात के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रहा है।

वे लोकपितामह—ये तो झूठ नहीं बोलते। ये तो प्रायः नित्य जाते-जाते कह जाते हैं, आश्वासन दे जाते हैं—'यह हम सबों का परम सौभाग्य है कि साक्षात् परम-पुरुष भगवान् आप की कुक्षि में पधारे हैं। वे हमारे कल्याण के लिये ही आये हैं। यह कंस—यह भोजवंश का अधिपति तो अब मरने ही वाला है, आप इससे भय न करें। अब तो आपके ये तनय यदुवंश की रक्षा करेंगे!' ये भाग्यविधाता—ये स्वयं ऐसा कहते हैं तो बात ठीक ही होनी चाहिये!

× × ×

भाद्रपद की वह अन्धकारमयी रजनी—जैसे असुरों के अत्याचार के तमस् में सत्व तिरोहित हो गया और जगत् की वह वस्तुस्थिति मूर्त हो गयी। ठीक आधीरात—अत्याचार की शक्ति अपनी पूरी प्रबलता में। प्रकाश की एक किरण नहीं—आशा की एक रेखा नहीं। समस्त जगत् गाढ़ निद्रा में निमग्न—जैसे सम्पूर्ण विवेकशक्ति मोहाच्छन्न हो गई हो। जब भी कोई हृदय इस प्रकार सर्वथा आशाहीन—निरुपाय, मोहम्लान होता है और उसका अन्तःकरण अपनी अन्तश्चेतना के साथ बन्दी हो उठता है—प्रकाश के अप्रतिहत प्रादुर्भाव का वही क्षण है—वह प्रकाश जो फिर आच्छन्न नहीं होता। मानस में जो सत्य है—जगती के जीवन में भी वही सत्य है। समस्त देव-शक्तियाँ जब निरुपाय हो जाती हैं, जब समस्त सात्विकभाव तामस से आच्छन्न हो जाते हैं—वही अवतार का स्वर्णक्षण बनता है विश्वमानस में।

भाद्रपद कृष्णपक्ष, अर्धरात्रि, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र, सिंहस्थ सूर्य और—और मेरे बस की बात नहीं, 'शान्तर्क्षग्रहतारकम्' तथा 'सर्वे नक्षत्रताराद्या चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम्'। जो नित्य सबसे प्रदक्षिणा प्राप्त करता है, उसकी न सही, ग्रहादि ने उसके जन्मकाल को ही दक्षिण कर लिया। भाद्रपद की रात्रि; पर आकाश स्वच्छ, निर्मल, एक-एक तारक पूर्ण प्रकाशित, दिशाएँ स्वच्छ और वायु में झंझावेग के स्थान पर मन्द मत्त गति, वर्षा की बढ़ी नदियों का जल सहसा सुनिर्मल हो गया और रात्रि में भी कमल खिल उठे, भ्रमर गुंजार करने लगे। वन में नीड़ में सोये पक्षी जगे और आनन्द से चहकने लगे, जैसे प्रकृति के अज्ञात करों में जो आनन्दवारिधि का उन्मद सत्व आया है, उसने तामस को पी लिया। निद्रा, आलस्य, प्रमाद, श्रान्ति—पता नहीं कहाँ गया सब। जल में सरोज, उत्पल, कुमुद—सब साथ खिले और भ्रमरों ने गुंजारसे उनकी सुरभि को संगीत दिया तो वन में पादप, वीरुध्, लता, तृण—सब एक साथ किसलय, दल, पुष्प, फलों से झूम उठे। मधु धाराएँ चलने लगीं उनसे और पक्षियों के गान ने उनके मूक उल्लास को वाणी दे दी। वर्षों से भस्मपूरित थे आहवनीय कुण्ड, कंस के त्रास के कारण भगवान् हव्यवाहन समिधाओं की भी आहुति न पाकर अन्तर्हित हो गये थे। एकाएक द्विजातियों के नेत्र आनन्दाश्रु से पूरित हो गये जब उन्होंने देखा कि उनके अग्निकुण्डों से लाल-लाल लपटें उठ रही हैं, अग्निदेव स्वयं प्रकट हो गये हैं और दिशाओं में यह जो सुरभि पूर्ण हो गई है—अभी तो कहीं आहुति पड़ी ही नहीं, पर आज की यह सुगन्ध क्या आहुति की है? गोष्ठ में गायों ने हुंकार की और उनके स्तनों से धाराएँ चलने लगीं।

वह आ रहा है—वह विश्व के अन्धकार का शाश्वत प्रतिकार आ रहा है, वह आ रहा है कंस के बन्दीगृह में; पर क्या उसके आगमन का स्वागत-समारोह बन्दी हो सकता है। जगत् के वे नित्य-पूज्य बन्दी दम्पति—कंस की क्रूरता उनके उत्साह के आरम्भ को ही रोक सकती है; किंतु यदि दिन होता—जगत् के नेत्र देख लेते कि जैसे सम्पूर्ण मधुवन ही स्वस्तिक, सर्वतोभद्रादि मङ्गल मण्डलों से स्वतः सुसज्ज हो गया है। तृणदल, पुष्प, मणियों के मञ्जु योग से आविर्भूत ये दिव्यमण्डल, गिरिशृङ्ग तो जैसे दीपाधार हो गये हैं। आलोक की पंक्तियाँ, मण्डल, रेखाएँ नहीं हैं ऊपर—

उसपर तो ज्योतिर्मयी मणियों का इतना प्रचुर प्राकट्य हुआ है कि वे प्रज्वलित प्रकाशस्तम्भ हो रहे हैं और इतना आमोद, इतना आनन्द क्या कोई उत्सव दे सकता है—यह जो हृदय को, मन को, प्राण को अपने में निमग्न करता कोई अपूर्व आनन्दवारिधि अन्तर से अकस्मात् उमड़ पड़ा है प्रत्येक असुरद्रोही—साधु अन्तःकरण में। असुर—अभी उनकी चर्चा व्यर्थ है। जैसे जगत् का सम्पूर्ण तमस् वहीं घनीभूत हो गया है। अन्तरिक्ष में कोई अज्ञात लीलामयी कुछ कर रही हैं—असुर-हृदय अमङ्गल की अनुभूति के भी योग्य अभी नहीं। अभी तो वहाँ जडता—अज्ञान, घोर निद्रा का साम्राज्य है। जो अपार आनन्द विश्व में उमड़ पड़ा है—आसुर तमसाच्छन्न अन्तःकरण उसे निद्रा के आनन्द के रूप में ही पा सकता है। वे सो रहे हैं—घोर निद्रा में सो रहे हैं और सो तो गया है नित्य उद्विग्न, नित्य भयातुर कंस। इस उन्मद आनन्द ने उसे भी प्रसुप्त कर दिया है।

पृथ्वी का यह सौभाग्य; किंतु जो धरा का भारहर्ता है, वही तो अमरों का त्राता भी है। धरा का मङ्गल ही तो अमरावती का मोद है। मर्त्य की शान्त श्रद्धा ही तो देवताओं की पुष्टि होती है। पृथ्वी के इस आमोद में गगन क्या पृथक् रह सकता है और फिर उस सर्वेश के स्वागत का सौभाग्य सत्व के अधिष्ठाता कैसे छोड़ दें, जब वह उसी सत्व की प्रतिष्ठा के लिये आ रहा है। दूर-दूर सागरतट से मेघों ने मन्द-मन्द गर्जन प्रारम्भ किया, अमरों की दुन्दुभियों ने उसे द्विगुण किया। गन्धर्वों की वीणा झंकृत हुई और अप्सराओं का नृत्य एवं किन्नरियों का कलकण्ठ आज सफल न हो तो होगा कब। नन्दन-कानन के दिव्यसुमन धरा के स्पर्श से धन्य होने के लिये कारागार की उस पावन भूमि पर अपना आस्तरण बढ़ाने लगे। देवताओं ने ही पुष्पवृष्टि की हो सो नहीं, तप एवं सत्य लोकों के सिद्धों, ऋषियों, तापसों ने भी अपनी सुमनाञ्जलि समर्पित की उस वन्दनीय बन्दीगृह के धन्य कक्ष में।

धरा पर—कानन में, ग्रामों में, नगरों में, पर्वतों पर, जल पर—सागर में, सरिताओं में, सरों में, वापियों में, नभ पर—गगन में, वायु में, स्वर्ग में—सब कहीं उमंग, उल्लास, आमोद-विलास जैसे उमड़ पड़ा है, वह आ रहा है—वह आनन्दसिन्धु आ रहा है। वह अनन्तशायी अपनी परमोज्ज्वल विभूति का वैभव लिये इस अन्धकारमयी अर्धनिशा में ही आ रहा है तो यह सत्व का उद्दाम उद्रेक कैसे सीमित रहे। वह कृष्णचन्द्र—वह लीलामय है ही समस्त विषमताओं का अद्भुत एकीभाव। वह आ रहा है और यह अन्धकार में उल्लास, रात्रि में तमस् का अभाव और इस अपार असीम सत्वोद्रेक में भी असुरों की घोर निद्राजडता—वह नित्य अद्भुत, नित्य विचित्र जो आ रहा है।

× × ×

अर्धरात्रि—ठीक अर्धरात्रि और वह प्राची-क्षितिज पर प्रकाश का ज्योतिर्बिम्ब आया। वह भागा अन्धकार, वे दिशाएँ शीतल स्निग्ध प्रकाश में आलोकित हुईं और वह आया जगती के अन्धकार को भिन्न करता मानव की युग-युग की आशा का चिन्मय आलोक, वह धन्य हुई जगन्मानस की नित्यप्राची जगज्जननी माता देवकी, वह क्रूरता के कारागार में मुक्ति का अमर आलोक आया—आया वह, गगन पर सुधांशु के प्राकट्य के क्षण में; किंतु उसकी मन्द गति से नहीं, एक साथ वह आलोकमय आविर्भूत हो गया। वह अष्टमी के चन्द्र-सा नहीं, वह नित्यपूर्ण, नित्य निष्कलङ्क श्रीकृष्णचन्द्र।

श्रीकृष्णचन्द्र—कमलदल-विशाल अरुणाभ लोचन, विशाल चतुर्भुज किशोर श्रीविग्रह, शङ्ख-गदा-चक्र-कमलधारी अरुण कर, वक्षपर श्रीवत्स, गले में कौस्तुभ, पद्मपराग-पीताभ तेजोमय पीताम्बर और स्निग्ध नीलकान्त मेघसुन्दर अंगकान्ति। वैदूर्य मणियों का किरीट, कपोलों पर सहस्र-सहस्र सूर्यकान्त से झलमलाते कुण्डल, भालपर कुटिल अलकें, मणिमय जगमग करते कङ्कण, काञ्ची, केयूरादि आभरण। माता देवकी को क्या अनुभूति हुई—कैसे कहा जाय। किसी युग-युग के सन्तापतप्त परम दुःखी को सहसा उस अपार आनन्द-सिन्धु का साक्षात् हो—कैसे कल्पना में आवेगी उसकी दशा। माता का शरीर, इन्द्रियाँ, मन, प्राण—सब स्थिर हो गये—वह तो जैसे अन्तर्बोध डूब ही गयी।

श्री वसुदेवजी ने देखा उस अपार आलोक को—एक बार देखा और—मन में जागृति आयी 'ये श्रीहरि, ये मेरे पुत्र बनकर प्रकट हुए हैं! पुत्र ही तो—मेरी पत्नी के सम्मुख ही तो खड़े हैं ये! यह श्रीकृष्णावतार!' पता नहीं हृदय में क्या-क्या आया एक क्षण में। 'क्या करूँ, क्या करूँ, जैसे कुछ नहीं सूझता उन्हें। 'ये श्रीहरि—मेरे पुत्र हरि! दस सहस्र गायें ब्राह्मणों के लिये........।' इसी उल्लास में दस सहस्र गायें ब्राह्मणों को दान करने का संकल्प कर लिया उन्होंने। वे बन्दी हैं, गायें कंस ने छीन ली हैं, इस समय पुत्र-जन्मोत्सव भी करने की स्थिति में वे नहीं; किंतु मन क्या इस समय यह सब सोच सकता है।

'ये परमपुरुष—परमपुरुष ही तो हैं ये! ये चतुर्बाहु, ये दिव्यायुध, ये श्रीवत्स और कौस्तुभ तथा यह अपूर्व प्रकाश, जिससे यह प्रसूतिकक्ष आलोकमय हो उठा है। ये श्रीनारायण पधारे हैं मेरे यहाँ।' श्री वसुदेवजी और सावधान हुए। उनके हाथों की अञ्जलि स्वतः बँध गयी, मस्तक झुक गया, वे गद्‌गद कण्ठ से स्तुति करने लगे।

'इस-प्रसूति कक्ष में इतना अपार आलोक और अब यह स्तवन!'—द्वाररक्षक सावधान रहते हैं, कंस इधर बराबर बार-बार पूछता है सेवकों से, उसे समाचार मिला और वह दौड़ा। लेकिन वसुदेवजी को अब यह भय नहीं। 'यह कौमोदकी गदा, यह सहस्रार सुदर्शन—ये जो नीलोज्ज्वल तेजोमय चतुर्भुज परमपुरुष सम्मुख हैं; तुच्छ कीटप्राय कंस—इनके सम्मुख भला, भय किसका!' वसुदेवजी निर्भय स्तुति कर रहे हैं—

'मैंने जान लिया कि आप प्रकृति से परे अवस्थित रहनेवाले साक्षात् परमपुरुष हैं और समस्त बुद्धियों के द्वारा केवल आनन्द-स्वरूप में अनुभूत होते हैं; किंतु इस निर्विशेष रूप में ही आप हैं, यह कहते भी बनता नहीं; क्योंकि अपनी प्रकृति—योगमाया से ही इस समस्त त्रिगुणात्मक जगत् का सर्जन करके उसमें प्रविष्ट न होने पर भी आप प्रविष्ट-से प्रतीत होते हैं!' स्तुति चलती रही, श्री वसुदेवजी की अमल स्नेहार्द्र वाणी को वह सान्द्रनीलाभ शान्त सुनता रहा। शान्त—गम्भीर, जैसे उसका इस स्तवन से कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे वसुदेवजी किसी दूसरे के सम्बन्ध में यह सब कह रहे हों। उसके नित्य-प्रसन्न नेत्रों में करुणा, ममता, पता नहीं क्या-क्या और कदाचित् जिज्ञासा भी और अधरों पर मन्दतर स्मित—पर वसुदेवजी कहाँ देखते हैं यह सब। वे तो मस्तक झुकाये, शृङ्खलाबद्ध करों की अञ्जलि बाँधे, घुटनों के बल बैठे, नेत्रों से अजस्र प्रेमाश्रु की वर्षा करते कहते जाते हैं। निर्गुण-निर्विशेष, सगुण-सविशेष, विराट् अन्तर्यामी और यह सम्पूर्ण दृश्य रूप, सबसे पृथक् और सर्वरूप तथा इन सब रूपों का एकत्व—उस परात्पर तत्व से ये सृष्टि-स्थिति-प्रलय और उनके अधिष्ठाता त्रिमूर्तियों की अभिव्यक्ति—पता नहीं क्या-क्या कहते रहे वे। वे कहते रहे और वह निखिल वाणी का एकमात्र स्तवनीय सुनता रहा—वाणी की यही तो सार्थकता है कि उसे वह सुन ले—सुन भर ले—बस!

वही—वही तो सृष्टि के लिये अरुणवर्ण, स्थिति के लिये 'शुक्ल' और प्रलय के लिये नील-लोहित रूप धारण करता है—यह वही तो इस कारागार में प्रकट हुआ है। वसुदेवजी ने भरितकण्ठ, पुलकित-तन कहा—'विभो! अखिलेश! आप इस लोक की रक्षा के लिये ही मेरे घर में अवतीर्ण हुए हैं। ये असुर जो आज राजा कहलाते हैं, कोटि-कोटि सेनाओं के साथ इनका जो व्यूह है, इन्हें मारकर आप उसे ध्वस्त कर देंगे!'

लेकिन यह असुर ध्वंस तो होगा, तब होगा जैसा नहीं है—उसके लिये अभी से सावधान हो जाना चाहिये। 'यह कंस—बड़ा असभ्य है यह! आप पधारे हैं, यह बात उसके ये द्वार-रक्षक चर अवश्य जाकर कह देंगे और वह मेरे यहाँ आपका जन्म सुनते ही हथियार उठाकर दौड़ता हुआ अभी आयेगा। सुरेश्वर! उसने इसी प्रकार तुम्हारे बड़े भाइयों को मार दिया है उससे धर्मयुद्ध की आशा भी नहीं और आता ही होगा वह।'

'कंस आता होगा!' जैसे माता देवकी की चेतना झकझोर दी गयी हो! 'कंस!' श्री वसुदेवजी के शब्द कानों में गये, पलकें हिलीं और जैसे वे जाग्रत् हुई हों। लेकिन यह ज्योतिर्मय चतुर्भुज मूर्ति—

यह कोई सामान्य बालक तो नहीं है। कुछ भी हो—माता तो माता ही रहेगी। यह बालक—नहीं, कंस बड़ा क्रूर है, घोर असुर है और यह शङ्ख-गदा-चक्र-पद्मधारी—पर बालक है न यह! माता को कंस से बड़ा भय लग रहा है; किंतु पता नहीं क्यों उनके मुखपर पवित्र स्मित है। इस आनन्दघन का सांनिध्य उनके भय को जैसे अभिभूत करके व्यक्त हो गया हो। श्री वसुदेवजी हाथ जोड़े प्रार्थना कर रहे हैं, माता ने भी पति का अनुकरण किया।

'जिसे अव्यक्तरूप, परमादि, ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामय, निरीह, निर्विशेष कहा जाता है, वह अध्यात्मप्रदीप विष्णु आप ही हैं।'

'जब द्विपरार्ध के अन्त में सम्पूर्ण लोक नष्ट हो जाते हैं, जब महाभूत अपने कारणों में लीन हो जाते हैं, जब व्यक्त अव्यक्त में लय हो जाता है और काल की भी समाप्ति हो जाती है, तब आप ही शेष रह जाते हैं—इसी से आप शेषशायी हैं।'

'यह काल, जो सम्पूर्ण विश्व को प्रेरित कर रहा है, तुम्हारी चेष्टा कहा गया है। निमेष से लेकर वर्ष एवं द्विपरार्ध आदि महत्ता तक वह तुम अव्यक्त-बन्धु की चेष्टा ही है,. अतः आप कल्याणमय की मैं शरण हूँ।'

माता के पास समय नहीं है स्तवन का और न उन्हें स्तुति-विस्तार करना है। उन्हें तो कंस का भय है—वह कालरूप कंस और वे यही कह रही हैं कि तुम काल के भी प्रेरक हो, द्विपरार्ध का महाप्रलय भी तुम्हारी चेष्टा है, तुम तो तब भी शेष रहते हो। सो मैं तुम्हारी शरण हूँ—और उपाय भी क्या है इस कंस के कालरूप से बचने का।

'मनुष्य मृत्युरूपी सर्प के भय से भागते हुए किसी लोक में जाकर भी शान्ति नहीं पाता, कहीं वह निर्भय नहीं हो पाता; किंतु जब अकस्मात् वह तुम्हारे चरण-कमलों को प्राप्त कर लेता है तब स्वस्थ होकर शयन करता है। मृत्यु उससे दूर चली जाती है।'

माता का तात्पर्य बहुत स्पष्ट है। जब सभी तुम्हारे श्रीचरणों को प्राप्त करके मृत्यु से अभय हो जाते हैं. तब तुम्हारे यहाँ आने पर भी मृत्यु का भय लगा रहे—यह ठीक नहीं; किंतु भय अपने लिये नहीं, तुम्हारे ही लिये है।' माता इसे स्पष्ट कर देती हैं—

'तुम अपने जनों के सदा से रक्षक हो, तुम सदा उनके त्रास को दूर करते हो; अतः इस उग्रसेन के लड़के से हमारी रक्षा करो! एक बात और—तुम्हारा यह रूप—यह परात्पर पुरुष रूप तो ध्यान में ही आने योग्य है! इसे इन स्थूल दृश्यों को देखनेवाले नेत्रों के सम्मुख मत करो!'

बड़ी अद्भुत बात है—कंस के भय से छुटकारा भी चाहिये और यह सशस्त्र चतुर्भुज रूप भी नहीं रहना चाहिये! माता ने अपना भाव स्पष्ट कर दिया कि समस्या का समाधान किस प्रकार वे चाहती हैं—'मधुसूदन, यह मेरा भाई कंस बड़ा पापी है! कुछ ऐसा करो कि उसे यह पता ही न लगे कि तुम्हारा जन्म मेरे यहाँ हुआ है! मैं तुम्हारे लिये बहुत उद्विग्न हो रही हूँ, मेरी बुद्धि अधीर हो रही है!'

भला, कंस से युद्ध—माता ने स्पष्ट कह दिया कि उन्हें बड़ा भय है, कुछ भी हो—उनका मातृत्व कहता है कि ये बालक ही तो हैं—क्या हुआ जो चक्र और गदा लिये हैं! कंस—भला, असुर कंस से कहीं संग्राम की बात सोची जा सकती है। उन्होंने बहुत विनीत स्वर में कातर अनुरोध किया—'विश्वात्मन्, शङ्ख-गदा-चक्र-पद्मधारी अपूर्व तेजोमय अपने इस अलौकिक चतुर्भुज-रूप का झटपट उपसंहार कर लो!'

क्या ठिकाना—बालक बड़े हठी होते हैं, यह प्रार्थना पर्याप्त न हो! अपने को कंस से डर कर छिपाना ये न स्वीकार करें! कंस तो आता ही होगा! अधिक बातचीत के लिये अवकाश नहीं। माता ने झटपट बात पूरी की—'महाप्रलय के अन्त में समस्त विश्व को अपने शरीर में ही शरीराकाश की भाँति ही जो सहज धारण कर लेते हैं, वे ही परमपुरुष आप मेरे गर्भ में थे—यह मनुष्यों के लिये कैसी विडम्बना होगी, लोग क्या कहेंगे! अतः झटपट इस रूप को छिपा लो!'

माता ने आदेश दे दिया, अब उसका पालन तो होना ही है; अतः उस नीलोज्ज्वल परम-पुरुष ने मस्तक झुकाया। एक बात रही जाती थी—उसे पूरा हो जाना चाहिये। वह परात्पर पुरुष आज ही माता के यहाँ नहीं आया, वह तो उन्हीं का पुत्र है। गत दो जन्मों से उनका पुत्र होता आया है। उसने परिचय दिया, वह मेघगम्भीर वाणी गूँजी—"मातः, प्रथम (स्वायम्भुव) मन्वन्तर में आप ही भूदेवी थीं और ये पिता पृश्नि थे। भगवान् ब्रह्मा ने जब आप लोगों को प्रजा-सृष्टि करने का आदेश दिया, तब वर्षा, अंधड़, शीत, उष्णता सहते हुए केवल सूखे पत्ते और वायु के आहार पर आप लोगों ने तपस्या प्रारम्भ की। इन्द्रियों को संयमित करके, प्राणायाम के द्वारा मनोमल को ध्वस्त करके शान्त चित्त से मेरी आराधना करते हुए आप लोगों ने द्वादश सहस्र दिव्यवर्ष व्यतीत कर दिये। आप लोग मुझसे—केवल मुझसे ही अपनी कामनाओं की पूर्ति चाहते थे। आपकी श्रद्धा, तप एवं अजस्र भक्ति से भावित होकर मैं प्रकट हुआ और मैंने आप लोगों से वरदान माँगने को कहा। आप लोग मुझसे मेरे धाम—मेरा नित्य सांनिध्य माँग सकते थे; किंतु आपको गृहस्थ-जीवन के सुख का पता नहीं था। भगवान् ब्रह्मा का आदेश रक्षित होना चाहिये था और मैं पृथ्वी पर आने ही वाला था—मुझे ही ऐसे माता-पिता कहाँ मिलते, अतः मेरी इच्छा से योगमाया ने प्रेरणा की और आप लोगों ने मेरे समान पुत्र माँगा। मेरे समान पुत्र—भला रूप, गुण आदि में मैं अपने समान दूसरा कहाँ पाऊँ। मैं ही आपका पुत्र बना। सभी मुझे पृश्निगर्भ कहते थे।"

माता देवकी आश्चर्य से सुनती रहीं। ये चतुर्भुज, ये हरि उनके आज ही बालक नहीं हुए। ये उन्हीं के—जन्म-जन्म से उन्हीं के बालक हैं। माता का स्नेहार्द्र कण्ठ शब्द नहीं पा सका और वे आदिपुरुष कहते ही जा रहे हैं—'जननी, आप ही अदिति हैं और ये पिता ही महर्षि कश्यप हैं। आपने जब पृश्नि और भू से यह कश्यप-अदिति का रूप लिया तो मैं आपके यहाँ उपेन्द्र रूप से प्रकट हुआ। आकृति से वामन होने के कारण मुझे लोग वामन कहते थे। सब देवताओं के साथ ये प्रजापति कश्यप यहाँ इस रूप से अंश रूप में पृथ्वी पर आये हैं और आप तो देवमाता का ही एक रूप हैं। मैंने पहिले वरदान देते समय ही तीन बार आप लोगों से 'एवमस्तु' कहा था और उसे सत्य करने के लिये यह तीसरी बार आपके यहाँ प्रकट हुआ हूँ। माता! मैं आपकी गोद में शिशु बनकर जो सुख पा सकता हूँ, वह मुझे इस चतुर्भुज रूप में नहीं प्राप्त हो सकता। मैं शिशु ही बनता पहिले ही; परन्तु साधारण शिशुरूप में आप मुझे पहिचान न पातीं कि यह वही मेरा पुत्र उपेन्द्र है। इसी से मैंने अपना यह रूप दिखलाया। अब यदि आप लोगों को कंस से भय है तो पिता मुझे गोकुल पहुँचा दें!'

माता-पिता देखते रहे और देखते ही रह गये। वह चतुर्भुज, सर्वाभरणभूषित, सायुध दिव्यमूर्ति एक पल में माता की गोद में एक नवजात नीलोज्ज्वल शिशु हो गयी—सर्वथा सामान्य शिशु। माता ने ललककर उठाया और हृदय से लगा लिया।

'कंस आता होगा!' माता का वात्सल्य—आज उस जगन्माता को इतना भी अवकाश नहीं कि वह अपने इस लोकलोचनाभिराम लाल को भर नेत्र देख ही ले। यह नवजात—अभी स्तनों के दूध से वह तृप्त भी कहाँ हुआ होगा, किंतु उसकी रक्षा करनी है। कंस—हत्यारा कंस बड़ा क्रूर है! वह आता ही होगा। वसुदेवजी ने हाथ फैलाया और एक सामान्य सूप में वस्त्र के ऊपर रखकर माता ने अपना वह हृदयधन बढ़ा दिया।

सत्य—जो सत्यस्वरूप है, सत्य का अधिष्ठाता है, सत्य के द्वारा जिसकी प्राप्ति की इच्छा की जाती है, उसके आदेश का ही अनुगमन तो सत्य है। मानव का क्षुद्र सत्य उस सत्यनारायण की इच्छा, आदेश की पूर्ति में ही तो सार्थक होता है; किंतु वसुदेवजी के हृदय में यह मीमांसा न तब उठी और न आगे कभी। यह तो हमारे-आपके तर्क की तुष्टि है। वहाँ तो वह योगमाया जो नन्दव्रज में बालिका बनी थीं, अपने अलक्ष्य करों से सचराचर का संचालन कर रही थीं। वसुदेवजी के हृदय से कंस को दिये वचन का संस्कार तक उन्होंने सदाके लिये अन्तर्हित कर दिया था।

और यह तो एक हृदय को प्रभावित करने की बात थी--वह तो प्रभावित कर रही थीं जड को। वसुदेवजी के हाथ और पदों की शृङ्खलाएँ स्वतः इस प्रकार खुल गयीं, जैसे किसी ने उन्हें खोल दिया हो और जब वे उस अपने हृदयधन को मस्तक पर उठा कर चले, द्वारों के लौहदण्ड, शृङ्खलाबन्ध, ताले, सब अपने-आप खुल गये और द्वार यन्त्र-चालित के समान अनावृत हो गये। वसुदेवजी जिस प्रकृति के परम प्रेरक को लिये जा रहे थे, प्रकृति उसे ससम्मान मार्ग न दे तो करे क्या ?

वसुदेवजी ने नहीं देखा कि उनकी चिरदुःखिनी अर्धाङ्गिनी कितनी उत्कण्ठा, आकुलता से उन्मादिनी की भाँति उन्हें देख रही है और उनके दृष्टि-पथ से दूर होते ही मूर्छित हो गयी है। उन्होंने नहीं देखा कि द्वार क्यों, कैसे खुल गये हैं। उन्हें देखने का अवकाश ही नहीं कि उस मोहरात्रि में वे कारागार-रक्षक खड़े-खड़े भित्ति से लगकर, बैठे, आधे झुके या भूमि पर औंधे पड़े कैसे मोह-निद्रा में खुर्राटे ले रहे हैं और उनके शस्त्र, उष्णीप आदि कैसे अस्तव्यस्त इधर-उधर गिर गये हैं। उन्हें तो एक ही ध्यान है--'कंस आता होगा ! गोकुल जाना है--शीघ्र ! शीघ्र गोकुल !'

अभी कुछ ही देर पूर्व का सुनिर्मल नभ उन सुदूर समुद्रतीर के गर्जन करते मेघों से आच्छादित हो गया है। उमड़ते-घुमड़ते काले मेघ। दिशाएँ अन्धकार में डूब गयी हैं और घन-घोर वर्षा हो रही है। बार-बार घोर गर्जना होती है और क्षण-क्षण पर विद्युत् चमकती है। इस सूची-भेद्य अन्धकार में जैसे महेन्द्र अपने इस परित्राता को ले जाने वाले को प्रकाश करके मार्ग दिखा रहे हैं और वर्षा--वर्षा का तो एक बिन्दु जल नहीं पड़ता वसुदेवजी पर। वे यदि तनिक घूमकर देख लेते--निश्चय स्तब्ध रह जाते। यह हिमधवल महाभोग, यह मणिमण्डित सहस्र-फण-राजि, ये भगवान् शेष अपने फणों का छत्र उनके मस्तक पर किये उन्हीं की गति से सावधानी पूर्वक उनके पीछे-पीछे आ रहे हैं ! लेकिन वसुदेवजी को पीछे देखने का अवकाश कहाँ। वे सम्मुख होती वर्षा भी कहाँ देख पाते हैं। उन्हें तो दीखता है--सामने मुख करने पर भी दीखता है, जैसे कंस आ रहा है--आने ही वाला है और वह गोकुल--वह कारागार के सम्मुख ही उस पार गोकुल। किसी प्रकार वहाँ पहुँच सकें तो उनका यह लाल निरापद हो जाय। उनके प्राण तो चरणों में आ गये हैं। वे शीघ्र-शीघ्रतर बढ़े जा रहे हैं।

ये यमुना--भाद्रपद का महीना, बाढ़पर उमड़ती-घुमड़ती, गर्जन-तर्जन करती कलिन्द-नन्दिनी। शतशः आवर्त, बड़े-बड़े फेन, इस समय तो उनमें कोई पर्वत भी प्रवाहित हो जायगा। लेकिन वसुदेवजी कहाँ देखते हैं यह सब। वे यह भी कहाँ देखते हैं कि स्थल से अब उन्हें जल में चलना है। मार्गपर वर्षा के जल में जैसे छप-छप करते वे आये हैं--वैसे ही बढ़े जा रहे हैं। उन्होंने तो सरिता में प्रवेश का कोई भाव ही नहीं प्रकट किया। उन्हें जैसे स्मरण ही नहीं कि कारागार से गोकुल के मध्य में कालिन्दी भी पड़ती हैं। वे तो बढ़े जा रहे हैं--बढ़े ही जा रहे हैं। जल घुटनों तक, कटि तक, वक्ष तक........इतना प्रबल प्रवाह, इतना तीव्र वेग; किंतु यह क्या--तट से यह तनिक दूर जाते न जाते जल एक क्षण में ऊपर आया और घट गया। कालिन्दी की कामना पूर्ण हो गयी। उसके आराध्य ने स्वयं पीछे से अपने चरणों का स्पर्श दे दिया उसे और वसुदेवजी के लिये मार्ग ? भला, यह भी कोई प्रश्न है। वे उसे लिये जा रहे हैं, जो वैनतेय की पीठपर बैठा जब आता है तो सरित्पति भी सादर मार्ग देते हैं और गरुड़ के पक्षों को क्षीराब्धि के सीकर तक स्पर्श नहीं करते। कालिन्दी बढ़ें या घटें--वसुदेवजी के वस्त्र तक उन्होंने नहीं भिगाये हैं। वे तो उनके पादतल धो रही हैं और यही क्या कम सौभाग्य है उनके लिये।

× × ×

जैसे युग-युग की अनिद्रा का अभाव विश्व के प्राणी आज ही पूर्ण करने लगे हैं। गोकुल में तो कभी नीरवता नहीं होती। वहाँ तो प्रहरी नित्य जागरूक रहते हैं। वहाँ किसी-न-किसी गृह में सदा ही पूरी रात्रिभर मङ्गल-महोत्सव चलता रहता है। लेकिन आज जैसे गोकुल भी नित्य के जाग-रण को पूरा कर लेगा। कहीं शब्द का नाम नहीं। सब कहीं निस्तब्ध नीरवता और क्या पता--

यह अंधड़, वर्षा, गर्जन—इसमें कहीं कुछ शब्द हो भी तो पता क्या लगे। वसुदेवजी का ध्यान भी इधर कहाँ है। वे तो चले जा रहे हैं, भागे जा रहे हैं नन्दभवन की ओर।

'व्रजराज, यह तुम्हारा ही पुत्र है! तुम इसे रख लो! रक्षा कर लो इसकी!' वाणी नहीं, हृदय कब से पुकार रहा है। वे मिलते ही व्रजपति के पैरों पर रख देंगे इसे और........उनके वे परम सुहृद् नन्दराय—वे कितने प्रसन्न होंगे। पता नहीं क्या-क्या हिण्डन चल रहा है। नन्दभवन का द्वार तो खुला ही है—जैसे कोई भीतर से प्रेरणा दे रहा है, मार्ग दिखा रहा है—'चलो! चले चलो! सीधे इधर!' और वे चले जा रहे हैं, चले जा रहे हैं भवन में—अन्तःपुर में और फिर इस प्रकोष्ठ में! यह नन्दरानी का प्रसूति-गृह—पर वसुदेवजी किसी अज्ञात प्रेरणा से चले आये—चलते ही आये हैं भीतर तक।

'यह बालिका!' प्रकोष्ठ का परमोज्ज्वल मणि-प्रकाश भी किसी दिव्य प्रकाश से मन्दप्राय हो रहा है। श्री वसुदेवजी की दृष्टि पड़ी उस नवजात बालिका पर। वह प्रकाशमयी, वह तो श्री वसुदेवजी की ओर ही देख रही है। दृष्टि उसपर गयी और वहीं रह गयी। उन्होंने नहीं देखा प्रकोष्ठ को, नहीं देखा प्रसुप्त सेविकाओं को और नहीं देखा निद्रामग्न नन्दरानी को। उन्होंने यह भी नहीं देखा कि वह बालिका एकाकिनी नहीं है। जैसे उनके नेत्र, उनकी चेतना उस बालिका ने अपने में केन्द्रित कर ली। मस्तक से सूप उतारा उन्होंने और उसमें से अपने उस नवनीलनीरद को उठाया। उनके नेत्र बालिका से हटे नहीं, अन्यथा वे देख लेते—वे निश्चय आश्चर्यचकित हो जाते कि उनका वह लाल वैसे ही माता यशोदा की गोदी में विराजे नन्दनन्दन से सहसा एक हो गया है। उन्होंने तो बालिका को उठा लिया। क्यों उठा लिया, क्या कर रहे हैं वे, जैसे स्वयं उन्हें पता नहीं। उसी सूप में बालिका को रख लिया और बलात् कोई जैसे भीतर कह रहा हो—'बस, अब चलो! चलो जल्दी!' और सूप मस्तक पर पहुँच गया। वे लौट पड़े।

'कंस को पता न लगे! वह जान न जाय! अन्वेषण न करे!' वसुदेवजी की गति पहिले से कुछ अधिक ही तीव्र है। भगवान् शेष इस योगमाया के ऊपर अपने फणछत्र लगाने का यह सु-अवसर भला, क्यों छोड़ने लगे और कालिन्दी ने तो मार्ग देना सीख ही लिया है। वसुदेवजी कारागार में लौटे जैसे यन्त्र-चालित की भाँति द्वार खुले थे, वैसे ही स्वतः बंद हो गये क्रमशः। अपने-आप ताले, शृङ्खलाएँ, लौहदण्ड यथा-स्थान हो गये।

वसुदेवजी ने चुपचाप सूप देवकी की ओर बढ़ा दिया और उनके हाथ-पैर शृङ्खलाओं में आबद्ध हो गये। माता देवकी ने कन्या को उठाया, उनकी कन्या—उनकी ही कन्या तो है यह। यही तो उनकी गोद में आयी है। जैसे उन्हें स्मरण ही नहीं कि कन्या उनकी नहीं। वही मातृत्व—वही वात्सल्य। यह जो उनकी गोद में आयी है, उसका अज्ञात इङ्गित क्या-क्या करता है—कौन समझ पाता है। माता ने कन्या को उठाया और बाहर द्वार-रक्षक जगे। उन्होंने चौंककर अपने वस्त्रादि ठीक किये। शस्त्र उठाये। जैसे यह नवजात कन्या पहिचानती हो कि वह अपनी माता की गोद में नहीं है। वह तो रोने लगी! माता ने व्यग्र होकर उसका मुख स्तनों से लगाया। पर वह तो रो रही है, रोती जा रही है उच्चस्वर से और माता—वह कैसे चुप करा पायें—उसके प्राण छटपटा रहे हैं।

कंस की कूटनीति

"आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥"

—भागवत १० । ४ । ४६

कंस उस दिन कारागार से लौट आया था। देवकी के हृदय में निश्चय नारायण आ गये—यह निश्चय तो उसे वहीं हो गया। कारागार के रक्षक बढ़ा दिये गये। सभी विश्वस्त असुर-नायक वहीं नियुक्त हुए। उनकी इस प्रकार नियुक्ति हुई कि एक क्षण के लिये भी कारागार सामान्य सैनिकों के ही संरक्षण में न रहे।

कंस मूर्ख नहीं, वह जानता है कि देवकी के गर्भ से सामान्य बालक नहीं आ रहा है कि दस महीने पर ही आयेगा। 'विष्णु—मायावी नारायण ! पता नहीं कब वह प्रकट हो जाय ! अदिति के गर्भ से प्रकट होते ही वह वामनरूप में बलि की यज्ञशाला में पहुँच गया था।' कंस को लगता है, वह इसी क्षण प्रकट हुआ, आ रहा है—आता होगा ! वह बार-बार चर भेजता है नित्य कारागार का समाचार लाने। बैठे-बैठे, सोये-सोये, खाते-पीते, उसे सदा लगता है कि वह आया उसका काल—वह आया हरि ! कोई पदध्वनि, तनिक-सा खटका हुआ और वह चौंक पड़ता है। उसके हाथ खड्ग की मूठपर पहुँचते ही रहते हैं। उसका शरीर बार-बार भय से काँपता है, रोमाञ्चित होता है। उसके पार्श्वचर लोग समझ नहीं पाते कि मथुरा के प्रतापी महाराज को यह कौन-सी व्याधि हो गयी है।

'नारायण—मायावी विष्णु ! वह प्रह्लाद के लिये हिरण्यकशिपु को मारने खंभे से ही निकल पड़ा था !' कंस जो कुछ जानता है वह उसी के लिये भयप्रद हो गया है। उसका ज्ञान ही उसका संकट हो गया है। 'क्या ठिकाना उस मायावी का। वह देवकी का पुत्र तो हो ही गया। अब कहीं से भी निकल पड़े तो ?' वह प्रत्येक भित्ति, स्तम्भ को घूरता रह जाता है। भोजन के पात्र से भोजन उठाते, शयन के लिये शय्या पर पैर रखते, अपने ही खड्ग या मुकुट को छूते समय वह ठिठक जाता है। अनेक बार वह किसी भी वस्तु को विचित्र भङ्गी से घूरता रहता है। 'कहीं इसी में मेरा शत्रु न छिपा हो ! विष्णु इसी से न निकल पड़े।

'किस रूप में आयेगा वह नारायण ? कौन कह सकता है। वह कभी वाराह, कभी नृसिंह' कभी और कुछ बनता रहता है ! क्या नहीं बन सकता वह। किसका रूप नहीं धारण कर सकता !, बड़ी भयंकर बात है। कंस किस पर विश्वास करे ? ये सैनिक, ये सेवक, ये मन्त्रिगण, यह गज, ये अश्व, कौन जाने किस रूप में वह छली मारने खड़ा है। कंस को अपनी स्त्री तो क्या, अपनी छाया तक से भय लगता है।

'यह विष्णु आ रहा है ! यह मुझे मारने आ रहा है !' कोई व्यक्ति, कोई पदार्थ दृष्टि में आते ही लगता है कि वह विष्णु ही है। यह आकृति—भला उस मायावी की आकृति का क्या विश्वास। कंस के लिये सभी विष्णु हो गये हैं। सब जगत् ही विष्णु हो गया है। वह सोते-सोते चीख पड़ता है। बैठे-बैठे उठ खड़ा होता है। किसी भी सेवक, मन्त्री आदि से बात करते-करते सहसा रुककर उसे घूरने लगता है और खड्ग खींचने लगता है। सब विष्णु—सब उसके

तारक ! कौन कहे कि उसका भय सत्य नहीं है। वह भय से ही सही सत्य को--निर्भ्रान्त सत्य को ही तो देखता है। वह हरि ही तो यह सर्वस्वरूप है।

× × ×

'महाराज ! महाराज !' वे असुर सैनिक अस्तव्यस्त दौड़ते आये हैं। उनके कण्ठ से पता नहीं दौड़ने के वेग से या भय के कारण पूरा वाक्य नहीं निकलता। इतना भय--पर उनके महाराज बड़े उग्र स्वभाव के हैं। आजकल बड़े चिड़चिड़े हो गये हैं। लोग तो कहते हैं कि पागल हो गये हैं। कारागार में पुत्र होते ही अविलम्ब समाचार दिया जाय, यह उनका कठोर आदेश और आदेश भी ऐसा जिसे महीनों से महाराज के चर दिन में कई-कई बार चेतावनी के रूप में बराबर सुनाते रहे हैं। पता नहीं महाराज क्या करेंगे। बेचारों को निद्रा आ गयी थी, उनके अनुमान से यही दो एक क्षण को पलक झपक गये और तभी कारागार के भीतर से नवजात शिशु की रोदनध्वनि कान में पड़ी। वे अपने शस्त्र उठाकर अस्तव्यस्त दौड़े आये हैं, पर कहीं इस दो-एक क्षण के विलम्ब का महाराज को अनुमान हो जाय........किसी प्रकार उन्होंने कहा—'वसुदेवजी के बन्दी-कक्ष स नवजात शिशु के रोने का शब्द सुना है हमने !'

'वसुदेव को पुत्र हुआ ! नारायण आया !' कंस ने पूरी बात सुनी या नहीं, कौन जाने। वह अस्तव्यस्त दौड़ा, उसके हाथ ने अपने-आप खड्ग को कोष से खींच लिया। कोई साथ आये, कोई वाहन लिया जाय--इतना सोचने को अवकाश कहाँ है। उसके वस्त्र अस्तव्यस्त हो गये, वह दौड़ा—दौड़ा कारागार की ओर और दौड़े उसके साथ उसके सेवक एवं वे समाचार देने आये हुए कारागार-रक्षक।

इधर दो तीन महीने से कंस को निद्रा कहाँ आती थी। वह रात्रि में बार-बार पूछता था चौंककर कि कारागार से कोई समाचार आया तो नहीं। कई दिनों से तो वह बराबर रात्रिभर जागृत रहकर समाचार की प्रतीक्षा करता रहा है। कारागार के रक्षकों में किसी के आते ही उसे प्रहरी सीधे उसके समीप पहुँचने दें, यह उसने आदेश दे रक्खा था। इस समाचार की उसे आशा थी और वह इसके लिये पूर्णतः प्रस्तुत था; इतने पर भी समाचार ने उसे उन्मत्तप्राय कर दिया और वह पैदल ही अस्तव्यस्त भागा कारागार की ओर। 'विष्णु आया ! कहीं वह बड़ा न हो जाय। वामन से विराट् होते कितने क्षण लगे थे उसे ? कहीं....' कंस के भय और शङ्का का पार नहीं। वह दौड़ा जा रहा है ! पूरी शक्ति से दौड़ रहा है ! उसके लिये जीवन का प्रश्न है।

× × ×

'यह बच्ची, यह सौंदर्यमयी; पर यह तो चुप ही नहीं होती। अरे ! रक्षक सुन लेंगे। कंस—क्रूर कंस दौड़ा आयेगा !' माता देवकी ने हृदय से दबा लिया है बालिका को। वे उसे कैसे चुप करायें—उनके प्राण छटपटा रहे हैं। बड़ी कठिनता से खूब रो-धोकर तो वह चुप हुई और तब माता के स्तनों का निश्चिन्त होकर पान करने लगी। यह अमृत—यह भला फिर कहाँ प्राप्त होना है।

'अवश्य रक्षकों ने सुन लिया होगा ! वह नृशंस आता होगा !' माता को कोई स्थान नहीं दीखता जहाँ वे इस कुसुमकलिका को छिपा दें। हृदय से दबाकर, अञ्चल से ढककर क्या उसे बचाया जा सकता है, पर और किया भी क्या जाय।

'वह द्वारपर शृङ्खला झंकृत हुई। वह लौहदण्ड खटका। वह हुआ द्वार खोलने का शब्द !' माता ने दोनों भुजाओं से दबाकर, घुटनों और कंधों को मिलाकर उस बालिका को अपने अङ्गों के आवरण में छिपा लेना चाहा और उनके नेत्र द्वार की ओर एकाग्र हो गये, जैसे कोई गौ बधिक को कातर नेत्रों से देख रही हो।

'वह दौड़ा आ रहा है कंस ! वह लाल-लाल नेत्र किये, नंगी तलवार उठाये दौड़ा आ रहा है !' वह सीधा दौड़ता आया। उसे दूर से देखते ही रक्षकों ने द्वार खोल दिये और चुपचाप शान्त दोनों ओर अभिवादन करते खड़े हो गये। कंस ने किसी ओर देखा तक नहीं। देखने की अवस्था

में वह था ही नहीं। साथ आते सेवक उसके साथ दौड़ नहीं सकते थे और सबको इस द्वारपर ही रुक भी जाना था। कंस तो सीधे कारागार में चला गया वैसे ही दौड़ता।

'कहाँ है तुम्हारा पुत्र ?' मुख्य द्वार पर से ही उसकी भयंकर गर्जना सुनायी पड़ी। इस बार वसुदेवजी अपने बालक को उपस्थित करेंगे, इतनी प्रतीक्षा वह कैसे करता और इसके लिये अवकाश भी कहाँ था। इस बार तो द्वार सदा अवरुद्ध रहता था और रक्षकों को कठोर आदेश था कि कोई कारागार से बाहर न जाने पाये।

'भैया !' कंस के शब्द गूँजे। वह दौड़ा और उस कक्ष में पहुँचा—इसमें कितनी देर लगनी थी। वह सीधे श्रीदेवकीजी के सम्मुख पहुँच गया। माता देवकी ने वैसे ही उसके पैरों के पास भूमि पर मस्तक रख दिया। वे कदाचित् कंस के पैरों पर ही मस्तक रखने झुकी थीं, पर वह चौंककर पीछे हट गया उसी क्षण। जैसे उसे देवकीजी के स्पर्श में भी भय लगा हो। 'भैया, पुत्र कहाँ है ! यह तो तुम्हारी पुत्रवधू है ! मैं तुम्हारे पुत्र से इसका विवाह कर दूँगी ! तुमने मेरे अनेक पुत्र मारे हैं, यह मेरी अन्तिम संतति है ! मुझे एक यह कन्या दे दो ! इस बच्ची को छोड़ दो !' माता का परम कातरस्वर क्या वह क्रूर सुनेगा ?

'यह कन्या है !' कंस चौंका। जैसे उसे विश्वास ही न हुआ हो।

'हाँ भैया, यह कन्या है और वह भी तुम्हारी पुत्रवधू ! मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ। मुझ अभागिनी के लिये इसे छोड़ दो ! इसे मत मारो !' परम सरला माता देवकी ने बालिका को आगे कर दिया। उन्हें जैसे आशा हो गयी कि कंस कन्या समझकर अवश्य छोड़ देगा इसे।

'कन्या सही !' उस नृशंस ने दूसरे ही क्षण पैर पकड़कर उस बच्ची को माता के हाथों से झटककर छीन लिया और शीघ्रता से मुड़ पड़ा। 'मायावी विष्णु !' उसे लगा कि उसका छली शत्रु इस कन्यारूप के द्वारा उसे धोखा देना चाहता है। ठीक भी तो है, असुरों को तो अपने मोहिनी रूप से ही भ्रान्त किया था उसने।

बालिका छीन ली गयी ! माता देवकी के मुख से चीत्कार भी आधी ही फूटी और वे संज्ञाहीन हो गयीं। वसुदेवजी की तो चर्चा ही व्यर्थ है। उन्होंने कन्या को लाकर देवकी के सम्मुख रक्खा और मस्तक झुकाकर बैठ गये—जैसे एक मूर्ति हो। 'वे क्यों लाये इस कन्या को ? गये तो वे केवल पुत्र को नन्दभवन में रखने को। नन्दरानी के प्रसूति-कक्ष के द्वारपर चरण पड़ते ही इस कन्या पर दृष्टि पड़ी। यह उन्हीं की ओर देख रही थी। यह सौन्दर्यमयी, उन्होंने तो एक बार अङ्क में लेने के लिये ही उठाया था इसे। पर—पर अब क्या हो ?' कोई समाधान नहीं। उनके नेत्रों में अश्रु तक सूख गये। माता देवकी उस मोहमयी बालिका की चिन्ता में पति की ओर देख ही न सकीं, अन्यथा अवश्य भयभीत हो जातीं। इतना कम्पनहीन—विवर्ण देह, जैसे अन्तर की व्यथा ने देह की चेतना को आत्मसात् कर लिया हो। वसुदेवजी ने तो फिर मस्तक उठाया ही नहीं। उन्हें कदाचित् पता तक न लगा कि कंस आया और........वे बैठे—बैठे ही रह गये ज्यों-के-त्यों।

× × ×

कंस ने बालिका को छीना और झटके से लौट पड़ा। उस क्रूर ने रोती, गिड़गिड़ाती, परमदीना अपनी छोटी बहिन की चीत्कार की भी भर्त्सना की और कक्ष से बाहर उस शिशु-हत्या से कुत्सित शिलापर पटकने के लिये पैर पकड़ कर मस्तक से ऊपर घुमाया उस कन्या को। कंस की कठोर मुट्ठी ढीली रही होगी, यह तो सोचा ही नहीं जा सकता; पर कन्या का चरण उसके हाथ से सरक गया। चौंका कंस और उसकी दृष्टि ऊपर उठ गयी।

यह क्या—जैसे कोटि-कोटि सूर्य उदित हो गये हों। आकाश में यह तेजोमयी—ज्वालामयी अष्टभुजा नारीमूर्ति ! सर्वाभरणभूषिता, दिव्यमाल्य-अङ्गरागादि-सुसज्जिता, यह धनुष, शूल, बाण, ढाल, करवाल, शङ्ख, चक्र और गदा धारिणी ! यह सिंह-वाहिनी महाशक्ति। और ये सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ, किन्नर, नाग, देवता—ये तो कंस के नाम से भयभीत होकर अमरावती से भाग खड़े होते हैं—आज ये उसी के सम्मुख इस महाशक्ति का स्तवन कर रहे हैं, पूजन कर रहे

हैं, उसे अपने उपहार निवेदित कर रहे हैं। अप्सराएँ नाच रही हैं, किंनर गा रहे हैं, गन्धर्व वाद्य लिये हैं, सिद्ध स्तवन कर रहे हैं और नाग पूजन में लगे हैं। जैसे आज उस अभयदा के सांनिध्य में उनके लिये कंस की सत्ता ही नहीं। कंस कौन-सा कीट है—वह क्यों देखें वे। कंस भीत, स्तम्भित, ऊपर दृष्टि उठाये देखता रह गया। 'देवकी का अष्टमगर्भ—कहीं ये ही महाशक्ति तो उसे नहीं मारेंगी ?'

'मूर्ख !' ओह, कोई इस प्रकार भी डाँट सकता है! कंस का तो हृदय बैठा जाता है। उसके नेत्र फटे-फटे से हो रहे हैं। वह केवल ऊपर घूर रहा है भय से। वे महाशक्ति डाँट रही हैं उसे—'मूर्ख, मेरे मारने के प्रयत्न से तुझे क्या लाभ हुआ ? व्यर्थ कृपण, अल्पप्राण प्राणियों की हत्या करके अपने पाप को मत बढ़ा! तेरे पूर्वजन्म का शत्रु तो कहीं आ ही गया है !' कहाँ आ गया है वह कंस का काल ? योगमाया क्या निर्देश करें। 'कहीं' यही तो उसका इस समय पूरा पता है। वह तो इस भूमण्डल पर आकर भी नहीं-सा आया है। गोकुल में—गोकुल में वह जो गोलोक से परात्पर आनन्दघन आया है, उसका निर्देश दूसरा भले कोई करे, योगमाया कैसे कर दें। वह व्रज छोड़कर एक पद भी न जानेवाला—भला, वह नित्य गोपाल, वह कंस का पूर्वशत्रु क्यों होने लगा और कंस का पूर्वशत्रु—वह अनन्तशायी, वह इस समय तो गोपाल से एक हो रहा है। उसकी उपलब्धि कैसे करे कोई इस स्थूल जगत् में। वह आ गया है—कहीं आ गया है, इतना ही तो कहा जा सकता है।

कंस निश्चय पागल हो जाता—कुछ क्षण भी वह समर्थ नहीं था उस महातेज को सहन करने में। कुशल हुई, महाशक्ति इतना कह के ही अदृश्य हो गयीं। कहाँ गयीं वे ? वे ही तो अनेक नामों से समस्त शक्ति-पीठों में विराजमान हैं। वैसे वे गोपाल की छोटी बहिन अष्टभुजा सिंह-वाहिनी अपने मुख्य रूप से विन्ध्य-कानन में आराधकों को अभय देने श्रीविग्रहरूप में विराजमान तो हैं ही।

× × ×

'मेरा शत्रु—वह हरि कहीं और प्रकट हुआ !' महाशक्ति के अदृश्य होते ही कंस सावधान हुआ। 'यह कारागार—यह मैं और यह वसुदेव-देवकी का कक्ष—मैंने व्यर्थ ही देवकी की संतानों का वध किया।' कह नहीं सकते कि उसके मन को पश्चात्ताप ने प्रभावित किया या भय ने। भय का कारण तो प्रत्यक्ष है। ये महाशक्ति देवकी की कन्या हैं और कहीं माता-पिता के कष्ट से वे रुष्ट हों तो ? कंस उनसे शत्रुता करने का साहस इस समय तो नहीं ही कर सकता और अभी तो उसका काल—नारायण कहीं आ गया है। उसी से परित्राण पाना है। 'देवताओं ने उससे वञ्चना की !' बहिन के प्रति सौहार्द भी जाग उठा है उसके मन में।

कारण चाहे जो हो—वह शीघ्रता से कक्ष में आया और सेवक को पुकारने की भी अपेक्षा नहीं की। उसने अपने बलिष्ठ हाथों से वसुदेव एवं देवकीजी को बाँधनेवाली शृङ्खला एवं बेड़ियाँ झटककर तोड़ दीं और वसुदेवजी के सम्मुख हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया।

'बहिन, जीजाजी, मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने आपके कई पुत्र पिशाच की भाँति मार दिये।' कंस के स्वर में कातरता आयी। उसके लौटने पर वसुदेवजी ने जिज्ञासा से देखा उसकी ओर। उसे शृङ्खला तोड़ते देखकर माता देवकी की चेतना पहिले ही लौट आयी थी। वह भय के आधिक्य से चेतन हुई या महाशक्ति के व्यापक आलोक ने उन्हें चेतना दी, कौन कह सकता है; किंतु कंस के विनय ने उन्हें आश्चर्य में डाल दिया।

'मैंने दया, करुणा, सौहार्द—सब छोड़ दिया और हत्यारा बन गया। पता नहीं मेरी क्या गति होगी। जीवित होते हुए भी मृत-सा ही हूँ मैं। केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, ये देवता भी झूठ बोलते हैं। देववाणी पर विश्वास करके मुझ महापापी ने शिशुओं की हत्या की।' कंस का स्वर पूरा पश्चात्तापपूर्ण हो गया है, इसमें तो संदेह के लिये स्थान नहीं; पर है यह पश्चात्ताप क्षणिक ही।

'आप लोग ज्ञानी हैं, आप जानते हैं कि सब अपने किये का ही फल भोगते हैं; अतः मेरे द्वारा मारे जाने पर भी आपके पुत्रों ने अपने कर्म का ही फल पाया। उनके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये। सभी जीव दैव के वश में हैं। दैव के द्वारा विवश होकर वे सदा अपने सुहृदों के समीप नहीं रह पाते। जैसे पृथ्वी से धूलि के कण आदि कभी उड़ते और कभी भूमिपर आ जाते हैं, ऐसे ही जीवों का आवागमन है। जब तक संसार में भेददृष्टि है, तब तक शरीर का संयोग-वियोग होता रहता है और आवागमन छूटता नहीं। कल्याणी बहिन, तुम अपने पुत्रों के लिये शोक मत करो। सभी तो अपने प्रारब्ध का ही फल भोगते हैं। मैंने उन्हें मारा, यह ठीक होने पर भी मनुष्य तो केवल निमित्त है। जब तक यह मारा गया और इसने मारा—ऐसी भावना इस स्वद्रष्टा आत्मा में है, तब तक इस देहाभिमान के कारण जीव बन्धन में पड़ा है।' अपने शरीर की आसक्ति, अपनी मृत्यु की चिन्ता कितनी है तुम्हें, यह कौन पूछे कंस से; पर यह तो सदा का नियम है कि शरीरासक्त लोग परोपदेश में प्रवीण होते हैं।

'मैं दुरात्मा हूँ; पर आप दोनों साधु हैं; दीनों पर दया करनेवाले हैं, मेरी नीचता को क्षमा कर दें!' सचमुच कंस ने वसुदेवजी के पैरों पर मस्तक रख दिया और बैठे-बैठे ही उसने देवकी के चरणों के समीप सिर रक्खा। वह रोने लगा है। उसके नेत्रों से बिन्दु टपकने लगे हैं। उसका पश्चात्ताप सच्चा है, इसमें संदेह का तो अब कोई कारण नहीं।

माता देवकी—वे दयामयी, उन्होंने भाई के नेत्रों में अश्रु देखे और उनका सब रोष दूर हो गया। उन्होंने उठकर अञ्चल से नेत्र पोंछ दिये कंस के—'भैया, रोओ मत! तुम्हारा क्या दोष है. मैं हूँ ही हतभागिनी!'

वसुदेवजी ने देखा कि पत्नी का कण्ठ भर आया है। कोई माता कैसे अपने पुत्रों को भूल जाय। उन्होंने हँसते हुए कंस को उठाया हाथ पकड़ कर। सान्त्वना दी उसे—'महाभाग, तुम जो कहते हो वही ठीक है; प्राणियों की 'यह मैं हूँ और यह दूसरा है' ऐसी बुद्धि अज्ञान से ही है। शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह और मद के वशीभूत होकर ही प्राणी एक दूसरे को मारते हैं और भेददृष्टियुक्त होने से वे वास्तविक भाव को देख नहीं पाते। तुम शोक मत करो! अब तो जो हो गया, उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है।'

कंस ने सेवकों को आज्ञा दी। कारागार का द्वार उन्मुक्त हुआ। रथ के द्वारा वसुदेव एवं देवकीजी के अपने भवन जाने की व्यवस्था हुई और उनकी अनुमति लेकर कंस राजसदन लौटा।

× × ×

'मेरा शत्रु—मुझे मारनेवाला—वह मायावी विष्णु कहीं प्रकट हो गया!' कंस को विश्राम कहाँ। उसे एक ही चिन्ता है। कारागार से लौट आया वह और प्रातःकाल होने का अल्पसमय ही उसे युग की भाँति प्रतीत होने लगा। सूर्योदय नहीं हुआ और सभी मन्त्रीगण बुलाये गये। कंस के मन्त्री—राजा के समान ही तो मन्त्री होंगे। वे पूरी रात्रि जागरण करके मध्याह्न तक सोनेवाले निशाचर—करें क्या, नरेश का आदेश था—सोते से जगाये गये और किसी प्रकार अस्तव्यस्त पहुँचे राजसदन। कंस की मन्त्रणा-सभा बैठी। कंस ने महाशक्ति से जो सुना था, सुना दिया।

'महाराज, यह बात सत्य है—आपने स्वयं सुनी है तो सत्य है ही; पर इसमें सोचना क्या है। दस दिन के और दस दिन से इधर के जितने शिशु नगरों, ग्रामों और व्रजों में हुए हैं, उन सबको हम मार देंगे!' महाराक्षसी पूतना ही पहिले बोली। शिशु-हत्या उसका स्वभाव है, उसकी प्रिय क्रीड़ा है यह और यह विष्णु जब अभी प्रकट हुआ है तो शिशु ही तो होगा।

'महाराज चिन्ता न करें; भला, ये समरभीरु देवता चाहें भी तो क्या उद्योग कर लेंगे! ये तो आपके धनुष की टंकार से ही सर्वदा बेचैन रहते हैं। आपने जब शस्त्र उठाया, आपके बाणों के आघात से ही ये भाग खड़े हुए और बहुत-से तो शस्त्र फेंककर, कच्छ एवं शिखाग्रन्थि उन्मुक्त करके, हाथ जोड़कर दीन बनकर, 'हम भयभीत हैं!' इस प्रकार आप की शरण में आ गये। महाराज, यह तो आपका शौर्य है कि आपने भयविह्वल, शस्त्रास्त्ररहित, रथहीन, भागते, तथा धनुष टूटे

देवताओं को छोड़ दिया, उन्हें मारा नहीं। आप अभी शस्त्रास्त्र भूल नहीं गये हैं। शान्ति के समय शूर बनने वाले, युद्धभूमि से बाहर डींग हाँकने वाले देवताओं की गणना ही क्या है और क्या गणना है उस एकान्तवासी हरि या जङ्गली शंकर की। अल्पप्राण इन्द्र या तपस्वी ब्रह्मा ही आपका क्या कर सकता है!' चाटुकार महासेनापति ने पूरा व्याख्यान ही दे दिया। पूतना के प्रस्ताव को संकेत से स्वीकृति देकर भी महाराज प्रसन्न नहीं हुए, इसी से सेनापति को प्रोत्साहन मिला।

'महासेनापति की बात ठीक है; पर ये देवता हम असुरों के सौतेले भाई हैं, इनकी उपेक्षा करना भी ठीक नहीं। अतः महाराज इनकी जड़ के ही नाश में हम लोगों को नियुक्त करें। शरीर में कोई सामान्य रोग हो जाय और उसकी उपेक्षा कर दी जाय तो वह बद्धमूल हो जाता है और उसकी चिकित्सा असाध्य हो जाती है। उपेक्षा करने पर इन्द्रियाँ वश से बाहर हो जाती हैं। ऐसे ही उपेक्षित शत्रु बलवान् हो जाने पर अजेय हो जाते हैं। महाराज आदेश दें और हम लोग शत्रुओं की जड़ खोदने में लगें।' महासेनापति के पश्चात् महामन्त्री को बोलना ही था।

कंस ने केवल नेत्र उठाकर देख लिया महामन्त्री को, जैसे वह पूरी योजना सुन लेना चाहता हो। मन्त्री ने अपना अभिप्राय स्पष्ट किया—'सभी देवताओं की जड़ विष्णु है। विष्णु न हो तो देवता स्वयं मर जायँ। यह विष्णु ही धर्म का रक्षक है और धर्मरूप है। धर्म के कारण ही देवता जीवित हैं। वेद, ब्राह्मण, गौ, तपस्या और दक्षिणा पूर्वक होनेवाले यज्ञ—हमारे ये दक्षिणाहीन अभिचारयज्ञ उनसे भिन्न हैं—बस, ये ही धर्म की जड़ हैं। ब्राह्मण, गाय, वेद, तपस्या, सत्य, शम, दम, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ ही विष्णु के शरीर हैं। वैसे तो वह हरि मायावी है और सबके हृदय में रहता है; पर है वही सब देवताओं का अध्यक्ष। ब्रह्मा तक सभी देवताओं की वही जड़ है। यदि हम उसके इस बाह्य शरीर को नष्ट कर दें तो अवश्य वह नष्ट हो जायगा। अतः महाराज, आप आदेश दें कि हम ब्राह्मणों को—विशेषतः ब्रह्मवादी, वेदपाठी ब्राह्मणों को, यज्ञ करनेवालों को, तपस्वियों को और दूध देनेवाली गायों को जहाँ पायें, वहीं मार दें! ऋषियों को मार दिया जाय, यही विष्णु के मारने का उपाय है।'

'ऋषियों को मार दिया जाय!' कंस को यह तर्क बहुत संगत प्रतीत हुआ। उसने जान-बूझकर गौओं को मारने की बात उपेक्षित कर दी। सभी नरेशों के गोष्ठ हैं, गोष्ठ के नाश से सभी शत्रु हो जायँगे। एक साथ सबको शत्रु बना लेना कुछ बुद्धिमानी नहीं। गौ अवध्या है। असुर होने पर भी कंस गोवध की बात स्वीकार नहीं कर सका। उसने इसके लिये आदेश नहीं दिया। उसे ब्रह्महिंसा ही कल्याणकारिणी जान पड़ी।

जब योजना बन गयी और स्वीकृत हो गयी, तब उसे कार्यान्वित होना ही चाहिये। सम्भव है, पूतना का ही अनुमान ठीक हो। कंस ने पूतना को शिशु-हत्या के लिये नियुक्त किया। 'पहिले ऋषियों का ही वध ठीक है।' उसने असुरों के यूथ निश्चित कर दिये। उनके प्रधानों को कहाँ, किस ओर जाना होगा—यह भी उसी समय बता दिया गया। वे हिंसाप्रिय असुर—उन्हें तो अभीष्ट विनोद मिला।

असुर हिंसा के लिये नियुक्त हो गये। तपोवन ध्वस्त होने लगे। यज्ञशालाएँ ही अग्नि की आहुति होने लगीं। लोकपूजित विप्रवर्ग अपनी प्राण-रक्षा के लिये देशत्याग करने को विवश हुआ। मायावी असुर—वे दूसरे राज्यों में भी विविध रूपों से उपद्रव करने लगे। तपस्वियों के परम पावन आश्रम रुधिर, हिंसा से अपवित्र हुए और यह प्रारम्भ हुआ जीवन के लिये! मृत्युपाश में पड़ा प्राणी इसी प्रकार अपने विनाश को सदा से कल्याणकारी मानता आ रहा है। संयम, तप, त्याग का नाशक और विलास अनाचार अत्याचार का पोषक मानव कंस से कम अविवेकी कहाँ है।

जय कन्हैयालाल की !

"न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे ।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥"

—भागवत १० । २ । ३९

श्रीव्रजराज उस दिन ध्यान कर रहे थे अपने आराध्य श्रीनारायण का । उनके आराध्य— वे हृदय-कमलकी कर्णिका पर नित्य प्रतिष्ठित आनन्दघन, चिन्मय, ज्योतिर्मय; पर आज हो क्या रहा है ? आज यह जो अद्भुत ज्योति प्रकट हुई है, आज जो यह सान्द्रनील मयूरमुकुट-मण्डित द्विभुज मूर्ति आयी है सहसा—यह तो जैसे स्वतः आ गयी है । व्रजेश का रोम-रोम खिल उठा और उनसे प्रस्वेद की धारा चलने लगी । नेत्रों का अविरल अश्रु-प्रवाह और यह काँपने लगा शरीर झंझा के प्रबल वेग में पड़े पीपल के पत्ते-सा । क्या हो रहा है, कहाँ हैं, कुछ स्मरण नहीं । मन में, हृदय में, प्राण में सब वह एक ही आनन्दाम्बुधि उच्छलित हो रहा है । कौन कहे कितना समय हो गया उन्हें इसी प्रकार ।

आज—आज पहिली बार व्रजेन्द्र गौओं को प्रातःकाल यवसादि से सत्कृत नहीं कर सके । आज ही देर तक प्रतीक्षा के पश्चात् गोपों ने उनकी अनुपस्थिति में ही गोदोहन समाप्त किया । गायों ने बार-बार हुंकार की है; लेकिन आज तो यह गो-हुंकृति व्रजराज की अनुपस्थिति का उलाहना नहीं जान पड़ती, कितना उल्लास है इनमें । आज तो गोपों को वस्तुतः गोदोहन करना ही नहीं पड़ा है । गायों के स्तनों से अजस्र झरती दुग्धधारा को वे आज पात्रों में सम्हालने में ही व्यस्त रहे हैं और भला, ऐसी स्थिति में कोई कैसे सफल हो सकता है । उन्हें क्या पता था कि आज बछ-ड़ियाँ भी दुग्धवर्षा करने लगेंगी और प्रत्येक गौ के लिये नित्य के पात्र चतुर्थांश दूध सम्हालने में भी अपर्याप्त हो जायँगे । गोष्ठों में—पूरे व्रजमण्डल के गोष्ठों में आज दूध की कीच हो गयी है । गायों में जो उल्लास है, गोप कैसे उसका कारण समझें; पर कुछ है—कुछ अवश्य है; उनके अपने ही हृदय आज आनन्दसिन्धु में जैसे हिलोरों पर उछल रहे हैं । वे भीतर की उमङ्गों को सम्हाल नहीं पाते हैं ।

'ब्राह्ममुहूर्त का प्रारम्भ ही है अभी—अभी तो आहवनीय-कुण्ड में समिधा भी नहीं पड़ी ।' महर्षि शाण्डिल्य ही नहीं, सभी द्विज चौंके जब उन्होंने ऊर्ध्वमुख लाल-लाल लपटों से धूम्रहीन कान्तिमय भगवान् हव्यवाह को कुण्डों में प्रत्यक्ष मूर्तिमान्-सा देखा । महर्षि शाण्डिल्य के नेत्र एक क्षण को बंद हुए और शिष्यों ने देखा, उनके गुरुदेव भावविभोर होकर सस्वर साम के मन्त्रों से अकस्मात् किसी पुरुषोत्तमतत्व का स्तवन करने लगे हैं । उन्हें अपने आचार्य का साथ देना ही चाहिये । कैसा है आज का यह स्तवन—शब्द जैसे स्वतः सुधा-सिञ्चित निकल रहे हैं । परा वाणी जैसे प्रत्येक कण्ठ से आतुर निकल पड़ी है और शरीर रोमाञ्चित हो उठा है । नेत्र अपने-आप वृष्टि करने लगे हैं ।

'व्रजराज—तेजोमय श्रीव्रजराज !' गोपों ने, सेवकों ने देखा, एक दूसरे को दौड़कर समाचार दिया और सबकी भीड़ एकत्र होने लगी है नन्दभवन के द्वार पर । 'हम सब तो पहले से जानते हैं कि व्रजेश कोई देवता हैं ! आज कृपा करके उन्होंने हमें अपने दिव्यरूप का दर्शन दिया । भला, मनुष्य में उनके-से सद्‌गुण कहीं हो सकते हैं ?' जितने मुख, उतनी बातें । लेकिन व्रजराज इस लोक में हैं कहाँ ? वे तो अपने अन्तर के किसी अवर्ण्य आनन्दलोक में तदाकार हो रहे हैं ।

'क्या हुआ है ?' सेविका ने समाचार दिया और श्रीव्रजेश्वरी के हाथ का कार्य जहाँ का तहाँ रह गया । 'उनके आराध्य को क्या हो गया है ? नहीं, उन्हें कोई देवता, सिद्ध नहीं चाहिये । उनके

व्रजेश तो बड़े सीधे हैं, आज यह सेविका क्या कह रही है ? उनके शरीर से सूर्य के समान—सूर्य से भी अधिक प्रकाश निकल रहा है ! उनकी ओर देखते ही बनता है; बड़ा सुन्दर, शीतल है वह प्रकाश। लेकिन यह दासी यों ही बातें बनाने में चतुर है। पता नहीं क्या हुआ ! भगवान् प्रजापति का मङ्गल करें !' पता नहीं क्या-क्या आया उनके मन में। वे दौड़ीं द्वार की ओर। कौन-कौन वहाँ हैं, क्या करना है, वहाँ जाना चाहिये भी या नहीं, जैसे कुछ स्मरण नहीं उन्हें। 'इतनी देर हो गयी, भगवान् भास्कर उदित ही होने वाले हैं और व्रजेश भवन में नहीं पधारे ! नित्य तो इससे पूर्व ही उनके पदों की वन्दना का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। अवश्य कुछ हुआ—कुछ हुआ है !' वे सीधे दौड़ती गयीं। गोपों ने एक ओर हटकर मार्ग दे दिया। बहुतों ने कुछ कहना चाहा, बहुतों ने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया, कुछ ने पुकारा—सुने कौन ?

'महर ! व्रजेश ! क्या हो गया है इन्हें ?' नन्दरानी को जैसे पतिदेह के उस आनन्दोज्ज्वल शत-सहस्र-चन्द्राभ प्रकाश से कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे वह भी कोई आशङ्का की ही बात हो और आशङ्का की बात है ही ! इतना स्वेद, इतना अश्रु, यह दूर से दीखने वाला रोमोत्थान, यह अङ्गयष्टि की विचित्र भङ्गी—भला, यह कोई सामान्य स्थिति है ? 'मेरे देव !' आतुरतापूर्वक व्रजेश्वरी ने पति के पदों का स्पर्श किया। वे सम्भवतः श्रीनन्दराय को उठाने का प्रयत्न करने जा रही थीं। क्या हुआ ? पता नहीं क्या, पर पति का स्पर्श करते ही श्रीव्रजरानी जैसे थकित-सी हो गयी हों। वही, लगभग वही दशा उनकी हो गयी।

'श्रीहरि !' धीरे-धीरे व्रजराज के नेत्र खुले, जैसे उसके लिये भी उन्हें श्रम करना पड़ा हो। 'क्या है यह सब ?' जैसे वे इतने लोगों को देखकर चौंक पड़े हों। धीरे से उठ खड़े हुए। उनके उत्थान ने ही जैसे श्रीयशोदाजी को सावधान किया हो ! वे भी उठीं और सेविका उन्हें लेकर भवन में चली गयी।

श्रीनारायण की अपार अनुकम्पा है ! वे दयामय कभी-कभी अयोग्य अनधिकारी पर भी द्रवित हो जाते हैं ! आप सब ने उन्हीं की दिव्यलीला से कुछ देखा है। आप सबपर उनको अनुग्रह करना है। मैं तो उसमें यन्त्र की भाँति निमित्त बन गया !' बड़ी नम्रता, सरलता से व्रजेन्द्र ने गोपों का समाधान कर दिया। सरलचित्त गोपों को उनकी बात जँच गयी। श्रीनन्दराय श्रीहरि के परम भक्त हैं; अतः उनके शरीर से भगवदीय तेज आविर्भूत हुआ, इसमें तो कोई आश्चर्य की बात ही नहीं है।

गोपों का समाधान तो हो गया; किंतु अपना कैसे समाधान हो। अब चित्त तो ध्यान में लगता ही नहीं। अब हृदय-कमल में श्रीनारायण का साक्षात्कार करने जैसी एकाग्रता ही नहीं प्राप्त होती; वह कुमार—वह द्विभुज मयूरमुकुटी अतसीकुसुमावभास बालक, जैसे निरन्तर वही नेत्रों के सम्मुख हँसता रहता है। नेत्र बंद करके भी उसे भूला कैसे जा सकता है।

गोप नन्दद्वार से लौटे—आज गोकुल कुछ विचित्र हो गया है। प्रत्येक को लगता है जैसे भूमि, गृह, तरु, तृण, पशु-पक्षी सब वह नहीं हैं। कुछ अद्भुत हो गये हैं सब और वह स्वयं भी कुछ बदल गया है। जैसे सब किसी अपूर्व माधुरी में स्नात हो गये हैं। लेकिन व्रजेश—उन्हें तो अब यह सब दीखता ही नहीं। वह बालक—वह रूपराशि, परम सुकुमार हँसता-सा जैसे उनके समीप आकर भी भाग जाता है। जैसे वह उनकी गोद में आकर बैठने ही वाला है। बड़ी विचित्र दशा है।

× × ×

'एक बालक है—शिशु, बड़ा चञ्चल, बड़ा ही सुकुमार शिशु। जैसे सुधांशु उसकी कान्ति की छाया से निकला हो। नवजलधर अङ्ग, नवनीत-सुकुमार, पल्लव-अरुण कर-चरण, पतले-किंशुक दल-से अधर, विशाल कमलदल-सदृश लोचन, घुँघराली अलकें और पीतपट की कछनी। हँसता, दन्त-ज्योत्स्ना से हृदय को सुधास्नात करता, कूदता, उछलता, अलकें लहराता जैसे वह आता है और गोद में बैठ जाता है !' श्रीनन्दरानी द्वार पर से भवन में आयीं तो—पर कैसे आयीं, वे स्वयं नहीं जानतीं। यह शिशु—यह उनका शिशु—उन्हें लगता है यह उन्हीं का शिशु है। वे उसे हृदय से लगाने को हाथ उठाती हैं और चौंक पड़ती हैं।

'एक शिशु—यह बालक है या बालिका ?' सहसा चेतना जाग्रत् हो गयी उनकी। 'कहाँ, कोई भी बालक या बालिका तो नहीं है !' उन्हें लगा था कि वह शिशु—वह बालक, नहीं, नहीं, बालिका—बालक, बालिका · बालक जैसे पीछे बालिका हो गया हो या फिर बालिका ने बालक को अपने पीछे छिपा लिया हो; पर वैसी ही सुन्दर, वैसी ही श्याम, वैसी ही चपल, वही कमलदल-विशाल-लोचना वह बालिका। इस बालिका के आते ही अपने-आप उनकी चेतना जाग्रत् हो गयी।

'वह शिशु !' आज माता का मातृत्व जाग्रत् हो गया है। मन कहता है—'वह शिशु गोद में आता !' हृदय कहता है—'वह तो अपना ही है !' लेकिन—लेकिन कुछ नहीं। हृदय नहीं मानता कि वह अपना नहीं, वह नहीं आयेगा।

व्रजेन्द्र कहते हैं कि उन्हें स्पष्ट प्रतीत हुआ कि वही चञ्चल इन्दीवरदलश्याम उनके हृदय से व्रजेश्वरी की गोद में जा बैठा है। वे अब भी उसे व्रजरानी के अङ्क में देखते हैं। 'कहाँ ?' व्रजेश्वरी भी तो बार-बार उसे देखती हैं, वह आयेगा उनके अङ्क में ? लेकिन वह बालिका ? जब-जब वे उस परम सुन्दर को देखकर शरीर से ऊपर हो जाती हैं आनन्द-विभोर होकर, यह बालिका आती है। यह जैसे उन्हें जाग्रत्—सावधान करने ही आती है और यह तो आयी और बस—यह टिकती कहाँ है। इसे टिकना भी तो नहीं; पर आती है यह सदा उसके साथ, उससे तनिक ही पीछे, जैसे उसकी अनुजा हो। अनुजा—होने की धन्य साध ही तो पूरी करनी है उसे इस बार।

× × ×

'व्रजरानी की गोद भरने वाली है !' गोकुल के लिये, गोपों के लिये, व्रज के लिये इससे अधिक शुभ—मङ्गल संवाद और क्या हो सकता है। आनन्द, उत्सव, उल्लास, बधाई, नन्हें गोकुल में यह महामोद कैसे समा जाय।

'यह रोहिणीजी का प्रभाव है !' जो आता है, उसी के मुखपर यही बात। गोपियाँ आती हैं और अञ्चल फैलाकर उनके चरणों का स्पर्श करती हैं। उन्होंने तो उस महिमामयी के आते ही कहा था कि अब अवश्य नन्दरानी की गोद धन्य होगी और जब वह स्वर्ण-गौर दाऊ—हाँ दाऊ ही तो, उसका तो अब तक नामकरण ही नहीं हुआ, पर सब उसे दाऊ कहने लगे हैं—वह दाऊ जिस दिन आया, यह तो सबके हृदय ने संदेहहीन रूप से स्वीकार कर लिया कि अब वह अपना छोटा भाई भी बुलायेगा ही।

माता रोहिणी—बड़ा संकोच होता है उन्हें और वे अपने पूज्य पतिदेव से दूर हैं ! अपने परम सुन्दर का मुख देखकर भी उनकी व्यथा गयी कहाँ। ये गोपियाँ—किसे मना करें वे। आज-कल बड़ी विचित्र दशा हो गयी है उनकी। पतिदेव—पतिदेव को वे भला क्या भूल सकती हैं। उनकी व्यथा कैसे कोई समझेगा; किंतु ये यशोदा, पता नहीं क्यों आजकल यशोदाजी पर दृष्टि जाते ही उनका अन्तःकोप प्रसुप्त सा हो जाता है। एक अज्ञात उल्लास उमड़ पड़ता है हृदय में और उनका यह दाऊ—वह तो उनकी गोद में रहना ही नहीं चाहता और व्रजरानी ही कहाँ छोड़ना चाहती हैं उसे। वे तो उसे गोद में लेकर ही कुछ सावधान रह पाती हैं। पता नहीं कैसी दशा हो गयी है उनकी। उन्मना-सी ही वे प्रायः रहती हैं।

यह अद्भुत दिव्य सुरभि, यह नित्य बार-बार अन्तरिक्ष से कुसुम-वृष्टि, यह अद्भुत ज्योतिर्मय पुरुषों का चाहे जब गगन में प्रकट हो जाना, यह स्तवन, वाद्य, संगीत की बार-बार अज्ञात ध्वनि—किंतु इससे नन्दभवन में कोई अब अपरिचित कहाँ है। दाऊ जब माता के गर्भ में था, तब से इस सबका अभ्यास है सबको। क्या हुआ जो अब इनकी आवृत्ति अधिक होने लगी है। इसमें किसी को कुछ अद्भुत नहीं लगता।

श्रीव्रजरानी इस प्रकार उन्मना रहने लगी हैं, यही चिन्तनीय है। वैसे उनके शरीर का दिव्य तेज बढ़ता ही जा रहा है। उनका शरीर ही आलोकमय हो गया है। उनकी शक्ति और स्फूर्ति भी बढ़ी ही है। उनकी अङ्गयष्टि में तनिक भी क्षीणता एवं दुर्बलता के लक्षण नहीं। उनके देह से अपूर्व सुरभि निकलने लगी है; किंतु वे यह जो प्रायः अद्भुत रूप से हँसने लगती हैं, थकित-सी रह

[illegible]ी हैं। एक ही समाधान है सबके लिये कि कदाचित् अधिक अवस्था में संतान-प्राप्ति का यह [illegible]व है।

उस दिन महर्षि शाण्डिल्य आये थे। गर्भ के संस्कार तो होने ही चाहिये। वे वृद्ध, सर्वज्ञ [म]हर्षि—पता नहीं क्या हुआ, वे तो नन्दरानी को देखते ही स्तम्भित-से रह गये। उनके नेत्रों से [अ]श्रुधारा चलने लगी। हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया उन्होंने। भला, यह भी कोई बात है ? व्रज-[प]ति आकुल होकर उनके पैरों पर गिर पड़े। महर्षि ने कठिनता से अपने को सम्हाला। नेत्र [पों]छे। उन्होंने कितने भावक्षुब्ध कण्ठ से कहा था—'व्रजेन्द्र, आप धन्य हैं! आपके यहाँ जो आ [र]हे हैं, उनके लिये—उनके निमित्त प्रणाम करने का भी सौभाग्य प्राणी अनेक जन्मों के पुण्यों का [उ]दय होने पर ही पाता है।' महर्षि पता नहीं अपनी परावाणी में क्या-क्या कह गये। बाबा ने, गोपियों [ने], गोपों ने यही समझा कि महर्षि उत्तम बालक की बात कह रहे हैं।

× × ×

'इस बार महाशक्ति योगमाया भी धरा पर व्यक्त हो रही हैं!' सृष्टिकर्ता के लिये नन्दव्रज [न]ित्य प्रणम्य हो गया है।

'आदिशक्ति के पावन-चरणों में हम नित्य अभिवादन का ऐसा सुअवसर कदाचित् ही [पा] सकें।' महेन्द्र शची के साथ गोकुल में—नन्दभवन की धन्य 'धरा' पर अपने पारिजात सुमनों की अञ्जलि नित्य सार्थक करते हैं।

'ये भगवान् शिव और ये भगवती पार्वती भी क्यों नित्य व्रज में ही दिखायी पड़ती हैं! ये सनकादि कुमार—ये क्या अब महाशक्ति की आराधना करने लगे हैं ? ये तो नित्य उन पुराण-पुरुष के चिन्तन में ही तन्मय रहते हैं और ये देवर्षि, इन्हें तो नित्य मथुरा जाना चाहिये, अनन्त-शायी तो वसुदेवजी के यहाँ प्रकट होनेवाले हैं और ये गोकुल की प्रदक्षिणा करके ही संतोष कर लेते हैं।' कौन बताये देवताओं को कि गोकुल में—नन्दभवन में इस बार जो आ रहा है, वह स्रष्टा के लिये भी अज्ञेय ही है। वह तो जिन्हें स्वयं दर्शन देना चाहे, वे ही उसे देख पाते हैं। भला, ये उनके नित्य सेवक, ये परमभागवत उसके आगमन से अनभिज्ञ रह कैसे सकते हैं; किंतु देवताओं को, स्रष्टा तक को तो वह बालिका—वह महाशक्ति योगमाया ही दीखती हैं। वह कहाँ देखने देती हैं अपने अग्रज को। उन्होंने सबकी दृष्टि आच्छादित जो कर रक्खी है।

श्रीयशोदाजी—वे इन सुरों को, इन ऋषियों को देखती हैं, पर देखकर भी नहीं देखतीं। कहाँ अवकाश है उनके मन को। यह परमसुन्दर, परमसुकुमार, परमचपल श्यामशिशु—यह जो उनके आगे दौड़ता, उझकता, किलकता-सा रहता है और यह बालिका—यह बालिका जो सहसा आती है और फिर झट छिप जाती है। व्रजेन्द्रगृहिणी को तो श्री रोहिणीजी बार-बार सम्हालती हैं। स्नानादि का भी उनके आजकल वे ही ध्यान रखती हैं।

× × ×

'बधाई श्रीनन्दराय जू!' आजकल बधाइयों की क्या कोई गणना है। व्रज के पृथक्-पृथक् गोष्ठों से, ग्रामों से, गृहों से और कौन जाने कि ये बधाइयाँ सब व्रज के लोग ही देने आते हैं। [प]ता नहीं कहाँ-कहाँ के विप्र, कौन-कौन ऋषि, मुनि, विद्याजीवी, नट, नर्तक आजकल गोकुल आते हैं। किसी को आशीर्वाद देना है, किसी को अभिवादन करना है और किसी को बधाई देनी है। श्रीव्रजेन्द्र को संतति होनेवाली है, उनका गुण, उनका सुयश—भला, यदि दूर-दूर के ऋषि-मुनि भी उन्हें आशीर्वाद देने पहुँचने लगे हैं तो आश्चर्य की क्या बात है और कोई भी विद्योपजीवी [इ]तना पुरस्कार किसी सम्राट् से भी पाने की आशा कर सकता है ?

गोकुल तो अभी से अतिथियों की पावन पद-रज से परिपूत होने लगा। महर्षि शाण्डिल्य [क]े ही अतिथि बढ़ रहे हैं सबसे अधिक। ये देहधारी तप, त्याग एवं ज्ञानस्वरूप, विश्ववन्द्य [ऋ]षिगण—किंतु उनसे तो अनुरोध भी नहीं करना पड़ता। वे तो महर्षि से मिलते ही स्वयं कहते

हैं—'हमें भी अपने तपोवन के एक तृण की भाँति एक ओर पड़े रहने की अनुमति दें आप !' 'कहाँ, राज, गोकुल, गोप सब कृत-कृत्य हैं। सब मानते हैं कि यह उनके आचार्य का ही प्रभाव है। महर्षि शाण्डिल्य—वे अपने भाव-गद्गद स्वागत में कुछ कह जाते हैं—भला, उनकी बात, इन महर्षियों की बात तो महर्षि ही समझ सकते हैं।

व्रजेन्द्र के लिये तो सभी नारायण के स्वरूप हैं। वे कहाँ किसी नट-नर्तक और दूसरे आगत में भेद देख पाते हैं। उनके यहाँ कौन-कौन आ रहे हैं—कौन जाने, कौन पहचाने। व्रजेश तो प्रत्येक के लिये अपना सर्वस्व देने को ही उद्यत रहनेवाले महा उदार हैं और उनके ये अद्भुत अभ्यागत—ये उनको आशीर्वाद या बधाई देने में ही पता नहीं क्यों अपना सौभाग्य मानते हैं सब के सब।

'हम जाते कहाँ हैं। आप के लाल का दर्शन करके ही हम बधाई का पुरस्कार लेंगे और खूब लेंगे!' भला, गोकुल में क्या आवास का अभाव है। बाबा को तो लगता है, ये सब सम्मान्य जन यहीं के निवासी बन जायँ! जो आता है, वह आजकल जाने के लिये आता कहाँ है और गोपों में तो जैसे 'पर' का भाव ही नहीं रहा है। ये सब उनके अपने ही लोग तो हैं।

× × ×

'मेरे उपवन के तरुओं का मधु रक्खा जा सके, मैं इसके लिये पात्र की व्यवस्था करने में असमर्थ हूँ।'

'मेरे गोष्ठ से पूर्व की गोचर भूमि माणिक्य, वैदूर्य एवं पद्मराग की राशियों से गौओं के चरने के योग्य नहीं रही। व्रजेश उन्हें उठवाकर पृथक् करा दें तो समीप में मृदुल तृण मिलें गायों को।'

'मेरी सब गायें एक साथ दूध देने लगी हैं। वे दुहने की अपेक्षा किये बिना ही स्तनों से दुग्धधारा क्षरित करती हैं। मैं गोदुग्ध को कहाँ तक पात्रों में रखने की व्यवस्था करूँ?'

'ये श्यामकर्ण अश्व—पता नहीं कौन कहाँ से इतने अश्व यहाँ मेरे गोष्ठ में जोड़ गया। आप इन्हें सम्हालें!'

व्रजराज क्या-क्या सम्हालें, किस-किस की व्यवस्था करें। वनों में पुष्प, फल, मधु समाता नहीं और गिरिभूमि की तो चर्चा ही क्या, वनभूमि भी मणि प्रकट करने लगी है। गोष्ठों से गोदुग्ध की धारा बहती है। तेली, वस्त्र देनेवाले, ताम्बूल देनेवाले आदि प्रजाजन का अभियोग है कि गोपों ने उनसे सेवा लेनी ही बंद कर दी और गोप कहते हैं कि ये लोग छिपा-छिपाकर अनावश्यक सामग्री हमारे घरों में भरते ही जा रहे हैं। अभियोग कौन सुने और किसका सुने? अभियोग हो भी तो सुना जाय। यहाँ तो सबका अभियोग है कि दूसरे सेवा नहीं लेते। सब देना-ही-देना चाहते हैं और लेना चाहे कौन? क्या ले कोई किसी से। लगता है कि महालक्ष्मी ने अलक्ष्य रूप से सभी पदार्थों को स्पर्श कर दिया है। वे स्वयं गोकुल में आ बैठी हैं कहीं छिपकर और सारे पदार्थों—कोषों को अक्षय करती जा रही हैं।

× × ×

'श्रीनन्दरानी की गोद भरने वाली है; व्रजेन्द्र के संतति होने वाली है!' व्रज में प्रत्येक हृदय बड़ी उत्सुकता से उस धन्य घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा है। प्रत्येक की आराधना आजकल एकान्त तन्मय हो उठी है और प्रत्येक का एक ही प्रार्थनीय है—'व्रज को युवराज प्राप्त हो!'

व्रज की श्री, शोभा, शक्ति—वह तो कभी भी मायिक थी ही नहीं। वहाँ तो नित्य नव उल्लास रहा है; किंतु आजकल तो बात ही दूसरी है। प्रतिदिन, प्रतिप्रहर, प्रतिमुहूर्त स्वयं गोपों को लगता है कि उनका व्रज नवीन हो गया है। कोई अलक्ष्य कर जैसे गोकुल को सजाले, सँवारते संतुष्ट ही नहीं होता; यह शोभा, यह ऐश्वर्य—कोई क्या कल्पना करे। जिसके आगमन की सूचना में ही यह वैभव है—इन्दिरा का सम्पूर्ण ऐश्वर्य जिसके अग्रिम पाँवड़ों में ही समाप्त हो रहा है, अभी

जाता जायेगा ! श्रीनन्दराय का वह कुमार—कैसा होगा वह ? गोपों के हृदय भी कल्पना नहीं पाते । पलकें प्रतीक्षा कर रही हैं, प्राणों में पिपासा तीव्र से तीव्रतम होती जा रही है और गृहों में आनन्द, उमंग बढ़ती जा रही है ।

'यह इन्द्रनील मणि—व्रजेन्द्रनन्दन के लिये इससे मैं क्रीडाशुक बनवाऊँगी !'

'ये महामाणिक्य—ये यशोदा के लाल को न्योछावर होंगे !'

'यह पद्मगन्धा कपिला—व्रजेन्द्र कैसे अस्वीकार करेंगे मेरा यह स्नेहोपहार, मेरा युवराज इसका दूध पियेगा !'

मैं इस मयूर को तब तक नाचना सिखा दूँ संकेत के अनुसार—व्रज का वह भावी नरेश इसके साथ ठुमका करेगा !'

पता नहीं क्या-क्या संचय होने लगा है गोपों के गृहों में अभी से । युवक, तरुण, वृद्ध गोप, सभी गोपियाँ—सब अपनी-अपनी रुचि रखते हैं और श्रीनन्दराय के जो यह लाल आनेवाला है—लाल ही तो आनेवाला है, व्रज में तो किसी को इसमें संदेह है नहीं—वह नन्दलाल—वह किसका नहीं है । सब उसे उपहार देंगे । अच्छे-से-अच्छा उपहार जो उन्हें उसके उपयुक्त लगता है, संचित होता जा रहा है । उपहार भी कुछ एक ही तो नहीं देना है—'यह उसके जन्मपर न्योछावर होगा, यह नान्दीमुख श्राद्ध पर, यह उनके पलने में रहेगा और इससे वह खेलेगा !' प्रत्येक यही समझता है कि नन्दतनय की सब प्रसाधन-सामग्री उसी को एकत्र करनी है ।

'यह साड़ी श्रीनन्दरानी को खूब खिलेगी ! यह उत्तरीय रोहिणीजी को देकर रहना है । यह उष्णीष श्रीव्रजेश के मस्तक के ही योग्य है और दाऊ की झँगुलिया—भला, इसके निर्माण को दूसरों पर कैसे छोड़ा जाय । इसमें तो सारे कोष के सर्वोत्तम रत्न लगाने ही हैं ।' अन्ततः उस नन्द-पुत्र के जन्मोपलक्ष में सभी को तो उपहार देने हैं । सब अभी से वे उपहार एकत्र करने लगे हैं । किसी को अपनी आवश्यकता सूझती ही नहीं, एक ही धुन है सबको—वह क्या देगा नन्दराय को और क्या उस नवजात युवराज के लिये । सब अधिक-से-अधिक, सर्वश्रेष्ठ उपहार एकत्र कर लेना चाहते हैं और उनका संग्रह तथा छँटाई समाप्त होने को ही नहीं आती । उन्हें अपने संग्रह अपर्याप्त ही लग रहे हैं ।

गोप ही उपहार देंगे ऐसा कहाँ है—गायक अपने वाद्य, स्वर, गान ही निश्चित करने में लगे रहते हैं आजकल और नट अपनी कला के अभ्यास में लगे हैं । मालियों ने अपने उद्यानों में अद्भुत पुष्पों को रोपित किया है और ताम्बूलकार पता नहीं दिनभर क्या-क्या शोध किया करते हैं । सब व्यस्त हैं, सब प्रयत्नशील हैं । सबके पदार्थ, सबकी कला, सबके उपहारों को सार्थक जो होना है ।

विप्रवृन्द की आराधना बढ़ती ही जा रही है । महर्षि शाण्डिल्य अपने यज्ञकुण्ड से बहुत ही थोड़ी देर के लिये उठते हैं । भगवान् अग्निदेव आहुतियों से अविराम तृप्त किये जा रहे हैं । 'श्रीनन्दनन्दन का मङ्गल हो !' सबके अनुष्ठान अविचल भाव से चल रहे हैं ।

× × ×

आज भाद्रकृष्ण अष्टमी है । महर्षि शाण्डिल्य ने संकेत किया है कि शीघ्र ही व्रजेन्द्र का भवन पुत्र के पदार्पण से मङ्गलमय होनेवाला है । लगभग एक वर्ष—एक वर्ष से जिसकी प्रतीक्षा चल रही है, वह आनेवाला है ।

व्रजेन्द्र के भवन में ओषधियाँ तो कब से आ गयी हैं । अनेक सेवक बहुत पूर्व से स्वयं नित्य नवीन ओषधियाँ लाते हैं और पहिले दिन की हटा दिया करते हैं । श्रीनन्दरानी का कक्ष तो कब से विधिपूर्वक रक्षित एवं सज्जित रहता है । मङ्गलप्रदीप तो नित्य ही अखण्ड प्रदीप्त होता है, किंतु अब वहाँ शस्त्र भी सुपूजित होने लगे हैं । परिचारिकाएँ सदा सेवा में प्रस्तुत रहती हैं । यह ठीक है कि व्रजेन्द्रगृहिणी में शैथिल्य के कोई लक्षण नहीं; किंतु वे श्री रोहिणीजी का आदेश कैसे टाल सकती हैं । आजकल तो श्री रोहिणीजी अनुरोध नहीं करतीं, वे तो इस प्रकार आदेश

देती हैं जैसे बड़ी बहिन अपनी सगी छोटी बहिन को देती हो। उनका आदेश नहीं है कि श्री यशोदाजी स्वयं कुछ भी करें, थोड़ा भी इधर-उधर आयें-जायँ। परिचारिकाओं पर विश्वास ही नहीं होता उन्हें। वे स्वयं प्रातः व्रजरानी के समीप ही रहती हैं। आजकल इस परिचर्या में वे अपने पति-वियोग को भूल-सी गयी हैं।

आज अष्टमी है। आज महर्षि शाण्डिल्य स्वयं प्रातः नन्दभवन पधारे और कुछ संकेत कर गये। वे कहाँ कभी स्पष्ट कहते हैं। नन्दभवन आज नवीन रूप में सजाया गया है। प्राङ्गण के आहवनीय-कुण्ड में आज विशेष आहुतियाँ पड़ी हैं और पूरा गोकुल जैसे एक छोटा कच्च हो— साज-सज्जा से उसका प्रत्येक अंश पूर्ण हो गया है।

× × ×

'गगन निर्मल है, तारकमण्डल पूर्ण प्रकाशित है और अभी अर्धरात्रि भी नहीं हुई; पर आज आलस्य क्यों आ रहा है!' श्रीव्रजराज ने अनुभव किया कि सभी दिनभर साज-सज्जा में व्यस्त रहे हैं। स्वयं उन्हें भी निद्रा ज्ञात हो रही है। आज उनकी रात्रि की पुराण-गोष्ठी शीघ्र विसर्जित हो गयी। सभी को निद्रा की अलस स्थिति का अनुभव हो रहा था।

'अब तो बहुत कुछ हो चुका है, तनिक देर विश्राम कर लेना है।' गोपियों ने निश्चय तो रात्रि-जागरण का किया था। आज उन्हें नन्दनन्दन के लिये पता नहीं क्या-क्या बना लेना है। आज ही बना लेना है। महर्षि ने कहा है कुछ—वह यशोदासुत आने ही वाला है; पर वे दिनभर व्यस्त रही हैं। अब पलकें स्वतः बंद होती जा रही हैं। उन्हें शयन कहाँ करना है। कुछ क्षण विश्राम भर करेंगी वे। अब यदि कुछ क्षणों के लिये बंद किये गये पलक कुछ घटिकायें ले लें तो कोई क्या करे!

प्रहरी—बड़े सावधान, नित्य जागरूक प्रहरी। तनिक भित्ति से पीठ टिकाकर शरीर सीधा किया उन्होंने और मस्तक झुककर एक ओर लगाया। श्रान्ति प्रतीत होती है, एक बार नेत्र बंद हुए और फिर पता नहीं। वे तो बेचारे प्रहरी मानव ही थे, आलस्य तो आया रात्रि के नित्य सजग श्वानों को और वे इधर-उधर बैठ गये मुख को शरीर पर मोड़कर। पता नहीं कौन यह अद्भुत आलस्य संचारित कर रहा है!

परिचारिकाएँ—वे बिचारी क्या करें। वे भला, कहीं प्रमाद कर सकती हैं। उन्हें स्वयं पता नहीं कि क्या हो रहा है। किसी ने बैठे-बैठे तनिक भित्ति से सिर सटाया था और किसी ने खड़े-खड़े थककर स्तम्भ का सहारा लिया था। किसी ने शरीर को स्फूर्ति देने के लिये अँगड़ाई लेनी चाही थी लेटकर और कोई तो ज्यों-की-त्यों बैठी है। पलकें स्वयं बंद हुई और फिर क्या किसी के वश की बात है।

श्रीनन्दरानी—अपनी सुकोमल शय्या पर उन्हें भी आलस्य आने लगा है। 'सेविकाएँ सो गयीं, ये सब बहुत व्यस्त रहती हैं। कुछ देर सो लें तो अच्छा है।' उन्होंने स्वयं भी नेत्र बंद कर लिये। कौन—कौन है अङ्क में? कोई शिशु—कोई शिशु ही तो आ गया है उनकी गोद में। एक अर्धनिद्रित-सी दशा का बोध, इच्छा होने पर भी पलकें नहीं खुलीं। उन्हें यही पता नहीं लगा कि उनकी गोद में एक शिशु है या दो हैं। वे निद्रित हो गयीं या उस आनन्दघन के अभिर्भाव ने उनके अन्तर को सत्व के चरमोत्कर्ष से निःस्पन्द, बाह्यचेतनाशून्य, अन्तर्लीन कर दिया—कौन कह सकता है।

× × ×

'जय कन्हैयालाल की!' भला, इन सब वृद्धों में परम वृद्ध किंतु पञ्चवर्षीय सनकादि कुमारों को कोई क्या कहे। ये परमशान्त, नित्य आत्मनिमग्न, गम्भीरता के सचल विग्रहरूप—इन्हें क्या हो गया है आज? 'जय कन्हैयालाल की!' ये तो सचमुच आज पञ्चवर्षीय बालक हो गये हैं। पितामह को झकझोर दिया इन्होंने, वृद्ध ऋषिवृन्द को जैसे प्रोत्साहित कर आते हों और सिद्ध-सुरवर्ग तो इनके संकेत पर ही श्रद्धावनत है।

'जय कन्हैयालाल की !' श्रीकृष्णचन्द्र तो आ रहे हैं मथुरा के कारागार में, पर किसी के विमान से भी दिव्य सुमनों की श्रद्धाञ्जलियाँ ये कुमार गोकुल के नन्दभवन में क्यों समर्पित करते सकते नहीं। ये तो जैसे चाहते हैं, सब अपने समस्त सुमन नन्दभवन पर ही न्योछावर कर दें। अब ये समीप आते हैं, अञ्जलि कहाँ दे रहे हैं—ये तो विमानों से सुमनों को दोनों हाथों से उडेल रहे हैं और इनके संकेत की कौन अवहेलना करे—इनके पहुँचते ही इनका समादर तो करना ही है। देवता, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि, सब हँसकर इनके संकेत का अनुगमन करते हैं। नन्दभवन—शान्त नीरव नन्दभवन इन पुष्पों से पूरित होता जा रहा है।

'जय कन्हैयालाल की !' नन्दभवन में तो योगमाया आ रही हैं, ये परमानन्दरूप कुमार—तो किसी भी अवतार के समय इतने आनन्द-विह्वल नहीं होते। आज तो ये इतने निमग्न हैं कि नाम किसी का ले रहे हैं और सुमनाञ्जलि कहीं उत्सर्ग कर रहे हैं। देवता समझावें इन्हें।

'जय कन्हैयालाल की !' पितामह—लोकस्रष्टा अपने इन आत्माराम आप्तकाम वीतराग पुत्रों के साथ कहने को तो कहते जा रहे हैं; न कहें तो ये क्या मानेंगे आज। आज तो इन चारों के चरण स्थिर ही नहीं होते। एक से दूसरे विमान तक वे मन की गति से उछल-कूद किये हैं और जैसे मथुरा की ओर उन्हें देखना ही नहीं है। जैसे उनकी चेष्टा, प्रत्येक भङ्गी कहती हो—'अरे क्या देखते हो, बड़े प्रमादी, बड़े सुस्त हो तुम लोग ! जीवन में कहीं ऐसा क्षण भी मिला करता है। कूदो ! उछलो ! पुकारो 'जय कन्हैयालाल की !' और उत्सर्ग करो अपने सुमन ! वहाँ—वहाँ नन्द-भवन में ! मथुरा की ओर क्या देखते हो !' सचमुच ये तो मथुरा की ओर देखते ही नहीं। नन्दभवन में आनेवाली योगमाया से तो इन्हें कभी इतना अनुराग नहीं था और अनन्तशायी, वही कहाँ इनके लिये इतने दूर हैं। कोई नहीं समझ पाता इनके उल्लास को।

'जय कन्हैयालाल की !' ये भगवान् शशाङ्कशेखर, ये तो हैं ही भोले बाबा। आज अपने अग्रज कुमारों के साथ ये भी आनन्दमत्त हो रहे हैं; पर यह मण्डली कब अपने-आप में रहती है। मथुरा—कंस का कारागार, वे देवकी-वसुदेव के सम्मुख विराजमान चतुर्भुज सर्वेश्वर प्रभु—उन प्रभु का अब यह मङ्गलमय, सौन्दर्यमय मानवशिशु रूप—कदाचित् इसी रूप के सौन्दर्य में मुग्ध ये कुमार एवं ये गङ्गाधर कन्हैयालाल की जय-जय करते नृत्य-सा कर रहे हैं ! पर ये तो उस शिशु की ओर देखते तक नहीं। मथुरा से जैसे इन्हें कुछ सम्बन्ध ही नहीं—क्या है नन्दभवन में ? नन्द-भवन पर ही तो इस नृत्य, उल्लास, उन्मद गति में भी इनकी अपलक दृष्टियाँ स्थिर हैं।

'ये योगमाया—ये सर्वेश्वरी और कितना मोहक, कितना आकर्षक, कितना मधुरिमामय है इनका यह नवजात बालिकारूप !' देवताओं ने नन्दभवन की ओर देखा उस कारागार को कृतार्थ करनेवाले चिन्मयपुरुष के शिशु रूप को देखने के अनन्तर और नन्दगृहिणी के अङ्क में जो यह भुवनमोहिनी बालिका आ गयी है—भुवनमोहिनी जो है वह, 'अनिमेष' नाम सार्थक हो गया सुरों का। जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी भी उस मञ्जु मुख से अपने नेत्र हटा न सके। सबके नेत्र जैसे उस मोहमयी कन्या ने अपने में ही बलात् केन्द्रित कर दिये हों। उसके समीप, उससे सटा ही कोई है, कोई वह शिशु जिसकी छटा का प्रतिबिम्ब ही उसकी यह अपार शोभा बन गया है, वह जिसकी अनुजा है; पर देवताओं के नेत्र उसके मुख से हटें तब तो और कुछ देखें। क्या हुआ जो स्रष्टा सर्वज्ञ हैं, आज उनकी सर्वज्ञता इस कन्या के त्रैलोक्य-मोहन मुग्ध नेत्रों में ही सीमित हो गयी है। देवताओं ने नन्दभवन की ओर देखा—उनके नेत्र सीधे उस कन्या के मुखपर पड़े और वहीं स्थिर हो गये।

'अच्छा, वसुदेवजी इस कन्या को उठा रहे हैं ! अपना पुत्र—उस अनन्तशायी को नन्द-रानी की गोद में रक्खे जा रहे हैं !' देवताओं के साथ स्रष्टा ने भी देखा अब कि वसुदेवजी नन्दभवन आ गये हैं। उन्होंने बालिका को गोद में उठा लिया है अपने पुत्र को उसके स्थान पर रखकर। प्रजापति द्रोण एवं भूदेवी को वरदान दिया था कि जब परमपुरुष अवतार लेंगे तो वे अपनी क्रीडा से तुम लोगों को प्रसन्न करेंगे और तुम्हारी उसमें वात्सल्य भक्ति होगी। ये व्रजराज

नन्द द्रोण ही तो हैं और ये भूदेवी ही यशोदा हैं। प्रभु ने अपनी अपार करुणा से मेरा वचन सत्य किया!' कौन बताये पितामह को कि आप पहिले इन योगमाया की वन्दना कीजिये, जिन्हें वसुदेवजी लिये जा रहे हैं। ये मुस्करा रही हैं और आप इनके स्मित का अर्थ जानते हैं। ये श्रीनन्दराय और ये यशोदाजी--ये क्या आप की सृष्टि के हैं? ये कौन हैं--लेकिन आपके द्रोण एवं भूदेवी इनसे एक हो गये हैं, जैसे नन्दनन्दन में वसुदेव-कुमार; पर आप तो प्रत्यक्ष कहाँ देख रहे हैं। आपकी दृष्टि तो उन एक हुए रूपों को ही देखती है।

'जय कन्हैयालाल की!' इस बार स्रष्टा के स्वरों में भी उल्लास आया और उनकी चारों अञ्जलियाँ सुमनों से पूरित हुईं। सुरों ने पितामह का अनुसरण किया। गगन का यह महोत्सव चलता रहा, चल रहा है 'जय कन्हैयालाल की!' धरा नीरव--निःशब्द--प्रसुप्त और गगन--गुञ्जित, मोदमय--वहाँ एक ही ध्वनि--एक ही उल्लास--जय कन्हैयालाल की! जय कन्हैयालाल की!।

वंदे नंदनंदनं देवं !

जागृहि जागृहि चेतश्चिराय चरितार्थता भवतः ।
अनुभूयतामिदमिदं पुरः स्थितं पूर्णनिर्वाणम् ॥

—श्रीलीलाशुक

'बधाई, नन्दरानी जू ! बधाई ! बधाई !' आज श्रीव्रजेश्वरी का सूतिकागृह क्या सेविकाओं पर छोड़ा जा सकता था। माता रोहिणी तथा सभी जेठानियाँ एवं देवरानियाँ तो आज इसी कक्ष में हैं। सब से छोटी देवरानी ही पहिले जागृत हुईं और 'यह क्या, कक्ष में इतना सुस्निग्ध आलोक ! मणि-प्रदीपों में कहीं यह आलोक हो सकता है !' झटके से वे उठीं और दृष्टि गयी व्रज-रानी के ऊपर। यह उनकी गोद में जो सहस्र-सहस्र सुधांशु की घन ज्योत्स्ना सुनील शिशु बन गयी है ! दृष्टि वहीं स्थिर हो गयी; किन्तु मुख से बधाई निकली और करों ने पहिले से प्रस्तुत मङ्गल-जनक कांस्य-पात्र बजाने प्रारम्भ कर दिये। उन्हें स्वयं पता नहीं कि वे कर क्या रही हैं।

गगन की पुष्पवृष्टि द्विगुण, चतुर्गुण, शतगुण होती जा रही है और आकाश का जयनाद, भेरीघोष; किंतु गोकुल के वाद्यों से जो एक साथ यह स्वर उठा है—आज भला, गगन धरा से कैसे किस बात में होड़ करे। आज धरा पर यह जो शिशु आया है, गगन उसकी इस जन्मभूमि की वन्दना ही तो कर सकता है।

'श्री व्रजराज की जय !' श्री व्रजराजकुमार की जय !' प्रसूतिकक्ष से कांस्यपात्र की ध्वनि उठी—जैसे गोकुल के प्रसुप्त प्राणों को विद्युत्स्पर्शी जीवन-आनन्द-गति प्राप्त हुई हो। एक साथ-एक साथ ही सब वाद्य गूँजे और सब के कण्ठों से जयध्वनि गूँजी। प्रतीक्षातुर प्राण क्या ऐसे संवाद को किसी से पाने की प्रतीक्षा करते हैं।

'बधाई ! बधाई !' एक साथ प्रसूतिकक्ष में सभी सेविकाएँ, सभी माताएँ उठीं और सब के नेत्र उस सजलजलदनील ज्योतिर्मय के मुखपर स्थिर हो गये। मैया—आज व्रजेश्वरी मैया हो गयी। उसका लाल—ओह, कितना सुकुमार है ! उसे तो छूने में भी प्राण काँपते हैं। वह तो प्राणों के स्पर्श से भी···माता ने देखा और देखती रह गयी। वह हँस रहा है-वह तो हँस रहा है अपने विशाल लोचनों से मैया की ही ओर देखता। वह हँस रहा है—वह आनन्दघन—वह तो प्राणों को हास्य ही देने आया है, फिर रोये क्यों ? पर यह मैया कब तक उसे देखती रहेगी ? यह उठाती क्यों नहीं, वह इसी की स्नेहमयी गोद के लिये लालायित तो आया और यह उठाती ही नहीं। कोई कब तक प्रतीक्षा करे—यह लो, वह रोया-रोया—रोने लगा वह। जैसे सबके आनन्दमग्न स्तब्ध प्राणोंको गति, चेतना देने के लिये ही वह रोया हो।

अरे ! यह दाऊ कहाँ से आ गया ? यह तो अभी घुटनों के बल ही चल पाता है। माता रोहिणी इसे सुला आयी थीं। अब यह स्वयं अपने रत्न-पलने से उतर जाता है। माता को न देखकर उतर आया होगा। रोना तो यह जानता ही नहीं; पर यह अच्छा रहा ! जन्म से लगभग वर्ष भर होने को आया ! यह सदा गुम-सुम रहने वाला—मैया हार गयी गुदगुदाकर, माता रोहिणी नेत्र भर कर बार-बार कहती रहीं-'मुझ पतिसेवा से पराङ्मुखा भाग्यहीना का यह पुत्र भला, क्या हँसे !' बाबा, गोपियाँ, सभी थक गये; पर यह न हँसा, न हँसा। इसके कोमल अरुण अधरों पर स्मित कभी न आया। यह सदा ऊपर नेत्र किये कुछ सोचता-सा रहने वाला, खिलौनों से उदासीन, दूसरे छोटे बालकों में भी चुपचाप बैठे रहने वाला, आज यह इतना हँस क्यों रहा है ? अपने नवजात छोटे

भाई को रोते देख यह तो और भी हँसते-हँसते लोट-पोट होने लगा है। क्या हो गया है इसे ? इसके हास्य ने तो मैया के, माता रोहिणी के, सभी के आनन्द को अपार बढ़ा दिया है। यह तो अपने छोटे भाई की ओर देख-देख कर हँसता ही जा रहा है। यह हास्य, यह उन्मुक्त बाल-हास्य, जैसे वर्ष भर की सम्पूर्ण निरुद्ध हँसी आज ही पूरी कर लेगा।

माता रोहिणी—उनका दाऊ, आज यह हँसते हँसते लोट-पोट हो रहा है! ठीक ही तो है—आज तो स्वयं उनका हृदय आनन्द-मग्न हो गया है। इस नवजात नन्दनन्दन के श्रीमुख पर दृष्टि गयी, माता को लगा कि यह इन्दीवरसुन्दर उन्हीं की ओर देखकर हँस रहा है। हृदय—वहाँ तो उसी समय आनन्दसिन्धु हिलोरें लेने लगा। वहाँ कोई दुःख, कोई चिन्ता कभी थी भी—अब उसका चिह्न भी कहाँ है। माता रोहिणी पति से दूर हैं—पुत्र का प्रफुल्ल कमलमुख देखकर भी वे उस पतिवियोग की विषम वेदना को एक पल के लिये भी भूल नहीं सकी हैं; किंतु आज—भला, इस नन्दनन्दन के मुख पर दृष्टि पड़ने के पश्चात् भी किसी के मनमें कोई दुःख शेष रह सकता है। यह आनन्दघन—इसे देखकर तो फिर यही-यही रहता है। माता रोहिणी तो इसे देख रही हैं, इसी को देख रही हैं और अब उनके हृदय को सदा इसीको देखना है। अब तो वहाँ इसके प्रति उमँड़ते हुए वात्सल्य का अखण्ड साम्राज्य है। यह—यह चपल अभी से अपने पतले नन्हें अधरों में मन्द कम्पन करता उन्हीं की ओर देखता, उन्हीं से तो जैसे कहता है कि 'यह मैया तो मुझे उठाती नहीं; पर बड़ी माँ, तू क्यों इस प्रकार देखती है ? तू तो उठा ले ! तू ही अपनी गोदमें चढ़ने का सौभाग्य दे मुझे ! भला, बड़ी माँ—माता रोहिणी कब तक टाल दें यह मूक अनुरोध—और अब तो वह रोने लगा है। माता ने ललक कर उठा लिया।

मैया—मैया तो देख रही है, वह तो एकटक देख रही है अपने इस लाल को। आनन्द के असीम उद्रेक ने उसके शरीर को निश्चल बना दिया है। उसका लाल—उसका लाल यह और अब तो माता रोहिणी ने गोद में उठाकर लाल को उसके अङ्क में रख दिया। यह स्पर्श—यह अमृतस्यन्दी स्पर्श—यह क्या वाणी में आ सकता है।

× × ×

'बधाई ! व्रजराज, बधाई ! श्री यशोदाजी की गोद में लाल आया !' सेविका दौड़ती आयी है। उसका कण्ठ गद्‌गद हो रहा है। वह व्रजराज को सन्देश देकर पुरस्कार प्राप्त करेगी ? पुरस्कार तो उसे इस संवाद ने ही दे दिया। वह तो दौड़ते दौड़ते अपने कण्ठ का हार उतारते आयी है और यह लो हार फेंक दिया उसने उस वन्दी पर। 'नन्दलाल की न्योछावर !' वन्दी—यह श्रीव्रज-राज का मुख्य उद्‌गायक—पर रङ्क की भाँति ललक कर लिया उसने हार। यह न्योछावर पाने को तो कोषाधिप तथा सुरेश भी ललक उठेंगे ! दासी का कण्ठ—उसके लिये तो व्रजेश्वर ने अपना रत्न-हार उतार कर बढ़ा दिया, पर दासी ने उसे ले ही भर लिया है। वह अपने आप में कहाँ है जो यह देखे कि उसे क्या मिला। उसने तो यह हार भी दूसरे को दे दिया। वह तो दौड़ी जा रही है, दौड़ी जा रही है उपनन्दजी के गृह की ओर और अपने आभूषण उतारती लुटाती जा रही है। 'श्री व्रज-रानी ने कुमार पाया है ! बधाई ! बधाई !' दासी कहाँ देख रही है कि वह किससे कह रही है। सबसे—सारे व्रज के लोगों से जैसे उसे ही कहना है और न्योछावर—क्या पाये और क्या लुटाये वह इस नन्दलाल पर, जैसे समझ ही नहीं पाती।

'नन्दरायजी को पुत्र हुआ, बधाई !' 'श्री यशोदाजी ने लाल पाया ! बधाई !' 'बधाई ! बधाई ! व्रज का युवराज आया, बधाई !' दासियाँ, सेवक, गोप, गोपियाँ, बालक—सब तो दौड़ रहे हैं। सब तो दूसरों को यह परमानन्ददायी समाचार सुनाने को आकुल हो उठे हैं।

'बधाई ! बधाई !' बाबा से, उपनन्दजी से, संनन्दजी से, दूसरे बड़े वृद्ध एवं मान्य गोपों से, वृद्धाओं से कितने लोगों ने दौड़कर यह समाचार सुनाया—कौन गणना करे। किसने कितने बार सुनाया, यही किसे स्मरण है और किसने पहिले सुनाया—इसका क्या महत्व है अब। यह हृदय को

विभोर कर देने वाला परम शुभ—मङ्गल संवाद—सभी सुनाने वाले जैसे पहिले ही सुना रहे हों। उन्हें भी तो यही लगता है कि हमीं पहिले सुना रहे हैं। क्या दिया जाय—इसका पुरस्कार क्या दिया जा सकता है। मणि, रत्न, आभरण, गौ, गज, अश्व, कौन क्या दे रहा है, कैसे गणना हो। जहाँ सेवक तक सर्वस्व लुटाये दे रहे हैं, वहाँ गोपों की, श्रीनन्दराय के भाइयों की और श्रीनन्दराय की बात कैसे कही जाय।

'श्रीव्रजराजकुमार की जय!' वाद्यों के अधिष्ठाता जैसे स्वयं मूर्तिमान् हो गये हैं। बन्दियों के यशोगान में राग अपनी रागिनियों एवं संतानों के साथ प्रत्यक्ष हो गये हैं और भगवती हंसवाहिनी तो इनकी वाणी का स्पर्श पाकर आज अपने को कृतार्थ ही मान रही हैं। कलाकारों की समस्त कला आज साक्षात् होकर रहनी है। नट, नर्तक, कविगण—सबकी जन्म-जन्म की साधना को सार्थक होने का तो आज अवकाश मिला है।

× × ×

'श्रीयशोदाजी ने लाल पाया!' गोपों ने सुना और दौड़े। 'अभी महर्षि शाण्डिल्य नान्दी-मुख श्राद्ध करायेंगे! उससे पूर्व ही एक झाँकी प्राप्त हो सकती है। देर हुई तो फिर छः दिन प्रतीक्षा करनी होगी! कौन यह अवसर छोड़ दे।

'श्रीव्रजराज को कुमार हुआ!' वृद्धों ने लकुट उठाये और चल पड़े। बालक तो कब के पहुँच गये दौड़ते हुये नन्दभवन और उन्होंने तो अपने अद्भुत उपहारों का ढेर भी वहाँ लगा दिया।

गोपियों ने शीघ्रता पूर्वक शृङ्गार किया। नूतन वस्त्र धारण किये। आभूषण सजाये और रत्नथालों में मङ्गल द्रव्य एवं उपहार उठाये। 'बड़ी देर हो गयी! इस मङ्गल अवसर पर बिना नूतन वस्त्र पहिने, बिना आभरण जाना उचित नहीं और कितनी देर लगी यह सब करने में।' वे अपने कोमल करों से थाल सम्हाले बड़ी शीघ्रता से चलीं। गति के कारण उनके केशों के पुष्पाभरण मार्ग में गिरते गये, भाल पर स्वेद कण आये और श्वास की गति बढ़ गयी; कहाँ ध्यान है इन बातों पर। नन्दभवन--नन्दभवन पहुँचना है। शीघ्रता से पहुँचना है। जातकर्म के मङ्गलगीत में सम्मिलित ही होना है और देखना है उस यशोदा-सुतको।

× × ×

'श्रीचरणों का आशीर्वाद सफल हुआ! श्रीव्रजेश्वर के गृह में पुत्र आया! प्रभु पधारें!' महर्षि शाण्डिल्य तो पहिले से प्रस्तुत हो गये थे। उनका यह अपार अतिथिवर्ग, ये मूर्तिमान् तपः-स्वरूप जगत्-पूज्य ऋषिगण—सबके-सब तो एक साथ स्वयं उनके समीप कुछ ही पूर्व आये हैं। सबका तो एक ही स्वर है—'महर्षि, हमारे नेत्र आपके उस लीलामय यजमान के श्रीमुख के दर्शनों से पवित्र हों, अब तो आप ऐसी कृपा करें!' ये सुरासुरवन्द्य महर्षि बार-बार संकुचित होते हैं, जब ये उन्हें आदर देते हैं; पर उन्हें जब वह सर्वाराध्य आदर देने आ रहा है—महर्षि ने सबको उठ कर आसन देना चाहा और समाचार आया। समस्त ऋषिमण्डली, सम्पूर्ण विप्रवर्ग नन्दभवन की ओर महर्षि के नेतृत्व में आतुर पदों से चला। उनका भुवन-पावन शङ्खनाद और स्वस्तिवाचन—दिशायें सदा ही उससे निष्कलुष होती हैं; पर आज तो उनमें अद्भुत शक्ति, उल्लास एवं आनन्द का सामञ्जस्य है।

नन्द-भवन—जहाँ अनन्त असीम आज नन्हा शिशु बन गया है, वह नन्दभवन आज असीम हो गया तो आश्चर्य क्या। पूरा गोकुल आज एकत्र हो गया है नन्दभवन में। समस्त नारियाँ उस सूति-कक्ष में आ गयी हैं—कैसे आ गयी हैं? यह कभी नहीं कहा जा सकेगा। पूरा गोपकुल प्राङ्गण में एकत्र है और एकत्र ही आ रहा है। वह सचल अग्निशिखाओं-सा तेजोमय विप्रवर्ग। बाबा ने दूर से दूर तक बढ़कर प्रणिपात किया भूमि में लेटकर और एक साथ वे शतशः अभय कर आशी-र्वाद देते फैल गये, जिनकी छाया लोकपालों के लिये भी चिरकाम्य रहा करती है। गोपों ने मार्ग दिया और मुनिमण्डली प्राङ्गण में आ गयी।

'कुमार चिरजीवी हो !' भगवती पूर्णमासी—ये जगदम्बिका-सी महिमामयी पधारीं और उनका मधुमङ्गल—यह तो साक्षात् मधु और मङ्गल दोनों है। भगवती के मना करने पर भी इसकी चञ्चलता कहाँ जाती है। 'मेरा सखा !' यह तो नाच रहा है। अपने सलोने सखा को गोदमें उठाया नहीं इसने संकोच मानकर—यही क्या कम है।

'लाल चिरञ्जीवी हो !' मैया ने अञ्चल फैलाकर विप्रपत्नियों एवं वृद्धा गोपियों का आशीर्वाद ग्रहण किया। सभी गोपियों की वाणी आज हृदय की गद्‌गद वाणी है और एक ही बात, एक ही शब्द—'चिरञ्जीवी हो !' कितना उल्लास है इस आशीर्वाद में और यह यशोदा का लाल—माता रोहिणी की गोद में यह घनसुन्दर शिशु—सबके नेत्रों ने जैसे कल्प-कल्पान्तर के पश्चात् आज ज्योति पायी है और उसमें भी एक ही दृश्य है।

बाबा कक्ष के द्वार पर आये-उपनन्दपत्नी ने धीरे से नवजात शिशु को बढ़ा दिया अपने ही करों पर लेकर। इतना अपार सौन्दर्य, इतना मधुरिम सौकुमार्य और यह मन्द हास्य ! किसी को उझकना नहीं पड़ा, किसी को झुकना या आगे बढ़ना नहीं पड़ा-जैसे वह शिशु प्रत्येक के सम्मुख ही है। सबके नेत्रों ने अपना परम धन देखा। ऋषिगण, मुनिमण्डली, विप्रवर्ग, गोपगण, सभी एक क्षण नीरव—निःशब्द, शान्त हो गये।

वह गूँजी गौओं की हुंकार, वह उठा वृषभों का गर्जन, वह सिंहों की गर्जना, मृगों की पुकार, मयूरों का केकानाद और पक्षियों का कोलाहल—तब क्या नन्दभवन के द्वार पर एकत्र इस पशु-पक्षियों के ठट्ठ ने भी इस छवि का वहीं से साक्षात् प्राप्त कर लिया ? यह क्या उनका जय-घोष है ? है तो यह ऐसा ही उमंग एवं उल्लास भरा।

× × ×

बाबा ने अपने नवजात कुमार का चन्द्रमुख देखा ! अब क्या उन्हें पता है कि वे कहाँ हैं, क्या करना है। उपनन्दजी ने सम्हाला, अभी उनको कालिन्दी में स्नान करना है। स्नान तो हुआ, पर कैसे हुआ—कौन कह सकता है। बाबा को तो उपनन्दपत्नी के करों पर वह नवनीत-सुकुमार नील-ज्योति सम्मुख ही दीखता है।

पूर्वाभिमुख दीप-स्थापन, भगवान् गणपति का पूजन, मातृकाओं का पूजन कब कैसे हुआ, बाबा को कुछ पता नहीं। बाबा को पता नहीं कि महर्षि ने स्वर्णदान का संकल्प करवाया है और कलश-स्थापन तथा नवग्रहपूजन होगया है। उनका शरीर तो जैसे यन्त्र की भाँति चेष्टा करता रहा है।

'कुमार को इसे अनामिका से चटा देना है ! यह स्वर्णपात्र में मधुमिश्रित गोघृत और महर्षि कहते हैं कि इसे चटाना है। इस नील सुन्दर के पतले अधरों में यह मधु लगाना है। पता नहीं अनामिका में मधु-घृत लेकर बाबा क्या सोचने लगे हैं। क्या सोचने लगे हैं वे। वे तो इस प्रकार उँगली मुख से स्पर्श करा रहे हैं, जैसे बहुत सावधान रहना आवश्यक हो इसमें भी। यह मधु और घृत—यह नन्द-नन्दन, इसने तो मुख खोल दिया है। बड़ा मीठा लगा है, अभी चाटना भी नहीं आता इसे तो।

बाबा, अब अपने इस इन्दीवरदलश्याम के कान में मन्त्र पढ़ें और उसके शरीर पर हाथ फेरें—ये क्या मन्त्र पढ़ सकेंगे ? यह गद्‌गद कण्ठ, यह कम्पित कर और रोमाञ्चित सर्वाङ्ग—महर्षि शाण्डिल्य की विधि ही कहाँ क्रिया पर अब निर्भर करती है। पाँच महर्षियों ने प्राणोच्चारण किया, भूमिस्पर्श हुआ और मैया ने मन्त्र श्रवण कर लिया; महर्षि शाण्डिल्य की भाव-विभोर वाणी ने झटपट पूर्ण कर दिया सब और यह भूखा भी तो होगा। अब इसे जननी के अङ्क में जाना चाहिये !

प्रसूतिकक्ष में उपनन्दपत्नी ने व्रजरानी की शय्या के नीचे जलपूर्ण कुम्भ रख दिया है। भूसंस्कार पाँचों ही हो चुके और अग्निदेव तो अब यहाँ प्रातः सायं तन्दुलकण एवं सर्षप की आहुति प्राप्त करेंगे ही। उन्हीं पर तो इस प्रसूतिगृह की रक्षा का भार है। उनकी निर्धूम लाल-लाल लपटें—वे स्पष्ट कहते हैं कि इस सौभाग्य को पाकर वे प्रमत्त हो ही नहीं सकते।

'श्री व्रजराज-कुमार की जय !' गगन में जयनाद हुआ गुरु-गम्भीर ध्वनि से। देववाद्य और अधिक स्वरित हुए और पुष्पों की राशि नन्द-प्राङ्गण में आयी।

'श्री नन्दलाल की जय !' बाहर बाजों पर एक साथ ध्वनि उठी और मागध, सूत, वन्दी जनों के जयघोष में प्राङ्गण के गोपों का कण्ठ एक हो गया।

विप्रों ने शङ्ख लगाये अधरों से और महर्षि शाण्डिल्य के साथ समस्त ऋषिवर्ग सस्वर स्वस्तिपाठ करने लगा। आज जैसे सभी ऋषि किसी-न-किसी प्रकार इस नन्दनन्दन के पौरोहित्य में कोई अंश प्राप्त कर ही लेना चाहते हैं। विधिपूर्वक जातकर्म-संस्कार हो चुका। कुलदेवता, ग्राम-देवता, इष्टदेवता, लोकपालादि ने प्राप्त कर लिये अपने भाग और पितरों के निमित्त नान्दीमुख-श्राद्ध तो होना ही था।

'मैं अकिञ्चन हूँ ! श्रीचरणों में मैं क्या निवेदित करूँ। यहाँ जो कुछ है, गोकुल का सम्पूर्ण वैभव तो श्रीचरणों का ही प्रसाद है।' बाबा ने अन्त में महर्षि शाण्डिल्य के पावन पदों में मस्तक रक्खा। एक लक्ष सवत्सा, सुपुष्टा, कपिला, स्वर्णरत्न शृङ्ग एवं खुरों से मण्डित, रत्नाभरण-भूषिता, गायें, तिलकी सात पर्वताकार ढेरियाँ, जो पूरी कौशेय वस्त्रों से आच्छादित करके रत्नों से ढक दी गयी हैं--यह दक्षिणा है आचार्य के लिये और व्रजेश्वर को अत्यन्त संकोच हो रहा है कैसे वे इस क्षुद्र दक्षिणा का उल्लेख करें।

महर्षि शाण्डिल्य तो गोकुल के आचार्य हैं, वे तो सदा से व्रजराज की श्रद्धापूत दक्षिणा स्वीकार करते आये हैं; पर आज तो उस कणाद, शिलाद, परमतापस, नितान्त निःस्पृह ऋषियों ने जो परिग्रह का नाम सुनकर भी वहाँ से प्रस्थान कर दिया करते हैं, नन्दराय की सहस्रशः धेनु, स्वर्ण, तिल, रत्नादि की दक्षिणा अत्यन्त उल्लास एवं आग्रहपूर्वक स्वीकार की। आज की दक्षिणा—तप जिसकी भावना से परिपूत होता है, कौन उसकी वाञ्छा न करे।

× × ×

जातकर्म पूर्ण हुआ। महर्षि को विदा होना है, विदा होना ही चाहिये। मुनिमण्डली, द्विजवृन्द—कैसे नेत्र हटाये जायँ इस सौन्दर्य राशि से। आशीर्वाद—आज ही तो वाणी को सफल होना है। युग-युग की तपस्या आज इस शिशु को आशीर्वाद देकर ही तो सार्थक हुई।

महर्षि ने प्रस्थान किया—जैसे अन्तर के आह्लाद पर जो एक मर्यादा का सूक्ष्म प्रतिबन्ध था, वह भी दूर हो गया ! गोपियों के मङ्गलगान के साथ वन्दियों का यशोगान, गोपों की जय-ध्वनि और यह गायों की हुंकृति और अब तो गोपों ने परस्पर एक दूसरे को गले लगाना, उछलना, नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया है। व्रजेश्वर के साथ गोपमण्डल अन्तःपुर से बाहर आया और उपनन्दजी ने हँसते हुए व्रजपति को केसर-मिले दधि से स्नान करा दिया। यह चला क्रम—दुग्ध, दधि, केसर, नवनीत, हरिद्रा-मिला सुगन्धित तैल, और समीप कुछ न मिले तो जल ही सही—यह उमंग, यह उल्लास, यह रङ्गोत्सव—भला, कहीं होलिका का वसन्तोत्सव इसका स्वप्न भी देख सकता है ?

ये—ये महर्षिगण भी क्या बालोचित विनोद करते हैं ? ये महागम्भीर शाण्डिल्य भी—आज ये भी दधि मण्डित कर रहे हैं दूसरों के मुख पर; और विप्रों ने उन्हें तो पूरा स्नान ही करा दिया है। अन्ततः नभ के ये जनः-तपः के परम तापस, ये सप्तर्षि, ये कुमार-चतुष्टय—जब नभ से ही केसर-वृष्टि हो रही है, पुष्पों के पावन पराग का रङ्गोत्सव चल रहा है, तो महर्षि शाण्डिल्य का मण्डल कैसे गम्भीर बना रहे और गम्भीर ही तो है वह। गोपों का यह उल्लास, उपनन्दजी, से प्रतिष्ठित वृद्ध का यह आनन्दमग्न दधिप्रक्षेप—मुनिमण्डली अपने इन यजमानों के स्तर से कैसे तो गम्भीर रह सकती है। अन्तर में जो अपार उमंग है—कोई कैसे उसे रोक रहे।

गोप तो आत्मविभोर हैं और विभोर तो हैं ये गायें, वृषभ, बछड़े तथा वनपशु तक। आज कहाँ कोई अपने को पहिचानता है। गोष्ठों से और वन से भी पशु भाग आये हैं। गोप पर-

विप्रवर्ग ने अपनी अग्नियाँ उठाईं और वे छकड़ों पर प्रथम विराजमान हुए। टीके के लिये उनकी अनुमति मिल ही गयी है। गोपों ने यथासम्भव शीघ्रता की। गोपियों ने लाजा, अक्षत, दधि, दूर्वा, हरिद्रा, पुष्प की वृष्टि के द्वारा अपनी मङ्गलकामना भेजी उनके साथ और वृषभानुजी का जब टीका जा रहा है तब ऐसी दशा में श्रीकीर्तिदा के प्राङ्गण में आज उनको एकत्र होकर महोत्सव करना ही है।

श्री वृषभानुजी ने कितनी शीघ्रता की, कितनी तीव्र गति से आये उनके शतशः छकड़े। मध्याह्न होते-होते तो गोकुल की सीमा से उनका शङ्खनाद गूँज गया और अब तो गोकुल से वाद्य-ध्वनि बढ़ती आ रही है।

'आप यह क्या करते हैं!' श्री नन्दरायजी ने अपने चरणों की ओर झुकते बरसाना-धीश्वर को दोनों भुजाओं में भर लिया।

'मैं इनके स्पर्श का अधिकार माँगने आया हूँ आज युवराज की न्योछावर में!' श्री वृष-भानुजी ने अपना अभिप्राय संकेत में भी स्पष्ट कर दिया और वह तो स्पष्ट न करने पर भी सदा से सुनिश्चित है।

'वह तो है ही आपका पुत्र!' व्रजेश्वर की सरलता अतुलनीय ही रहेगी सर्वदा।

'महर्षि शाण्डिल्य को आप आमन्त्रित करें! मैं कुमार को अपना बना लेना चाहता हूँ उन की साक्षीमें!' श्रीवृषभानुजी आनन्द-गद्गद् हैं आज। 'और आप अपनी उस लली को सम्हालिये!'

वाद्यों के स्वर में अनुराग के दिव्य राग आये। दोनों दलों के गोपों ने परस्पर अङ्कमाल दी और परस्पर उनका परिहास, दधि-प्रक्षेप चलने लगा। गोकुल के गृहों से हरिद्रा, केसर की वृष्टि ने स्नान करा दिया सबको। गोपियों के कलकण्ठ में जन्म के गीतों के साथ टीके के प्रणय के मञ्जुल गीत आये।

× × ×

प्रातः से दूरस्थ ग्रामों, गोष्ठों से गोपों के समुदाय आते ही जा रहे हैं। उनके दल तो रात्रि तक आते रहेंगे। व्रज ने युवराज पाया है, आज गोपों के आनन्द, उल्लास की सीमा नहीं है। आज गृहों में, ग्रामों में, गोष्ठों में और पथ में—सब कहीं उत्सव, वाद्य, नृत्य की धूम है। गोकुल में गोपों के ये नूतन दल—जैसे पल-पल वह आनन्दाब्धि नवीन होता जा रहा है! बढ़ता जा रहा है।

गोपों की उमंग, उनके उपहार और व्रजपति द्वारा उनका सत्कार, उनको वस्त्राभूषणों से सजाना—चल रहा है अविराम और चल रहा है अविराम गोपियों का मङ्गलगान। वाद्यों का विविध मञ्जुल राग।

धरा—व्रजधरा की आज शोभा कोई कहे कैसे। प्रत्येक पाषाण ज्योतिर्मय मणि ही बन गया है। प्रत्येक तृण अपने अन्तर के असीम अनुराग से पत्र-पत्र में पुष्पित हो उठा है और त[illegible]—ये तो रसधाराओं में गिरि-निर्झरों की समता करके रहेंगे।

आज तो कपियों की किलक में भी कोकिला की हृदयस्पर्शी कुहक आ [illegible] बैठी है! केसरी का उन्नाद जब घनगम्भीर मञ्जुघोष हो गया हो—कानन के कलकंठों की [illegible] ध्वनि का वर्णन किस प्रकार हो।

धरा आज धन्य हुई है और नेत्र को उसपर अपने को ही जैसे न्योछावर कर देना है। देववाद्य, सुमनवृष्टि, अप्सराओं के नृत्य, गन्धर्वोंके गान विरमित भले न हों, धर[illegible] में—व्रजमें गोकुल में यह जो महोत्सव चल रहा है, उसके सम्मुख अमरावती की इस उमंग की ओर कौन ध्यान दे।

× × ×

वह नवजलधर-सुन्दर, इन्दीवरदल श्याम—वह रहा मैया की गोद में। वे लाल-लाल नवनीतसुकुमार चरण, छोटे पतले अधर, घुँघराली काली अलकें और बार-बार खुलते, बंद होते अरुणाभ चपल लोचन। वह मन्द-मन्द मुस्कराता—जहाँ-तहाँ स्थिर एकटक देखता, अपने नन्हें करों की अरुणाई को मुट्ठियों में दबाये कभी-कभी हाथों को तनिक-तनिक उठाता नन्द-

नन्दन। वह वक्षपर स्वर्णिम रोमराजि, वह उठता-बैठता त्रिवलीसुन्दर उदर और वह कुसुम-कोमल ज्योतिर्मय श्रीअङ्ग।

वह है अपने अनुज को घेरकर बैठा-सा दाऊ। वह अपने चपल करों से बार-बार उसे छूने का प्रयत्न करता है। भला, इन गोपियों की बात कैसे समझ ले वह। वह कुछ कह रहा है—पता नहीं क्या कह रहा है। छोटे भाई से ही तो कुछ कह रहा है। कहाँ वह किसी दूसरे की ओर देखता है। ये क्यों उसे अपने इस छोटे भाई को छूने नहीं देतीं······।

यह मैया—यह तो अपने लाल को ही एकटक देख रही है। नेत्र कहाँ तृप्त होते हैं। सबकी सम्हाल करनी है, सबका सत्कार करना है, माता रोहिणी आज अत्यन्त व्यस्त हैं; किंतु तनिक-तनिक देर में क्या वे केवल व्यवस्था देखने ही यहाँ झाँक जाती हैं? उनके नेत्र भी तो इस छवि पर ललक उठते हैं और व्यवस्था—भला, यहाँ की व्यवस्था क्या दासियों पर छोड़ी जा सकती है? जैसे उनका हृदय तो यहीं है—'कहीं कोई त्रुटि न हो। कोई दासी अग्नि में सुगन्धित धूप देना कुछ क्षण भूल न जाय। मङ्गल-प्रदीप कहीं कम्पित न हो। कहीं वायु किसी यवनिका के हटने से न आने लगा हो।' उन्हें कुछ-न-कुछ ध्यान में आ ही जाता है और उसे देख लेने स्वयं ही आना है उनको।

अग्निदेव इससे उपयुक्त स्थान कहाँ पावेंगे। वे तो अपनी लाल लपटों से अविचल हो गये हैं। सुपूजित शस्त्रों की प्रभा में जैसे उनके देवता ही आ विराजे हों। निष्कम्प, उज्ज्वल दीप-ज्योति मणियों का प्रकाश भले प्राप्त न करे, आज उसे अपने महनीय महत्त्वका बोध है। आज भला, उसे वायु कम्पित कर सकता है।

वह इस प्रकोष्ठका, व्रजका, विश्वका, हृदयों का अधिष्ठाता। वह धन्य लोचनों का शाश्वत सौभाग्य। वह श्रीनन्दरानी का अङ्कभूषण। उसने अपने पलक बंद कर लिये हैं। अब सम्भवतः वह सोयेगा। सोयेगा वह मैया की अङ्क-शय्या में अब।
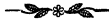
पूतना-परित्राण

'अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥'

—भागवत ३ । २ । २३

'कंस बड़ा क्रूर है, किसी को भी कष्ट देने में उसे पता नहीं क्यों प्रसन्नता होती है। यदु-वंशियों से—विशेषतः वृष्णिवंश के लोगों से तो उसने इधर सिंहासन पर बैठने के पश्चात् से ही शत्रुता कर रक्खी है। नित्य कोई-न-कोई बहाने उन्हें उत्पीड़ित करने के ढूढ़ँता ही रहता है। उसका असुरों से सङ्ग है, अतः उसकी प्रवृत्ति भी आसुरी हो गयी है। सुना है—उसी के आदेश से उसके असुर अनुचर स्थान-स्थान पर तपोवनों का विनाश कर रहे हैं। मथुरा में कोई भी श्रौत यज्ञ सम्भव नहीं रहा है। ऐसी दशा में उसे ऐसा कोई तनिक भी अवसर नहीं देना चाहिये कि गोकुल में वह कोई उत्पात करने का मार्ग निकाले। गोकुल का यह अहोभाग्य—त्रिभुवनवन्दित ऋषि-गण यहाँ अतिथि हुए। कंस के अनुचरों द्वारा उत्पीड़ित आश्रमों के मुनिगण भी बहुत आ गये यहाँ। कंस को यह सब भला, अविदित कैसे रहेगा। वह गोकुल से प्रसन्न तो है नहीं, पर उसे कोई बहाना नहीं मिलना चाहिये। वार्षिक कर देने का यह समय हो गया है। ठीक समय पर ही कर दे देना उचित है। और सभी लोगों को चलकर स्वयं कर देना चाहिये। सेवकों द्वारा कर भिजवाने में 'राजा का अपमान किया गया' यह बहाना बनाने को अवकाश तो रहेगा ही।' श्रीवृषभानुजी ने श्रीव्रजपति को गम्भीरतापूर्वक सम्मति दी।

नन्दनन्दन की यह षष्ठी की पावन रात्रि—अब तो महोत्सव से श्रान्त गोप अर्धरात्रि के पश्चात् तनिक एकत्र बैठ गये हैं। अभी ही श्रीवृषभानुजी को समय मिला है और वे क्या कभी अपनी दीर्घदर्शिता से चूकते हैं! गोप श्रान्त हैं और उल्लास में हैं; किंतु अभी ही मथुरा को प्रस्थान करने की प्रस्तुति में सब लोग लगें तो ब्राह्ममुहूर्त में छकड़े चल सकेंगे। कंस को अवसर नहीं ही मिलना चाहिये।

गोप इस मन्त्रणा को कहाँ सुन पाते हैं। उनके सम्मुख तो अब भी आज की वह छटा है, उनका मन तो अभी उससे निकल ही नहीं पाता। महर्षि शाण्डिल्य ने आज निर्जल उपवास किया था। सायंकाल ही वे नन्दभवन पधारे। राशि-राशि तन्दुल की वेदिकाओं पर उन्होंने कुमार कार्तिक एवं षष्ठीदेवी को प्रतिष्ठित कराया। भगवान् गणपति तो प्रथम-पूज्य हैं ही। मातृका, नवग्रह, कलशादि का पूजन, वसोर्धारापात और कुमार कार्तिक तथा षष्ठी का पूजन भी होना ही था। श्रीनन्दरानी जब अपने लाल को अङ्क में लेकर व्रजराज के वामभाग में आसीन हुई—महर्षि का मन्त्रपाठ, विप्रों का सामगान, जयघोष, सब स्नेहार्द्र हो उठे और जब दम्पति ने कर जोड़कर कुमार कार्तिक एवं षष्ठी देवी की स्तुति की—गोपों को लगता है कि अब भी वे षण्मुख मयूरासन देव-सेनापति एवं वे देवमाया अपनी तेजोमूर्ति में प्रत्यक्ष ही हैं।

श्रीनन्दनजी—ये व्रजराज के लघुभ्राता; व्रजराज क्या इनसे राहु-वेध को कहनेवाले थे। राहु-वेध—भला इस वैडूर्यद्वार में हल्दी, सुपारी, श्वेत सर्षप की पोटली न बाँधी जाय तो भी क्या—पर नन्दनजी ने जब धनुष-बाण उठा लिया तो पोटली बँधनी ही थी। वे अपना भाग कैसे छोड़ दें। उनका अमोघ लक्ष्य—उनसे अच्छा कौन राहु-वेध कर सकता था और उन्होंने तो उसी समय इसकी प्रस्तुति कर ली जब नन्हें युवराज के भूमि-स्पर्श की बात आयी। गोकुल का यह

स्पन्दित हृदय—इसका परम सुकुमार अङ्ग क्या भूस्पर्श के योग्य है—वे तो इसे देखने में समर्थ नहीं थे। धनुष-बाण लेना तो एक बहाना था। मैया और बाबा ही कहाँ अपने लाल को भूमि पर रखने में समर्थ थे। भू-स्पर्श का तो नाम हुआ और चलने लगी भगवान् आदित्य एवं चन्द्रदेव की स्तुति। पर नन्दनजी तो जान-बूझकर हटे सो हटे और आये ही तब जब व्रजेन्द्र आचार्य-पूजन कर चुके। उन्होंने ज्या चढ़ायी और गगनभेदी घण्टानाद के मध्य पोटली चिथड़े उड़ गयी। व्रजरानी ने आज अपने देवर के धनुष और बाण की पूजा की थी। उनके मङ्गल-करों की अर्चा की आशा में ही वह धनुष जो आया था।

'यह भी कोई बात है, मैया, मैं अगुरु लाता हूँ, तू यह धूप तो रोक दे!' मधुमङ्गल बालक होकर भी ठीक कहता है। सर्षप, सैन्धव नमक तथा निम्बपत्र की यह धूनी—क्या हुआ जो इसमें घृत पड़ा है। इससे भी आगे मरोड़फल, केंचुल, सम्हालूबीज, बच, कूट, सरसों और बिल्वपत्र की धूनी, नन्दनन्दन के लिये कितना तीक्ष्ण होगा यह धूम! ओषधियों की यह धूनी आवश्यक होगी—हो सकती है; उपनन्दजी ने इसकी व्यवस्था की है; किंतु अगुरु-धूम्र इसको अपनी मधुर मादक सुरभि में आत्मसात् करले—यह तो होना ही चाहिये।

'मैया बड़ी अच्छी है, देखो न! यह पूओं और बड़ियों की माला! इसमें बड़े-बड़े मोदकों की माला और लटकाओ! भला, मोदकों के बिना क्या पूए भले लगते हैं!' मधुमङ्गल तो गोपियों को समझाने लगा है कि सब अपने-अपने द्वार पर इसी प्रकार नित्य पूए और मोदकों की मालाएँ लटकाया करें; बड़ियों की माला न भी लटकायी जाय तो कोई बात नहीं। 'लेकिन यह काला-काला अजा-पुत्र (बकरा) क्यों यहाँ बाँध दिया है? भगा दो यहाँ से इसे और यह द्वार से बाहर मूसल एवं........!'गोपियाँ हँस पड़ीं यह देखकर कि शिशु-कोष्ठ-रक्षक सशस्त्र सेवक को देखकर मधुमङ्गल तनिक रुका बोलते-बोलते और यह नटखट अँगूठा दिखाकर, मुख बनाकर उसे चिढ़ाने लगा। संकेतों से ही मटकने लगा, मानो कहता हो—'महोदय, यहाँ से चलते बनिये! यह मैया का घर है। ये पुए मेरे हैं और बहुत लालच हो तो इन बड़ियों को मैं तुम्हें दे दूँगा! मुझे अपने शस्त्र दिखाओगे तो यह अँगूठा बताढूँगा!'

'नीलमणि मैया के गोद में सो गया है। इसके कमलनेत्र बंद हो गये हैं और व्रजेन्द्र विप्रों को........।' गोपों के चित्त में तो अब भी यह प्रत्यक्ष ही है। वे तो अब भी देख रहे हैं यही सब। कंस—बड़ा क्रूर है।' सब चौंके—'कंस कहाँ आया!' यह तो श्रीवृषभानुजी कुछ कह रहे हैं। कंस को कर देना है!

यह जो व्रजराज-कुमार का जन्मोत्सव चल रहा है, यह दो-एक दिन में तो समाप्त होने से रहा। किन्तु इस उल्लास में कहीं क्रूर कंस बाधा न दे। उसे कर देने का समय आ गया—इसका अतिवर्तन उचित नहीं।

'सुना है श्रीवसुदेवजी कारागार से मुक्त हो गये हैं। मेरे वे परम सुहृद् बन्धु—वर्षों तक उन्होंने बंदीगृह का अपार कष्ट भोगा। उनसे मिलने को मेरा हृदय स्वयं आतुर है। मैं ही उन्हें पुत्र-जन्म का समाचार दूँगा। कितने प्रसन्न होंगे वे!' श्रीनन्दराय ने मथुरा जाने में दूसरा ही लाभ देख लिया।

'पहिले राजा का कर दिया जाना चाहिये! कंस को यह नहीं लगना चाहिये कि गोकुल ने उसकी अपेक्षा वसुदेवजी को अधिक सम्मानित किया है।' श्रीवृषभानुजी ने सावधान किया! वे ही तो ऐसे अवसरों पर सदा व्रजपति के मार्गदर्शक बनते हैं।

गोपों ने छकड़े जोते; दधि, दुग्ध, नवनीत, घृत के कुम्भ भरे गये उनमें। गोपों की जब गौ एवं गोरस ही सम्पत्ति हैं, तब वे इन्हीं को तो वार्षिक-कर के रूप में देंगे। गोरस से भरे शतशः छकड़े मथुरा की ओर प्रस्तुत हुए।

'समस्त विप्रवर्ग की अपने प्राणों से अधिक रक्षा की जाय! महर्षि शाण्डिल्य के आश्रम में, उनके परम पूज्य अतिथियों के समीप कोई उत्पात न होने पाये।' व्रजेश्वर ने रक्षकों को नियुक्त

किया गोकुल की रक्षा के लिये। सशस्त्र, सबल, विश्वस्त, सावधान सेवकों की सम्यक् व्यवस्था हुई। प्रत्येक गृह, प्रत्येक गोष्ठ रक्षित रहना चाहिये; किंतु आजकल विप्रों के यज्ञ तथा ऋषि-आश्रमों में असुरों के अधिक उपद्रव होने लगे हैं; इस सम्बन्ध में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। मायावी असुर पता नहीं कब, किस रूप में, कैसे आ पहुँचें। रक्षा की अत्यधिक व्यवस्था करके स्वयं व्रजेशने सब देखा और सबको बार-बार सावधान किया।

× × ×

'श्रीनन्दरायजी मथुरा आये हैं राज्य का कर देने !' वसुदेवजी को सेवकों ने समाचार दे दिया।

'मेरे भाई—आज वर्षों के पश्चात् मैं उनके दर्शन करूँगा !' वसुदेवजी के आनन्द की सीमा नहीं। उनका भवन सज्जित होने लगा। बिना आदेश के ही सेवकों ने स्वागत की व्यवस्था प्रारम्भ कर दी।

'ऐसे मेरे भाग्य कहाँ हैं !' वसुदेवजी ने सेवकों को रोका। कोई बड़ी व्यवस्था—भव्य स्वागत का यह अवसर नहीं। किसी प्रकार कुछ क्षणों को मिल लिया जाय, यही बहुत है। पता नहीं मथुरानरेश कंस कब किस कारण संदेह करने लगें। इस संदेह का भय न होता—वसुदेवजी क्या इस प्रकार प्रतीक्षा करते चुपचाप बैठ कर। वे सुनते ही मिलने आतुर पदों से चले गये होते। भाई—भाई नन्दराय आ रहे हैं वर्षों पर और उनका साधारण स्वागत भी शक्य नहीं। इस विवशता—इस व्यथा को दूसरा कैसे समझेगा। श्रीदेवकीजी—क्या-क्या मनमें आया और चला गया। क्या-क्या जानना है, क्या-क्या पूछना है, कम-से-कम रोहिणीजी का, उनके पुत्र का और······ नहीं, नहीं—इस ओर से आगे की बात तो मनमें भी नहीं लानी है; किंतु यह भी क्या पूछा जा सकेगा !

'श्रीनन्दराय आये हैं !' कितनी उमंग, कितना आनन्द उठता है और दूसरे ही क्षण जैसे वह पिस उठता है। 'श्रीव्रजपति गोपों के साथ मथुरा आ गये हैं। गोकुल सूना है उनसे। कंसका वह आदेश—अपने असुर अनुचरों में उसकी वह मन्त्रणा—दस दिन और उससे कम के शिशुओं को मार देने का वह प्रस्ताव—नारायण मङ्गल करें !' वसुदेवजी का हृदय जैसे मसल उठता है। 'दौड़ जायँ, दौड़ जायँ व्रजपति के समीप और कह दें, आप लौटिये—लौटिये शीघ्र गोकुल !'

'श्रीनन्दरायजी आ रहे हैं !' सेवकों ने दौड़कर समाचार दिया। श्रीव्रजपति को भला, राजसदन में क्यों विलम्ब होना था। कर दिया, नरेश को अभिवादन किया और विदा हुए। न कंस को उनसे कोई प्रश्न करना या सहानुभूति प्रकट करनी थी और न उन्हें कंस से कोई प्रयोजन था। कंस को अपने सिंहासन का गर्व है। वह इन गोपों से बोलकर अपने को तुच्छ नहीं सिद्ध करना चाहता। मथुराका राज्य-सिंहासन सदासे गोकुल का सम्मान करता आया, यह कोई आदर्श प्रथा नहीं कंस की दृष्टि में। श्रीव्रजपति का हृदय तो और कहीं है। वे स्वयं चाहते हैं कि नरेश उनसे कुछ न पूछें, कुछ न कहें। उन्हें दो क्षण भी रोका न जाय। कंस का व्यवहार उनके लिये तो अनुकूल ही जान पड़ा। सिंहासन को अभिवादन किया और लौट पड़े। उन्हें तो शीघ्रता है वसुदेवजी से मिलने की।

'श्रीनन्दरायजी आ रहे हैं !' वसुदेवजी ने सुना और दौड़ पड़े। वस्त्र अस्त व्यस्त गिरा, उत्तरीय मार्ग में भूमि पर लोटता चला—वे दौड़े, दौड़े—जैसे कोई रङ्क निधि लूटने दौड़ा हो। वे दौड़े श्रीनन्दरायजी, देखते ही दौड़े वे दोनों बाहु फैला कर और दोनों ने एक दूसरे को हृदय से लगा लिया, लगाये रहे। शरीर रोमाञ्चित हो गया, नेत्रों से अश्रु गिरते रहे, दोनों अङ्कमाल दिये खड़े रहे। बड़ी कठिनता से कुछ धैर्य आया। वसुदेवजी ने सभी सम्मान्य गोपों को गले लगाया। आसन, अर्घ्य, पाद्य—भला, ऐसे प्राणप्रिय अभ्यागत क्या बार-बार प्राप्त होते हैं।

'आप स्वस्थ तो हैं !' कण्ठ भर आया व्रजेश का यह प्रश्न करते हुए भी। जो वर्षों से

बन्दी रहा हो, उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जिज्ञासा तो स्वाभाविक है; पर और पूछा भी क्या जाय। कंस ने और क्या पूछने योग्य यहाँ शेष रहने दिया है।

'भाई, आज मेरा परम सौभाग्य है जो मैंने आपका दर्शन पाया। मेरे लिये तो आपका परमप्रिय दर्शन अत्यन्त दुर्लभ ही था।' वसुदेवजी भला, उस प्रश्न का क्या उत्तर दें, जिसके पूछने में भी क्लेश हुआ है और उनके पास समय भी कहाँ है। उनका हृदय तो व्याकुल हो रहा है कुछ सुनने को—अपने उन अन्तर के मूर्तिमान् आह्लाद शिशुओं के सम्बन्ध में कुछ सुनने को। उन्होंने सीधे ही विषय को लिया—यह अत्यन्त सौभाग्य का फल है कि इस प्रौढ़ावस्था में जब कि सन्तान की आशा जा चुकी थी, आपने सन्तति प्राप्त की।' सन्तति—श्रीनन्दराय की सन्तति, पर योगमाया जो नहीं चाहतीं कि वसुदेवजी इस समय उस कन्या का स्मरण करें। वे तो पूछते ही जा रहे हैं—"बन्धु ! तुम्हारा वह पुत्र सकुशल तो है ? तुम्हारे पशु नीरोग तो हैं ? तुम्हारा वह बृहद्वन फल-पुष्प एवं तृणों से पूर्ण तो है ? वहाँ पर्याप्त जल तो रहता है ? क्या कहूँ, भाग्य बड़ा बलवान् है। प्रियजन भी भाग्य की प्रेरणा से प्रवाह में पड़े तिनकों की भाँति सदा एकत्र नहीं रह पाते। भाई, भाग्य के कारण तुम्हारे यहाँ जो मेरा पुत्र है, वह प्रसन्न तो है ? मैं जानता हूँ कि तुम्हारा उसपर पुत्र से भी अधिक स्नेह है। तुम उसे हृदय से प्यार करते हो और अब तो वह तुम्हें अपना पिता ही मानता होगा !' कण्ठ अवरुद्ध हो गया और नेत्रों से टप-टप बिन्दु गिरने लगे।

श्रीव्रजपति ने भी अपने नेत्र पोंछे और अपने को सम्हाला। विषयान्तर करना ही एकमात्र उपाय है इस समय। भला, किस योग्य हैं वे ! यह तो वसुदेवजी की कृपा है, श्रीरोहिणीजी का अनुग्रह है कि वे गोकुल में हैं। कहाँ सेवा हो सकती है उनकी। व्रजेश बहुत सङ्कुचित हुए इस चर्चा से और उन्होंने बड़े खिन्न कण्ठ से दूसरी ही बात कही—'बहुत ही दुःख की बात है कि कंस ने देवकी से उत्पन्न हुए आपके बहुत-से पुत्र मार दिये। अन्त में एक कन्या बची भी तो वह सशरीर स्वर्ग चली गयी। अवश्य ही मनुष्य का जीवन भाग्य पर ही निर्भर है और भाग्य ही बलवान् है। जो प्रारब्ध के तत्व को जान लेते हैं, वे फिर मोहित नहीं होते। आपतो परम ज्ञानी हैं, भाग्य के खेल का जानते हैं; अतः आप को शोक नहीं करना चाहिये !'

'कंस—देवकी के बहुत-से पुत्र कंस ने मार दिये ! एक लड़की बची, वह भी स्वर्ग चली गयी ! उस लड़की ने कहा........कंस ने अपने असुर अनुचरों से मन्त्रणा की........।' श्री वसुदेवजी ने नहीं सुना कि श्रीनन्दराय उन्हें आश्वासन दे रहे हैं। उनके हृदय में खलबली चल रही है। उन्होंने इस प्रकार देखा नन्दरायजी की ओर, जैसे अब तक की कोई बात हुई ही नहीं। सर्वथा बदले हुए स्वर में—बड़े आग्रहपूर्ण स्वर में वे बोले—'व्रजेश्वर, आपने वार्षिक कर दे दिया और राजा से मिल चुके। मुझसे भी भेंट हो ही गयी, अब आपको यहाँ बहुत देर नहीं रुकना चाहिये ! मुझे लगता है कि गोकुल में कुछ उत्पात हैं !'

'गोकुल में उत्पात हैं !' श्रीव्रजपति और सब गोप चौंके। ये वसुदेवजी अकारण भला, ऐसी कह सकते हैं। ये तो बड़ी गम्भीरता से कह रहे हैं। सब-के-सब उठ खड़े हुए। छकड़े शीघ्र गये और श्रीनन्दराय ने अनुमति ली—अब मुझे आज्ञा मिले !'

'आप शीघ्र गोकुल पहुँचें !' वसुदेवजी ने दूर तक पहुँचाने का कोई उपक्रम नहीं किया। जाने के प्रयत्न में देर होगी और इन लोगों को तो जितनी शीघ्रता से हो जाना चाहिये। वे खड़े खड़े ही रहे उन छकड़ों के मार्ग की ओर देखते।

× × ×

'दस दिन और उससे कम के नवजात शिशुओं को मार देना है !' पूतना ने स्वयं ही प्रस्ताव किया था और उसे मथुरानरेश कंस ने इसका आदेश दे दिया। वह प्रकृति से ही बाल-मारिणी राक्षसी—उसे तो शिशुहत्या में सुख मिलता है। वह घोर मायाविनी इच्छानुसार चाहे जहाँ उड़ती फिरती है। कोई नवजात शिशु दिखायी पड़ा और झपटकर उठाया उसने, जैसे कोई

बड़ा बगुला नन्ही मछली निगल जाता हो। नगरों में, ग्रामों में, व्रजों में—भला, उसे कोई कहीं रोक कैसे सकता है। वह रक्ताशना—बाल-भक्षिणी, उसने हाहाकार मचा दिया है देश में। उसके भय से लोग नवजात बालकों को नित्य भवन में ही रखने लगे हैं। खुले गगन के नीचे कोई शिशु दिखायी पड़ा और पूतना ने झपट्टा मारा।

यह व्रज—यह पूरा नन्दव्रज, आज पूरा सप्ताह हो रहा है, पूतना इधर क्यों नहीं आयी? मथुरा की दूसरी दिशाएँ तो उसने छान डाली हैं। इसके भय से सदा सब कहीं लोग सशङ्क रहने लगे हैं। लेकिन यह व्रज—मथुरा के इतने समीप का यह गोकुल और यहाँ तो इन दिनों अनेक शिशु आये हैं। गोकुल में पुत्रोत्सव के जो वाद्य बज रहे हैं, वे तो मथुरा तक सुनायी पड़ते हैं। पूतना क्या इन्हें सुनती नहीं? लेकिन वह क्या करे; पता नहीं क्यों जब भी वह गोकुल की ओर मुख करती है, उसके पक्ष भारी हो जाते हैं। कोई उसके पंखों को बलात् जैसे मरोड़ देता हो। इस गोकुल पर, इस व्रजधरा के ऊपर उड़ा जो नहीं जाता उससे!

'व्रज में यह उमंग, यह उत्सव—ये तो पुत्रोत्सव के ही वाद्य हैं! सुना है नन्दराय के पुत्र हुआ है! कैसा है वह पुत्र?' वह आकाशचारिणी घोर राक्षसी—व्रज में तो वह उड़कर जा नहीं पाती। उसे जाना तो है, जाना ही है। महाराज का आदेश है कि दस दिन से कम का कोई बालक बचने न पाये। आकाश से न सही, वह पैदल ही जायगी। उसने सोचा और अपनी आसुरी माया से स्त्री-वेश धारण किया व्रजधरा पर गगन से नीचे उतरकर। अपने माया-रूप पर वह स्वयं अट्टहास करके हँसी। कौन उसे पहिचान सकता है। उसे अब रोकने का साहस भी कौन करेगा। उस दुष्टा ने तीक्ष्णतम हालाहल विष का अपने स्तनों पर इस प्रकार लेप कर लिया, जैसे उसने कस्तूरी का अङ्गराग लगाया हो। 'एक बार—केवल एक बार मुख लगा और बस!' अपनी पैशाचिक योजना पर उसे मन-ही-मन आनन्द आ रहा था।

× × × ×

श्रीनन्दनन्दन आज सात दिन का हो गया। कल ही तो षष्ठीदेवी का पूजन हुआ है। कल ही तो श्रीनन्दरानी ने प्रातः अपने लाल के साथ प्रसूति-कक्ष छोड़कर स्नान किया है। श्रीनन्द-राय के उल्लास का क्या पार था, पार तो नहीं था गोपों के आनन्द एवं उल्लास का। महर्षि शाण्डिल्य और मुनिमण्डली—वह अनुपम लावण्यसिन्धु, उसकी वह एक झलक, जन्म के पश्चात् से तृषित नेत्रों ने एक-एक पल सहस्र-सहस्र कल्प की भाँति व्यतीत किये। ६ दिन—ब्रह्मा के ६ दिन भी इनसे छोटे ही होंगे, सबके नेत्र तृप्त हुए। उस अभिनव-स्नात नव-नील-नीरद शिशु को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लेकिन यह सब तो कल की बात है। कल सायंकाल ही श्रीवृषभानु-जीने कंसको कर देने के सम्बन्ध में सबको सावधान किया और आज तो व्रजपति प्रातः काल में ही गये हैं मथुरा को। सूर्यनारायण की प्रथम किरणों ने मथुरा के तट पर उनका अर्घ्य पाया होगा। अवश्य वे तब तक छकड़ों को नौकाओं द्वारा पार करा चुके होंगे। आज गोकुल में गोपियों को कहीं आने-जाने में संकोच नहीं और पुरुषों के न होने से घर का कार्य भी नहीं-सा ही है। व्रजपति ने जो इन रक्षकों को सावधान कर दिया है, ये सब तो शस्त्र-सज्ज एक-एक गृह के चतुर्दिक् सावधानी से घूम रहे हैं आज। भला, इनके इस सावधान रक्षण में कौन समर्थ है जो इधर झाँकने का साहस भी करे। गोपियों को घर की चिन्ता नहीं और घर में पुरुष न हों तो स्त्रियाँ अपने लिये क्या भोजन बनाने लगी हैं। नन्दभवन में वह जो नन्दरानी का कुसुम-सुकुमार लाल है—प्राण तो सदा उसके समीप ही रहते हैं, मन एक क्षण के लिये उससे हटता नहीं। उससे पृथक् होकर अपने-अपने घरों में वे कैसे आती हैं, उन्हीं को उस विवशता का अनुभव है। प्रतिपल जी चाहता है—नन्दभवन दौड़ जायँ। एक बार देख आयें उस उज्ज्वल नीलमणि को। आज अवकाश है—आज पूरा अव-काश है। गोपों के छकड़े मथुरा की ओर चले और गोपियों के पद नन्द-भवन की ओर। घर में कुछ कार्य भी है—कुछ आवश्यकता भी है, किसे यह सब सोचने का अवकाश है।

नन्दरानी के लाल को स्वयं रोहिणीजी ने सुगन्धित उबटन लगाया है और फिर उसके सुस्निग्ध सुकुमार अङ्गों में दिव्यौषधियों से बना सुगन्धित तेल मला है। घुँघराली काली अलकें स्निग्ध हो गयी हैं। अरुणारे दीर्घ दृग काजल लगकर और मनोहारी हो गये हैं और उसके विशाल उन्नत भाल पर यह कज्जल का बिन्दु—जैसे पूर्णचन्द्रमा पर कोई भ्रमरशिशु आ बैठा हो और फिर यह सुधा-स्वाद वह किस सरोज में पाये। वह वहीं आनन्द मग्न बेसुध स्थिर हो गया है। नन्दरानी ने अवश्य दूध पिलाकर ही पलने में सुलाया है। यह कितना प्रसन्न, कितना मग्न अपने अर्ध-मुकुलित कर-कमल और अरुण मृदुल चरण इधर-उधर फेंक रहा है। यह मणिमय स्वर्ण पलने में दुग्धफेन-कोमल उज्ज्वल आस्तरण पर नन्हा सुकुमार नीलमणि—इस चञ्चल ने अपने चरणों से मार-मार कर ऊपर का झीना कौशेय पीतपट चरणों के नीचे कर दिया है और देख रहा है पलने में लगे रत्नशुक की ओर। बार-बार किलकता नन्हे हाथों को उठाने का प्रयत्न कर रहा है।

मैया, वह तो अपने इस नीलमणि का कमल मुख देखते-देखते ही थकित हो रही है। यह दाऊ—यह जो पलना पकड़कर खड़ा हो गया है। यह अपने भाई को देखने लगा है और अब तो नीलमणि भी अग्रज को ही देखकर किलक रहा है। यह दाऊ तो छोटे भाई के पास से कभी हटना ही नहीं चाहता। इसे कौन हटाये; इसको आग्रहपूर्वक हटाते ही नीलमणि रोने लगेगा, यह तो अब सब की समझ में आ गया है।

गोपियाँ आयीं और पलने के समीप कुछ खड़ी हो गयीं, कुछ बैठ गयीं। कौन किससे पूछे, कौन क्या कहे? यहां तो एक ही दशा है, एक ही कार्य है। इस यशोदारानी के पलने में यह जो इन्दीवराभ नन्हा चपल किलक रहा है, इसने सभी हृदयों पर एकाधिकार जो कर लिया है। यह पलने में तो यहाँ है न, मन में, प्राण में, अन्तर में सभी कहीं तो यही किलक रहा है।

× × × ×

बेचारी पूतना—भला, आज उसे गोकुल के किस घरमें कोई शिशु मिलना है? आज वह किस घर में प्रवेश करने का साहस करे? ये रक्षक—ये तो इतने सावधान हैं कि इनकी दृष्टि से बचकर तो वह किसी पक्षी तक के निकल जाने की आशा नहीं देखती। ये सब गृह नीरव हैं। इन में से तनिक भी शब्द आता नहीं जान पड़ता। अधिकांश के तो बहिर्द्वार ही बंद हैं। गृह-द्वार खुले हों या बंद हों, जब किसी गृह में कोई आता-जाता नहीं दीखता तो वह कैसे गृह में प्रवेश करे। पता नहीं क्या बात है कि ये गृह इस प्रकार सुनसान हैं। कहीं वह किसी गृह में जाने लगे और रक्षक कुछ पूछ बैठें? ये रक्षक उसे बड़े कुतूहल से देख रहे हैं। उससे भूल हो गयी—उसने जो नारी-वेश बनाया, वह गोपनारी का वेश नहीं है। अब तो जो हो गया, वही ठीक है। वह यहाँ से परिचित नहीं। रक्षक कुछ पूछ लें तो कोई उत्तर नहीं उसके पास। उसके मनमें भी कम भय या शंका नहीं। पता नहीं क्यों आज—जीवन में आज ही वह हतप्रभ हो रही है। मार्ग से—सीधे मार्ग से ही वह चलती रही।

'यह विशाल भवन—यही नन्दराय का भवन है। इसमें से तो बहुत सी सेवक-सेविकायें आती-जाती हैं। यहाँ किसी के प्रवेश के संबन्ध में कोई कुछ पूछता भी नहीं। भीतर से आनन्द-कोलाहल की ध्वनि भी आ रही है। गोपियाँ कैसी प्रमुदित कण्ठ से मङ्गलगान कर रही हैं। अच्छा—देखती हूँ यह मङ्गलगान।' राक्षसी ने मन-ही-मन संकल्प किया। कुछ सेविकाओं ने उसे करबद्ध प्रणाम किया। उसे यह ठीक अवसर प्रतीत हुआ भवन में प्रवेश करने का।

परम सुन्दर स्वरूप, गौर वर्ण, विशाल लोचन, अङ्ग-अङ्ग जैसे शोभा से ही निर्मित हुए हों। बहुमूल्य रत्नजटित कौशेय वस्त्र एवं उत्तरीय, अङ्ग-अङ्ग में जगमग करते आभूषण, कानों में महा माणिक्य के कुण्डल और मल्लिका के कलामय गुम्फन से सुसज्जित केशपाश। पूतना ने अपनी आसुरी माया से जो अपना यह नारी-वेश बना लिया है—इसके सौन्दर्य की तुलना धरापर तो प्राप्त होने से रही। इसमें एक ओछापन, एक अन्तर्निहित रूक्षता, एक अव्यक्त कठोरता भी है सही; पर

वह इस चमक-दमक में कहाँ लक्षित हो सकती है। मन्द गयंद-गति से चलती, कङ्कण, किङ्किणी एवं नूपुरों के तालबद्ध क्वणन से दिशाओं को संगीतमय करती, ताम्बूल-राग-रञ्जित पतले अधरों में स्मित एवं दीर्घ कज्जल-मञ्जु दृगों में इधर-उधर चपल कटाक्ष सम्हाले, सम्पूर्ण गोपियों के चित्त को अपनी शोभा से मुग्ध करती, अपने दक्षिण कर के प्रफुल्ल लीला-कमल को तनिक-तनिक घुमाती यह आयी पूतना नन्द-प्राङ्गण में।

'कौन है यह ?' गोपियों ने संभ्रमपूर्वक मार्ग दे दिया। इतना लावण्य, इतना ऐश्वर्य और यह सुधास्मित, यह संकोचहीन भाव—गोपियों ने मन-ही-मन सोचा—ये कोई मानवी तो जान नहीं पड़तीं। यह लीलाकमल—कहीं ये साक्षात् कमलोद्भवा भगवती लक्ष्मी तो नहीं। क्या ठिकाना कि यह नन्दनन्दन नारायण ही हो। यह श्रीनारायण के समान ही तो इन्दीवर-सुन्दर है। ये महालक्ष्मी यहाँ अपने पति के दर्शन करने आयी होंगी।' भोली गोपियों के मनमें ही कोई छल-कपट नहीं तो वे किसी के छल की कल्पना ही कैसे करें। उन्होंने तो श्रद्धापूर्वक मस्तक झुकाया, जब पूतना उनके मध्य से बढ़ने लगी।

'नीलमणि सोयेगा! मैया ने पता नहीं किससे क्या कहने के लिये मुख फेरा था पलने से दूसरी ओर और पूतना पर दृष्टि पड़ी। 'ये तो कोई देवी आ रही हैं!' वह भी झटपट उठकर आदरपूर्वक खड़ी हो गयी। माता रोहिणी भी तो उसके समीप ही खड़ी हैं।

'यह श्याम नेत्र क्यों बंद कर रहा है!' दाऊ ने भी अपने अनुज को पलकें गिराते देख मुख मोड़कर देखा। पता नहीं क्या देखा उन्होंने। पूतना के मुख की ओर उनके नेत्र दो क्षण स्थिर रहे और पलना छोड़कर धीरे से वे बैठ गये भूमि पर। मदमत्त पूतना झूमती, मुस्कराती चली आ रही है। उसकी दृष्टि पलने के उस परम भूषण की ओर है। किसे भला, यह अस्वाभाविक लगे। यशोदा का यह लाल—एक बार नेत्र उसपर लगकर फिर हट कैसे सकते हैं। लेकिन दाऊ कैसे देख रहे हैं पूतना की ओर। उनके दीर्घ दृगों में तो न कुतूहल दीखता, न रोष और न उपेक्षा। पूतना यदि इन लोचनों की ओर एक बार देख लेती। ये तो जैसे कह रहे हों—'मूर्खे, क्यों मरने आती है! भाग भी जा!' इनमें तो करुणा का ही अपार सागर उमड़ता रहता है।

यह नन्दनन्दन—यह चञ्चल अभी तो हाथ-पैर उछालने का प्रयत्न कर रहा था। अभी तो अग्रज की ओर देख-देखकर किलक रहा था और अभी इसे निद्रा आ गयी। इसने भी तो पूतना की ओर देखा है अभी—अभी उसी की ओर देखकर तो इसने नेत्र बंद किये हैं। अब इसकी ओर देखना नहीं है तो आपको निद्रा आने लगी। देखना तो नहीं ही है, देखकर फिर कठोरता कैसे की जा सकेगी।

पूतना तो सीधे पलने के पास आ गयी। उसे और कहीं जैसे देखना ही अब नहीं है। झुककर उसने इस प्रकार उस नीलमणि को उठाया, जैसे बड़े प्रेम से उठा रही हो। मैया ने, माता रोहिणी ने देखा, वे समीप ही तो खड़ी हैं। यह उनके पास ही तो आकर रुकी है। लेकिन मैया कैसे रोक दे। भला, कहीं ये देवी अप्रसन्न हो जायँ। कोई देव-शक्ति मूर्तिमान् होकर उनके लाल पर कृपा करने आयी है, यह तो सौभाग्य की बात है। लेकिन यह क्या—ये देवी मैया के इस हृदय-धन को क्या अपना स्तनपान करायेंगी? यह क्या खड़े-खड़े ही स्तनपान करायेंगी? पूतना ने तो शिशु के मुख को अपने स्तनाग्र से लगा भी दिया। 'भला, देवी को इस मर्त्यलोक में अधिक रुकना कैसे रुचिकर हो सकता है। वे शीघ्रता में तो होंगी ही। अनुग्रह के कारण ही वे अपना अमृतमय दूध इस नीलमणि को पिलाने आयी हैं!' मैया के ममतामय मातृ-हृदय में कोई दुर्भावना नहीं आयी।

× × × ×

'अरे, छोड़! छोड़!! बाप रे, छोड़ मुझे!' जैसे किसी को विद्युत्स्पर्श हुआ हो। पूतना को लगा—उसके समस्त मर्मस्थान बलात् कोई निचोड़ रहा है, समस्त स्नायु ऐंठ रहे हैं। वह चिल्ला पड़ी। चिल्लाती हुई भागी वहाँ से। वह बकी है, उड़ सकती है—इतना ही सम्भव होता तो

दोनों हाथों से वह इस नन्हे शिशु को स्तनों से छुड़ा कर फेंक न देती। उसके तो जैसे प्राण वह पिये जा रहा है। नस-नस, शरीर का कण-कण फोड़ कर जैसे वहाँ की चेतना खिंची जा रही है। स्तनों की ओर। यह कल्पनातीत व्यथा—वह तो हाथ भी अपने वक्षतक पहुँचाने में असमर्थ है। उसके नेत्र फट-से गये हैं। वह भागी-भागी जा रही है हाथ फेंकते, पैर पटकते, लुढ़कती-सी, रोती—चिग्घाड़ मारती। उसके केश खुलकर उड़ने लगे हैं, शरीर पसीने से लथपथ हो गया है, वस्त्र भूमि में घसिटता जा रहा है, वह भागी जा रही है पूतना!

यह यशोदा का लाल, यह सुकुमार नीलोज्वल शिशु, इसने तो अभी नेत्र भी नहीं खोले। सम्भवतः बड़ा मधुर लग रहा है यह दूध। आनन्द से नेत्र बंद हो गये हैं। दोनों कोमल अरुण हाथों से पूतना के स्तन को पकड़कर मुख लगाये चूसता जा रहा है यह। अभी सात ही दिन का तो है। इसकी मुट्ठियाँ जब कुछ भी पकड़ लेती हैं, उसे छोड़ना कहाँ सीख पाया है यह। किसी को पकड़कर छोड़ना स्वभाव में ही कहाँ है इसके। दोनों पल्लव-कोमल पद्मपद पूतना के वक्ष से चिपक गये हैं। उसे कोई पकड़ता नहीं, सहारा नहीं देता, तो वही चिपक गया है। यह दूध—बड़ा मीठा होगा इसका दूध; नहीं तो यह नन्दनन्दन क्या इस प्रकार पीने में जुट पड़ता? शरीर का सब चार तो यह पसीना बनकर निकला जा रहा है, तब दूध तो मधुर हो ही जायगा न। इसने स्तनों में हलाहल लगाया था—यह बात क्या अब सोचने की है। अन्ततः हलाहल भी तो नीला ही ठहरा, अपने इस सवर्ण शिशु से कहीं उसने मित्रता करली हो और मधुर हो गया हो तो? हाँ, इससे तो उसका पुराना सम्बन्ध है, अन्ततः वह भी तो रमा का भाई ही है और इसके तो स्मरण से वह अमृत बन जाया करता है। बिचारी पूतना को कहाँ पता था कि यह हलाहल उसके दूध में मिश्री बन जायगा! भला, ऐसा दूध यह शिशु क्या सहज छोड़ सकता है? वह क्या जुटा है पीने में! नेत्र बंद किये क्या वह चुसकी भरता जा रहा है! यह पूतना रोती, चिग्घाड़ती, हाथ-पैर पछाड़ती भागी जा रही है, इसका उसे क्या पता और क्या चिन्ता। वह तो दूध पी रहा है—दूध।

× × × ×

'क्या हुआ, यह देवी क्यों चिल्लायी! कहाँ भागी यह! दौड़ो! दौड़ो! यह मेरे लाल को लिये जाती है!' मैया चिल्लायी, माता रोहिणी चीख पड़ीं, गोपियाँ पुकारते हुए दौड़ीं। भला, पूतना के साथ कौन दौड़ सकता है। सब दौड़ीं, सब दौड़ती चलीं उधर, जिधर वह भागती जा रही है। 'वह भागती जाती है! वह उसकी चिग्घाड़ आ रही है! इतनी भयंकर ध्वनि, इतना कर्कश स्वर—जैसे कर्ण फटे जा रहे हैं!' सब-की-सब भूल गयी हैं अपने आपको। सब दौड़ रही हैं-दौड़ती ही जा रही हैं।

सेवकों ने—रक्षकों ने भी चीत्कार सुनी—उन्हें कहां अवसर मिला कि कुछ कर सकें। वे सावधान हों, देखें कि क्या हुआ, इससे पहिले तो दौड़ती, चिल्लाती, छटपटाती पूतना नन्दभवन से निकली और उनके सम्मुख से वायु-वेग से चली गयी। वे भी दौड़े सब-के-सब उसके पीछे।

'अरर धम्!' सैकड़ों वज्रपात जैसे साथ ही हुए हों, भूमि काँप गयी वेगपूर्वक, भवन-तरु सब हिल गये। बर्तन भड़भड़ाकर गिरे और फूट गये। जो भी दौड़ रहे थे, सब भूमि पर गिर पड़े! इतना भीषण शब्द, इतनी भयङ्कर गूँज और इतना प्रबल धमाका—कोई कैसे सम्हाल सकता था अपने को। लेकिन अपना ध्यान कहाँ किसे है। कौन सोचता है कि इतनी भीषण ध्वनि जहाँ हुई, वहाँ कोई अपने लिये भय भी हो सकता है। 'भय है—वह नन्दनन्दन को लेकर भाग गयी, पता नहीं क्या हुआ!' सब इसी एक भय से झटपट सम्हलकर उठे और फिर भागे।

× × × ×

ये गोपियाँ—कितनी दूर दौड़ती आयी हैं ये! इनके प्राण तो उस शिशु में लगे हैं, इन्हें क्या दूरी का पता है। लेकिन यह क्या है सम्मुख? यह कौन-सा पर्वत पड़ा है? यह राक्षसी—वह महाशब्द इसीके गिरने का था। यह तो उत्तान पड़ी है भूमि पर। इसके ये बड़े बड़े रूक्ष लाल-

लाल केश बिखरे पड़े हैं। ओठ, ये इसके दाँत—पूरे बाण जैसे तीक्ष्ण और उतने ही लंबे ये उज्ज्वल भयंकर दांत। यह तो मुख फाड़कर मरी पड़ी है। ये दोनों ओर फैले मोटे बाहु और हाथों में खपरैल-जैसे विशाल तीक्ष्ण नख! इसकी नासिका के छिद्र तो जैसे पहाड़ की अन्धकारपूर्ण दो गुफाएँ हों, और इसके स्तन—जैसे शैलशिखर हैं ये।' जो सेवक और रक्षक दौड़ आये हैं, वे बड़े भयभीत हुए। यह पर्वताकार राक्षसी—यह तो राक्षसी है—देवी नहीं है। ये लोग समीप आ गये हैं। इस पर्वतोत्तुङ्ग मस्तक की आड़ में उन्हें पूरा शरीर कहाँ दीखता है। मुख ही तो किसी प्रकार दीखा है। वे घूमे दूसरी ओर मस्तक के—इसके नेत्र तो जैसे दो अंधे (जलहीन) कुएँ हैं, कितने भयंकर हैं ये नेत्र और इसकी ये फैली भुजाएँ तथा वे दोनों फैले पैर—जैसे इसका यह तो महाभीषण जलशून्य ह्रद-जैसा विशाल खड्ड उदर है, वहाँ तक पहुँचने के लिये ये चार सेतु वैसे ही विशाल और भीषण बने हैं!' गोपों को, सेवकों को, सबको आतुरता है—नन्दनन्दन कहाँ है? उसका क्या हुआ? वे पूतना-देह के इधर-उधर अस्त-व्यस्त दौड़ रहे हैं।

गोपियाँ आयीं दौड़ती, इन रक्षकों से कुछ ही क्षण तो पीछे आयी हैं वे। "यह राक्षसी! इतना विशाल देह! इतना रौद्र रूप!' वे अत्यन्त भयविह्वल हो गयीं। उनके चरण सहसा रुक गये और वे एकटक देखती रह गयीं दो क्षण उसी राक्षसी की ओर। दूर से—कुछ दूर से देखने का लाभ उन्हें मिलना ही है—

"वह रहा नीलमणि! वह तो दूध पीकर तृप्त होगया है। पेट के बल इस राक्षसी के वक्ष पर लेटा अपने दोनों नन्हे अरुण चरण पटक रहा है, छोटे सुकुमार लाल-लाल करों से इसके स्तन को मार-मारकर किलक रहा है। वह तो निर्भय खेल रहा है!' गोपियों को जैसे जीवन-दान मिला। वे लपकीं, चढ़ गयीं राक्षसी के शरीर पर और दौड़ती गयीं। उन्होंने नन्दनन्दन को उठा लिया, हृदय से लगा लिया और लौटीं। कई पहुँचीं थीं, और सब साथ ही लौटीं। मैया की गोद में उन्होंने किस भाव से लाकर दिया उस नवजलधर-सुन्दर को और मैया ने किस ललक से लिया, यह कैसे वर्णन हो।'

यह वनप्रान्त—यह राक्षसी मरी पड़ी है यहाँ। भला, ऐसे स्थान पर कौन ठहरे एक क्षण। सबको शीघ्रता है, सब को लगता है किसी प्रकार निरापद नन्दभवन पहुँच जाय यह व्रजराज-कुमार। और रक्षकों को इन गोपियों से अधिक शीघ्रता है। यह राक्षसी—पता नहीं इसके साथ और कोई हो तो! इसके उस भीषण चीत्कार को सुनकर कोई असुर दौड़े गोकुल की ओर। इसी समय तो गोकुल की रक्षा परम आवश्यक है। ये गोपियाँ और यह व्रजनवयुवराज—यही तो उनके परम रक्ष्य हैं। सभी रक्षक, सभी सेवक गोपियों को चारों ओर घेरे, बड़ी सावधानीपूर्वक, तीव्र गति से गोकुल लौटे।

× × × ×

'आज ही यह प्रथम दिन खुले कक्ष में प्रसूतिगृह से आया और आज ही यह उत्पात! पता नहीं कौन से अशुभ ग्रह हैं। राक्षसी ने स्पर्श किया इसका—पता नहीं आगे क्या हो!' सभी के मन में बड़ा भय है, बड़ी आशङ्का है; किन्तु व्रज की साक्षात् देवता तो गौएँ हैं। इन निखिल-देवमयी की शक्ति तो अपार है। सभी क्रूर ग्रह, समस्त अमङ्गल तो इनकी चरणरज से ही नष्ट हो जाते हैं। इनका परम पावन गोमूत्र—वह तो महौषधि है। समस्त आसुरी शक्तियाँ उसकी गन्ध से ही भयभीत होती हैं और इनकी पुच्छ—यह तो निखिल अमङ्गलों को सहज ही झाड़ फेंकने वाला अमोघ चमर है। गोपियों ने इसकी इन्दीवराभनील नन्दनन्दन के ऊपर कृष्णा की पूँछ फिरायी। गौ ने हुंकार की—जो नित्य गोपाल है, उसका पालन भी तो गौएँ ही करेंगी। कपिला के पवित्र गोमूत्र से उपनन्द-पत्नी ने स्नान कराना उपयुक्त समझा और फिर उसे सम्पन्न होने में क्या देर लगती है। गोरज लेकर भगवन्नामों का न्यास स्वयं किया उपनन्दपत्नी ने शिशु के द्वादशाङ्गों में और फिर बार-बार उस न्यास की आवृत्ति की। भला, इतने से संतोष कैसे हो जाय। जल लेकर हाथ-पैर

धोया उन्होंने, अपने अङ्गों में बीजमन्त्रों का अङ्गन्यास एवं करन्यास किया और फिर शिशु के अङ्गन्यास, करन्यास को सम्पन्न करके वे उसके अङ्गों में कवच का न्यास करने लगीं—

'अजन्मा भगवान् तुम्हारे पैरों की रक्षा करें! कौस्तुभमणिधर प्रभु घुटने से नीचे के भाग की और भगवान् यज्ञ जाँघों की रक्षा करें! तुम्हारे कटिदेश की भगवान् अच्युत, पेट की भगवान् हयग्रीव, हृदय की केशव, वक्ष की सर्वप्रेरक, कण्ठ की इच्छामय प्रभु, भुजाओं की भगवान् विष्णु, मुख की उरुक्रम और सभी दिशाओं में वे सर्वेश्वर रक्षा करें! भगवान् सुदर्शनचक्रधर सदा तुम्हारा सम्मुख से रक्षण करें! वे कौमोदकीगदा-धारी श्रीहरि तुम्हारे पृष्ठभाग को रक्षित रखें! शार्ङ्ग धनुष एवं नन्दकखड्ग धारी वे स्वजनरक्षक मधुसूदन दोनों पार्श्वों में रहकर तुम्हारी रक्षा करें। भगवान् उत्तमश्लोक का पाञ्चजन्य शङ्ख कोणों में तुम्हारी रक्षा करे। ऊपर से तुम्हारी रक्षा भगवान उपेन्द्र करें। पृथ्वी पर पक्षिराज गरुड़ तुम्हारा रक्षण करें! और वे हलधर परम पुरुष चारों ओर से तुम्हारी रक्षा करें! तुम्हारी इन्द्रियों को हृषीकेश, प्राणों को नारायण, चित्त को श्वेतद्वीपाधिपति और मन को भगवान् योगेश्वर रक्षित करें! भगवान् पृश्निगर्भ तुम्हारी बुद्धि की और परम पुरुष तुम्हारी आत्मा की रक्षा करें। खेलते समय गोविन्द, सोते समय माधव, चलते समय वैकुण्ठ, बैठे रहने पर श्रीपति, और भोजन करते समय सम्पूर्ण ग्रहों के लिये भयंकर भगवान् यज्ञभोक्ता तुम्हारी रक्षा करें। डाकिनियाँ, यातुधान, कूष्माण्ड आदि जितने बालकों को पीड़ा देने वाले हैं; भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक आदि क्रूर सत्व; कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना प्रभृति मातृकाएँ और उन्माद, अपस्मार प्रभृति जितने रोग हैं; जो शरीर, प्राण तथा इन्द्रियों के शत्रु हैं, इनको दूषित करने वाले हैं; इनके अतिरिक्त भी जो स्वप्न में दिखायी पड़नेवाले भयंकर उत्पात तथा बालकों एवं वयस्कों के ग्रह हैं; ये सब भगवान् विष्णु के नाम से ही डरनेवाले हैं। तुम्हारे लिये ये सब नष्ट हो जायँ! तुम्हें इनका प्रभाव कभी स्पर्श न कर सके!' उपनन्द-पत्नी ने बड़ी गम्भीरता से यह मन्त्र-रक्षण किया। गोपियाँ शान्त रहीं, गम्भीर बना रहा पूरा वातावरण; पर यह दाऊ तो हँसता, खिलखिलाता ही रहा है। माता रोहिणी ने इसे गोद में पकड़ न रक्खा होता तो यह क्या शान्ति से यह सब होने देता। यह तो छोटे भाई के पास पहुँचने के लिये प्रयत्न करता ही रहा है।

व्रजराज सायंकाल तक आ जायँगे और तब वे महर्षि शाण्डिल्य को बुलाकर विधिवत् स्वस्तिपाठ, ग्रहशान्ति प्रभृति करायेंगे। लेकिन इतनी भयंकर राक्षसी आयी, वह इस नवनीत-सुकुमार शिशु को ले भागी—यह तो नन्दरानी और व्रजेश्वर के अनन्त जन्मों के प्रबल पुण्यों का प्रताप, व्रजजनों पर श्रीनारायण की कृपा कि बालक ज्यों-का-त्यों सकुशल प्राप्त हो गया। भला, संध्या तक कैसे प्रतीक्षा की जाय! रक्षा का—इस अशुभ स्पर्श के परिहार का कुछ उपाय तो तत्काल ही होना अत्यन्त आवश्यक था ही।' गोपियों ने आशीर्वाद दिया अपने आराध्य, कुलदेव, ग्रामदेव आदि का स्मरण करके। मैया ने गोदमें लिया आपने लाल को और स्तन-पान कराने लगी। बहुत दूध पिया है इसने उस राक्षसी का; अब भला, क्या क्षुधा रहेगी। उसी समय जब वह क्रूरा परम सुन्दरी बनकर आयी थी, यह सोने लगा था। बहुत देर हो गयी—तब से इस सब झमेले में सो ही नहीं सका। मैया की गोद में पहुँचते ही पलकें बंद कर लीं उसने। मुख माता के स्तन में लगाये हुए ही वह तो सो गया। मैया ने धीरे से पलने पर सुला दिया। अब तो सबको सावधान रहना है, फिर कोई राक्षसी न आ जाय।

× × × ×

'गोकुल में उत्पात हैं।' श्रीव्रजेश्वर, दूसरे सब गोप भला, इस आशङ्का से कितने व्याकुल होंगे—कोई अनुमान हो सकता है। 'पता नहीं कौन से उत्पात हैं, कैसे उत्पात हैं! वह व्रज की आशा का नवाङ्कुर—श्रीनारायण मङ्गल करें। छकड़े दौड़ाये, नावों पर बैलों को जुते ही रहने दिया गया; श्रीयमुनाजी पार हुई और जैसे उत्तुङ्ग वृषभ छकड़े लिये उड़ने लगे हों! 'बहुत विलम्ब हुआ!' इस गति पर संतोष किसे है।

'यह—यह क्या ?' सहसा वृषभ स्वतः खड़े हो गये। उन्होंने विचित्र भङ्गी प्रकट की। 'क्या है ?' गोप कूदे छकड़ों से। 'आगे का विशाल वन कहाँ है ? हम लोग क्या मार्ग भूल गये ?' यहाँ तो मार्ग में मथुरा नरेश का प्रिय रक्षित-कानन था आगे ही। उसके वृक्ष तो दीखते ही नहीं। गोपों ने छकड़े छोड़ दिये और आगे बढ़े। उतावली में मार्ग भूल गया हो तो ठिकाना क्या ! पहिले इधर-उधर देख लेना चाहिये।

'यहाँ तो यह पूतना मरी पड़ी है !' सम्मुख के तरु, वीरुधों की पंक्ति से आगे बढ़ते ही गोप चिल्लाये। पूतना—यह कंस के असुर सहायकों में प्रधान राक्षसी, भला, इसे पहिचानने में गोपों से भ्रम हो सकता है ? क्या हुआ जो यह प्रायः बकी बनकर उड़ा करती थी। यहाँ तो यह अपने वास्तविक रूप में ही दोनों पैर मथुरा की ओर पसारे, गोकुल की ओर मस्तक किये उत्तान पड़ी है। इसका यह तीन गव्यूति(लगभग ६ कोस)लंबा-चौड़ा पर्वताकार शरीर—भला, राजकानन दिखायी कैसे पड़ता ! इस निशाचरी के शरीर के नीचे पड़कर तो वृक्षों के तने, शाखाएँ, टहनियाँ, पत्ते, सभी भुरकुस हो गये हैं। यहाँ तो केवल रेशे रह गये हैं आर्द्र काष्ठ के। सारे वन को पीस दिया है इसने गिरते-गिरते। दूर से ही गोपों ने देख लिया राक्षसी के पर्वताकार देह को।

'पूतना—पूतना यहाँ...!' श्री नन्दराय बन्धुओं एवं दूसरे गोपों के साथ बढ़ आये आगे। 'अवश्य ही वसुदेवजी कोई महर्षि हैं, जो यदुकुल में उत्पन्न हो गये हैं। उनकी वाणी कितनी सत्य निकली। उन्होंने कहा था कि गोकुल में उत्पात है और यह सम्मुख उत्पात प्रत्यक्ष है !' व्रजेश्वर अपने बन्धु की प्रशंसा करके गद्गद हो गये। 'यह पूतना—यह बालघ्नी राक्षसी कहीं गोकुल तो नहीं गयी थी। गोकुल में क्या हुआ ? वहाँ कुशल तो है ?' श्रीव्रजपति ने, गोपों ने, सबने छकड़े दौड़ाये पूरे वेग से दौड़ाये गोकुल की ओर। वे खड़े होकर, उभककर वृषभों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। कैसे शीघ्र पहुँचा जाय।

× × × ×

'व्रजराज आये !' वृषभों के गलों में बँधी स्वर्ण घण्टिकाओं का नाद सुनायी पड़ा और रक्षक दौड़े। 'श्री व्रजराज की जय !'

'कुशल तो है ? कोई उत्पात तो नहीं ?' बड़े शङ्कित चित्त से पूछा गया। छकड़ों की गति मन्द हुई।

'आपके पुण्यप्रताप से, भगवान् नारायण की कृपा से कुशल है !' रक्षकों ने थोड़े शब्दों में सुना दिया पूतना का समाचार और छकड़े दौड़े—दौड़े वृषभ नन्द-भवन की ओर। भला, उन सुकुमार शिशु को इतनी बड़ी राक्षसी ले भागी थी। ये रक्षक ठीक नहीं बतलाते ! कुछ हुआ हो तो !' बिना स्वयं देखे संतोष किसे हो !

'नीलमणि कहाँ है ? कैसे है वह ? सकुशल तो है ?' श्री नन्दराय छकड़े से सीधे अन्तःपुर पहुँचे और पहुँचे उनके साथ समस्त गोप। भला ऐसे समय सूचना देने का ध्यान किसे रहे। यह कार्य तो सेविकाओं ने पहिले ही सम्पन्न कर दिया था।

'मेरा लाल !' व्रजराज ने उठाकर हृदय से लगा लिया। नेत्र भर आये उनके, शरीर गद्गद होगया।

सभी को उसे अङ्क में लेना है, सभी को देखना है—स्वयं देखना है कि उनकी वह हृदय-निधि सुरक्षित है। स्नान—स्वच्छता—महर्षि शाण्डिल्यका आह्वान—ग्रहशान्ति-दान—सब होने हैं, सब होंगे; पर अभी तो इसे—इस इन्दीवरसुन्दर को गोदमें लेकर देखना है—सबको ही देखना है।

× × × ×

'वह पर्वतकाय राक्षसी अपने बृहद्वन की सीमापर ही पड़ी है। वह यदि वहीं सड़ेगी तो सबको कष्ट होगा।' श्रीनन्दनन्दन सकुशल है। वह राक्षसी के घोर चीत्कार से डरा भी नहीं। अब कहीं चित्त कुछ व्यवस्थित हुआ। संनन्दजी ने ठीक ही प्रश्न उठाया है।

'कुछ भी हो, कोई भी हो, जब अपनी सीमा के पास उसका शव पड़ा है तो उसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है।' उपनन्दजी ने स्वयं यह व्यवस्था करने का भार लिया और उठ खड़े हुए।

'इसे कहीं उठाकर ले जाना किसके वसकी बात है।' ये उपनन्दजी के साथ आये अन्त्यज सेवकगण ठीक ही तो कहते हैं। भला, यह पर्वत क्या मनुष्यों से उठ सकता है। इसे न तो यमुनाजी में प्रवाहित करने को ले जाया जा सकता और न इतना बड़ा गड्ढा खोदना सम्भव है, जिसमें इसे भूमि में दबाया जा सके।

'इसके शरीर को टुकड़े-टुकड़े काट कर दूर खड्ड में फेंक कर जला दिया जाय!' प्रस्ताव-चाहे जितना अप्रिय हो, जब दूसरा मार्ग ही नहीं तो उसे स्वीकार करना ही ठहरा।

'बेचारी की सद्‌गति हो जायगी।' भला, अब क्या सद्‌गति के लिये उसे अग्नि-दाह की अपेक्षा है; पर उपनन्दजी तो अपनी ही दृष्टि से सोचेंगे न। वे धर्मप्राण व्यवस्था में लग गये हैं राक्षसी की सद्‌गति की। वे शतशः अन्त्यजों के साथ स्वयं पहुँच गये हैं उसके शव के समीप।

परशु से राक्षसी के शव को टुकड़े-टुकड़े किया सबों ने। किसी प्रकार एक-एक अंश रस्सी एवं बल्ली के सहारे ढोकर दूर ले जाकर एक खड्ड के किनारे ढेर किया उन टुकड़ों का। खड्ड में पर्याप्त काष्ठ फेंक कर अग्नि लगायी गयी ऊपर से ही डालकर और तब राक्षसी के शरीर के सब टुकड़े उसी में ढकेल दिये गये।

× × × ×

'यह अपार सुगन्ध, जैसे कोई अगुरु की राशि प्रज्वलित हो रही हो! कहाँ से आ रही है यह सुगन्ध? इतनी सुगन्ध कैसे आ रही है?' सभी गोपों को बड़ा आश्चर्य हुआ है। भला, कानन में इतना अगुरु कौन जलायेगा। अगुरु की सुगन्धि इतनी मधुर—इतनी मादक—इतनी प्रिय होती कहाँ है।

'धूम्र तो उस खड्ड की ओर से आ रहा है! उस राक्षसी के शव का धूम······उसमें इतनी सुगन्ध······!' बात कुछ ऐसी है तो सही, पर यह क्या समझ में आने की बात है? व्रज-जनों के साथ ये पूतना को जलाने वाले लोग भी कम चकित नहीं हैं। कौन बताये इन्हें कि उस राक्षसी के दूध को उसके हृदय पर चिपक कर तुम्हारे जिस युवराजने पिया है, उसकी वह नवनील-नीरद मूर्ति कल्पना से भी जिसके हृदय में ठीक ठीक आ जाती है, सुरभि तो उसका मलिन देह प्राप्त कर लेता है, फिर इसके सौभाग्य की तो सीमा ही नहीं है।

यह सुरभि कहीं से उठी हो—कौन सोचे इसके सम्बन्ध में। किसे इतना अवकाश है। व्रजराज ने महर्षि शाण्डिल्य को बुलाने के लिये भाई को तभी भेज दिया। शान्तिपाठ, हवन और महोत्सव—सभी तो होगा गोकुल में! गोकुल की आशा का परमाधार इस संकट से—इस महा उत्पात से बचा है!' अभी तो स्नान करना है!' भला, कोई कैसे महोत्सव में पहुँचने से वञ्चित रहना चाहे। शव के टुकड़े प्रज्वलित गड्ढे में गिरा कर उपनन्दजी सबके साथ गोकुल पहुँचने की शीघ्रता में हैं।

गोकुल के लोग भी चौंके, आश्चर्य में पड़े, यह महासुरभि······कहां से आती है यह?' पर उन्हें ही अन्वेषण या अधिक तर्क का अवकाश कहाँ है। सब तो महोत्सव की प्रस्तुति में लगे हैं।

दुग्धपान

'साष्टाङ्गपातमभिवन्द्य समस्तभावैः सर्वान् सुरेन्द्रनिकरानिदमेव याचे ।
मन्दस्मितार्द्रमधुराननचन्द्रबिम्बे नन्दस्य पुण्यनिचये मम भक्तिरस्तु ॥'

—श्रीलीलाशुक

नन्दनन्दन आज ग्यारह दिन का हुआ। आज इसका नामकरण होना चाहिये था। अभी परसों ही माता रोहिणी ने कहा था—'नीलमणि का तो नामकरण हो ही जाय।'

'व्रजेश्वर कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि यह अपने अग्रज से पहिले संस्कृत हो !' दाऊ के जन्म के समय ही मथुरा के कारागार में समाचार भेजा गया था। श्रीवसुदेवजी ने कहला दिया—'शीघ्रता की आवश्यकता नहीं है !' अभी उनके कारागार-मुक्त होने पर भी चर पूछने गया था। जब वे टालते जा रहे हैं तो कोई बड़ा कारण होना चाहिये।

'इसका संस्कार भी अपने बड़े भाई के साथ ही होगा !' व्रजपति ने तो टाल दिया; किन्तु गोप-गोपियों के हृदय में कितनी उमंग थी, कितना उल्लास था—आज कुमार का नामकरण होता······कैसे होता ? सभी समझते हैं, यह कैसे हो सकता है। आज नामकरण न सही, कल दोलाशयन तो होगा ही। सबका उत्साह कल पर केन्द्रित हो गया है। सब कल की प्रस्तुति में जुट गये हैं।

× × × ×

श्रीव्रजराज-कुमार आज पलने में पौढ़ेगा ! आज यह बारह दिन का हुआ। यह स्नेह की मञ्जु प्रतिमा—पलने का मन्द-मन्द हिलना भी अभी सह सकेगा यह सुकुमार ? अभी तो यह स्थिर पलने में ही शयन करता है। शिशु के अङ्ग-विकास के लिये गति चाहिये, गति तो झूले में ही मिलेगी उसे। आज झूलते पलने में झूलना प्रारम्भ करेगा यह चञ्चल।

महर्षि शाण्डिल्य पधारे और पधारे उनके साथ शतशः द्विजवृन्द। आज श्री शेषशायी का पूजन होना है। यह उज्ज्वल दुग्धधवल प्राङ्गण और आज तो व्रजराजने इसे क्षीराब्धि बना दिया है। भगवान् अनन्तशायी की यह दिव्य झाँकी—नन्दभवन के प्राङ्गण में साक्षात् नारायण जैसे अपनी अनादि शय्या पर व्यक्त हो गये हों और ये रजतश्मश्रु, वलीपलित काय, तेजोमूर्ति ऋषि-गण सस्वर साम के मन्त्रों से उन्हीं परात्पर पुरुष की तो स्तुति कर रहे हैं !

महर्षि ने गणपति, नवग्रहादि के साथ आवरण-देवता, पार्षद, परिकर—सब की पूजा सम्पूर्ण करा दी और अब तो व्रजेन्द्र अपने कुमार को अङ्क में लेकर अपने आराध्य का पूजन कर रहे हैं। 'भगवान् नारायण इस शिशु पर प्रसन्न हों !' शङ्खध्वनि, मन्त्रपाठ एवं सबसे ऊपर गूँजता यह जयघोष ! गगन से निरन्तर झरती पुष्पवृष्टि और देववाद्य तो आज गोकुल के वाद्यों की प्रतिध्वनि हो गये हैं।

यह मणि-मण्डित स्वर्ण-पलना और उसमें लगे ये सजीव-से मणिमय शुक-सारिकादि ! इन्द्रनील, पद्मराग, महामाणिक्य के ज्योतिःपुञ्ज खिलौने और इस नन्हे नीलसुन्दर के लिये तो यह नन्हा क्षीराब्धि ही बहुत है। पलने का यह उज्ज्वल सुकोमल आस्तरण—इस पर यह अपने चरण उछालता किलकेगा ! क्षीराब्धि भी कदाचित् आज इस पलने-में अपने को एक करके कृतार्थ ही होता।

महर्षि पूजा करा रहे हैं पलने की, रज्जु की और क्रीड़ा-उपकरणों की। मैया की गोद में आया यह श्याम। उच्च, उच्चतर, उच्चतम वाद्य, शङ्खनाद की प्रणव-ध्वनि और मैया ने लो, धीरे से रख दिया अपने नीलमणि को पलने में।

'इसे मैं झुलाऊँगी!' व्रजरानी उल्लसित हो गयी यह सुनकर। माता रोहिणी ने आज एक आग्रह किया और वह भी धीरे से उनके कान के समीप। परम सती, मङ्गलमयी और श्याम की बड़ी माँ भी तो हैं ये। अपना स्वत्व कैसे छोड़ दें।

'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा············।'

विप्रों का स्वस्ति-वाचन चल रहा है। गोप उछलने और अपनी कला को मूर्त करने में लगे हैं। मागध, सूत, वन्दी अपने कण्ठ को धन्य कर रहे हैं। गोपियों के कलकण्ठ को पाकर सङ्गीत सार्थक हो गया है और यह मधुमङ्गल ताली बजाकर नाच रहा है, कूद रहा है। यह दाऊ अपना मस्तक जैसे पलने की मन्द गति के साथ धीरे धीरे आगे-पीछे हिलाता, दोनों कर भूमि पर टेके अपने अनुज की ओर देखता झूम रहा है।

'कुमार, श्याम!' ये भगवती पूर्णमासी—ये अपने मङ्गलमय अभय कर फैला रही हैं। व्रजेश्वरी इनके श्रीचरणों में मस्तक ही तो रख सकती हैं। इन जगदम्बा की कोई और क्या सेवा करेगा।

माता रोहिणी—आज तो माता को जैसे अपनी ही सुधि नहीं है। महोत्सव चल रहा है। इतना आनन्द-कोलाहल है और जैसे कोई नहीं है उनके पास। वे तो कुछ गा रही हैं, कुछ लोरी की भाँति धीरे-धीरे गा रही हैं। वे आनन्द-विभोर पुलकित तन इस प्रकार गा रही हैं, जैसे उनका मन्दस्वर यह नीलसुन्दर सुन रहा है। पलने की रज्जु—इस रज्जु ने जैसे हृदय का राग पाया है। माता के कर हिल रहे हैं और हिल रहा है यह पलना।

नन्दनन्दन किलक रहा है, अपने कर एवं चरण उछाल रहा है। यह भी अपनी बड़ी माँ को ही देख रहा है। कुछ कह रहा है अपनी किलक में। कुछ संकेत कर रहा है अपनी चेष्टा में। इसे भी इस समय बड़ी माँ ही दीखती है। और लोग हैं, और शतशः नेत्र प्रतीक्षा कर रहे हैं कि यह एक बार देखे तो सही। सहस्रशः कण्ठ इसी के कर्णों तक अपनी ध्वनि पहुँचाने के प्रयास में हैं और यह—यह तो बड़ी माँ के हिलते अधर देखकर किलक रहा है। झूल रहा है मन्द-मन्द इसका यह पलना।

× × × ×

श्री व्रजराज-कुमार को कौन गोदुग्ध पान करायेगा प्रथम ? इसकी धात्री होने का सौभाग्य किसे मिलेगा ? किसके हृदय में लालसा नहीं है। कौन उत्कण्ठित नहीं है। मैया क्या करे—वह किसे कहे, किसे अस्वीकार कर दे। उसका श्याम है तो सभी का। उसकी सभी जेठानियाँ और देवरानियाँ उत्सुक हैं। सभी गोपियाँ कहते-कहते रह जाती हैं—'व्रजरानी, अपने लाल की धाय तो बना लेना हमें!' सबके मनमें एक संकोच है, दूसरे की लालसा पर ठेस न लगे।

उस दिन उपनन्दपत्नी ने कहा था—'समय पर ही निश्चय हो जायगा!' उनका ही प्रथम स्वत्व है, वही सबसे बड़ी हैं; किन्तु वे धाय बनेंगी ? उन्होंने आग्रह किया तो कौन रोक लेगा ? समय ही कहाँ दूर है। कल ही तो यह इकतीस दिनका होगा। कल ही तो इसे गोदुग्ध दिया जायगा। व्रजेश कह रहे थे कि कपिला ने आज उन्हें देखते ही हुंकार की और उसके स्तनों से दूध झरने लगा।

महर्षि शाण्डिल्य ने आदेश दिया है, आज तीन दिन से कपिला केवल दूध पी रही है। एक लक्ष कपिला गौएँ औषधि-तृणों पर रहती हैं और उनका दूध एक सहस्र गायें पीती हैं। उन सहस्र गायों के दूध से एक शत पद्मगन्धा कपिला गौएँ तृप्त होती हैं और वे अपने दूध से व्रजराज की दस मुख्य धेनुओं को संतुष्ट करती हैं। यह नीलोत्पलदिव्यगन्धा कपिला, यह कामदा तो उन

दस के दूध से अर्चित हो रही है। कल श्याम को दूध पिलायेगी। यहाँ कन्हाई इसके अमृत-पय का प्राशन करेगा। आज इसके चारों स्तनों से अखण्ड धारा चल रही है और वह बंद ही नहीं होने को आती। महर्षि ने आज से ही भगवान् शंकर का अखण्ड सहस्राभिषेक प्रारम्भ कर दिया है। कामदा तो अकेली ही उस अभिषेक के लिये दूध देने पर तुली जान पड़ती है। वह नन्दनन्दन को दूध पिलायेगी—उसके दुग्धाधार में क्षीरोदधि ही आबसा हो तो क्या पता। इतना सुरभित क्षीराब्धि का पय हो सकता है—कौन विश्वास करेगा।

× × × ×

'व्रजेश्वरी! लाओ, लाल को मुझे दो!' ये भगवती पूर्णमासी! इनके करों में यह दिव्य ज्योतिर्मय दक्षिणावर्त नन्हा-सा शङ्ख, सचमुच शशि समुद्र से ही निकल है। पूर्णिमा को वह इस शङ्ख की छटा को कुछ-कुछ पा लेता है। मैया ने, माता रोहिणी ने, सबने समझा तो यही था कि भगवती आज कुमार को दुग्धपान के लिये यह शङ्ख प्रसादरूप प्रदान करने आयी हैं; परन्तु इन्होंने तो शङ्ख दिया नहीं। ये तो श्याम को अङ्क में लेकर पूर्वाभिमुख बैठ गयीं उसका सिर दक्षिण करके। 'ये महिमामयी, ये साक्षात् जगदम्बा, ये क्या ...... ।'

'व्रजराज, तुम्हारे युवराज की यह धात्री बैठी है! यह रहा शङ्ख! इसका पूजन करो और मुझे दूध दो! मेरा लाल दूध पियेगा!' भगवती ने तो सबको एक क्षण के लिये स्तब्ध, आश्चर्य-चकित कर दिया।

'जगदम्बा!' बाबा ने चरणों पर मस्तक रख दिया आतुरता-पूर्वक। उनका भरित कण्ठ और कुछ नहीं कह सकेगा; किन्तु नेत्रों ने भगवती के श्रीचरण प्रक्षालित कर दिये।

'करुणामयी माँ!' मैया ने अञ्चल फैलाकर भूमि में मस्तक रक्खा। उसके कण्ठ से ये शब्द भी नहीं निकले।

'भगवती पूर्णमासी श्याम को दूध पिलायेंगी!' गोपों को, गोपियों को जैसे चारों पुरुषार्थ एक साथ प्राप्त हो गये। जैसे साक्षात् जगज्जननी, महामाया ने उनके युवराज की धात्री बनकर उन्हें कृतार्थ किया है!

महर्षि शाडिल्य—वे तपोधन, केवल वे ही अपने मन्त्रपाठ में शान्त, सुस्थिर हैं। वे तो निश्चल स्वर में उस नन्हे शङ्ख को मार्जन करने लगे हैं। उनका तो भाव ही कहता है कि 'यह तो पहिले से जान लेने की बात थी—भला, व्रजराज-कुमार की धात्री और कोई कैसे बन सकती थी!'

× × × ×

'सौष्ठव, तुम तनिक दूध तो पी लो!' यह दुग्ध-धवल चञ्चल सौष्ठव—कामदा का यह चपल बछड़ा, यह तो बार-बार पकड़ कर लाने पर भी माता के स्तनों से मुख ही नहीं लगाता। गणपति, नवग्रहादि कभी के पूजित हो चुके। अग्निदेव ने श्रद्धापूत आहुतियाँ प्राप्त कर लीं। पितर तृप्त हो चुके और कामदा तथा इस चञ्चल सौष्ठव का भी पूजन हो गया। महर्षि ने शङ्ख की पूजा सम्पन्न करा दी और आज व्रजरानी को सौभाग्य मिला भगवती पूर्णमासी के श्रीचरणों की अर्चा का। अब तो श्याम को दूध पिलाना है। आचार्य ने अर्चा ग्रहण करके आशीर्वाद दे दिया और दोहन करने के लिये नवीन वस्त्राभरणों से सज्जित ये व्रजराज के लघुभ्राता प्रस्तुत ही हैं स्वर्ण पात्र लिये; पर बिना बछड़े के मुख लगाये तो गोदुग्ध पीने योग्य नहीं होता। यह चञ्चल सौष्ठव बार-बार भाग जाता है। अपने गले में पड़ी माला को हिलाता, फुदकता यह भाग जाता है भगवती पूर्णमासी के समीप और तनिक दूर से ही श्याम को सूँघने का प्रयत्न करके मस्तक घुमा-घुमा कर कूदता है। श्याम भी तो इसी की ओर देखकर किलक रहा है। यह तो जैसे कूदकर समझा रहा है—'तू यहाँ क्यों लेटा है? आ, मेरे साथ कूद! देख न, मेरी माँ के स्तनों से कितना उजला, कितना मीठा दूध झर रहा है! तू चल; चल, तू पी ले! ना—पहिले तू पी ले तो मैं पीऊँ।'

'चल, तू दूध पी ! तू मेरी बात नहीं सुनेगा तो दाऊ कान पकड़ेगा तेरे।' मधुमङ्गल ठीक कहता है, यह दाऊ अपने नन्हे हाथ कान पकड़ने को ही तो उठा रहा है।

'दूध ! दूध !' दाऊ भी समझ गया है कि दूध तो पहिले इसी को पीना है। यह बछड़ा नहीं मानता तो वह अपने हाथों इसे पकड़ने का प्रयत्न करने लगा है। यह दूध पी ले तो उसके छोटे भाई को दूध मिले। पता नहीं क्या बात है, मधुमङ्गल की बात ये गायें, ये वृषभ और ये नन्हे बछड़े तक समझ लेते हैं। देखो न, इसने कहा है और सौष्ठव कूद गया माता के समीप। अब तो वह एक-एक स्तन क्षण-क्षण में बदल रहा है। उसे दूध कहाँ पीना है। मधुमङ्गल कहता है—जैसे यह समझ कर ही वह नाम कर रहा है दूध पीने का।

× × × ×

'लाल ! यह पद्ममधुमिश्रित, नारायण का प्रसाद धारोष्ण दूध है ! तू तनिक पी तो सही !' भगवती पूर्णमासी तो आज सचमुच जगज्जननी, वात्सल्यमयी हो गयी हैं। यह किलक रहा है नीलसुन्दर उनके मुख की ओर देखता उनके अङ्क में और अब उनके दक्षिण कर का यह शङ्ख—वे तो एकटक देख रही हैं। वे देख रही हैं और श्याम किलक रहा है। अपने कर एवं चरण ऊपर उठा-उठा कर वह अब शङ्ख को देख रहा है, उसे सम्भवतः पकड़ना चाहता है। इस चञ्चल को दूध पिलाना है और यह शङ्ख को ही पकड़ने के प्रयत्न में है।

नन्हे लाल अधर, खुला किलकता दन्तहीन मुख, शङ्ख को पकड़ने को उत्सुक कर और भगवती ने अधरों से तनिक-सा शङ्ख का मुखाग्र लगाकर एक बिन्दु गिरा दिया मुख में। हाथ, पैर वेग से हिलाकर यह चाटने लगा है दूध का वह बिन्दु ! महर्षि का सामगान, विप्रों का स्वस्ति-पाठ, गोपों का शङ्खनाद और जयध्वनि, गोपियों का कलगान—सब उन्मद हर्ष में झूम उठे हैं। सब झूम उठे हैं और अब कौन देखे कि मधुमङ्गल तालियाँ बजाकर नाच रहा है।

अधरों की यह दुग्धस्नात अरुणाभा—इसने अन्ततः शङ्ख को हिला ही दिया। यह चिबुक पर समुज्ज्वल बिन्दु और यह दूध चाटते हुए नन्दनन्दन की शोभा ! भगवती पूर्णमासी तो हाथ का शङ्ख भी अब उपनन्दपत्नी को देना भूल गयी हैं। वे तो एक हाथ में उसे उठाये मूर्ति बन गयी हैं।

—※—※—※—

शकट-भञ्जन

"वत्स जागृहि विभातमागतं जीव कृष्ण शरदां शतं शतम् ।
इत्युदीर्य सुचिरं यशोदया दृश्यमानवदनाम्बुजं भजे ॥"

—श्रीलीलाशुक

कंस के लिये आजकल निद्रा लेना भी कठिन हो गया है। पलक लगते ही उसे जान पड़ता है कि उसका काल आ गया। कोई महाभयंकर मूर्ति उसका कण्ठ दबाये दे रही है। वह चौंक कर उठता है। प्रायः चीत्कार करता है। उस वसुदेव की लड़की अष्टभुजा महाशक्ति ने कहा था—'तेरा पूर्व-जन्म का शत्रु कहीं प्रकट हो गया !' कंस को तो तभी से महाभय प्रतीत होने लगा और अब तो यह क्या संदेह की बात रही कि वह शत्रु कहाँ आया ! वह दूर भी नहीं, यमुना के उस पार गोकुल में ही तो है। नन्द का वह पुत्र—वही तो है। इतने निकट—पता नहीं, कब आ जाय। उसका क्या ठिकाना—सात दिन का भी पूरा नहीं हुआ था और अपारबलशालिनी पूतना को उसने मार दिया। पूतना की मृत्यु—कंसने तो संवाद सुना, तभी उसे ऐसा लगा जैसे स्वयं उसी की मृत्यु सम्मुख आ गयी है। उसने तभी समझ लिया कि गोकुल में ही उसका शत्रु आया। भला, कंस क्या इतना मूर्ख है कि दीपक में पतंगे की भाँति स्वयं जा कूदे ? गोकुल वह उसी के सम्मुख जाय, जिससे उसकी मृत्यु निश्चित है ? अब नन्दजी से खुली शत्रुता करना भी ठीक नहीं। उस मायावी विष्णु का ठिकाना क्या—कश्यप के यहाँ उत्पन्न होते ही वामन बनकर बलि के यज्ञ के लिये चल पड़ा ! कहीं नन्दजी से शत्रुता हो और वह पिता का पक्ष लेकर झटपट युद्ध करने मथुरा पर चढ़ दौड़े तो ? अब तो एक मात्र कपट-प्रयत्न ही किये जा सकते हैं।

'कपट-प्रयत्न—लेकिन ऐसे प्रयत्न भी कहाँ सफल हो रहे हैं। बेचारा श्रीधर गया था गोकुल। *कितना राजभक्त है वह ब्राह्मण ! सभी आसुरी यज्ञों में वह सहायक रहा और राजहित के* लिये ही प्रयत्न करने गया।' कंसके मनमें श्रीधर के प्रति सहानुभूति जाग्रत् हुई। उसने सोचा था कि श्रीधर ब्राह्मण है। नन्दजी तथा सभी गोप ब्राह्मणों के परम भक्त हैं। श्रीधर के लिये कोई भय तो है नहीं और वह प्रयत्न में कुछ उठा न रक्खेगा। नन्द के उस लड़के को अवसर पाते ही मसल देगा वह। श्रीधर तो गोकुल से गूँगा होकर लौटा है। उसकी जीभ ही ऐंठ गई है और अब तो वह आता ही नहीं राजसदन।

श्रीधर क्या राजसदन आवे। कर्तव्यबुद्धि से ही गोकुल से लौटकर आया था। किसी प्रकार लिख कर, संकेत से उसने अपनी बात बतायी। कोई कैसे उसकी बात पर विश्वास कर ले ! 'यह तो ठीक कि नन्दगृह में उसका बड़ा सत्कार हुआ। यह भी ठीक कि स्वयं नन्दपत्नी उसकी सेवा के लिये जल भरने गयीं। गोप बड़े सीधे और श्रद्धालु हैं। इन ग्रामीण लोगों में श्रद्धा होती ही है विचार-हीन; पर यह क्या मानने की बात है कि नन्द के अबोध लड़के ने पलने में से उठकर घर के बर्तन फोड़ दिये, इसकी जीभ ऐंठ दी और इसके मुख में नवनीत लगा दिया, जिससे लोगों को संदेह हो गया और गोपों ने इसे गोकुल से निकाल दिया। लगता है कि श्रीधर ने कोई मूर्खता की। उसके जाने का उद्देश गोपों ने समझ लिया। अन्ततः ब्राह्मण ही तो है। गोपों ने डराया होगा, सिखा-पढ़ा दिया होगा और मारा भी हो तो क्या ठिकाना। जो भी हो, ताड़ना या भय से उत्तेजना के कारण बेचारे की वाणी मारी गयी। वह गूँगा हो गया और सम्भवतः विक्षिप्त भी। तभी तो ऐसी बातें बकता था। पता नहीं कहाँ गया। उस दिन के पश्चात् तो वह मथुरा में दीखा नहीं।' असुर कंस

को कौन बताये कि नन्द के उस श्याम कुमार का किसी भी भाव से दर्शन, स्पर्श पाने वाला फिर मथुरा की इस असुर-मण्डली का सदस्य नहीं रह सकता ? श्रीधर की वाणी जिसने ली, उसने उसके हृदय के तमस् को भी हर लिया। वह हरि तो पापहारी पहिले से है। श्रीधर क्या अब भोगों की प्राप्ति के लिये नरेश की सेवा करने मथुरा में रहता ?

'ब्राह्मण की क्या शक्ति और क्या चतुराई ! लेकिन यह काग—यह तो परम चतुर और पराक्रमी है। इसे क्या हो गया ?' कंस की समझ में बात न आयी और न आने की है। कागासुर अपनी काकबुद्धि एवं पराक्रम के बलपर ही उसे आश्वासन देकर गया था गोकुल। कुछ क्षणों पश्चात् ही तो वह सिंहासन के सम्मुख फट से गिरा।

'पता नहीं क्या बात है—कागासुर कहता था कि उसने जैसे ही उस लड़के को देखा, अपने-आप बलात् खिंच गया उसके समीप और फिर तो उसने मुट्ठी से पंख पकड़ कर ऐसा फेंका···! भला, दो—ढाई महीने का शिशु और किसी काग को पकड़ कर फेंक देगा—लेकिन···। कंस संदिग्ध हो गया है। क्या पता कि बात ठीक ही हो। कितनी भयंकर बात है !

जो गोकुल जाता है, वह या तो लौटता नहीं या लौटा तो अद्‌भुत बन जाता है वह !' कंस को आश्चर्य अधिक हो रहा है भय की अपेक्षा। इतनी पीड़ा मिली, इतना अपमान हुआ और अङ्ग पीड़ा से कराहते भी कागासुर पता नहीं क्या उलटी-पलटी शिक्षा दे गया। 'मूर्ख कहीं का ! अब काकभुशुण्डि के आश्रम में उनकी शरण जायगा !' कंस स्वतः ही गुर्राया। कोई असुर यह मूर्खतापूर्ण बातें सोचे, यह तो कलङ्क है असुरकुल के लिये।

'उत्कच पराक्रमी है और है भी शूर ! उसे कोई देख भी नहीं सकता !' कंस की आशा को एक आधार तो मिल ही गया है। डूबते को कोई बड़ा-सा बुलबुला दीख जाय तो भी तो वह एक हाथ मारने का साहस कर ही लेता है। आज तो अलक्ष्य देह, वायु-शरीरी, महाशूर उत्कच गया है गोकुल और गया है कागासुर की भर्त्सना करके बड़े गर्व से सबके सम्मुख आश्वासन देकर।

'उत्कच वायु-शरीरी है—कितनी अच्छी बात है ! उसे कोई नहीं देख सकेगा और बस.......।' कंस मन-ही-मन अनेक स्वप्न-सौध बनाने लगा है।

चाक्षुष मन्वन्तर में उत्कच ने लोमश के आश्रम के बहुत-से वृक्ष उखाड़ डाले, तोड़ डाले तो उन्होंने शाप दे दिया कि 'तू ने उन्मद वायु के समान तपोवन का नाश किया, अतः वायु-शरीर हो जा !' भला, इस शाप से उसकी तो शक्ति ही बढ़ी। वह और उन्मद हो गया। आज वह कंस को आश्वस्त करके गोकुल गया है।

'उत्कच वायु-शरीरी है। उसकी गति अत्यन्त तीव्र है। अबतक तो उसे लौट आना चाहिये था।' कंस के मन की कुशङ्काएँ आवृत्ति करने लगी हैं; किंतु आशा बड़ी प्रबल होती है। वह प्रतीक्षा कर रहा है—बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है।

'उत्कच ! उत्कच ! उत्कच !' बार-बार पुकारता है कंस। पत्ते हिले, कुछ शब्द-सा हुआ और उसे लगता है कि उसका वायु-शरीरी मित्र आया। अदृष्ट के करों की लेखनी बड़ी कठोर है। कंस कैसे जानेगा कि उत्कच अब की बार लौटने के लिये नहीं गया। प्रतीक्षा चाहे जितनी प्रबल हो, मित्र का पराभव चाहे जितना अकल्पित और दुःखद हो; पर नन्दनन्दन के जो प्रतिकूल है, उसे तो सदा अपनी इच्छा, आशा और कल्पना के प्रतिकूल ही संवाद सुनने हैं।

× × × ×

श्याम अब दो महीने से अधिक का हो गया। वह पलने में अपने कोमल अरुण कर-पल्लव एवं पङ्कजचरण उछालता है, किलकता है और पलने में लगे क्रीड़ा-शुक, सारिकादि को देख-देखकर प्रफुल्ल होता है। वह क्या किलकारियाँ लेता सरकने का प्रयत्न कर रहा है ? इसे चाहे जितनी बार सिरहाने खिसकाओ; हिलते, सरकते पलने के पैताने से जा सटेगा। पैर तो उछालने ही हैं इसे और कहीं ये कुसुम-कोमल चरण पलने की मणि-मण्डित स्वर्ण-पट्टिका से लग जायँ......मैया को, गोपियों को, सेविकाओं को सदा सावधान रहना पड़ता है।

अच्छा—आज इसने अपने दाहिने हाथ से दाहिने चरण का अँगूठा पकड़ लिया है और उसे मुख में लेकर चूस रहा है। कज्जल को नेत्रों से इस चञ्चल ने कपोलों तक फैला दिया है और भाल का कज्जल-बिन्दु भी फैल गया है हाथ लगकर। दोनों हाथों के पृष्ठ पर कज्जल लगा है और देखने योग्य तो है यह अरुण मृदुल चरण की मध्यमा पर लगी काली कज्जल-रेखा। क्या विचित्र छटा है इस रेखा की भी। इस समय तो यह अँगूठा चूसने में मग्न है। इसे अभी यही तो आता है कि कुछ मुट्ठियों में आये तो झट उसे मुख में लेकर चूसा जाय।

'ये पतले नन्हे अधर, यह नेत्रों की स्थिर प्रसन्न भङ्गी और यह वक्ष की स्वर्णिम रोम-राजि-भ्रमरी!' गोपियों की दृष्टि जब भी इस रोमराजि पर जाती है, उन्हें बलात् हँसी आ जाती है। वे क्या जानें कि यह श्रीवत्स-लाञ्छन है। उन्हें तो स्मरण आता है कि उस दिन लाल को अङ्क में लेकर जब नन्दरानी दूध पिला रही थीं, उनकी दृष्टि इस रोमराजि पर पड़ी और वे अञ्चल से पोंछने का प्रयत्न करने लगीं इसे। कितनी सरला हैं व्रजेश्वरी! उन्होंने कहा था—'स्तनों से पता नहीं कब दूध की कुछ बूँदें टपक पड़ीं इसके वक्षपर और सूख गयीं। ये छूटती ही नहीं। तनिक तैल दो तो धीरे से इसे छुड़ा दूँ!' गोपियों ने परिहास में ही तैल-पात्र दिया और जब असफल व्रजेश्वरी ध्यान से इस रोमराजि को देखने लगीं तो कितना हँसी थीं वे। आज भी वह स्मृति इन्हें हँसा देती है।

'यह चपल—यह लो, पैर का अँगूठा मुख से छूट गया! अरे, यह तो रोने लगा! कितना मोहक, कितना मधुर है इसका रोना भी!' गोपियाँ उस रुदन का ही रस लेने लगीं। व्रजेश्वरी को पुकार देना चाहिये कि उनका हृदयधन दूध की प्यास लिये रो रहा है, यह भूल ही गया उन्हें। व्रजरानी तो आज बहुत व्यस्त हैं। रात्रिभर सभी जगी हैं। आज नन्दनन्दन का जन्म-नक्षत्र है। यह व्रजजीवन आज दो मास, दस दिन का हो गया और नाक्षत्र मास से तो पूरे तीन महीने हुए आज। व्रजराज स्वयं महर्षि शाण्डिल्य को बुलाने गये हैं। वे तो आते भी होंगे। व्रजेश्वरी को भला, श्रीरोहिणीजी आज क्या सहज अवकाश दे सकती हैं। उन्होंने स्वयं उपस्थित रहकर उनको विधि-पूर्वक स्नान करवाया है सेविकाओं द्वारा और अब अपने हाथों उनका शृङ्गार करने में लगी हैं। उन्हें किसी के द्वारा किया शृङ्गार आज रुचता जो नहीं है और जब वे व्रजरानी को सजाने लगी हैं, भला, शीघ्रता कैसे होगी।

'लाल ने करवट ली!' आनन्द से व्रजेश्वरी की छोटी देवरानी ललक उठीं। रोते-रोते यह अपने-आप आज पहिली बार दाहिनी करवट हो गया।

'बधाई! बधाई! लाल ने करवट ली है!' दासियाँ दौड़ीं हर्षोत्फुल्ल इधर-उधर।

'नीलमणि ने स्वयं दक्षिण करवट बदली!' व्रजेश्वरी ने सुना, माता रोहिणीने सुना और दोनों के सब शृङ्गार-साज पड़े रह गये। दोनों दौड़ीं। मैया ने ललककर पुत्र को उठाया! उसे चुम्बन किया और हृदय से लगा लिया।

'श्याम ने स्वतः उत्थान किया!' व्रजराज महर्षि को लिये आ रहे थे, दौड़ते सेवक ने मार्ग में सूचना दी।

'तब तो जन्म-नक्षत्र के साथ आज ही कुमार का औत्थानिक महोत्सव भी है!' महर्षि शाडिल्य के नित्यगम्भीर मुख पर स्मित आया और उन्होंने अपने आनन्दविह्वल यजमान की ओर देखा।

'श्रीचरणों के आशीर्वाद से ही यह जन कृतार्थ है!' कण्ठ गद्गद हो रहा है। अञ्जलि बाँधकर व्रजपति ने मस्तक झुकाया। भला, गोकुल में क्या महोत्सव के लिये आयोजन करना पड़ता है। यहाँ तो नित्य महोत्सव है और आज का औत्थानिक महोत्सव—भला, व्रजराज की स्वीकृति की उसे कहाँ अपेक्षा है। आज तो उत्सव को ही स्वयं जैसे सार्थक होना है। व्रजनवयुवराज का

औत्थानिक पर्व—श्रीनन्दराय के साथ तो समाचार घर-घर, जन-जन तक पहुँच चुका और पहुँच तो जाना है उसे कुछ घड़ियों में ही पूरे व्रज में। गोपों ने, गोपियों ने तो महोत्सव के उपहार सजाने प्रारम्भ कर दिये होंगे और कुछ समय में तो गोकुल से बाहर के गोष्ठों की मण्डली आने लगेगी।

× × × ×

"मैया, मैं ब्राह्मण हूँ न! ला, इसे मैं स्नान कराऊँगा।" यह भगवती पूर्णमासी का मूर्तिमान् आनन्द—यह मधुमङ्गल चाहे जब जो बन जायगा। आज तो वह महर्षि शाण्डिल्य के साथ मन्त्र-पाठ करने लगा है। 'हुँ—मैं अपनी दक्षिणा छोड़ दूँ क्या!' 'भगवती पूर्णमासी कहती हैं कि यह सदा इसी अवस्था में रहता है। पता नहीं कितने योगसिद्ध महापुरुष होते हैं।' ना, ना, मैया का वात्सल्य भला, मधुमङ्गल को योगसिद्ध कैसे मान ले। लेकिन है इसके बालकण्ठ का मन्त्रपाठ बड़ा ही श्रुति मधुर।

महर्षि ने सुकुमार श्याम अङ्ग में गोबर लगवाया व्रजेश्वर के करों से और मधुमङ्गल ने कपिला के पावनतम गोमूत्र का स्वर्णकलश उठा लिया—'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्!' मैया तो अवश्य मना कर देती—वह तो मना ही करने जा रही थी स्नेह से कि यह चपल कहीं कोई गड़बड़ी न करे; पर यह तो उसके साथ महर्षि और पूरा ऋषि-विप्र-मण्डल मन्त्रपाठ करने लगा स्वरसहित! तब अवश्य यह भी कोई विधि होगी।

तू झट-पट बड़ा हो जा और अपने-आप इस धूलि में लोट-पोट हो लिया कर इस दाऊ की भाँति! भला, दूसरे के द्वारा यह गोरज लगाना कहाँ तक भला लगेगा।' महर्षि तो गोमूत्र-स्निग्ध श्यामल अङ्गों को गोरज से स्वयं मण्डित कर रहे हैं और पता नहीं मधुमङ्गल यह क्या कह रहा है। यह तो अपनी ही धुन में रहता है और हाँ, दाऊ ने तो सचमुच पूरा स्नान कर लिया है गोरज से। मैया ने इसे स्नान कराया, तैल लगाया, अञ्जन किया आज अपने ही हाथों और भला, यह अब किसी की गोद में टिक सकता था। इसका छोटा भाई स्नान कर रहा है तो यह समीप बैठकर देखे भी नहीं। इसमें बड़ी बात क्या हुई जो पास रक्खी गोरज मुट्ठियों में भरकर इसने अपने ऊपर डाल ली और अब तो वह यह चला अपने अनुज को गोरज-स्नान कराने। महर्षि अन्ततः यही रज तो लगा रहे हैं। लो, उसने तो एक मुट्ठी डाल दी भाई के उदर पर और महर्षि की ओर देखकर हँसने भी लगा। भला, महर्षि इसे क्या रोकेंगे—वे तो हैं ही स्नेह की मूर्ति।

गोरज-मण्डित सुकुमार श्याम अङ्ग और उसपर यह पद्मगन्धा कपिला के उज्ज्वल धारोष्ण दूध की धारा। महर्षि शाण्डिल्य ने तो इस बृहत् स्वर्णपात्र में पाटल के मृदुल आस्तरण पर नन्दनन्दन को लिटाकर इस दुग्धाभिषेक के द्वारा जैसे सचमुच क्षीरसागर को ही मूर्तिमान् कर दिया। यह चञ्चल अपने लाल-लाल चरण उछालता इस दुग्धधारा को देखता कितना प्रसन्न हो रहा है।

'यह मार्गशीर्ष का मास—यह हेमन्त ऋतु—बहुत विलम्ब हो रहा है!' मैया को एक ही चिन्ता है। उसे लगता है कि उसके लाल को सर्दी लगती होगी; किन्तु महर्षि की विधि में कैसे बाधा दी जाय। यह तो अच्छा हुआ कि दूध से नहलाने के पश्चात् सुगन्धित उष्ण यमुना जल लिया गया और बाबा ने झट-पट स्नान कराके उपनन्दपत्नी की गोदमें दे दिया बालक को। उसके परम सुकुमार अङ्ग पोंछ दिये गये और गोद में वस्त्रों में छिपा लिया मैया ने उसे।

महर्षि तो देव-पूजन, मङ्गल-श्राद्ध तथा अन्य कृत्यों में कभी विलम्ब करते ही नहीं। पता नहीं कैसे सब काम सविधि करके भी वे इतनी शीघ्रता कर लेते हैं। मैया को लगता है कि अभी तो उसकी गोद में उसका लाल आया और अभी ही पुनः स्वस्तिवाचन है!

'ये परमतपस्वी, नित्यपवित्र, साक्षात् वेदस्वरूप विप्रगण—इनके मङ्गल आशीर्वाद कभी व्यर्थ जा ही नहीं सकते!' मैया के लिये यह तो परम आह्लाद की बात है कि ये तपोधन उसके पुत्र को आशीर्वाद देंगे।

श्री व्रजराज ने नीलमणि को अङ्क में लिया और महर्षि के साथ समस्त विप्रवर्ग ने सस्वर स्वस्ति-पाठ के साथ कुशों के अग्र-भाग से नन्हे सीकरों का अभिषिञ्चन प्रारम्भ किया।

अभिषेक समाप्त हुआ। नीलमणि माता की गोद में आया। वह क्षुधित तो होगा ही, मैया ने दूध पिलाना प्रारम्भ किया। लगता है कि इस स्नानादि में वह बहुत थक गया। माता के स्तनाग्र को मुख में लेते ही नेत्र बंद हो गये उसके, और दूध पीते-पीते ही वह तो सो भी गया।

आज पूरा नन्द-भवन कोलाहल-पूर्ण है। श्रीव्रजराज तो विप्रवर्ग के साथ बाहर चले गये और गोपों का स्वागत-सत्कार भी बाहर होगा ही; पर गोपियों का यूथ तो आता ही जा रहा है। आज नारायण ने यह परम सौभाग्य का अवसर प्रदान किया। सबका समुचित सत्कार होना चाहिये। आज तो मङ्गल-गान से भवन ध्वनित हो रहा है। भला, आज एकान्त कहाँ और बच्चे को तो कहीं ऐसे ही स्थान पर सुलाना चाहिये, जहाँ इसकी निद्रा भङ्ग न हो।

वह ऊँचा विशाल छकड़ा—आज ही तो इसे आँगन में लाया गया है। महोत्सव के लिये कक्ष पूरा रिक्त हो जाय, इस दृष्टि से कक्ष के दधि, दुग्ध, नवनीतादि के भाण्डों का एक बड़ा भाग इस पर रख दिया गया। कक्ष को खाली करने के लिये कितनी सुन्दर सूझ थी यह। मैया ने इधर-उधर देखा और उसकी दृष्टि छकड़े पर गई। 'यह खूब ऊँचा है! इसके नीचे पर्याप्त स्थान है और यहाँ एकान्त भी है। नीलमणि यहाँ सुखसे सो सकेगा!' छकड़े के धुरे में पलना लटकते कितनी देर लगनी थी। मैया ने धीरे से लिटाया श्याम को,दो-चार बार थपकियाँ दीं, तनिक देर धीरे-धीरे पलने को झुलाया।

'मैया, हम झुलायेंगे!' ये बालक तो श्याम के समीप ही सदा खेलते हैं। इन्हें तो दूर जाना जैसे कभी रुचता ही नहीं और ये भला, कभी नीलमणि को रुला सकते हैं। मैया को सम्मान्य गोपियों का सत्कार करना है। वह दूर से यहीं दृष्टि लगाये रहेगी। उसने समझा दिया कि पलना इतनी गति से अधिक न झुलाया जाय। सब बालक यहीं खेलें, कहीं भी चले न जायँ और जैसे ही नीलमणि उठे, उसे बुला लें।

'हम यहीं खेलेंगे और इसके उठते ही तुझे पुकारेंगे!' बालक तो चाहते हैं कि मैया किसी प्रकार जल्दी से चली जाय तो वे भली प्रकार अपने इस सोते नन्हे सखा को देखें और मैया चाहे या न चाहे, उसे यहाँ से तनिक हटना तो पड़ेगा ही। वे आ रही हैं गोपियाँ, वे तो इधर ही आ रही हैं गाती हुई बधाई देने। वे यहाँ आयीं तो उनकी गान-ध्वनि से यह जग जायगा। मैया स्वयं आगे बढ़कर इन गोपियों का स्वागत करे, यही तो उचित है!

× × × ×

'यह लो, यह तो जाग गया!' एक बालक ने देखा कि शकट के नीचे पलने में श्याम जग गया है! अब वह मजे से शकट की ओर देख-देख कर हाथ-पैर उछाल रहा है। कितना सुन्दर है इसका किलकना। बालक भूल ही गये हैं कि नन्दरानी से कहना भी है कि यह जाग गया है। वे तो सब एकत्र होकर देखने लगे हैं इसी की ओर।

'अच्छा, इसने तो पैर पकड़ लिया और अपना अँगूठा ही चूसने लगा है!' जैसे बालकों को स्वयं उस अँगूठे का रस प्राप्त हो रहा हो।

एक ओर बालक यह आनन्द ले रहे हैं और दूसरी ओर उत्कच अपने लिये अवसर ही नहीं पाता। यह महादैत्य—क्या हुआ जो वह वायुशरीरी है, वह पूतना-जैसा मूर्ख नहीं। वह देखते ही समझ गया है कि पलने में नन्दरानी ने जिस नील शिशु को शयन कराया है, वह कितना दुर्धर है। उत्कच जानता है कि इस बालक को स्पर्श करके असुरता टिक नहीं सकेगी।

'यहाँ छल भी क्या काम देगा।' पूतना ने ही क्या कम छल किया था। इस नन्हे बालक

के दीर्घ दृगों में जो अपूर्व ज्योति है—कैसे कोई माया टिक सकती है इस ज्योति के आलोक में। दैत्य समझ नहीं पाता कि वह क्या करे।

'यह शकट है तो खूब भारी। इस छकड़े पर पात्रों का भार भी पर्याप्त है। मैं इसे सहज ही अपने भार से दबा दूँगा। छकड़ा पिस उठेगा मेरे दबाते ही और...।' दैत्यने शकट में प्रवेश किया। वह उत्कच—शकटरूप शकटासुर हो गया।

'कितना सुन्दर है इसका रोना भी!' बालक तो बालक ही हैं। श्याम कब तक अपने अँगूठे को चूसे। इसे भूख लगी है। क्यों कोई उसे उठाकर दूध नहीं पिलाता? चरण छोड़ दिया इसने मुख से और रोने लगा। अपने हाथ-पैर उछाल-उछाल कर यह रो रहा है। इसके नन्हे अधर बार-बार आकुञ्चित होते और फैलते हैं। इसके विशाल कज्जलरञ्जित नेत्रों के कोनों में अश्रु आ गये हैं। इसकी यह रुदन-ध्वनि भी कितनी स्वरपूर्ण—श्रवणमधुर है! बालक तो इस ध्वनि को सुनने तथा इसकी चेष्टा को देखने में ही मग्न हो रहे हैं। मैया को कौन बुलाये। ये सब तो यह भी नहीं देखते कि छकड़ा बार बार कुछ 'चरमर-चरमर' कर रहा है।

'अब यह रोने लगा! अब कोई-न-कोई आयेगा और उठा लेगा इसे!' उत्कच—वही शकटासुर—उसे अब शीघ्र अपना कार्य पूर्ण कर देना है। नीचे यह रो रहा है मैया यशोदा का लाल। बहुत भूख लगी है इसे। यह पैर उछाल रहा है। कब तक प्रतीक्षा करे। क्यों छकड़े के नीचे मैया सुला गयी—इसे भी सम्भवतः इस छकड़े पर रोष है। इसे भी शीघ्रता है अपने काम की। छकड़ा कहता है 'चरमर चरमर......अरर धम् धड़ाम्!'

× × × ×

'क्या हुआ? क्या हुआ?' गोप द्वार पर से दौड़े नन्दभवन में।

'राक्षसी—कोई राक्षसी आयी! दौड़ो, पकड़ो! भाग न जाय श्याम को लेकर! ये गोपियाँ पता नहीं क्या चिल्लाती दौड़ी आ रही हैं! इन्हें लगता है कि फिर कोई राक्षसी आयी होगी।

'मेरा लाल!' मैया गोपियों के सत्कार में कुछ भूल गयी थीं। छकड़े की ओर से दृष्टि दूसरी ओर चली गयी थी। 'यह धमाका! यह भड़-भड़, यह भयंकर शब्द!' उसकी दृष्टि छकड़े पर गयी और दो पद भी कहाँ दौड़ सकी वह। वह तो घूम कर गिर पड़ी पृथ्वी पर और मूर्छित हो गयी।

'बालक बच गया! श्याम सकुशल है!' 'धन्य है यह गोपी! इसने तो जीवन-दान दिया सब को।'

'श्याम सकुशल है!' दौड़ते गोपों ने सुना, जैसे सुधा-धारा कानों में पहुँची।

घनश्याम सकुशल है! बाबा ने स्वयं दुहराया और मूर्छित होते होते चेतना लौट आयी। वे छकड़े तक पहुँच ही सके इस ध्वनि की शक्ति का सहारा पाकर। पुत्रको उठाकर उन्होंने ध्यान से देखा उसका अङ्ग-अङ्ग।

'यह रहा नीलमणि! सकुशल है यह!' माता रोहिणी ने लाकर व्रजरानी के अङ्क में रक्खा उसे। बाबा ने हृदय से लगा लिया है पुत्र को; किंतु यह तो रो रहा है—रोता जा रहा है। इसे तो मैया ही चुप करा सकती है। उपनन्दपत्नी की गोद से वह रोहिणी जी की गोद में आया और रोहिणीजी को तो मूर्छिता व्रजरानी को चेतना देनी है।

'नीलमणि सकुशल है?' व्रजेश्वरी को जैसे विश्वास ही नहीं होता अपने नेत्रों पर। वे तो गोद में लेकर उसके अङ्ग-अङ्ग देख लेना चाहती हैं। सभी ने तो यही किया है। 'इतना भयंकर शब्द—नीलमणि कितना डर गया है! कितना भयभीत लगता है!' वह डर गया है या नहीं, कौन जाने, पर उसे भूख लगी है। होगा वह किसी का विश्वम्भर—पर इस व्रज में तो वह मैया के स्तन-पान के लिये क्षुधातुर है। रो रहा है—कब से रो रहा है। इतना भयंकर अपशकुन हुआ! भला, स्वस्तिपाठ के बिना कैसे मैया दूध पिला दें।

महर्षि शाण्डिल्य द्विजवर्ग के साथ पधारे। उन्होंने स्वस्ति-वाचन किया। कुश के अग्रभाग से पवित्र ओषधियुक्त जलसीकरों द्वारा तपस्वी ब्राह्मणों ने अभिषिञ्चन किया और तब मन्त्रवेत्ता, तपोमूर्ति विप्रवर्ग के अमोघ आशीर्वाद से निश्चिन्त होकर मैया ने अञ्चल में छिपाया नीलमणि को स्तनपान कराने के लिये।

× × × ×

नन्दभवन के कोने में वह विशाल छकड़ा छिन्न-भिन्न पड़ा है। उसके चक्के धुरे, कूबर—सब पृथक्-पृथक् हो गये हैं। उसके ऊपर के पात्र चूर-चूर हो गये हैं। दधि, दूध, नवनीत, घृत, तैल आदि सब वस्तुएँ एकाकार होकर बह रही हैं आँगन में। छकड़ा पूरे वेग से ठीक उलटा होकर गिरा है। इतना बड़ा झटका लगा है कोई कि वह समस्त वस्तुओं के साथ उलट गया। उसके चक्के, धुरे अलग-अलग जा गिरे। भगवान् नारायण ने रक्षा की! पलना शकट के नीचे रज्जु छिन्न होने से धीरे से सीधे ही गिरा। कहीं वह भी उलटा···! ओह! यहीं बहुत-से बालक थे—पर छकड़ा तो सीधे उलटा है।

'इस प्रकार शकट कैसे उलट गया ?' बात तो पूरी ही शङ्का की है। इतना बड़ा लदा-लदाया छकड़ा तो दस-बीस गोप पूरा बल लगाकर भी उलट नहीं सकते। भार की अधिकता से तो वह किसी पार्श्व में ही ढुलक सकता था। यह तो जैसे किसी ने पीछे से पकड़ कर सीधे आगे उलटा फेंक दिया है।

'यहाँ तो केवल कुछ बालक थे!' बालक तो उस भयंकर शब्द को सुनते ही भय से भाग गये इधर-उधर; किंतु इतनी भयंकर दुर्घटना के कारण का तो पता लगाना ही चाहिये। 'कौन-से बालक थे यहाँ ? उनसे कुछ तो पता लगेगा।' बालकों का अन्वेषण हुआ और उन्हें भला, बताने में क्या संकोच।

'मैंने देखा है, यह रो रहा था! खूब रो रहा था। इसीने अपने पैर से—इस पैर से—मारकर छकड़ा उलट दिया।' बालक ने श्याम का लाल-लाल दाहिना चरण हाथ से पकड़कर बताया।

'हाँ, हाँ, इसीने छकड़ा उलटा! हमने भी तो देखा है!' अनेक लड़के यही कहते हैं। यह नन्हा-सा नीलमणि, आज ही यह स्वयं करवट ले सका है। इसका यह नवनीतसुकुमार किंशुक-अरुण चरण—ये सब बच्चे ही तो हैं! इनकी बातका ठिकाना क्या ?

'कहीं बच्चों से ऐसे अकाण्ड का पता लग सकता है ?' बच्चों से पता लगने से रहा। वे तो पूरे निश्चिन्त हैं कि इसी नन्हे नन्दलाल ने छकड़ा पैर से मारकर उलट दिया। बच्चों के अतिरिक्त यहाँ दूसरा कोई था नहीं, जिससे पूछा जाय।

× × × ×

उत्कच—शकटासुर—क्या हुआ उसका ? उसका होना क्या शेष रहा ? इस यशोदासुत के श्रीचरणों का स्पर्श प्राप्त करके फिर भी क्या कुछ शेष रहता है ? उसका शरीर—उसका शरीर था ही कब ? वह तो अदृश्य वायुशरीरी था और अदृश्य ही रह गया। अब भला, उसे इस मायिक जगत् में कहाँ दृश्य होना है। यह शकट—यह श्रीनन्दराय का छकड़ा अवश्य उलट गया। बर्तन तो फूट चुके। उनके टुकड़े तो फेंकने ही हैं और छकड़े को गोपों ने उठाकर फिर चक्र, धुरे यथास्थान बैठाकर लो! जैसे-का-तैसा कर दिया। रहा यह दूध-नवनीत-दधि आदि सो यह कपि, पक्षी आदि का समूह लग गया है—अभी वह इसका कण-कण सार्थक किये देता है।

—***—

नामकरण

"क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित्" ॥

—भागवत १० । ५१ । ३८

श्याम सौ दिन का हो गया। शास्त्रीय विधि तो यही है कि द्विजाति बालकों का नामकरण उनके जन्म से अधिक-से-अधिक सौ दिन के भीतर कर दिया जाय। आज यह अन्तिम दिन है; लेकिन गोकुल में, नन्दभवन में तो इसका कोई आयोजन ही नहीं। अभी भी श्रीरोहिणीतनय दाऊ नाम से पुकारे जाते हैं और नन्दनन्दन को लोग नीलमणि, श्याम आदि स्नेह के नामों से ही पुकारते हैं। नामकरण तो दोनों भाइयों का ही नहीं हुआ।

'नीलमणि परसों सौ दिन का हो जायगा........।' श्री रोहिणीजी ने व्रजरानी से कितने स्नेह से आग्रहभरे स्वर में कहा था। वे सम्भवतः कहना चाहती थीं—उनकी बात कहाँ पूरी हो पायी। व्रजेश्वरी ने तो इस भावभरी दृष्टि से देखा है कि अब कैसे कोई आग्रह करे। उनकी तो दृष्टि ही कहती है कि 'व्रजपति आपकी कोई सेवा भले न कर पायें; भला, अवमानना का कोई अपराध कैसे करेंगे। आप यह आग्रह तो न करें! व्रजपति ने कौन-सी ऐसी भूल की है कि दाऊ पराया माना जाय।' दाऊ को अङ्क में लेकर सचमुच मैया के नेत्र भर आये, अब माता रोहिणी को चर्चा बदलनी ही है।

'आज श्याम सौ दिन का हुआ! विधि पालन की जाती तो आज तो अवश्य उसका नामकरण होता!' प्रातः उठते ही बाबा के, माता रोहिणी के और मैया के मन में यही बात आयी। आयी तो यह बात समस्त व्रजवासियों के मन में। कितना उल्लास का समय—कैसा महोत्सव होता!' सब बाबा और मैया-जैसे तो नहीं कि बात मन में आयी-गयी हो जाय। सबको तो नामकरण-महोत्सव जैसे नेत्रों के सन्मुख ही लगता है। सब कंस को कोस रहे हैं। उसी के उत्पात से तो आजतक श्याम का नामकरणोत्सव रुका है।

× × × ×

बाबा यह गोष्ठ में क्या कर रहे हैं? गोपों ने तो गायें खोल दीं और उन्हें चराने ले गये। सेवकों ने गोष्ठ स्वच्छ कर लिया। अब तो यहाँ छोटे बछड़े और सद्यःप्रसूता गायें ही रही हैं। सेवक इनकी भी व्यवस्था करके गोष्ठ से चले गये हैं बाहर और व्रजराज क्या कर रहे हैं यहाँ? आज सम्भवतः रिक्त गोष्ठ की स्वच्छता और गायों की सुविधा का निरीक्षण करना है। अपनी पूजा से उठकर तभी तो आ गये हैं यहाँ।

'कौन है? यहाँ गोष्ठ में कौन आ रहा है?' गायें और बछड़े तो द्वार की ओर सहसा देखने लगे हैं। इनकी भङ्गी बतलाती है कि कोई आ रहा है। बाबा ने अपने पशुओं की भङ्गी देखी और द्वार की ओर मुख फेरा। 'ओह, महर्षि गर्ग!'

'यह वृष्णिवंशीय गोप पार्जन्य नन्द श्रीचरणों में प्रणत है!' बाबा ने भूमि में पड़कर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। आज यह गोष्ठ पावन हुआ! मेरे अनेक जन्म के सुकृत सफल हुए।' यह केवल शिष्टाचार नहीं। बाबा के नेत्रों से अश्रु झर रहे हैं और उनका शरीर गद्गद हो गया है।

'व्रजराज, कल्याण हो आपका! आप तो साक्षात् सुकृत की मूर्ति हैं! आपके पुण्यप्रभाव को कोई कैसे समझ सकता है!' महर्षि ने दोनों हाथों से उठाया व्रजपति को। महर्षि के चरणों

पर पुनः मस्तक रखकर बाबा उठे किसी प्रकार। महर्षि मथुरा से चलकर आये हैं, श्रान्त ज्ञात होते हैं। गोष्ठ में ही बाबा ने आसन पर अपना उत्तरीय बिछा दिया महर्षि के लिये।

'यदुकुल के आचार्य महर्षि गर्ग गोष्ठ में पधारे हैं!' गोष्ठरक्षक क्या इतनी सूचना भी माता रोहिणी को पहुँचाने में विलम्ब कर सकते हैं। इसके लिये व्रजेश की आज्ञा की आवश्यकता भी क्या है।

'आचार्य पधारे!' माता रोहिणी ने झटपट आसन छोड़ दिया। 'बहिन, तू भी नीलमणि को ले चल! आचार्य का क्या ठिकाना कि भवन में आवेंगे ही। वे परम विरक्त हैं। उनके श्रीचरणों की वन्दना का सौभाग्य मिलेगा और बालकों को आशीर्वाद देंगे आचार्य!' माता रोहिणी तो प्रेमवश ही यह सब कह गयी हैं। मैया तो नीलमणि को पहले आचार्य के चरणों में रखकर इसके लिये उनकी मङ्गल-आशिष् पाने को उत्सुक हैं। गोष्ठ में और किसी को चलना नहीं चाहिये। पता नहीं आचार्य व्रजपति के पास क्यों मथुरा से आये हैं।

× × × ×

'यह महाभाग वसुदेवजी का पुत्र है!' बाबा के क्या इस परिचय की आवश्यकता है। यदुकुलाचार्य महर्षि गर्ग क्या श्रीरोहिणीजी की अपार श्रद्धा से अपरिचित हैं! लेकिन बाबा ठीक ही तो कह रहे हैं! महर्षि आसन से उठ खड़े हुए हैं और उनके नेत्रों से धाराएँ चल रही हैं। वे तो एकटक मैया यशोदा की गोद की इस ज्योतिर्मय निधि को देख रहे हैं। देख रहे हैं केवल। उनका शरीर तो स्थिर हो गया है। बाबा को बड़ा आश्चर्य है कि महर्षि को क्या हो गया है।

'यह है श्रीचरणों के आशीर्वाद का आकाङ्क्षी गोपाल!' गोपाल—गोपाल—सचमुच ही तो यह गोपाल है। बाबा के अतिरिक्त इसका ठीक नामकरण कौन कर सकता है।

'गोपाल!' अपने चरणों पर उस नीलोज्ज्वल शिशु को मैया को रखते देख महर्षि कुछ सावधान हुए। उन्होंने देखा, उनके एक चरण को यह तडित्प्रभ गौर शिशु अपने कोमल करों से थपथपा रहा है, माता की गोद से नीचे बैठकर। पता नहीं वह कोई सूचना दे रहा है या नहीं; पर दूसरे चरण पर व्रजरानी ने अपने नीलमणि को रख दिया है और वह तो महर्षि की ओर ही मुख उठाकर हँस रहा है। महर्षि ने उठा लिया गोद में उसे। ओह, इतना आनन्द! यह स्पर्श! जैसे रोम-रोम में आनन्दसिन्धु लहराने लगा हो। शिशु को गोद में लिये ही महर्षि बैठ गये आसन पर।

'आज श्याम सौ दिन का हो गया! आज उसके नामकरण की अन्तिम तिथि है। ये यदुकुल के आचार्य पधारे हैं! यदि ये कृपा करें—दाऊ के साथ श्याम का भी नामकरण कर दें ये! भला, इतना महान् ज्योतिर्विद्, त्रिकालदर्शी महापुरुष कहाँ मिलेगा फिर इस संस्कार के लिये!' बाबा के मन में यह संकल्प सहसा उठा है और हलचल मची है। व्रजेश को क्या पता कि माता रोहिणी और मैया भी यही सोचने में तल्लीन हैं। बाबा कबतक अपने को रोके रहें। महर्षि तो नीलमणि को गोद में लेकर विभोर हो रहे हैं। यह ठीक कि बच्चों को वाणी से आशीर्वाद भी नहीं दिया उन्होंने; पर आशीर्वाद क्या वाणी से ही दिया जाता है। महर्षि की यह स्नेहपूर्ण भङ्गी—आशीर्वाद कहाँ शेष रहा है; लेकिन बाबा को केवल आशीर्वाद ही तो नहीं चाहिये। उन्होंने अञ्जलि बाँधकर महर्षि के चरणों में मस्तक झुकाया। महर्षि ने देखा—देखाभर! अब भी वे बोल नहीं सकेंगे; किंतु उनके नेत्र कहते हैं 'व्रजराज, आप क्या चाहते हैं? मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य कर सकता हूँ? आप क्यों संकोच करते हैं!'

'अभी तक इस रोहिणीकुमार का नामकरण संस्कार नहीं हुआ और आज ही गोपाल भी सौ दिन का हुआ है! यदि श्रीचरणों का अनुग्रह हो तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ!' बहुत ही नम्रता एवं आग्रहभरी वाणी में प्रार्थना की व्रजराज ने।

'क्या कह रहे हैं ये नन्दराय!' जैसे महर्षि को कुछ स्मरण आ गया हो—कोई भूली बात जैसे मन में सहसा आयी हो। एक क्षण में ही महर्षि ने मुख गम्भीर कर लिया। 'आपका यह

आग्रह कैसे उचित हो सकता है। आप अपने कुल-पुरोहित से अपने पुत्र का संस्कार करायें !' बात तो ठीक है। महर्षि शाण्डिल्य जब हैं ही तो दूसरे को उनका स्वत्व क्यों दिया जा रहा है ?

'ब्राह्मण तो जन्म से ही सबके गुरु होते हैं !' व्रजेश की वाणी में आग्रह, दीनता, विवशता—पता नहीं, क्या-क्या है। उनका यह स्वर सुनकर भी कोई उनकी बात न माने, कैसे हो सकता है यह।

'नन्दरायजी, मैं आपकी नम्रता और शालीनता से प्रसन्न हूँ। आपने अपनी सहज सरलता से ही नहीं कहा कि महर्षि शाण्डिल्य तो परम वीतराग हैं और नाम-करण कुलपुरोहित की अपेक्षा ज्योतिर्विद् की ही अधिक अपेक्षा करता है।' महर्षि की वाणी में तटस्थता के स्थान पर स्नेह आया। 'लेकिन सभी यह जानते हैं कि मैं यदुकुल का आचार्य हूँ। देववाणी ने देवकी के अष्टम गर्भ से कंस को मारनेवाले का जन्म बताया था और कंस ने वसुदेवजी की जिस लड़की को पटकना चाहा, उसने आकाश में स्थिर होकर कहा था कि 'तेरा शत्रु कहीं प्रकट हो गया।' कंस को संदेह है कि देवकी की आठवीं संतान कन्या नहीं होनी चाहिये। इधर संयोगवश आपके पुत्र के पास पहुँचकर पूतना-जैसी महाराक्षसी मर चुकी है। आपका अपने भाई वसुदेवजी से अत्यन्त प्रेम है, यह भी कंस जानता ही है। अब यदि आपके पुत्र का नाम-करण संस्कार करा दूँ तो कंस को लगेगा कि यह देवकी का पुत्र है। कहीं इस आशङ्का से वह इसे मारने ससैन्य गोकुल पर चढ़ाई कर दे—कितना बड़ा अनर्थ हो जायगा !'

महर्षि ने दाऊ के नाम-करण के सम्बन्ध में कुछ कहा ही नहीं। तब क्या दाऊ का नाम-करण वे स्वीकार कर लेंगे ? श्याम का नामकरण भी कर दें—अतीन्द्रिय ज्योतिर्विज्ञान के परमाचार्य—इनसे उपयुक्त महापुरुष कहाँ प्राप्त होगा जो इन शिशुओं के भविष्य को बता सके। बाबा दो क्षण चुप रहे, कुछ सोचते रहे और फिर बड़ी नम्रता से अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की उन्होंने—'मैं तो आपकी कृपा की ही याचना कर सकता हूँ ! आप—जैसे महापुरुष हम दीनचित्त कृपण गृहस्थों पर दया करने को ही बड़ा पुण्योदय होने पर यदा-कदा दर्शन देते हैं। आपके परमपावन करों से केवल स्वस्तिवाचन भी हो जाय तो मेरा और इन शिशुओं का सौभाग्य ! मेरे सगे भाई भी इस गोष्ठ में नहीं हैं। बिना किसी आयोजन के यहीं एकान्त में आप स्वस्तिपाठ के अनन्तर यदि इनका नाम-करण करके आशीर्वाद दे दें.......' मस्तक रख दिया व्रजेन्द्र ने आचार्य के चरणों पर।

भला, महर्षि गर्ग इस प्रार्थना को अस्वीकार कैसे कर दें। वे तो आये ही हैं श्रीवसुदेवजी की प्रार्थना स्वीकार करके इसी कार्य से। यह संस्कार एकान्त में हो जाय, इसीलिये तो उन्होंने यह पद्धति अपनायी है। अतः प्रार्थना तो स्वीकार करनी ही है। महर्षि ने सानन्द कह दिया—'आप की इच्छा पूर्ण हो !'

जब कोई आयोजन करना ही नहीं है तो कुश तथा जल प्राप्त होने में कितनी देर। आचार्य ने बड़ी ही एकाग्रता से स्वस्तिपाठ किया और तब दाऊ को अङ्क में उठाया उन्होंने—'यह श्रीरोहिणीजी का कुमार अपने सद्गुणों से समस्त सुहृदों को प्रसन्न करेगा। सबका हृदय इसके गुणों में ही रमण करेगा, अतः इसका नाम राम है। यह अत्यन्त बलशाली होगा, अतः इसे बल भी कहा जायगा और मथुरा तथा गोकुल के समस्त सुहृदों के हृदय अपने में ही आकृष्ट किये रहने के कारण यह संकर्षण कहलायेगा !' माता रोहिणी ने आचार्य के श्रीचरणों के सम्मुख अञ्चल फैलाकर भूमि में मस्तक रक्खा। आचार्य ने दाऊ को बाबा की गोद में दे दिया और नीलमणि को लिया अङ्क में।

'व्रजराज तुम धन्य हो !' नीलमणि को अङ्क में लेते ही पता नहीं क्यों महर्षि भाव-विह्वल हो जाते हैं। किसी प्रकार उन्होंने सम्हाला अपने को—'यह तुम्हारा लाल पहिले युगों में क्रमशः श्वेत, रक्त तथा पीत रूप धारण कर चुका है। इस बार यह यहाँ कृष्ण हुआ है। इस बार इसका नाम कृष्णचन्द्र है !' कृष्ण—कृष्णचन्द्र—कितनी मधुरिमा, कितना आनन्द, कितना अमृत-

धन है यह नाम! इन दो अक्षरों में कितना माधुर्य है! महर्षि तो इनके उच्चारण में ही भाव-विह्वल हो रहे हैं।

कृष्णचन्द्र—यह पहिले युगों में श्वेत, रक्त एवं पीत वर्ण धारण कर चुका है। पता नहीं महर्षि का तात्पर्य नर-नारायण, नृसिंह एवं वामन भगवान् से है या श्वेतद्वीपपति शशिवर्ण आदि नारायण, भगवान् ब्रह्मा एवं हिरण्मय विराट् से। बाबा भला, यह सब क्या जानें। हाँ, उनका यह लाल अब कृष्णचन्द्र है, यही ठीक।

'पहिले कभी तुम्हारा यह पुत्र देवकीजी की गोद में श्रीवसुदेवजी का पुत्र हो चुका है, अतः जाननेवाले लोग इसे वासुदेव भी कहेंगे!' पता नहीं महर्षि कब की बात कहते हैं। इन त्रिकालज्ञ के लिये तो सभी काल वर्तमान ही हैं। बाबा का वसुदेवजी से जो सौहार्द है, वह क्या इसी जन्म का है। यह तो सभी अनुभव करते हैं कि यह बन्धुत्व युग-युग से ऐसा ही है।

'तुम्हारे इस पुत्र के बहुत-से नाम हैं और बहुत-से रूप हैं; वे नाम और रूप इसके गुण एवं कर्मों के अनुरूप ही हैं। उन नाम और रूपों को मैं तो जानता हूँ, पर लोग नहीं जानते।' अवश्य महर्षि इसके पूर्वजन्मों की बातें कह रहे होंगे। नहीं तो भला, इसके अनेक रूप कैसे हो जायँगे? लेकिन महर्षि को इस समय यह ध्यान नहीं कि उनके किस वाक्य का कैसा अर्थ व्रजेन्द्र एवं मातायें समझ रही हैं! महर्षि के अर्धनिद्रित-से नेत्र श्याम के मुख पर स्थिर हैं और कहते जा रहे हैं वे अब तो नाम की बात छोड़कर वे इसके भावी गुणों और कार्यों का संकेत करने लगे हैं—'यह सम्पूर्ण गोप एवं गोवंश को आनन्दित करेगा। यह आपलोगों का परम कल्याण करेगा। इसके आश्रय से आपलोग सम्पूर्ण कठिनाइयों से—संसार से पार हो जायँगे। व्रजेश, पहिले से इसीके द्वारा दस्युओं से पीड़ित साधुजनों की रक्षा होती आयी है और यही गर्वोन्नत दस्युओं को जीतता रहा है। जो मनुष्य इससे प्रेम करेंगे, वे महा भाग्यवान् हैं। इसके आश्रितों को शत्रु वैसे ही नहीं दबा सकेंगे, जैसे भगवान् विष्णु के आश्रित देवगणों को असुर पराजित नहीं कर पाते! नन्दरायजी, आपका यह पुत्र श्री, कीर्ति तथा प्रभावादि समस्त गुणों में नारायण के समान है! आप इसकी खूब एकाग्रता से रक्षा करें!'

महर्षि ने जिस सांकेतिक परा वाणी का आश्रय लिया है—अन्ततः यह परतत्व—यह पुरुषोत्तम भी तो 'परोक्षप्रिय' है। इसका वर्णन क्या सामान्य वाणी कर भी सकती है? बाबा, माताएँ—भला, रहस्य, संकेत, श्लेष से क्या काम इन्हें। इनके ये राम और कृष्ण—हाँ, अब यह दाऊ तो राम हो गया और नीलमणि कृष्ण। ये बड़े प्रभावशाली होंगे, आपत्तियों से व्रज को बचायेंगे और कोई शत्रु इन्हें पराजित नहीं कर सकेगा—बस, बाबा को और माताओं को तो इतने से ही जीवन का परम फल प्राप्त हो गया।

'मेरा सर्वस्व—समस्त गोधन, गोकुल का सम्पूर्ण कोष......!' बाबा भला, क्या दें महर्षि को दक्षिणा में, वे कहाँ सोच पाते हैं।

'व्रजेन्द्र, मैंने आज क्या नहीं पाया!' महर्षि ने बोलने नहीं दिया पूरा वाक्य। 'यह स्थूल ऐश्वर्य—ब्राह्मण इसके लिये तो अकिंचन ही अच्छा और जो हमारी परम सम्पत्ति है, जन्म-जन्म, युग-युग की साधना से जिसे अर्जित करने की आशा भी प्रायः आशा ही रहती है...मैं पूर्ण हो गया! मुझे आज सब कुछ प्राप्त हो गया! नन्दरायजी! आपका स्नेह, आपका अनुराग पाया मैंने और आप के कुमारों का आचार्य बना मैं...।' आचार्य तो परम उदार हैं। वे सदा से ही नितान्त वीतराग एवं पराकाष्ठा के आत्मतुष्ट अपरिग्रही हैं। स्नेह ही उन्हें तुष्ट करता है। उनका इस प्रकार भाव-विह्वल होना स्वभाविक ही है।

आचार्य जानेके लिये उठ खड़े हुए। व्रजपति जानते हैं कि प्रेमाश्रु के अमल धवल पावन रत्नों के अतिरिक्त और कुछ इन श्रीचरणों में स्वीकृत होने की आशा नहीं और इन रत्नों के व्रजेश सदा से धनी हैं। धनी तो हैं वे अखिल ऐश्वर्य के और उस ऐश्वर्य के शाश्वत अधिपति के भी।

आचार्य जाना चाहते हैं—जाना चाहिये, इसलिये जाना चाहते हैं। भला, इस नन्दनन्दन के समीप से कोई क्या कभी स्वेच्छा से हटना चाहता है; परन्तु अधिक विलम्ब करने से लोगों को पता लग सकता है, बात फैलने से तो सब प्रयत्न ही व्यर्थ हो जायगा। किसी प्रकार महर्षि ने विदा ली। किसी प्रकार ही उनके पदों में शिशुओं को रखने के पश्चात्, प्रणिपात करके व्रजेश ने स्वीकार किया कि वे दूर तक पहुँचाने न जायँगे। महर्षि की आज्ञा—शिशुओं की कल्याण-भावना—किया क्या जाय, गोष्ठ-द्वार पर ही प्रणाम करने को विवश होना ही पड़ा।

× × × ×

राम—गोपों को, गोपियों को कितना प्रिय है यह नाम! माता रोहिणी ने कितना सुन्दर नाम चुन लिया है अपने कुमार का! कौन जाने व्रजरानी या व्रजेश ने चुना हो। राम—यह दाऊ सच-मुच राम ही तो है। इसे देखा और चित्त रमा इसमें और यह कृष्णचन्द्र—व्रजेन्द्र अपने पुत्र को श्याम के बदले स्नेहवश कृष्णचन्द्र कहते हैं तो अस्वाभाविक क्या है। चन्द्र—भला, चन्द्र किस तुलना में है इस कृष्ण के। कृष्णचन्द्र—लेकिन यह गोपियों के लिये है कुछ बड़ा-सा नाम—उन्होंने इसका एक संस्करण कर लिया छोटा सा—कन्हैया और अब कोई कनूँ ही कहे तो उसके अन्तर के अपार आह्लाद को रोक कौन लेगा। यह कनूँ तो है ही सबका। जिसके जो मन में आये, उसके लिये इसका वही नाम!

—❀—❀—❀—

भूमि का भाग्य

"लीलया ललितयावलम्बितं मूलगेहमिव मूर्तिसम्पदाम्।
नीलनीरदविकासविभ्रमं बालमेव वयमाश्रयामहे ॥"

—श्रीलीलाशुक

अरुणवितान-मण्डित पथ, अरुणपरिधान सेवक और ये शतपत्र पद्म की मालाएँ; हेमन्त में गोकुल का यह नवकुङ्कुम-मण्डित पथ, राग-रञ्जित दिशाएँ—आज श्याम कक्ष से बाहर प्राङ्गण में आयेगा। कन्हाई आज सूर्य-दर्शन करेगा। उसका यह चतुर्थ मास चल भी तो रहा है। उस दिन गोष्ठ में मैया उसे अञ्चल में छिपाकर ले गयी। गोपों को क्या पता कि उसी दिन महर्षि गर्ग का आशीर्वाद प्राप्त हुआ उसे और उसी दिन वह कक्ष से बाहर आया। आज भगवान् सूर्य की आराधना का दिवस है। आज रक्तचन्दन के मण्डलों से गृहद्वार और करवीर पुष्पों की मालाओं से स्तम्भ भूपित हो गये हैं।

नन्दनन्दन आज भगवान् आदित्य का दर्शन करेगा। दिशाएँ स्वच्छ, प्रसन्न हो गयी हैं। मन्द, मन्दतर सुरभित पवन के पद भी इस प्रेमभूमि पर थकित हो रहे हैं। इस हेमन्त में गोपों को लगता है कि आज कुछ अधिक शीत बढ़ गया है।

बाबा तो ब्राह्ममुहूर्त के प्रारम्भ में नित्य कालिन्दी-स्नान के अभ्यासी हैं। महर्षि शाण्डिल्य ने अरुणोदय-काल में ही पूजन प्रारम्भ करा दिया। श्याम आज सूर्य-दर्शन करेगा—वह बाल-रवि के कोमल करों को सहन करले, यही क्या कम है। कन्हाई क्या भास्कर की उज्ज्वल किरणों में आने योग्य है अभी ? यह हृदय के राग से लालित—दिनमणि की नवरागरञ्जित कोमल किरणें ही इसका स्पर्श पा लें—आज तो इतना ही बहुत है।

मैया ने आज अरुण कौशेय वस्त्र धारण किया है। उसके अङ्क में यह नील-सुन्दर—इसके कोमल अरुण चरण; इन चरणों की मृदुल ज्योतिर्मय अरुणाभा कोई कहाँ से पाये ! यह तो मैया का ही अङ्क-भूपण है। महर्षि शाण्डिल्य शीघ्रता कर रहे हैं। बाबा को तो और भी शीघ्रता है। गणपति-पूजनादि से लेकर नान्दी-श्राद्ध तक के समस्त कृत्य तो हो चुके। अब तो स्वस्तिपाठ तथा शङ्ख एवं घण्टे के तुमुल नाद के मध्य मैया अपने लाल को कक्ष से बाहर अङ्क में लेकर आयी है भगवान् भास्कर को अर्घ्य देने।

स्वर्ण के इस सुविस्तृत थाल में ये रक्तचन्दन से चित्रित कमलदल और उनके मध्य यह आदिबीज-मण्डित सूर्य-मण्डल। मैया तो व्रजेश के वाम भाग में बैठ गयी है भगवान् सूर्य की पूजा के लिये। कुङ्कुमरञ्जित अक्षत, रक्ताम्बर, अरुण सूत्र, रक्त चन्दन - आज की पूजा के उपकरण तो सभी लाल रङ्ग के हैं। यह सब तो हैं; पर यह कन्हाई तो इधर-उधर देख रहा है। यह तो चकित-सा चारों ओर देख रहा है। इसका किलकना, हाथ पैर फेंकना और यह देखना इधर-उधर—पता नहीं क्यों आनन्द-मग्न है। आज आँगन में आकर पूरा प्रसन्न है यह और गोकुल को तो आराधना का यह प्रत्यक्ष फल प्राप्त हो रहा है—नन्दनन्दन प्रसन्न है।

'एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते !'

उठी यह करवीर-कुसुम-पूरित, रक्तचन्दन-रञ्जित अर्घ्य की अञ्जलि; गूँजा महर्षि का मन्त्रपाठ और वह उठा क्षितिज पर भानुबिम्ब ! भगवान् भास्कर जैसे इस अंञ्जलि को स्वीकार करने आतुरतापूर्वक ऊपर उठते आ रहे हैं। मैया ने मस्तक झुकाया और अब तो श्याम को कक्ष में चले ही जाना चाहिये।

× × × ×

कन्हाई अब पलने पर लोट-पोट हो लेता है। अब यह पेट के बल उलट जाता है और चरणों को फेंक फेंक कर आस्तरण को अस्तव्यस्त कर दिया करता है। अब इसने पलने में खिसकना सीख लिया है इधर-से उधर उलट-पुलट कर और दोनों करों के सहारे तनिक-तनिक उचकने का प्रयत्न भी करने लगा है।

"नीलमणि बैठने लगेगा! यह घुटनों के सहारे धीरे-धीरे चलेगा! मेरी अँगुलियाँ पकड़ कर खड़ा हो जायगा! पता नहीं कब मेरा लाल ठुमक-ठुमुक कर चलेगा! कब यह अपनी तोतली बोली में मुझे 'मैया' कहेगा!" मैया पता नहीं क्या-क्या सोचती रहती है। इसके मनमें जाने कितनी उमंगें हैं। कान्ह का यह पाँचवाँ मास है। श्रीव्रजराज ने महर्षि से मुहूर्त पूछ लिया है। कल यह भूमि पर बैठेगा। कल इसे धरा का स्पर्श प्राप्त होगा।

कितना सुकुमार है! कितने मृदुल अङ्ग हैं इसके! करों में लेने के समय भी तो मैया अनेक बार ठिठक जाती है। अनेक बार यह रोता है मैया की गोद के लिये—कौन जाने क्षुधा लगने पर दूध के लिये रोता हो और मैया इसे उठाने को हाथ बढ़ाकर भी थकित-सी रह जाती है। कहीं इसे इन करों के स्पर्श से कष्ट न हो। इतना बड़ा व्रज, इतना अपार ऐश्वर्य व्रजराज का; किंतु मैया को संतोष नहीं हुआ अपने लाल के आस्तरण से कभी। कभी उसे ऐसा आस्तरण नहीं मिल सका, जिसपर संतुष्ट होकर वह श्याम को सुला सके। बार-बार करों से आस्तरण स्पर्श करके बदलना और फिर छूना—पता नहीं क्या व्रजराज कोई अच्छा-सा कोमल आस्तरण नहीं ला देते। सदा विवश होकर कन्हाई को इन्हीं आस्तरणों पर सुलाना पड़ता है। जिसकी म्रदिमा नवनीत को भी लज्जित करे, दुग्ध-फेन के स्पर्श में भी जिसके लिये कठोरता का ही अनुभव हो, जननी के उस अतुल मातृत्वसम्भार को क्या जगती उपयुक्त आस्तरण दे सकती है? कितनी बिडम्बना है—उसका वह लाल भूमि पर बैठेगा! भूमि का स्पर्श करेगा वह!

'कनूँ भूमि पर बैठेगा! इसके अङ्गों में शक्ति आयेगी! यह बैठने लगेगा! घुटनों सरकने लगेगा और······!' मैया के मानस की अद्भुत गति हो गयी है। वह प्रसन्न हो या भीत—दोनों भावों के अपार हिंडन चल रहे हैं वहाँ।

× × × ×

आज कन्हाई भूमि पर बैठेगा—वह व्रजधरा का स्पर्श करेगा! अभी तक तो वह अङ्क में और पलने में ही रहा है। आज भूमि के भाग्य जगेंगे—धरा धन्य होगी आज। श्यामसुन्दर का आज भूम्युपवेशन-संस्कार है। सम्भवतः भूमि भी इसे अनुभव करती है, समझती है। ये मणियों के नूतन प्रादुर्भाव—यह नैसर्गिक मण्डल, आज तो चारों ओर सर्वतोभद्र, स्वस्तिकादि पुण्य मण्डल ही दृष्टि पड़ते हैं। मणियों से ही नहीं, तृणों से, पुष्पों से, पत्रों एवं अङ्कुरों से—सर्वत्र मङ्गलमय सुचित्रित हो गयी है पृथ्वी। किसी अलक्ष्य चित्रकार की तूलिका घूम रही है—घूम रही है अविश्रान्त और गोकुल की धरा क्षण-क्षण नूतन सज्जा पाती जा रही है।

राजपथ, गलियाँ, प्राङ्गण—आज तो पूरा गोकुल श्रीयमुना के पावन जल एवं गोमय से उपलिप्त हो गया है और गोपियों ने इसमें शालिचूर्ण, हरिद्रा, कुङ्कुमादि से जिस कोमल कुसुमकला का अङ्कन किया है—किसकी तूलिका में साहस है कि इसकी छाया का भी स्पर्श कर सके।

गोपों ने तोरण बनाये हैं, बंदनवार सजाये गये हैं और मणिप्रदीपों के आलोक में ब्राह्म-मुहूर्त में ही जगमग करती, मल्लिका के मादक पराग से झूमती दिशायें, आज विकच कमल की मालाओं ने धरती को मण्डल प्रदान किये हैं। स्तम्भाधारों पर और धरणी—आज यह सामान्य मर्त्यधरा कहाँ है। धरा तो गोकुल के अवतरण से ही धन्य हो गयी और उसे आज गोपों ने जी भर सजाया है। आज गोपाल उसपर अपने नन्हे कोमल अरुण कर रखेगा।

× × × ×

कपिला का पुनीत गोमय, मैया ने स्वयं अपने करों से इस मण्डप को उपलिप्त किया है

और माता रोहिणी ने एकान्त मन से ये विविध रङ्गों के मण्डल चित्रित किये हैं। श्याम भूमिपर बैठेगा! कोमल-कलेवर कन्हाई को धरा का कठोर स्पर्श होगा! बालक रो पड़े इस पावन संस्कार के समय, यह तो ठीक नहीं है। वह नवनीत-कोमल—इन भड़कीले विचित्र मण्डलों में कदाचित् उसका चित्त लग जाय। कदाचित् वह उन्हें देखने में तनिक भूल जाय कष्ट को।

धरा का पूजन—भूदेवी क्या करें! वे कह पातीं, बाबा के श्रीचरणों का स्पर्श पाकर ही वे धन्य हो गयी हैं। उनकी प्रसन्नता के लिये क्या बाबा को पूजा की आवश्यकता है? बाबा की कोई सेवा हो सके—कौन है जो ऐसे सौभाग्य की कामना न करे। श्रुतियों की मर्यादा—कितनी निठुर है यह मर्यादा! बाबा पूजन करने जा रहे हैं और भूदेवी उनके श्रीचरणों पर मस्तक रखकर कह भी नहीं सकतीं—'क्षमा करें इस सेविका को!'

महर्षि शाण्डिल्य अपने पूरे मुनि-मण्डल के साथ आज पृथ्वीसूक्त का सस्वर पाठ कर रहे हैं! बाबा तो पूजन में लगे हैं। 'उनका लाल भूमि पर बैठेगा—उनका नवनीरज-कोमल कृष्ण! धरित्री उसे धारण करे! उसे ये सर्वसहा, धैर्यमयी परम कोमल होकर धारण करें! उसके लिये ये मङ्गलमयी हों!' उन्होंने सविधि अर्घ्य दिया और अब तो आचमन देकर पूजन में लग गये।

मैया क्या करे—ये महर्षि आज्ञा दे रहे हैं; ये शङ्ख, भेरी, दुन्दुभि, शृङ्ग—सब एक साथ गूँज रहे हैं। जय-जय की यह गगन को गुञ्जित करती अपार ध्वनि; पर मैया—मैया ने नीलमणि को उठाया दोनों हाथों से और उठाये ही है। कैसे वह इस कठोर भूमि पर अपने इस हृदय को बैठाये? उसके तो हाथ कम्पित होने लगे हैं। इस हेमन्त में भी उसके भाल पर स्वेद की बड़ी-बड़ी बूँदें चमकने लगी हैं।

'अच्छा—यह सब क्या है? यह रंग-बिरंगा क्या है सब?' श्याम तो दोनों पैर नचाने लगा है। दोनों कर नीचे करके वह पूरा लटक गया है। वह भूमि पर बैठेगा! लेगा यह विचित्र रङ्गीन अद्भुत वस्तुएँ! अब तो मैया को उसे बैठाना ही पड़ेगा।

'श्रीव्रजराजकुमार की जय!' गगन गूँजा और लो श्याम तो बैठ गया। दोनों चरण अर्धकुञ्चित करके, दोनों करतल भूमि पर टेककर यह क्या बैठ गया है कनूँ। मैया ने अपने दोनों कर तनिक हटा लिये हैं। आज प्रथम भूमिपर बैठाया गया और बैठ गया। यह तो सम्मुख के कुङ्कुम से बने पुष्प को देख रहा है। देख रहा है—कैसे उठाये, कैसे ले! अभी तो दोनों कर भूमि पर रहें, तभी यह अपने को सम्हाले रह सकता है।

यह हूँ हाँ और मैया की ओर देखने के प्रयत्न में तो उसके हाथों पर लुढ़क ही गया। ये दो क्षण—दो ही क्षण तो बैठा रहा है यह। इसके लिये ये दो क्षण क्या कम हैं? मैया देखने लगी है कर, पद और नितम्ब इसके। इतनी ही देर में कितने लाल हो गये शिशु के अङ्ग! यह तो अभी उसी ओर झुका है। उधर ही हाथ फेंक रहा है। कोई नहीं सुनता, कोई नहीं समझता। यह सम्भवतः उस कुङ्कुमपद्म को पाने के ही प्रयास में है। मैया की दृष्टि इसके अङ्गों पर है और बाबा की दृष्टि—बाष्प-पूरित बाबा की दृष्टि भी सम्भवतः यह तनिक अरुणाभ श्याम अङ्ग ही देखने में लगी है।

'बालक को अब और प्राङ्गण में नहीं रखना चाहिये!' महर्षि शाण्डिल्य भी इस नन्हे चञ्चल को देखने में लगे हैं। उपनन्दजी की बात ही उन्हें कहनी है। अब तो कक्ष में मातृ-पूजन, गुड़-घृत से वसोर्धारापात करके नीराजन करना है।

कन्हाई कक्ष में आया। महर्षि ने समस्त विप्रवर्ग के साथ अभिषिक्त किया उसे नन्हे सीकरों से। श्याम के विशाल भाल पर आज महर्षि ने कुङ्कुम-तिलक करके अक्षत लगा दिये और उसके दक्षिण कर में रक्षासूत्र बाँध दिया। यह रक्षासूत्र—जो जगती की रक्षा के लिये ही आया है, उसकी रक्षा वात्सल्य के ये रागारुण सूत्र ही तो कर सकते हैं! बाबा को अभी महर्षि की अर्चा करनी है। विप्रों की सविधि पूजा के पश्चात् गोपों को सत्कृत करना है और कन्हाई तो भूखा है। मैया उसे दूध पिलाने लगी है। इतनी देर हुई—वह अब दूध पियेगा और फिर सो जायगा अपनी बड़ी पलकें मूँदकर।

—※—※—※—

व्रजराज के प्राङ्गण में

"आकुञ्चितं जानु करं च वामं न्यस्य क्षितौ दक्षिणहस्तपद्मे ।
आलोकयन्तं नवनीतखण्डं बालं भजे कृष्णमुपानताङ्गम् ॥"

—श्रीलीलाशुक

श्याम अब बैठने लगा है। मैया जब उसे बैठा देती है भूमिपर सुकोमल आस्तरण के ऊपर, अपने दोनों चरण आधे आकुञ्चित करके, दोनों करतल भूमि पर रखकर वह कुछ क्षण बैठा रहता है।

मैया का स्नेह—उनका उल्लास बढ़ता जाता है और बढ़ते जाते हैं उसके वात्सल्य के प्रियपात्र। वह तो मैया है न, उसके स्नेह की भी कोई सीमा है। उसकी गोद में कितना स्थान है, इसकी भी कोई इयत्ता है। यह सुबल, यह मणिभद्र, यह वरूथप—ये सब उसके नीलमणि के चिर सहचर—मैया के लिये तो जैसे सभी कन्हाई ही हैं। गोपियों का मन घर में लगता नहीं। कृष्ण-चन्द्र के चन्द्रानन को देखे बिना चैन नहीं पड़ता और गृह के कार्य उन्हें कुछ देर लगा भी दें घरों में तो ये अङ्क के शिशु कहाँ मानते हैं। ये तो रो-रोकर नेत्र लाल कर लेंगे, हिचकियाँ बँध जायँगी इन्हें। घर पर दूध तो माता का ये रात्रि को निद्रा की अलस जागृति में ही पीते हैं; नहीं तो इनका रुदन तो तब बंद होता है, जब माताएँ इन्हें लेकर नन्द-भवन पहुँचती हैं। श्रीनन्दरानी—व्रजेश्वरी, वे भी इनका मार्ग ही जैसे देखती रहती हों। किसी को नित्य की अपेक्षा कुछ देर हुई और कारण पूछा उन्होंने। शिशु तो वहाँ पहुँचते ही रोना-धोना भूल जाते हैं। ये सब पास-पास पेट के बल लेटकर, बैठकर पता नहीं क्या संकेत करते हैं अपने चपल कोमल करों एवं चरणों को उछालते हुए और किलकते रहते हैं दिन भर।

यह भद्र—बस, यही सबसे भिन्न है। मैया अनेक बार कहती है अपनी देवरानी से—'तू भद्र को अब यहीं रहने दिया कर! मैंने दो दाऊ पा लिये!' बात तो ठीक है, जब रात्रि में जगने पर भी यह रोते-रोते हिचकियाँ लेने लगता है, तब उसी समय पहुँचाना पड़ता है। मैया की गोद में आये बिना यह चुप होगा नहीं। सायंकाल सो जाने पर ही तो माता इसे घर ले जा पाती हैं।

'मैं तो तुम्हारे इस पुत्र की धाय हूँ। तनिक बैठने लगे तो तुम्हें इसे भी सम्हालना ही पड़ेगा!' भद्र की माता तो इसी में उल्लसित है कि उसका पुत्र सचमुच दाऊ-जैसा ही है वर्ण में, आकृति में और अभी से यह दाऊ इस प्रकार उसे दिन भर प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहता है, जैसे यह उसका सगा भाई हो। इसे छोड़ना तो पड़ेगा ही मैया के अङ्क में। जब अभी से इसकी यह दशा है, तब भला, आगे यह घर रहेगा? पर अभी—अभी यह है ही कितने दिनों का।

× × × ×

'आज कन्हाई स्वयं बैठ गया है उठकर!' गोकुल में तो उत्सवों की सदा धूम रहती है। आज—आज तो मैया को, बाबा को, गोपों को, सभी को परम आनन्द है। आज श्याम स्वयं बैठ गया है।

महर्षि शाण्डिल्य आयेंगे, द्विजवृन्द आयेगा, स्वस्तिपाठ, हवन, पूजन, मङ्गल-श्राद्ध, सभी की प्रस्तुति होने लगी हैं। गोप इधर-से-उधर दौड़ रहे हैं सामग्री प्रस्तुत करने में और गोपियाँ आनन्दमग्न मङ्गल-थाल सजाये गाती हुई झुंड-की-झुंड नन्दभवन में आ रही हैं।

यह बैठा है श्याम—आज ही तो यह पहिली बार उठकर स्वयं बैठ गया है। यह दाऊ बैठा है, अपने अनुज के समीप। यह लेटा किलकता है भद्र और यह रही सुबल, वरूथप, मणिभद्र आदि की मण्डली। अच्छा, यह कनूँ कुछ देख रहा है—कुछ पकड़ना चाहता है। यह अपने मुख के प्रतिबिम्ब को ही इस रत्न-भूमि में पकड़ने के प्रयत्न में है और बार-बार भाई की ओर इस प्रकार देख रहा है, जैसे कहता हो—'दादा, यह कौन है ? तू इसको पकड़ तो ! मेरे हाथ तो यह आता नहीं !' अरे, यह तो रोने लगा। भला, यह भी कोई बात है कि यह एक प्रतिबिम्ब को पकड़ना चाहे और वह हाथ न आये। अब तो रोयेगा ही।

× × × ×

कन्हाई घुटनों चलने लगा है। दोनों हाथों और घुटनों के सहारे यह चञ्चल अब सरकने लगा है। मैया प्रोत्साहित करती है, तनिक दूर जाता है और फिर भूमिपर ही लेट जाता है पेट के बल। इसके मृणाल-कोमल बाहु थक जाते हैं। वहीं भूमि पर मस्तक रखकर पीछे देखता है मैया की ओर, हँसता है, किलकता है और फिर आगे दौड़ने का प्रयत्न करता है। यह धूलि-धूसर वक्ष, उदर, जानु और कपोल—इसने तो दोनों ओर की अलकें भी धूसरित कर ली हैं। कटि की रत्न-किङ्किणी, करों के कङ्कण, चरणों के नूपुर रुन-झुन करता यह क्या चलने के प्रयत्न में लगा है।

दाऊ अपने छोटे भाई को लो ! उठाने लगा दोनों हाथों। यह उसे थकने पर सहायता देने आ गया है। यह भद्र—यह तो अभी कठिनता से ही कुछ खिसक पाता है और यह तोक—यह तो सबसे छोटा ठहरा, यह अभी पड़े-पड़े ही किलकेगा। भद्र और तोक—यदि भद्र दाऊ की ठीक प्रतिकृति है तो तोक यदि श्याम से छोटा न होता—अवश्य लोग पहिचानने के लिये कन्हाई के वक्ष की इस स्वर्णिम रोमराजि का ही सहारा पाते। तोक के यह रोमराजि ही तो नहीं ! ये सुबल, वरूथप, मणिभद्र—ये सब भी तो समवयस्क ही हैं श्याम के। कन्हाई तो इनके साथ घुटनों चलने के लिये प्रोत्साहित ही होता है।

यह मैया प्रोत्साहित कर रही है। आनन्द-मुग्ध देख रही है। कन्हैया बार-बार कुछ बढ़कर फिर लेट जाता है और बढ़ता है। बढ़ता है और बैठ जाता है। अच्छा—अब यह क्या करने लगा है ? यह तो कुछ पकड़ना चाहता है। यह जो रत्नभूमि पर काली नन्ही पिपीलिका उसीके सम्मुख इधर-से-उधर भाग रही है, उसी को पकड़ने चला है यह। लो—इस चींटी को पकड़ने की धुन में लेटने के बदले बैठ गया ! भला, कहीं मुट्ठी से यह क्षुद्र चञ्चल चींटी पकड़ी जा सकती है। अच्छा, अब अङ्गुलियों से पकड़ेगा। पिपीलिका पकड़ी जाय, इतनी क्या अङ्गुलियाँ जमती हैं इसकी। अब इसने बड़े भाई की ओर देखा। भला, दाऊ कहाँ समझता है कि श्याम उसे इस नन्ही चींटी को पकड़ने के लिये कहता है। लेकिन वह तो अपनी हूँ हाँ में संकेत किये जा रहा है—'भैया, मेरे हाथ तो यह आती नहीं, तू पकड़ तो सही !' भैया नहीं सुनता, तो लो—अब यह पूरी हथेली से पकड़ेगा। 'जा, अब कहाँ जायगी !' अरे, चींटी क्या हुई ? श्याम ने हथेली उठाकर भूमि देखी और अब तो वह जैसे कुछ डर गया हो—भला, यह भी कोई बात है—यह काली वस्तु उसकी हथेली पर ही दौड़ने लगी है। वह दाऊ को हथेली दिखा रहा है, बैठे-बैठे ही अब हथेली उठाये मैया की ओर खिसकने लगा है भरसक तीव्रता से और हूँ, हाँ करता जा रहा है कि इसे उसके हाथ से कोई हटाये तो सही ?

× × × ×

'कृष्ण !' अरे, यह कौन—यह कौन आयी ? कन्हैया यह खिलखिलाता घुटनों और करों के सहारे भागा—यह भागा मैया की ओर ! मैया ने दोनों हाथ बढ़ाकर ले लिया अङ्क में उसे और अब तो यह भली प्रकार मैया के कण्ठ से लग गया है। छिप जाने का यह प्रयत्न, बार-बार मुख घुमाकर तनिक-तनिक देखना और खिल-खिलाकर, दोनों पैर हिलाकर मैया के कण्ठ से पुनः सट जाना—गोपी तो ठगी-सी खड़ी है यह अनुपम छटा देखती। कन्हाई उसकी ओर देखता है और वह दोनों हाथ बढ़ाती है अङ्क में लेने के लिये, यह किलककर मुख फेर लेता है !

श्याम अभी भी देहली पार नहीं कर पाता। मैया प्रोत्साहित करती है। दाऊ तो बार-बार उठाने का ही प्रयत्न करता है। अच्छा—आज यह उड़ते पक्षियों की छाया पकड़ने चला है। छाया हाथ आये या न आये, इससे कुछ मतलब नहीं; यह तो उसके पीछे भाग रहा है। बार-बार उस पर कर रखने का प्रयत्न कर रहा है। अच्छा—इस छाया के पीछे सरकते, चलते तो आज देहली पार कर ली इसने! क्या हुआ जो देहली के समीप बैठकर, उस पर लेटकर हाथों के सहारे बहुत सम्हल कर पार कर सका।

कन्हाई को जल बड़ा प्रिय है। कहीं एक बिन्दु भी जल दीख जाय तो यह उसे अपने कोमल हाथों से फैलाता रहेगा बैठकर। आज तो लो! इसने आँगन में एक पात्र लुढ़का दिया जल का और अब तो दोनों भाई उसमें हाथ, पैर उछालकर आनन्द मना रहे हैं। दाऊ अपने छोटे भाई के कन्धों पर गीले करों से कुछ कर रहा है और श्याम बड़े भाई के उदर को तनिक आर्द्र बनाने में लगा है। दोनों फैले जल में कैसे निश्चिन्त बैठे हैं! माता रोहिणी आ रही हैं—और ये हँसते, किलकते दोनों दूसरी ओर भाग जाने के प्रयत्न में हैं। यह भद्र भी आया—यह मैया के समीप से इधर न आता तो कदाचित् मैया कुछ क्षण और इधर न आती।

बड़ी कठिनाई है—मैया और माता रोहिणी दिन-भर इन बालकों को सम्हालने में व्यस्त रहती हैं। ये सब-के-सब बड़े चञ्चल हैं। दासियों पर तो क्या, दूसरी गोपियों पर भी कैसे इन्हें छोड़ा जा सकता है। यह कन्हाई तो गोद में से खिसक जाता है। सायंकाल मङ्गलप्रदीप जला और यह बराबर उसे पकड़ने की ही घात में रहता है। लाल-लाल दीप-शिखा—इसे लगता होगा कि यह भी कोई मुख में दे लेने की मीठी-सी वस्तु है। जो मिले मुख में! दीपक के लिये, आहवनीय कुण्ड की अग्नि के लिये, भोजनालय में दहकते अङ्गारों के लिये—पता नहीं कहाँ ये चपल लाल-लाल अग्नि पकड़ने दौड़ पड़ेंगे। बार-बार इन्हें पकड़ना पड़ता है।

ये मयूर, काक, कपोत, शुक, हंस—पता नहीं इनमें से कौन कब चञ्चु चला दे। ये कोई पाले हुए पक्षी हैं? पाले हुए पक्षी का भी क्या विश्वास। ये चञ्चल शिशु—पक्षी भी तो इनसे खेलने में ही लगे रहते हैं। कन्हाई कक्ष से आँगन में आया और पक्षियों की भीड़ लगी। मयूर तो थन-गन नाचते कक्षतक में चले आते हैं। ये बालक पक्षियों को दोनों हाथों में पकड़ लेते हैं। इन्हें क्या पता कि कहाँ पकड़ना चाहिये। कहीं नख लग जाय। कहीं पक्षी फड़-फड़ा उठे और पंख लग जायँ....!' मैया कितनी भी सावधान रहे, उसका कन्हाई तो रोकने से रुकता नहीं और आँगन में पड़े दाने को पाकर पक्षी श्याम के समीप न आयें, यह होने से रहा।

पक्षियों तक ही बात हो तब तो—पता नहीं क्या बात है, ये कपि पीछा ही नहीं छोड़ते। 'कान्ह दीखा और ये आये उसके समीप। मैया को बड़ा भय लगता है। कन्हाई कपियों के कान पकड़कर किलकता है; भद्र उनके कण्ठ में दोनों बाहु लपेट लेता है, दाऊ उन्हें पूँछ पकड़कर उठाता है—बच्चों का क्या ठिकाना और चञ्चल कपि....। मैया कोई काम नहीं कर पाती और माता रोहिणी भी इन शिशुओं के निरीक्षण में ही लगी रहती हैं।

गोपों को कितना भी कह दिया जाय, वे कहाँ इतनी सावधानी रख पाते हैं। यह भी कोई बात है कि ये वनमृग भवन में बार-बार दौड़े चले आते हैं! मैया ही कहाँ मृगों को भगा पाती है। सेविकाएँ लकुट उठाती हैं तो ये उस लकुट को ही सूँघ लेने का प्रयत्न करने लगते हैं। बड़े सीधे—बड़े भोले हैं सब; पर अन्ततः मृग ही हैं न। इनके शृङ्ग बड़े तीक्ष्ण हैं। ये आनन्दमग्न होकर कूदना ही जानते हैं। ये बालक इनके शृङ्ग पकड़ लेते हैं, जब मृग उन्हें सूँघने लगते हैं। कान्ह इनके कान पकड़कर खड़ा हो जाता है। कितने भय की बात है!

द्वार बंद करके मृगों को भले वारित कर दिया जाय, ये काली, उज्ज्वल, स्वर्णिम बिल्लियाँ—ये तो म्याऊँ-म्याऊँ करते घेरे ही रहेंगी। श्याम बड़ा प्रसन्न होता है इन्हें दोनों करों से पकड़कर। वह इनसे खेलता ही रहता है। दाऊ, भद्र, सभी बालक इन्हें नवनीत खिलाते हैं अपने करों का।

मैया को भला कैसे संतोष हो कि बिल्लियाँ नख छिपाये ही रहती हैं। वह इन्हें भगा दे तो बच्चे मचलेंगे। ये भागने भी कहाँ लगी हैं; पर जब कान्ह इनके मुख में अङ्गुलियाँ डालकर किलकने लगता है···मैया व्यग्र हो उठती है।

× × × ×

ये बालक बड़े चञ्चल हैं। इन्हें जैसा नवनीत, वैसी सुई और वैसी ही छुरिका या तलवार! जो हाथ में आ जाय, उसीसे खेलने लगेंगे। यह श्याम बड़ा चपल हो गया है। यह इधर-से-उधर, इस कक्ष से उस कक्ष में घुटनों के बल भागता ही रहता है। अब यह द्वार भी बैठकर पार कर लेता है। कोई पुकारे, कोई रोके तो इसकी छटा देखने योग्य होती है। बार-बार अपनी घुँघराली काली अलकों से घिरा चन्द्रमुख पीछे घुमाकर देखेगा और हँसता हुआ भागेगा। ये सभी बालक एक-से हैं। पाकगृह में, आँगन में, किसी कक्ष में—पता नहीं, कब कहाँ चले जायँ ये। मैया इनके पीछे ही लगी रहती है। सेवक भला, क्यों इस प्रकार पात्र छोड़ते हैं; सेविकाएँ क्यों छुरिका भूमि पर रखती हैं। मैया शिशुओं का साथ एक क्षण को भी कहाँ छोड़ती है।

कन्हाई का क्या ठिकाना, वह उस दिन पाकशाला में घुस गया अपने सखाओं के साथ। सेविका क्या करे, उसने यह किलकता मुख देखा और देखती रह गयी। कुशल हुई कि मैया ने दौड़ कर सब को आगे से रोका। सिंघाड़े छीले जा रहे थे; सम्भवतः उज्ज्वल सिंघाड़ों ने श्याम को आकर्षित किया होगा। ये छिलके इनके तीक्ष्ण कण्टक; पर यहाँ तो ये सब कोई-न-कोई आशङ्का-स्थल उपस्थित किये ही रहते हैं।

'कनूँ! श्याम! अरे कहाँ गये सब?' अभी तो सब सम्मुख ही खेल रहे थे। मैया ने कन्हाई के लिये उफनता दूध उतारा और इतने में उसका नीलमणि सखाओं के साथ द्वार से बाहर हो गया।

'अच्छा!' मैया का तो हृदय ही धक् से हो गया। यह श्याम अपने झबरे कुक्कुर के मुख में हाथ दिये है, यह भद्र उसके कान खींच रहा है और यह दाऊ तो बैठे श्वान की पीठ पर ही बैठने के प्रयत्न में है। श्याम तो मैया को देखकर किलककर दूसरी ओर भागा। यह ठीक कि यह पशु बड़ा सरल है, अत्यन्त स्वामि-भक्त और चतुर है, भय की कोई बात नहीं; परन्तु इसके तीक्ष्ण नख, कठोर दाँत—मैया ने दौड़कर कन्हाई को पकड़ा। किसी प्रकार सब को ले आयी आँगन में।

× × × ×

कृष्णचन्द्र को छोड़कर कहीं भी जाया नहीं जा सकता। सायंकाल गोष्ठ में घृत-दीप रखकर गोमाता के चरणों में प्रणिपात करने का तो सनातन नियम है। राम-श्याम-भद्र, इन बालकों के लिये भी आवश्यक है कि नित्य इनके अङ्गों पर सायंकाल सकल अमङ्गल-वारक गोपुच्छ घूमे, इनके भाल पर मङ्गलमय गोरज लगे और गायों के पावन चरणों में ये प्रणत हों। श्याम ने पहिले ही दिन मैया के कहते ही गोमाता के पदों के समीप भूमि में मस्तक टिका दिया था। वह तो जैसे सदा से यह प्रणाम करता आया हो। घुँघराली अलकें गोरज से भर जाती हैं, भाल उस पावन धूलि से अलंकृत हो जाता है और नासिका का अग्रभाग एवं भृकुटियाँ तो धूसरित होकर अद्भुत शोभा देने लगती हैं। अपनी धूलिभरी लाल-लाल हथेलियों को वह फिर अपने या भद्र के मुख, वक्ष, उदर पर ही पोंछता है।

ये अपार गायें—मैया को समय तो लगना ही है। प्रत्येक पंक्ति के सम्मुख भी कहाँ मस्तक भूमि में रख पाती है वह। माता रोहिणी भी साथ ही आती हैं। दोनों मातायें भी इन शिशुओं को सम्हाल लें तो बहुत है। गायें इन्हें देखते ही हुंकार करने लगती हैं। चञ्चल बछड़े इनके समीप भाग आते हैं और इन्हें सूँघ-सूँघकर कूदने लगते हैं। ये भी हँसते हैं, किलकते हैं, तालियाँ बजाते हैं। यह सब तो ठीक—पर तनिक दृष्टि हटी और ये गायों के मध्य पहुँचे! दाऊ को रुचता है धर्म—वह इस उच्च बछड़े के नवीन शृङ्गों को ही पकड़कर झूलना पसंद करता है।

श्याम और भद्र—ये दोनों ही क्या कम हैं, ये दोनों हाथों से किसी बछड़े या गौ का मुख पकड़ने का प्रयत्न करने लगेंगे। 'गायों के, वृषभों के तीक्ष्ण शृङ्ग हैं; वे इधर-उधर हटें और कहीं तनिक धक्का ही लग जाय! बछड़े तो पास ही कूदते हैं''गायें तो नहीं चाटतीं; पर बछड़े—कहीं वे स्वभाववश चाटने को मन कर लें—कितनी खुरदरी जिह्वाएँ हैं उनकी और ये कुसुमसुकुमार'''!'

मैया बराबर इन्हीं आशङ्काओं से इन सबों की ओर ही देखती रहती है। श्याम आते ही धूलि में लेट जायगा; पता नहीं गोरज में लोट-पोट होने में उसे क्या आनन्द आता है। नन्ही मुट्ठियों से सब एक दूसरे पर धूलि डालने लगेंगे। अच्छा है, यह मङ्गलमय गोरज इस बहाने बालकों के सर्वाङ्ग में लग तो जाती है; लेकिन कन्हाई नित्य मचलता है गोष्ठ से लौटते समय। वह मैया की गोद से उतरने को लटक जाता है। उसका धूलिधूसर श्रीअङ्ग—मैया पुचकारती है, दुलारती है और वह अपने दोनों चरण हिलाता, लटकता, उतरने की हठ करता जाता है। इन गायों के मध्य में ही वह खेलेगा, गोष्ठ से हटना उसे तनिक भी रुचिकर नहीं।

× × × ×

श्रीनन्दरानी अपने लालको दूध पिला रही हैं। श्याम एक स्तन पान करके दूसरी ओर मुख करने लगा है। देखने ही योग्य है यह छटा—वह माता के स्तनपान में लगा है और दूसरे हाथ से अभी तक दूध की उस नन्ही बूँद को मिटाने के प्रयत्न में है, जो उसके मुख से, मुख इधर करते समय माता के वक्ष पर गिर गयी थी। कैसे आनन्दभरे अधखुले हो रहे हैं इसके विशाल नेत्र।

मैया ने स्नेह से देखते-देखते एक अङ्गुली लगायी इसके चिबुक से और यह देखने लगा मैया की ओर। यह दुग्धस्नात अधरद्युति, यह हँसता चन्द्रमुख और ये दो परमोज्ज्वल नन्हे दाँत—दन्तों की दुग्धकणिका के साथ अधर पर पड़ती यह ज्योति तो अद्भुत ही है। अच्छा, अब यह सोयेगा, इसे जम्हाई आ रही है। यह खोला इसने अपना नन्हा मुख।

मैया को क्या हुआ ? इसका तो चुटकी बजाने को उठा दाहिना हाथ उठा ही रह गया है। यह इस प्रकार आश्चर्यचकित-सी क्यों देख रही है कनूँ के मुख को ? 'आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारकमण्डल, विशाल सागर, ये पर्वत, यह धरा और ये नगर! ये कानन और ये नदियाँ! हे भगवान्! हे नारायण!' मैया यह सब क्या कह रही है ? इस नन्हे मुख में क्या वह पूरा विश्व देख रही है ? आश्चर्य से वह थकित हो गयी है। उसके नेत्रों में तो भय के स्पष्ट भाव हैं। यह लो, वह तो काँपने लगी! नेत्र ही बंद कर लिये उसने और यह कनूँ हँसने क्यों लगा है ? क्या पता, लोग कहते हैं कि इसका हास्य ही माया है।

'हाय, हाय! मेरे लाल को क्या हो गया! अरे, देखो तो! इसने जितना नवनीत खाया, जितना दूध पिया—कुछ पचा नहीं। सब इसके मुख से दीख गया मुझे। इसने कहीं मिट्टी और पत्ते भी खाये हैं! सब इसके उदर में ज्यों-के-त्यों हैं! इसे अपच हो गया!' गोपियाँ हँसती हैं, माता रोहिणी कुछ समझ नहीं पातीं। भला, मुख से भी कहीं उदर की वस्तुएँ दिखायी पड़ सकती हैं ? क्या पता व्रजेश्वरी ठीक ही कहती हों। कन्हाई का उपचार तो होना ही चाहिये! गोमूत्र परम पावन है और अपच की तो महौषध ही है; पर'''लेकिन इसे अपच जो हो गया है।

× × × ×

तैलसिक्त काली घुँघराली अलकें, उनमें गूँथे सुमन और यह लहराता मयूरपिच्छ, विशाल भाल पर कज्जलबिन्दु, कुटिल भ्रूमण्डल, अरुणाभ कजरारे लोचन, पतले लाल-लाल ओष्ठ—यह कृष्णचन्द्र अपनी लाल बायीं हथेली पर उज्ज्वल नवनीत रक्खे, यह हाथ उठाये, एक ही दक्षिण हस्त एवं घुटनों के सहारे कहाँ खिसकता जा रहा है ? यह बार-बार हाथ के नवनीत को देखता है, बार-बार देखता है, जैसे सावधान है कि कहीं वह भूमि पर न गिर जाय। मैया ने मुख में देना चाहा था यह सद्योमथित नवनीत, पर हठ करके हथेली पर लेकर यह चल पड़ा है। अब भला, मैया की दृष्टि इसे छोड़कर नवनीत पर कैसे टिके। वह तो पात्र सम्मुख लिये इसे देखती बैठ गयी है। कहाँ जा रहा है उसका लाल ?

यह बड़े भाई को दिखाने आया है आँगन में कि उसके पास नवनीत है। नहीं, नहीं, खा खिलाने आया है और भला, अपने हाथ का नवनीत यह कैसे दाऊ को या भद्र को छूने दे। अ किस तरह जम कर बैठ गया है। दो अङ्गुलियों से तनिक-तनिक नवनीत भाई और भद्र के मुख मे देगा। दोनों चाहते हैं कि यह भी खाये, दोनों नवनीत उठाना चाहते हैं; पर ऐसा कैसे हो सकत है। यह तो हथेली हटा रहा है। कुछ अस्पष्ट कह रहा है, सम्भवतः यही कि 'नवनीत मेरा है देखो, तुम दोनों देखो तो कि मेरा नवनीत कितना मीठा है! छुओ मत! मैं इसे छूने नहीं दूँगा लो, मैं खिलाता हूँ, तुम देखो तो सही, कितना अच्छा है यह!'

× × × ×

मैया ने उबटन लगाकर तैल लगाया है, स्नान कराया है, अलकें सँवारी हैं और कज्जल लगाया है। भला, इन सब की बात कोई सोचने की बात है। ये सब सखा हैं न, ये सब बड़े अच्छे हैं। सब इस मृदुल धूलि की मुट्ठियाँ इसके कंधों पर, पीठ पर, वक्ष पर, उदर पर डाल रहे हैं। कितनी शीतल, कितनी कोमल है धूलि। कनूँ ही क्या किसी से कम है, इसने भी दोनों मुट्ठियाँ भर ली हैं और दाऊ की अलकों में ही इन्हें रिक्त करने लगा है। भद्र के कंधे पर एक मुट्ठी, सुबल के वक्ष पर और···और यह धूलिक्रीड़ा तो चल ही रही है।

कनूँ अभी से नटखट हो गया है। यह अपने दोनों लाल-लाल चरण जल्दी-जल्दी चला-कर धूलि फैलाने लगा है। मणिभद्र के सम्मुख की धूलि इसने फैला दी तो वही क्या छोड़ दे, वह भी तो पैर नचा सकता है और यह पैर धूलि में उछालना—यह भी मजे का खेल है।

यह धूलिस्नात श्यामरूप—मैया अपने इस अवधूत को देखकर हँस रही है। यह अपनी नन्ही मुट्ठी में धूलि भर लाया है उसे देने। धूलि ही देने आया है, अभी गोद में कहाँ आना है। अभी तो सखाओं के मध्य में जाने को मुड़ चला है यह, धूलि माता के करों पर डालकर। मैया भला, क्या रोके। 'बालक धूलि में खेलें तो उनके अङ्ग पुष्ट होंगे।' मैया ने इसे बहुत सुना है। वह तो इतना ही देख रही है कि कोई मिट्टी न खाने लगे और किसी के नेत्रों में धूलि न पड़े।

यह मधुमङ्गल यह तो पता नहीं क्या-क्या घरौंदे बना रहा है। कितनी धूलि एकत्र कर ली है इसने। भला, कनूँ क्या इसका बिगड़ना मान लेगा? लो, यह इसकी राशि पर आ बैठा। 'ले, मैं तुझे ढक देता हूँ उदर तक!' सचमुच मधुमङ्गल ने तो श्याम की नाभि तक धूलि चारों ओर एकत्र कर दी। सब आ जुटे हैं—बड़ा अच्छा है यह खेल तो। कन्हाई—यह चपल स्थिर बैठने से रहा। पैर चलाकर धूलि बिखेर दी इसने अब तो। यह धूलि-क्रीड़ा, यह तो नित्य-क्रीड़ा है। भला, इसका विश्राम क्या। श्याम खेल रहा है, सखाओं के साथ वह धूलि में खेल रहा है।

अन्न-प्राशन

"अरुणाधरामृतविशेषितस्मितं वरुणालयानुगतवर्णवैभवम् ।
तरुणारविन्ददलदीर्घलोचनं करुणालयं कमपि बालमाश्रये ॥"

—श्रीलीलाशुक

आज कन्हाई पाँच महीने, इक्कीस दिन का हो गया। आज इसका अन्न-प्राशन है। आज ही अन्न-प्राशन है दाऊ का, भद्र का, सुबल का और दूसरे अनेक बालकों का। सभी कुछ छोटे या बड़े बालकों का अन्न-प्राशन आज ही करने का गोपों ने निश्चय किया है। श्याम के ये नित्यसङ्गी, इनके सभी संस्कार अब साथ-ही-साथ तो होंगे। श्रीवसुदेवजी ने नाम-करण के सम्बन्ध में ही जब आदेश नहीं दिया, तब दूसरे संस्कार होते कैसे दाऊ के। अब तो मथुरा से संवाद भी आ गया है कि 'कृष्ण' के साथ-साथ ही 'राम' के भी सब संस्कार करा दिये जायँ। लेकिन दाऊ है जो अब तक किसी वस्तु की अपेक्षा ही नहीं करता। बाबा ने, मैया ने, सभी ने सोचा था कि बालक अनेक पदार्थों के लिये आग्रह करेगा, मचलेगा। उसे रोकने के लिये बहुत प्रयत्न करना होगा; पर यह दाऊ तो जैसे जन्म से संतोषी होकर प्रकट हुआ। यह किसी खिलौने के लिये तो कभी मचलता ही नहीं, भोज्यवस्तु के लिये क्या मचलेगा। कोई वस्तु मुट्ठी में आयी और मुख में गयी—दाऊ ने सधारण शिशु की यह प्रकृति जैसे पायी ही नहीं। वह तो वस्तु मुट्ठी में आते ही जो कोई समीप हो, उसी के मुख में देने का प्रयत्न करता रहा है सदा। अपने खिलौने वह किसी बालक को देकर ताली बजा-बजाकर प्रसन्न होता है। कुछ मिला और उसने अपने छोटे भाई या भद्र की मुट्ठी में दिया। जन्म से ही वह जैसे देना-ही-देना सीखकर आया है। भला, उसे क्या सम्हालना है भोज्यपदार्थों के सम्बन्ध में। आज उसका अन्न-प्राशन है। आज ही वह समझेगा कि अन्न कैसा लगता है।

× × × ×

श्याम का अन्न-प्राशन है—महर्षि शाण्डिल्य ने देवपूजन करा दिया है। पितरों को अपना भाग मिल चुका। गायों को गोपों ने तृप्त कर दिया। विप्रवर्ग भोजन कर चुका। बाबा तो चाहते हैं कि ये वनपशु, ये पक्षी तक तृप्त हो जायँ। विविध पकान्नों की राशियाँ लगा दी गयी हैं। कोई आये, कोई खाय! गोप तो प्रेरित कर रहे हैं लोगों को, लुब्ध कर रहे हैं वनपशुओं एवं पक्षियों को।

'आप लोग भोजन कर लें तो आपके प्रसाद से इसको पवित्र होने का सौभाग्य प्राप्त हो!' बाबा चाहते हैं कि उनके पुत्र का अन्न-प्राशन यज्ञ-शेष से हो; किंतु भला, इसे सुने कौन। मर्यादा का बन्धन न होता—विप्रवर्ग क्या पहले भोजन करना चाहता था? ये गोप, ये प्रजाजन—इनकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। राशि-राशि सुस्वादु पकवानों के ढेर लगे हैं और पक्षियों तथा पशुओं का यूथ भी अपार एकत्र हुआ है; किंतु इन राशियों की ओर तो वे भी नहीं देखते। सबकी दृष्टि तो व्रजराज की ओर है। जैसे सब कहते हों—'बाबा, आज तो अपने कुमार का प्रसाद पाने दो!'

आज सम्पूर्ण व्रज आमन्त्रित है। दूर-दूर के गोष्ठों से लदे छकड़े और नर-नारी रात्रि-भर आते रहे हैं। रात्रिभर गोपियाँ जगी हैं और व्यस्त रही हैं। सबको अपने पाकशास्त्र की कला सार्थक करनी है और ये राशियाँ—ये पकवानों के पर्वत—सचमुच क्या गोपियों ने ही इन्हें बनाया है? कैसे सम्भव हो सकता है रात्रिभर में इनको बना लेना। कौन जाने आज अन्नपूर्णा ने ही अपने को धन्य करने के लिये यह अथक उद्योग किया हो।

गोकुल तो आज नन्द-भवन हो गया है, सत्कार तो करना है बरसाने तथा अन्य समस्त गोष्ठों का। आज श्रीव्रजराजकुमार का अन्न-प्राशन है। आज समस्त व्रज आमन्त्रित है और भला, कौन इस परम सुयोग को छोड़ दे।

× × × ×

उज्ज्वल कौशेयमण्डप, कदली के सफल स्तम्भ, अगुरुधूपित दिशाएँ और मृदुल आस्तरण। ये बैठे हैं श्रीव्रजराज अपने नीलोज्ज्वल कमललोचन को गोद में लेकर। आज यह कन्हाई मयूर-मुकुटी हो गया है। घुँघराली काली-अलकें तैलसिक्त हैं और सुमनों के साथ मैया ने एक मयूरपिच्छ लगा दिया है उसमें। भाल पर कज्जलबिन्दु, कजरारे दीर्घ नयन और यह अपने चञ्चल कर हिलाता चकित-सा इधर-उधर देख रहा है।

यह बैठा है दाऊ बाबा की दक्षिण भुजा से सटकर और भद्र—बाबा की गोद में दो तो क्या, ऐसे सहस्र शिशुओं के लिये भी स्थान का कहाँ अभाव है। यह सुबल, यह मणिभद्र—सभी का तो आज अन्न-प्राशन है और यह मधुमङ्गल--यह तो सबसे आगे डटा बैठा है।

'बाबा, तुम पहले मेरा अन्न-प्राशन करा दो!' भला, इस मधुमङ्गल को क्या ब्राह्मणों के साथ भोजन करना अच्छा लग सकता है। बाबा तो आग्रह ही करते रहे और अब भी यह भोग तो लगाये।

महर्षि शाण्डिल्य ने अग्निदेव का पुनः पूजन कराया। रसेश वरुणदेव पूजित हुए और अन्न के अधिष्ठाताने अपना भाग पाया। मङ्गलगान, वाद्य, शङ्खध्वनि, स्वस्तिपाठ और जय-जय नाद—यह उठाया बाबा ने ग्रास नन्हा-सा और दाऊ के अधरों से लगा दिया। दाऊ यह क्या करता है, उसने तो अधर फड़काये और कुछ भूमि पर और कुछ पेट पर गिरा दिया। वह तो बाबा की ओर ऐसे देखने लगा है—जैसे यह क्या बाबा ने उसे खिला दिया। भला, कोई मीठी वस्तु—दूध जैसी हो तो बात भी थी। वह अभी दूध ही तो पीता है।

'लाल, महर्षि हैं न—ले, यह और ले ले तू।' अब दाऊ मुख खोलने से रहा। अब तो उसके अधरों से लगाकर ही क्षार, अम्ल आदि को हटाना है। बाबा ने धीरे से मुख पोंछा उसका।

अरे-अरे यह क्या लगा दिया बाबा ने इस नवनीत-सुकुमार कन्हाई के कोमल नन्हे पतले लाल-लाल अधरों से। श्याम ने अधर फड़काये, मुख सिकोड़ा और घुमा लिया। यह भी कोई बात है कि बाबा फिर, फिर ये विचित्र वस्तुएँ लगाये जा रहे हैं। वह मुख बना रहा है, ओष्ठ विचित्र-विचित्र ढंग से सिकोड़ रहा है। अब नहीं—अब वह नहीं सह सकेगा......बाबा ने यह अच्छी वस्तु लगायी, हाँ--यह मीठी-मीठी इसे तो उसने चाटना प्रारम्भ किया—पर नहीं, नहीं वह मुख घुमा रहा है।

'तू और लेगा?' यह दाऊ—इसने पकड़ा बाबा के बाहु को। बाबा पाँच ग्रास पूरे न करें तो क्या बिगड़े। यह लो—अभी तो मुख ही नहीं खोलता था और अब हठ है कि सब पदार्थ उसी के मुख में दिये जायँ। अभी से यह अपने अनुज की आड़ बनने बढ़ आया है। इसके छोटे भाई के यदि कमलकोमल मुख में ये विचित्र पदार्थ देते ही हैं तो उसके बदले यही उन्हें खा लेगा।

'अच्छा, तू ही ले!' सचमुच इस बार तो बाबा के हाथ का नन्हा ग्रास इस दाऊ ने मुख खोलकर ले लिया। इसने तो इस बार तनिक भी अरुचि प्रकट नहीं की। भला, बाबा क्या अब भी इसके छोटे भाई को इन वस्तुओं से छुट्टी न देंगे। बाबा ने दाऊ के और श्याम के भी अधर जल से पोंछ दिये, वृद्धा उपनन्दपत्नी ने श्याम को उठा लिया गोद में, पर दाऊ तो उठना ही नहीं चाहता। वह तो यहीं बैठा रहेगा—क्यों, सम्भवतः उसका कुतूहल गया नहीं।

'अरे, तू भद्र को भी नहीं खिलाने देगा!' यह लो, यह दाऊ तो सम्भवतः इसीलिये डटा बैठा है कि अब किसी बालक को बाबा ये अप्रिय वस्तुएँ न दें। वह सबके बदले खा लेगा! भला, यह कैसे हो सकता है। बाबा भद्र के अधरों से कुछ लगाने जा रहे हैं और यह मचला पड़ता है! यह रोकने पर ही उतर आया है। इसे बाबा कैसे समझायें कि सभी बालकों का यह संस्कार

आवश्यक है। भला, जो वस्तुएँ मुख में लेते ही इसने बाहर कर दीं—वे ही बाबा इन बालकों को दे रहे हैं, दाऊ—नन्हा दाऊ इससे अधिक क्या समझे और उसे तो अभी से अपने सभी सखाओं की असुविधा अपने उठा लेने की धुन है। बाबा को शीघ्रता करनी है, दाऊ हठ कर रहा है और बच्चों के ये सुकुमार अधर......लवण, कषाय, कटु, तिक्त, अम्ल—ये इन अधरों से चाहे जितने मन्द एवं स्वादु बनाकर स्पर्श कराये जायँ—अभी तो ये मधुर को भी सह नहीं पाते।

× × × ×

'ये बालक क्या चाहेंगे ? इनकी रुचि किस ओर होगी ? किस आधार पर ये जीवन व्यतीत करेंगे ?' सबके हृदय अधिक वेग से गति करने लगे हैं। विप्रों का सामगान समाप्त हो गया, वाद्य बंद हुए और गोपियों की उत्कण्ठा ने उनके कलकण्ठ मूक कर दिये। सबके नेत्र एकटक लगे हैं। सब के मन में है 'बालक अपनी वंशगत सुरुचि ही व्यक्त करें !' ये स्वर्ण एवं मणि की राशियाँ, वह हिरण्यपीत पद्मरागमण्डित नन्हा हल, ये वस्त्र, यह रज्जु और वेत्रदण्ड, मणिमय लेखनी और मसिपात्र की भी अद्भुत शोभा है और यह कौशेय-परिवेष्टित ग्रन्थ—ये तो नित्य वन्दनीय हैं। गोपों ने उज्ज्वल छुरिकाएँ, नन्हे खड्ग सजा दिये हैं और यह रक्खा है एक ओर चामर-व्यजन। आज चारों वर्णों के व्यवसाय के ये प्रतीक मण्डलाकार सजाये गये हैं। आज इन्हें समत्व प्राप्त हो गया है इस मण्डप में। शिशु तो नित्य समदर्शी हैं। आज यह सभा-मण्डप तो शिशुओं का है न, इसमें कहीं वैषम्य रह सकता है। यहाँ तो वे जिसे स्पर्श कर लें, वही श्रेष्ठ है।

बालकों को चुनना है इसमें से—वे किसे लेंगे ? यही प्रश्न तो सबके मन को उन्मथित कर रहा है। श्रीव्रजराजकुमार किसे लेगा। ? सभी वस्तुएँ अद्भुत हैं। किसी को भी देखते ही उठाने को जी चाहता है। सभी इस प्रकार सजायी गयी हैं कि सब पर समान दृष्टि पड़े। बालक तो मण्डप के द्वार पर छोड़े जायँगे। वे किधर मुड़ेंगे, कुछ ठिकाना है इसका ?

'भैया, तू जा—खिलौना ले तो ले !' बाबा दाऊ को प्रोत्साहित कर रहे हैं। दाऊ तो मण्डप के द्वार पर ही बैठ गया है। इतने सारे खिलौने—वह अकेला ही सब ले ले, यह भी कोई बात है। यह श्याम, यह भद्र, यह तोक, दाऊ तो हठ करने लगा है कि सबको छोड़ दो। सबको आने दो तो वह खेले। सब नहीं आते तो वह कुछ नहीं लेगा। अकेले उसे कुछ नहीं लेना है। बाबा पुचकार रहे हैं, महर्षि प्रोत्साहित कर रहे हैं और यह दाऊ—यह मण्डप में जाकर भी बार-बार लौट आता है झट-पट। कम-से-कम श्याम तो चले उसके साथ खेलने।

'तू कोई खिलौना ले आ और यहीं लाकर खेल !' उपनन्दजी ने ठीक समझाया है। भला, अब दाऊ को क्या खिलौना चुनने में देर लगती है। वह चला, वह चला। 'क्या उठायेगा ? दाऊ क्या उठायेगा ?' बाबा, गोपगण, मैया और माता रोहिणी—सबके हृदय, नेत्र एकाग्र हो रहे हैं। 'दाऊ ने तो शस्त्रों की ओर देखा ही नहीं....।'

'यह अपने छोटे भाई से भी दो पद आगे ही रहेगा !' मैया को हँसी आ गयी। उसने माता रोहिणी की ओर देखा।

'कौन जाने यह पुरानी भूल सुधार दे !' माता रोहिणी के नेत्र तो बाष्प-पूर्ण हो गये हैं। वे गद्गद हो उठी हैं। सदा से उन्हें यह खटकता रहा है कि वृष्णि-वंश एक होकर भी मथुरा और गोकुल में विभक्त हो गया है। जब से श्रीकृष्णचन्द्र पर उनकी दृष्टि पड़ी है, वसुदेवजी का मथुरा-निवास उन्हें रुचता ही नहीं। कंस का भय न होता—अवश्य उनके आराध्य इस नीलसुन्दर को देखकर गोकुल में ही बस जाने का निश्चय करते। आज उनके पुत्र ने एक साथ स्वर्ण-हल और वेत्र-दण्ड उठाया है दोनों हाथों से। व्रजरानी का परिहास कहता है कि क्या 'राम' कृषक और गोपाल दोनों होगा ? यह 'बल' अपने अनुज के साथ गोपाल होकर कृषक भी हो जाय तो हानि क्या है !'

माता रोहिणी तो इस कल्पना से ही आनन्दगद्गद हो रही हैं। कौन बताये मैया को, माता रोहिणी को और गोपों को कि यह तो नित्य हलधर है और इस गोकुल में इस मुसली को मूसल के स्थान पर वेत्रदण्ड ही अधिक प्रिय लगता है। गोपाल का यह अग्रज वेत्रदण्ड को दाहिने हाथ में उठायेगा ही।

× × × ×

श्याम चला—श्याम चला खिलौने लेने !' अनजान में ही सब आगे उझक गये। सबके पलक स्थिर हो गये। चञ्चल कन्हाई—यह तो खिलौने देखकर ही प्रसन्न हो गया है।

कटि में किङ्किणी, चरणों में नूपुर, करों में कङ्कण, कण्ठ में व्याघ्रनख, क्षुद्रशङ्ख, मुक्ता की माला—यह कनूँ अपनी काली घुँघराली अलकें लहराता, अरुण कमलचरण खींचता घुटनों के सहारे भागा जा रहा है खिलौने उठाने। यह तो मण्डप के मध्य में बैठ गया चामर और व्यजन की ओर पीठ करके। यह क्या लेगा ? चारों ओर मुख घुमा-घुमाकर यह तो केवल किलक रहा है !

'ले ले, लाल ! ले तो ले, जो तुझे लेना हो !' उपनन्दजी का पुचकारना क्या काम आये। कन्हैया तो अपने नन्हे-नन्हे कर उठाकर एक ओर से सबकी ओर संकेत कर गया। वह तो बाबा को बुला रहा है दोनों हाथ उठाकर कि 'बाबा, वहाँ क्यों खड़े हो ! आओ, भीतर आओ जल्दी से और यह सब—हाँ, सब-के-सब खिलौने उठा ले चलो !' वह सब लेगा ! सब लेगा एक ओर से सब-के-सब ! भला, इतने खिलौने कैसे उठा ले वह। सबके मध्य में इस प्रकार जमकर बैठ गया है, जैसे सबका वही स्वामी है और इधर उधर मुख घुमाकर किलक रहा है।

'कुमार सर्वतोमुखी उन्नति प्राप्त करेगा। यह सबका—सभी साधनों का अधिपति होगा !' महर्षि शाडिल्य की वाणी ने बाबा को, गोपों को किस आनन्दसिन्धु में निमग्न कर दिया है, अब यह भी कोई बस की बात है कि इसका वर्णन किया जा सके !

'बाबा, तुम वहाँ खूब सारा नवनीत रखा दो न ! भला, मैं क्या चुनूँगा ! ये सब तो वेत्र-दण्ड और रज्जु लेकर ही लोट-पोट हुए जा रहे हैं !' मधुमङ्गल को भी कुछ चुनना तो है और वह भला, खिलौने क्या चुने। उसे तो कोई भोग लगाने योग्य पदार्थ चाहिये। यह मणिभद्र, भद्र, तोक—अब ये सब-के-सब तो रज्जु या वेत्रदण्ड उठाते हैं। ये गोपबालक ही तो हैं।

× × × ×

आज सम्पूर्ण व्रज, समस्त गोप एक साथ बैठे हैं भोजन करने। आज का भोजन—आज तो वृद्धों में भी उल्लास है। ये व्रजराज और वृषभानुजी, जब ये भी परिहास करने लगे हैं, तब तरुण गोप तो तरुण ही हैं। परिहास तो कर लेते हैं उपनन्दजी-से वृद्ध आज मध्य में। आज का उल्लास-आनन्द—कौन वर्णन करने में समर्थ है।

व्रजेश आज अपने हाथों एक-एक गोप को वस्त्र, अलंकार भेंट कर रहे हैं। आज के उपहार—आज तो यह श्याम के अन्नप्राशन का उपहार है ! गोप तो इसे माँग कर ले लें—पर व्रजराज जो दे रहे हैं, ये असीम उपहार तो आये छकड़ों द्वारा ढोये जाने से रहे। मागध, सूत, वन्दी—सभी तो परितृप्त हैं। सभी तो प्रार्थना ही करते हैं आज। कितनी भावपूर्ण प्रार्थना है व्रजपति के प्रधान वन्दी की। जैसे उसने सभी का हृदय अपने शब्दों में मूर्त कर दिया—'व्रजेन्द्र, हम दीन हैं ! आप की उदारता के इस विपुल प्रसाद के लिये कितना बड़ा प्रासाद चाहिये—यह भी सोचते हैं आप ? अब तो दया करें। गृह में आपका प्रसाद तो विराजेगा ही, पर दीनों को भी वहीं आश्रय के लिये अवकाश चाहिये !'

गोपियों का सत्कार किया है व्रजेश्वरी और माता रोहिणी ने। सबने अन्तःपुर में साथ ही भोजन किया है। मैया ने सबको वस्त्राभरणों से भरपूर सुसज्जित किया है और अञ्जल रत्नों से भर दिये हैं। मैया समझ ही नहीं पाती कि वह किसे क्या दे। उसके लाल का अन्न-प्राशन हुआ, सबने हृदय से आशीर्वाद दिया—इस समय भला, कहीं देकर तुष्टि होने की है।

'अच्छा तो, तुम मुझे भी भेंट दोगी ?' देवरानी ठीक तो कहती है। व्रजेश्वरी कहाँ देखती हैं कि गोकुल में अनेक बालकों के अन्न-प्राशन हुए हैं। उन बालकों की माताओं के लिये यही बहुत है कि वे अपने शिशुओं का नन्दभवन में ही संस्कार कराती हैं। यह जो नन्दनन्दन है—इसे देखकर, इसके साथ बालक के संस्कार का महनीय अवसर—पर मैया तो आज सबको पुरस्कृत करने लगी है। उसने तो सभी को सजाना और उपहार देना प्रारम्भ कर दिया है।

'चल, तेरा लड़का कहाँ से आया ? भद्र तेरा कब से हो गया और तोक ही कब तेरा है। मेरे लड़कों की न्योछावर लेती है या····।' मैया का परिहास—लेकिन सचमुच ही तो। उसे लगता है कि सभी बालक उसीके—उसके ही हैं। वह अपने शिशुओं के ही उपहार तो दे रही है।

'लाओ ! आज तो तुमने धाय बना लिया मुझे; पर श्याम को बड़ा होने दो—वह मेरा ही रहेगा भला !' देवरानी ने भाव भरा अञ्चल फैला दिया। आज कौन अस्वीकार कर दे नन्दरानी के मङ्गल-उपहारों को। पता नहीं किन जन्मों के पुण्यों ने यह सौभाग्य दिया।

'यह तो जन्म से तेरा है; बड़ा होने पर क्या बदल जायगा !' मैया कहाँ कहती है कि श्याम उसीका है। वह तो जब वह राक्षसी आयी थी--वह पूतना, उससे बचने पर ही श्याम को गोपियों के चरणों में रखकर कहने लगी थी--'यह तुम्हारे ही आशीर्वाद से आया ! तुम्हारे ही पुण्यों से बचा और यह रक्खा है तुम्हारे चरणों में, तुम्हारा ही है यह।'

× × × ×

"मैया, ! मैया !" यह मधुमङ्गल सदा कूदता-उछलता शीघ्रता में ही आता है। भगवती पूर्णमासी ने शिशुओं को आशीर्वाद दिया है आज। भला, उन तपोमयी की कोई क्या सेवा करेगा; परंतु वे तो अनुकूलता की मूर्ति ही हैं। वे आश्रम पधारीं; किंतु मधुमङ्गल कहाँ उनके साथ रहता है। यह पता नहीं किधर था। 'मैया, यह दाऊ—तू ने देखा इसे, यह सबके बदले स्वयं ही अन्न-प्राशन करने पर तुला था। तू एक बड़ा-सा मोदक तो दे....!' इसे तो मोदक चाहिये और पता नहीं कहाँ से आज उदारता आ गयी है कि उसमें दाऊ को भाग देने की धुन ले आया है।

'यह कनूँ—यह तो दूध पीकर ही ठीक है !' कनूँ तो सचमुच मैया के अञ्चल में छिपा दूध पी रहा है। कितना तन्मय है दूध पीने में। अन्न-प्राशन के क्षार, कषाय पदार्थों ने माता के दूध की मधुरता बढ़ा तो दी ही है। मधुमङ्गल को तो मोदक चाहिये इस समय और भला, मैया समझा लेगी इसे कि दाऊ को मत दो ? यह चपल एकाध बार खिलाकर मान जाय—यही बहुत।

—❀⁐❀⁐❀—

तृणावर्त-त्राण

"चरणयोररुणं करुणार्द्रयोः कचभरे बहुलं विपुलं दृशोः ।
वपुषि मञ्जुलमञ्जनमेचके वयसि बालमहो मधुरं महः ॥"

—श्रीलीलाशुक

कन्हाई खड़ा होने लगा है। मैया इसे खड़ा कर देती है और यह कुछ क्षण खड़ा रह लेता है अपने दोनों हाथ उठाये, मैया के करों को पकड़ने की मुद्रा में। भला, ये कोमल पद कब तक खड़े रहें। तनिक इधर-उधर डगमग सा करता है और बैठ जाता है। मैया इसे खड़ा करके अपने दोनों कर दोनों ओर तनिक दूर कर लेती है।

दाऊ देखता है कि उसका भाई खड़ा हो गया है, वह ताली बजा-बजाकर नाच रहा है। अपने नन्हे-नन्हे हाथों से ताली बजाता कितना प्रसन्न हो रहा है वह ! मैया आनन्दविभोर है, माता रोहिणी ठगी-सी देख रही हैं और ये गोपियाँ--सब जैसे प्रतिमाएँ हों।

यह भद्र दोनों कोमल हाथ भूमि पर टेके, तनिक आगे झुककर मुख ऊपर करके देख रहा है कनूँ की ओर। 'अच्छा, यह तो खड़ा हो गया !' और यह श्याम बैठ गया। यह खिल-खिला रहा है और ताली बजाने का प्रयत्न कर रहा है, बड़े भाई की देखा-देखी। इसके ये उज्ज्वल चारों नन्हे दाँत—इनकी द्युति ने अधर की अरुणिमा को स्नात कर दिया है। मुख तनिक नीचे झुकाकर, सिर इधर-उधर हिलाते यह मग्न हो रहा है। अलकें लहरा रही हैं। अपने खड़े होने का आनन्द मना रहा है यह।

'दा·· दा' अभी इतना ही तो तुतलाकर कह पाता है। इसने तो 'माँ' से भी पहिले—सब से पहिले 'दा' सीखा है। है भी इसके लिये यही सरल, अपने बड़े भाई को यह 'दा · दा' कह तो लेता है।

× × × ×

श्याम चलने लगा है डगमग पदों से कुछ डग। मैया इसे खड़ा करके हाथ पीछे हटा लेती है और उत्साहित करती है। यह हिलता डुलता हाथ फैलाये बढ़ता है, बढ़ता है, मैया हाथ हटाती जाती है। दो पद, तीन पद और यह बैठ गया।

'दादा, बाबा, मैया, दाऊ' अब यह तोतली वाणी में ये दो-दो अक्षर बोल लेता है। अब यह अपने बड़े भाई को पुकार लेता है और भद्र को 'भद्द' कहने लगा है। मैया बड़े स्नेह से पूछती है और यह परिचय देने का प्रयत्न करता है। कुछ अक्षर मुख से निकलते हैं और कुछ की पूर्ति हथेली फैलाकर, हँसकर हो जाती है।

महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं—'जो बालक 'त' को 'द' कहते हैं, वे शुद्ध श्रुतिधर हो सकते हैं।' यहाँ तो यह दाऊ भी अब 'त' बोलने लगा है और श्याम अभी 'ताऊ' को भी 'दाऊ' ही बोल पाता है। देखने योग्य होती है उसकी वह भङ्गी। सोचकर, प्रयत्नपूर्वक वह 'ताऊ' को बाबा की गोद में बैठकर पुकारना चाहता है--'दाऊ !' स्वयं अपना मस्तक हिला देता है, जैसे कहता हो--'ना, ना, दाऊ नहीं, दाऊ नहीं !' फिर प्रयत्न करता है, रुकता है और फिर वही 'दाऊ !' और फिर मस्तक हिलाता है।

यह अब मयूर का कण्ठ पकड़कर खड़ा हो जाता है और सम्भवतः मयूर भी इसे चलना सिखलाते हैं। मयूरों ने इसे देखा और पंख फैलाये। यह नवघन-द्युति—वे तो दिन भर आँगन में नाचते ही रहते हैं और यह उनके साथ धीरे-धीरे चलने का प्रयत्न करता है।

× × × ×

तृणावर्त के बल की चरम सीमा का अवसर है यह। निदाघ में ही तो इस असुर का बल बढ़ता है। कंस ने अपने इस भृत्य को ठीक अवसर पर ही आज्ञा दी है गोकुल जाने की। आषाढ़ का यह मध्योत्तर काल, दिशाओं में यों ही धूलि भरी है, यों ही वात्याचक्र उठ रहे हैं और लू चल रही है। इस समय तो तृणावर्त का वेग महेन्द्र के लिये भी असह्य है।

'वह नन्द का लड़का—वह नाक्षत्रमास से एक वर्ष का हो गया।' कंस से अधिक गणना कन्हैया की आयु की कौन रख सकता है। एक-एक पल, एक-एक क्षण इसे तो भय के मारे वज्र-रेखा से अङ्कित होते जाते हैं। इसका काल—इसको मारने वाला—वह बढ़ रहा है! वयस्क होता जा रहा है। जैसे मृत्यु कराल मुख फाड़े अपने मन्द पदों से धीरे-धीरे बढ़ती आ रही है। भयविह्वल कंस उसके प्रत्येक पद—प्रत्येक क्षण को त्रस्त देख रहा है। क्या करे? कहाँ जाय? किसे भेजे? उसने तृणावर्त को भली प्रकार समझा कर भेजा है।

मायावी तृणावर्त को भला, गोकुल के लोग क्या देख लेते। वह आया असुर—कान्ह तो माता की गोद में है! मैया इसे भूमि पर उतारे—तृणावर्त को प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वह बड़ा प्रसन्न हुआ. मैया ने श्याम को भूमि पर बैठा दिया। असुर को क्या पता कि अन्तरिक्ष से कोई महाशक्ति इसी समय मुस्करा उठी हैं।

'यह नन्दका लड़का—इसकी माता ने नेत्र बंद किये हैं! क्या पता दूसरे क्षण ही वह पुत्र को फिर अङ्क में उठा ले!' असुर को भय है कि अवसर फिर मिले या न मिले। उसने कराल वात्याचक्र प्रवर्तित किया और उठा लिया श्याम को।

महाघोर शब्द, उमड़ती-घुमड़ती अपार धूलि, कंकड़ियाँ, पत्ते, तृण—दिशाएँ अन्धकार में डूब गयीं। पशु-पक्षी क्रन्दन करने लगे। मनुष्यों ने जहाँ थे, वहीं बैठकर भूमि पकड़ी। घूमता खर-तर वायु का इतना प्रबल वेग एक साथ—कोई भी अपने को सम्हाल नहीं पाता। कहाँ हैं, क्या हो रहा है, क्या होना चाहिये—यह कैसे सोचा जाय। नेत्र खुलते नहीं, नाक-कान में धूलि भरती जा रही है। शरीर जैसे उड़ जायगा। कौन अपने को स्वस्थमानस रख सकता है ऐसे समय और सो भी जब यह विपत्ति सहसा आयी हो।

समस्त गोकुल के नेत्र बंद करके, सारी दिशाओं को धूलिमय अन्धकार से आच्छादित करके तृणावर्त ने झपट्ट से श्याम को उठाया। जैसे चील या बाज टूटता है, असुर ऊपर से गिरा और पलक झपकते में नन्दनन्दन को उठाकर आकाश में चला गया। ऊपर—ऊपर—और ऊपर, जितना ऊपर वह जा सके—उतने ऊपर से इसे फेंकना चाहता है भूमि पर।

'हाय!' असुर के प्राण ही तड़प सकते हैं। वह हाय! कहने में भी समर्थ नहीं। बड़ा भारी—किसी पर्वत से भी भारी है यह नन्द का पुत्र। मूर्ख असुर—जननी जिस पुत्र का भार इस समय नहीं सह सकती, उसे वह उठाकर ढोने चला है। गर्व है उसे कि अपने वेग में वह पर्वतों को भी तृण की भाँति उड़ा सकता है। गोकुल के किसी वृक्ष की एक कोंपल तक टूटी नहीं, किसी गृह का एक वस्त्र तक उड़ा नहीं सका! मायिक तृण, धूलि के अन्धकार के गर्वपर श्री व्रजराज-कुमार को उठाने का साहस!!

पहिले झपट्ट के वेग में जितना ऊपर जा सकता था, असुर चला गया। कौन जाने वह स्वयं जा सका या उसे किसी ने जाने दिया जान-बूझकर; पर अब नहीं जा सकता—अब ऊपर जाना सम्भव नहीं। यह लड़का उससे भारी है, उसकी समस्त क्षमता से भारी—बहुत भारी है। अब असुर इसे लेकर ऊपर रुका भी नहीं रह सकता। यह उसे नीचे-नीचे ढकेल रहा है।

'मैं इसे किसी प्रकार फेंक सकता—प्राण बच जाते मेरे!' ओह, असुर कहाँ इसे फेंक सकता है। 'भाड़ में जाय कंस! चूल्हे में गयी उसकी सेवा!' लेकिन अब क्या हो सकता है। अब उपाय क्या—यह लड़का जो उसके गले में लटका है, इसने किसी को पकड़कर फिर छोड़ना कहाँ सीखा है। एक बार कोई पकड़ में आये तो—पकड़ लिया सो पकड़ लिया, अब उछल-कूद का

क्या अर्थ। लेकिन तृणावर्त बिचारा तो उछल-कूद भी नहीं कर पाता। वह तो आकाश में हाथ-पैर फटफटा रहा है। उसके नेत्र बाहर निकलने जा रहे हैं। स्नायु अकड़ रहे हैं। शरीर गति-हीन होता जा रहा है।

कन्हाई—कन्हाई क्या करे। उसका क्या दोष ? पता नहीं किसने उसे झटके से उठा लिया। उसके नन्हे हाथों में उसका कण्ठ आया और वह उसी कण्ठ को दोनों हाथों से पकड़कर चिपक गया है। ऊपर—इतने ऊपर उसे यह ले आया ! भला, वह अपनी पकड़ दृढ़—दृढ़तर करता जाय और चिमटता ही जाय तो इसमें अस्वाभाविक क्या है। वह तो अपने को गिरने से बचाने के प्रयत्न में ही है। तृणावर्त का गला घुट रहा है, वह मरणासन्न है—यह सब तो ठीक; पर कन्हाई को क्या पता। वह क्या करे !

तृणावर्त गतिहीन होता जा रहा है ! मूर्छित हो रहा है। गिर रहा है—गिर रहा है ऊपर से पत्थर की भाँति—अरर धम् !

× × × ×

'आज क्या हो गया मुझे ! मैं अपने पुत्र को ही अङ्क में नहीं ले पाती ! छिः !' मैया के पदों में दर्द सा होने लगा है। वह आज प्रातःकाल श्याम को अङ्क में लेकर दूध पिलाने बैठी है। कन्हाई तृप्त हो चुका है। मैया उसके स्मितशोभित मञ्जुमुख को देख रही है—कब से देख रही है। 'कितना भोला है यह !' मैया को सहसा लगता है कि यह भारी हो गया है, बहुत भारी हो गया है, अब इसे गोद में लिये रहना सम्भव नहीं।

'मैं जननी हूँ—मुझे अपना ही पुत्र भारी ज्ञात हो रहा है !' मैया चाहे जितनी खिन्न हो, चाहे जितना आश्चर्य करे, पर उसके पद दुखने लगे हैं। 'आज हुआ क्या है ? इतनी शीघ्र तो एक प्रकार से बैठने से कभी मेरे पद दुखते नहीं थे। अभी हुई कितनी देर है !' मैया को लगता है कि अवश्य उसी का शरीर स्वस्थ नहीं। भला, श्याम भारी कैसे हो सकता है। कुछ कारण होगा—आज पद इतनी शीघ्र सूने हो गये होंगे और दुखने लगे। 'लेकिन नहीं—भारी तो यह नीलमणि लगता है। पद तो ठीक हैं ! भगवान् नारायण मङ्गल करें !' विवश होकर मैया ने श्याम को अङ्क से नीचे भूमि पर बैठा दिया और अपने आराध्य का ध्यान करने लगी। यह कैसा अशुभ है कि वह अपने पुत्र का ही भार नहीं सह पा रही है। उसे क्या पता कि योगमाया ऊपर अलक्ष्य अन्तरिक्ष में मुस्करा रही हैं और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका रही हैं—'मातः, इस धृष्टता को क्षमा करना !' कहती हुई।

'यह शब्द, यह महाभयंकर हाहाकार जैसे समस्त पर्वत, वृक्ष, धरा—सबको उड़ाता कोई प्रलयपयोधि उमड़ता आ रहा हो !' कहने में बहुत देर लग गयी, मैया ने नेत्र बंद किये भगवान् के ध्यान को, घोरतर शब्द कानों में आया और आकुल होकर नेत्र खोले-खोले कि नेत्र खोलना असम्भव हो गया। घोर अन्धकार, हाथ को हाथ दीखता नहीं, धूलि से दिशाएँ भर गयीं। उड़ती कंकड़ियों से शरीर छिला जाता है। नेत्र खोलते ही वे धूलि और नन्ही कंकड़ियों से भर गये। शरीर, वस्त्र सभी उड़े-से जा रहे हैं। घोरतर वात्याचक्र—इतना सहसा, इतना भयंकर वायु-चक्र भी हो सकता है ?

'कनूँ ! श्याम ! कन्हाई !' मैया क्या करे ! वह दोनों हाथों से अपने लाल को उठाकर भीतर कक्ष में भाग जाना चाहती है। कहाँ गया श्याम ? वह तो अभी सम्मुख ही बैठाया गया है, कहाँ गया ? कहाँ गया ? मैया तो पगली की भाँति इधर-उधर टटोल रही है।

'मेरा लाल ! मेरा कनूँ !' मैया चीत्कार कर रही है। वह इधर-उधर उन्मत्त-सी दौड़ती, लुढ़कती, टटोल रही है। 'यह अन्धकार, यह वायु, यह धूलि, पता नहीं क्या दशा हो रही होगी सुकुमार बालक की। पता नहीं कहाँ चीत्कार करता होगा वह। पता नहीं कैसे होगा। कहाँ गया ? गोद से किधर खिसका ? यह प्रबल वात्याचक्र कहाँ उड़ा ले गया ?' मैया चीत्कार करती जा रही है।

'व्रजेश्वरी चीत्कार कर रही है! श्याम आँगन में था उनकी गोद में!' माता रोहिणी कक्ष से बाहर भागीं। भागीं गोपियाँ! सब तो नन्दभवन आ गयी थीं। सब तो कक्ष से देख रही थीं नन्दनन्दन को माता के अङ्क में दूध पीते। दाऊ, भद्र, दूसरे सब बालक कक्ष में हैं; पर इस समय यह सब किसे स्मरण है। 'व्रजेश्वरी चीत्कार कर रही हैं! कन्हाई उनके अङ्क में नहीं है! पता नहीं क्या हुआ उसे!'

घोर अन्धकार, अपने हाथ ही दीखते नहीं। नेत्र खोले नहीं जा पाते और खोलने पर धूलि भरने के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं। सब टकरा रही हैं, परस्पर एक दूसरी को टटोल रही हैं। सब व्याकुल हैं। सब कुछ ढूँढ़ रही हैं अस्त-व्यस्त।

'नन्दनन्दन नहीं है! कन्हाई मिल नहीं रहा है!' ओह, कितनी भयंकर बात है। इस भयंकर अन्धड़ में वह पाटल-सुकुमार—पता नहीं वायु ने कहाँ उड़ाया, कहाँ फेंका! सब क्रन्दन करने लगी हैं। सब चीत्कार कर रही हैं। सब इधर-से-उधर टकराती टटोल रही हैं।

× × × ×

धूलि, प्रखर पवनचक्र, अँधेरा और यह सब भी पूरे मुहूर्तभर तक! जैसे अकस्मात् यह आपत्ति आयी थी, वैसे ही चली गयी। गोप जानें या न जानें, तृणावर्त अवश हुआ और उसकी माया लुप्त हो गयी! गोप उठे, और सम्हले और अर्र्र् धम! यह वज्रपात! यह महाभयंकर शब्द! क्या हुआ? सब दौड़े। इतना बड़ा वात्याचक्र आया, इतनी धूलि उठी और गोकुल में जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। न कहीं कोई वस्तु अस्त-व्यस्त है और न कहीं मलिनता आयी? आसुरी माया इस दिव्य भूमि पर ऊपर-ऊपर ही निकल गयी! इसे अपना कलुष स्पर्श देने में वह असमर्थ है। गोप इसे देखते, चौंकते और सोचते भी—पर यह शब्द, यह महाभयंकर शब्द—पता नहीं क्या हो गया है! यह शब्द नन्दभवन की ओर से आया है। वे दौड़ रहे हैं, दौड़ रहे हैं, उन्हें पहिले नन्दभवन पहुँचना है। उन्हें जानना है—श्याम सकुशल तो है!

× × × ×

'नन्दनन्दन नहीं है! कन्हाई मिल नहीं रहा है! पता नहीं श्याम का क्या हुआ!' मैया तो कब की संज्ञाशून्य हो गयी; पर गोपियों की दशा क्या कही जाय। वे गिरती हैं, टकराती हैं, टटोलती हैं और पागल सी पुकारती भटकती हैं। उनका देह, प्राण, मन सब लुढ़क रहे हैं। इस अन्धकार में ही ये नन्दभवन से बाहर तक आ गयीं। 'नन्दनन्दन मिल जाय!' ये उसे ढूंढ़ने तो इसी प्रकार, इसी अन्धकार में, ऐसे ही टटोलती, लुढ़कती सम्भवतः विश्व के छोर तक जा सकती हैं—'श्याम मिल जाय! मिल जाय!'

'यह हुआ प्रकाश!' गोपियों में एक बार साहस आया। प्रकाश हुआ तो कन्हाई दीखेगा ही! 'यह धमाका! यह वज्रपात!' सहसा सब गिरते-गिरते बचीं।

'वह श्याम है!' ओह, कितनी प्रसन्नता, कितना उन्माद, कितना जीवन—यह तो इस प्रकार दौड़ पड़ी है कि जैसे वायुदेव इसके चरणों में सनाथ होने इस क्षण बस गये हों।

'वह श्याम!' वह नीलोज्ज्वल ज्योति—तृणावर्त के धूसर अन्धकार से पीड़ित नेत्र उस [illegible]-सहस्र-चन्द्रधवल शीतल नीलज्योति पर सीधे पहुँचे—जैसे तृषा से प्राण त्यागते मृग को सुधा-[illegible]गर दृष्टि पड़ा हो।

'वह श्याम!' श्याम—श्याम ही दीखता है। वहाँ और भी कुछ है—बहुत कुत्सित, बहुत [illegible]णित, अत्यन्त अनपेक्षित; पर नेत्र उसे कहाँ देखना चाहते हैं। 'श्याम! श्याम!' और सब दौड़ी [illegible] रही हैं।

'श्याम!' ललककर उठा लिया इस महाभागा ने। 'कहीं इसे आघात तो नहीं लगा!' पूरा [illegible]र देख लिया और हृदय से चिपका लिया।

'श्याम!' सभी दौड़ आयी हैं! सभी को इसे देखना है कि यह सकुशल तो है।

'व्रजेश्वरी ! यह तुम्हारा नीलमणि !' मैया के कानों में तो जैसे सुधाधारा प्रविष्ट हुई है। यह नीलमणि ! यह मैया के मुखपर अपने नन्हे हाथ रखकर उसे उठा रहा है। मैया उठी और उसने हृदय से लगा लिया श्याम को।

× × × ×

'यह राक्षस—रक्त, मांस का बिखरा हुआ यह कुत्सित ढेर—यह राक्षस ही तो है। पता नहीं कितने ऊपर से गिरा इस विशाल शिलापर। रक्त की अनेक नालियाँ प्रवाहित हो रही हैं। अङ्ग-अङ्ग फट गया है। कौन है यह ? अब इसे कोई क्या पहिचाने—हड्डियाँ तक चूर-चूर हो गयी हैं। मांस का चिथा-सा लोथड़ा !' गोप तो देखते ही रह गये इस विस्तीर्ण आसुरी लोथड़े को भय और विस्मय से।

'ओह, श्याम को यह उठा ले गया था !' सोचकर ही प्राण सूख जाते हैं। 'नन्हा सुकुमार कन्हाई और यह प्रकाण्ड असुर ! वह पुष्प तो व्रजराज के पुण्य से ही सुरक्षित है और यह अधम अपने ही पाप से मर गया !' गोपों ने श्याम को देख लिया है, अब इस लोथड़े की सद्गति की व्यवस्था करवानी है उन्हें।

× × × ×

'बाप रे, इतना भयंकर राक्षस !' गोपियों के तो नेत्र ही बंद हो गये। वे तो इस लोथड़े को देखते ही भूमि पर बैठ गयीं। वे अपने चरणों से इसे रौंदती इसके ऊपर चढ़ गयी थीं—मत कहिये ! उनके चरणों में तब प्राण नहीं थे और न नेत्रों ने इसे देखा था और अब—अब श्याम उनके अङ्क में है। यह नन्दनन्दन सकुशल है। राक्षस को देखते ही भागीं वे नन्दभवन की ओर।

गोपियों के ये उत्सुक नेत्र, इनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये हैं, कन्हाई के ढूँढने से केशपाश खुल गये हैं। अङ्ग के वस्त्रों पर श्याम के शरीर में लगे असुररक्त के चिह्न हैं और चरणों के लाक्षा-द्रव को असुर के रक्त ने और अरुण कर दिया है; पर इन्हें अपना ध्यान कहाँ है ? ये तो देख रही हैं मैया की गोद में कन्हाई को।

यह कन्हाई—घुँघुराली काली अलकें भाल और मुख पर बिखर गयी हैं। नेत्रों का कज्जल कपोलों पर फैल गया है और भाल का बिन्दु आड़े-तिरछे हो चुका है। कण्ठ का केहरिनख, पद्मकाष्ठ और क्षुद्रशङ्खों तथा सीपी की माला असुर के रक्त से लथपथ हो गयी है। इनका तो पूरा शरीर ही असुररक्त से भीग गया था। इस नीलकान्त के अङ्ग पर जैसे गाढ़ रक्तचन्दन का अङ्ग-राग हुआ हो। गोपियों के वस्त्रों में यत्र-तत्र लगकर कहीं-कहीं का रक्त स्वच्छ हो गया है। कटि की मेखला, करों के कङ्कण, पदों के नूपुर, सब रुनझुन कर रहे हैं। यह चरण पटक रहा है, सिर हिला रहा है और माता का अञ्चल खींच रहा है। यह मचल रहा है, उलझ रहा है, रुष्ट हो रहा है कि मैया इसे पहिले दूध पिला दे। अभी इसे स्नान कराना है, महर्षि शाण्डिल्य आते होंगे—मङ्गल-पाठ होना है, स्वस्तिवाचन, शान्ति, हवन—सब अभी शेष है और यह मचल रहा है। मचलता जा रहा है—'दूध ! दूध !' कितना मधुर है इसके मुख का यह 'दूध !'

—***—

वर्ष-गाँठ

'शिशिरीकुरुते कदा नु नः शिखिपिच्छाभरणः शिशोर्दृशः ।
युगलं विगलन्मधुद्रवस्मितमुद्रामृदुना मुखेन्दुना ॥'

—श्रीलीलाशुक

'आज तो आप को मौन ही रहना होगा !' श्रीवृषभानुजी ठीक ही तो कहते हैं, आज कृष्णचन्द्र की वर्षगाँठ है; आज भला, व्रजेन्द्र कैसे किसी का प्रेमोपहार अस्वीकार कर सकते हैं। आज ही तो गोपों को सुअवसर मिला है। आज ही तो वे अपने हृदय की लालसा का एक क्षुद्र अंश पूर्ण कर सकते हैं। श्याम अब चलने लगा है, बोलने लगा है तोतली वाणी में और कुछ खाने लगा है। अब उसे आभूषित किया जा सकता है, वस्त्रों से सुसज्ज किया जा सकता है। अपनी रुचि के खिलौने वह स्वयं चुन सकता है। गोपों के उपहार क्या मनुष्य ला सकते हैं। छकड़ों की पंक्तियाँ चली आ रही हैं। बाबा क्या कहें किससे। बाबा ने तनिक पूछा था कि यह सब क्या है तो वृषभानुजी ने हँसकर उन्हें चुप रहने का आदेश दे दिया और कह दिया—'आपके लिये क्या है। हम अपने कुमार को जो जी में आयेगा, देंगे। जो मन में आयेगा, पहिनायेंगे !, और आज अकेले गोकुल और बरसाने की ही बात तो नहीं है; आज तो प्रत्येक व्रज, समस्त दूरस्थ गोष्ठों के गोप भी अपनी उमंग पूरी करके रहेंगे।'

'कन्हैया एक बार भी यदि इन गायों में से किसी का दूध पी लेगा, यदि वह किसी खिलौने को एक बार देखकर हँस पड़ेगा, यदि एक बार वह किसी भी वस्त्र या आभूषण से सज्जित हो जायेगा·······।' प्रत्येक हृदय इतने की ही कल्पना से विभोर हो रहा है। फिर कन्हैया ही अकेला कहाँ है, दाऊ तो उसका अग्रज है न और इस अवसर पर उसके सखाओं को आभूषित किये बिना वह भूषित होगा? वस्त्र, आभूषण, खिलौने, गौ तथा शिक्षित पक्षी—पता नहीं क्या-क्या आ रहे हैं। पता नहीं कब से इन गोपों ने कितनी तन्मयता से इन वस्तुओं को चुना है। इनकी अपार राशि के कण-कण में हृदय का कितना धवल स्नेह है, यह तो इनका वह नन्हा उपभोक्ता ही जानता है।

'श्याम आज कुछ खायेगा। यदि वह मेरे व्यञ्जनों में से कुछ पसंद कर ले।' गोपियों के पकान्न आज गोकुल के गृहों तक ही सीमित नहीं हैं। किसके हृदय में लालसा नहीं है कि उसके करों से सजाये थाल का एक कण नीलसुन्दर के नन्हे लाल अधरों तक पहुँचे। छकड़ों के साथ दूरस्थ गोष्ठों तक से ये जो स्वर्ण-सम्पुट, आच्छादित रत्नथाल चले आ रहे हैं······· !

व्रजराज को बहुत कार्य है आज। इस पिछली रात्रि में वे सोये कहाँ हैं। ब्राह्ममुहूर्त से भी पूर्व तो छकड़ों में जुते वृषभों के गले की घंटियाँ गोकुल को गुञ्जित करने लगी हैं। उपहार के लिये गोप जो कपिला, कृष्णा, पद्मगन्धा सुरभियों के यूथ ला रहे हैं– वे तो हुंकार करती स्वतः इस प्रकार व्रजेन्द्र के गोष्ठ में भागती-दौड़ती चली जा रही हैं, जैसे सदा से वहीं रहती आयी हैं।

'श्रीव्रजराजकुमार की जय !' तुरही, शृङ्ग और शङ्खों के साथ जयघोष गूँज रहा है। गोपों की मण्डलियाँ आ रही हैं—चली आ रही हैं। स्वस्थ, सबल प्रसन्न गोप और अलंकृत, विविध रङ्गों के वस्त्रों से सज्जित छकड़ों पर बैठी गोपियाँ—आज जैसे गोकुल में महापर्व है। आज महापर्व ही तो है—कन्हाई की वर्षगाँठ है न।

व्रजेन्द्र गोपों का अभिवादन स्वीकार करके कुशल प्रश्न कर लें, यही बहुत है। उन्हें सत्कार करने का अवसर कौन देगा। गोप तो आते हैं और बिना पूछे कोई न कोई साज-सज्जा, महोत्सव की

प्रस्तुति में लगते जाते हैं। यहाँ भी क्या कोई अतिथि है ? कन्हैया उनका अपना है और वह नन्द-भवन तो सदा से उनका गृह है।

गोपियों के उपहार—उन्हें ही तो पता है कि कैसी अङ्गुलियाँ कब शोभा देती हैं। राम-श्याम के वस्त्र, आभूषण उन्होंने कितने दिनों से बनाना प्रारम्भ किया, कुछ ठिकाना है ? यह कन्हाई—इसके उपयुक्त आभरण और वस्त्र कैसे बनें, कहाँ से बनें—गोपियों में किसी को संतोष नहीं। सबको लगता है, उनकी कला में कहीं कुछ रह गया है, कुछ अब भी शेष है। कितनी बार उन्होंने उलट-पुलट की है; उन्हें संतोष तो जीवनभर श्रम करके भी होगा, ऐसी आशा नहीं है; पर आज वर्ष-गाँठ है न। उनके उपहार कोई स्वीकृत करेगा—नन्दभवन क्या किसी और का है जो वे उपहार देंगी और कोई स्वीकार करेगा ? कनूँ उनका ही है न, तब वे चाहे जो पहिनायेंगी, चाहे जो देंगी उसे। वे अपनी राशि-राशि सामग्री को अपनी ही रुचि से रखने में पूरी स्वाधीन हैं और यहीं तक बात कहाँ है, उत्सव के प्रबन्ध में उन्होंने अपना भाग चुन लिया है और लग गयी हैं उसमें।

× × × ×

यह भी कोई बात है कि पावस में भी कोई पात्र में जल लेकर स्नान कराये !' उमड़ते घुमड़ते भूरे, काले, धूसर मेघ; उनकी गर्जनध्वनि और विद्युत् का आड़े तिरछे चमक जाना—कन्हाई को तो मयूरों के साथ दोनों हाथ फैलाकर रिम-झिम बूँदों में ठुमकना, गोल-गोल फिरना पसंद है। यह नीलसुन्दर मैया की तनिक-सी दृष्टि बचाकर जब वर्षा में भाई और सखाओं के साथ खुले गगन के नीचे भाग पाता है—गगन धरा के इस रसवर्षी नव जलधर का सौन्दर्य कहाँ से पाये, वह तो अपनी फुहारों से इस पर निछावर ही हो सकता है।

मैया को पावस के प्रारम्भ से ही निरन्तर सावधान रहना पड़ा है। उसका यह चञ्चल मानता ही नहीं कि मैया उसे स्नान करा देगी। वह तो ऊपर के पानी में नहायेगा। पता नहीं क्या बात है, नहाने का मन करके, मैया से रूठकर, मचलकर वह आँगन में आया और नन्हे सीकरों की झड़ी लगी; जैसे मेघ भी अपने इस समानवर्णी की प्रतीक्षा ही करते रहते हैं। दाऊ--वह तो छोटे भाई से और आगे है। मानता तो नहीं यह भद्र और यह नन्हा तोक, सब-के-सब पता नहीं क्यों जलमें ही मग्न रहते हैं। एक बार स्नान की बात हो तो कुछ वह भी सही, वर्षा प्रारम्भ हुई और ये सब बस, बाहर भागने को देखेंगे। एक बार कन्हाई निकल गया बाहर तो फिर मैया के पकड़ने के प्रयत्न में वह इधर-से-उधर किलकता भागता रहेगा। वर्षा तक ही बात कहाँ है, ये सब तो आँगन में, बाहर, कहीं भी जल पा जायँ--बस, श्याम वहीं जमकर बैठ जायगा। सब अपने कोमल चरण और हाथ भिगा लेंगे। कीचड़, जल एक दूसरे के ऊपर, कंधे, अलक, भाल पर लगा-येंगे—जैसे यह भी कोई अङ्गराग हो। मैया बार-बार पकड़ लाती है, बार-बार उसका कौशेय वस्त्र लथपथ होता है और बार-बार ये भाग जाते हैं।

आज श्याम की वर्षगाँठ है। आज यह उल्लास में है। आज मैया ने इसे उष्णोदक से स्नान करा दिया और आज यह भी झट से स्नान करने को प्रस्तुत हो गया। 'आज ब्राह्मणों को बड़ी-बड़ी बहुत-सी गायें देगा, महर्षि शाण्डिल्य के चरणों में प्रणाम करेगा, भगवती पूर्णमासी अङ्क में लेकर आशीर्वाद देंगी।' आज पूजा—दान--उत्सव का उल्लास है। आज इसने स्नान के लिये मचलने का नाम भी नहीं लिया। ठीक तो है, आज आकाश निर्मल है, सम्पूर्ण मार्ग रंग-बिरंगे वितानों से आच्छादित हैं, भूमि विविध मण्डलों से भूषित है, ऐसे समय मेघों को बुलाना कैसे ठीक हो सकता है। कनूँ यही तो जानता है कि जैसे उसके नन्हे करों की अङ्गुलियों की चुटकी देखकर और पुचकारने पर उसके श्वान, बिल्लियाँ, मयूर, बछड़े और गायें दौड़ आती हैं, वैसे ही जब वह नहाने के लिये आँगन में या बाहर खड़ा होकर ऊपर मुख उठाता है तो भूरे-भूरे, काले-काले झुंड-के-झुंड मेघ दौड़ आते हैं। नहीं--आज मेघों को बुलाना ठीक नहीं।

मैया ने एक यह क्या पोटली बाँध दी नन्ही सी उसकी दक्षिण कलाई में ? पीतपट में बँधी यह नीम, गुग्गुल, सरसों, दूर्वा, और गोरोचन की पोटली। मैया कहती है कि इसे खोलना मत और यह कनूँ दूसरे हाथ से इसे टटोल कर ही जान लेना चाहता है। उसीके हाथ में क्यों ? दाऊ के, भद्र के, तोक के हाथ में क्यों नहीं ? मैया कैसे बताये कि आज केवल उसी की वर्षगाँठ है, वह तो कहता है—'नहीं, दाऊ को नहीं तो भद्र को ही बाँध ! इसकी भी आज ही वर्षगाँठ होगी !' अब उसकी समझ में क्या यह आने को है कि तोक की, सुबल की, वरूथप की, सबकी वर्षगाँठ क्यों आज नहीं हो सकती। सब उत्सव साथ हुए तो यह वर्षगाँठ ही ऐसी क्या बड़ी है कि उसे साथ नहीं होना है। यह श्याम हठ कर रहा है—'होगी कैसे नहीं, तू कर दे तो !'

'तू भद्र से बड़ा है न ? बस, यह बड़ा होने से तेरी वर्षगाँठ है !' हाँ, माता रोहिणी की यह बात ठीक ! यह बड़ा है—बड़ा है भद्र से, सुबल से तोक से—सबसे बड़ा है। तब ठीक है, इसी की वर्षगाँठ होगी।

× × × ×

ताम्र के सुदीर्घ पात्र पर दुग्धधवल कौशेय वस्त्र और उसपर बिराजमान ये श्रीनारायण, जैसे वे क्षीराब्धिशायी ही आ विराजे हों ! गणनायक तो प्रथम पूज्य हैं ही और मातृकाओं के साथ कलश में भगवान् वरुण पूजा प्राप्त कर चुके हैं। नवग्रहों के साथ पितामह पूजित हो चुके। अब तो यह गोपकुल के कुलदेव का पूजन चल रहा है। महर्षि शाण्डिल्य का मन्त्र-पाठ, विप्रों की सामध्वनि और व्रजराज दधि, अक्षत से आराध्य का पूजन कर रहे हैं।

'शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।'

महर्षि ध्यान के मन्त्र बोलने लगे हैं; पर बाबा—बाबा के अङ्क में यह जो द्विभुज पीतपरिधान इन्दीवराभनील अपना कुटिल-चिकुर-मण्डित नन्हा मुख उठाकर उनके मुख की ओर ही देख रहा है, बाबा के बाहर और भीतर दूसरी मूर्ति कहाँ आती है। वे ध्यान कर रहे हैं; वे सोच रहे हैं—कहना ठीक है; वे ठीक ही सोच रहे हैं—'बालक को इतनी देर हो गयी ! यह अब भूखा होगा ! इसके अधर कुछ सूखे-से हो गये हैं। संकोचवश कुछ कह नहीं सकता। कितना विलम्ब और होगा ? कितनी देर लगेगी ? यह कैसे रहेगा तब तक ?'

बाबा प्रत्येक अवसर पर चाहते हैं कि समस्त विधान साङ्गोपाङ्ग पूर्ण हों; कृष्णचन्द्र को समस्त देवताओं की सम्यक् प्रसन्नता प्राप्त हो; किन्तु कन्हैया अभी कितना सुकुमार है ! अभी उसे कैसे तनिक भी क्षुधातुर रक्खा जा सकता है। उसे क्या वायु, शीत आदि में रक्खा जा सकता है ?'

महर्षि शाण्डिल्य तो जैसे श्याम के अनुकूल विधान लिये ही रहते हैं। श्याम है—बस, विधान तो पूर्ण हो गये और ये सर्वज्ञ जब कहते हैं कि देवताओं की पूर्ण प्रसन्नता प्राप्त हो गयी तो संदेह को स्थान कहाँ रहता है। महर्षि का अमोघ आशीर्वाद ही तो निखिलसुमङ्गलसाधक है।

श्याम के नक्षत्रेश चन्द्रदेव, भगवान् सूर्य, षष्ठीदेवी, अग्निदेव, देवगुरु, कालाधिदेव, द्वापर-संवत्सर-मास-पक्ष-तिथि-नक्षत्र-राशि के अधिदेवता, जन्मदेव, स्थानदेव, पञ्चभूत, महामाया, परमपुरुष, भगवान् शिव, सम्भूति, प्रीति, संनति, क्षमा, विघ्नवती, भद्रा, इन्द्रादि लोकपाल, भगवान् शेष तथा कुमार कार्तिकेय—पता नहीं महर्षि शाण्डिल्य ने कैसे सबकी पूजा इतने अल्पकाल में करा दी। पूजा तो हो चुकी चिरंजीवियों में भगवान् परशुराम, वानरश्रेष्ठ हनुमान्, भक्तराज प्रह्लाद, बलि तथा श्रीविभीषणजी की और अब तो क्षेत्रपाल ने अपना भाग प्राप्त कर लिया।

महर्षि ! आप अपना तथा विप्रवर्ग का पूजन समाप्त करा लें ! मैं अपनी बात अपने-आप देख लूँगा !' आज गोकुल का परम सौभाग्य—महर्षि शाण्डिल्य ने वर्षगाँठ के परम पूज्य मार्कण्डेयजी के लिये आह्वान-मन्त्र प्रारम्भ भी नहीं किया और ये तेजोमय—ये स्वयं पधारे ! गगन से जैसे स्वयं भगवान् आदित्य अवतीर्ण हो रहे हों ! सबने उत्थान दिया और व्रजेन्द्र के आनन्द की क्या सीमा है अब। लेकिन महर्षि तो अर्घ्य लेना चाहते ही नहीं इस प्रकार। वे इस संस्कार के अधिष्ठाता

हैं, उसकी आज्ञा ही विधि है और इससे श्रेष्ठ विधि और क्या होगी कि आराध्य अपनी पूजामें स्वयं आचार्य बन रहा है। महर्षि शाण्डिल्य और विप्रवृन्द—उनकी संकोचशीलता, शालीनता; किंतु महर्षि मार्कण्डेय ने बाबा से उनका पूजन प्रारम्भ जो करा दिया।

'वह प्रलय-पयोधि, उसमें वट-पत्र पर वह मरकतमृदुल शिशु अपने हाथ से पैर पकड़-कर अँगूठे को चूसता और श्री नन्दराय की गोद में बैठा यह चञ्चल!' पता नहीं महर्षि क्या क्या सोच रहे हैं। उनके नेत्र स्थिर हैं, अश्रुधारा चल रही है और कण्ठ गद्गद हो रहा है।

'आचार्य-पूजन में यह पुरुषसूक्त का स्तवन!' बाबा क्या जानें, ये कल्पान्तजीवी महर्षि भूल तो कर नहीं सकते। 'होगी यह भी विधि; किंतु महर्षि तो कृष्णचन्द्र की ओर ही देख रहे हैं; जैसे इसी की स्तुति कर रहे हों!'

अर्घ्य, पाद्य, आचमन, धूप, दीप—बाबा ने षोडशोपचार से पूजन किया महर्षि ने स्वीकार कर लिया। श्याम को स्वयं अङ्क में लेकर यह पूजन! 'तुम तनिक पी लो तो मैं आज आकण्ठ तृप्त होऊँ! तुम्हारी पद्मगन्धा का यह पुनीत पय--लो, तुम तनिक पी तो लो!' यह महर्षि क्या कन्हाई का उच्छिष्ट लेंगे? ये तो उसी का अनुरोध करने लगे हैं।

'आज इसे आपका परम पावन प्रसाद प्राप्त होना चाहिये!' सदा से वर्षगाँठ के समय शिशु महर्षि के प्रसाद से ही परिपूत होते हैं और आज तो स्वयं महर्षि पधारे हैं। बाबा अपने कृष्णचन्द्र के लिये वह सुयोग कैसे छोड़ दें।

'आचार्य, आप भी कहते हैं? भगवान् शशाङ्कशेखर जिसका चरणोदक मस्तक पर धारण करते हैं...।' महर्षि मार्कण्डेय इतने क्यों विह्वल हो रहे हैं? वे भी महर्षि शाण्डिल्य को आचार्य कहते हैं! जो बाबा के, इस कनूँ के आचार्य हैं, वे सबके आचार्य हों तो बड़ी बात क्या।

'आप और हम सभी उसके नित्य आदेशों को पालन करने को विवश हैं। उसकी लीला का अनुसरण ही तो करेंगे! आप नैवेद्य स्वीकार करें! व्रजेन्द्र अपने कुमार को यह पावन प्रसाद देने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हैं।' पता नहीं क्या कहते हैं यह ऋषिगण। इनका मर्म ये ही जानें। जो भी कहा गया हो, मार्कण्डेयजी ने दूध अधरों से लगा लिया है और अब श्याम दूध पी सकेगा।

'यह महर्षि का प्रसाद—इसे श्याम क्या अकेले पी लेगा? यह तो बाबा से आग्रह करने लगा है, यह अकेले दूध नहीं पियेगा। 'दाऊ, भद्र, तोक, सभी को दो! सबको!' और बाबा अपने कुमार की उदारता पर मुग्ध हो विभाजित करने लगे हैं यह प्रसाद!

—❀⁐❀⁐❀—

बाल-क्रीडा

"बालोऽयमालोलविलोचनेन वक्त्रेण चित्रीकृतदिङ मुखेन ।
वेषेण घोषोचितभूषणेन मुग्धेन दुग्धे नयनोत्सवं नः ॥"

—श्रीलीलाशुक

ये बालक बड़े चपल हैं, ये इधर-से-उधर दिनभर कूदते, फुदकते ही रहते हैं। मैया कितना चाहती है कि ये सब उसके नेत्रों के सम्मुख ही रहें। इसका नीलमणि बहुत सुकुमार है, बहुत दुर्बल है। वह खेलने में लगता है तो फिर क्या उसे क्षुधा का स्मरण रहता है। मैया कितने स्नेह से, कितने आग्रह से उसे दूध पिलाने का प्रयत्न करती है। उसे तो भागने की लगी रहती है। कब मैया छोड़े और वह उसके अङ्क से भागकर सखाओं में जा मिले। कितना प्रयत्न करना पड़ता है दूध पिलाने के लिये। तनिक-सा दूध मुखसे लगाने में भी वह मचलता है। बालक कुछ नवनीत खाय, थोड़ा दूध पिये तो शक्ति आये। यह श्याम तो बस हाथ-पैर नचाता, भूमि में लोट-पोट होता है दूध के नाम से और प्रयत्न करता है कि हाथ मारकर स्वर्णपात्र का दूध गिरा दे।

'लाल, तेरी कामदा का दूध है न यह! मैंने इसमें पद्ममधु मिलाया है! तू तनिक पी तो ले!' मैया आग्रह करती है और यह मचलता ही जाता है। इसे तो दूध पीना नहीं है; फिर मैया चाहे दाऊ को पिला दे या भद्र को। 'मैं दूसरे को दे दूँगी!' मैया जानती है कि कृष्ण से यह बात नहीं कही जा सकती। दूसरे को देने की बात सुनकर तो यह हठ पकड़ लेगा कि अवश्य दूसरे को दिया जाय। यह तो अपना भाग भी बाँटने को अभी से उत्सुक रहता है; फिर मैया देना चाहें किसी को तो यह उसे कैसे ले लेगा।

'देख न, तेरी चोटी कितनी छोटी-सी है! तू यह कृष्णा का दूध पी ले तो तेरी चोटी भी दाऊ की भाँति बड़ी हो जाय!' मैया को सदा कोई-न-कोई बहाना ढूँढ़ना पड़ता है और उसका यह कन्हाई अपनी चुटिया टटोलने लगा है। मैया कहती है तो अवश्य उसकी चुटिया दाऊ से छोटी है—छोटी तो है ही। तब क्या दूध पीले वह? तनिक संदिग्ध तो हो गया दीखता है।

'ले, तू दूध पी तो ले!' मैया का आग्रह कहीं शिथिल हो सकता है।

'तू रोज मुझे दूध पिलाती है! मेरी चोटी तो बड़ी नहीं हुई!' कन्हाई बराबर चुटिया टटोल रहा है।

'लाल, बड़ी क्यों नहीं होगी। इतनी बड़ी तो हुई है। तू दूध पी तो यह खूब बड़ी हो जाय!' मैया का स्वर उमग उठा है। यदि चोटी बढ़ जाय तो दूध पी लेना ही ठीक है। श्याम ने कुछ नहीं कहा, मैया के लिये तो इतना ही बहुत है। उसने पात्र मुख से लगा दिया।

'कहाँ, यह कहाँ बढ रही है! एक घूँट, दो घूँट और मुख हटा लिया इसने। यह भी कोई बात है कि दूध पिया जाय और चोटी न बढ़े। एक हाथ से चोटी पकड़े यही तो देख रहा था कि कितनी बढ़ती है वह।

'बढ़ती क्यों नहीं है! तू इसे छोड़कर दूध पिये, तब तो बढ़ेगी!' मैया हँस पड़े तो उसका यह नटखट भाग खड़ा हो। इसे तो किसी प्रकार दूध पिलाना है। 'बात ठीक है, हाथ से पकड़ने पर चुटिया कैसे बढ़ती; किन्तु अब तो बढ़ गयी होगी। अब तो हाथ छोड़कर दूध पिया है। अब देख लेना चाहिये!' यह चुसकीभर दूध पीकर ही फिर टटोलने लगा है।

'मैं नहीं पीता दूध !' अब हो गया। इस समय तो इसे रोका नहीं जा सकता। अब तो पकड़ने पर लोट-पोट होने लगेगा।

'एक घूँट ! बस एक घूँट !' मैया अब कितना भी कहे, अब क्या यह सुननेवाला है।

अरे, सब कहाँ गये ?' मैया क्या करे, तनिक इधर-उधर दृष्टि गयी और सब-के-सब बच्चे कहीं खिसके। पता नहीं कहाँ गये होंगे, क्या करते होंगे सब। मैया तो सेविकाओं को इधर-उधर दौड़ाकर भी कभी निश्चिन्त नहीं हो पाती। सेविकाओं का और गोपियों का ही क्या भरोसा ? सब-की-सब खड़ी-खड़ी देखती और हँसती हैं। श्याम को देखते ही सब खड़ी रह जाती हैं। कोई समाचार नहीं देता। कोई उसके चपल को उठा नहीं लाता।

अभी उसी दिन की बात है; मैया सबको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गोष्ठ पहुँच गयी। ओह, उसका नीलमणि, दाऊ, भद्र—सबने एक-एक बछड़े की पूँछ पकड़ रक्खी थीं। बछड़े इधर-उधर हो रहे थे और बालक किलकते उनके साथ डगमग पदों से चल रहे थे। गोपियाँ हँस रही थीं खड़ी हुई। 'चञ्चल बछड़े—नारायण ने कुशल की, कोई कूदा नहीं। कोई बालक गिरा नहीं।' मैया ने देखते ही श्याम और भद्र को उठा लिया, दाऊ को हाथ पकड़कर ले आयी।

'अवश्य सब गोष्ठ में ही गये होंगे। इन सबों को बछड़ों के साथ खेलना ही अच्छा लगता है।' मैया सीधे गोष्ठ पहुँचेगी ही। गायें भी तो इनको देखते ही हुंकार करने लगती हैं। बछड़े तो इन सबों के पास ही घूम-फिरकर कूदते होंगे।'

यह क्या है—यह क्या देखती है मैया ? उसका श्याम दूध पी रहा है। कामदा के स्तनों में मुख लगाये वह दूध पी रहा है। उसकी देखा-देखी यह दाऊ भी इसी गौ के दूसरे स्तन में मुख लगा रहा है और तब भद्र ही क्यों छोड़ दे ? मधुमङ्गल भी इन सबों के साथ ही लगा है दूध पीने में।

श्याम दूध पी रहा है—गोपियाँ, दासियाँ गोष्ठ-सेवक, सब चुपचाप मूर्ति की भाँति खड़े हैं। मैया को भी खड़ा ही होना है। उसका लाल दूध पी रहा है—अपनी कपिला का धारोष्ण दूध। उसके इस दुग्धपान में बाधा नहीं पड़नी चाहिये।

काली, स्निग्ध, घुँघराली अलकों में गुम्फित मुक्तादाम, भाल पर कज्जल-बिन्दु, अञ्जन-रञ्जित दीर्घ लोचन, कण्ठ में बाल-विभूषण, कटि में रत्नमेखला, करों में कङ्कण, पदों में नुपूर और यह दिगम्बर शिशु-मण्डली दूध पीने में लगी है। अरुण कर-चरण गोमयमण्डित हो गये हैं, घुटनों तक पैरों में गोबर लगा है। दोनों कर भूमि पर टेककर, घुटनों के सहारे बैठे, मुख ऊपर किये, गायों के स्तन मुख में लिये ये सब दूध पी रहे हैं। लाल-लाल अधर और उनसे झरती दूध की धारा—चिबुक, वक्ष, कर—सभी पर उज्ज्वल दूध गिर रहा है। गायों के स्तन से जो अजस्र धारा चल रही है, वह क्या इन नन्हे मुखों में आ सकती है ? अलकों पर, भाल पर, और स्कन्धों पर भी दुग्ध-बिन्दु जगमग कर रहे हैं।

कपिला हुंकार कर रही है स्नेह से बार-बार और बार-बार श्याम को सूँघ रही है। 'कहीं यह कन्हाई के मृदुल अङ्ग को चाटने न लगे।' मैया के, गोपियों के, हृदय बार-बार धक्-धक् करते हैं। यह कामदा भी सम्भवतः समझती है—उसकी रूक्ष जिह्वा से यह किसलयकोमल कैसे चाटा जा सकता है। बार-बार वह सूँघती है, मुख हटाकर जिह्वा निकालती है और फिर हटा लेती है। वह हुंकार कर रही है। उसके स्तनों की धारा तो मधुमङ्गल के मुख से भी बाहर निकल रही है। सभी गौएँ हुंकार कर रही हैं। बालकों ने अनेकों के स्तनों से मुख लगा लिये हैं; किंतु कामदा—आज कामदा की तुलना किससे है। श्याम उसका दूध पी रहा है और पी रहे हैं उसका दूध दाऊ, भद्र, मधुमङ्गल। उसके चारों स्तन धन्य हो गये हैं। गायें उसकी ओर मुख उठाकर देख रही हैं। सबके स्तनों से झरती दुग्ध-धारा से गोष्ठ पिच्छल हो उठा है।

यह कूद रहा है कामदा का सौष्ठव ! यह तो कभी श्याम, कभी दाऊ, कभी भद्र और कभी मधुमङ्गल को सूँघता कूद रहा है। कितना प्रसन्न है यह। बार-बार विचित्र स्वर में 'बें' करके फुदकता

है। जैसे सबको प्रोत्साहित करता हो—'पिओ, खूब पिओ ! मेरी माँ का दूध कितना मीठा है। तुम सब भरपेट छक कर पी लो !'

कन्हाई ऊपर मुख किये, अर्ध-मुकुलित लोचनों से आनन्दमग्न दूध पी रहा है—दूध पी रहा है वह। कुछ आहट हुई, किसी की चूड़ियाँ या कङ्कण खनके, या उसका नन्हा उदर भर गया ? कौन जाने, उसने गौ का स्तन छोड़ा और तनिक मुख मोड़ा पीछे को। जैसे कोई बड़े संकोच में पड़ गया हो—*'कब आयीं ये गोपियाँ ? यह मैया कब आयीं ?'* और अब तो वह दोनों हाथ उठाकर मैया की गोद में आने को दौड़ आया है। श्याम के अङ्ग दूध और गोमय से लिप्त हैं, मैया के कौशेय वस्त्र—कहीं माँ इसे सोचा करती है। मैया के अङ्क में तो पता नहीं कितनों को आना है। सभी तो दूध पीना छोड़कर दौड़े आ रहे हैं। अब इन सबसे उलझने में भी एक आनन्द ही है।

'मैं तुझे नहीं लूँगी। मैं तो भद्र को लूँगी।' कन्हाई दोनों हाथ उठाये, अञ्चल पकड़े मचल रहा है और मैया उसके मुख की ओर देखती हँस रही है मन्द-मन्द। यह श्याम हठ कर रहा है, अनुरोध कर रहा है—मैया उसे गोद में ले ले। भद्र को भी ले ले तो आपत्ति नहीं और मन में आये तो दाऊ को भी ले ले; पर उसे भी ले ले। ले ले उसे।

श्याम आग्रह कर रहा है—कोई युग-युग, कल्प-कल्प की अविरल साधना, अविश्रान्त अभीप्सा लिये प्रतीक्षा करता है कि यह नील-सुन्दर एक क्षण को अपने श्रीचरणों से उसके अन्तर को आलोकित कर दे, योगीन्द्र, मुनीन्द्र तथा भगवान् शशाङ्कशेखर भी शत-सहस्र वर्षों की समाधि में इसे अपने हृदय में आसीन ही करना चाहते हैं और आज यह मचल रहा है—मचल रहा है कि मैया इसे अङ्क में उठा ले। मैया उठायेगी तभी तो उसकी महिमामय गोद मिल सकेगी इसे।

कन्हाई हाथ उठाये है और मैया हँस रही है—'मैं भद्र को लूँगी !' श्याम ने अपने सखाओं से अमर्ष करना कहाँ सीखा है। वह तो कह रहा है—'भद्र, तू आ ! तू आ जा तो यह मुझे भी ले लेगी !'

× × × ×

श्याम रूठ जाय—मैया कितना बचाती है कि यह न रूठे। भूमि में लोट-पोट होने लगेगा, कोई गोद में लेना चाहे तो और खीझेगा, और रोयेगा ! उठानेवाले को अपने चरणों, करों से मारेगा, उसकी नासिका, नेत्र, कान, मुख नोचना चाहेगा और बार-बार भूमि में उतरने को उझकेगा ! रोते-रोते कमल-दल-लोचन लाल हो जायँगे, कज्जल कपोलों पर फैल जायगा और हिचकेगा, रोयेगा ही फिर। फिर इसे क्या चुप करना सरल होता है ?

मैया के प्राण व्याकुल हो उठते हैं, उसके हृदय को जैसे कोई मुट्ठियों से पकड़कर मरोड़ने लगता है।—उसके नीलमणि के नेत्रों में आँसू आयें…! बाबा, गोप, गोपियाँ, माता रोहिणी—फिर कहाँ किसे दूसरा कुछ कार्य दिखायी दे सकता है। राशि-राशि खिलौने, विविध प्रकार के मिष्ठान्न, अद्भुत-अद्भुत पक्षी—पर जब यह मचलता है, कुछ भी पास आया और फेंक देगा उठाकर उसे। मैया को छोड़कर तब उसे कौन छू सकता है। दाऊ, भद्र, तोक—श्याम रोने लगा और फिर सब रोयेंगे—सब रोयेंगे। सब न रोयें तो बात सरल है, श्याम अपने किसी सखा के हाथ को रोते में भी हटा नहीं सकता। दाऊ अपने नन्हे हाथों भाई के आँसू पोंछने लगे—कन्हाई चुप तो हो ही जायगा तब और कहीं भद्र या तोक पास पहुँच जायँ, श्याम तो इनको उदास देखकर ही हँसने लगेगा; पर जब ये सब उसे रोता देखकर स्वयं रोने लगते हैं—मैया, माता रोहिणी, सभी अत्यन्त व्यग्र हो उठते हैं।

आज अँधेरा होने लगा और बालक खेल में लगे तो फिर क्या प्रकाश और क्या अँधेरा; पर मैया को तो क्षण-क्षण भारी होने लगा था। उसने किसी प्रकार श्याम को उठाया अङ्क में और वह रूठ गया। अब तो रूठ गया वह ! वह अभी खेलना चाहता था, मैया क्यों उसके साथियों को घर-घर भेजने लगी। अब तो मचल गया वह ! लो, लेट गया भूमि पर और लगा चरण उछालने।

'लाल, तू देख तो सही ! देख, सब हँस रहे हैं ! सब कहते हैं कि कनूँ रोता है और यह चन्द्रमा—देख तो तू कि यह चन्द्रमा कितना बड़ा, कितना सुन्दर निकला है !' मैया ने अपने रोते,

धूलि-सने नीलमणि को अङ्क में लिया! उसके हाथ-पैर चलते रहे, रोता रहा, उतरने को मचलता रहा वह और मैया ने ठुड्ढी पकड़कर उसका मुख पूर्व की ओर कर दिया। यह शशि—पूर्णिमा का यह चन्द्र; किन्तु कृष्णचन्द्र की तुलना कैसे करे वह। मैया तो एकटक अपने इस नित्यपूर्ण, नित्य निर्मल चन्द्र को एकटक देख रही है। रोने से नेत्र और मुख अरुण हो गये हैं, कपोलों पर अञ्जन के साथ बड़ी-बड़ी बूँदें झलमल कर रही हैं, पलकें भीगी हैं! मैया अञ्चल से मुख पोंछने लगी है इसका। यह किसी प्रकार चुप तो हुआ। चन्द्र इसे बहुत सुन्दर लगा है आज, कितने ध्यान से देख रहा है।

'मैया, मैया री, मैं इसे खाऊँगा!' दोनों हाथ उठा कर यह जैसे पकड़ लेगा चन्द्रमा को। इतना उज्ज्वल, इतना चिकना चन्द्र—अवश्य यह मीठा होगा! अब मैया को हँसी न आये तो क्या हो और यह उसके मुख पर हाथ रखकर खीझने लगा है—'तू दे, दे मुझे! मुझे भूख लगी है!'

'लाल, तू माखन खा ले! खूब मीठा माखन!' कहीं श्याम फिर न रोने लगे! मैया का हृदय अभी से शङ्कित हो गया है।

'ना, मैं तो इसे खाऊँगा!' यह हठी इस प्रकार भुलावे में कहाँ आता है।

'छिः! यह रोयेगा; यह तो तेरे प्राणियों-जैसा चलता-फिरता है! इसे कहीं खाया जाता है!' मैया ने समझाने का प्रयत्न किया।

'मैं इससे खेलूँगा!' श्याम ने पता नहीं क्या समझा प्राणियों-जैसा चलता-फिरता—कोई बछड़ा, कोई बिल्ली, कोई श्वान, कोई पक्षी—ऐसा ही कुछ; इतना सुन्दर प्राणी—तब तो इसके साथ खेलना बड़े मजे की बात है। कनूँ अपने दोनों हाथों की अँगुलियों से बुलाने लगा है—'आ, आ जा!'

'मैया, तू इसे पकड़ दे! मेरे बुलाने से तो नहीं आता यह!' जब कोई मयूर, कोई बिल्ली पकड़ में नहीं आती तो यह कनूँ माता रोहिणी या मैया से ही तो कहता है। यह चन्द्रमा भी बुलाने से नहीं आता।

'लाल, यह नहीं आयेगा! इसे तो दूर से ही देखते हैं!' मैया समझ गयी है कि यह बहाना ठीक नहीं हुआ। अभी से वह सोचने लगी है, क्या किया जाय।

'आयेगा क्यों नहीं! तू पकड़ दे! पकड़ दे तू!' अब कन्हाई माता के हाथ खींचने लगा है। मैया हाथ उठाकर कहे कि दूर है, मेरे हाथ नहीं आता, तो यह कैसे मान ले। मैया पकड़ती नहीं, यह कैसे हो सकता है कि मैया के हाथ न आये यह। 'तू दौड़, पकड़ ला इसे! मैं इसे लूँगा! मैं खेलूँगा इसके साथ!' गोपियाँ हँस रही हैं, माता रोहिणी आशङ्कित हो गयी हैं और मैया तो पुचकारने में लगी है।

'मैं चन्द्र लूँगा! ला तू!' श्याम मचलने लगा! मचलने लगा! अब रोयेगा वह!

'श्याम रोयेगा! रोयेगा यह सुकुमार! इसके ये नेत्र लाल हो जायँगे!' मैया व्यग्र है, प्राण तड़प रहे हैं। क्या करे-क्या करे? और वह तो हँस पड़ी—'तू चन्द्र ही लेगा न! ले, मैं इसे बुलाये देती हूँ! तू तनिक बैठ तो यहाँ!' श्याम प्रसन्न हो गया है। आनन्द से बैठ गया है। वह चन्द्र लेगा! चन्द्र के साथ खेलेगा!

'ले, चन्द्र इसमें आ गया! अब तू ले ले इसे!' मैया ने भी अच्छी युक्ति सोच ली। जल-पूर्ण स्वर्ण-पात्र हाथ में ऊपर उठाकर पुकार लिया चन्द्रमा को और पात्र रख दिया भूमि पर कन्हाई के सम्मुख।

'हाँ, चन्द्र आ तो गया!' कन्हाई ने मस्तक झुकाकर देख लिया है और अब प्रसन्न होकर ताली बजा रहा है। यह रहा चन्द्र! अब पकड़ेगा इसे और फिर दाऊ, भद्र, सबको दिखायेगा! दोनों हाथ डाल दिये हैं जल में! गोपियाँ हँस रही हैं। मैया भी मन्द-मन्द हँस रही है; पर श्याम अपनी धुन में है। यह चन्द्र बड़ा चञ्चल है। इतने वेग से जल में नाचता है कि पकड़ने में ही नहीं

आता। 'कहाँ गया ?' जल और वेग से हिला और श्याम हाथ निकालकर पात्र के इधर-उधर झाँकने लगा है। है तो पात्र में ही; पर पकड़ में जो नहीं आता।

'तू पकड़! पकड़ इसे!' बहुत प्रयत्न कर लिया, अब स्वयं नहीं पकड़ सकता तो मैया का हाथ पकड़कर आग्रह करने लगा है।

'कनूँ, देख न! यह चन्द्र तो रोता है! तेरे भय से काँपता है! तू जाने दे अब इस बिचारे को!' मैया को तो भय है ही कि कहीं फिर यह हठ न करने लगे।

'चन्द्र रोता है!' श्याम कुछ सोचने लगा है। रोता ही होगा, काँपता तो है ही और क्या पता यह सब पानी उसका आँसू ही हो तो। कोई रोता है, कोई भय से काँपता है, यह कल्पना भी इसे कहाँ सह्य है। 'ना, ना, छोड़ दे! छोड़ दे तब इसे!' मैया का हाथ पकड़ कर वह स्वयं रोकने लगा है।

'मेरे, लाल! देख, चन्द्र कितना प्रसन्न हो गया! वह तुझे आशीर्वाद देता है!' मैया ठीक कहती है। श्याम तो देखता ही है कि चन्द्र ऊपर आकाश में अब काँपता नहीं। खूब प्रसन्न दिखायी पड़ता है।

आज बहुत रोया है मैया का यह हृदयधन, बहुत देर रोया। अब थक गया है। रात्रि हो गयी है। अब तो इसे दूध पीकर सो जाना चाहिये।

—❀❀❀—

मृद्-भक्षण

"मध्येगोकुलमण्डलं प्रतिदिशं हम्भारवोज्जृम्भिते
प्रातर्दोहमहोत्सवे नवघनश्यामं रणन्नूपुरम् ।
भाले बालविभूषणं कटिलसत्सत्किङ्किणीमेखलं
कण्ठे व्याघ्रनखं च शैशवकलाकल्याणकार्त्स्न्यं भजे ॥"

—श्रीलीलाशुक

"कनूँ, यह मेरा ग्रास है ! यह बाबा का है ! यह तेरी बड़ी माँ का है—बस !" मैया अपने नीलमणि को भोजन करा रही है। यह कन्हाई एक ग्रास किसी प्रकार लेता है मुख में और फिर इधर-उधर नाचने, घूमने लगता है। मैया पात्र लेकर बार-बार उसके पास जाती है। किसी प्रकार एक नन्हा-सा ग्रास दे पाती है और फिर यह इधर-उधर फुदकने लगता है।

दही-भात से सने लाल-लाल ओष्ठ, चिबुक और वक्षपर भी गिरा लिया है इसने। मैया कितना प्रयत्न करती है कि यह कुछ खा लिया करे ! व्रजेन्द्र नित्य भोजन के समय इसकी प्रतीक्षा करते हैं। दाऊ तो बुलाने पर आ भी जाता है और व्रजेश के थाल के पास बैठ जाता है; किंतु इस चञ्चल को बुलाने के लिये कितना मैया को श्रम करना पड़ता है। यह न आये तो व्रजेश कैसे मुख में ग्रास दे लें। इसे और भद्र को अङ्क में बैठाकर ही तो वे भोजन प्रारम्भ करते हैं। बालकों के मुख में नन्हे-नन्हे ग्रास देनेपर ही उन्हें भोजन रुचिकर हो सकता है। लेकिन यह चञ्चल—इसे तनिक अवसर मिला और भागा किलकता हुआ। इसे तो मैया ही किसी प्रकार दो-चार ग्रास खिला पाती है।

'अरे, तनिक ठहर तो ! ला, तेरा मुख तो धो दूँ ! कहीं जूठे मुख भी खेलने जाते हैं !' अब तो मैया को जल लेकर इसके पीछे चलना है। यह क्या खड़े होकर सीधे मुख धुला लेगा। मैया पकड़कर किसी प्रकार ही धो सकती है अब तो इसके हाथ, मुख, चिबुक और वक्ष।

× × × ×

"मैया, तू मुझे छोटी-सी मोटी रोटी तो दे ! खूब चुपड़ दे माखन ! हाँ, सब-की-सब मैं अकेला खाऊँगा ! दाऊ को नहीं दूँगा !" आज बड़े भाई से यह मान पता नहीं क्यों जग उठा है।

"क्यों लाल ? दाऊ को तू क्यों नहीं देगा ?" मैया को रोटी बनाकर देते कितनी देर लगती है अपने नीलमणि के लिये ही तो वह इतने सबेरे स्वयं रोटी बनाने लगी है।

"नहीं दूँगा—तुझे क्या ! खूब मोटी, खूब छोटी रोटी दे तो तू ! मेरे हाथ-जैसी छोटी !" कन्हाई रूठा नहीं है, वह तो आनन्दमग्न है और यह रोटी लेकर आ गया आँगन में वह। तनिक तनिक, दो-तीन चावल-जितनी तोड़ता है और मुख में डाल लेता है

बायें हाथ पर छोटी-सी माखन-चुपड़ी रोटी, दाहिने हाथ से तनिक-तनिक तोड़कर मुख में देता यह कन्हाई ! यह दिगम्बर नवजलधरसुन्दर अपने कटि की किङ्किणी, नूपुर को रुन-झुन करता घूम-घूमकर नाच रहा है ! ये कपि, ये म्याऊँ-म्याऊँ करती बिल्लियाँ, ये संग-संग नाचते मयूर—मैया ने सबके लिये व्यवस्था कर दी है; किंतु न बिल्लियों को दूध पीना है, न मयूरों को दाना चुगना है और न कपियों को मोदक ही चाहिये। ये काक तक तो दधि-चावल की ओर देखते नहीं। सब कन्हाई को घेरे हैं, सब इसके साथ लगे हैं। यह दाहिने हाथ के अङ्गुष्ठ और तर्जनी से नन्हा-सा कण रोटी में से तोड़कर कभी अपने मुख में रख लेता है और कभी किसी की

और फेंक देता है। इसके एक कण पर जब सब दौड़ते हैं तो यह किलकता है, हँसता है और मैया की ओर देखता है। रोटी लिये-लिये नाच रहा है।

'कनूँ, कनूँ, देख मेरी रोटी!' अब तो यह आया दाऊ और यह भद्र! सखाओं की मण्डली ही आ गयी मैया के प्राङ्गण में। मैया, गोपियाँ, सब एकटक मूर्ति-सी देखने लगी हैं इस बाल-मण्डली को। सब रोटियाँ लिये नाचने में लगे हैं, सब दो अँगुलियों से तनिक-सा टुकड़ा तोड़ते हैं और या तो मुख में रख लेते हैं या किसी दूसरे सखा के मुख में दे देते हैं अथवा किसी कपि, पक्षी या बिल्ली की ओर फेंकने का प्रयत्न करते हैं।

'दाऊ को नहीं दूँगा!' कन्हाई तो कब का भूल गया इसे। वह तो बार-बार बड़े भाई को, भद्र को, तोक को सभी सखाओं को, खिलाने का प्रयत्न कर रहा है और सभी तो उसे खिला रहे हैं।

इस काग पर कनूँ की कुछ विशेष कृपा दीखती है! यह कौआ बिचारा अब तक कोई कण न पा सका। श्याम इसे पूरी रोटी ही दिखाता है और जब कौआ उड़ता है पास आने को तब रोटी पीछे करके मैया की ओर भागता है! कौए को भी अँगूठा दिखा कर चिढ़ा रहा है। 'लो अब!' कौआ कब तक इस प्रकार ठगा जाय। अबकी तो उसने रोटी लपक ही ली! सब-की-सब रोटी लेकर वह उड़ा, वह उड़ा जा रहा है। उसके भाग्य जग गये। श्याम के हाथ की जूठी रोटी—यह सुर-मुनि-दुर्लभ परमपावन प्रसाद आज वह छककर खायेगा!

बड़ा ढीठ है यह काक! कोई तो कनूँ के करों से कुछ नहीं छीनता। ये कपि तक तो कुछ उसके सम्मुख धरे पात्र से उठाने का साहस नहीं करते। मयूर, बिल्लियाँ, कोई कभी उससे कुछ इस प्रकार नहीं लेता और यह काक—यह तो अद्भुत काक है, कोई काक भी इतना साहस कहाँ करता है; किंतु कन्हाई तो वैसे ही हाथ फैलाये रोटी लेकर जाते काक को देख रहा है। कुछ आश्चर्य, कुछ प्रसन्नता ही है उसके मुखपर। उसका मुख तो कहता है—'बड़ा अच्छा है, बड़ा अच्छा है यह काला पक्षी! मैं इसे फिर रोटी लेकर बुलाऊँगा और यह फिर ऐसे ही रोटी लेकर उड़ेगा।' सम्भवतः इतने छोटे कौए का इतनी बड़ी रोटी लेकर उड़ना ही श्याम के कुतूहल का कारण है। कौन जाने भुशुण्डि ही इस प्रसाद से पवित्र होने आये हों!

× × × ×

'कनूँ, ला, मुझे तो दे!' कोई गोपी श्याम के हाथ का मोदक माँगे; परिणाम एक ही है, यह देने को हाथ बढ़ाकर झट खींच लेगा और अँगूठे दिखायेगा। यह अँगूठे दिखाना सम्भवतः मधुमङ्गल ने सिखा दिया और यह उसे तो बार-बार अँगूठे दिखाकर चिढ़ा देता है।

'लाल, तू मुझे नहीं खिलायेगा!' माता रोहिणी, मैया—भला, इनको भी कहीं अँगूठा दिखाया जा सकता है। यह तो कन्हाई के मनकी बात है कि वह दो अँगुलियों से तनिक-सा मोदक तोड़कर मुख में देगा या पूरे-का-पूरा ही खिलाना चाहेगा; पर हाथ पर देना तो उसने सीखा है नहीं। हाथ पर तो वह किसी सखा के नहीं देना चाहता। वह तो अपने करों से ही खिलायेगा और जब वह एक हाथ से किसी के अधर पकड़कर 'मुख खोल' का हठ करने लगे तो मुख न खोलने का एक ही अर्थ है कि फिर वह अपने नन्हे बायें हाथ से चपत लगाने का प्रयत्न करेगा! मुख तो खोलना ही पड़ेगा। किसी के मुख में अपना पूरा मोदक देकर दोनों हाथों से तालियाँ बजाता, मस्तक हिला-हिलाकर फिर खूब प्रसन्न होता है यह।

'कनूँ! कनूँ! श्याम! आजा भैया!' माता रोहिणी पुकारती रहें, खेल में लगने पर कन्हाई कहाँ सुनता है। माता को पास आते देख यह भाग खड़ा होता है हँसता हुआ और बलात् पकड़ने पर तो रोने लगेगा। धूलि में लोट-पोट होने लगेगा। माता को तो सदा लौटकर व्रजरानी को ही भेजना पड़ता है।

"श्यामसुन्दर, देख न, कितनी देर हो गयी! तू भूखा है, आ दूध पी ले! तेरे बाबा भोजन करने बैठे हैं और तुझे पुकार रहे हैं!" श्याम कहाँ ध्यान देता है।

"देख, तेरे सब सखा कैसे स्नान किये हैं ! इनकी माताओं ने इनको कैसे अलङ्कार पहिनाये हैं ! तू भी स्नान कर ले ! मैं तुझे भी आभूषण पहिना दूँ ! तू इनसे कम कैसे रहेगा !" लेकिन कन्हाई तो सुनता ही नहीं। वह तो हँसता हुआ भाग ही रहा है।

"हाँ, तू विप्रों को गोदान करेगा न ! चल तो, आज तो तेरा उत्सव है !' यह बात है कुछ सोचने की। विप्रों को गोदान—श्याम का सबसे प्रिय कार्य है यह और अब मैया ने उसे पकड़ पाया है। गोदान तो होगा ही, कृष्णचन्द्र प्रसन्न रहे तो व्रजेश नित्य सहस्रशः गोदान करने में क्यों न संतुष्ट रहें। मैया ने बालकों को समझा लिया है। सबको साथ ले आ रही है। गोपियाँ अपने पुत्रों को ले जायँगी नन्दभवन से। श्याम अपने सखाओं को छोड़कर खेल से पृथक् भी तो नहीं हो सकता और अब उसे भोजन करना चाहिये। भूखा हो गया होगा वह।

× × × ×

'मैया, मैया, देख, दाऊ मुझे चिढ़ाता है !" आज कनूँ अपने भाई से झगड़ आया है। यह भी कोई बात है कि वह किसी के धूलि के घरौंदे न बिगाड़े। उसने भद्र के घरौंदे बिगाड़ दिये तो क्या हुआ। दाऊ को भद्र ने क्यों पुकारा और दाऊ तो कहता है—'कनूँ, काला है ! काला भी कहीं अच्छा होता है !' काला तो तोक भी है, वह क्या अच्छा नहीं है ? वह तो बहुत अच्छा है। कनूँ को तो वह बहुत अच्छा लगता है। लेकिन दाऊ तो चिढ़ाने ही लगा तब, यह मैया से क्यों उलाहना न दे। उलाहना तो बड़ी माँ से भी दिया जा सकता है, ना—ऐसी बात कन्हाई कैसे सोचे। कहीं बड़ी माँ उसके बड़े भाई पर सचमुच खीझने लगे तो ? उसे तो तनिक धमकी देनी है। मैया ही ठीक है, मैया तो कभी दाऊ पर नहीं खीझती, इसी से तो यह मैया के पास आ गया है अपना अभियोग लेकर।

'दाऊ चिढ़ाता है तुझे ?' मैया तो अपने नीलमणि का यह रूप देख रही है एकटक ! ये घुँघराली अलकें, ये धूलिसने कपोल और यह तनिक अरुणाभ हुआ क्षोभभरा मुख—यह कनूँ उसकी भुजा पकड़कर झकझोर रहा है।

'दाऊ कहता है कि मैया ने तुझे हँडिया भर दही दे कर खरीदा है ! तू बाबा का लड़का होता तो गोरा होता न ! मैया, दाऊ ने सबको सिखा दिया है ! सब ताली बजा-बजा कर हँसते हैं, सब मुझे दही से खरीदा बताते हैं।' कन्हाई कहता ही जा रहा है। मैया भी हँस रही है उसकी ओर देखकर।

'तू भी हँसती है—तू तो मुझे ही डाँटती है, मुझे ही मारना सीखा है तूने ! दाऊ को तो तू कभी डाँटती ही नहीं !' श्याम रुष्ट हो गया है। उसका मुख और अरुण हो चला है। उसके विशाल लोचन भर आये हैं। यह भी कोई बात है कि वह उलाहना दे और मैया हँसे। दाऊको यह डाँटती क्यों नहीं।

'मेरे लाल, मेरे नीलमणि !' मैया इन नयनों को भरा कैसे देख सकती है। 'मैं तेरी जननी हूँ, लाल !' मैया का कण्ठ भर आया है। उसके लोचन गोष्ठ की ओर उठ गये हैं, जैसे वह गोष्ठ को—गो माता को साक्षी करके यह बात कह रही हो।

"श्रीकृष्ण, क्या है ?" अरे, यह उपनन्द-पत्नी—बड़ी ताई कहाँ से आ गयीं ? कान्ह तो इधर-उधर देखने लगा है। उसके नेत्र कह रहे हैं कि उसे आशङ्का हो गयी है—मैया कहीं इनसे कह न दे ! ये अवश्य माता रोहिणी से, गोपियों से कह देंगी ! दाऊ—उसका अग्रज—माता खीझेंगी उस पर, उसके सखा डाँटे जायँगे ! अब क्या यह यहाँ टिक सकता है। यह भागा, यह मैया के करों से अपने को छुड़ाकर भागा। अब कहाँ स्मरण है कि इसे कोई चिढ़ाता था। मैया पुकार रही है; लेकिन इसे तो खेलना है और सखा प्रतीक्षा करते होंगे।

× × × ×

'कनूँ, तू मिट्टी खाता है ? देख, मैं मैया से कह दूँगा !' आज इसे क्या हो गया है ? मिट्टी खाने की कैसे सूझ गयी ? व्रजकी यह परम पावन रज—कौन जाने इस रज के स्वाद ने ललचाया या कुछ और बात है; किन्तु श्याम ने एक चुटकी धूलि डाली तो है मुख में। इस धूलि के बड़े ढेर पर बैठकर खेलते-खेलते उसके मन में आयी होगी—'देखें तो धूलि कैसी लगती है !' इधर-उधर देखकर चुपके से एक चुटकी डाल ली मुख में; किंतु यह भद्र बड़ा विचित्र है। यह उसे देखा ही करता है। इसने देख ही लिया उसे मिट्टी खाते।

'खाता हूँ, तेरा क्या। मैं खाऊँगा; जा, कह दे तू !' श्याम कहीं धमकाने से मानता है। यह तो सदा से हठी है। भय कहाँ सीखा है इसने और यह भद्र धमकाने चला है उसे !

लेकिन-लेकिन भद्र तो सचमुच मैया से कहने चला गया। बड़ा मानी—बड़ा क्रोधी है भद्र भी। तनिक भी किसी की सह नहीं सकता। अनुनय करना तो दूर—कन्हाई अकड़ता है उससे ! और वह जा रहा है दौड़ता भद्र। 'तब क्या सचमुच कह देगा मैया से ?' श्याम संकुचित हो गया है, सोचने लगा है।

'कह लेने दो !' अपना मानकर कहता है और यह हठी अपने सम्पूर्ण नील अङ्ग में धूलि लगाये अभी भी धूलि के ढेर पर ही बैठा है !

'नहीं, भद्र कहेगा नहीं ! वह तनिक द्वार की ओट में जाकर फिर लौट आयेगा ! वह क्या पीछे बार-बार देखता जा रहा है मुड़ करके !' यह मुख को दूसरी ओर घुमाये बैठा है। भद्र की ओर नहीं देखना है—किंतु कहीं कह दे तो ?' मन में भय तो है ही। पता नहीं मैया क्या कहेगी। भद्र तो चला ही जा रहा है।

'कनूँ, तू मिट्टी मत खा !' यह भी कोई बात है कि सब-के-सब एक ही बात लेकर उसके पीछे पड़ गये हैं। वह खायगा ! खायगा मिट्टी ! उसने सबको झगड़े के स्वर में कह दिया है। अब सब जाते हैं मैया से कहने तो जायँ।

'मैया कहती है, मिट्टी खाने से पेट में कीड़े पड़ जाते हैं !' भद्र बार-बार देख रहा है पीछे। कन्हाई धूलि पर से उतर तो नहीं गया। वह उतर जाय—वह मान जाय ! मैया यदि इसे खीझने लगे....! कहीं मिट्टी खाने से कीड़े...।' भद्र के नन्हे हृदय में पता नहीं क्या-क्या हो रहा है। वह जा रहा है, मैया के समीप जा रहा है। श्याम उसकी बात नहीं मानता और मिट्टी—कीड़े—नहीं, उसे मैया से कहना ही है।

'मैया, कनूँ मिट्टी खाता है ! हम सब मना करते हैं तो मानता नहीं !' यह दाऊ, ये सुबल, वरूथप, मणिभद्र—भद्र को साथ भर आना पड़ा है। उसकी बात तो दूसरों ने ही कह दी। बात किसी ने कही हो—मैया कहीं कन्हाई को मारेगी तो नहीं ? वह तो सुनते ही दौड़ पड़ी है—कनूँ मिट्टी खाता है ? मिट्टी !'

× × × ×

'क्यों रे, तू मिट्टी खाता है ?' अब क्या हो ? मैया तो आ गयी। वह खूब रुष्ट जान पड़ती है।

'ना मैया, मैंने मिट्टी नहीं खायी !' मैया ने हाथ पकड़ लिया है। अब भागने का भी कोई उपाय नहीं। कन्हाई क्या करे ? उसने सचमुच मिट्टी खायी कहाँ है ? तनिक-सी धूलि जिह्वापर रखना भी क्या कोई खाना है ? वह तो स्वाद ले रहा था।

'तेरे ये सब सखा कहते हैं और तेरा यह बड़ा भाई दाऊ भी तो कहता है !" बड़ी कठिनाई है। इतने सब साक्षी हैं और वे भी सब तुले दीखते हैं। श्याम इधर-उधर देख गया चञ्चल नेत्रों से। कोई उसे सङ्केत से भी आश्वासन नहीं देता। सब दाऊ के पक्ष में हो गये हैं—अच्छा !

"ये सब-के-सब झूठ बोलते हैं !" ऐसे सत्यवादी से काम पड़ जाय तो क्या आपका रोष टिका रह सकेगा ? आप हँसेंगे नहीं ? लेकिन मैया को भय है कि उसके पुत्र ने मिट्टी खायी है और मिट्टी से तो हानि होगी। वह इस बात को हँसी में कैसे टाल दे।

"सब झूठे हैं और अकेला तू सच्चा है!" मैया धूलि में इधर-उधर देखने लगी है। पता नहीं उसे वहाँ क्या पाना है।

"तू मेरी बात सच नहीं मानती तो मेरा मुख तो तेरे सम्मुख ही है, देख ले!" कन्हाई ने तो मुख तभी पोंछ लिया जब सब मैया से कहने चले। मुख में तो व्रजरज थी, उसे भी झटपट मुख चलाकर उदरस्थ कर लिया अब मैया देखे तो भी क्या मिलेगा। श्याम को कहाँ पता है कि जिह्वापर, दन्तों के मध्य में अब भी रज के कुछ कण एवं चिह्न हैं।

"अच्छा, खोल तो मुख!" मैया ने तो सचमुच चिबुक पकड़कर मुख ऊपर उठा दिया। अब तो कन्हाई को मुख खोलना ही पड़ेगा।

× × × ×

मैया रुष्ट है, अब तक क्या तनिक-सी रज मुख में ही होगी?" श्याम ने मुख खोल दिया।

योगमाया—वे उद्भव-स्थिति-संहार-कारिणी निखिललीलामयी क्या कभी प्रमाद करती हैं। श्यामसुन्दर के मुख में अब भी रज के कण हैं, अब भी जिह्वापर एक पतला-सा चिह्न है और मैया के सूक्ष्म निरीक्षण से वह छिपा नहीं रह सकता। वात्सल्यमयी जननी—मैया अवश्य कृष्णचन्द्र पर खीझेगी। मृत्तिका तो शिशु के लिये हानिकर है न! मैया कैसे यह क्षमा कर देगी। श्रीकृष्णचन्द्र ने कह दिया है कि उन्होंने मृत्तिका नहीं खायी। ये नीलसुन्दर—ये सर्वेश सत्यवाक् सत्यसङ्कल्प हैं। व्रज में ये कोई भी लीला करें—हाँ, कहाँ खायी मृत्तिका इन्होंने। व्रज-रज क्या मृत्तिका है? नन्हा-सा कमलसुन्दर मुख, मैया ठुड्डी पकड़कर उसे ऊपर उठा चुकी और झुक गयी उस मुख के सम्मुख देखने के लिये। ये खुले अधर, यह दीखी उज्ज्वल दन्तपंक्ति—योगमाया अब कैसे प्रमाद कर सकती हैं। तनिक-सा मस्तक झुका, पता नहीं अपने आराध्य के लिये या आराध्य को भी सम्मुख खड़ा करके उसका मुख देखने को झुकी व्रजेश्वरी के लिये। नेत्रों में तनिक-सी गति हुई—बस!

श्याम का नन्हा-सा सुन्दर मुख, पतले-पतले लाल-लाल अधर, उज्ज्वल दन्तछवि और इस नीलसुन्दर के कमल-नेत्रों में आशङ्का का भाव कितना सलोना बन गया है। यह डर रहा है, कहीं कोई रेणुका कण रह न गया हो! कहीं मैया देख न ले उसे!

'मैया को क्या हो गया?' सब बालक आश्चर्य से मैया की ओर ही देख रहे हैं। 'यह खीझती तो नहीं, पर इसके नेत्र ऐसे क्यों हो रहे हैं?'

मैया ने चिबुक पकड़कर मुख उठाया श्याम का। कृष्णचन्द्र ने मुख खोला। झुककर मैया ध्यान से देख लेना चाहती थी कि कहीं सचमुच कन्हाई ने मिट्टी तो नहीं खायी है। वह तो जैसे मूर्ति की भाँति स्थिर हो गयी है। उसके नेत्र आश्चर्य से पूरे खुल गये हैं। पलक गिरते ही नहीं। क्या बात है?

"ये जीव! यह काल! ये नाना प्रारब्ध और उनके सञ्चालक! यह कारण-तत्त्व और यह प्रकृति, महत्, अहङ्कार! यह मन, इन्द्रियाँ, त्रिगुण! ये वायु, अग्नि, आकाश, वरुण, इन्द्रादि अधिदेवता! ये सूर्य, चन्द्र, तारकमण्डल! ये महासागर, महाद्वीप, गिरिश्रेणियाँ! ये कानन! ये नदियाँ और ये नगर!" मैया तो अधिदैव जगत् का पूरा दर्शन करके अब अधिभूत जगत् को देखते देखते पृथ्वी देखने लगी हैं।

ये नगर! यह मथुरामण्डल और यह कालिन्दी! यह गोकुल, यह गोष्ठ और ये गोपगण, गौएँ और गोपियाँ! ये व्रजेश्वर! ये बालक और—और यह क्या? यह क्या दूसरी व्रजरानी!' मैया चौंकी। वह अपना ही यह दूसरा रूप कैसे देख रही है? उसका शरीर स्वेदपूरित हो गया है, काँप रहा है। कन्हाई के चिबुक से लगा हाथ नीचे चला गया है और अब नहीं देख सकेगी।

"मैं स्वप्न देख रही हूँ? कहीं मुझे कोई बुद्धिभ्रम तो नहीं हो गया?" स्वप्न कैसे मान ले, वह तो स्पष्ट जग रही है और बुद्धि में भ्रम कैसा। 'मेरे इस पुत्र में जन्म से ही कोई सिद्धि तो नहीं?'

जन्म से सिद्धि होती है, यह सुना तो है। स्मरण आता है कि एक दिन दूध पीते समय जम्हाई लेने पर भी इसके मुख में ऐसे ही अद्भुत दृश्य दिखायी पड़े थे।

"कुछ पता नहीं! तर्क काम नहीं करता। बुद्धि कुछ समझ नहीं पाती। सिद्धि ऐसी कैसे हो सकती है? महर्षि गर्ग ने कहा था कि यह गुणों में नारायण के समान है! कहीं यह साक्षात् नारायण ही तो नहीं? नारायण—मेरे, व्रजेश्वर के, समस्त गोप, गोधन एवं गोकुल तथा सचराचर के स्वामी श्रीनारायण! नारायण प्रसन्न हों! मैं बुद्धिहीना उनकी शरण हूँ!" मैया के नेत्र भाव-पूरित होकर बंद हो गये। उसने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुका लिया।

"हो चुकी लीला—मैया को यह लगने लगा कि यह चञ्चल नन्हा-सा उसका कन्हाई श्री नारायण है, तब तो बन चुकी!" योगमाया चौंकी। उनके आराध्य इसे क्षमा नहीं करेंगे। उनकी पलकों में पुनः एक मन्द कम्पन हुआ। मैया को तो उसका परम पावन वात्सल्य ही चाहिये। उसे ऐश्वर्यबोध के निम्न स्तर में लाने पर क्या श्यामसुन्दर क्षमा करेंगे? यह एक क्षण का विनोद हुआ—बहुत हुआ! मैया का नित्य भाग तो पराभक्तिरूप नित्यवात्सल्य है।

"मैया तो कनूँ को हाथ जोड़ रही है!" बालकों को बड़ा विचित्र लगा। हाँ, उनके ऊधम से ऊबकर गोपियाँ कितनी बार हाथ जोड़ती हैं। जब वे किसी पर धूलि डालने लगते हैं, वह हाथ ही तो जोड़ता है। 'मैया हाथ जोड़कर श्याम को कदाचित् चिढ़ा रही है!' सबने तालियाँ बजायीं।

सब हँस रहे हैं, सब ताली बजा रहे हैं और सब के नेत्रों में व्यङ्ग है। मैया हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर उसे चिढ़ा रही है। कनूँ क्या इतना भी नहीं समझता! यह मैया भी चिढ़ाती है उसे!

"मैया, भूख लगी है मुझे! दूध! दूध!" श्याम मैया के वस्त्र पकड़कर लटक गया। सब इसे चिढ़ाते हैं, बड़े खराब हैं सब! मैया भी--पर अभी तो भूख लगी है और इन चिढ़ानेवाले सखाओं से एक बार मैया की गोद में पहुँचकर पीछा भी तो छुड़ाना है।

"भूख लगी है!" मैया ने सुना, नेत्र खोले और जैसे उसे अभी कुछ और भी बात हुई हो—स्मरण ही नहीं। 'यह नीलमणि भूखा है। उसके वस्त्र पकड़कर गोद में आने को मचल रहा है! इसका मुख क्षुधा से सूख-सा रहा है। अधर किञ्चित् म्लान-से हो रहे हैं।' मैया ने उठा लिया गोद में स्नेहविभोर होकर! 'इसे दूध पिलाना है--यही तो!'
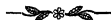
फल-विक्रयिणी

"मधुरिमभरिते मनोऽभिरामे मृदुलतरस्मितमुद्रिताननेन्दौ ।
त्रिभुवननयनैकलोभनीये महसि वयं व्रजभाजि लालसाः स्मः ॥"

—श्रीलीलाशुक

'कोई फल लो ! फल ! जम्बू, नारङ्ग, प्रियङ्गु के फल !' बेचारी वृद्धा आज अपने फलों की टोकरी लिये प्रातः से गली-गली भटक रही है। आज वह नन्दग्राम आ गयी है फल बेचते हुए और कौन ले यहाँ उसके फल ? उसने प्रातः इस ओर बड़ी आशा से प्रस्थान किया। पुलिन्दपल्ली में एकाकिनी बुढ़िया वह—अब उससे बन-बन जाकर फल एकत्र नहीं किये जाते। वृक्षों पर चढ़ने की शक्ति रही नहीं और अच्छे फल क्या यों ही मिल जाते हैं ? जीवन में कभी कच्चे, खट्टे फल बेच कर उसने किसी को धोखा नहीं दिया। अनेक ग्राम—यहाँ तक कि मथुरा के भी अनेक पथ के भवनों के लोग उसके शब्द सुनकर ही फल लेने दौड़ पड़ते हैं। कभी उसे श्रम नहीं करना पड़ता फल बेचने में; किंतु उसके कौन है जो बन से फल एकत्र करके ला देगा। फल हों, तभी तो बेचे जायँ। वह वृद्धा हो गयी, बन-बन नित्य भटकना बड़ा कष्टकर है; पर पेट—पेट की क्षुधा कैसे माने। उसने सुना है कि व्रजपति नन्दराय और उनके व्रज के सभी गोप बड़े उदार हैं। कितने श्रम से कई दिनों में इतने उत्तम फल वह एकत्र कर पायी है। 'अवश्य गोकुल में कोई उसके फलों के सञ्चय का मूल्य समझेगा और तब ठीक मूल्य मिलेगा उसे। कुछ दिन तो विश्राम कर सकेगी वह।' उसके समान फलों को देख-कर ही उनकी श्रेष्ठता को पहिचाननेवाला कदाचित् ही कहीं मिले और आज तो वह अपने फलों पर गर्व कर सकती है। जीवन में इतने उत्तम फल उसे प्रथम वार मिले हैं।

'फल लो ! फल !' वृद्धा का कण्ठ सूख गया है। ध्वनि उच्च होने पर भी रूक्ष है और उसका स्वर खिंचाव नहीं ले पा रहा है। भला, कौन लेगा गोकुल में उसके फल। वह तो प्रातः इधर आकर ही निराश हो गयी। ये झुककर फलभार से झूमते पादप और इनके ये अनोखे फल—वृद्धा फल-विक्रयिणी ने जीवन में ऐसे फल देखे ही नहीं। ये प्रियङ्गु, ये नारङ्ग, ये जम्बू—इतने सुरङ्ग, सुगन्धित फल भी होते हैं—हो सकते हैं, यह तो उसने कभी सोचा ही नहीं था। किस गिनती में हैं उसकी टोकरी के फल यहाँ ! इच्छा हुई थी कि लौट जाय—आशा बड़ी बलवती होती है। वृद्धा के लिये यहाँ से लौट जाना और फिर दूसरे स्थान पर जाने का श्रम सहज नहीं। यह अपार वैभव, ये स्वच्छ मणिजटित भवन—गोपों का ऐश्वर्य तो मथुरा से भी अधिक है। भला, ये सम्राट् की सम्पत्ति को भी लज्जित करने वाले भवन—इनके निवासी क्या स्वयं वृक्षों से फल तोड़ते होंगे ! उसे आशा है कि कोई-न-कोई अवश्य उसके फल ले लेगा।

'फल लो ! फल !' मध्याह्न होने को आया, चरण थक गये, कण्ठ की पुकार मन्द पड़ने लगी, श्वासों की गति बढ़ गयी और अब क्या करे वृद्धा ! गोकुल में किसी ने उसकी ओर—उसकी पुकार की ओर ध्यान ही नहीं दिया। किसी ने सुना ही नहीं। कोई झूठ-मूठ पूछ ही लेता—वह क्या बेचती है ? आज कैसा दिन है ? किसी बालक तक ने उससे फलों के लिये पूछा नहीं। अब नहीं चला जा सकेगा भाग्य ! क्या लाभ और भटकने से ? सभी गलियों में पुकार आयी वह, सभी गृहों के सम्मुख हो आयी।

यह उच्च भवन—यहाँ कदाचित् कोई पुकार ले ! यही तो श्रीनन्दराय का भवन दीखता है, यहाँ से यदि कोई फल लेना चाहे—आज भाग्य ठीक नहीं, जब गोपों ने, बालकों तक ने फल नहीं लेना चाहा तो व्रजाधिप के यहाँ तो वैसे ही उपहार के फलों की राशियाँ लगी होंगी ! कौन

पूछेगा यहाँ! पर—पर एक बार पुकार तो ले, पुकार लेने में क्या हानि। जैसे प्रातः से अबतक पुकार लगी—वैसे एक और सही! लेकिन फलविक्रयिणी वृद्धा जाने या न जाने, इस द्वार की पुकार क्या और द्वारों की पुकार-जैसी हो सकती है? यहाँ आकर भी कोई निराश जा सकता है? यह बाबा का द्वार है और यहाँ एकबार पुकारकर फिर कहीं पुकारना—फिर कहीं भटकना कहाँ शेष रह जाता है।

× × × ×

'फल लो! कोई फल ले लो! जम्बू, नारङ्ग, प्रियङ्गु''''फल!' कोई नहीं आता—किसी ने सुना नहीं जान पड़ता। वृद्धा हताश लौटने जा रही है! आज फल नहीं बिकेंगे उसके?

'फल लो!' कन्हैया चौंका। उसकी घुँघराली अलकें कपोलों पर झूम गयीं और उसने झटके से द्वार की ओर मुख किया—'फल क्या? फल कैसी वस्तु?' वह झटपट दौड़ा द्वार की ओर। दाऊ, भद्र, सब सखा मैया के पास हैं। श्याम अकेले-आज इधर खिसक आया है। यहाँ कहीं छिप जाय और सखा तथा मैया ढूँढ़ें तो आनन्द आये; किन्तु यह फल? अब वह छिपने की तो बात ही भूल गया। फल लेगा और मैया को, दाऊ को, सब को ले जाकर देगा! वह शीघ्रता से द्वार पर आ गया।

'फल! ओ फलवाली, मैं फल लूँगा!' अरे, फल लेकर तो बुढ़िया लौटी जा रही है! द्वार पकड़कर श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा और तब जल्दी से पुकारा उसे।

'फल! ओ फलवाली, मैं फल लूँगा!' कौन बोला? किसकी वाणी है यह? यह कोमल, अमृत-मय स्वर—वृद्धा ने मुड़कर देखा और उसके पैर वहीं रह गये ठिठके हुए। नेत्र स्थिर हो गये। स्निग्ध घुँघराली अलकें, विशाल भाल, दीर्घ नयन, लाल अधर, कानों में कुण्डल, कण्ठ में मणि-माला, भुजाओं में केयूर-कङ्कण, कटि में रत्न-मेखला, चरणों में नूपुर, एक हाथ से द्वार पकड़े, देहली पर खड़ा यह जो इन्दीवरदलश्याम दिगम्बर सौन्दर्यघन शिशु खड़ा है—वृद्धा का शरीर निश्चल हो गया है उसके नेत्रों की पलकें तक नहीं गिरतीं!

'फलवाली, मैं फल लूँगा!' कन्हाई ने पुनः पुकारा। यह बुढ़िया तो सुनती ही नहीं। यह तो बोलती भी नहीं! कब तक इसकी प्रतीक्षा यहाँ से की जाय। कनूँ ने देखा कि पुकारने से यह नहीं आती तो दौड़ गया उसके पास। उसका एक हाथ जो नीचे लटक रहा था, पकड़कर झकझोर दिया—'फल दे मुझे!'

'फल!' वृद्धा जैसे निद्रा से जगी। उसने एकबार अपना हाथ पकड़े, ऊपर मुख किये मोहन को देखा और फिर धीरे से बैठ गयी टोकरी लिये ही। टोकरी मस्तक से उतार कर सम्मुख रख दी उसने।

'लाल, लो देख लो ये फल! बड़े मधुर हैं!' उसने टोकरी के ऊपर का आवरण हटा दिया।

'ये फल!' श्याम ने देखा; फल क्या होता है, यह तो अब समझ लिया उसने और सच-मुच फल हैं बड़े अच्छे। रङ्ग-विरङ्गे, लाल-पीले फल देखकर वह वृद्धा के समीप खिसक आया—'मैं सब फल लूँगा! तू सब-के-सब मुझे दे दे!' कहाँ मिलेगा ऐसा ग्राहक बुढ़िया को।

'तुम क्या मूल्य दोगे इनका?' फलवाली के कोटर में धँसे नन्हे नेत्र तो अपने इस भोले ग्राहक के मुख पर स्थिर हैं। फल लेकर यह चञ्चल कहीं झटपट कूदते भाग जायगा। जितनी देर सम्मुख रहे, उतना ही अच्छा। मूल्य की चर्चा में कुछ देर तो समीप रहेगा; किन्तु हृदय—हृदय तो कहता है—'छिः! तू इससे भी मूल्य माँगती है। अच्छा,''''''' लेकिन यह कैसे सम्भव है। कहाँ वह अन्त्यज पुलिन्द और कहाँ यह गोपाल—कैसे इसे अङ्क में ले सकती है—मन इन तर्कों को कहाँ सुनता है। वहाँ तो एक ही ललक है—यह एक क्षण को गोद में आ जाता।

'मूल्य—मूल्य क्या होता है?' कन्हाई ने इधर-उधर देखा। कोई वृक्ष, कोई पत्ता, कोई पत्थर इस मूल्य नाम का उसने सुना नहीं अब तक। मूल्य किसी पक्षी का नाम है या पशु का? उहुँ, गोकुल में कोई मूल्य होता तो क्या अब तक उसे पता न होता उसका।

'जब कोई वस्तु किसी से लेते हैं तो उसे भी बदले में दूसरी कोई वस्तु देनी पड़ती है, इसी को मूल्य कहते हैं!' वृद्धा को हँसी आ गयी इस भोलेपन पर। उसने समझाया—'अब तुम मुझसे इतने फल लोगे तो मुझे इनके बदले में कौन-सी वस्तु दोगे?'

'बदले में क्या दूँगा ? तू कैसी बुढ़िया है ? मुझे तो मैया नित्य मक्खन देती है, वह तो कुछ नहीं लेती बदले में ! गोपियाँ खिलौने देती हैं, गोप भी तो देते हैं—कोई कुछ नहीं माँगता !' श्याम ठीक कह रहा है। यह कैसी अद्भुत फलवाली है कि माँगने पर भी उसे फल नहीं देती और बदले में कुछ माँगती है। उसे तो न माँगने पर भी सब देते हैं और जब वह किसी की कोई वस्तु नहीं लेना चाहता, उसकी मनुहारें की जाती हैं। उसे आग्रह करके वस्तु दी जाती है। मैया कितना हठ करके मक्खन देती है उसे।

'भगवान् ने अस्पृश्य बनाया ! कङ्गाल बनाया मुझे ! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि तुम्हारे इन कोमल करों में आग्रह करके कुछ दे सकूँ। आज—आज ये नेत्र सफल हुए''' तुम्हें फल ही दे पाती इस प्रकार नित्य'''!' वृद्धा के केवल सूखे अधर काँप रहे हैं। उसके नेत्रों से धारा चल रही है। वह बोल नहीं पा रही है; किन्तु उसकी यह प्रार्थना—जो केवल अन्तर की ही भाषा समझता है, उसने तो कब से स्वीकार कर लिया उसे। उसके कर्णों तक हृदय की मूक ध्वनि को पहुँचने में कौन रोक सकता है और वह ध्वनि पहुँचने पर फिर क्या कभी असफल होती है।

'तू रो मत ! मत रो तू, मैं मूल्य लाता हूँ !' कनूँ किसी के भी नेत्रों में अश्रु देख नहीं पाता। 'यह फलवाली अपने फलों के मूल्य के लिये ही कदाचित् रो रही है।' झट से अपने लाल-लाल हाथों से वृद्धा के नेत्र पोंछ दिये और दौड़ गया एक ओर मूल्य लाने। अभी सभी सखाओं के साथ वह कुछ ही पूर्व तो उस अन्न की महाराशि के समीप क्रीड़ा कर रहा था। सब-के-सब राशि पर बैठे थे और परस्पर अन्न की मुट्ठियाँ एक दूसरे के उदर या कन्धों पर डाल रहे थे। मैया ने सब को भीतर बुला लिया था। श्याम उसी अन्न में से एक अञ्जलि लाने जा रहा है। वह दौड़ा जा रहा है। वृद्धा के नेत्र भी लगे हैं उधर ही। फल लेकर इधर आते समय उसकी दृष्टि भी इन राशि-राशि अन्नों पर पड़ी थी। उसने एक निःश्वास लिया था—'इसका एक दाना भी मेरे भाग्य में नहीं !' और यह नीलसुन्दर उसी ओर अन्न लाने दौड़ा जा रहा है।

श्रीकृष्ण अन्न ला रहा है। उसने अपनी नन्ही अञ्जलि धान्य से भर ली है और अपनी समझ से भली प्रकार सम्हाले आ रहा है। नन्ही-सी अञ्जलि, सुकोमल अङ्गुलियाँ और अञ्जलि बनाना आता कहाँ है इसे। अङ्गुलियों की तथा दोनों करतलों की सन्धि से धान्य गिर रहा है, एक रेखा-सी बन रही है; लेकिन कन्हैया इसे कैसे देखे ? क्या क्या देखे वह ? कहीं कोई उसे इस प्रकार अन्न ले जाते देखकर कुछ पूछ दे तो ? बार-बार वह इधर-उधर सशङ्क देख लेता है और 'कहीं फलवाली उन सुन्दर रङ्ग-विरङ्गे फलों को लेकर भाग न जाय !' वह फलवाली की टोकरी पर भी दृष्टि लगाये है।

'ले अपना मूल्य ! अब झटपट फल दे दे मुझे ! मैं सब लूँगा !' कन्हाई ने टोकरी में अञ्जलि खोल दी और फिर हाथ फैला दिये फल के लिये।

'मेरे इतने फलों का मूल्य यह एक दाना है ?' बुढ़िया ने देख लिया है कि अञ्जलि जब टोकरी में खोली गयी तो उसमें एक ही दाना था।

'एक दाना !' कन्हाई भी चौंका। टोकरी में तो एक ही दाना गिरा है। उसने घूमकर पीछे देखा राशि से यहाँ तक बनी धान्य की उस पतली रेखा को। 'धान्य तो सब मेरे हाथ से गिर गया। मैं तो इतना ले आ रहा था।' उसने अञ्जलि बनाकर बताया। लेकिन अब क्या हो ? एक क्षण देखता रहा वह उस धान्यरेखा और वृद्धा को क्रमशः।

'आज तो तू मुझे फल दे दे ! फिर आना तो मैं तुझे बहुत-सा अन्न दूँगा !' अब पुनः अन्न लेने जाना शङ्का की बात है। कहीं कोई देख ले ! कोई पुकार ले ! 'तू मुझे फल दे दे माँ !' फल तो लेने ही हैं और वृद्धा ऐसे देती नहीं जान पड़ती तो अनुनय करने लगा है वह।

'माँ ! माँ !' वृद्धा के कर्णों में पता नहीं कैसे गया है यह शब्द—शत-सहस्र रूप से जैसे उसके हृदय में यह पहुँचा है। 'माँ !' वह विह्वल हो उठी है। उसका रोम-रोम पुलकित हो गया है। 'माँ !' वह इस सौन्दर्यघन के मुख से अपने लिये 'माँ' सुन रही है।

'मैं फिर तो तब आऊँगी जब मेरे जीवन में यह फिर आयेगा !' पता नहीं बुढ़िया क्या बड़बड़ा रही है। कन्हाई तो आतुर है, उसे ये सुन्दर फल चाहिये। 'लेकिन तुम मेरी गोद में आकर एक बार मुझे माँ कह दो.......!'

'तब तू मुझे सब फल दे देगी न ?' बीच में ही श्याम ने उत्सुकतापूर्वक पूछा। 'सब-के-सब फल ?'

'हाँ !' बुढ़िया की इस 'हाँ' के पूरा होते-न-होते तो नीलसुन्दर उसके अङ्क में आ बैठा और अपनी काली घुँघराली अलकों से घिरा चन्द्रमुख उसके मुख की ओर उठाकर कह रहा है— 'माँ ! माँ, तू अब झटपट मुझे फल दे दे !' लो, वह तो फिर गोद में से सम्मुख खड़ा हो गया अञ्जलि बनाकर। बुढ़िया ने एक-एक करके सब फल भर दिये—सब भर दिये उसी नन्ही अञ्जलि में और सब आ गये। सब आ तो गये, पर यदि वे गिर जायँ तो ? कनूँ ने अञ्जलि वक्ष में लगा ली है। बड़ी सावधानी से वह जा रहा है।

वृद्धा देखती रही—देखती रही और तब भी देखती रही नन्दभवन के उसी द्वार की ओर जब उसके नेत्रों का वह परमधन भीतर जा चुका था। कब वह उठी, उसे पता नहीं और कैसे उसने टोकरी उठायी, यह भी वह नहीं जानती। उसके पग इधर-उधर डगमग पड़ रहे हैं। उसके नेत्रों से अश्रु चल रहे हैं और उसका रोम-रोम पुलकित है। टोकरी—बहुत भारी है यह टोकरी, इतनी भारी टोकरी कैसे ले जाय वह ! इतनी भारी टोकरी ? उसे कौन बतावे कि तेरी टोकरी में रत्न भरे हैं, उनके मूल्य के सम्मुख किसी सम्राट् का सिंहासन भी तुच्छ है ! लेकिन वृद्धा के हृदय में जो महाज्योतिर्मय वह यशोदा का नीलरत्न आ गया है—भला, उसे पाकर इन पत्थरों का भार कौन ढोये। सम्मुख वे नीली-नीली श्रीयमुनाजी की लहरियाँ हैं और यह नीलवर्ण वृद्धा को अब तो आकर्षित करेगा ही। सिर से टोकरी उठाकर झम् से फेंक दिया उसने और एकटक देखती रही जलराशि को। चञ्चलता, लहरियाँ उठीं, एक लहर ने उसके चरणों का स्पर्श कर लिया।

× × × ×

'मैया ! मैया री ! देख, मैं कितने फल लाया हूँ !' कन्हाई ने दूर से ही पुकारा। उसका मुख नीचे झुका है, अञ्जलि वक्ष से लगी है। फलों को सम्हालने में भालपर नन्हे सीकर चमकने लगे हैं।

'अरे, इतने फल तू कहाँ से ले आया ?' मैया ने अपने लाल का श्रम देख लिया। हँसते हुए उठकर अञ्चल फैलाकर फल ले लिये उसने।

'फलवाली ने दिये हैं !' कन्हैया तो इस प्रकार पीछे देख रहा है, जैसे फलवाली उसके साथ ही आयी है। 'तू मुझे खिला तो ! दाऊ को भी खिला, भद्र को भी।' एक ओर से वह सभी सखाओं को, बाबा को, मैया को, सबको खिलाना चाहता है अपने फल। ये फल उसके हैं, वह ले आया है और सब खाकर देखें तो सही कि उसके फल कितने मीठे, कितने अच्छे हैं। अब मैया को तो यह कार्य ही पहले करना है। कन्हाई की धुन पूरी न हो तो वह क्या दूसरा काम करने देगा।

'ये थोड़े-से फल ! ये तो समाप्त ही नहीं होते !' मैया को आश्चर्य हो रहा है। कनूँ ने हठ करके सबको खिलाया है। व्रजराज तक इसके स्वाद की प्रशंसा करते हैं। गोपियाँ बार-बार इन्हीं को आकर माँगती हैं और सबको आग्रहपूर्वक देने पर भी ये समाप्त नहीं होते। मैया ने स्वयं भी तो देख लिया है खाकर—सब ठीक ही तो कहते हैं कि इतने सुस्वादु फल भी होते हैं—यह उन्होंने सोचा ही नहीं।

'अवश्य उस वृद्धा के वेश में कोई देवी पधारी थीं। उन दयामयी ने कृष्णचन्द्र को अपना यह अमृतप्रसाद दिया फलों के रूप में।' श्रीव्रजराज, मैया, गोप, गोपियाँ, सबके लिये यही समाधान है। इतने सुस्वादु फल और व्यय करने पर भी घटते नहीं ये—इनके सम्बन्ध में और क्या सोचे कोई। कन्हाई बड़ा प्रफुल्ल है—उसके फल बहुत अच्छे हैं। वह खूब सुन्दर फल ले आया है !

—※-※-※—

विप्र का सौभाग्य

"आन्दोलिताग्रभुजमाकुलनेत्रलीलमार्द्रस्मितं च वदनाम्बुजचन्द्रबिम्बम् ।
शिञ्जानभूषणशतं शिखिपिच्छमौलि शीतं विलोचनरसायनमभ्युपैति ॥"

—श्रीलीलाशुक

विप्रवर कण्व आज गोकुल पधारे हैं। आज लगभग पाँच वर्षों के पश्चात् वे गोकुल आये हैं। व्रजवन में—अपने एकान्त आश्रम में जब वे अपनी भगवदाराधना में लगते हैं, उन्हें कहाँ पता लगता है कि उनके आश्रम से बाहर क्या होता है। यह तो व्रजेश्वर पर उनका असीम अनुग्रह है कि चार-छः वर्षों पर एकाध बार स्वयं गोकुल पधारकर दर्शन दे जाते हैं; अन्यथा वन्य फल-पुष्पों पर परम सन्तुष्ट रहनेवाले, सदा अपनी उपासना में निमग्न उन तपोमूर्ति को क्या आवश्यकता किसी ग्राम में जाने की। गोकुल छोड़कर वे और कहीं जाते भी कहाँ हैं। व्रजराज पर उनका स्नेह है, अतः कभी-कभी यहाँ चले आते हैं। व्रजेश उनका अत्यन्त सम्मान करते हैं। उनके आश्रम का सर्वदा ध्यान रखते हैं। कोई वहाँ जाकर उनके एकान्त में बाधा न दे और किसी प्रकार की असुविधा, उत्पात न हो—इसका पूरा प्रबन्ध रहता है व्रजराज की ओर से।

'यह वही गोकुल है!' सहजरीति से स्नेहवश कण्व व्रजपति को आशीर्वाद देने आश्रम से चल पड़े थे आज और गोकुल की सीमा में प्रवेश करते ही वे आश्चर्यमग्न हो गये। इतना ऐश्वर्य, ऐसी अभूतपूर्व सुषमा, इतनी दिव्यता! पत्ता-पत्ता, तृण-तृण अलौकिक विभा से झूम रहा है यहाँ। ब्राह्मण का सुनिर्मल चित्त बाह्य सुषमा से मुग्ध होने के स्थान पर उससे उद्दीपन प्राप्त करके अपने आराध्य श्रीनारायण के स्मरण में और एकाग्र हो गया! वही परम ऐश्वर्य तो अणु-अणु में प्रतिफलित है।

'गोकुल के गृहों में बालक आ गये हैं!' ये त्रिभुवनसुन्दर बालक—विप्र आज जहाँ दृष्टि डालते हैं, उन्हें बिना प्रयास के ही सर्वत्र अपने आराध्य दीखते हैं। भाव-विभोर वे पहुँचे हैं नन्दद्वार पर और व्रजराज के पुत्र—'अच्छा, उनके परम स्नेहभाजन व्रजराज को इन पाँच वर्षों के मध्य में कुमार प्राप्त हुआ!' समाचार ने ही आनन्दस्नात कर दिया था और जब इस नील-सुन्दर ने मैया का आदेश पाकर दाऊ के साथ उनके चरणों पर मस्तक रक्खा—ब्राह्मण के नेत्र वर्षा कर रहे हैं। पलकें स्थिर हो गयी हैं और शरीर काँपने लगा है।

बालकों ने प्रणाम किया और सब एक ओर दौड़ गये। उन्हें अपने खेल-कूद से अवकाश कहाँ। विप्र के नेत्र देर तक उधर ही लगे रहे, देखता रहा वह उधर और जब उसने अपने को सम्हाला—व्रजराज कब से आसन स्वीकार करने का अनुरोध नेत्रों में लिये, हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये सम्मुख खड़े हैं और श्रीनन्दरानी रत्नथाल में सुगन्धित उष्णोदक भरकर पादप्रक्षालन की प्रतीक्षा कर रही हैं। पूरे नन्दभवन को ब्राह्मण के चरणोदक से सिञ्चित करके पवित्र कर देना है उन्हें।

कण्व परम विरक्त ब्राह्मण हैं। वे किसी भी प्रकार भवन में चलना स्वीकार नहीं करेंगे, यह पहले से ज्ञात है। गोष्ठ में ही उनके सत्कार की व्यवस्था हो गयी है। वे अपने हाथ से ही भोजन बनाकर अपने आराध्य को भोग लगाते हैं। व्रजेश्वरी उनकी सेवा का सौभाग्य कहीं छोड़ सकती हैं। कहीं आराध्य, ब्राह्मण और गौओं की सेवा एवं पूजा का भार भी सेवकों पर छोड़ा जाता है। उन श्रीनन्दरानी ने स्वयं स्वर्ण-कलशी भरी यमुनातट जाकर और स्वयं गोष्ठ का एक भाग स्वच्छ करके उसे गोमय से लीप दिया। धान्यचूर्ण, कुङ्कुम, हरिद्रा से मण्डल बना दिये वहाँ और भोजन बनाने की सम्पूर्ण सामग्री प्रस्तुत कर दी। ब्राह्मणदेव जबतक तनिक विश्राम करें, समस्त प्रस्तुति हो चुकी और वे तो सदा से जानते हैं कि व्रजराज उन्हें बिना भोजन कराये आने नहीं देंगे।

ब्राह्मण भोजन बना रहे हैं। वहाँ किसी को जाना नहीं चाहिये। किसी की दृष्टि नहीं पड़नी चाहिये उनके भोजन पर। बाबा ने, मैया ने पूछ कर, आग्रह करके समस्त वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में रख दी हैं और अब गोष्ठ में जब तक वे पूज्य अतिथि भोजन न कर लें, किसी को प्रवेश

नहीं करना चाहिये; किंतु उसी ओर उनके श्रवण उन्मुख हैं। बाहर वे प्रतीक्षा ही कर रहे हैं—कहीं कोई आवश्यकता हो, कोई बात कही जाय और अतिथि के भोजन कर लेने पर ब्राह्मण का परमपावन प्रसाद भी तो लेना है। भोजन तो अवश्य प्रस्तुत हो गया। विप्रदेव ने शङ्खध्वनि की है, अवश्य वे अपने आराध्य को भोग लगा रहे हैं।

नारायण! नारायण! 'व्रजराज, तनिक देखो तो! क्यों बुला रहे हैं ये विप्रदेव? इतनी शीघ्रता से कैसे भोजन कर लिया होगा उन्होंने?' बाबा और मैया ने साथ ही प्रवेश किया गोष्ठ में।

'अरे, यह क्या हुआ? तू यहाँ कैसे आ गया!' दोनों चौंक पड़े। यह श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्मण के सम्मुख भोजन के पात्र की दूसरी ओर जमकर बैठा है। यह तो ऐसा पालथी लगाकर बैठा है, जैसे इसी के लिये यह थाल रक्खा गया हो। कितनी शीघ्रता से भोजन करने में जुटा है। अधरों से चिबुक तक अन्न लगा लिया है, उदर पर गिरा लिया है और कुछ भूमि पर भी बिखेर दिया है। यह तो इस प्रकार मैया की ओर मुख करके देख रहा है, जैसे कहता हो—'मैं भोजन कर रहा हूँ! तू चुप-चाप खड़ी रह, मुझे भरपेट खा लेने दे! बड़ा स्वादिष्ट भोजन है!'

'बालक है यह, क्षमा करें!' मैया ने पहिले ब्राह्मण के सम्मुख मस्तक रक्खा भूमि पर। ब्राह्मण कहाँ रुष्ट हैं। एक ओर सम्पुट खुला रक्खा है, वस्त्र के ऊपर भगवान् शालग्राम विराज रहे हैं और ब्राह्मण आसन पर ही बैठे हैं अब तक। उन्होंने शङ्खध्वनि करके भगवान् को भोग लगाया तुलसीदल डालकर और नेत्र बंद किये ध्यान करने के लिये। नेत्र खोल कर देखते हैं तो यह नन्द-नन्दन सम्मुख बैठा भोग लगा रहा है। बड़ी सुन्दर छटा है! भला यहाँ क्या रोष आ सकता है! कण्वको तो अपराध करने पर भी कभी किसी पर रोष नहीं आया। यदि नारायण का भोग लग गया होता—बड़ा आनन्द मिलता उन्हें यह झाँकी देखकर। 'आराध्य को भोग नहीं लग सका!' एक सूक्ष्म रेखा सी अवश्य है मन में।

'मैया मारेगी तो नहीं?' कनू तो वह भागा! वह उछलता-कूदता भाग गया गोष्ठ से बाहर। अब भला, उसे कहीं पकड़ा जा सकता है। जूठे मुख, शरीर में अन्न लगाये हँसता हुआ भाग गया है वह और उसे इस प्रकार भागते देख कर तो विप्र को भी हँसी आ गयी है। उनके अधरों पर भी स्मित खेल गया है।

'मैं तत्काल स्थान स्वच्छ करके सब सामग्री प्रस्तुत कर देती हूँ!' मैया के नेत्र भर आये हैं। विप्रको पुनः भोजन बनाने का श्रम करना होगा—पर दूसरा उपाय भी क्या। ब्राह्मण क्या भूखा रहेगा! ब्राह्मण कैसे अस्वीकार करदे इस अनुरोध को। उसकी अस्वीकृतिका स्पष्ट अर्थ होगा कि वह असन्तुष्ट हो गया है। कितना दुःख होगा व्रजेश को। अन्ततः नन्दनन्दन बालक ही तो है। भोजन बनाया ही जाय, यह आवश्यक अपने लिये भले न हो, आवश्यक हो गया है। इसके बिना व्रजरानी का हृदय बहुत व्यथा पायेगा।

× × × ×

'नारायण! जगदाधार! प्रभो!' ब्राह्मण ने भोजन बनाया पुनः। उसे पूरे व्यञ्जन बनाने पड़े हैं श्रीव्रजरानी के अनुरोधवश और अब वह अपने आराध्य का सम्पुट रखकर तुलसीदल पात्र में डालकर भोग लगाने के लिये नेत्र बंद करके मन-ही मन श्रीनारायण से प्रार्थना कर रहा है। बाहर व्रजराज सपत्नीक सावधान हैं।

'नारायण! विश्वम्भर!' ब्राह्मण ने ताली बजायी और नेत्र खोले आचमन देने के लिये। चौंक गया वह 'अरे, तू फिर आ गया?'

'कौन? कौन आ गया?' आकुलता से पूछा मैया ने और अब क्या उत्तर की आवश्यकता है? यह क्या नीलमणि सम्मुख भागा जा रहा है। यह क्या मुख में, हाथ में, वक्षपर अन्न गिराये-लगाये किलकता जा रहा है! कहाँ से आया यह?' किस ओर से आया?

'तू फिर आया और···!' मैया कदाचित् रुष्ट हो गयी है। वह पकड़ने दौड़ना चाहती है, कन्हाई भयभीत भागा जा रहा है।

'यह बालक है! व्रजेश्वरी, इसके लिये चपलता स्वाभाविक है। आप कष्ट न हों इस पर।' विप्र कण्व क्या भोजन के आसन से इसके पीछे ही द्वार तक दौड़ आये हैं! 'कोई इसे पकड़ न ले! व्रजराज डाँटें नहीं!' कौन कह सकता है कि यही आशङ्का उन्हें खींच नहीं लायी है। इस बार कन्हैया उनके नेत्र खोलते ही हँसकर भाग खड़ा हुआ और वे उसके साथ कैसे दौड़ आये, यह वे भी नहीं जानते।

'बहुत चञ्चल है! बड़ा अपराध किया है इसने!' मैया ने ब्राह्मण के सम्मुख भूमिपर मस्तक रख दिया है। उसके नेत्र झर रहे हैं। कण्ठ भर गया है। बाबा हाथ जोड़े मस्तक झुकाये अपराधी की भाँति खड़े हैं।

'बच्चे का कोई अपराध नहीं! आप खेद न करें!' विप्रदेव की वाणी निर्मल है। रोष-हीन है। 'भगवान् नारायण की इच्छा नहीं है कि अरण्यवासी ब्राह्मण इन भोगों का सेवन करूँ। उन्होंने कदाचित् यही चाहा है। मेरे लिये तो थोड़ा-सा दूध ही पर्याप्त है और इससे आपके आतिथ्य-धर्मका निर्वाह भी हो जायगा!'

मैया कैसे कहे ब्राह्मण को पुनः भोजन बनाने के लिये! इतना श्रम, इतना विलम्ब—कृष्ण-चन्द्र को पता नहीं क्या हो गया आज! गृह पर ब्राह्मण बिना भोजन के रहेगा! भोजन बनाने का श्रम करके भी वह अन्न न पा सकेगा! दूध, दधि, फल—कैसे सन्तोष हो इससे। मैया के नेत्र झर रहे हैं। वह शब्द नहीं पाती अनुरोध करने के लिये।

'व्रजेश्वरी, व्रजराज, इतना कष्ट क्यों? इतने दुःखी क्यों हो रहे हैं आप लोग? मुझे तनिक भी खेद नहीं है।' ब्राह्मण दया की मूर्ति होते हैं। सच्चा ब्राह्मण किसी को शोकातुर देखे और द्रवित न हो! कण्व का हृदय भर आया है यह भाव देखकर व्रजपति का। 'मैं क्या करूँ, जिससे आप प्रसन्न हों?' वे सचमुच हृदय से पूछ रहे हैं।

'यदि प्रभु पुनः प्रसाद बनाना स्वीकार कर लें ....' व्रजेश्वरी ने तनिक मुख उठाया।

'यद्यपि आवश्यकता नहीं है, पर आपकी प्रसन्नता के लिये बनाऊँगा मैं!' कण्व ने मानो मैया को कोई सुदुर्लभ वरदान दिया है। उसने तो नेत्र पोंछ लिये और इस शीघ्रता से स्थान की स्वच्छता में लग गयी है, जैसे स्फूर्ति साकार हो गयी है उसके रूप में।

× × × ×

'श्याम कहीं फिर न आ जाय! आशङ्का तो है ही। भगवान् का भोग लगाते समय ब्राह्मण की शङ्खध्वनि होगी और वह यदि पुनः आ गया किसी ओर से? उसे तो यह क्रीड़ा लगती है।....' इस बार गोष्ठ के अधिकांश द्वार बंद कर दिये गये हैं। एक ओर बाबा स्वयं खड़े हैं और दूसरी ओर मैया की दृष्टि लगी है। माता रोहिणी इस प्रयत्न में हैं भवन में कि सभी बालक भवन-प्राङ्गण में ही उनके सम्मुख खेलते रहें। उन्होंने कृष्णचन्द्र को समझाया है कि ब्राह्मण भोग लगाने लगें तो वहाँ नहीं जाना चाहिये। कनूँ बड़ा नटखट है। वह हँसता है माता की बात सुनकर। माता को उसपर दृष्टि रखनी है।

वह गूँजा शङ्खनाद! ब्राह्मण देव भोजन बना चुके, वे अपने आराध्य को भोग लगा रहे हैं। माता रोहिणी ने शङ्खकी मङ्गल-ध्वनि सुनकर श्रद्धा से मस्तक झुकाया भगवान् नारायण के लिये और सिर उठाते ही चौंक गयीं—'श्याम! कृष्ण! अरे कहाँ गया?' वह तो भाग गया द्वार से बाहर और माता का अब यह दौड़ना क्या अर्थ रखता है। वे उस चञ्चल को कहाँ पकड़ सकती हैं।

'श्याम! कृष्ण!' माता रोहिणी पुकारती आ रही हैं। मैया और बाबा सावधान हैं उसे पकड़ लेने के लिये। यह आ रहा है दौड़ता नटखट! वे अलकें भालपर हिल रही हैं, नूपुर बज रहे हैं किङ्किणी के साथ और यह आ गया बाबा के सम्मुख। बाबा तो अपने दौड़ते आते पुत्र की शोभा एकटक देखने में भूल ही गये कि वे इसे पकड़ने को खड़े हैं और जब सम्मुख आकर कृष्णचन्द्र ऊपर मुख उठाकर तनिक मुस्करा देता है—किसे अपने शरीर का स्मरण रह सकता है।

बाबा देखते रहे, देखते रहे और तब भी घूमकर देखते ही रहे जब कन्हाई उनके समीप से

गोष्ठमें भीतर भागता चला गया। वे उसे देखते रहे और कुछ क्षण देखते रहे उसी दिशा में; तब कहीं उन्होंने सुना पुकारती हुई माता रोहिणी की वाणीको और देखा मैयाको। शीघ्रता से भीतर दौड़े वे।

ब्राह्मण ने नेत्र खोल दिये हैं। यह चपल नीलसुन्दर उसके सम्मुख फिर आ बैठा है और भोग लगा रहा है। इसबार भागने का कोई भाव नहीं दिखाया इसने। केवल तनिक-सा मुख उठाकर ब्राह्मण की ओर देखकर मुस्करा पड़ा, जैसे कहता हो—'बड़े अच्छे हो तुम! बड़ा स्वादिष्ट भोजन बनाना आता है तुम्हें! खूब सुन्दर बना है व्यञ्जन!' पता नहीं क्या-क्या है उसके नेत्रों में।

मैया पुकारती आ रही है। रुष्ट है वह। मोहन ने बैठे-बैठे ही तनिक मुख घुमाया पीछे को। दोनों हाथ उसने थाल में डाल रक्खे हैं। दोनों कर अन्न में सने हैं। वह गर्दन घुमा कर मैया से बोला—'तू मुझे ही डाँटती है, इसे मना क्यों नहीं करती? भोजन बनाकर, शङ्ख बजाकर नेत्र बंद करके यह बार-बार मुझसे भोजन करने को कहता है! मुझे बुलाता है! मैं क्या बिना बुलाये आता हूँ? यह बुलाता है तो क्या न आऊँ?'

'यह तुझे बुलाता है?' मैया ने डाँटना चाहा, पर वह ज्यों-की-त्यों स्तम्भित रह गयी। 'इन विप्रदेव को क्या हो गया? ये तो सहसा उठकर नाचने लगे! नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा, रोम-रोम मस्तक उठाये सीधे और डगमग पदों से यह उद्दाम नृत्य—क्या हो गया इनको?'

'यह मुझे बुलाता है! नेत्र बंद करके यह बार-बार मुझ से भोजन करने को कहता है!' श्यामसुन्दर कह क्या रहा है? ब्राह्मण कण्व चौंके। एक बार उन्होंने अपने सम्मुख थाल में भोग लगाते गोपाल को देखा—जैसे नेत्रों के सम्मुख पड़ा कोई आवरण खिसक गया हो। शत-सहस्र-चन्द्रोज्ज्वल यह आलोक-राशि, यह रूप, माधुर्य, ऐश्वर्य की घनीभूत मूर्ति—नारायण, आदि-पुरुष, आराध्य—....' पता नहीं क्या-क्या देखा महाभाग ब्राह्मण ने और तब उन्हें क्या अपनी सुध-बुध रह गयी?

'दयामय, करुणासिन्धु, इस अबोध को क्षमा करें! मुझे कहाँ पता था कि इस अधम की प्रार्थना श्रीचरणों में स्वीकृत होती है! मैंने तो बाधा ही दी आपके भोग लगाने में! मेरा अहङ्कार—मेरा पवित्रता और ब्रह्मत्व का यह अहङ्कार, पर आपकी करुणा ने मुझे धन्य कर दिया! मैं कृतार्थ हुआ!' पता नहीं कण्व गद्गद स्वर में क्या-क्या कह रहे हैं।

'नारायण ने बालक का अपराध क्षमा कर दिया और अवश्य अपने परम भक्त इन विप्रदेव पर प्रसन्न होकर अपना कोई ऐश्वर्य इनके सम्मुख प्रकट किया है! ये इसीसे भाव-विभोर हो रहे हैं। धन्य हैं ये ब्राह्मण!' बाबा, मैया, माता रोहिणी भी कुछ ऐसा ही सोचते हैं। सबने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया है प्रणाम करने के लिये और कन्हाई तो ब्राह्मण के सम्मुख से उठ आया है। अपने जूठे हाथ से ही वह मैया का वस्त्र पकड़ कर उसके समीप सटकर खड़ा है और बड़े आश्चर्य से देख रहा है कि यह वृद्ध ब्राह्मण क्यों इतना रोता और नाचता है।

'अरे!' बाबा और मैया चौंकें, इससे पूर्व तो कण्व थाल के समीप बैठ गये। उन्होंने वह थाल का प्रसाद खाना, सिरपर रखना और शरीर में मलना प्रारम्भ किया। 'कहीं ये सम्मान्य अतिथि उन्मत्त तो नहीं हो गये?' लेकिन इस समय ब्राह्मण के शरीर से जो कान्ति छिटक रही है, उनके जो दिव्यभाव हैं—इस समय उनसे बोला नहीं जा सकता। वे कुछ सुन-समझ सकें, इस स्थिति में नहीं और वे तो उठकर पुनः नृत्य करने लगे। बार-बार उठते हैं, दण्डवत् भूमि में प्रणिपात करते हैं और नृत्य करते-करते ही वे तो चल भी पड़े। वे जा रहे हैं—चले जा रहे हैं, कदाचित् उन्हें ही पता नहीं कि वे जा रहे हैं। उनके हृदय में, मन में, नेत्रों में जो मूर्ति आज आ बसी है—वह एक बार आने पर फिर जाना कहाँ जानती है।

मैया ने भूमि पर मस्तक रक्खा विप्र को प्रणाम करते हुए। अभी उसे इस कन्हाई का मुख-हाथ धोना है। अन्न सूख रहा है! सूखने पर इसे कष्ट होगा और इसने तो वक्ष से उदर तक उसे गिरा रक्खा है।

—❀—❀—❀—

व्रजजनानन्द

*"बहुलचिकुरभारं बद्धपिच्छावतंसं चपलचपलनेत्रं चारुबिम्बाधरोष्ठम् ।
मधुरमृदुलहासं मन्दरोदारलीलं मृगयति नयनं मे मुग्धवेशं मुरारेः ॥"*

—श्रीलीलाशुक

श्यामसुन्दर, नन्दनन्दन, कन्हाई, कृष्णचन्द्र, नीलमणि, कनूँ—कौन है जो इस चपल व्रजनवयुवराज को पुकारकर अपने नेत्रों को, वाणी को और इसके सुधास्निग्ध बचनों से श्रवणों को कृतार्थ नहीं करना चाहता। गोपियाँ, गोप, द्विजवृन्द—सभी तो इसे पुकारते हैं। कन्हाई कितना सरल, कितना भोला है! यह जो पुकारता है, उसी के पास दौड़ जाता है। जो कुछ करने को कहता है, उसी का कार्य करने लग जाता है।

'कृष्ण, तनिक वह आसन तो दे जा!' और सुकुमार श्यामसुन्दर अपने कोमल करों से रत्नपीठ उठाकर देने जा रहा है अपने उपनन्द बाबा को। पीठ बहुत भारी है, बहुत भारी! हाथों से उठाकर नहीं ले जा सकता तो लो, मस्तक पर रख लिया इसने। कुटिल स्निग्ध चिकुर-जाल पर दोनों हाथों से पकड़कर रत्नपीठ रक्खे यह देने जा रहा है। यह उपनन्दजी के आराध्य का पूजन-पीठ और श्याम इसे देने जा रहा है! उपनन्दजी ने उठकर लेना चाहा—कितना श्रम पड़ा है कन्हाई को! इसके कमलमुखपर अरुणिमा आ गयी और स्वेदकण झलमला उठे हैं भालपर। यह तो पीठ देना नहीं है। हठ है इसकी—'मैं रक्खूँगा वहाँ!'

'कनूँ, महर्षि की पादुकाएँ तो ले आ!' बाबा अभी से चाहते हैं कि उनका यह लाल महर्षि शाण्डिल्य की सब प्रकार की सेवा का सौभाग्य प्राप्त करने लगे और श्याम तो स्वयं उत्सुक रहता है कि उसे किसी भी ब्राह्मण की सेवा प्राप्त हो। वह अपने नन्हे हाथों महर्षि के तथा दूसरे विप्रों का पाद-प्रक्षालन करता है और कितना प्रमुदित होता है इस कार्य में! किसी सम्मान्य अतिथि के सत्कार की बात सुनते ही खेल छोड़कर दौड़ आता है। सदा से इसका आग्रह है कि चरण तो स्वयं धोयेगा। बाबा जलधारा गिराकर सहायता करते हैं और इस कार्य में कन्हाई कहाँ किसी का निषेध सुनता है। महर्षि शाण्डिल्य, दूसरे सभी मुनिगण एवं विप्रवृन्द संकोच करते हैं, सब चाहते हैं कि नन्दनन्दन केवल उन्हें चन्दन लगाकर और माल्य पहिनाकर ही सन्तुष्ट हो जाय; किंतु यह श्रीकृष्ण बिना चरण धोये कहाँ मानता है। आज बाबा ने महर्षि की पादुका लाने को कहा और वह दौड़ा। अब महर्षि मना करते हैं—कौन सुनने बैठा है। कनूँ तो वह गया—वह पहुँचा पादुका उठाने।

'नारायण! श्रीहरि! महर्षि के नेत्र भर आये है। अश्रुधारा चलने लगी है। रोम-रोम पुलकित हो गया है। हृदय कहता है—'पादुका छोड़कर द्वार पर बैठे तो क्या हुआ अन्तःपुर में आते समय तो उसे लेते आना था। यह तो न होता!' श्यामसुन्दर एक-एक कर से महर्षि की पादुका पकड़, उन्हें अपने मस्तक पर रखकर लिये आ रहा है—कितना आनन्दमग्न, कितना प्रफुल्लित है यह! "अरे, ये महर्षि क्या कर रहे हैं? ये किसे प्रणिपात कर रहे हैं? ये तो 'नमोब्रह्मण्यदेवाय!' कहकर भावोन्मत्त हो गये हैं। महर्षि श्रीनारायण के परमभक्त हैं। चाहे जब इनका इस प्रकार भावमग्न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ये तो सचराचर में अपने आराध्य का दर्शन करने वाले ठहरे।" किसी को किसी प्रकार का विचार करने का कोई कारण ही नहीं है।

× × × ×

'लाल, तू बहुत सुन्दर नाच है। तनिक नाच तो सही। अच्छा, तू नाच दिखा दे त मक्खन दूँगी तुझे!' गोपियाँ कभी नवनीत के नन्हे खण्ड, कभी दधि और कभी छाछ का ही लालच देकर इस श्यामसुन्दर को नचा लेती हैं। कन्हाई कितना सीधा है, कृष्णा का नवनीत, कपिला का दही, अरुणा की छाछ—और वह समझ लेता है कि अवश्य इन विशेष गौओं के नवनीतादि में कोई विशेषता होगी। इसे चाहे जो भुला लेता है और यह भूल भी जाता है मजे में। कदाचित् इसे भी इस प्रकार नाचने में आनन्द आता है। गोपियाँ ताली या चुटकी ही बजाती हैं—'ता थेई, ता थेई थेई, तत्ता थेई थेई!' और नन्हे कोमल कर इधर-उधर फेंकता, हिलाता जब मोहन नृत्य करने लगता है, जब उसके भालपर अलकें चञ्चल होने लगती हैं, नेत्र चपल होते हैं, किङ्किणी और कङ्कण के साथ नूपुरों की रुनझुन गूँजने लगती है—कौन लालायित नहीं होगा इस भुवन-मोहन छटा की एक झलक देख लेने के लिये, किसके नेत्र इसे देखते हुए तृप्त हो सकते हैं।

'ला, नवनीत दे!' नृत्य समाप्त करके लाल की कोमल हथेली फैल जाती है, श्याम झगड़ने लगता है। ये गोपियाँ बड़ी चतुर हैं, ये इतनी देर तो नचा चुकीं और दे रही हैं दो अँगुलियों से उठाकर तनिक-सा नवनीत। कोई हथेली—मोहन की इस छोटी हथेली को दही से भर दे तो वह सन्तुष्ट हो जायगा और कोई एक अञ्जलि छाछ से भर दे तो पूछना ही क्या; लेकिन गोपियाँ तो दही की भी बूँदें रखना चाहती हैं और छाछ भी इतनी गिराती हैं हाथ पर कि उससे आचमन कर लिया जाय। अब कन्हाई इनसे झगड़े नहीं तो क्या हो।

'तू तनिक सा तो नाचा! और नाच तो और मिले! गोपियों को भी इस मोहन को चिढ़ाने में आनन्द आता है! यह जब उलझता है उनसे, रुष्ट होकर उनके वस्त्र या हाथ खींचता है—कितना मधुर, कितना मोहक है इसका यह खीझना भी और इसे मना लेना तो और भी सरल है। सच्ची बात तो यह है कि इसे रुष्ट होना आता ही नहीं। दधि की दो बूँदें, मक्खन का तनिक बड़ा खण्ड, छाछ का केवल एक चुल्लू अधिक देकर भी नहीं, फिर नृत्य करे तो देने को कह कर ही इसे मना लिया जा सकता है। अधिक नवनीत—अधिक दधि मिलने पर यह चञ्चल उसे खाता, मुख भर कर भाग जायगा। यह नेत्रों के सम्मुख रहे, कुछ क्षण तो रहे! अन्यथा नवनीत, दही, छाछ का मूल्य क्या है। सबका हृदय चाहता है, उत्कण्ठित रहता है कि नन्दनन्दन उसके यहाँ आये और उसका नवनीत सफल हो। लेकिन कन्हाई के खीझने की छटा, इसके उलझने का आनन्द क्या छोड़ा जा सकता है? इसी बहाने तो इसे कुछ क्षणों तक अपने सम्मुख रक्खा जा सकता है। नहीं तो यह चपल—यह तो इधर से आया कूदता और उधर भाग गया। इसे एक स्थान पर कहाँ रहना है। ठीक भी तो है, सबके नेत्र सफल भी तो होने चाहिये।

× × × ×

श्याम कभी बाबा की पूजा के लिये तुलसी-दल ले जाता है और कभी मैया की वेणी में लगाने को पुष्प। इससे क्या मतलब कि बाबा की पूजा का या मैया के वेणी-ग्रन्थन का समय है या नहीं। कन्हाई के जब मनमें आये, जब इसे स्मरण हो, तभी यह तुलसी या पुष्प लेने लगेगा और दौड़कर पहुँचा आयेगा। यह कोई वस्तु दे रहा हो तो उसे लेने में क्या समय देखा जा सकता है? अपने मन से पता नहीं किसके-किसके क्या-क्या काम करने यह पहुँच जाता है।

'ताऊ, तुम्हारा वस्त्र ला दूँ? तुम स्नान करोगे न?' उपनन्दजी ने कभी स्नान के लिये इससे वस्त्र मँगा लिया था और अब यह चाहे जब उन्हें देखते ही वस्त्र लाने दौड़ जायगा।

'चाचा, तुम लकुट तो लाये नहीं! मैं ला दूँ तुम्हारा लकुट?' नन्दनजी को लकुट की आवश्यकता हो या न हो, श्याम तो लकुट लाने जायगा ही और भला, इससे कहीं वह लकुट उठने का है। अब तो इसके पीछे जाकर प्रोत्साहित करना है। कितना स्नेहमय है यह अभी से!

कन्हाई को पता नहीं किस-किसके कार्य करने रहते हैं। किसी को जल देना है, किसी को दोहनी और किसी को रज्जु! किसी का संदेश कह आना है, किसी को बुलाया है किसी दूसरे ने

और किसी को तो हाथ पकड़कर उठा ही ले जाना है इसे; क्योंकि इसे तो ले आने का आदेश मिला है। कृष्णचन्द्र सबके कार्य कर देता है। गोपों के कार्य तो यह प्रायः कर देता है और किसी विप्र, वृद्ध या वृद्धा का आदेश तो टालना सीखा ही नहीं इसने। बिना बुलाये, बिना कहे यह विप्रों और वृद्धों के कार्य करने पहुँच जाता है।

गोपियाँ चिढ़ाती हैं, बड़ी चतुर हैं सब—अपने काम करा लेंगी और मक्खन देना होगा तो तनिक-सा उठायेंगी। कन्हैया भी उन्हें क्या कम चिढ़ाता है। काम तो वह उनके भी कर देता है; पर अँगूठा दिखाकर, सिर हिलाकर, आँखें नचाकर भली प्रकार मनुहार करा लेने के पीछे ही करता है। गोपियाँ भी हँसती हैं, खिलखिलाती हैं, आँखें कड़ी करके धमकाती हैं और अनुनय करती हैं।

'मोहन, मेरे हाथ दही के हो रहे हैं! तू मेरे सिरसे खिसका वस्त्र तो ठीक कर दे!' कन्हाई कूदेगा, ताली बजाकर हँसेगा और अँगूठा दिखायेगा। यह नटखट क्या झटपट वस्त्र ठीक करने लगा है। वस्त्र ठीक करने लगेगा तो इतना आगे सरका देगा कि पूरा मुख ढँक जाय और फिर ताली बजाकर किलकेगा। पीछे वस्त्र हटाने को कहने पर पीठ पर ही गिरा देगा। 'तू अपने लड़के को बुला ले!' यहीं तक कहे तो ठीक; पर कभी-कभी तो पता नहीं किस-किस को बुलाने को कहेगा और इसका क्या ठिकाना कि जाकर वृद्धा सास या किसी पुरुष को ही कहने लगे कि वह वस्त्र ठीक करने को बुलाती है; किन्तु गोपियों को इसी से ये कार्य लेने हैं। इसी की मनुहार करनी है। इसी से झगड़ना है।

'कन्हाई, मैं गोबर उठा रही हूँ! तू मेरी यह उलझी माला तो ठीक कर दे!' यह मानी बात है कि कन्हैया माला को और उलझायेगा ही; पर किसी को इसी से माला सुलझवानी हो तो? किसी का बछड़ा भाग गया है, उसे भगा लाना है; किसी के बछड़े को खोल देना है दूध दुहने के लिये। किसी के पुष्पाभरण को पुष्प तोड़ देने हैं और किसी के आभरण ठीक स्थान पर व्यवस्थित कर देने हैं। गोपियों के छोटे-बड़े सैकड़ों कार्य हैं और वे कार्य प्रतीक्षा करते रहते हैं कि नन्दनन्दन आये। श्यामसुन्दर के ही सुकुमार करों से उन्हें पूरा होना है। मोहन दिखायी पड़ा और फिर क्या कार्यों का अभाव रहता है? पता नहीं कैसे यह कन्हैया सबके आदेशों का पालन करता है, सबसे उलझता रहता है और फिर भी सबको संतुष्ट कर देता है। सबको अपने दैनिक कार्यों में बराबर इस नील-सुन्दर की सहायता चाहिये। यह न आये तो गो दोहनपर बैठे गोप को दोहनी कौन दे? दधि मथती गोपी की वेणी से गिरे पुष्प कौन सजावे और कौन किसी को बुलाने जाय? पता नहीं कितने कार्य हैं, कोई-न-कोई कार्य अटका ही रहता है; किन्तु वह कन्हाई—किसी गोप, किसी गोपी को नहीं लगता कि उसे आवश्यकता हुई और कन्हाई नहीं आ गया। सबको लगता है कि यह दिन भर उसी के आस-पास खेलता रहता है और बराबर आ जाता है उसकी सहायता करने।

× × × ×

'कृष्ण, तू मेरी टोकरी उठवा तो दे!' इसे गोष्ठ से गोबर उठाकर फेंकना है और टोकरी उठवाने के लिये यह सुकुमार कन्हैया ही मिला है।

'क्यों उठवा दूँ तेरी टोकरी? तू अपने-आप उठा और फेंक! मैं नहीं उठवाता!' कनूँ अँगूठे दिखाकर, मटक कर चिढ़ाने लगा है। समीप कोई दूसरा है भी नहीं' देखें यह किससे टोकरी उठवाती है।

'तू जितनी टोकरी उठवायेगा, उतने माखन के लौंदे दूँगी तुझे!' इसे भी कन्हाई से ही टोकरी उठवानी है।

'उतने माखन के लौंदे?' श्याम सोचने लगा है। सौदा तो अच्छा है; लेकिन यह गोपी झूठ बोले तो? पता नहीं कितनी टोकरी उठवायेगी; थोड़े-से नवनीत-खण्ड देकर कह दे कि पूरा हो गया तो? कनूँ को अभी इतना कहाँ गिनना आता है। ये गोपियाँ बहुत चतुर हैं, ये उसे बार-बार ठग लेती हैं। ना, वह ऐसे नहीं ठगा जा सकता। 'तूने कितनी टोकरियाँ उठवायीं, यह कैसे पता लगेगा?'

'मैं गिनती जाऊँगी!' वह हँस पड़ी।

'तू बड़ी सची जो है!'

'अच्छा, इस भित्ति पर गोबर का एक-एक टीका मैं प्रत्येक टोकरी उठवाते समय लगाती जाऊँगी !'

'तू टिक्कियों को ठीक ही गिनेगी, इसका क्या ठिकाना !' कन्हाई कहाँ तक भित्ति का ध्यान रक्खेगा। कहीं इसने टिक्कियाँ कम लगायीं, किसी को मिटा दिया !

'अच्छा, मैं तेरे कपोलों पर टिक्कियाँ लगाती चलती हूँ ! तू जब नवनीत-खण्ड लेने लगेगा तो एक-एक खण्ड के साथ एक-एक टिक्की मिटा दी जायगी !' इन नीलारुण कपोलों पर गोबर की टिक्कियाँ—इस कल्पना से ही गोपिका हँस रही है।

'अच्छी बात !' तनिक सोचकर श्याम ने स्वीकार कर लिया। उसके कपोलों पर टिक्की रहे तो यह कोई भी चाल नहीं चल सकेगी। ठीक-ठीक पारिश्रमिक प्राप्त होने में संदेह नहीं होगा।

कज्जल-रञ्जित दीर्घ खञ्जन-नयन, अरुण अधर, भालपर गोरोचन की खौर के मध्य सोये भ्रमरशिशु-सा काला बिन्दु और कुटिल स्निग्ध अलकों से घिरा यह कमलमुख—कन्हाई मुख ऊपर करता है और गोपिका अपनी अनामिका से कपोल पर गोबर का एक बिन्दु लगा देती है। कपोलों पर, भाल पर इन गोमयबिन्दुओं की संख्या बढ़ती जा रही है। श्याम के कपोल पर पहिले बिन्दु लगता है और तब वह अपनी पतली भुजाएँ झुकाता है टोकरी उठाने के लिये। किंशुक-अरुण कर टोकरी का स्पर्श करते हैं। गोपिका को ही तो टोकरी उठानी है, उठाती भी वही है, कृष्णचन्द्र की भुजाएँ उसकी कटि से तनिक ही ऊपर तक तो पहुँच सकती हैं, किन्तु यह टोकरी उठवाने की क्रीड़ा कितनी आनन्द-मय है ! नन्दनन्दन उसके सम्मुख है, वह उसके कपोल पर बार-बार गोमय-बिन्दु लगा रही है। रोमाञ्चित हो गया है उसका शरीर।

गोमय बिन्दुओं से भरे कपोल और भाल—मणिस्तम्भ में अपना ही मुख देखकर कनूँ खूब हँसा ! यह गोपी उसे झटपट मक्खन नहीं दे देती। कहीं कोई सखा आ गया ढूँढते हुए और उसने देख लिया ?—सब बहुत चिढ़ायेंगे ! मैया से पता नहीं क्या-क्या कह देंगे ! श्याम शीघ्रता करना चाहता है और यह—गोपी तो हँसते-हँसते लोटपोट हो रही है। इसने टोकरियाँ तो इतनी उठवा लीं और अब हँस रही है। इन बिन्दुओं को मिटाया भी नहीं जा सकता। इसमें तो अपना ही घाटा है।

'इतनी बड़ी तो टोकरी उठवायी और इतनी नन्ही-सी मक्खन की बूँद देगी ! मैं नहीं लूँगा इतना थोड़ा मक्खन !' एक टोकरी के बदले एक नवनीत-खण्ड—लेकिन इतना छोटा नवनीत-खण्ड थोड़े ही सोचा था श्याम ने। कम-से-कम उसकी हथेली तो भर जाय एक लौंदे से। अब वह झगड़ने लगा है। झगड़े नहीं तो क्या करे। यह कहती है कि इतने बड़े-बड़े लौंदे वह पचा नहीं सकेगा। वह फेंक देगा, बंदरों को दे देगा। कुछ भी करेगा; पर यह उसका स्वत्व क्यों नहीं देती ?

यह गोपी—सभी गोपियाँ ऐसी ही हैं। सभी कन्हाई से कुछ-न-कुछ काम करा लेती हैं और जब नवनीत या दधि देने का समय आता है, तब थोड़ा-सा देकर ठगना चाहती हैं। कनूँ झगड़ेगा, अपना भाग लिये बिना वह मान नहीं सकता। गोपियों को भी उसे खिझाने में आनन्द आता है। 'अच्छा, कैसे नहीं देगी तू !' अब वह इसकी मटकी फोड़ देगा; देखे तो सही कि यह कैसे नहीं मानती।

—❀⁐❀⁐❀—

माखन-चोर

"बालाय नीलवपुषे नवकिङ्किणीकजालाभिरामजघनाय दिगम्बराय ।
शार्दूलदिव्यनखभूषणभूषिताय नन्दात्मजाय नवनीतमुषे नमस्ते ॥"

—श्रीलीलाशुक

'अरे, इसके घर में तो कोई दीखता ही नहीं है! यह गोपिका गयी कहाँ ? गोप तो गोचारण को चले गये होंगे और जान पड़ता है कि यह स्वयं जल लेने श्रीयमुनाजी गयी होगी।' कन्हैया आया है इसके यहाँ नवनीत खाने। है तो बहुत चतुर यह, बहुत नचाती है और तब तनिक-सा नवनीत देती है; किन्तु श्याम को भी इसके साथ झगड़ने का स्वभाव हो गया है। यह ब्राह्ममुहूर्त से भी पूर्व उठ जाती है और एक ही धुन है इसे—'कन्हाई आता होगा, उसके लिये नवनीत चाहिये !' बस, दही मथने बैठ जायगी। नन्दनन्दन दूसरे किसी के सम्मुख नृत्य करने, नवनीत लेने, झगड़ने में संकोच करता है। कोई और दिखायी दे तो वह द्वारपर से झाँककर भाग जायगा। इसे लगता है कि गोप बड़े आलसी हैं, सब बहुत देर में गायें खोलते हैं। इतनी देर में गोदोहन हो और गायें बिचारी बँधी रहें, यह तो ठीक नहीं। क्या करे, जितनी शीघ्रता उसके कहने और प्रयत्न से हो सकती है, उतना करने में तो कुछ उठा नहीं रखती। उसके घरके लोग कहाँ उसकी सुनते हैं। 'कहीं श्याम आये और लौट जाय !' हृदय धड़कता ही रहता है। नेत्र द्वार की देहली पर ही लगे रहते हैं। बार-बार द्वार पर आकर झाँक जाती है। गोपों ने गोदोहन प्रारम्भ किया और उसकी दहेंड़ी में रई घूमी। गोपों के जाते ही वह ऊपर तैरते नवनीत को देखती है और देखती है द्वार की ओर। 'कल मैंने बहुत खिझाया मोहन को, कहीं वह आज न आये !' लेकिन नहीं, मन कहता है, वह आयेगा ! आयेगा ही ! और वह दहेंड़ी सम्मुख रक्खे प्रतीक्षा करती रहती है। कन्हाई के आने पर ही पात्र से माखन निकालेगी। पहिले निकालने से उतना कोमल नहीं रहेगा। श्याम तो आयेगा ही। जहाँ वह दिखायी पड़ा, इसने मुख घुमाया। ऐसी बन जायगी जैसे देखा ही न हो. नवनीत निकालने में कहीं देखने का अवकाश ही न हो और जब वह चपल आकर वेणी खींच देगा, तो डाँटेगी उसे। वह नवनीत माँगेगा और यह अस्वीकार का स्वाँग रचेगी।

'आज यह कहाँ गयी ? ऐसा तो कभी होता नहीं था !' क्या करे बेचारी। कितनी देर प्रतीक्षा की उसने ! 'आज श्यामसुन्दर नहीं आयेगा। वह रूठ गया कलके मेरे खिझाने से !' कितना दुःख हुआ उसे, दूसरा कोई कैसे जान सकेगा। मोहन को आज विलम्ब हुआ है आने में। प्रतीक्षा के पल भी युग होते हैं। 'श्याम न आये, न खाय तो फिर नवनीत किस काम का !' मक्खन पात्र में ऊपर आ गया था, लौंदा तैर रहा था; किन्तु उसे निकालने का उत्साह किसमें था। जो माखन कन्हाई लेने नहीं आया, उसे फिर कोई कुत्ता ले या बिल्ली—श्याम से परित्यक्त माखन उसके किस काम का है। निराश होकर वह उठी घट लेकर यमुना-तट जाने के लिये। 'कदाचित् मार्ग में कहीं वह यशोदा का लाल दीख जाय !' एक आशा आयी मन में। दधि मथा ज्यों-का-त्यों धरा रहा, नवनीत तैरता रहा, द्वार खुला रहा—वह तो जल लेने चली गयी।

'भवन में तो कोई नहीं दीखता !' कोई हो या न हो, दधि-मन्थन का पात्र सम्मुख तो है ही। कन्हैया ने पात्र में झाँक कर देखा—ओह, नवनीत—उज्ज्वल, कोमल नवनीत ऊपर ही तैर रहा है और वह भी पर्याप्त है। व्रज में तो सभी गृह श्याम के अपने ही हैं। नवनीत दिखायी दे रहा है—इतना क्या भोग लगाने के लिये पर्याप्त नहीं है ? मोहन ने तो पात्र के समीप आसन लगा दिया है।

वह अपना दाहिना हाथ पात्र में डालकर बार-बार माखन उठाता है और तनिक-तनिक सा मुख में रखता जाता है। भली प्रकार स्वाद ले-लेकर नवनीत खा रहा है।

× × × ×

'हैं!' गोपिका आयी, द्वार से भीतर पैर रक्खा और ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गयी। कितनी व्यथा, कितनी निराशा लिये आ रही थी। 'पता नहीं आज कैसा अशुभ दिन है!' मन-ही-मन मार्ग-भर पछताती, तड़पती आयी है। जाते और आते भी उसके चरण उठते ही नहीं थे। नेत्र इधर-उधर किसी को ढूँढ़ रहे थे। कैसे मिले वह नेत्रों का शाश्वत सौभाग्य, वह तो उसके घर पहुँच गया है। एक बार दृष्टि गयी और—शरीर गतिहीन हो गया, नेत्र स्थिर हो गये, हृदय—हृदय का उल्लास वाणी का विषय नहीं। वह देखती रही—देखती रही वह शोभा।

मोहन माखन खा रहा है। दधि-मन्थन-पात्र के समीप वह बायाँ हाथ भूमि पर टेककर, बायें पैर के आधार पात्र पर उझका है। दाहिना हाथ पात्र में है। अलकें मुख पर घिर आयी हैं। नन्ही कोमल अँगुलियाँ—बहुत थोड़ा नवनीत उठता है उनसे। अधर, कपोल, हाथ, सब पर वह उज्ज्वल नवनीत लगा है।

'अरे, तू क्या करता है? क्यों यहाँ मेरे सूने घर में आया?' गोपिका ने अपने को सम्हाल लिया है!

'एक बछड़ा भाग आया है!' कन्हाई ने मुख तनिक उठाया और इस सहज भाव से कह दिया जैसे वह इस दधिभाण्ड में ही बछड़ा ढूँढ़ रहा है।

'बछड़ा भाग आया है तो तू इस पात्र में क्यों उझका है?' गोपिका कितनी कठिनाई से हास्य रोककर स्वर कठोर रख पा रही है, यह अनुमान किया जा सकता है।

'ठहर, इसमें चींटी पड़ गयी है!' यह कोई बात है कि गोपी इस कनूँ से प्रश्न-पर-प्रश्न किये जा रही है। जब वह पात्र में उझका है तो बछड़ा न सही, चींटी सही; कुछ न कुछ तो होगा ही। यह स्वयं क्यों कुछ नहीं समझ लेती। श्याम का स्वर कहता है तू तंग मत कर! मुझे उत्तर सोचने या देने का अवकाश नहीं है!'

'लेकिन तेरे मुख और कपोल पर नवनीत कैसे लगा है?' यह गोपी भी विचित्र है। यह तो पूछती ही जा रही है।

'कहाँ?' अब इस माखनचोर का ध्यान भङ्ग हुआ। अब लगा कि इस गोपिका से ऐसे पिण्ड नहीं छूटेगा। हाथ पात्र से निकाल लिया इसने और भला, उत्तर श्याम को सोचना पड़ता है—'खाज आ रही थी, तो खुजलाऊँ नहीं क्या?'

हो चुका संयम, अब खुलकर हँस पड़ी यह और मोहन तो वह भागा जा रहा है! भाग गया वह।

× × × ×

'श्याम अपने-आप नवनीत खाते कल कितना सुन्दर लग रहा था!' आज गोपी ने और शीघ्रता कर ली है। मन्थनपात्र बड़ा है, उसमें से माखन निकालने के लिये मोहन को बहुत उझकना पड़ता है। बहुत श्रम करना पड़ता है उसे। आज नवनीत पात्र में से निकालकर समीप ही लौंदा बनाकर पृथक् पात्र में रख दिया उसने और स्वयं छिप गयी भवन में। आज छिपकर वह माखन-चोर की छटा देखेगी।

कन्हाई आ रहा है! द्वार खुला है, दधि-मन्थन-पात्र—वह क्या मणि-स्तम्भ के समीप रक्खा है। इधर-उधर देख रहा है यह चपल। 'नहीं, घर में तो कोई नहीं जान पड़ता। कलकी भाँति गोपिका जल लाने गयी होगी! अच्छा, आज तो माखन वह बाहर निकाल कर रख गयी है।' बड़ा प्रसन्न है, दोनों हथेलियों से ताली बजाकर नाचने लगा है। अब बैठ गया नवनीत-पात्र के

सम्मुख आसन लगाकर। द्वार की ओर मुख कर लिया है इसने, जिसमें कोई आये तो दूर से ही देखकर भागा जा सके।

'अरे, तू कब आया ?' यह किससे बातें कर रहा है ? किसे देखकर इतना उत्फुल्ल हो रहा है ? 'बड़ा अच्छा हुआ, अब हम दोनों आनन्द से माखन खायेंगे। देख तो, इसका माखन कितना उजला, कितना कोमल, कितना मीठा है ! ले, तू मुख तो खोल !' यह मणिस्तम्भ में अपने प्रतिबिम्ब से ही सम्भवतः बात कर रहा है। स्वच्छ दर्पण तो जानने में आ भी जाता है; परंतु यह निर्मल स्फटिक और इसमें श्याम की यह प्रतिफलित छवि—अब कन्हाई ने उसे तोक मान लिया तो क्या आश्चर्य। तोक है भी तो ठीक इसी-जैसा। नन्हा-सा श्याम—यह भ्रम तो अनेक बार तोक की माता और मैया तक को हो जाता है। अपने लाल का प्रतिबिम्ब देखकर मैया कितनी बार हाथ के नवनीत के दो भाग करने लगती है। श्याम अपने इस प्रतिबिम्ब से बातें कर रहा है ! वह समझता है कि उसका छोटा चचेरा भाई उसके सम्मुख है और तोक पास हो तो मोहन उसके मुख में अपने हाथ से दिये बिना कोई भी पदार्थ स्वयं कैसे पहिले खा सकता है।

'मुख खोल !' कन्हाई आग्रह कर रहा है। अनुनय कर रहा है—'मैं तुझे पुकारे बिना यहाँ चला आया, इसलिये रूठ मत ! ले, ले, खा ले ! इतना नहीं लेगा ? अच्छा, तू खा तो सही, मैं सब-का-सब तुझे खिला दूँगा !' पता नहीं क्या बात है, आज कनूँ का यह अनुज उससे रूठ गया है। यह तोक अपने अधर हिलाता है, मस्तक भी हिलाता है; पर इतना स्पष्ट नहीं बोलता कि कुछ सुन पड़े। यह बहुत शीघ्र रूठ जाता है, कनूँ ही इसे मना पाता है और आज यह रूठ गया।

'मैं खाऊँ, तब खायगा तू ?' तोक न खाय और श्याम खा ले—यह कैसे हो; किंतु जब यह हठ ही कर रहा है, तब यही सही, कितना तनिक-सा—राई-जितना नवनीत कन्हाई दो अँगुलियों से उठाकर मुख में डाल रहा है। मैंने तो खा लिया, अब तू खा ! तुझे खाना पड़ेगा, भला !' यह भी कोई बात है कि तोक इतना कहने पर भी नवनीत न खाय। श्याम उसके मुख में लगा देगा।

'एँ !' नवनीत तो स्तम्भ से लगकर भूमि पर गिर पड़ा। 'तोक—नन्हा तोक आज बहुत रुष्ट है !' कमल-लोचन भर आये ! अनुज नहीं खाता तो यह कैसे नवनीत खा लेगा; लेकिन गोपिका कब तक रोके रहे अपने को। उसका हास्य रुकता नहीं, वह हँस पड़ी है।

'कोई है ! कोई हँस रहा है !' मोहन चौंका। उसने मुख घुमाया और झटपट उठ खड़ा हुआ। यह गोपी हँसते-हँसते दुहरी हुई जाती है।

'तोक···!' श्याम को अभी न इसके हँसने की चिन्ता है और न अपने पकड़े जाने की। इसका तोक रूठ गया है। इसे तो एक ही बात सूझ रही है—कोई मना दे इसके भाई को, और शब्द ही नहीं मिल रहे हैं इसे अपनी बात कहने को। 'यह गोपी क्यों इतना हँस रही है ? यह क्यों तोक को मनाती नहीं ?' कन्हाई कुछ आगे आ गया है।

'तोक कहाँ है ?' गोपिका की हँसी बढ़ती जा रही है।

'तोक···' सचमुच यहाँ तो कोई नहीं है। श्याम के मुखपर सङ्कोच—झेंप की कैसी मञ्जु आभा है !

'तू जाता कहाँ है ? माखन तो खा ले। मैं कुछ नहीं कहूँगी ! ले, आ, ले !' अब कौन सुने ! तोक यहाँ न सही; पर सचमुच यदि वह सुने कि कन्हाई अकेले माखन खा आता है और रूठ जाय तो ? नहीं—अब सखाओं के बिना श्याम अकेले माखन नहीं खायेगा !

—❀⊃❀⊃❀—

तस्कराणां पतये नमः

"दधिमथननिनादैस्त्यक्तनिद्रः प्रभाते
निभृतपदमगारं बल्लवीनां प्रविष्टः ।
मुखकमलसमीरैराशु निर्वाप्य दीपान्
कवलितनवनीतः पातु गोपालबालः ॥"

—श्रीलीलाशुक

'कन्हाई मेरे घर भी छिपकर नवनीत खाता !' पता नहीं कितने हृदय मचल रहे हैं। सुना है, मोहन गुप-चुप एक के घर में घुसकर माखन खा आया। अब तो साधों का संसार पोषित होने लगा है। 'कैसे वह आयेगा, कैसे छिपकर उसे देखना होगा, कैसे उसे डाँटना पड़ेगा और तब वह किस प्रकार चिढ़ायेगा या भाग जायगा।' पता नहीं क्या-क्या सोचने लगी हैं ये गोपियाँ।

मोहन अपने सारे साथियों को लेकर आता ! अपनी मण्डली में उसकी चञ्चलता, धृष्टता अवश्य बढ़ जायगी और तब वह खूब खुलकर धूम कर सकेगा !' अकेले श्यामसुन्दर आये और बिना कुछ खाये ही भाग जाय, यह कौन चाहेगा। बालकों के साथ आये तो कुछ देर तो टिकेगा ही।

और जब इस प्रकार हृदय मचलने लगे हैं, तब वह हृषीकेश इनके माखन का लोभ कैसे छोड़ सकता है। वह—वह मन्त्रणा हो रही है ! 'हम सब गुप-चुप घुस जायँगे उसके घर और खूब माखन खायँगे !' मोहन सखाओं को अपनी योजना समझा रहा है।

'तू चोरी करेगा ? ना, ना, मैया मारेगी !' यह वरूथप सदा कुछ-न-कुछ अपनी टाँग अड़ाया ही करता है। भला, माखन-दही भी चोरी का होता है। वह तो है ही भोग लगाने के लिये। मधुमङ्गल को यह सब उपदेश पसंद नहीं। कन्हाई ठीक कहता है—भरपेट नवनीत खाने में ओरी-चारी क्या ? वह तो सबके सम्मुख ही खाया जा सकता है, लेकिन गोपियों को तनिक खिझाकर खाने में है तो मजा।

'तू मेरे घर चल, मैं खूब सारा माखन दूँगा।' यह बड़ा माखन देनेवाला आ गया। माखन का अभाव कहाँ किसे है। कनूँ कहता है कि गुप-चुप माखन-दही लेकर धूम करनी है, गोपियों को खिझाना है—है तो बड़ी सुन्दर क्रीड़ा।

'मैं इतना माखन लूँगा और तेरे पेट पर पोत दूँगा !' तोक दोनों हाथ से बड़े से लौंदे—खूब बड़े लौंदे की आकृति दिखाकर मधुमङ्गल को चिढ़ाने के प्रयत्न में है। कन्हैया ने कोई बात कही और यह ऐसे फुदकने लगेगा जैसे वह वस्तु इसे मिल ही गयी और अब इन सखाओं का विरोध क्या काम आवेगा। ये चोरी नहीं करना चाहते, ये कुछ बड़े हैं—सब ठीक; किंतु यह तोक जो श्याम की बात लेकर फुदकने लगा है। इसका प्रतिवाद तो किया ही नहीं जा सकता। इसे रुष्ट होते देर नहीं लगती और यह रूठे तो कन्हाई पहिले रूठा धरा है। यह सबसे छोटा है, कदाचित् कनूँ इसी से इसका पक्ष लेकर सबसे झगड़ने को उद्यत हो जाता है। अब तो बात स्वीकृत हो चुकी, ये सब बालक क्या योजना बना सकेंगे। प्रातः श्याम जिधर चल पड़े—बस, वही योजना।

× × × ×

माखन है तो सही, पर बहुत ऊँचे छीके पर है। होने दो ऊँचे पर, इतने से ही क्या उसे छोड़ा जा सकता है। यह जो कोने में ऊखल है। सब मिलकर इसे लुढ़का लायेंगे छीके के नीचे।

ऊखल पर पट्टा और उस पर वरूथप के कंधे पर चढ़ा यह श्यामसुन्दर। पट्टा, ऊखल, भूमि—सब श्वेत हो चली है। सबों ने दूध की मटकी में लकुट मारकर छेद कर दिया है। उज्ज्वल दूध की धारा गिर रही है। दधि एक दूसरे के अङ्गों पर भरपूर उछाला है और अब जाकर कहीं नवनीत मिला है। वरूथप के कंधे, मस्तक सब पर दधि पड़ा है और दोनों हाथों से यह कन्हाई को सम्हाले है।

मोहन माखन निकाल रहा है! एक हाथ से उसने छीके पर रक्खे पात्र को झुकाकर पकड़ लिया है और दूसरे से लौंदे निकाल-निकाल कर नीचे सखाओं को दे रहा है। दोनों कर, अधर उज्ज्वल हो रहे हैं। कभी-कभी तनिक-तनिक अपने मुख में देता है नवनीत, कभी लौंदा एक सखा को देता है और कभी दूसरे को। चपल नेत्रों से सब इधर-उधर देखते जाते हैं कि कोई आता तो नहीं।

बालक कितना माखन खायँगे? यह तो क्रीड़ा करनी है उन्हें। ये पक्षी, ये कपि—ये सब भी तो इनके ही साथ आये हैं। ये भी तो इनके सङ्गी ही हैं। कुछ मुख में, कुछ देह पर, कुछ भूमिपर, कुछ किसी के ऊपर फेंकने या पोतने में और कुछ पक्षियों तथा कपियों के लिये—नवनीत का सदुपयोग हो रहा है। सबकी दृष्टि ऊपर लगी है, पक्षियों और कपियों तक की। कन्हैया नवनीत निकाल-निकालकर दे रहा है।

मधुमङ्गल कूद रहा है, इसे आज सबों ने मस्तक से पैर तक श्वेत कर दिया है और श्याम बड़ा नटखट है; वह लौंदे देता तो है, पर अनेक बार अँगूठा दिखा देता है। कभी देने को लौंदा उठाकर फिर पात्र में डाल देता है, कभी दूसरे को दे देता है और कभी उसमें इतना थोड़ा गिराता है कि पूछो मत और जब मधुमङ्गल दूसरी ओर देखता है तो छप से इसके मस्तक या पीठपर कोई लौंदा आ बैठता है।

ये सब क्या चुप रह सकते हैं। कपि बार-बार बोलते हैं, आँखें मटका कर माँगते हैं और जब कोई उनके नेत्र या नाक को नवनीत का लक्ष्य बनाता है तो कूदकर दाँत भी दिखाते जाते हैं। पक्षी भी माँग रहे हैं और बालक ही कहाँ चुप हैं। हास्य, ताली और कोलाहल—पूरी धूम चल रही है। सब इधर-उधर देख लेते हैं और एकाध क्षण शान्ति हो जाती है। अच्छा सूना घर मिला है। इनको क्या पता कि दो नेत्र एक द्वार-छिद्रपर अपलक हो रहे हैं; पर उस दर्शिका का शरीर उसके वश में कहाँ है। वह तो मूर्ति-सी स्थिर देख रही है। उसके प्राण नेत्रों में एकाग्र हो गये हैं। मोहन माखन खा रहा है........।

'चूड़ियाँ बजीं! कोई आ रहा है!' यह कूदा कनूँ, यह भागा—यह भागा और भागे सब ताली बजाते, एक दूसरे को ठेलते द्वार से। कितने प्रसन्न, कितने चञ्चल हैं सब। गोपिका देखती रही—देखती रही एकटक। उसके पद बढ़े नहीं, वह चाहकर भी दौड़ नहीं सकी है। सब चले गये; पर वह तो द्वार की ओर ही देख रही है।

कितने पदचिह्न हैं ये! दधि नवनीत से सने चरणों के भूमि पर पड़े ये चिह्न—यह तो इन चिह्नों को ही देखने लगी है, इस प्रकार जैसे कुछ ढूँढ लेगी इनमें। सब इस प्रकार गये हैं कि कोई पद-चिह्न पृथक् नहीं रहा।

कक्ष की भूमि पर तो कीच हो रही है नवनीत, दधि, दूध की। भित्तियों पर चारों ओर भरपूर छिड़काव हो चुका है कुछ ऊँचाई तक। उज्ज्वल तो हो गया है कक्ष से बाहर सम्मुख का प्राङ्गण कपियों और पक्षियों के दौड़ने तथा कूदने से। फूटे गोरस-पात्रों के खण्ड पड़े हैं इस उज्ज्वलता के मध्य इधर-उधर। यह तो ऊखल पर चढ़ रही है; कदाचित् देखना चाहती है कि कुछ नवनीत बचा भी है या सबका सत्कार हो चुका। अरे, इसे अपने वस्त्रों तक का ध्यान नहीं। छीके का पात्र—भला, अब इसमें क्या धरा है। यही इधर-उधर लगा, सटा कुछ थोड़ा; किंतु यह तो पात्र उतारकर इसी दधि-दूध की कीच में बैठ गयी है और बचे-खुचे माखन को पोंछ-पोंछकर चाट लेना चाहती है—अब यही क्यों रह जाय? नेत्रों से अश्रु, रोमाञ्चित काँपता शरीर और यह अद्भुत-

सी लोचन-भङ्गी—क्या हो गया है इसे? लो, यह पात्र भी इसने फटाक से फोड़ दिया! पगली तो नहीं हो गयी? जूठा पात्र लेकर करती भी क्या? पर यह जो बार-बार खिलखिलाकर इधर-उधर देखती अकारण हँसती जा रही है, सो?

× × × ×

ये नन्हे-नन्हे बछड़े तो कूदते, उछलते भले लगते हैं। इन्हें भी बाँधकर रक्खा जाय, कन्हाई यह कैसे समझ ले। ये बालक अपने समान सबको कूदते, उछलते, हँसते देखना चाहें—इसमें अस्वाभाविक क्या है। फिर बछड़े तो छूटकर इनके साथ-साथ ही घूमेंगे। इन्हें सूँघ-सूँघकर ही उछलेंगे, इन्हें खेलने का अच्छा साधन मिल जायगा। बँधे बछड़े दीखे और श्याम ने खोला उन्हें। इन बालकों को देखते ही गोपियाँ सावधान हो जाती हैं कि ये नटखट अवश्य उनके बछड़े खोल देंगे। बछड़ों का क्या ठिकाना—कहीं उछलते हुये उछलकर गिर पड़ें। किसी कुएँ तक पहुँच जायँ। कहीं और किसी प्रकार अपने को आहत कर लें!—लेकिन चाहे जितना कहा जाय, डाँटा जाय, झिड़का और खीझा जाय, लड़के मानने के नहीं। नन्दनन्दन अँगूठा या घूँसा दिखाकर भाग जायगा दूर और वहीं से मुख बनाकर चिढ़ायेगा। कोई कुछ चिल्लायगा और मटकेगा, नेत्र नचायेगा, नकल उतारेगा और सब हँसेंगे। इन पर क्या डाँटने का कोई प्रभाव पड़ने लगा है।

'यह बछड़े पकड़ने जायगी और हम सब दही खायँगे इसका!' कृष्णचन्द्र ने इन सावधान गोपियों को छकाने का एक नवीन ढंग निकाल लिया है। जब यह बछड़े खोलने पर बहुत बकती है, बहुत नेत्र चढ़ाती है, तब इसका नवनीत तो खा ही जाना चाहिये। ऊँचे छींकों पर धरे पात्रों में लकुट से छिद्र किया ही जा सकता है, तब क्या विलम्ब लगना है।

'कनूँ, इसके घर में तो कुछ है ही नहीं!' यह क्या सहन करने योग्य बात है कि श्याम अपने सखाओं के साथ आये और उसे कोई गोरस न मिले! अब वह अपना रोष मृत्तिका-पात्रों पर तो निकालेगा ही।

'अरे, अरे, यह क्या कर रहा है तू? बच्चे को क्यों रुला दिया!' ये भगे, ये भगे सब! अब यह शिशु क्या शीघ्र चुप होने को है। कुछ न मिला तो नटखट ने बच्चे को ही रुला दिया। बर्तन फोड़े सबों ने भड़ाभड़ और अब बेचारी पकड़ने दौड़े या अपने बालक को चुप कराये। पता नहीं क्या करता है यह श्रीकृष्ण! बच्चा हिचकियाँ लेकर रो रहा है, चुप होने का नाम ही नहीं लेता।

'तेरी माँ बड़ी कंजूस है! तेरे घर में कुछ नहीं; चल, तू हमारे साथ! चल—खूब माखन दूँगा तुझे! चल भाग जल्दी! हमने यहाँ के सब बर्तन फोड़ दिये हैं! वह दौड़ी आ रही है—भाग! उठ!' पता नहीं क्या समझता है नीलसुन्दर और पता नहीं क्या कहते हैं उसके विशाल लोचन; किन्तु वह तो केवल पलने में पड़े शिशु को केवल देखता है तनिक मुख झुका कर, जैसे पहचानता हो कि उसकी मित्रमण्डली में यह कब से आयेगा। कन्हाई का शरच्चन्द्रानन—शिशु दोनों हाथ उठाने का प्रयत्न करके किलक उठता है, पैर उछालने का प्रयत्न करता है। इतना सुन्दर—इतना मोहक मुख झलक दिखाकर भाग जाय—शिशु रोये नहीं तो क्या हो! गोपिका समझती है, बच्चे को चुटकी काट ली है श्याम ने। मोहन अपने किसलय-कोमल कर से चुटकी काटता इसके पास रहता—यह क्या रोने वाला था? श्याम के कर भी कहीं पीड़ा दे सकते हैं। नन्दनन्दन क्या जाने पीड़ा देना; किंतु वह चला गया—भाग गया और बच्चे की हिचकियाँ बन्द ही नहीं होतीं। यह गोपिका शिशु को चुप कराने में असमर्थ हुई जा रही है।

बड़े सबेरे, अभी तो अँधेरा ही है, पर सखाओं से कल ही मन्त्रणा हो चुकी है। अभी-अभी दधिमन्थन प्रारम्भ हुआ और श्याम के नेत्र खुल गये। यह जग गया है। इसके लिये उठनेपर माखन मिल जाय, पद्मा का दूध ठीक गरम हो जाय—मैया इस सबकी व्यवस्था में व्यस्त है। बड़ा सुन्दर अवसर है चुपचाप खिसक जाने का। यह उतरा पलने से कन्हाई, यह चला दबे पैर।

तुरंत का निकाला नवनीत बड़ा सुन्दर होता है। कोई मन्थनपात्र से माखन निकालकर रक्खे और झट से देखे कि वह तो अन्तर्हित हो गया—कितना चौंकेंगे, कैसी मुद्रा होगी उसकी! कितना

आनन्द आयेगा ! सभी बालकों ने कल ही सब सोच लिया और आज तो सब अपने कनूँ की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अभी अँधेरा है, अभी दीपक घरों में जल रहे हैं। गोपियों ने इस ब्राह्ममुहूर्त में दधि-मन्थन प्रारम्भ किया है और गोप नित्यकर्म में व्यस्त हैं। इससे अच्छा अवसर कब मिल सकता चोरी के लिये। कौन जाने कन्हाई को गोपियों की प्रतीक्षा खींचे लिये जाती है या सुअवसर। गोपियाँ तो शय्यासे उठती नहीं,नेत्र खुले और—श्याम आवेगा, आता होगा। बस, एक ही धुन रहती है सबको। कनूँ को दिन निकलने पर मैया उठायेगी; किंतु जब इतना समय प्रतीक्षा करते हृदयों को लक्ष लक्ष कल्प बनने लगे, मोहन कैसे सोया रह सकता है।

बड़ा सीधा उपाय है—गोपियाँ तो घर के कामों में व्यस्त हैं ही, मुख से फूँककर दीपक बुझा दिया और जब तक यह मन्थन पात्र के समीप से उठकर दीपक प्रज्वलित करने जायगी—नवनीत क्या कोई पर्वत है कि उसे उठाने में विलम्ब होगा। यह दीपक जलाने से पूर्व ही बालकों की किलकारी सुन लेगी। न जाय दीप जलाने, बैठी-बैठी पुकारे सेवकों को और नवनीतपात्र पर धरे रहे अपने सावधान कर—कोई अँधेरे में वेणी खींच देगा और इतने में तो माखन का पात्र खिसक ही जायगा। बेचारी जानती है कि सुरक्षा का बहुत उपाय करना अच्छा नहीं। माखन की रक्षा के प्रयत्न में छाछ भी चली जायगी। श्याम का क्या ठिकाना—कोई युक्ति न मिले तो मन्थन-पात्र पर लकुट ही दे मारेगा। सब वस्त्र भीग जायँगे छाछ से।

× × × ×

'श्रीकृष्णचन्द्र कितना चपल है ! उसे पकड़ लूँ माखन चुराते तो ?' कन्हैया डराने, धमकाने से तो मानने से रहा। उसे पकड़ लिया जाय—पकड़ लिया जाय तो क्या करेगा ? यह तो पकड़कर ही देखने की बात है।

'हूँ !' अरे, यह तो तोक है। वही नीलसुन्दर छवि, वही पीतपट और अब गोपिका ने इसे ही श्याम समझकर भागते बालकों में से शीघ्रता में पकड़ लिया तो मुख बनाकर, अँगूठा दिखाकर यह चिढ़ा रहा है। डरना तो इसने सीखा नहीं। क्यों डरे ? यह गोपी तनिक भी गड़बड़ करे तो इसके सब वस्त्र फाड़ देगा, सब बर्तन फोड़ देगा और कनूँ है न ! कनूँ तो लौटता ही होगा। यह तो गोपिका भी जानती है कि तोक को पकड़ने में कुशल नहीं। इसे पीछे मुड़कर जैसे ही सब न देखेंगे, सबके सब मुड़ पड़ेंगे। कन्हाई तो क्या, दाऊ तक क्रोधित हो उठेगा और फिर इन सबका रोष—कौन साहस कर सकता है इतना। तोक—यह सबसे छोटा, समस्त व्रज के स्नेह और दुलार का भाजन--इसे भला, क्या पकड़ना।

'कनूँ तो वह गया!' तोक जानता है कि इसे किस भ्रम से पकड़ा गया है। यह तो नित्य की बात है। अब यह खिलखिलाकर हँसे और चिढ़ाये नहीं तो क्या करे। इसका हाथ तो कबका छोड़ दिया इस गोपी ने। अब यह और नवनीत लेकर ही टलेगा, इसने पकड़ा ही क्यों ? और पकड़ा तो माखन दे ! गोपिका को हँसकर ही माखन देना है। तोक के मटकने और चिढ़ाने पर भी भला, कोई रुष्ट हुआ है। अपनी नन्हीं अञ्जलि माखन से भरे यह भागा यह—'कनूँ ! कनूँ !'

भला, भद्र को कौन पकड़े। उसकी पीली कछनी तो ठीक; पर वह जब कभी झँगुलिया पहिनता है, उत्तरीय लेता है—उसे दाऊ का नीलाम्बर ही पसंद है और उसके स्वर्ण-गौर वर्ण पर नीलाम्बर ही शोभा भी देता है। अच्छा तो जब वह नीलाम्बर पहिन लेता है, उसे पकड़ने में सदा ही दाऊ का भ्रम हो सकता है। दाऊ को क्या पकड़ा जा सकता है ? दाऊ—तीन वर्ष का दाऊ अभी से वृक्ष पकड़कर हिला देता है। वह बल--उसके भय कौन नहीं डरेगा। कन्हाई तो रोष करके बर्तन ही फोड़ता है, पर दाऊ के लिये तो स्तम्भ गिरा देना भी सामान्य बात ही है। दाऊ चोरी भी कहाँ करता है। अनुज के स्नेह से वह आ जाता है और सब उसे माखन खिला देते हैं, यह दूसरी बात। हाँ, दाऊ के रहते उसके किसी सखा को पकड़ा नहीं जा सकता। वह साथ हो तो किसी को छेड़ते ही सबसे आगे आयेगा सखाओं का पक्ष लेकर और फिर उससे झगड़ेगा कौन।

यह मधुमङ्गल--इसे चाहे जो पकड़ ले, चाहे जो चिढ़ा ले। यह भी किसी को चिढ़ाने में उठा कहाँ रखता है। सब इसे चिढ़ाते हैं और गोपियाँ इसे पकड़ लेती हैं। पेट भर लेने पर दौड़ना क्या कोई भली बात है? इसे चिन्ता भी क्या किसी के द्वारा पकड़े जाने की। कोई पकड़ ले, डाँटे तो माखन-सनी हथेली उसके मुख में लगा देगा या कह देगा—'तू नाक मत टेढ़ी कर; ला, माखन दे!' इस पर कोई रोष भी क्या करे। रोष करने पर कभी पानी पीने को कहेगा, कभी कुछ खाने को और कभी-हाथ मुख बनाकर प्रत्येक शब्द का अनुकरण करने लगेगा। यह आनन्द की मूर्ति—गोकुल के गृहों में यह हास्य, जीवन, आनन्द बिखेरता कूदनेवाला अवधूत—इससे उलझने पर तो हँसे बिना छुटकारा नहीं!

श्याम– श्याम पकड़ लिया जा सके! यह क्या सरल बात है? यह चपल कन्हाई—इसे कैसे पकड़ पाये कोई। पीछे दौड़ने पर भय लगता है--कहीं वेगसे भागने में गिर न जाय। सुकुमार नन्हे चरणों को कहीं ठोकर न लगे! यह क्या दौड़ाया जा सकता है? कितना भला लगता है, जब तनिक दूर भाग सखाओं के साथ मुड़कर मुख मटकाता है, नाना भंगी करता और स्वर बना-बनाकर चिढ़ाता है!

× × × ×

'तू बहुत धृष्ट हो गया है! चल, नन्दरानी से कहती हूँ!' गोपी ने धमकाया श्याम को।

'जा कह दे!' यह चञ्चल धमकी में तो आने से रहा।

'नन्दरानी से कह दूँ?' बड़ा सुन्दर बहाना है। मोहन भाग गया, अब इस बहाने उसे एक बार और देखा जा सकेगा! 'कहीं व्रजेश्वरी श्रीकृष्ण को डाँटने लगें तो?' हृदय में द्वन्द्व चल रहा है। श्याम क्या डाँटने योग्य है? उसके कमल-मुख पर उदासी आये····! नहीं, उसे कोई कैसे डाँट सकता है। उसके मुख की ओर देखकर कैसे रोष रह सकता है! फिर उलाहना देना तो अपने को है। डाँटने का रंग-ढंग हो तो मना किया जा सकता है। अपने शब्द बदले जा सकते हैं। कृष्ण को इस बहाने एक बार और देखने का लोभ कैसे छोड़ा जाय।

'व्रजेश्वरी, अपने इस लाल के गुण भी जानती हो?' अरे, सचमुच यह तो मैया से कहने ही आ गयी। कन्हाई गोदमें बैठ गया है मैया की और गम्भीर बन गया है। बालक समझ ही नहीं पाते कि क्या करें। सब चुप हो गये हैं। जहाँ-तहाँ खड़े बैठे रह गये हैं। यह गोपी तो कहती ही जा रही है--'तुम्हारी गोद में यह कैसा सीधा—साधु होकर बैठा है। इससे तनिक पूछो तो कि क्या-क्या करके आया है!'

'बात क्या है?' मैया क्या पूछे अपने नीलमणि से? यह अभी उसके सम्मुख यहीं तो बालकों के साथ खेल रहा था। अब इतनी देर पर तो तनिक अङ्क में आकर बैठा है। यह भोला, नन्हा कनूँ—भला, इसने क्या किया है? क्या कर सकता है! पता नहीं क्यों यह गोपिका इतनी रुष्ट हो रही है। मैया तो इस प्रकार देख रही है, जैसे बड़े आश्चर्य में हो कि यह क्या हो रहा है।

'हुआ क्या, मेरा सब माखन खा आया अपनी मित्रमण्डली को लेकर! दधि-दूध के भाण्ड फोड़ दिये और मना करने पर इस प्रकार चिढ़ाता है, इस प्रकार की बातें करता है जो कही ही नहीं जा सकतीं!' इसका रोष तो विकट है। यह तो जैसे झगड़ने के लिये ही कमर कस कर आयी है।

'बहिन, तेरे मुख में घी-शक्कर! भला यह तेरे यहाँ माखन तो खाता है!' मैया तो मोहन को डाँटने के बदले प्रसन्न हो उठी है। उसका यह नीलसुन्दर कुछ खाता ही नहीं। बहुत समझाने और आग्रह करके फुसलाने पर कहीं तनिक मुख जूठा कर लेता है। अब यदि माखन खाने लगे तो कुछ शक्ति तो आये इसके शरीर में। गोरस का क्या अभाव है। चाहे जितना गोरस, चाहे जितने पात्र कोई ले जाय उसके यहाँ से। वह तो गोपिका को उपहार देने उठ पड़ी है।

'मैया, यह झूठी है ! मैं इसके घर कहाँ गया था। मैंने तो इसका घर ही नहीं देखा है ! कहाँ रहती है यह ?' तब नहीं, अब बनी। और दे ले उलाहना। कन्हाई कुछ यों ही नहीं कह रहा है। उसके पास अपनी बात के प्रमाण हैं—'तू न माने तो पूछ ले दाऊ भैया से या इस भद्र से ! तू भद्र से ही पूछ ले !'

मैया को कहाँ इन प्रमाणों की आवश्यकता है। वह तो पहले से सोचती है कि उसके गृह में अभाव क्या है कि उसका पुत्र दूसरे के घर माखन खाने जायगा; फिर श्यामसुन्दर कहीं गया भी तो नहीं था। 'बहिन, ऐसा भी क्या परिहास करते हैं !' मैया तो इस गोपी को ही उलाहना देने लगी है।

'जहाँ ऐसे भोले सत्यवादी और उसके साक्षी हैं, वहाँ मेरी सुनेगा कौन !' गोपिका के मुख से यह निकला नहीं। वह तो मोहन की चातुरी पर हँस पड़ी है। 'व्रजेश्वरी, अब तो तुम सच्ची और तुम्हारा यह पुत्र सच्चा !

'और उलाहना देगी ?' कन्हाई के नेत्रों में विचित्र भङ्गी है और मैया की दृष्टि बचाकर अँगूठा तो दिखा ही दिया इस नटखट ने। गोपिका ही कहाँ घाटे में है। वह यही आनन्द तो लेने आयी थी। कहाँ सोचा था उसने कि यह नवीन छटा उसके प्राणों को तृप्त कर देगी। कहाँ स्मरण है उसे अपना उलाहना।

× × × ×

पता नहीं क्या बात है, आज-कल उलाहने बहुत बढ़ गये हैं। कोई-न-कोई दिन भर आती ही रहती हैं। श्याम ने किसी के बछड़े खोल कर भगा दिये हैं, किसी के घर में सखाओं के साथ घुसकर चोरी से नवनीत खा आया है, किसी के सारे भाण्ड ही फोड़ डाले, किसी के बालक को रुला दिया और किसी गोपी की लटकती वेणी खाट में बाँध आया है। 'यह सब कब होता है ?' मैया बहुत सावधान रहने लगी है कि कन्हाई किसी के घर न जाय। यह घर के ही सम्मुख खेले। दिन भर बालक यहीं तो खेलते रहते हैं; लेकिन सभी गोपियाँ झूठ बोलें, यह भी कैसे सम्भव है। यह बहुत ऊधमी होता जा रहा है। चोरी से माखन खाना तो बहुत बुरा है। मैया क्या करे ? मोहन के कमल-मुख की ओर देखते ही वह सब भूल जाती है। श्रीकृष्णका भोला मुख—भला, कैसे किसी में रोष का स्वाँग भी रह सकता है उसे देखकर !

दधि-माखन ऊपर रक्खा जाय; पर गोपियाँ कहती हैं कि यह ऊखल पर पट्टे रखकर किसी बालक को खड़ा करके उसके कन्धे पर चढ़कर उतार लेता है और यह उपाय सफल न हो तो लकुट मारकर बर्तनों में छिद्र कर देता है ! गोरस के भाण्ड—गोपियों को ये पुराने चिकने भाण्ड कितने प्रिय हैं ! वे विचारी माखन के लिये कहाँ उलाहना देती हैं; पर उनके भाण्ड फोड़ दे यह—यह भी कहाँ तक सहा जाय।

छिपाकर गोरस रक्खा जाय ! क्या लाभ ? श्यामसुन्दर अँधेरे की स्वतः औषध है। जहाँ पहुँच जायगा, प्रकाश हो जायगा। बालकों के साथ आँखमिचौनी खेलने में तो कहीं छिप नहीं पाता, सब इसके अङ्ग की कान्ति से ही ढूँढ़ लेते हैं इसे और उसपर कण्ठ में जो दीप्त मणियों की माला पहिनकर घूमता है यह—इससे कोई वस्तु छिपायी कैसे जाय। कोई छिपा भी दे तो और कोई ऊधम कर आयेगा। कुछ न मिले तो इसे रोष तो आयेगा ही और तब गृह के भाण्डों की कुशल कहाँ। इतना ही हो, तब भी कोई बात नहीं; वह गोपी कहती थी कि सब उसके गृह के धान्यादि को पवित्र कर आये ! बच्चे तो हैं ही; प्रातः सब भाग गये गृह से और जब नित्यकृत्य की आवश्यकता हुई, यह धूम कर डाली ! बेचारी गोपी—वह समझ ही नहीं पाती थी कि हँसे या रोष करे। उसकी बात ही सुनकर मैया को बलात् हँसी आ गयी और फिर तो सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयीं, जब मोहन ने कहा—'इसने अपने-आप यह सब किया है और मेरा नाम लेती है !'

'क्यों रे !' मैया डाँटने लगी थी। बालक बहुत बिगड़ता जा रहा है, यह ठीक नहीं।

'ना, ना ! इसे कुछ मत कहो !' यह अच्छी रही। अभी तो यह गोपी लाल-पीली हो रही थी, उलाहने दे रही थी और अब गिड़गिड़ाने लगी। अब तो यह कहती है कि श्याम की बातें ही ठीक हैं, यह तो परिहास कर रही थी। मैया अब क्या समझे ! कौन सच्चा है ? समस्या हो गयी है यह।

× × × ×

'भाग मत ! भाग मत तू ! चाहे तो और माखन ले ले; पर इस प्रकार तो मत भाग ! कोमल अरुण चरण और यह भूमि तो कुछ तप्त हो चली है ! नवनीत लेकर कन्हाई भय के कारण भाग रहा है ! इसके किसलय-से चरण पीड़ा पा रहे हैं। गोपिका को लगता है—श्याम भूमि की उष्णता के कारण ही इतनी शीघ्रता से पैर उठा रहा है। इसके पैरों के तलवे कितने लाल हो उठे हैं। पुकार रही है—पुकार रही है द्वार तक आकर और इसकी पुकार में तो प्राण आर्तनाद कर रहे हैं; किंतु कहाँ सुनता है यह चञ्चल मोहन। 'अरे क्या हो गया यदि तूने नवनीत ले लिया। डर मत ! भाग मत !'

'कृष्णचन्द्र इस आतप में ही भागता गया है !' अब कैसे घरमें रहा जा सकता है। 'वह सकुशल घर पहुँच गया !' यह तो देख ही आना चाहिये। अब यह नन्दभवन चली है। वहाँ पहुँचकर और कोई बहाना न सूझे और उलाहना देने लगे तो कोई क्या करे !

कमल-मुख किंचित् अरुण हो आया है धूप में आने से। भाल पर अब भी कुछ बिन्दु झलमल कर रहे हैं। अधरों पर नवनीत की उज्ज्वल रेखा, कपोलों पर श्वेत बिन्दु और हाथ तो सने ही हैं। आज यह श्यामसुन्दर ठीक पकड़ा गया। आज कोई भी बहाना चलेगा नहीं इसका।

'यही है, यही है मैया ! तू इसको मार !' बेचारी पहुँचने भी नहीं पायी कि देखा मोहन मैया का हाथ पकड़ कर अभियोग उपस्थित करने लगा है। इसने कितना गम्भीर मुख बना लिया है !

'क्यों री, तू नीलमणि को अपने यहाँ बलात् पकड़ ले जाती है ? मेरे लाल से घर का काम भी कराती है और इसके मुख, कपोल, हाथों में माखन लगाकर मुझे उलाहना भी देने आती है ?' मैया ने मुख को कृत्रिम कठोर बना लिया है, पर उसके नेत्र और स्वर में हास्य है। अच्छा, तो इस कान्ह ने पहिले ही आकर अपना पक्ष बना लिया है !

'मैया, मैं कहता था न कि यह अभी आती ही होगी ! तू पूछ ले भद्र से, यह नित्य मुझे तंग करती है !' जैसे आप, वैसे आपके साक्षी। भद्र तो बिना पूछे ही कन्हाई का समर्थन करने लगा है।

'व्रजेश्वरी, यह दिन-प्रतिदिन का ऊधम कहाँ तक सहा जाय ! दूध, दही, माखन—यह गोरस ही तो हमारी आजीविका है और तुम्हारा लाल उसे नित्य नष्ट कर आता है ! नित्य कहाँ तक नवीन भाण्ड लिये जायँ और तुमसे कहने आवें तो उलटे दोष लगता है।' बात तो सच है, अपनी हानि भी हो और दोषी भी बना जाय—यह क्या सहन करने योग्य बात है ? अब यह आवेश में तो आयेगी ही। 'हम तो व्रजवासी हैं; न गोकुल में रहेंगे और किसी व्रज में सही। इस हानि और लाञ्छन से तो छुटकारा होगा !'

'श्याम मेरा ही है, तुम्हारा नहीं है ? तुम किस पर रोष करती हो, बहिन ! हानि की तो क्या चर्चा है; नवनीत, गोरस, भाण्ड—जितना चाहे, ले जाओ ! रहा यह मोहन—यह तो तुम्हारे ही सबके आशीर्वाद से आया और तुम्हारा ही है। गोकुल तुम छोड़ने की चर्चा करो, इससे तो ....।' मैया कितनी भोली है ! उसके तो नेत्र टपकने लगे हैं, कण्ठ भर आया है और गोपिका तो उलटे क्षमा माँगने लगी है। कहीं परिहास को भी इतनी गम्भीरता से लिया जाता है।

× × × ×

'यह लो, अपने लाल को देखो !' आज कितने दिनों पर कितने प्रयत्न से यह इस नटखट को पकड़ पायी है। व्रजेश्वरी विश्वास ही नहीं करती थीं। यह भी कोई-न-कोई बहाने बना दिया करता था। आज छिपकर पकड़ सकी है माखन खाते समय। अब बहाना बना दे तो...।

'क्या किया है इसने ?' मैया के तो सभी लाल हैं। वह तो पुचकारने-जैसे स्वर में बोल रही है।

'क्या किया है, सो तुम्हीं देख लो ! नित्य ऐसे ही चोरी करता है, माखन, दधि, दूध फैलाता है और फिर तुमसे कहें—तो बहाने बनाता है।'

'तू क्या कह रही है ? भला, मुझसे तूने कब कहा था ! आ बेटा, चोरी से क्यों माखन खाता है ! तेरी माँ बड़ी कृपण है !' मैया तो उलटे ही डाँट रही है—'तू इसे देती नहीं माँगने पर, तभी तो चोरी करता है'।

'हे भगवान् !' गोपिका तो जैसे आकाश से गिरी। यह तो कन्हाई को पकड़े आ रही थी, यह क्या हुआ ? यह तो उसीका पुत्र है। अब क्या कहे ? बड़े धूर्त हैं सब ! सब-के-सब मिले रहते हैं। मार्ग में श्याम ने कहा था कि 'मेरा हाथ दुखने लगा है, तू इस हाथ को पकड़ ले' और चुपचाप इसका हाथ दे दिया हाथ में। यह अपने सखा की रक्षा के लिये पूरे मार्ग भर कैसा गुम-सुम चला आया है।

'अभी कल देवरानी तोक को पकड़ लायी थी। भला, नन्हा तोक क्या जाने चोरी करना ! तुम सब अब तक तो श्याम को ही दोष देती थीं, अब अपने पुत्रों को भी ऊधमी बताने लगीं। पता नहीं क्यों तुम सब-की-सब इन बालकों के पीछे पड़ी हो। आ भैया, तू मेरे पास आ ! मैं तुझे भर-पेट माखन खिलाऊँगी !' मैया क्या जाने कि उसके पुत्र ने क्या पटयन्त्र किया। वह तो सदा' सीधा अर्थ ही लेती है घटनाओं का। 'बच्चे ने कुछ ऊधम किया होगा तो यह मेरे पास लायी है उसे ! पर मैया तो सदा से बालकों का ही पक्ष लेती है।

× × × ×

श्याम चोरी करता है—माखन, दधि, दूध की चोरी ! अपने सारे सखाओं के साथ यह चाहे जिसके घर चुपचाप घुस जायगा और चलने लगेगी इसकी धूम। मोहन की यह चोरी—गोपियाँ प्रतीक्षा करती रहती हैं; इसके पहुँचने में विलम्ब हो तो उनका हृदय कहने लगता है—ऐसे माखन को धिक्कार, जो कन्हैया की क्रीड़ा में न आवे !'

'वह आ रहा है, वह आ रहा है कनूँ !' यह चित-चोर चित्त की बात न समझ ले—कैसे सम्भव है। ये आये उसके सहचर और अब इसे छिप जाना चाहिये ! छिपकर ही इन सबों की मधुर क्रीड़ा देखी जा सकती है।

डाँटना, धमकाना—यह कन्हाई मुख बनाता है, ये बालक घूसा दिखाते और चिढ़ाते हैं। मैया के यहाँ तो उलाहनों का बहाना लेकर जाना ही है। मोहन अपना मुख ऐसा गम्भीर बना लेगा कि देखते ही बनेगा। इसके ये ऊधमी सखा साधु साक्षी बन जायँगे। ऐसी बातें बनायेगा कि पूछो मत।

'मैं तो यहीं खेलता हूँ दिन भर ! यह तो है ही लड़ाकू, वायु से भी लड़ा करती है ! कोई न मिला होगा तो तुझसे लड़ने आयी है ! मुझे तो इसने ही बुलाया था, सब गोबर उठवाया और माखन भी नहीं दिया ! अब तुझसे कहने आयी है ! मैं इसके सब भाण्ड फोड़ दूँगा !' पता नहीं कितने बहाने बने रहते हैं इसके पास ! गम्भीरता, रोष, भय—क्षण-क्षण पर मुखके भाव बदलते रहेंगे और तब उलाहना देनेवाली हँसे नहीं तो क्या करे ! मैया तो इसका मुख ही देखती रह जाती है।

'और आना—हाँ !' उलाहना देकर मुड़ते ही यह भागा आता है और द्वार के समीप घूसा दिखाकर या हाथ मटका कर धमकाता है ! गोपिका नेत्र कड़े भले कर ले, उसका हास्य तब कठिनता से ही रुकता है और ये सब-के-सब नटखट—इनसे कोई कहाँ तक पार पावें। इनसे पिण्ड छुड़ाकर खिसक ही जाना ठीक है।

बड़ा ऊधमी हो गया है यह कनूँ—वैसे ही संगी मिल गये हैं इसे और जब इसके ऊधमों का आह्वान कर रहे हैं सुस्निग्ध अन्तर—यह चला, यह चला अपनी मित्र-मण्डली के साथ ! अब तो कहीं नवनीत या दधि की कीच होकर रहनी है।

—❀—❀—❀—

दामोदर

"नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥"

—भागवत १०।९।२१

रात्रि में दीपमालिका जगमग करती रही है। आज रात्रिभर गोपों ने महालक्ष्मी का पूजन किया है और गोपियों ने मङ्गल-गान किये हैं। दीपावली के प्रातः ही तो इन्द्रयाग होता है। ब्राह्ममुहूर्त से तनिक पूर्व ही गोपियाँ दारिद्र्य-निःसारण की विधि पूरी कर चुकीं। भला, गोकुल में दरिद्रता—अलक्ष्मी, अमङ्गल ? पर जो सनातन परम्परा है, उसे तो पालन करना ही चाहिये। सूप, ताड़पत्रादि के शब्दों से गृहों का कोना-कोना गूँज गया था और अब तो सब स्नान करने भी चली गयी हैं।

कन्हाई दीपोत्सव की धूमधाम में देर से सोया पिछली रात। वह सखाओं के साथ घृत-दीपकों की पंक्तियाँ सजाने में कितना मग्न था। बालक बड़े हठी हैं। सबोंने मैया के बार-बार कहने पर भी पूरे गोष्ठ में स्वयं प्रदीप रक्खे। गायों की भी कोई संख्या है ? इन सबों की हठ—प्रत्येक गाय, वृषभ और बछड़ी तक के समीप दीपक रक्खेंगे। दीपदान सम्पूर्ण हुआ तो सब इधर-से-उधर धूम करते घूमने लगे। कुशल हुई—किसी ने उलाहना नहीं दिया कल; पर सब-के-सब थक गये। श्याम रात्रि का पूरा एक प्रहर व्यतीत हो जाने पर सोया। प्रातः दारिद्र्य-निःसारण का तुमुल कोलाहल—मैया ना डर रही थी कि उसके लाल की निद्रा न खुल जाय ! इस लिये तो वह पुत्र के समीप सोयी ही रही उस समय उसे थपकाते हुये।

गोप महेन्द्र का यजन करेंगे। वे तो ग्राम-सीमा से बाहर चले गये सब पशुओं को लेकर। आज का गोदोहन तो वहीं होगा और वहीं गायों की, वृषभों की पूजा होगी। आज का सम्पूर्ण सम्भार तो सुरेश के पूजन के लिये ही है। आज माता रोहिणी यज्ञमण्डप की सामग्री-व्यवस्था करने पहिले ही चली गयी हैं। दाऊ, भद्र—ये तो उनके साथ ही गये। दाऊ दारिद्र्य-निःसारण के कोलाहल में जग गया और तब उसे यज्ञ-मण्डप में जाने से कौन रोक लेता। कान्ह नहीं उठा, अच्छा ही हुआ। श्याम को मैया के बिना कौन सम्हाल सकता है। दूसरे किसी के द्वारा न यह मुँह धुलायेगा और न कुछ खायगा ही। माता रोहिणी आग्रह कर गयी हैं कि मैया घर पर ही रहे और इस चपल को यहीं रक्खे। यज्ञस्थान में जाकर यह पता नहीं क्या धूम करने लगे। बालक के द्वारा कोई देवापराध न हो जाय—इससे यहीं रहना ठीक है इसका !

दासियाँ सामग्री प्रस्तुत करने में लगी हैं। यज्ञ-सम्भार यज्ञस्थान में पहुँचाया जा रहा है। अब प्रभात होनेवाला ही है। जगमग करते दीपों की कान्ति थोड़ी देर में मलिन होने लगेगी। श्यामसुन्दर उठेगा ! उसके लिये नवनीत चाहिये। व्रजेश्वर स्वयं पद्मगन्धा कामदा को दुहते हैं। वे आज सावधानी से दूध गरम करने को कह गये हैं। आज का सम्पूर्ण गोरस यज्ञ के काम के लिये चला गया। सब-का-सब दूध वहीं दुहा जायगा और सुरपति की अर्चा होगी उससे। श्याम के लिये ही यह दूध भवन में आया है। आज इसे सावधानी से उपयोग करना है। वैसे भी मोहन कामदा को छोड़कर और किसी का दूध मुखसे ही नहीं लगाने देता।

आज अवसर मिला है। मैया कितना चाहती है कि अपने पुत्र के लिये सब कार्य वह स्वयं करे; पर कहाँ कर पाती है। किसके आग्रह की उपेक्षा कर दे वह। आज कोई नहीं है। दसियाँ तक

यज्ञिय कार्यों में व्यस्त हैं। आज सुयोग प्राप्त हुआ है—आज मोहन के लिये स्वयं दधि मथेगी, नवनीत निकालेगी, दूध गरम करेगी। उठने पर उसका मुख धोयेगी, माखन खिलायेगी—सब काम आज स्वयं करेगी! मैया धीरे से शय्या से उठी है। श्याम ने तनिक हाथ हिलाया, थपकियाँ दे रही है यह। थपथपा रही है धीरे-धीरे।

श्याम सो रहा है, घुँघराली काली अलकें भाल पर बिखरी हैं। विशाल लोचन पलकों में बंद हैं। अधरों पर मन्द स्निग्ध स्मित की छाया है और अर्धमुकुलित करकमल—वक्ष एवं उदर तनिक-तनिक ऊपर-नीचे स्पन्दन कर रहे हैं। चरणों के नीचे फेंक दिया है इसने आच्छादन का कौशेय-पट। मैया ने वस्त्र धीरे से लेकर अङ्गों पर डाल दिया। विशाल भाल पर कज्जल-बिन्दु लगा दिया और देखती रही दो क्षण तक सोते अपने कृष्णचन्द्र को।

× × × ×

मैया आज स्वयं दही मथ रही है। सम्मुख कामदा का दूध मन्द अग्नि पर चढ़ा दिया है इसने। श्याम जग जाय तो यहीं से ज्ञात हो जायगा। शय्या का प्रत्येक भाग दृष्टि में है और दधि-मन्थन का रव यहाँ से उसकी निद्रा में बाधा भी नहीं देगा।

मैया दही मथ रही है और बार-बार शय्या की ओर देख लेती है। दोनों हाथों में रज्जु लेकर मथ रही है दही को। मथानी घूम रही है। दही पतला हो गया है। उसमें हिण्डन चल रहा है। बिन्दु उछल रहे हैं। मैया के सिरका वस्त्र खिसककर कंधों पर आ गया है। केश में गूँथे मालती-सुमन यदा-कदा गिर जाते हैं। मुखपर स्वेदसीकर झलकने लगे हैं। कपोलों पर कुण्डल नाच रहे हैं। कङ्कण कणित हो रहे हैं और वह धीमे-धीमे स्वर से अपने श्याम के चरित गा रही है। मैया गा रही है, मोहन के अमृतस्निग्ध चरित उसके नेत्रों के सम्मुख घूम रहे हैं, मग्न है वह। हाथ स्वतः रज्जु को चला रहे हैं। मन्थन हो रहा है, मैया गा रही है और जैसे कुछ देख रही हो प्रत्यक्ष-सा।

'मैया! मैया! मैया री!' कनूँ की निद्रा गयी। इसने अङ्गपर का आच्छादन-वस्त्र पैरों से हटा दिया। तनिक कुलबुलाकर पलक खोले और मैया कहाँ है? पड़े-पड़े इधर-उधर लोट-पोट हुआ शय्या पर और पेट के बल होकर धीरे से उतर गया। वह मैया दधिमन्थन में लगी है। कन्हाई अभी सोकर उठा है। अब भी नेत्रों में अलसभाव है। कुछ अरुणिमा है। बार-बार मुख खोलकर जम्हाई लेता है। दोनों हाथों से नेत्रों को मलकर उनमें लगे अञ्जन को फैला दिया है इसने कपोलों तक। हाथों में भी अञ्जन लग गया है। बिथुरी अलकें, भाल पर फैला-सा कज्जलबिन्दु, कण्ठ में उलझी पड़ी मुक्तामाल, कटि में किङ्किणी। निद्रा के आलस्य से भरे चरण अभी डगमग ही पड़ रहे हैं।

'दूध!' अरे, मैया ने स्नेह से मुख घुमाकर देखा। श्यामसुन्दर आकर पीछे से खड़ा हो गया है उसके कंधे पर एक हाथ रखकर। दूसरे हाथ से नेत्र मलता अभी जम्हाई ले रहा है। 'दूध' शब्द भी उसकी जम्हाई में मुख के साथ ही जैसे विस्तृत हो गया है।

'देख, माखन कैसा नाच रहा है! तेरे लिये आज माखन निकाल रही हूँ।' पात्र में नवनीत ऊपर आ गया है। अब दस-पाँच बार मथानी घुमाकर जल डालना होगा और तब लौंदा बनते कितनी देर लगनी है।

'दूध! दूध!' श्याम कुछ नहीं सुनता। वह अब एक हाथ से अञ्चल खींचने लगा है। मचलने की मुद्रा तो नहीं आयी स्वर में, पर हठ अवश्य आ गया है।

'तू देख तो सही, कितना उज्ज्वल फेन-सा माखन है!' मैया स्वयं कहाँ देख रही है। वह तो मुख घुमाकर अपने नीलमणि के मुख को देखने में लगी है। हाथ रज्जु खींच रहे हैं।

'दूध!' कन्हाई ने एक हाथ मैया के कपोल पर रख दिया है। यह इस समय कुछ देखने और सुनने को प्रस्तुत नहीं। इसे तो बस, दूध पीना है।

'तू तनिक रुक तो! अभी माखन लौंदा बन जायगा! जानता है, माखन कैसे फेन से लौंदा बनता है ?' मैया को इसका यह आग्रहपूर्ण चन्द्रमुख, यह अनुरोध मुग्ध किये है; वह इसी का रस ले रही है। वैसे उसका वात्सल्य तो कब से वक्ष से उज्ज्वल बिन्दुओं में वस्त्रों को आर्द्र कर रहा है। मोहन उसी पयका तो भूखा है। इतना प्रेमपूर्ण पय--कब से वह क्षरित हो रहा है! कन्हाई का आग्रह अपने स्वत्व के लिये ही है।

'दूध! दूध दे!' यह मैया क्यों अङ्क में लेकर दूध नहीं पिलाती। यह तो दही मथने में लगी है। श्यमसुन्दर कब तक प्रतीक्षा करता रहे। दधिभाण्ड में घूमता यह मन्थनदण्ड! लो अब मथो! इसने तो हाथों से घूमती मथानी पकड़ ली। मैया के कर स्वतः शिथिल हो गये मोहन को मथानी पकड़ने बढ़ते देखकर। इन्दीवरश्याम अङ्क पर कुछ दधि के सीकर शोभित हो गये हैं और यह मथानी पकड़कर अब मैया के मुख की ओर देख रहा है। इसके नेत्र कहते हैं—'अब तो दूध पिलायेगी।

मैया के अधरों पर हास्य आया। उसका यह कृष्णचन्द्र कितना हठी है। रज्जु छूट गयी। अङ्क में लेकर अञ्चल से ढककर वह दूध पिलाने लगी है। कनूँ दूध पी रहा है। सम्पूर्ण शरीर शिथिल करके, अर्धोन्मीलित लोचनों से दूध पीने में तन्मय है। मैया एकटक देख रही है इसके चन्द्रमुख को।

× × × ×

'अरे दूध उफन रहा है!' सहसा मैया की दृष्टि सम्मुख गयी। अग्नि में दूध के गिरने की गन्ध ने ध्यान न दिलाया होता तो सारा ही दूध उफन गया था। यह पद्मगन्धा का दूध, आज तो यही इतना दूध है और कान्ह दूसरा दूध पीता भी कहाँ है। यह दूध उफन जाय तो श्याम भूखा रह जायगा! मैया के मस्तिष्क में एक लहर-सी आयी। झटपट कृष्णचन्द्र को भूमि पर रक्खा उसने अङ्क से और दौड़ी दूध उतारने।

श्याम दूध पी रहा था। अभी यह तृप्त नहीं हुआ और मैया इस प्रकार इसे भूमि पर बिठाकर भाग गयी! देखने ही योग्य है यह छटा। रोष के कारण नेत्रों में अश्रु आ गये हैं। अधर—पतले, लाल अधर फड़कने लगे हैं। उठकर खड़ा हो गया है। इधर-उधर देख रहा है—देख रहा—क्या करे! कुछ करना है—करना ही है! बड़ा रोष है, क्यों मैया छोड़ गयी!

यह समीप एक पत्थर पड़ा है! यह पत्थर—यह तो दधिभाण्ड को इधर-उधर लुढ़कने से रोकने के लिये, टेक लगाने के लिये रक्खा गया है। मोहन दोनों हाथों से बैठकर उठा रहा है इसे। पत्थर उठा तो लिया इसने। मुख अरुणाभ हो चला है, भाल पर स्वेदकण आ गये हैं। यह तो पत्थर लिये खड़ा भी हो गया है।

'भड़ाम्!' लो दधिभाण्ड तो फूट गया! दही फैल गया—फैल गया भूमि पर चारों ओर!

'मैया मारेगी!' सम्भवतः अब यह बात ध्यान में आयी है। इधर-उधर देख रहा है, कहाँ जाय, किधर भागे, कहाँ छिपे? वह क्या खुला हुआ द्वार दीखता है गोरस-भंडार के कक्ष का! श्याम के छिपने के लिये यह क्या कम स्थान है।

इतना नवनीत छीकों पर लटक रहा है, यह ऊखल भी पड़ा है और ये बिचारे कपि—ये कूँ-काँ, चीं-चाँ करते माखन माँग रहे हैं। इस कक्ष का उपवन की ओर का द्वार भी आज खुला रह गया है। ये कपि तो श्याम को देखते ही घेर लेते हैं। ये तो कक्ष में आ गये।

'मैया आती होगी!' भय तो है; किंतु ये कपि माखन माँग रहे हैं और यह सम्मुख माखन के छीके लटक रहे हैं। कन्हाई से कोई कुछ चाहे और उसे निराश होना पड़े—ना, ऐसा तो कभी नहीं हुआ, कभी हो नहीं सकता। कपि माखन चाहते हैं, इन्हें तो अभी नवनीत देना ही है। यह चढ़ा कनूँ ऊखल पर। यह पकड़ा उसने बायें हाथ से छीका। यह पात्र टेढ़ा हुआ और यह उज्ज्वल, कोमल माखन का लौंदा—धन्य हैं ये कपि!

× × × ×

'अच्छा, इतना रोष है इसे।' मैया हँस पड़ी फैला हुआ दही देखकर। दूध उतारने और उसे जल के छींटे से शान्त करने की व्यग्रता में उसने भले दधिभाण्ड के फूटने के शब्द पर ध्यान न दिया हो, पर भाण्ड के ये टुकड़े—ये तो स्वयं अपनी कथा कह रहे हैं। उस नट-खट ने अपना रोष यहाँ उतारा है। 'लेकिन गया कहाँ ?' ये क्या दधि में सने नन्हे चरणों के चिह्न बने हैं। ये चिह्न—इन्हें बनाता वह चपल उस कक्ष की ओर गया! मैया ने एक वेत्रयष्टि उठायी—बालक बहुत बिगड़ता जा रहा है, उसे तनिक भय दिखाये बिना सुधार नहीं होगा।

कान्ह ऊखल पर खड़ा है। इसके मृदुल चरण दधि से उज्ज्वल हो गये हैं और अरुणिमा उज्ज्वलता में से झाँक रही है। बायें हाथ में छींका पकड़े, दाहिने से नवनीत निकालता जा रहा है। माखन के लौंदे—श्याम फेंकता है और कपि उछलकर ले लेते हैं। यह चपलचञ्चल नेत्रों से द्वार की ओर देखता भी जाता है—कहीं कोई आता न हो। मैया देख रही है, छिपकर देख रही है अपने इस माखन-चोर को। 'गोपियों के उलाहने ठीक ही हैं! यह बहुत ऊधमी होता जा रहा है! मैया छड़ी लिये, दबे पैर, धीरे-धीरे आ रही है।

'मैया, छड़ी लिये मैया!' कनूँ की दृष्टि पड़ी, यह छींका छूटा, यह कूदा ऊखल से और भागा उपवनवाले द्वार से बाहर को। कपियों को भी कदाचित् श्याम का भागना आनन्ददायक लगा, कौन जाने मैया को छड़ी लिये आते देख ये सब भी डर गये हों। सब किलककर कूद गये और अब वृक्षों पर उछलने और किलकारियाँ मारने लगे।

'चल तू!' आज मैया बहुत रुष्ट है। मोहन को यह छोड़ेगी नहीं। श्याम भाग रहा है। पीछे तनिक मुड़कर देख लेता है और दौड़ रहा है। मैया छड़ी लिये पीछे उसे पकड़ने को दौड़ी आ रही है। ये नन्हे चरण, यह चञ्चल कनूँ—मैया इसे कैसे झट से पकड़ ले। यह तो इधर-उधर मुड़ जाता है, वृक्षों के चारों ओर घूमता है; किंतु मैया पकड़ेगी ही। उसके मुख पर आज निश्चय और कठोरता है। कन्हाई अब तक हँस रहा था, एक क्रीड़ा थी यह भी; पर अब सम्भवतः सचमुच डरने लगा है। यह कमलमुख अरुणाभ हो चला है। अब भी यह दौड़ ही रहा है।

मैया दौड़ रही है! भला, मैया कभी क्यों दौड़ी होगी। आज वह श्याम को पकड़ने के लिये दौड़ रही है। श्याम—भले युग-युग की तपस्या से परिपूत मन इसे न पकड़ पावे, भले साधन-परिशुद्ध चित्त इसकी छाया को छूने में भी असमर्थ रहे; किंतु मैया तो पकड़ेगी ही। आज अपने पुत्र को पकड़ने के लिये कृतसंकल्प है यह और दौड़ रही है। कबरी खुल गयी है, केशपाश अस्तव्यस्त हो गये हैं, उनमें गुम्फित सुमन भूमि पर झरते जा रहे हैं, मस्तक का वस्त्र कंधे तक आ गया है, कुण्डल उछल-कूद कर केशों में उलझ गये हैं। भाल पर बड़ी-बड़ी बूँदें झलमल करने लगी हैं। श्वास की गति बढ़ गयी है। मैया दौड़ रही है—श्याम को पकड़ने को दौड़ रही है—'चल तू!'

मोहन के चरण शिथिल हो रहे हैं। मुड़ मुड़कर मैया के मुख की ओर देखता जाता है। 'जननी को मैंने इतना थका दिया, इतना क्लेश दिया।' कौन जाने यह दया उमड़ी है, कौन जाने मैया के अरुणाभ गम्भीर मुख एवं कठोर भ्रुकुटि के भय ने इसकी गति को शिथिल कर दिया है! ये सुकुमार पद—कहाँ तक दौड़ सकता है यह, थक गया होगा! अब तो मैया पकड़ ही लेगी। अब गति शिथिल हो गयी है। अरे, यह तो रोने लगा! रोते-रोते खड़ा हो गया। दोनों करों से विशाल लोचनों को मलता, हिचकियाँ लेता, अञ्जन को कपोलों पर फैलाता, यह मोहन रो रहा है! श्याम रो रहा है! बड़े-बड़े बिन्दु टप-टप टपकते जा रहे हैं कमल-नेत्रों से।

'चल, आज तुझे बताती हूँ! बड़ा ऊधमी हो गया है तू!' हाय, हाय! मैया इतनी कठोर कैसे हो गयी? यह तो डाँटती ही जा रही है। श्याम का एक कर पकड़ लिया है इसने और उपवन से कक्ष की ओर लिये जा रही है। छड़ी स्वतः उसके हाथ से गिर गयी है। कन्हाई इतना भीत है, मैया कैसे यष्टि लिये रह सकती है; किन्तु यह गोद में लेकर पुचकारती क्यों नहीं? यह तो डाँटती ही जा रही है। श्याम रो रहा है। हिचकियाँ ले रहा है! एक शब्द भी बोलने में समर्थ नहीं! लोग कहते

हैं, सबको इसके स्मरण से ही अभय—शाश्वत अभय प्राप्त हो जाता है! इसके भय से महाकाल भी काँपता है; किंतु रो रहा है यह। बहुत भयभीत है! मैया पकड़े लिये जा रही है। बहुत रुष्ट है, पता नहीं क्या दण्ड दे। और कोई छुड़ा नहीं देता! कोई छुड़ाने में समर्थ नहीं! मोहन हिचक-हिचक कर रो रहा है!

× × × ×

'तू इसी ऊखल पर चढ़कर चोरी करता था न; ले, मैं तुझे इसी से बाँध देती हूँ! अब कर चोरी! अब करना उत्पात!' श्याम रो रहा है, कभी चोरी न करने की बात कह रहा है। आर्त नेत्रों से इधर-उधर देख रहा है—कोई तो छुड़ा दे! कोई सहायता करे! मैया तो आज सुनती ही नहीं। आज कठोर हो गयी है यह। अपनी वेणी की सुकोमल रज्जु से यह तो सचमुच ही मोहन को बाँधने जा रही है।

'चल, खड़ा हो यहाँ!' इसने कन्हाई को ऊखल से सटाकर खड़ा कर दिया। ये दासियाँ—ये कुछ कहना चाहती हैं, ये गोपियाँ—इन्हें कुछ प्रार्थना करनी है, मैया के आज-जैसे कठोर भाव को तो जीवन में कभी किसी ने नहीं देखा। व्रजेश्वरी रुष्ट भी होती हैं—ये रोष करना भी जानती हैं—किसी ने सोचा ही नहीं था कभी। यह कठोर दृष्टि—साहस नहीं होता किसी को बोलने का। मैया—मैया के हृदय की व्यथा क्या कम है? यह उसका नीलमणि हिचकियाँ भर रहा है, कमल-लोचन लाल हुए जा रहे हैं, अश्रु टपटप गिर रहे हैं, अञ्जन फैल गया है—मैया क्या नहीं देखती यह सब? पर—पर नीलमणि बहुत बिगड़ता जा रहा है। अधिक मोह से बालक का भविष्य बिगड़ेगा। आज इसे तनिक दण्ड देना है! मैया ने आज दण्ड ही देना स्थिर कर लिया है। उसने अपने अधर दाँतों से रोष के कारण दबा लिये हैं या हृदय को--उमड़ते हृदय को दबाने के लिये—यह वही जानती है।

यह रस्सी तो छोटी पड़ गयी। अधिक नहीं, दो ही अंगुल तो छोटी पड़ी है यह। चार-छः अंगुल की एक रस्सी और जोड़ दी और पूरी हो जायगी। मैया ने वेणी से दूसरी रज्जु निकाली।

'यह तो अब भी छोटी हो रही है! वही दो अंगुल छोटी। कहीं अवश्य उलझ गयी होगी।' मैया ने तीसरी रज्जु भी निकाली। उसकी वेणी की तीनों रस्सियाँ लग गयीं और यह दो अंगुल का अन्तर बना ही है। पता नहीं कहाँ ये रस्सियाँ उलझती जा रही हैं। श्याम को छोड़ा नहीं जा सकता। इतनी कठिनता से यह पकड़ में आया है, अब भयभीत है, छूटने पर भागेगा और कहीं गिर पड़ा तो......?

'नन्दरानी, ऐसा भी क्या माखन का मोह हुआ है तुम्हें! देखो न, नीलमणि कितना रो रहा है! कितना भयभीत है!' यह गोपिका कब तक अपने को रोके रखे। श्याम का यह रुदन, यह कातर भाव—हृदय फटा जा रहा है। 'हमारे घर भी तो यह उत्पात करता है, भाण्ड फोड़ता है, नवनीत लुटाता है......।'

'तुम्हीं सबोंने तो इसे बिगाड़ दिया है!' मैया ने तो बिचारी को बोलने ही नहीं दिया! मैया के इस स्वर की फटकार पाकर कौन बोलने का साहस करे? बोलने से व्रजेश्वरी का रोष भड़केगा। ये और ताड़ना करेंगी श्याम की इस आवेश में। यह समय प्रतिवाद करने का नहीं है!

'लो, जब बाँधना ही है तो इससे बाँध दो!' रोष के मारे यह व्यङ्ग पूर्वक मोटी सी मन्थन रज्जु ले आयी है। हैं! मैया ने तो सचमुच ले लिया इस रज्जु को। यह क्या इससे बाँध देगी सुकुमार कन्हाई को?

'तुम सब मेरा मुख क्या देखती हो! रस्सियाँ लाओ! मैं आज इसे बाँधकर छोड़ूँगी!' बेचारी दासियों पर व्यर्थ पड़ी यह फटकार! मैया को लगता है, उसका यह पुत्र बड़ा नटखट है। रोते रोते भी यह पता नहीं कैसे, कहाँ रस्सियों को उलझा देता है। यह मन्थन-रज्जु भी छोटी पड़ गयी और वही कुल दो अंगुल छोटी—कैसी बात है यह!

दासियाँ रज्जुओं का ढेर ले आयी हैं। मैया एक-पर-एक जोड़ती जा रही है। 'यह क्या हो रहा है ?' श्याम मोटा नहीं हुआ है, ऊखल बढ़ा नहीं है, कोई रस्सी छोटी हुई नहीं दीखती कोई कहीं उफली भी नहीं दीखती ! इतनी गाँठें, इतनी रस्सियाँ जोड़ी गयीं और यह दो अंगुल का अन्तर ? यह तो पूरा ही नहीं होने को आता। मैया एक रस्सी उठाती है, जोड़ती है, बाँधने का प्रयत्न करती है—'यह तो अब भी दो अंगुल छोटी है !' कैसा है यह दो अंगुल ? मैया बड़े आश्चर्य में पड़ गयी है।

ये गोपियाँ मुख फेरकर मुस्करा रही हैं। इनके नेत्र कहते हैं - 'और बाँधो ! और बाँध लो नीलमणि को ! हम तो कब से कह रही हैं कि इसे छोड़ दो ! पर नहीं मानना है तो बाँधो !' मैया यह स्मित देखती है, समझती है। वह भी खीझ गयी है—बाँधेगी—बाँधकर रहेगी इसे ! देखें कहाँ तक यह नहीं बँधता !

मैया एक रस्सी उठाती है, जोड़ती है, बाँधना चाहती है—'यह भी दो अंगुल छोटी है !' फिर रस्सी उठाती है, फिर जोड़ती है—वही दो अंगुल ! मैया का शरीर श्रान्त हो गया है। मुख स्वेद-बिन्दुओं से भर गया है। वह अब रस्सियों को उठाने में भी श्रम अनुभव करने लगी है। सम्मुख की रस्सियों की ढेरी समाप्त हो गयी। मैया थक गयी—बहुत थक गयी। मोहन—मोहन देखता है, मैया बहुत थक गयी।

सम्मुख रस्सी नहीं है ! वेणी में रज्जु अभी है—अग्रिम केशों में सुमन गुम्फित करनेवाली रज्जु—अरे, यह कान्ह तो इसी एक ही रज्जु से बँध गया। 'मैंने अपनी आतुरता में देखा ही नहीं, रज्जु-पर-रज्जु जोड़ती गयी !' मैया को कोई समाधान नहीं करना है। कन्हाई को बाँधकर रज्जु में ऊखल के दूसरी ओर ग्रन्थि दे दी इसने कि यह नट-खट खोल न ले।

'आज इसे ऐसे ही बँधा रहने दो ! कोई खोलना मत ! कोई भी मत खोलो !' मैया ने तो सबको धमका दिया। दासियों और गोपियों को हटा दिया। बालकों को मना कर दिया है और ये बालक चाहें भी तो ग्रन्थि खुलने से रही इनके नन्हे करों से। मैया तो चली गयी दूसरे कक्ष में। वह आज श्याम को धमकाना चाहती है। कन्हाई को रोता छोड़कर चली गयी वह।

× × × ×

'दाऊ ! भद्र ! तोक !' श्याम रो रहा है, रोते-रोते पुकार रहा है यह—आज नन्हे तोक तक को पुकार रहा है, कोई आवे, कोई इस बन्धन से छुड़ा दे ! योगीन्द्र-मुनीन्द्र इसे निखिल बन्धनों का मोचक कहते हैं, लोग अनादि बन्धन से त्राण के लिये इसे पुकारते हैं और आज मैया ने उसी को ऊखल में बाँध दिया है ! अब यह पुकार रहा है ! पुकार रहा है और कोई इसको बन्धनमुक्त करने वाला नहीं।

'दाऊ !' दाऊ यदि सचमुच होता ! वह बल—अपने अनुज को इस प्रकार रोते और बँधे देखकर वह क्या इस रज्जु या ऊखल को गिनने लगा था। कितना था यह ऊखल उसके लिये ! पर कहीं मैया उसे डाँट दे ? दाऊ कभी मैया की बात तो टालता नहीं।

'भद्र !' भद्र हठ कर ले—मैया, बाबा—कोई भी भद्र को डाँट नहीं सका। भद्र रूठ जाय—उसे मनाना सरल नहीं है। भद्र का अनुरोध कौन टाल देगा ! पर क्या ठिकाना—नटखट भद्र कहीं ताली बजाकर उलटे चिढ़ाने लगे ?

'तोक !' भला नन्हा तोक क्या करेगा ? आज न दाऊ है, न भद्र और न तोक। वे सब तो यज्ञ देखने गये हैं यहाँ तो थोड़े-से बालक हैं; पर यह समय क्या इतना सब सोचने का है। श्याम पुकार रहा है—फिर भी पुकार रहा है। यह तोक—तोक को क्यों पुकारता ? तोक क्या करेगा ? बेचारा तोक—श्याम को बँधा देखकर वह दोनों हाथों से पकड़ लेगा और रोने लगा।

'तोक !' अन्तरिक्ष में कोई अज्ञात महाशक्ति करबद्ध मस्तक झुका रही है—'देव, तोक यहाँ हो तो हो चुकी लीला ! अपने तोक के नेत्रों में अश्रु देखकर यह भाव आपका टिक सकेगा ? तोक नहीं है—लीला करनी है न आपको ? लीला—हाँ, लीला ही तो ! वे सम्मुख—द्वारके सम्मुख दीख रहे हैं अर्जुन के दो सटे हुए वृक्ष। ये यमलार्जुन—बेचारे यक्षराज कुबेर के ये पुत्र नलकूबर और

मणिग्रीव—युगों से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इनका यह तप—इनका तप, प्रतीक्षा सार्थक करनी है न दयामय! ये बिचारे—क्या अपराध था इनका! यौवन, सुरा, ऐश्वर्य, स्त्रियाँ और स्वच्छन्दता—ये जिन्हें उन्मत्त न कर दें, वह तो आपका कोई महान् कृपापात्र ही होगा। अपनी स्त्रियों के साथ अलका में ये नग्न जलक्रीड़ा कर रहे थे। उसी समय उधर से देवर्षि भटक पड़े और बस! अपने लाड़ले देवर्षि को तो तुम जानते ही हो, कोई सम्मुख भर पड़ जाय—वह तुम्हारे चरणों तक फिर न पहुँचे—ऐसा कैसे सम्भव है। लज्जा के मारे स्त्रियों ने झटपट जल से निकलकर वस्त्र पहिन लिये। ये दोनों तो वारुणीपान से मत्त थे। खड़े-खड़े देखते रहे। इन्हें पता नहीं था कि नंग-धड़ंग खड़े हैं। न प्रणाम, न वन्दना—ऐसे खड़े थे कि जैसे देवर्षि इनके लिये कोई कौतुक की वस्तु हों। सो देवर्षि ने शाप दे दिया—'वृक्षों की भाँति तुम सब नग्न खड़े हो! वृक्ष हो जाओ!' दण्ड से तो प्रेत भागते हैं, इनपर तो केवल मादकता थी। ये रोये, गिड़गिड़ाये। भला, कहीं नारद जी भी किसी पर अकरुण हुए हैं। उन्होंने तो शाप ही इनपर करुणा करके दिया था। इनकी प्रार्थना पर अपनी दया को स्पष्ट कर दिया। प्रभो, देवर्षि तुम्हारे परम प्रिय हैं! उन्होंने इनको आशीर्वाद दिया है तुम्हारे स्पर्श का। इनकी तपस्या पूर्ण हो चुकी! अब इनको परित्राण मिले! देवर्षि की वाणी सार्थक हो!'

कौन जाने क्या बात है—इतना तो स्पष्ट है कि कन्हाई ने रोना बंद कर दिया है। इसने नेत्र पोंछ लिये हैं। अब हिचकियाँ, अश्रु, पुकार, सभी बंद हो गयी हैं। यह तो ध्यान से देख रहा है सम्मुख के उन सटे अर्जुनवृक्षों की ओर। कुछ सोच रहा है—सम्भवतः अपने छूटने का कोई उपाय। इस अपने छूटने में ही इन वृक्षों का छूटना भी है—होगा; कनूँ को तो इस समय स्वयं छूटना है और यह सोच रहा है। ध्यान से देख रहा है सम्मुख। सखा—पास के बालक ऊखल की रज्जु-ग्रन्थि खोलने में जुटे हैं, बार-बार असफल-प्रयास कर रहे हैं, इधर इस समय ध्यान कहाँ है इसका।

× × × ×

'कनूँ, यह रज्जु-ग्रन्थि तो खुलती नहीं!' बालक बड़े निराश हुए हैं। उनका सखा बँधा है और वे खोल नहीं पाते! मैया ने मना किया है—वह असन्तुष्ट होगी—कहाँ सोचता है कोई; किन्तु ग्रन्थि जो नहीं खुलती। बारी-बारी से सबने अनेक बार प्रयत्न कर लिया। यह वेणी की तैलसिक्त रज्जु—बड़ी स्निग्धग्रन्थि पड़ी है। 'तू तनिक बल लगा; हम सब इस ऊखल को ठेलते हैं! यहाँ से बाहर चले चलें तो फिर पाषाण से पीट-पीट कर रज्जु को तोड़ेंगे!' बात ठीक है, यहाँ खटपट करने से तो मैया के आ जाने की आशङ्का है ही।

'तुम सब एक ओर हो जाओ! ऊखल को गिराकर लिटा देना है!' श्याम ने समझाया और सखाओं ने साथ दिया, यह ऊखल गिरा भूमि पर कन्हाई घुटनों के बल हो गया है। इसने दोनों कर भूमि पर रख दिये हैं। 'तुम सब धीरे-धीरे ठेलो इसे!' श्यामसुन्दर की कटि से ऊपर रज्जु बधी है! यह दामोदर—हाँ, आज यह दामोदर हो गया और अब हाथ और घुटनों के सहारे ऊखल घसीटे लिये जाता है। सखा पीछे से अपने कोमल करों से बल लगाते हैं। ये सुकुमार वर्ष डेढ़वर्ष के बालक—ये ऊखल ठेलते हैं—ऊखल ठेलते हैं और परस्पर एक दूसरे को सावधान करते जा रहे हैं कि कोई वेग से बलपूर्वक न ठेले! श्यामसुन्दर सम्मुख है ऊखल के, तनिक-सा अन्तर है, कहीं ऊखल वेग से लुढ़के......जैसे ऊखल इन्हीं के ठेले लुढ़क रहा है। इन्हीं के ठेले तो लुढ़क रहा है। इतना सुकुमार श्याम क्या ऊखल खींच लेगा?

'ये दोनों अर्जुन के वृक्ष हैं न; इन्हीं के पास चलो! मैं दोनों वृक्षों के मध्य से उसपार निकल जाऊँगा और ऊखल अटक जायगा! तब बल लगाकर खींचेंगे रज्जु को!' कन्हैया है तो बड़ा चतुर। इसे युक्तियाँ बहुत आती हैं। वृक्षों में ऊखल अटक जाय तो खींचने पर रज्जु सम्भवतः टूट जायगी। सबको लिये श्याम ऊखल खींचता वृक्षों की ओर चला जा रहा है। ऊखल के घसीटने से एक चौड़ी रेखा बनती जा रही है पीछे।

अच्छा, मोहन तो निकल गया दोनों वृक्षों के मध्य से उस पार। ऊखल को टेढ़ा करके वृक्षों में फँसा दिया है इसने 'तुम सब कुछ पीछे तो हटो! कहीं रज्जु टूटी तो ऊखल धम्म से पीछे गिरेगा और लुढ़क जायगा!' हाँ, यह आशङ्का तो है ही। सखा ऊखल छोड़कर हट गये हैं पीछे। कन्हाई तो मुड़कर अपने दोनों कर अर्जुन वृक्षों पर इधर-उधर रखकर बलपूर्वक खींचने लगा है!

'अ र् र् धड़ाम!' बालक चौंक कर पीछे भागे! पक्षियों ने चीत्कार किया और आकुल से गगन में उड़ने लगे! पशु कूदे,-चिल्लाये, पूँछ उठाकर भागे इधर-उधर। यह वज्रघोष--क्या हुआ? इतना भयङ्कर शब्द--सभी चौंक पड़े। वृक्षों की जड़ें हिलीं, शाखाएँ कांपीं, पत्ते अस्त-व्यस्त हुए और वे गिरे--भयङ्कर शब्द के साथ उनमें से एक एक ओर और दूसरा दूसरी ओर गिर गया! श्यामसुन्दर को, बालकों को बचाकर जैसे किसी ने उन्हें दोनों ओर ठेल दिया है।

'ये कौन? ये कौन हैं?' बालक वृक्षों के गिरने के शब्द से ही भयभीत हैं और उसपर ये वृक्षों के मूल से दो तेजोमय पुरुष कौन निकल पड़े? प्रज्वलित अग्नि के समान अङ्गकान्ति, ज्योतिर्मय आभरण एवं दिव्य मुकुट-कुण्डल--बच्चे स्तम्भित खड़े रहे--खड़े रह गये देखते। 'अरे, ये तो हाथ जोड़ कर, भूमि पर लोटकर कन्हैया को प्रणाम कर रहे हैं, दोनों ही!'

वृक्षमूल से निकले दोनों देवताओं ने ऊखल में रज्जु से बँधे दामोदर के सम्मुख लेटकर प्रणिपात किया, घुटनों के बल हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर बैठ गये। दोनों के अपलक नेत्र प्रेमाश्रु की झड़ी लगाये हैं। दोनों के शरीर रोमाञ्चित हो रहे हैं। दोनों गद्‌गद कण्ठ से स्तुति कर रहे हैं--'श्रीकृष्ण! योगेश्वर प्रभु! आप ही आदि परम पुरुष हैं। यह व्यक्त एवं अव्यक्त जगत् भी आपका ही स्वरूप है, इसे ब्रह्मवेत्तागण जानते हैं। केवल आप ही समस्त प्राणियों के शरीर इन्द्रिय एवं आत्मा के भी स्वामी हैं और आप ही कालस्वरूप तथा अविनाशी, सर्वेश्वर भगवान् विष्णु हैं। सत्व, रज एवं तमोगुणमयी सूक्ष्म प्रकृति और महत्तत्त्व आप ही हैं और आप ही प्रकृति के समस्त क्षेत्रों में उसके विकारों के वेत्ता--साक्षी, उन क्षेत्रों के अध्यक्ष पुरुष भी हैं। हमारे समीप जितने भी ग्रहण करने के साधन हैं, उनसे आप ग्रहण होते नहीं। प्रकृति एवं उसके समस्त गुणों से आप परे हैं, अतः अनादिसिद्ध, अपने ही दिव्य गुणों से आवृत आपको कौन जान सकता है।' प्रकृति एवं उसके सब गुण, उन गुणों से उत्पन्न अनन्त शरीर और उन अनन्त शरीरों के साक्षी, अध्यक्ष जीव तथा सब में स्थित अन्तर्यामी--ये सब जिसके रूप हैं, जो इन सबसे परे पुरुषोत्तम है, जो इनमें के सब गुणों से तटस्थ एवं निखिलदिव्यगुणगणाभिराम है, उस सर्वरूप, अरूप आनन्दघनैकरूप को कोई कैसे जान सकता है। बुद्धि कैसे समाधान पाये उसके विषय में।

'आप उस सर्वज्ञ भगवान् वासुदेव को हम नमस्कार करते हैं। अपने ही प्रकाश से गुणों को प्रकाशित करके उन गुणों से ही आच्छादित ब्रह्मस्वरूप आपको हमारा नमस्कार। जिस अशरीरी के अवतार विभिन्न देहों में उन-उन शरीरों के लिये असामान्य पराक्रम के द्वारा व्यक्त हो जाते हैं--अर्थात् विभिन्न शरीरों से जो अशरीरी अवतार धारण करके अतुलनीय लोकोत्तर शौर्य व्यक्त करके अपने अवतार-विग्रह के महत्त्व को प्रकट करते हैं, वही आप सम्पूर्ण कामनाओं के दाता समस्त लोकों को अभय देकर उनका कल्याण करने के लिये इस समय अपने अंश के साथ अवतीर्ण हुए हैं।' पता नहीं क्या क्या कहते रहे वे देवता। उनकी वाणी गद्‌गद, नेत्र अश्रुपूर्ण, अञ्जलि बँधी, मस्तक झुका और वे स्तुति करते रहे--

'परम कल्याणस्वरूप प्रभु, आपको नमस्कार! परम मङ्गलमय, नमस्कार! शान्तस्वरूप यदुवंश के स्वामी वासुदेव, आपको नमस्कार!' जिनका परमकल्याण--परममङ्गल अभी हुआ है, वे इस श्याम को कल्याणरूप, मङ्गलमय तो कहेंगे ही; पर यह शान्त--इस समय अवश्य शान्त हो रहा है; पर कितना शान्त है यह--गोकुल में सब जानते हैं।

'विभु, हम आपके अनुचर यक्षराज के किंकर हैं। आप हम अपने दासानुदासों को आज्ञा दें! हमारा बड़ा सौभाग्य है, देवर्षि नारद ने बड़ा अनुग्रह किया हम पर। वह उनकी असीम

कृपा का ही फल है कि हमें आपके दर्शन हुए। हमारी वाणी आपके गुणगान में, हमारे श्रवण आपके मङ्गल-चरितों को सुनने में, हमारे हाथ आपकी सेवा के कर्म में, हमारा मन आपके श्रीचरणों के चिन्तन में, हमारा मस्तक आपके निवासभूत जगत् को प्रणाम करने में और हमारे नेत्र उन महा-पुरुषों के दर्शन में लगे रहें, जो आपके साक्षात्स्वरूप ही हैं।' बार-बार प्रणाम किया दोनों देवताओं ने और अन्त में तो साष्टाङ्ग इस प्रकार पड़ गये कि जैसे इन्हें अब उठना ही नहीं है।

'मुझे पहले ही पता लग गया था कि परमदयालु देवर्षि ने तुम लोगों पर कृपा करके ही ऐश्वर्य-मद से मत्त तुम्हें च्युत होने का शाप दिया था। जो समदर्शी साधु हैं, विशेषतः जिनका चित्त मुझमें लगा है, उनके दर्शन से किसी को बन्धन की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। कहीं सूर्य भी पुरुषों के नेत्र को अन्धकार से बाँध सकता है। संसार में मुझ में भाव हो जाना ही परमकल्याण है और यही सबका परमेप्सित है, वह तुम लोगों को प्राप्त हो गया। अब तुम लोग यहाँ से शीघ्र अपने घर चले जाओ! झट-पट चले जाओ अब!' श्याम बहुत शीघ्रता में है। कुछ क्षण—कुछ क्षण ही लगे हैं इन देवताओं को स्तुति करने में, किंतु इतने बड़े वृक्ष गिरे—मैया, गोपियाँ, गोप, बाबा, सब आते होंगे—सब दौड़े आते होंगे। ये झट से चले जायँ तो अच्छा। लेकिन ये देवता—ये तो बार-बार परिक्रमा करते हैं, बार-बार प्रणिपात करते हैं, फिर-फिर आज्ञा माँगते हैं! इस श्यामसुन्दर के समीप से जाने को किसका जी चाहता है। यह आज्ञा दे रहा है! आग्रहपूर्वक आज्ञा दे रहा है—जाना ही पड़ेगा उन्हें!

× × × ×

'क्या हुआ? कहाँ वज्रपात हुआ?' गोपों ने तो समझा, अवश्य कहीं वज्र ही गिरा है। इतना भीषण शब्द—इतने विशाल तरु एक साथ गिरे—दौड़ते हुए आये वे। उपवनद्वार के पास शब्द हुआ! नारायण मङ्गल करें! बाबा के चरणों ने आज जैसे वायु की गति पा ली। वे दौड़े! वे सबसे आगे दौड़े! 'उपवनद्वार—बालक वहीं तो खेलते हैं प्रायः!' आशङ्काओं के लिये क्या कम अवकाश है।

'अरे, तू यहाँ कैसे आ गया?' बाबा ने देखा, उनका कृष्णचन्द्र कटि में रस्सी से बँधा है और रस्सी में बँधा है एक ऊखल। यह ऊखल का खींचने के प्रयत्न में है। इतनी दूर कदाचित् यही खींच लाया है और अब बाबा की ओर मुख उठाकर देख रहा है। बाबा को लगा, वृक्षों के गिरने के पश्चात् यह भी शब्द से आकृष्ट होकर यहाँ ऊखल खींचता आया है। यह हँसता, ऊखल खींचता कन्हाई! 'मैया ने बाँध दिया न तुझे?' बाबा को हँसी आ गयी। हँसते-हँसते कान्ह का उन्होंने खोल दिया और उठा लिया अङ्क में। यह दामोदर—इसकी कोमल कटि से ऊपर उदर के निम्न भाग में रज्जु की रेखा पड़ गयी है चारों ओर!

'ये विशाल तरु—ये न जीर्ण हैं न खोखले हैं, गिरे कैसे ये? कोई आँधी भी नहीं आयी और वज्रपात भी नहीं हुआ!' गोपों ने देख लिया है कि श्यामसुन्दर सर्वथा सुरक्षित है; उसे आघात लगना तो दूर, डरा भी नहीं दीखता और अब वृक्षों के गिरने का कारण ढूंढ़े ही नहीं मिलता। सब बड़े आश्चर्य में हैं—'बहुत बड़ा उत्पात हुआ यह! किसी अमङ्गल की सूचना तो नहीं!'

'ये वृक्ष अपने आप कहाँ गिरे हैं! इस कनूँ को मारो, इसी ने दोनों वृक्षों के मध्य में ऊखल तिरछा करके फँसा दिया और फिर दोनों हाथों से दोनों पेड़ गिरा दिये ऊखल खींचते-खींचते!' ये बालक ही तो हैं। इनकी बातों पर कोई कैसे विश्वास कर ले; पर यह तो इस प्रकार कह रहा है, जैसे इसे कोई संदेह ही नहीं है। इसने स्वयं देखा है; कोई न माने तो यह क्या करे।

'हाँ, हमने वृक्षों से दो विचित्र पुरुष निकलते देखे! वे सोने-जैसे चमकते थे। इस कनूँ को हाथ जोड़ते थे, प्रणाम करते थे! पता नहीं क्या-क्या कहा इससे उन्होंने और यह भी तो उनसे बातें करता था। वे दोनों तो उड़ गये, वहाँ ऊपर उड़ गये!' ये सब-के-सब बालक एक ही बात कहते

हैं। सोने-से तेजोमय, ऊपर उड़ जाने वाले—कोई देवता होंगे वे और तब क्या बालक सत्य कहते हैं ? कुछ गोपों के मन में संदेह होने लगा है। कन्हाई के काम साधारण मनुष्य-शिशु से तो नहीं ही हैं ?

'डर गये हैं ये सब ! बच्चे हैं, पता नहीं क्या-क्या बकते हैं !' ये गोप किसी के संदेह को क्या सुनेंगे ? इनके सम्मुख संदेह व्यक्त करके उपहास कौन कराये ! इस समय इतना अवकाश भी किसे है। इतने बड़े वृक्ष गिरे, अकारण, अकस्मात् वृक्ष गिर पड़े—इतना भयङ्कर उत्पात हुआ ! व्रजेश ने अपने कुलपुरोहित महर्षि शाण्डिल्य को बुलवाया है ! ग्रहशान्ति होनी है ! श्रीनारायण की आराधना—अर्चा होगी विधिपूर्वक और अब शीघ्रता से उसका आयोजन करना है। व्रजरानी, गोपियाँ,—सब तो अभी श्याम को ही देखने में लगी हैं।
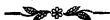
कर्ण-वेध

"वदनेन्दुविनिर्जितः शशी दशधा देवपदं प्रपद्यते ।
अधिकां श्रियमश्नुतेतरां तव कारुण्यविजृम्भितं कियत् ॥"

—श्रीलीलाशुक

यमलार्जुन गिर गये और बालकों को एक खेलने का सुन्दर साधन मिल गया। यह कनूँ मानता ही नहीं, मैया बार-बार मना करती है, कहीं कोई गिर पड़े टहनियों में उलझकर—लेकिन कन्हैया तो सखाओं को लिये तरुओं के पास ही खेलता है। बड़े-बड़े विशाल तरु—खूब सघन डालियाँ हैं इनकी। इन शाखाओं पर कुछ तो चढ़ा ही जा सकता है। कोई शाखा पर चढ़कर झूलता है, कोई उसे हिलाता है। शाखाओं के मध्य में इधर-उधर भागने और छूने की क्रीड़ा भी बड़ी मजे की है।

बालक खेल में लगे सो लगे, इन गिरे वृत्तों के मध्य में खेलते ये झुंड-के-झुंड बालक—कनूँ सदा से नटखट है। इसे दूसरों से झगड़ना ही आता है। इसके दाव देने की बारी आयी और झगड़ना प्रारम्भ किया इसने। सखा इसे अपने खेल से पृथक् कर देते हैं तब तो गिड़गिड़ाता है, विनय करता है और फिर वही बात।

'कन्हैया, तू देखता है भला!' आँखमिचौनी में श्याम चुपचाप नेत्र बंद किये रहे, ऐसा कैसे हो। किसी की हथेली में इसके विशाल लोचन बंद होने से रहे और कोई बंद कर भी ले तो यह इधर-उधर करके देखे बिना क्या रह सकता है।

'सब-के-सब धूर्त हैं—व्यर्थ ही दोष देते हैं! कनूँ जब कहीं छिपता है, सब इसे देख लेते हैं। बिना देखे क्या इतनी शीघ्र सीधे इसी को पकड़ा जा सकता है। अब इसकी बार लड़ाई करने चले हैं!' यह बिगड़ा नन्हा तोक। अपने श्याम का पक्ष लेकर—बड़े भाई के लिये यह लड़ने आ गया है—सब से लड़ लेगा यह! कौन इसे समझा दे कि श्याम अँधेरे में छिप नहीं सकता। इसकी अङ्गकान्ति वहाँ बालकों को सूचना दे देती है। सखाओं का कोई दोष नहीं इसमें। यह किसी का तर्क सुनने को कहाँ उद्यत है। इसे कन्हाई ही तो सबसे अधिक मानता है—अब यह क्यों उसका पक्ष न ले।

'तू क्यों झगड़ता है! तुझे तो दाव देना नहीं है!' हाँ, तोक क्यों झगड़ता है। इसे तो कोई छूता नहीं। यह तो स्वयं जब दाव देना चाहे, तभी ठीक। कनूँ—सभी तो इससे स्नेह करते हैं। सबसे छोटा यह तोक—यह झगड़ रहा है।

'तुम सब यों ही किसी को दोष दोगे?' तोक क्यों न बोले। श्याम को सब दोष देते हैं और वह भी व्यर्थ ही। लेकिन अब यह झगड़ने लगा तो सबको इसकी माननी ही है। भद्र अभी इसके पक्ष में हो जायगा और फिर दाऊ—तोक की हठ तो रखनी ही है न।

× × × ×

श्याम सबको पुकार लेता है। भाई और भद्र को लेकर सबेरे गृहसे निकला और वही यमलार्जुन के समीप। माता रोहिणी पुकारते-पुकारते थक जाती है। इन सबों को न भूख का ध्यान और न प्यास का—खेल में लगे-सो-लगे। मैया ही आकर किसी प्रकार हाथ पकड़कर ले जाय तो जायँ। 'विलम्ब हो रहा है, कृष्णचन्द्र भूखा होगा! बहुत देर हो गयी दूध पिये!' मैया कितना पुकारे, कितनी बार दूसरों को भेजे, श्याम आने से रहा। मैया के स्वयं जाने पर भी कहाँ सब झट-पट आते हैं। कहीं दाऊ भगेगा और कहीं कन्हाई। दिनभर, धूप में भी सब खेलते रहते हैं। मैया का आग्रह कौन मानता है। इन सबों को वह पकड़े नहीं तो कदाचित् ये भोजन ही न करें और पता नहीं कितनी रात्रि तक खेलते रहें! सायङ्काल कनूँ कितना झगड़ता है—'अभी तो उजाला है!' कितने बहाने करने पड़ते हैं मैया को इसे ले जाने के लिये और तब भी सभी बालकों को साथ लेकर ही वह इसे ले जा पाती है।

× × × ×

कन्हैया नाक्षत्र मास से दो वर्ष पाँच मास का हो गया। अब उसका कर्ण-वेध संस्कार होना चाहिये। यह मैया के कुण्डल पकड़कर कबसे खींचता है और हठ करता है कि मैया अपने कुण्डल इसके कानों में पहिना दे।

'तेरे कानों में छिद्र नहीं हैं! छिद्र होने पर पहिना दूँगी! मेरे लाल का कर्ण-वेध होगा! यह कुण्डल पहिनेगा!' मैया समझाती है इसे।

'तू छिद्र कर दे अभी! मैं तो अभी पहिनूँगा!' मोहन को सदा शीघ्रता रहती है। मैया हँसती क्यों है? यह छिद्र कर क्यों नहीं देती?

'बाबा, तुम महर्षि को बुलाओ न!' जब मैया कहती है कि बाबा महर्षि को बुलायेंगे, पूजन होगा, तब छिद्र हो सकेगा, तो यह बाबा से ही क्यों न कहे। बाबा कहाँ दूर हैं, इसका भागकर उनकी गोद में पहुँचने में देर कितनी लगती है। अब यह बाबा के अङ्क में बैठकर उनकी दाढ़ी में अंगुलियाँ उलझाकर आग्रह कर रहा है—'तुम महर्षि को बुलवाकर पूजन करा दो! मैं कुण्डल पहिनूँगा कानों में!'

'अभी तो तेरे कान नन्हे-नन्हे हैं! तनिक बड़े हो जाने दे तो…!' बाबा समझाने के प्रयत्न में हैं।

'ना, मैं तो अभी पहिनूँगा!' यह हठी अपनी हठ छोड़ दे, ऐसा कैसे हो सकता है।

'शरद् ऋतु है, पवित्र मास है और शुक्लपक्ष भी है! श्यामसुन्दर ठीक ही तो आग्रह करता है।' महर्षि शाण्डिल्य सदा इसी का पक्ष लेते हैं। उनके मुहूर्त, विधान—सब इसके अनुकूल निकल आते हैं। अब वे कह रहे हैं कि बालकों का कर्णवेध-संस्कार तो तीसरे वर्ष लगने पर पाँचवें या सातवें मास में होना ही चाहिये। बाबा को तो आज्ञापालन करना है।

× × × ×

'श्याम का कर्ण-वेध होगा!' स्वर्णकार भी धन्य हो गया है। इसे नन्दनन्दन के कर्णवेध के लिये चाँदी की आठ अंगुल की सूई बनानी है। नन्ही-सी सूई—और इसका कार्य समाप्त होने को ही नहीं आता। विशुद्ध-विशुद्ध रजत—यह ओषधियों से रजत का शोधनक्रम चल रहा है। बार-बार ओषधि-पुट और बार-बार रजतद्राव। तीक्ष्ण-तीक्ष्णतम सूचिका, एक समान, उज्ज्वल, सुचिक्कण, जैसे चन्द्रमा की एक क्षीण किरण स्वर्णकार के हाथ में आ बैठी है और अब यह उसे उलट-पुलट कर देख रहा है।

'मुझे ही कन्हाई के कर्णोंपर लाक्षाद्रव से चिह्न करना होगा!' पता नहीं क्या-क्या सोचता है और यह पागल हो गया क्या? यह तो नाचने ही लगा है।

'मोहन के कर्णों में छिद्र करना होगा!' दुर्दशा तो है, बेचारे इन भिषग्-भूषणजी की। 'उन कोमल कर्णों में छिद्र! ये तो बच्चों की भाँति रो रहे हैं। भला, इसमें रोने की क्या बात है? जिसके कान छिदने हैं, वह तो रोता ही नहीं है।

'मेरे कानों में छिद्र होगा! मैं कुण्डल पहिनूँगा!' कन्हैया तो फुदक रहा है। यह तो उल्लास में है। अपनी कर्ण-पल्ली टटोलता है बार-बार और सबको दिखाता घूमता है। यह तो ऐसा कूद रहा है, जैसे कुण्डल कानों में ही आ गये हैं।

'तेरे ही कान थोड़े छिदने हैं!' भद्र कनूँ को चिढ़ा देता है समय-असमय—'दाऊ के छिदेंगे, मेरे छिदेंगे और तेरे तो सबसे पीछे छिदेंगे—सबसे पीछे!' नटखट भद्र अँगूठा दिखाकर कूदने लगा है।

'पहिले मेरे कानों में छिद्र होगा!' श्याम अब मैया से, बाबा से, सबसे अभी बात पक्की कर लेगा। कैसे पीछे रहे यह किसी से।

कन्हाई का कर्ण-वेध होना है। कल प्रातः अरुणोदय में ही तो यह मङ्गल-संस्कार प्रारम्भ होगा। स्वर्णकार, वैद्य, गोप, गोपियाँ—सब-के-सब व्यस्त हैं। आज सब प्रयत्न में हैं कि कल कनूँ को

कम-से-कम कष्ट हो। उसका मन तत्काल किसी ओर लग जाय। खिलौने, पत्ती, पशु—पता नहीं क्या-क्या एकत्र करने में जुटे हैं सब।

'श्रीकृष्ण के कल कर्णों में छिद्र होगा!' बाबा की दशा ही वर्णन से बाहर है। वे तो अभी से इतने आकुल हैं, जैसे उनके हृदय को ही विद्ध करने की बात है। ये कल कैसे अपने पुत्र को सम्हाल सकेंगे!

'नीलमणि कुण्डल पहिनेगा!' मैया को श्याम के कपोलों पर झलमलाते कुण्डलों की छाया का अभी से मानो साक्षात् होने लगा है। यह तो अपनी अद्भुत उमंग में है। उत्सव का आयोजन तो होना ही है। खूब धूम-धाम का उत्सव—बालकों का मन तत्काल ही दूसरी ओर लग जाय, यह परमावश्यक जो है।

× × × ×

महर्षि शाण्डिल्य विप्र-वर्ग के साथ प्रातःकृत्य करके सीधे नन्दभवन आ गये हैं। गणपति, नवग्रह, सर्वतोभद्र, षोड़श मातृका, योगिनी, दिक्पाल, कलश तथा रक्षा-सूत्र का पूजन तो हो चुका और अब बाबा पूजन कर रहे हैं अपने आराध्य का। नारायण अनुकूल हों! आज का यह कर्ण-वेध श्रीकृष्णचन्द्र के लिये मङ्गलमय हो।

आराध्य-पूजन के साथ ही तो विप्र, वैद्य और आज के कृत्य के प्रधान स्वर्णकार का भी पूजन करना है। पूजन तो करना है इस सोलह अंगुल के सूत्र में पिरोई आठ अंगुल की रश्मि के समान उज्ज्वल सूचिका का भी और अब तो पूजन समाप्त होने पर है।

माता रोहिणी दाऊ को अङ्क में लेकर बैठ गयी हैं पश्चिमाभिमुख और मैया ने श्याम को अङ्क में ले रखा है। यह भद्र, यह तोक—सब के संस्कार व्रज में तो अब साथ-साथ ही चलने लगे हैं। न वैद्यों का अभाव है, न स्वर्णकारों का। जब ये बालक हठ कर रहे हैं कि पहिले उनका ही कर्णवेध हो, तो क्यों न सबका एक साथ ही हो जाय। महर्षि ठीक कहते हैं—'दाऊ का कर्णवेध पहिले होगा और अवश्य ही वह रोयेगा नहीं। दाऊ को देखकर बच्चों में दृढ़ता आयेगी, फिर श्याम के साथ ही सबके कर्ण-वेध हो जायँगे। महर्षि को तो एक ओर मुनि-मण्डली के साथ मन्त्र-पाठ करना है!'

कन्हैया अभी उमंग में है। सभी के हाथ में मोदक हैं। सब माताओं की गोद में हैं और यह कनूँ इधर-उधर देखकर सबको अपना मोदक दिखा रहा है और साथ ही आँखें भी मटकाता जाता है। आज तनिक सबसे बड़ा मोदक पा गया है यह और इसी से सखाओं को चिढ़ा लेना चाहता है।

बाबा ने सूई उठायी। इनके कर इस प्रकार क्यों कम्पित हो रहे हैं! दाऊ और श्याम के दक्षिण कर्णों से केवल सूचिका का स्पर्श ही तो कराना है इन्हें। यह सूचिकास्पर्श—बाबा को तो यह सूचिकास्पर्श कराना ही आतुर कर रहा है।

'लाल, तू कुण्डल पहिनेगा न?' वैद्यजी हैं तो परम चतुर। दाऊ ने अपनी कर्णपल्ली इन्हें हाथ से खींच लेने दी, पर क्या मोहन यों ही खींच लेने देता! बायें हाथ से कर्णपल्ली खींचनी है और जहाँ से सूर्यरश्मि पारदर्शी हो रही है पल्लियों में, ठीक उसी बिन्दु पर स्वर्णकार को लाक्षा-द्रव से चिह्न करना है। सभी बालकों के ये चिह्न हो जायँ तो एक साथ कर्णवेध हो जायगा।

'हो गया क्या?' कनूँ तो अपने कान टटोल लेना चाहता है। 'तनिक-सा कुछ शीतल लगा तो! अब ये वैद्यजी क्यों उसे कान छूने नहीं देते? मैया ही क्यों रोकती है?' मोहन की कर्णपल्लियों पर लाक्षाद्रव की नन्हीं बूँदें—इन्दीवरदल पर वीरबहूटी के शिशु जैसे सो रहे हों। यह लाक्षाद्रव—रक्त-सी अरुण ये बूँदें! बाबा ने तो नेत्र बंद कर लिये हैं। उनका सर्वाङ्ग स्वेद से स्नान कर चुका है।

कर्णवेध होगा—अब कर्णवेध ही तो होना है। वाद्यों की ध्वनि में गोपों के शब्द डूब गये हैं। अब गोपियों के मङ्गल-गान कैसे सुनायी दें। महर्षि ने स्वयं मुख से शङ्ख लगाया है और ये शत-

सहस्र शृङ्ग, शङ्ख—यह गगनभेदी जयघोष ! बालकों की रोदनध्वनि सुनायी नहीं पड़नी चाहिये। श्याम रोता हो—वैद्य क्या कर्ण-वेध में समर्थ हो सकते हैं।

'लाल ! देख तो, यह मयूर कितना सुन्दर नाचता है !' माता रोहिणी दाऊ को इस प्रकार दूसरी ओर आकर्षित करें या न करें, यह क्या रोने चला है। वाम हाथ से कर्णपल्ली खिंची, यह रहा दैवकृत नैसर्गिक छिद्र—सूचिका जैसे स्वतः प्रविष्ट हो गयी हो उसमें ! धागे को बाँधकर तैल लगा देने में तो सचमुच वैद्यजी के करों ने विद्युत् की गति दिखायी है। दाऊ अपने दक्षिण कर्ण को टटोलने चला है। यह वाम कर्ण—अच्छा वाम कर्ण भी सही !

×　　　　×　　　　×　　　　×

'दाऊ के कानों में तो सूई चुभा दी वैद्यराज ने !' श्याम अपने अग्रज की ओर ही देखता रहा है एकटक। 'यह सूई, ना, मैं कान नहीं छिदवाऊँगा !' कौन इतनी बड़ी सुई कानों से पार होने दे।

'तू कुण्डल पहिनेगा न ! देख तो सही तू अपने कुण्डल !' मैया मनाने का प्रयत्न कर रही है। 'भद्र कुण्डल पहिनेगा और तुझे चिढ़ायेगा !'

'भद्र चिढ़ायेगा !' कन्हैया सशङ्क हो गया है। वह क्या चुने—भद्र का चिढ़ाना या कान में सूई चुभवाना ? 'दाऊ रोता नहीं है।' मैया ठीक कहती है। दाऊ तो नहीं रोता है, उसे दुखता तो अवश्य रोता। श्याम की पलकों में अश्रुबिन्दु उलझ गये हैं। यह कुछ सोचने लगा है।

'मैं अपने कुमार के कानों में ओषधि लगाऊँगा !' वैद्य जी तो कुछ मलने लगे हैं।

'इस ओषधि से छिद्र हो गया न !' कन्हाई प्रसन्न हो गया है। ओषधि से ही छिद्र हो जाय तो बहुत अच्छा।

'अभी हुआ जाता है ! तुम तनिक बताओ तो कि वह तुम्हारी सुनहली बिल्ली कहाँ छिपी है !' वैद्यजी ने सूई उठा ली है। मोहन बिल्ली देखने में लगा है। कहाँ भाग गयी इसकी बिल्ली ? अभी यहीं तो थी। कुछ हुआ—कुछ हुआ दक्षिण कर्ण में। एक चींटी ने धीरे से काट लिया ! उफ ! कन्हाई रोने लगा है ! मैया क्यों हाथ नहीं छोड़ती ? क्यों इसके पैर दबा रखे हैं इसने अङ्क में। मोहन व्याकुल हो उठा है। रो रहा है। 'नहीं, अब नहीं पकड़े रहा जा सकेगा !' मैया के कर लगता है छूट जायँगे। वैद्यराज ने तो अपने नेत्र वाम कर्णपल्ली पर एकाग्र कर दिये हैं।

'हो गया ! हो गया लाल !' मैया का आश्वासन श्याम कैसे सुन ले। वैद्य जी ने तो धागा बाँध दिया, तेल लगा दिया ! अब तो कान शीतल-शीतल लगता है। कन्हाई रोता जा रहा है—रोता ही जा रहा है !

'यह थनगन करता मयूर !' यह गोपिका मयूर सिखा लायी है।

'यह रत्न-सारिका बोलने लगी है मोहन !' रत्न-सारिका बोले या रोये, कन्हाई मैया के स्तन-पान को ही प्रस्तुत नहीं तो क्या खिलौने संतुष्ट कर देंगे इसे। आज कमलनयन बड़ी-बड़ी बूँदें गिरा रहे हैं। श्यामसुन्दर खीझ गया है। कष्ट की अपेक्षा मैया के पकड़े रहने से ही यह अधिक रूठा है।

'कृष्णचन्द्र, तू गोदान करेगा न !' बाबा क्या करें। श्याम रो रहा है—कन्हाई ! हृदय जैसे टुकड़े हो जायगा। 'गोदान करना है !' रुदन की गति तो कुछ रुकने लगी है। 'गोदान—गोदान तो करना ही है !' यह तनिक चुप होने लगा है।

'कनूँ, तोक रो रहा है ! तू चुप नहीं करायेगा इसे !' मैया का यह शस्त्र अमोघ है। 'तोक रो रहा है !' कन्हाई ने नेत्र स्वयं दोनों करों से पोंछ लिये और अब तो रोना भूल ही गया यह। इसका तोक—छोटा भाई तोक रो रहा है ! उसे चुप कराना है न ! यह न चुप कराये तो तोक क्या चुप होगा।

वैद्यराज को, स्वर्णकार को, विप्रों को नेग देना। नेग का यह क्रम आज ही कहाँ पूर्ण हुआ जाता है। वैद्यराज नित्य ओषधि का तैल लगायेंगे और यह बँधा धागा खुलेगा। हीरक-शलाका पड़ेगी कर्णों में और फिर कुण्डल—झलमलायेंगे इन नील कपोलों पर। लेकिन आज का नेग—आजका महोत्सव—कौन तुलना करे इनकी।

—❀◯❀◯❀—

गोकुल-परित्याग

"मणिनूपुरवाचालं वन्दे तं चरणं विभोः।
ललितानि यदीयानि लक्ष्माणि व्रजवीथिषु ॥"

—श्रीलीलाशुक

"श्रीकृष्णचन्द्र ही हम सबों का प्राण है, जीवन है और उसी के ऊपर ये उत्पात बार-बार होते हैं !" अर्जुन के इतने बड़े-बड़े वृक्ष अकारण गिर पड़े, गिरे भी तब—जब कि श्यामसुन्दर उनके मध्य में ही था। वृक्षों के गिरने का कोई कारण जाना न जा सका, तब इसे कोई महोत्पात के अतिरिक्त क्या समझें। औरों की तो और जानें, पर श्रीउपनन्दजी का हृदय आशङ्का से पूर्ण हो गया है। 'अब तक श्रीनारायण ने रक्षा की; पर यदि किसी दिन बालक को कुछ हो गया तो......?' कोई अन्त नहीं है उनकी चिन्ता का। रात्रि में एक पल के लिये उन्हें निद्रा नहीं आती।

'कंस अत्यन्त क्रूर है ! पता नहीं क्यों उसने इस कुसुम-सुकुमार नन्हे कन्हाई से शत्रुता कर रक्खी है !' मथुरा की मन्त्रणाओं की बात गोकुल में छिपी तो अब है नहीं, भले उसे लोगों की मिथ्या आशङ्का मानकर कोई टाल दे; किन्तु अबतक जो व्रज में असुर आये हैं—पूतना तो कंस की सेविका थी ही, कौन जाने छकड़े के टूटने में भी किसी असुर का ही हाथ रहा हो। वह आकाश में एक राक्षस श्याम को लेकर उड़ा और फिर गिर पड़ा—वह तो पहिचाना नहीं जा सका, इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया था; पर संदेह है कि मथुरा से ही वह भी आया होगा, और अब ये वृक्ष गिर पड़े—वृद्ध गोप तो इसमें भी कंस की ही दुष्टता का अनुमान करते हैं।

'मथुरा अत्यन्त निकट है ! कंस कुछ-न-कुछ करता ही रहेगा !' उपनन्द जी के मनमें संकल्प उठने लगा है—'कहीं दूर रहना चाहिये यहाँ से !' कहाँ ? अभी इसका उत्तर कहाँ दिया है मन ने। अभी तो इसपर मन्थन चल रहा है। श्रीनन्दराय व्रजपति सही, पर छोटे भाई ही तो हैं। सबसे ज्येष्ठ होने के कारण उपनन्दजी उन्हें सदा अपना स्नेह-भाजन बनाये रहे हैं। बड़ों को ही तो अधिक चिन्ता रहनी चाहिये परिवार, ग्राम, कुल की रक्षा के विषय में। दूसरे नन्दरायजी बहुत सीधे हैं, उनको तो अपनी ही चिन्ता नहीं रहती। उपनन्दजी ने ही तो सदा अपने छोटे भाई को सम्हाला है। आज गोकुल का जीवन-सर्वस्व संकट में दीखता है—उपनन्दजी के नेत्रों में निद्रा कैसे टिक सकती है।

कन्हाई का कर्णवेध है, इतना बड़ा महोत्सव है गोकुल में, दूर-दूर के गोष्ठों के अधिपति आये हैं; पर उपनन्दजी—गोकुल के वे सर्वश्रेष्ठ, सर्वमान्य वयोवृद्ध—आज उनका पता ही नहीं है। वे कहीं चले गये हैं। श्रीनन्दरायजी से भी उन्होंने केवल जाने की सूचना दी है, कारण नहीं बताया है।

किसी विचार को सर्वाङ्गरूप से शोधकर, उसके प्रत्येक अङ्ग की परीक्षा करके और उसके परिणाम के सम्बन्ध में प्रस्तुत होकर ही उपनन्दजी कभी कुछ बोलते हैं। जो चिन्ता है, जो प्रश्न है—वह केवल दूसरों को सूचित करने से तो टल नहीं जायगा। व्रज के ये सहृदय सरल गोप—इन्हें व्यर्थ चिन्तित करने से लाभ ? ये भी तो अन्ततः उस संकट से परित्राण का मार्ग पाने के लिये उन्हीं की ओर आँखें उठायेंगे। अच्छा यही है कि पूरी व्यवस्था पहिले स्वयं ही सोच ली जाय।

'यहाँ रहना अच्छा नहीं !' यह तो ठीक, पर यह यमुनातट, बृहद्वन—इसे छोड़कर कहाँ जाया जा सकता है ? ये कोटि-कोटि गायें—इनको तनिक भी कष्ट हो तो गोपकुल का जीवन ही व्यर्थ है। इनकी सुविधा कहाँ होगी ?

'यहाँ तो रहा जा नहीं सकता !' जहाँ श्यामसुन्दर ही सङ्कट में दीखता हो, वहाँ रहने की बात तो चित्त में आने से रही। व्रज में ही अनेक स्थल हैं, अनेक वनों के सम्बन्ध में बड़ी प्रशंसा है। उनमें प्रायः सभी देखे हुए हैं, पर तब का देखना और अब देखना एक कैसे हो सकता है।

श्रीउपनन्दजी स्वयं कुछ देख लेने, कुछ स्थिर कर लेने गोकुल से चले गये हैं। अपने-आप ही देखना है उन्हें और केवल देखना ही तो नहीं है, व्रजके दूरस्थ गोष्ठों में अनेक अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं, सब-के-सब परम सुहृद् हैं, उनसे मन्त्रणा भी करनी है। परिस्थिति ऐसी नहीं है कि अब और उपेक्षा की जा सके। शीघ्रता में कोई निश्चय किया भी नहीं जा सकता। श्रीउपनन्दजी स्वयं सबसे मिलकर ही मन्त्रणा करेंगे। बात गुप्त रहेगी, स्थान देखे जा सकेंगे, एकाकी मिलने से सब अपने पूरे विचार खुलकर बता सकेंगे! अतः वे गोकुल से चले गये हैं व्रजके गोष्ठों का निरीक्षण करने।

× × × ×

श्यामसुन्दर का कर्ण-वेध हो गया। कर्ण-वेध के भय से ही तो वह रोता था। उपनन्दजी ही तो ऐसे नहीं थे, जो इस दृश्य को देखने में अपने को असमर्थ पाते रहे हों, उस समय तो अधिकांश लोग उठकर नन्दभवन से बाहर चले गये थे। लोगों ने तो यही समझा कि श्रीउपनन्दजी इस अवसर के ध्यान तक से बचने के लिये गोकुल से चले गये; पर यह तो कुछ और ही बात जान पड़ती है। पूरे व्रजमण्डल के गोष्ठों से ये सम्मान्य वृद्ध अनुभवी गोपनायक गोकुल में एक-एक करके प्रातः से ही आ रहे हैं। आज कोई उत्सव तो है नहीं। आज ही श्रीउपनन्दजी लौटे हैं और आज ही ये गोपगण एकत्र हो रहे हैं। सायंकाल व्रजेश के द्वारपर एकत्र होने की प्रार्थना जो समस्त गोकुल के गोपनायकों से की गयी है, उपनन्दजी के इस आमन्त्रण में कुछ रहस्य होना चाहिये। बिना किसी गम्भीर प्रयोजन के इस प्रकार चुपचाप इतने गोपों का एकत्र होना हो नहीं सकता। श्रीउपनन्दजी की ओर से सबको बुलाया गया है—यह तो और महत्त्व की बात है।

इतना गम्भीर प्रयोजन दीखने पर तो सबको एकत्र होना ही था। सायंकाल व्रजेश्वर के द्वार पर गोपगण एकत्र हुए। सब जानते हैं—यह आयोजन उपनन्दजी ने किया है, अतः कुछ भी किसी से पूछकर पहिले से जाना नहीं जा सकता। जिसे जितना उन्होंने बताया है, उतने पर ही सन्तोष करके अवसर की प्रतीक्षा करनी है उसे। गोपों की इतनी शान्त, समुत्सुक एवं पूर्ण गोष्ठी तो यह गोकुल में पहिली बार बैठी है।

वृद्ध गोपों ने व्रजेश्वर से यथोचित सत्कार प्राप्त कर लिया है। व्रजेश तो इतने सरल हैं कि इस गोष्ठी में सबके अनुरोध करने पर भी वह अपने प्रमुख आसन पर आसीन नहीं हुए। अभिषेक के पश्चात् उन्हें सभा में सिंहासन पर किसी ने देखा ही नहीं। वे जब समस्त व्रज के हृदयासन पर आसीन हैं—तुच्छ सिंहासन क्या उसकी तुलना कर सकता है। सब यथास्थान बैठ चुके हैं और व्रजेश—भला, इन सम्मान्य वयोवृद्धों में वे उच्चासन स्वीकार करेंगे। उपनन्दजी अपने छोटे भाई के स्वभाव को जानते हैं। उनको मुख्य प्रश्न पर आने की शीघ्रता है। उनके संकेत से आग्रह शिथिल हुआ लोगों का, जैसे व्रजराज को परित्राण मिला।

शान्ति—नीरव शान्ति, सूई गिरे तो उसका भी शब्द सुन लिया जाय और इस शान्ति में कुल दो क्षण गये—श्रीउपनन्दजी उठकर शान्तभाव से खड़े हो गये। सबके नेत्र उनके मुख की ओर लग गये। अपने धीर गम्भीर स्वरमें उन्होंने कहना प्रारम्भ किया 'श्रीनारायण ने कृपा की, हम लोगों की नित्य-नित्य की प्रार्थना उन दयामय के श्रीचरणों में स्वीकृत हुई, अनेक जन्मों के पुण्योदय से हमने श्रीकृष्णचन्द्र-सा युवराज पाया। अब यह नित्य की घटना हो गयी कि हमारी आशा के उस सुकुमार अङ्कुर को ही नष्ट कर देनेके लिये उत्पात-पर-उत्पात हो रहे हैं। वह राक्षसी—कनूँ सात दिनका भी पूरा नहीं हुआ और वह विकराल राक्षसी इसे ले भागी। इसके ऊपर उतना बड़ा भरा छकड़ा गिरते-गिरते रह गया और चक्रवात चलाकर वह असुर तो इसे आकाश में ले ही जा चुका था। गिरा भी यह शिला पर ही; परन्तु हमारे कुलदेव अनुकूल थे—उन्होंने इसकी रक्षा कर दी! यही क्यों—अभी-अभी श्रीनारायण ने ही तो इसे बचाया है, यह तो उन विशाल अर्जुन वृक्षों के मध्य में ही था, जब वे गिरे। ये नित्य के महोत्पात...।'

'नित्य के महोत्पात! पूतना—असुर और कदाचित् यह तरुपात भी?' तरुण गोपों के नेत्र अङ्गार बनते गये। 'अवश्य श्रीउपनन्दजी का संकेत कंस की क्रूरता की ओर है! इतना

अकारण अत्याचार हम अब और नहीं सहेंगे !' अधर दाँतों से पीड़ित होने लगे। किसी के हाथ खड्ग की मूठ पर गये और किसी ने लाठी पकड़ी दृढ़ता से। एक संकेत—व्रजेश्वर का संकेत भर हो जाय ! कंस होगा दिग्विजयी, पर उसे पता लग जायगा कि गोपों की शत्रुता का क्या अर्थ होता है।

श्रीउपनन्दजी का ध्यान इधर नहीं है। उनके नेत्रों से बिन्दु गिरने लगे हैं। उनका कण्ठ भर आया है। वे कहते जा रहे हैं—'यहाँ बालकों के विनाश के लिये कोई-न-कोई उत्पात पहुँचा ही रहता है, यह बृहद्वन हमारे लिये कल्याणप्रद अब नहीं रह गया। अतः जो राम और कृष्ण के हितैषी हैं, जिन्हें दाऊ और कन्हाई प्रिय हैं, उन्हें अब गोकुल का त्याग करना चाहिये। कोई और विपत्ति हमें अभिभूत करे, इससे पूर्व ही हम इन बच्चों को लेकर अपने समस्त अनुगतों के साथ और कहीं चले जायँगे !'

स्पष्ट था कि जिसे गोकुल न छोड़ना हो, जिसे यहाँ के अपने गृह में ममत्व हो, उससे कोई आग्रह नहीं है। उस पर कोई भी दबाव नहीं दिया जायगा। राम-कृष्ण तो अब यहाँ रहेंगे नहीं। अब इसमें व्रजराज की सम्मति की भी आवश्यकता नहीं है। जितना स्वत्व इन दोनों बालकों पर व्रजराज का है, उपनन्दजी का उससे कम कहाँ है। रामकृष्ण को तो ले ही जायँगे; जो अनुगमन करना चाहेंगे, उन्हें भी छोड़ा नहीं जायगा। जो भी इन बालकों के शुभचिन्तक हों, उनको यहाँ नहीं रहना चाहिये।

एक बार उपनन्दजी ने चारों ओर देखा। सभी नेत्र कह रहे थे—'यह क्या कह रहे हैं आप ? राम-श्याम सकुशल रहें; कहिये, कहाँ चलना है हमें ? नेत्रों के भाव इतने स्पष्ट कि वाणी उतनी पूर्णता से व्यक्त कर ही नहीं सकती। उपनन्दजी ने आगे प्रस्ताव को स्पष्ट किया—'मैं स्वयं देख आया हूँ, यहाँ से कुछ ही दूर वृन्दावन नामका वन है। सर्वथा नवीन वन है और पशुओं के लिये तो बहुत ही उपयुक्त है। गोप, गोपी, गायें—सभी वहाँ प्रसन्न रहेंगे। परम पवित्र गिरिराज गोवर्धन का वह पादप्रान्त मृदुल तृणों एवं मधुर पक्वफलों के वृक्षों से परिपूर्ण है। हमारे लिये बरसाना-धीश का वह पड़ोस सुरक्षा की दृष्टि से भी सर्वोत्तम है। मैं चाहता हूँ कि यदि आप लोगों को मेरी बात उचित जान पड़े तो छकड़े जोत दिये जायँ। गायें आगे जायँ और हम आज ही प्रस्थान करें !'

'निश्चय हम आज ही चल देंगे !'

'इससे अच्छा कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता ! शीघ्रता करनी चाहिये !' गोपों में—व्रज के गोपों में और मतभेद ! यह तो कल्पना से परे की बात है। सम्भवतः यहाँ सबकी बुद्धि एक ही धातु की बनी है। श्यामसुन्दर ने रही-सही कोर-कसर भी पूरी कर दी। जब सबके जीवन, संकल्प, विचार का वही एक केन्द्र है—कहाँ मतभेद सम्भव है। उपनन्दजी प्रस्ताव करें और वह स्वीकृत न हो ! वह तो आदेश की भाँति ग्रहण किया गया।

'मैंने महर्षि शाण्डिल्य का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है। ब्राह्ममुहूर्त में ही हमारे शङ्ख जयघोष करेंगे !' श्रीउपनन्दजी का प्रस्ताव पहिले से सर्वाङ्गपूर्ण न हो, यह तो कभी हुआ ही नहीं। महर्षि ने मुहूर्त बता दिया है। अब तो प्रस्थान को प्रस्तुत होना है।

× × × ×

"ब्राह्ममुहूर्त में ही प्रस्थान करना है !" घर-घर सभी व्यस्त हैं। छकड़े भरे जा रहे हैं। महर्षि शाण्डिल्य ने स्वयं समस्त विप्रों एवं मुनिमण्डली से अनुमति प्राप्त कर ली है। 'जब श्रीकृष्ण-चन्द्र जा रहे हैं, तो यहाँ रहकर करना भी क्या है !' वीतराग तपोमूर्तियों में स्थान का मोह तो होने से रहा। अवश्य ही उनके आत्माराम चित्त को व्रजराज के नवनीतचोर कुमार ने चुरा लिया है और अब तो जहाँ वह ले जाय, जाना ही है।

भगवती पूर्णमासी—उनके बिना तो गोपकुल का अब कोई मङ्गलकार्य सम्पन्न नहीं हो पाता। उनका आशीर्वाद तो सदा ही अभीप्सित है। वे न जायँ तो—पर यह सोचा ही कैसे जा सकता है। उनका मधुमङ्गल तो कन्हाई को छोड़कर एक क्षण नहीं रह सकता। वह तो दिन भर श्याम के साथ ही घूम करता है। उसके बिना मोहन का मन भी कैसे लगेगा। गोपों की गोष्ठी से

उठकर बाबा ने सीधे उनके आश्रम में पहुँच कर प्रार्थना की और वे दयामयी—उन्होंने तो हँसकर कह दिया—'जब कृष्ण जा रहा है तो उसकी धाय कैसे नहीं जायगी !' कन्हैया को उन्होंने ही प्रथम गोदुग्ध-पान कराया और…वे तो साक्षात् करुणामयी महाशक्ति ही है !

'श्याम के लिये नवनीत चाहिये मार्ग में ! वस्त्र बदलने होंगे ! यह मणि-मयूर पता नहीं कब वह माँग बैठे !' मैया को तो अपने नीलमणि की वस्तुओं से ही अवकाश नहीं है। उस चञ्चल का क्या ठिकाना—कब किस वस्तु के लिये मचलने लगे। नवनीत, दधि, मिष्टान्न, वस्त्र, खिलौने—पता नहीं, क्या-क्या मैया सजाने में लगी है। बार-बार सोचती है—'कुछ छूट तो नहीं रहा है ? श्याम की आवश्यकता की कोई वस्तु रही तो नहीं जाती ?' अञ्जन, उबटन, तैल—शतशः वस्तुएँ हैं। उसने ढेर लगा दिया है इन सामग्रियों का और इनसे लदा छकड़ा उसके छकड़े के साथ-साथ ही चलना चाहिये। किसी क्षण भी कोई वस्तु आवश्यक हो सकती है। उसके भी वस्त्र हैं, बहुमूल्य आभरण हैं ? उसकी आवश्यकताएँ—वे तो कब—पता नहीं कब नीलसुन्दर में एक हो गयीं। यह व्रजेश का विपुल कोषागार, व्रजराज की आवश्यकताएँ—मैया को मोहन से अवकाश हो तो इस ओर ध्यान दे। और ध्यान दे ही क्यों ? ये माता रोहिणी हैं न। ये तो स्वयं सब सम्हालने में व्यस्त हैं। व्रजेश्वरी, व्रजराज की आवश्यकताएँ—अरे, इनकी दृष्टि से तो सेवकों, दासियों तक की आवश्यकताएँ छूट नहीं सकतीं। मैया चाहे जितना यत्न करे—जितनी सामग्री एकत्र करे, कन्हैया की आवश्यक वस्तुएँ भी सब क्या उसके ध्यान में आ जायँगी ? वह तो एक वस्तु उठाती है—'श्याम इसे कब माँगेगा ?' कैसे माँगेगा ?' जैसे उसकी सुध-बुध खो जाती है। मार्ग में कन्हाई कुछ माँगेगा और तब वह चौंककर कहेगी—'अरे !' पर उसके 'अरे !' का समाधान तो हँसकर माता रोहिणी को ही करना है। उनके प्रबन्ध में कुछ छूट जाय, यह सरल नहीं है।

'गोकुल—गोकुल के ये रत्नमन्दिर—पिता-पितामहों का यह भवन और यह जन्मभूमि आज छूट जायगी ! आज इसे सदा के लिये छोड़ रहे हैं !' जैसे किसी गोप, किसी गोपी के मन में यह बात ही नहीं आती। अवधूत भी रात्रि भर जिस वृक्षके नीचे निवास करता है, प्रातः वहाँ से जाते समय उसकी दृष्टि वृक्ष पर जाती ही है, पर ये गोप—ये इतने निःस्पृह, इतने वीतराग ! घरों के प्रति जैसे इनमें कोई ममता ही नहीं। ये सब-के-सब तो इस उत्साह से जाने की प्रस्तुति कर रहे हैं, जैसे किसी महोत्सव में सम्मिलित होने जाना है और मार्ग में रात्रि-विश्राम के लिये इन गृहों में रुक गये थे। जैसे ये इनके गृह ही नहीं। इन गृहों से, इस भूमि से इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं। पर कैसे जाय गृहों की ओर ध्यान ? 'राम-श्याम सुरक्षित हो जायँगे !' कम उमंग की बात है। इस आशा, इस विश्वास पर वे क्या नहीं छोड़ सकते ? इस समय तो समस्त भाव इसी आशा में एकाकार हो चुके हैं।

'ब्राह्ममुहूर्त में ही प्रस्थान करना है !' छकड़े भरे जा रहे हैं। सामग्री सम्हाली जा रही है। अस्त्र शस्त्र व्यवस्थित किये जा रहे हैं और वृद्ध गोप—व्रजेश्वर, ये सब लोग आदेश देने में व्यस्त हैं। 'कौन क्या करेगा ? कौन कहाँ रहेगा ! क्या वस्तु कैसे रक्खी जायगी।' श्रीव्रजराज स्वयं घर-घर पहुँचकर सबकी व्यवस्था अपने-आप देख लेना चाहते हैं। स्वयं सबको सारी बातें समझा देना चाहते हैं।

× × × ×

ब्राह्ममुहूर्त का प्रारम्भ—यह गूँजा व्रजराज का शङ्खनाद और एक क्षण में तो दिशाएँ गुञ्जित हो गयीं शङ्खों, शृङ्गों आदि के तुमुल रव से। गोपों ने अपने-अपने शृङ्ग मुख से लगाये और फिर क्या कुछ सुनायी पड़ सकता है। छकड़े जुते, गृह के समस्त उपकरण छकड़ों पर सजाकर रख दिये गये हैं। बालक, वृद्ध तथा स्त्रियाँ—विप्रवर्ग और दूसरे सम्मान्य विद्योपजीवी—ये सब तो छकड़ों पर ही चलेंगे। सुसज्जित वृषभ-रथ—कौशेय के आच्छादन, स्वर्ण-घण्टिकाएँ और रङ्ग-विरङ्गे रत्नों से जड़े हुए। सब व्रजराज के भवन के सम्मुख एकत्र हो रहे हैं। तरुण गोपों ने कटि में दोनों ओर खड्ग लगा लिया है, पीठ पर त्रोण कस गये हैं और चर्म ने कंधों को भूषित कर दिया

है। धनुष तो है ही—करों में चम-चम करते ये विशाल भल्ल—आवश्यकता हो या न हो, रक्षा के लिये सावधान तो रहना ही चाहिये।

भेरी का घनघोष, शृङ्गों का चारों ओर गगनभेदी निनाद और अब तो जयध्वनि के मध्य ये कोटि-कोटि गौएँ श्रीयमुनाकूल के सहारे हाँक दी गयीं। गोप इन्हें आगे-आगे लेकर चलेंगे। गोपकुल के आगे ये परम पूज्य गायें ही तो चलेंगी। जहाँ सम्मुख इनकी खुर-रेणु उड़ती चलती हो, वहाँ तो सब दिशाओं में मङ्गल-ही-मङ्गल है।

महर्षि शाण्डिल्य, विप्र वर्ग, मुनिमण्डली—भला, इन परम वीतराग निष्परिग्रह तपोधनों को क्या लेना है। जलपात्र, वल्कल और स्रुक्-स्रुवादि—अपनी अग्नियाँ उठायीं, चल पड़े। इनको भी क्या कोई प्रस्तुति करनी पड़ती है। वृषभ-रथों पर विराजमान ये अपनी अग्नियों के साथ साक्षात् वैश्वानर-जैसे तेजोमय—व्रजेश्वर तो इनका अनुग्रह पाकर ही धन्य हो गये हैं। मार्ग में प्रातःकृत्य ठीक समय पर होने में कोई बाधा न पड़े, इसकी पूरी व्यवस्था हो चुकी है। महर्षि शाण्डिल्य कुछ दूर जाकर अपने इस मण्डल के साथ रुक जायँगे श्रीयमुनातट पर। प्रातः संध्या, हवन, तर्पणादि करेंगे विप्रगण। अतः इस मण्डल को भी अब शीघ्र प्रस्थान कर ही देना है।

गायें—कोटि-कोटि ये गायें—इन सबको कैसे सम्भव है कि आगे-आगे ले जाया जा सके। ये सब बार-बार भाग आती हैं, बार-बार घूम पड़ती हैं। श्यामसुन्दर पीछे है, वह मैया के साथ छकड़े पर बैठ गया है और उसी छकड़े पर बैठा है माता रोहिणी के साथ दाऊ भी। गायें इन दोनों को छोड़कर आगे कैसे बढ़ जायँ। व्रजराज को विवश होना पड़ा। गोप असमर्थ हो रहे हैं गायों को आगे ले जाने में। यह कन्हैया—गायें आगे हों, पीछे हों, दोनों ओर हों—चारों ओर गायें ही गायें हों, तब इसे आनन्द आता है। तब यह ताली बजाकर किलकता और फुदकता है, सम्भवतः गायें इसे समझ गयी हैं। गोपों ने बाबा की सम्मति से स्थिर कर लिया है कि छकड़ों को मध्यमें करके दोनों ओर गायों का यूथ चलाया जाय और यही शक्य है।

आगे-पीछे, अगल-बगल असंख्य रङ्ग-बिरङ्गी गायें, ऊँचे गर्जन करते वृषभ, कूदते बछड़े और इन सबों के कण्ठों से बजती घण्टिकाएँ! गोपों ने अपने शस्त्र सम्हाल लिये हैं। वे गायों की रक्षा में सावधान हैं और छकड़ों को तो उनका एक दल घेरकर ही चल रहा है। उनके मध्य में ये ऐरावत के बच्चों-जैसे उच्च वृषभ तथा घर्र-घर्र स्वर करते, स्वर्णघण्टियों की मधुर झंकृति से दिशाओं को गुञ्जित करते वृषभ-रथ। भला, क्या प्रतीत होना है इन वृषभों को इन रथों का भार। ये तो रथमें जुड़े होने पर भी गर्जन करते हैं। इन रथों के ये सारथि—अपने सीखे, सधे वृषभों पर इन्हें गर्व होना ही चाहिये। रश्मि का संकेत पाते ही वृषभ अश्वों की गति को पीछे छोड़ जायगे और संकेत मिलते ही तत्काल रुकने में तो कोई पशु वृषभों की समता कर ही नहीं सकता।

रथ चल रहे हैं—वृषभ-रथ चल पड़े हैं गोकुल से, चले जा रहे हैं। शङ्खनाद और मन्त्र-पाठ—विप्रों के रथों से तो यह मङ्गलध्वनि उठती ही है। बाबा के साथ वृद्ध गोपों का समुदाय है छकड़ों पर और ये गोपियों के शकट—रङ्ग-बिरङ्गे बहुमूल्य वस्त्र, ज्योतिर्मय रत्नाभरण और कल-कण्ठों से निकलता यह भुवनमङ्गल राम-श्याम का सुमधुर चरित—गोपियों के रथों की छटा की तुलना में सुरललनाओं के विमान तुच्छ हो गये हैं।

माता रोहिणी और मैया—दोनों एक ही छकड़े में बैठी हैं। दाऊ और कनूँ पृथक्-पृथक् चल ही नहीं सकते। कन्हाई का क्या ठिकाना कि कब वह बड़ी माँ या बड़े भाई के पास पहुँचने का हठ करने लगे। गोपियाँ बड़े उत्साह से, बड़े स्वर से इन दोनों के चरित गा रही हैं। मैया और माता रोहिणी के श्रवण इस सुधा-धारा से कभी भी परितृप्त होंगे—ऐसी तो आशा नहीं। ये दोनों तो इस प्रकार सुन रही हैं, जैसे कभी न सुना हो इन चरितों को।

भद्र—वह तो अभी से बाबा के पास रहने लगा है। मधुमङ्गल मार्ग में चपलता न करे, इसलिये भगवती पूर्णमासी उसे अपने साथ ही रक्खे हैं और तोक—तोक को माता का भय न हो तो अवश्य वह कूद आवे कन्हाई के पास। लेकिन कनूँ दूर कहाँ है। समीप से मिलकर ही तो यह

छकड़े पर बैठा है श्याम। अपने छकड़े पर से ही यह सखाओं को पुकारता, बातें करता चल रहा है। सखा सभी तो समीप ही हैं। बालकों को ही नहीं, गोपियों को भी लगता है कि उन्हीं का छकड़ा नन्दरानी के छकड़े के पास साथ-साथ चल रहा है। सबको यही लग रहा है। कौन जाने गायें भी अपने को इसी छकड़े के पास जानती हों, ये सब अब भाग-दौड़ तो कर नहीं रही हैं। बस, हुंकार कर लेती हैं बार-बार।

शङ्खनाद, शृङ्गनाद, घण्टिकानिनाद, वृषभगर्जन, गायों की हुंकृति, जयघोष, सामगान और गोपियों के कण्ठ की पावन स्वरलहरी—एक अद्‌भुत दृश्य हो गया है। रथचक्रों के घर्र-घर्र स्वर भी आज सङ्गीतपूर्ण हो गये हैं। गायें जा रही हैं, विप्रवृन्द जा रहे हैं, गोप जा रहे हैं, गोपियाँ जा रही हैं, पूरा गोपकुल जा रहा है। चल रहा है यह नन्दव्रज! व्रज--आज ही तो यह अपने वास्तविक व्रज के रूप में आया है। व्रज—चलता हुआ—आज गोकुल चलता हुआ हो गया है। चल रहा है—चला जा रहा है यह अपार जनसागर कोलाहल करता हुआ।

× × × ×

'माँ, यह किसका वृक्ष है? मैया, ये कैसे पुष्प हैं?' कन्हैया कभी माता रोहिणी से, कभी मैया से नाना प्रकार के पुष्प, तरु, पक्षी, पशुओं के सम्बन्ध में पूछता जाता है। दोनों भाई बार-बार छकड़े में खड़े हो जाते हैं। मैया के सम्हालने, बैठाने पर भी कठिनाई से बैठते हैं।

'कनूँ, देख तो! कितने बड़े-बड़े फल हैं।' दाऊ कभी छोटे भाई को कुछ दिखाता है, कभी श्याम अपने अग्रज को। पास के छकड़ों से सखाओं की कुतूहलभरी पुकार भी चल ही रही है।

'मैया, मैं ये फल लूँगा!' यहाँ तक तो ठीक। छकड़ा रोकना भी नहीं पड़ेगा, किसी सेवक को संकेत मिलेगा और कोई गोप फल ला देगा। झटपट; पर यह कनूँ इतने से ही मानता कहाँ है—'ये पुष्प तो मैं तोडूँगा—मैं अपने हाथों तोडूँगा!' और छकड़ा हाँकनेवाले को स्वयं आग्रह करने लगा है कि छकड़े को इस पुष्पित लता के नीचे ले चले। इतने सुन्दर सुरङ्ग सुकुमार पुष्प-गुच्छ—कन्हाई इन्हें अपने हाथों उतारेगा और मैया, बड़ी माँ या भाई की अलकों में उलझा देगा।

'तू ये किसलय तो तोड़ दे!' बालकों की माँग का कोई ठिकाना नहीं है। कभी छकड़ा रोककर मैया को स्वयं ऊपर की शाखा से किसलय चुनने हैं, कभी पुष्प और कभी फल। कभी कोई पक्षी देखना है मोहन को, कभी कोई पशु। यही क्या कम है कि किसी प्रकार यह चपल अपने छकड़े से उतरने की हठ बार-बार छोड़ देता है। आज ये सब बहुत प्रसन्न हैं। अत्यन्त उल्लास में हैं। राम-श्याम ने इतना वनपथ, इतने विभिन्न तरु, लता, फल-पुष्प, पशु-पक्षी आज ही देखे हैं। छकड़ों में पता नहीं क्या-क्या भरते जा रहे हैं सब। इनकी चले तो सब पशु-पक्षी भी छकड़े में ही बैठा लें। श्याम कभी मैया से एक हिरन पकड़ने को कहता है, कभी शशक। कभी इसे गवय भला लगता है, कभी झूमता वनगज। ये पशु-पक्षी—ये सब भी तो गायों में आ मिले हैं। ये तो इस प्रकार चल रहे हैं, जैसे गायों की भाँति पाले गये हैं और गोप इन्हें भी हाँके लिये जाते हैं।

'श्याम, तू कलेऊ करेगा न!' इतना दिन आ गया, इतनी देर हुई; पर बालक तो जैसे भूख-प्यास ही भूल गये हैं। कन्हैया तो अभी छकड़ा रोकना ही नहीं चाहता। मैया ने कितना प्रयत्न किया कि यह कुछ खा ले, चलते ही छकड़े में। 'दोनों भाई एक-से हैं, तनिक-तनिक नवनीत दो-एक बार किसी प्रकार मुख में लिया और बस! पता नहीं व्रजराज को बालकों का भी ध्यान है या नहीं। ये गोप कहीं रुकेंगे भी?' मैया को अब गोपों का यह चलते ही जाना रुचता नहीं। सबको रुकना चाहिये, बालकों को कलेऊ करना चाहिये, ऐसी भी क्या दौड़ा-दौड़।

कलेऊ, मध्याह्न-भोजन, मध्याह्नोत्तर-जलपान और सायं-निवास—होना तो सभी है। श्रीउपनन्दजी ने पहिले से सब सोच लिया है। सबके उपयुक्त स्थल देख लिये हैं। लेकिन कन्हाई का कुतूहल, छकड़ों की यह गति, बार-बार रुकना—उपनन्दजी ने इसका बहुत पहिले अनुमान कर लिया था। यह सुन्दर स्वच्छ कालिन्दीकूल, पुष्पित, फलित वनराजि, मृदुल हरित तृणराजि—बस यहीं तो कलेऊ होना है। वह उठ रहा है हवन का सुगन्धित धूम्र! महर्षि शाण्डिल्य विप्रवर्ग

के साथ यहाँ अपने प्रातःकृत्य सम्पूर्ण करने पहिले ही पहुँच चुके हैं। गायें तृप्त हों, गोप स्नानादि करें और कनूँ तो अपने सखाओं के साथ कलेऊ करेगा। यह आया भद्र, यह तोक और यह मधुमङ्गल तो भोग भी लगाने लगा! अब इतनी देर पर सब एकत्र हुए हैं—जैसे वर्षों पर मिले हों। इस समय इनका उल्लास, कल-कल, उछलकूद—सबके नेत्र तो यहीं स्थिर हो गये हैं! सब-गोप भूल ही गये हैं कि उन्हें स्नानादि भी करना है और फिर गोपियों को ही क्या शीघ्रता है। भूल तो गयीं ये गायें तृण चरना। सब यहीं घेरकर एकत्र हो जाना चाहती हैं। कन्हैया कलेऊ करेगा! अपने सखाओं के साथ वह अब कलेऊ करेगा! मैया इन सबको कुछ खिला दे तो उसे तनिक संतोष हो। बालक भूखे हैं। बहुत विलम्ब हुआ आज। वह व्यस्त हो उठी है।

× × × ×

मध्याह्नभोजन के लिये आज किसीको कुछ बनाना तो था नहीं, गोपियों ने जो विविध पकान्न बना रक्खे हैं। वन में, सघन तरुओं की छाया में इस प्रकार एकत्र पूरे गोकुल का आज का यह सहभोज—यह तो जीवनभर स्मरण रहेगा। मध्याह्नोत्तर कलेऊ भी अब तो हो चुका बालकों का और अब यथासम्भव शीघ्रता करनी है। श्रीयमुनाजी को पार भी तो करना होगा। रात्रि-विश्राम तो कालिन्दी के उस कूल पर करने का निश्चय हुआ है। कन्हाई के आमोद, बालकों के कुतूहल और इन सबकी विविध माँगों की पूर्ति में छकड़े यहाँ तक आ सके, यही क्या कम बड़ी बात हुई।

'गोधन एकत्र क्यों हुआ? छकड़े खड़े कैसे हो गये?' श्यामने इधर-उधर देखा। अभी तो कलेऊ का समय नहीं हुआ। अभी-अभी तो कलेऊ हुआ है। यहाँ क्या है? यह चञ्चल तो उतर गया छकड़े से हाँकने वाले के समीप। अब मैया कितना पुकारे, कितनी चेष्टा करे—यह कहाँ सुनता है। यह उतरा श्याम, यह उतरा दाऊ—अरे, ये दोनों तो छकड़े से उतरकर बाबा के पास भाग चले।

'भद्र! तोक! मधुमङ्गल!' कन्हैया कूदता पुकारता दौड़ चला है आगे को। यह सम्भवतः बाबा के पास ही जायगा। यह आया भद्र, यह रहा तोक, यह मधुमङ्गल—अब तो सब एकत्र हो गये। सब छकड़ों से भूमि पर आकर हँसते, कूदते, ताली बजाते भागे जा रहे हैं।

'अरे, यमुनाजी पर तो मार्ग बन गया है!' कनूँ ने पहिले ही देखा है यह नौकाओं का सेतु। श्रीव्रजराज ने प्रातः ही व्यवस्था कर दी थी, नौका-सेतु तो यहाँ पहुँचने से पूर्व ही प्रस्तुत हो गया। श्याम भागा जा रहा है, भागा जा रहा है सेतु के समीप। ये चञ्चल बालक--गोप पुकार रहे हैं, दौड़ पड़े हैं, पर सब तो सेतु पर पहुँच भी गये। कन्हैया तो ताली बजा-बजाकर कूद रहा है। यह कभी स्रोत के एक ओर, कभी दूसरी ओर देख रहा है अब बालकों को दौड़कर पकड़ना भी ठीक नहीं। कहीं ये सब भागें.......। बाबा की गति में तीव्रता नहीं रही। वे पुकार रहे हैं—'राम, कृष्णचन्द्र, मुझे भी तो आने दो! मैं तुम लोगों के साथ ही चलूँगा! रुको! खड़े रहो!' अब भला, सेतु पर कन्हाई क्यों न खड़ा रहे। बाबा आ रहे हैं, इसे बहुत कुछ पूछना है—'यह सरिता पर मार्ग कैसे बना? यह डूबता क्यों नहीं? जल इधर-से-उधर कैसे जा रहा है? ये नौकाएँ क्या जल में भूमि तक टिकी हैं? ये सब नौकाएँ बहती क्यों नहीं?' पता नहीं क्या-क्या। बाबा आ जायँ तो समाधान करें इसके प्रश्नों का।

× × × ×

ये कोटि-कोटि गायें—भला, इनके लिये भी कोई सेतु बन सकता है। कन्हैया उस पार पहुँच गया। वह खड़ा है तट पर अपने सखाओं के साथ। गायों को गोपों ने प्रेरित किया, यह कहना ठीक नहीं है। गायों ने देखा उस ओर—उस तट की ओर और वे उतर पड़ीं जल में। गोप तो उन्हें केवल पीछे से प्रोत्साहित कर रहे हैं।

कान उठाये, मुख ऊपर किये, कभी-कभी पूँछें उठातीं, तैरतीं ये असंख्य गायें—उसपार सम्मुख से गोप पुकार रहे हैं, पीछे से इस तट से प्रोत्साहित कर रहे हैं। सबसे बड़ा प्रोत्साहन तो यह बालकों की ताली और किलकार है। कन्हैया बड़ा प्रसन्न है, सब एकटक गायों को—तैरती आती गायों को देख रहे हैं। गायें, वृषभ—सभी तो आ रहे हैं।

यह आया धर्म ! यह भीगे शरीर को झाड़ती, पूँछ उठाये कूदती कामदा आयी ! वह निकली नन्दा और यह अरुणा तो बहुत कम बहकर प्रायः सीधे ही लगी है। कालिन्दी का प्रवाह यहाँ कुछ कम है। श्रीउपनन्दजी ने कुछ सोचकर ही यह स्थान यमुना-पार करने के लिये निश्चित किया। यह आ रहे हैं पशु—कोई यहाँ, कोई वहाँ—सब भींगे शरीर को हिलाते, कान-पूँछ उठाये, कूदते बाँ-बाँ करते उछलते आ रहे हैं। कन्हाई इन्हें देख रहा है, खिलखिला रहा है। बालक प्रसन्न हो रहे हैं।

सद्यःप्रसूता गौओं को गोपों ने कितनी कठिनाई से रोका है। इन्हें शीत लग सकता है। इनको तो सेतु पर से ही पार करना चाहिये। अङ्क में बछड़ों को लेकर, कितनी सावधानी से इन सबको लाया गया है इस पार। पर ये बछड़े—माताओं को जैसे इन बछड़ों की चिन्ता ही नहीं है। ये सब तो बालकों के समीप भाग जाने की धुन में हैं।

दो-तीन मास के बछड़ों को गोप सहारा देते, जल में तैराते ला रहे हैं। ये सब बड़े चञ्चल हैं, सेतु पर उछल-कूद कर कहीं गिर पड़ें—इन्हें कोई कहाँ तक नियन्त्रण में रख सकता है। श्रीयमुना की इस धार में इनको सहायता की आवश्यकता है। कुछ छोटे बछड़ों को तो गोप कंधों पर धरे तैरते आ रहे हैं। कुछ को सहारा दे रहे हैं। कुछ केवल प्रोत्साहन की ही अपेक्षा रखते हैं।

'माँ, बाँ' बछड़ों की यह पुकार, गायों की हुंकृति—बालक जो उसपार तटसे इन्हें ही पुकार रहे हैं। कन्हैया वह क्या पुकार रहा है। बाबा, उपनन्दजी, दूसरे गोप यदि इन बालकों को इस प्रकार रोके न खड़े हों—ये तो कदाचित् जल के ठीक किनारे आ जायँ। क्या ठिकाना कि जल में किसी बछड़े के कान पकड़कर उसे बाहर खींचने ही दौड़ पड़ें।

'कहाँ गया नीलमणि ? श्याम कहाँ गया ? सब कहाँ चले गये ?' मैया तो व्याकुल हो उठी है। सब उस पार पहुँच गये। बड़े चञ्चल हैं, पता नहीं कब जल के पास आ जायँ।' उस पार बाबा हैं, उपनन्दजी हैं, दूसरे वृद्ध गोप हैं बालकों के समीप और अब तो तरुण गोप भी पहुँच गये हैं। मैया को इससे संतोष कहाँ। कन्हाई को गोप नियन्त्रित रख सकेंगे—यह कैसे मान ले वह। उसे पार जाना है—शीघ्र जाना है उस पार। छकड़े नौका-सेतु से पार होने लगे हैं, पर इतना धीरे क्यों चल रहे हैं ! मैया की आतुरता को कोई व्यवस्था इस समय कैसे संतोष दे सकती है।

× × × ×

श्रीयमुना-तटपर छकड़ों के घेरे में यह वस्त्र-नगर ! गोपों ने कितनी शीघ्रता से यह शिविर खड़ा कर दिया था। सबके लिये पर्याप्त सुविधा—जैसे सब अपने ही घरों में हों। गोप सावधान रात्रिभर शस्त्र लिये प्रहरी बने रहे हैं। गोपियों को आज कहाँ निद्रा आनी थी। इस प्रकार वन में एकत्र मिलने का अवसर क्या बार-बार आता है। सब-की-सब मिलकर रात्रि भर राम-श्याम के मङ्गल-चरितों का गान करती हैं।

'बालक बहुत थक गये हैं। छकड़ों पर भी दिन भर ये सब उछलते ही रहे हैं। कन्हाई ने दिन में पलकें ही बंद नहीं कीं। यहाँ पहुँचने पर भी यह बालकों के साथ गुञ्जा, पुष्प, किसलय, फल, मयूरपिच्छ संग्रह करने इधर-से-उधर दौड़ता रहा। कितनी कठिनाई से अँधेरा होने पर ये सब लाये जा सके हैं।' मैया ने बाबा को कह दिया है कि प्रातः शीघ्रता न की जाय। बच्चों को भरपूर विश्राम करने का अवसर मिलना चाहिये।

'अभी तो अरुणोदय ही हुआ है ! यह अभी शङ्ख बजा ! ये शङ्ख बजने लगे !' मैया को लगता है कि गोप बहुत उतावली करते हैं। यह कन्हाई जग गया। यह अब बाहर भाग जाना चाहता है, छकड़े पर बैठने को उतावली कर रहा है। कौन कहे गोपों को—उन्होंने तो छकड़े जोत दिये। मैया ने राम-श्याम का मुख-हाथ धुलाया, कुछ कलेऊ कराया। गोपों ने उतावली कर दी, बालक कहीं शीघ्रता में कुछ खा पाते हैं। अब तो व्रजराज का शङ्ख गूँज रहा है। छकड़े प्रस्थान करने वाले हैं। यह कनूँ तो पहुँच भी गया अपने शकट पर।

—❀-❀-❀—

वृन्दावन

पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्गगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयाञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥

—भागवत १०।४४।१३

'दाऊ भैया, वह—वह ऊँचा-ऊँचा हरा-हरा पर्वत—अपने छकड़े तो उधर ही जा रहे हैं !' कन्हैया को दूर से गिरिराज की नील छटा बहुत प्रिय लगी ।

'वे गिरिराज हैं !' श्रीरोहिणीजी ने बताया ।

'गिरिराज—गिरिराज !' कन्हैया ने जैसे कोई भूली बात सोची हो । 'हम सब गिरिराज के पास रहेंगे !' उसने दोनों लाल-लाल हथेलियों से ताली बजायी । दाऊ ने अपने छोटे भाई के उल्लास में साथ दिया । माताएँ आनन्दमग्न हो गयीं ।

'अब अपने छकड़े खड़े कर दो ! गिरिराज तो आ गये !' कन्हैया ने माता के मुख की ओर देखा । छकड़े गिरिराज गोवर्धन के समीप से ही चल रहे हैं ।

'यहाँ नहीं—श्री यमुनाजी के समीप !' माता ने श्यामसुन्दर की ठुड्डी स्नेह से छूकर आगे दूर उँगली से संकेत किया ।

'यमुनाजी—यमुनाजी हैं क्या वहाँ ?' कन्हैया को इस यात्रा में यमुनातट छोड़ना पसंद नहीं आया था । यमुनातट मिलेगा आगे यह तो उसने सोचा ही नहीं था । 'लेकिन गिरिराज ?' वह असमञ्जस में पड़ा । किसे पसंद करे—गिरिराज को या श्रीयमुनाजी को ।

'गिरिराज के पास ही वहाँ श्रीयमुनाजी का प्रवाह है !' माता ने पुत्र के असमञ्जस को समझ लिया ।

'ओहो ! गिरिराज के पास यमुनाजी !' कन्हैया तो चलते छकड़े में माता की गोद से उठ खड़ा हुआ । मैया ने पकड़कर फिर बैठा न लिया होता तो अवश्य वह कूदता, फुदकता ।

अत्यन्त सुन्दर वन—पुष्पों से झुकी ढकी लताएँ, फलभार से पृथ्वी को स्पर्श करती शाखाओं वाले घने वृक्ष । स्थान-स्थान पर लताओं ने कुञ्ज बना लिये हैं । कदम्ब अपने पुष्पों से पीला या अरुणिम हो रहा है । मौलिश्री से कुसुमों की झड़ी लगी है । कर्णिकार के पीत, श्वेत लाल पुष्पों से भरे झुरमुटों की विचित्र ही शोभा है । अनेक सरोवर मिले मार्ग में, रङ्ग-विरङ्गे कुमुद मुख बंद किये और अनेक रङ्गों के कमल खिले हुए । हंस-सारसादि पक्षी आनन्द से तैर रहे हैं । भ्रमरों के झुंड-के-झुंड चारों ओर गुन-गुन कर रहे हैं ।

'कनूँ, वह देख—वह व्याघ्र !' एक कुञ्ज से सुपुष्ट स्वर्णशरीर पर काली धारियों वाला शक्ति की मूर्ति व्याघ्र शान्त खड़ा छकड़ों की ओर देख रहा था । उसके साथ उसकी सङ्गिनी थी ।

'माँ, वह तो मृगों के बीच में आया है !' दाऊ ने ठीक ही कहा । मृगयूथ पहिले से वहाँ इन छकड़ों को देखने आ गया था । बाघ कुञ्ज में से पीछे निकला और उनके बीच में ही खड़ा हो गया । जैसे वह भी एक बड़ा-सा हरिण हो, मृगों ने उसकी ओर देखा तक नहीं ।

'यह वृन्दावन है ! यहाँ कोई पशु-पक्षी परस्पर झगड़ते नहीं !' श्रीरोहिणीजी ही आज परिचय देने में लगी हैं । चञ्चल बालकों के अटपटे प्रश्नों का उत्तर देने में उन्हें आनन्दानुभव हो रहा है । 'वृन्दावन !' कन्हैया फिर खिलखिलाया । उसे जैसे आज प्रत्येक नाम परिचित लग रहा है ।

'माँ, तनिक छकड़ा रोक न !' श्याम ने माता के मुख को हाथ से एक ओर फेरकर दिखाया—' मैं एक बिल्ली पकड़ूँगा !' ऐसी विचित्र बिल्लियाँ गोकुल में उसने नहीं देखीं।

'पगले, वे सिंह के बच्चे हैं !' केसरी भी एक ओर एक कुञ्ज से निकल कर खड़ा है और उसके दोनों छोटे शिशु कभी अपनी माता के और कभी उसके पेट के नीचे कूदते हुये परस्पर खेल रहे हैं।

'माँ, माँ, मयूर ने माला पहिन रक्खी है !' श्यामसुन्दर ने दूसरा दृश्य दिखाया। कई कृष्णसर्प फण उठाये झूम रहे हैं। अनेक मयूर पंख फैलाये थन-गन नाच रहे हैं; किन्तु एक मयूर के गले में तो एक नागराज इस प्रकार लटक रहे हैं जैसे मयूर ने माला पहिन रक्खी हो। मयूर अपने नृत्य में मग्न है।

'कनूँ, वह भल्लूक !' दाऊ भैया का वाक्य पूरा होते-न-होते एक मोटा-सा रीछ दोनों ओर धनुष चढ़ाये पंक्तिबद्ध सावधान रक्षकों के मध्य से निकला और चढ़कर छकड़े के पार्श्व के काष्ठ पर आ बैठा। उसके हाथमें कोई कन्द है उज्वल-सा। उसे उसने कन्हैया की ओर बढ़ा दिया। कन्हैया ने एक बार माता के मुख की ओर देखा और कन्द ले लिया। मैया जब तक सावधान हों, तब तक तो रीछ छकड़े से उतर चुका। रक्षकों ने हँसकर उसे निकल जाने का मार्ग दे दिया। इधर दोनों भाइयों ने कन्दका भाग कर लिया और भोग लगाना प्रारम्भ कर दिया। 'माँ, बड़ा मधुर है ! तू देख न !' लड़के बड़े चपल हैं, परन्तु माता ने सुन रक्खा है कि रीछ को स्वादिष्ट एवं गुणवाद् कन्दों का बहुत ज्ञान होता है। जब यह वन-पशु इस प्रकार भेंट दे गया है, तब अवश्य वह हानिकर नहीं होगा। उन्होंने कन्द को बच्चों के हाथ से लेकर फेंकने का प्रयत्न नहीं किया।

वह—वे दीखती हैं श्री यमुनाजी !' माता ने संकेत किया।

'वे उज्ज्वल दूध-सी ?'

'अरे नहीं, वह तो पुलिन है उनके तट के समीप का। उसके पास वह नीली-नीली धारा !'

'हाँ—मैं पुलिन पर भैया के साथ खेला करूँगा !' कन्हैया अभी से सोचने लगा है—वह श्रीयमुनाजी में पत्तों की नौकाएँ प्रवाहित करेगा, पुलिन पर खेलेगा, गिरिराज पर बहुत ऊँचे चढ़ जायगा, वृन्दावन की कुञ्जों में आँखमिचौनी खेलते समय छिपना सुविधा-जनक होगा। पता नहीं क्या और कितना सब एक साथ कर लेना चाहता है वह। दोनों भाइयों की मन्त्रणा समाप्त ही होने को नहीं आ रही है। माताएँ बच्चों की योजना सुन-सुनकर मग्न हो रही हैं। उनसे बीच-बीच में सम्मति माँगी जाती है और इस समय तो सब प्रस्ताव स्वीकार कर लेने में ही भलाई है। अभी से कौन श्यामसुन्दर को रूठने का अवसर दे।

'वह बरसाना दिखायी देता है ! वह ऊँचे पर श्रीवृषभानुजी का प्रासाद है !' श्रीरोहिणीजी माता यशोदा को दिखा रही हैं और श्यामसुन्दर एकटक उधर देखने लगा है। उसका मुख कुछ अद्भुत गम्भीर सा बन गया है।

× × × ×

'आप ग्राम में ही पधारें ! मेरा निवास भी तो पवित्र हो !' श्रीवृषभानुजी पुरोहित एवं अपने यहाँ के प्रतिष्ठित लोगों के साथ व्रजराज की अभ्यर्थना करने सीमा से बाहर तक आये हैं। छकड़ों में उपहार हैं, साथ में।

'मैं तो आया ही आप के यहाँ हूँ !' बाबा ने गले लगाया उन्हें। छकड़े रुक गये हैं और गोपगण निवास के योग्य उस समतल भूमि को चारों ओर से घूम-घामकर देखने में लगे हैं। 'यहाँ की व्यवस्था तो अब आप की ही है !'

'आप मेरे ग्राम को अपना लें तो मेरा सौभाग्य !' वृषभानुजी हिचक रहे हैं। क्योंकि नन्दव्रज को अपने ग्राम में मिला देने की बात तो अहङ्कार सूचित करती और व्रजराज का अपमान

वे सोच भी नहीं सकते। 'किंतु—जब तक यहाँ व्यवस्थित भवन नहीं बन जाते, कम-से-कम तब तक तो मुझे सेवा का अधिकार मिलना ही चाहिये!'

'आप का ग्राम तो सदा से ही मेरा है। ऐसा न होता तो गोकुल की नित्य की आपत्तियों से पीड़ित होकर आप के समीप आता ही कैसे!' नन्द बाबा तो पूरे भोले बाबा हैं। उन्हीं के योग्य है उनकी सरलता। 'मेरे भवन का क्या बनना और क्या व्यवस्थित होना! व्रज—तो चलता, फिरता ही शोभा पाता है। अभी दो घड़ी में छकड़े व्यवस्थित हुए जाते हैं!' गोपों ने स्थान स्थिर कर लिया। छकड़े अर्धचन्द्राकार सजाकर खड़े किये जाने लगे। मध्य में व्रजराज के छकड़े रक्खे गये और दोनों पार्श्वों में छकड़ों की पंक्ति पवली होती गयी। सम्मुख श्रीयमुनाजी हैं ही। छकड़ों की पंक्ति के सम्मुख गौओं के लिये गोष्ठ निश्चित हुआ। श्रीगिरिराजजी की श्रेणियाँ पृष्ठभाग एवं वामपार्श्व को सुरक्षित किये हैं और दक्षिणपार्श्व में बरसाना है। इस प्रकार रक्षा की सम्यक् सुविधा सोच ली गयी।

× × × ×

श्रीवृषभानुजी के साथ उनके कुमार श्रीदामाजी भी आये हैं। मैया यशोदा ने संकेत कर के एक गोप के द्वारा बालक को अपने समीप बुला लिया। श्यामसुन्दर को तो किसी से मित्रता करते देर लगती नहीं। और भी बहुत-से बालक आये हैं बरसाने के। माता ने सबका सत्कार किया। बड़े आग्रह से सबको कुछ खिलाया-पिलाया। इतनी देर में ही कन्हैया ने उनसे मित्रता कर ली। दाऊ भैया और वे उनमें घुल-मिल गये। छकड़े खड़े होते ही साथ के भी सब बालक एकत्र हो गये थे। उनके परिचय में विलम्ब क्या होना है। बड़ों का परिचय ही समय की अपेक्षा करता है, क्यों कि उसमें स्वार्थ का प्रश्न होता है। बालकों ने तो एक दूसरे को देखा, एक क्षण संकोच रहा और दूसरे क्षण वे एक दूसरे का हाथ पकड़कर खेलने लगे।

कन्हैया को आज बहुत-से नवीन सखा मिले हैं। माता ने उन सबके सत्कार के साथ उसे कलेऊ करा ही दिया। बाबा और गोप छकड़ों की व्यवस्था में लगे हैं। मैया गोपियों को लेकर वस्तुओं को सज्जित कराने में लग गयीं। सब बालक श्रीयमुनाजी के पुलिन पर खेलने लगे। राम और श्याम अपने सभी सखाओं के साथ अत्यन्त प्रसन्न हैं। वे कभी श्रीयमुनाजी तक जाते हैं, कभी पुलिन पर रेत में उछल-कूद करते हैं, कभी वन में पुष्प-दल तोड़ते हैं और कभी गिरिराज की ओर देखकर ऊपर तक चढ़ने की बातें करते हैं। इस नवीन स्थान को कृष्णचन्द्र एवं बलरामजी के साथ सभी बालकों ने बहुत पसंद किया।

'श्यामसुन्दर कहाँ है?' छकड़ों की व्यवस्था देखने के पश्चात् श्रीवृषभानुजी ने पूछा। उन्हें आशा थी कि वे उस नवजलधरसुन्दर को अचानक ही देख लेंगे; पर वह तो खेलने में लग गया सखाओं को लेकर।

बाबा ने पुकारा—पुलिन पर से दोनों भाई और सब सखा साथ ही आये। नन्द बाबा ने श्रीदामा को गोद में उठा लिया और श्रीवृषभानुजी ने एक ही साथ राम और श्याम दोनों को। बालक संकोच से चुप हो रहे हैं और वे दोनों वृद्ध—उनके अन्तर के आह्लाद ने उन्हें भी दो क्षण को मूक बना दिया है।

—※⊂※⊂※—

ऊधम

"हे हे यशोदे तव बालकोऽसौ मुरारिनामा वसुदेवसूनुः।
आदाय वस्त्राभरणं मदीयं गतोऽतिदूरे यमुनानिकुञ्जे ॥"

गोकुल से वृन्दावन में आकर मैया को संतोष हुआ, मथुरा दूर हो गयी। अब ये राक्षस रोज-रोज तंग नहीं करेंगे। कोई भूला-भटका आया भी तो इतनी दूर अकेला ही तो आयेगा। दल-के-दल तो आने से रहे। यहाँ इतने गोप हैं और अब तो बरसाने का मण्डल भी एक-ही-सा है। व्रजेश की शक्ति द्विगुण हो गयी है। कन्हैया के लिये अब वैसा कुछ भय नहीं है। यहाँ कन्हैया ने वह गोपियों के घर जाकर धूम करना छोड़ दिया है। वह अब दधि-माखन नहीं चुराता। गोपियों के उलाहने से छुट्टी मिली। यहाँ उसे बहुत नये सखा मिल गये हैं। वह सब के साथ सम्मुख पुलिन या उपवन में खेला करता है। वह यहाँ कितना संतुष्ट—कितना प्रसन्न रहता है। कितना सरल हो गया है। और यह कीर्ति की कन्या—मैया ने सम्मुख उपवन की ओर देखा। छोटे-छोटे बालक और वैसी ही बालिकाएँ, सब एक साथ उछलते, कूदते, हँसते खेल रहे हैं। यह वृषभानुकुमारी राधा—यह जैसे सबकी केन्द्र हो। सब उसका संकोच करते हैं। सब उसका आदर करते हैं और सबके झगड़े वह सुलझा देती है अपने भोलेपन से।

'कन्हैया कैसा एक हो गया है उसी दिन से, जब यह अपने आँगन में पहिले-पहिल अपने भाई श्रीदाम के साथ झिझकती, दुबकती आयी, श्याम दौड़ गया उसके समीप। किसी बालक से घुलते-मिलते उसे देर ही नहीं लगती और यह दोनों तो जैसे एकप्राण हो गये हैं। भगवान् ने ही बनायी है यह जोड़ी।' मैया पता नहीं क्या-क्या सोचती रही। उसके नेत्रों से बिन्दु गिर रहे थे। नेत्र ऊपर उठते और ओष्ठ कुछ हिलते थे। पता नहीं वह कौन-सी प्रार्थना कर रही थी अपने आराध्यदेव श्रीनारायण से।

'राधा भाभी! राधा भाभी!' मैया चौंकी। यह भद्र कितना नटखट है। लेकिन मैया का शरीर पुलकित हो गया है। कन्हैया भद्र से झगड़ने लगा है और लड़की का नन्हा पाटल मृदुल मुख कितना लाल हो गया है। ये सब लड़कियाँ उसी की ओर देखकर हँसने जो लगी हैं।

'अरे, ये सब श्रीयमुनाजी की ओर कहाँ जा रहे हैं!' मैया अब भला, अपनी भावना में कैसे तल्लीन रहती। 'यह दाऊ सबमें बड़ा है न, वह अपनी ही धुन में रहता है। अबतक तो लड़के-लड़कियों से अलग पता नहीं उस कदली के पत्ते को लेकर क्या कर रहा था और अब सबको ले चला धारा की ओर। मैया ने पुकारा। सेवक को दौड़ने को कहकर भी स्वयं द्वार तक दौड़ आयी।

× × × ×

'सुबल! देख तो तू ठीक निशान मारता है या मैं!' कन्हैया ने एक कंकड़ उठा लिया है अपने दाहिने हाथ में। वह एक ग्वालिन जा रही है यमुनाजी से घड़ा भरके। 'ऊपर के घड़े पर नहीं, नीचे वाले पर!' घड़े के ऊपर घड़ा सिरपर और एक बाईं ओर कक्ष में भी। बिचारी को क्या पता कि आज नयी विपत्ति आने वाली है।

'मैया से कह देगी तो!' सुबल का भय ठीक ही है। श्याम को मैया ने ऊखल से बाँध दिया था। भला, वह क्या भूलने योग्य दृश्य है। उसके ऊपर दो बड़े-बड़े वृक्ष गिरते-गिरते बचे थे, ओह!

'मैं क्या मक्खन चुराता हूँ !' सम्भवतः मैया मक्खन चुराने पर ही बाँधती है। कितना सुन्दर है यह तर्क। कदाचित् इसीलिये यह चोरी बंद हो गयी है। 'वह मोटी धारा से भीगकर कूदेगी। बड़ा मजा आयेगा। भद्र !'

'अरे, अरे, मैं मैया से कहूँगी......' उस गोपिका की दृष्टि भी तो इधर ही है। वह सशङ्क हो गयी थी यह देखकर ही कि यह चपल उसी की ओर संकेत करके सखाओं से कानाफूसी कर रहा है। ये तीनों धीरे-धीरे उसके पीछे क्यों चलने लगे हैं ? मुख घुमाकर देखा तो कंकड़ लिये दो हाथ उठ चुके हैं। वह चिल्लाये-चिल्लाये कि 'भड़-भड़-भड़' तीनों घड़े फूट गये उसके। सिरसे पैर तक भीग गयी। ताली बजाते तीनों हँसते भागे और वह बाकी सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो रहे हैं।

फूटे घड़े झल्लाहट से फेंककर वह घूमी—पता नहीं क्रोध कहाँ चला गया। उसे स्मरण तक नहीं कि उसका शरीर पूरा भीग गया है। वस्त्रों से जल टपक रहा है। घरके लोग उलाहना देंगे। वह तो विस्मृत-सी, ठगी-सी एकटक देखने लगी है। वह श्यामसुन्दर भागा जा रहा है। वे अलकें लहरा रही हैं। वह मञ्जु हास्य गूँज रहा है। हँसते-हँसते उसका शरीर हिल रहा है। कितनी अद्भुत है यह छटा। कितना मनोहारी है यह दृश्य। उसे स्मरण ही नहीं आता, पर वह सखाओं के मध्य पहुँचकर उस नटखट ने घूसा दिखाया। हँसी आ गयी इसे भी। दाँतों से अधर दबाकर, मुख फेर कर अपने को सम्हाला। 'अच्छा' घर चलो !' वह मुड़ तो पड़ी कृत्रिम रोष का प्रदर्शन करके तीव्रता से, पर क्या इसी गति से जा सकेगी ? मुड़-मुड़कर डाँटने के बहाने क्या देखती जाती है फिर ?

'कनूँ, इसने मैया से कह दिया तो ....' भद्र के मुखपर चिन्ता के भाव आये।

'मैं कह दूँगा, दोनों घड़े मैंने ही फोड़े !' श्याम कहीं किसी सहचर को उदास देख सकता है।

'उहूँ, तू बोलना मत ! भद्र को क्या अपने लिये चिन्ता है ? वह तो डरता ही इसलिये है कि कहीं मैया श्याम को फिर न बाँध दे।

'मैं उसके सब घड़े फोड़ दूँगा !' दाऊ ने घूसा बाँधा। जैसे वह इस धमकी को सुन ही रही है।

सबने देखा, वह चली जा रही है, बार-बार पीछे देखती चली जा रही है। लड़कों ने भी पीछा किया उसका। कहीं वह मैया के पास ही तो नहीं जाती। अरे, वह तो सीधे नन्द-भवन में ही गयी। बड़ी तेज है यह गोपी। वह मानेगी नहीं। सबने मन्त्रणा की और भाग खड़े हुए। पुलिन छोड़कर वे सब चले गये समीप की कुञ्जों में।

'आज सब अब तक लौटे नहीं।' मैया ने देखा कि कोई बालक सम्मुख पुलिन पर नहीं है। 'देर हो गयी सबको भवन से बाहर गये। मध्याह्न होने को आया। पता नहीं सब कहाँ चले गये। खेल में लगने पर इन सबों को भूख का कहाँ पता होता है। गये कहाँ ? पता नहीं किधर निकल गये।' मैया तो पल-पल पर व्याकुल हो उठती है। एक, दो, चार, उसे ढूँढ़ने वालों पर विश्वास ही नहीं। एक को भेजा और वह द्वार से बाहर गया कि दूसरे को भेजने लगी।

'देर हो गयी, मैया बुला रही है।' आज किसी ने आने में आना-कानी नहीं की। सबने एक दूसरे का मुख देखा। सबने समझ लिया कि संदेश में ऐसी ध्वनि तो है ही कि मैया से उस गोपी ने कुछ कहा नहीं। अब चलने में देर करना ठीक नहीं। सब घर आये और देखा, वह गोपी नहीं है। मैया तो केवल विलम्ब का उलाहना देकर रह गयी।

यह क्या—कलेऊ करके सब उठे और वह तो आ धमकी। ठीक तो है, भला, घर जाकर वस्त्र बदले बिना क्या गीले वस्त्रों ही वह मैया के पास आती।

'मैया, यह गोपी है न ?' भद्र ने देखा कि वह कुछ कहे और श्याम डाँटा जाय, इससे पहिले वह सब दोष अपने सिर ले ले।

'मैंने आज इसका एक घड़ा फोड़ दिया !' कन्हैया ने मैया के गले में दोनों हाथ डालकर विचित्र भङ्गी से बात कह दी। भद्र को रोष आया—'यह कनूँ उसे बोलने भी नहीं देता।' लेकिन श्याम तो मैया को, इस ग्वालिन को, किसी को बोलने नहीं देना चाहता। वह तो कहता ही गया—

'मैया, यह देख कितनी पतली है। दो घड़े तो सिर पर भरकर रक्खे थे और एक बगल में। ऐसे चलती थी।' सचमुच नटखट ने उठकर उसके चलने का पूरा अभिनय दिखा दिया। ग्वालिन ने मुख फिरा लिया! मैया खुलकर हँस पड़ी।

'यह तो अवश्य कमर पर से टूट जाती। भला, कोई इतना भार उठाता है। इतने बड़े-बड़े घड़े।' दोनों हाथ पूरे फैलाकर कन्हाई ने बताया। 'मैंने एक कंकड़ मारकर एक घड़ा फोड़ दिया कि थोड़ा भार तो कम हो। मैया, फिर इसने बाकी दोनों घड़े अपने ही पटक दिये और झल्लायी चली आयी। तू इसे मार तो! यह दो घड़े क्यों फोड़ आयी?' वह भङ्गी, वह भोला मुख—कोई क्या उलाहना दे, और क्या डाँटे! मैया हँस रही है और वह भी हँस रही है।

'क्यों री, तू इसी प्रकार घड़े फोड़ती है!' मैया ने हँसते-हँसते डाँटने का अभिनय किया। बच्चों ने ताली बजायी और वह गया कन्हैया तो उनके साथ। वह तो द्वार से बाहर हो गया उछलता, कूदता। सब एक-दूसरे को ठेलते कैसे प्रसन्न दौड़े जा रहे हैं। वह ग्वालिन देखती रह गयी। मैया पुकारती रही—'अरे, दूर मत जाना!'

× × × ×

नन्दगाँव में यही एक तो पनघट नहीं है। अब तक तो अनेक घाटों से सब जल भर ले जाया करती थीं। अब सब को यहीं जल भरना है। नन्दग्राम की ही नहीं, बरसाने की गोपियों को भी यहीं जल भरना है। कन्हैया को तो एक ऊधम चाहिये। इन सबों के पास कदाचित् घड़े बहुत हैं। जान-बूझकर नहीं तो यहीं जल भरना क्या—श्याम और उसके सहचर—यह उछलती, कूदती सहस्रशः बालकों की मण्डली—भला, इससे कोई घड़ा बचकर कैसे निकल जाय। बचकर ही निकलना होता तो वह और कहीं भरा जाता या इन उपद्रवियों का समय बचाकर घाट पर पहुँचा जाता। लेकिन यहाँ तो जितनी उत्कण्ठा, जितना उल्लास घड़ा फोड़ने वालों में है, उससे कम घड़ों में तथा घड़ेवालियों में नहीं है कि उनका घड़ा फूटे ही।

उलाहने—वे तो एक बहाने हैं कन्हाई को फिर से देखने के। मैया के आगे वह जैसे मुँह बनाता है, जैसी युक्तियाँ गढ़ता है, उसको देखने-सुनने का लोभ कौन संवरण कर ले। मैया क्या करे! वह नित्य उलाहने सुनते कदाचित् अभ्यस्त हो गयी है। वह भी कदाचित् जानती है कि ये गोपियाँ उसके नीलमणि की वह अद्भुत बालभङ्गी देखने के लिये ही ये सब बहाने बनाकर आती हैं। वह जब रोष की मुद्रा बनाती है, डाँटना चाहती है, तब ये सब तो श्याम के पक्ष में होकर उसकी अनुनय करने लगती हैं, और सच्ची बात तो यह है कि कन्हैया के मुख को देखने पर रोष आ कैसे सकता है।

यह गोपी है तो चतुर—आज यह ताम्र-कलश ले आयी है। 'अब फोड़ दो तो जानूँ!' जैसे आज उसके नेत्रों में चुनौती है। कैसी मटकती गयी है वह तट तक।

'हूँ!' नटखट ने संकेत किया मधुमङ्गल को। कन्हाई भला यह चुनौती सह लेगा? उसने वह रक्खा एक कलश माँजकर तटपर और दूसरे को भरने लगी। 'भल्-भल् ठन्-ठन्!' और लाओ कलश। एक लाठी से ठेल दिया उसे और वह चला जल फेंकता, लुढ़कता वह यमुनाजी में। हाथ का कलश छोड़ गोपिका उसे सम्हालने झुकी तो इस कलश को लुढ़का दिया। अब जल में उतरे बिना छुटकारा नहीं। कलश तो वह कटि से नीचे जल में जा पहुँचा। बालक हँसते-कूदते दूर जा खड़े हुए। वे ताली बजाते, कूदते, हाथ नचाकर चिढ़ाते जा रहे हैं। अब यह कितना भी झल्लाये, सुने कौन।

'कनूँ, इसको कैसे छकायेगा तू?' सचमुच बात तो टेढ़ी है। यह तो एक ही कलश ले आयी है और उसे लेकर ही स्नान कर रही है।

'तू देख तो!' कन्हैया ने सखा की ओर इस प्रकार देखा, जैसे कहता हो कि हम सब क्या इससे कम चतुर हैं; और सचमुच वह दौड़ा-दौड़ा गया, तट पर रक्खे उसके वस्त्र उठाकर भागा,

भागा, वह भागता जा रहा है। वह चिल्ला रही है बिचारी और लड़के हँस रहे हैं। कन्हैया तो वह पता नहीं कहाँ, किस कुञ्ज में छिपाकर लौटा है। अँगूठे दिखाकर वह कैसा मुख बना रहा है।

× × × ×

'कनूँ !' भद्र के सम्बोधन में आज रहस्य है। अरे, आज ये लड़कियाँ नन्ही-नन्ही लुटिया-सी स्वर्ण-कलशियाँ लेकर जल भरने कैसे आ गयीं ? भला, इनको क्या पड़ी है जल भरने की और ये कीर्तिकुमारी........भला, इनकी कलशी कौन लुढ़कायेगा ? भद्र यही सब लिये सम्भवतः श्याम को सम्बोधन करके मुस्करा रहा है।

'मैं आज जल लाऊँगी।' पिता की पूजा के लिये जल लेने का हठ श्रीराधा ने आज क्यों किया, यह तो वे ही जानें; किंतु जब वे छोटी स्वर्णकलशी लेकर चल पड़ीं, तब उनकी सहेलियों को साथ आना ही था। जल भी भरना है इसी व्रजराज के घाट पर। श्याम सबके घड़े फोड़ देता है, यह देखने की स्पृहा खींच नहीं लायी इन्हें—कौन कह सकता है।

जैसे बालक, वैसी बालिकायें। अपनी-अपनी कलशी लिये वे निकलीं और विनोदपूर्वक कुछ ने बालकों को चिढ़ा दिया अँगूठा दिखाकर। अब बालक हार कैसे मान लें। कन्हैया की ओर सबकी दृष्टि गयी। श्याम ने झटपट कुछ कहा और सब एकत्र हो गये। एकत्र होकर घाट के पास आ गये।

'तुम सब ने हमारे घाट पर जल क्यों भरा ? हमारा कर दे दो, तब आगे जाओ !' भला, श्रीयमुनाजी में जल भरने का भी कोई कर होता है; लेकिन इस व्रज के लड़ैते से कौन तर्क करे। यह मयूरमुकुटी पटुके को कटि से कसे सबसे आगे दोनों पैर फैलाकर दृढ़ मुद्रा में जो आ डटा है और उसके पीछे खड़ी है उसकी यह अपार सेना।

श्रीवृषभानुकुमारी ठिठक गयीं। उन्होंने पीछे देखा सखियों की ओर। सब एक दूसरे का मुख देखकर धीरे-धीरे मुस्करा रही हैं। 'अब क्या होगा ?' शङ्का भी है।

'तुम्हारा घाट कहाँ से आया ? हमारा मार्ग छोड़ो, नहीं बाबा से कह देंगी। जमुनाजी पर भी कहीं कर लगता है !' पीछे से किसी ने साहस किया बोलने का।

'जा, तू कह देना; जल तो मैं ऐसे ले नहीं जाने दूँगा !' कन्हैया को क्या इस प्रकार कोई धमका सकता है। उसे और उत्तेजना मिली।

'मुझे देर होती है !' कीर्तिकुमारी और क्या कहें।

'मैं क्या करूँ !' लेकिन यह नटखट मानता कहाँ है।

'हम तो जायँगी !' सखियों ने हठपूर्वक बढ़ाया पद आगे और यह लो—श्याम ने लपक कर कलशी पकड़ी और लुढ़का दी। छीना-झपटी चलने लगी। बालक ताली बजाने और कूदने लगे। विजय तो उनकी ही है।

लड़कियों ने उलाहना दिया होगा ? छिः—वे भीग गयीं थीं, छीना-झपटी में किसी के वस्त्र फटे, किसी के आभूषण टूटे और भला, जल तो क्या आता उनके साथ। घर पर बड़ी विचित्र सूचना दी उन्होंने—कोई फिसल गयी थी, उसे नन्दनन्दन ने दया करके उठा दिया था। कोई बंदर के भय से भागी थी—कृष्णचन्द्र ने बंदर को भगाकर उसकी रक्षा की थी, कोई अचानक वस्त्र झाड़ी में उलझने से गिरी थी, श्यामसुन्दर ने उसे दौड़कर खड़ा कर दिया था। इसी प्रकार.......।

कन्हैया तो ऊधमी है ही और उसके ये सहचर उससे बढ़कर हैं। फिर जब सबको उनके क्रीड़ाक्षेत्र में ही आना है, उसके ऊधम के बिना जब इन सब को चैन नहीं पड़ती, तब वह ऊधम करे क्यों नहीं। उसके ऊधम—ऊधमों के नये-नये रूप...चलते ही रहते हैं वे।

गो-दोहन

"गावो मे ह्यग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥"

"बाबा, नन्दिनी को मैं दुहूँगा !" पता नहीं कैसे कन्हैया आज सबेरे सोते से उठ गया और मैया की दृष्टि बचाकर खिरक में आ गया है। उसने बाबा का हाथ पकड़ लिया और दोहनी लेने के लिये हठ करने लगा। मैया ने उसे अवश्य ही उठते देखा नहीं है। निद्रा से उठने के सब चिह्न अभी उसके मुख पर हैं। अब भी वह जम्हाई लेता है छोटा-सा मुख खोल कर और पलकें तो भारी हैं ही। दोनों हाथों से नेत्र मलते ही आया है यहाँ। अलकें मुख पर, भाल पर बिखर गयी हैं। पटुके का पता ही नहीं है। गले की मुक्तामाल उलझी पड़ी है। कटि की कछनी अस्त-व्यस्त हो रही है। आते ही वह बाबा की दक्षिण भुजा पर शरीर का पूरा भार देकर उझक पड़ा।

'तू अभी छोटा है; देख, दाऊ भी तो दूध नहीं दुहता ! बाबा ने गोद में खींच लिया श्याम को। उसकी अलकें सुधारने लगे वे।

'भद्र तो दुहता है, यह तो मुझसे छोटा है !' कन्हैया क्या इतनी जल्दी माननेवाला है। सचमुच भद्र तो गायें दुहता है; पता नहीं कितने दिनों से दुहता है। कल उसी ने तो श्याम को बताया था कि वह कैसे गो-दोहन करता है, कितनी मोटी धार निकालता है। श्रीकृष्ण ने तो तभी निश्चय कर लिया था कि कल वह भी अवश्य दुहेगा। वह क्या भद्र से कुछ दुर्बल है।

'तू छोटा है मुझ से ! मैं कहाँ छोटा हूँ।' भद्र यह कैसे सह ले कि कन्हैया उसे छोटा बताये। 'बाबा, कनूँ मुझसे छोटा है न ? तुझे नापना हो तो आ !' बाबा बतावें भी कि भद्र लगभग ढाई महीने छोटा है तो क्या वह मान लेगा ! वह तो नापकर निश्चय करने को खड़ा हो गया है।

'आ !' कन्हैया ही भला, अपने को छोटा कैसे माने वह झटके से बाबा की गोद से उठ खड़ा हुआ, दोनों पास-पास सटकर खड़े हुए। दोनों ने एक दूसरे के कंधों पर हाथ रक्खा और दोनों ने नीचे झुककर देखा कि कोई ऊँचाई पर तो नहीं खड़ा है। दोनों ने मस्तक झुकाकर सटाया और इसी समय कन्हैया पैर के अगले भाग पर खड़ा हो गया। भद्र ने भी उसका अनुकरण किया। 'मैं बड़ा हूँ !' दोनों की एक ही बात और जब ऐसे काम न चला तो वे कूदकर ऊँचाई सिद्ध करने का प्रयत्न करने लगे।

बाबा ने आज गोदोहन समाप्त कर दिया है। कन्हैया आया तो वे उठने ही जा रहे थे। अब तो उनके नेत्र बालकों के चञ्चल मुख पर लगे हैं। दोनों ने उन्हें पकड़ लिया। श्याम दाहिनी भुजा से उलझ गया और भद्र बायीं से। दोनों की माँग है कि बाबा बता दें कि दोनों में बड़ा कौन है। बाबा क्या बता दें ! वे तो इसीसे प्रसन्न हैं कि श्याम को गो-दोहन की बात तो भूल गयी। उन्होंने कह दिया 'तुम मैया से पूछ लो !'

'मैया ! मैया !' दोनों कूदते, दौड़ते भीतर पहुँचे।

'अरे, तू कहाँ भाग गया था ? मैं तुझे ढूँढ़ रही थी। चल, मुख धो !' मैया बड़ी व्यग्र हो उठी थी श्याम को न देखकर। वह इधर-उधर घर में पुकारने और ढूँढ़ने लगी थी। उसने दोनों को गोद में लेना चाहा।

"मैं भद्र से बड़ा हूँ न ?" श्याम अपनी धुन में है।

"मैया, यह कनूँ मुझसे छोटा है, फिर भी मुझसे झगड़ता है!' भद्र ने मैया का हाथ झकझोर दिया।

"तुम दोनों बड़े हो; चलो, कलेऊ करो मुँह धोकर!" मैया हँस पड़ी। अच्छा झगड़ा ले आये ये सब सबेरे-सबेरे।

'नहीं मैं बड़ा हूँ!' दोनों अपनी-अपनी ओर खींचने लगे मैया को।

'भद्र तो बाबा का है न?' मैया ने सीधा उपाय निकाल लिया। भद्र बाबा के साथ ही सोता है, बाबा के पास ही रहता है; तब वह बाबा का और कनूँ मैया का है—इसमें तो पूछना ही क्या।

'बाबा का है तो क्या!' कन्हैया ने कहा तो, पर उसकी चञ्चलता कुछ शिथिल-सी हो गयी है। वह सम्भवतः समझ गया है कि अब वह हारेगा। स्वर में उत्साह के बदले झल्लाहट ही अधिक है।

'इसी से तो मैं तुझसे बड़ा हूँ!' भद्र ने मैया का हाथ छोड़ दिया और उछलने लगा।

'मैं तो गाय दुहूँगा!' इस झगड़े में विजय न मिलती देखकर श्याम अपनी हठ पर आ गया।

'गाय तो सब दुही जा चुकीं।' भद्र ने चिढ़ा दिया उसे अँगूठा दिखाकर।

'यह भद्र बड़ा नटखट है!' मैया ने श्याम का पक्ष लिया। 'महर्षि शाण्डिल्य से तेरे बाबा मुहूर्त पूछ लेंगे आज। तू पूजा करेगा न गायों की। भला, बिना पूजा के भी कहीं कोई गाय दुहना प्रारम्भ करता है! चल, मुख धो ले! भद्र तो बिना पूजा के गाय दुहता है!'

बात तो ऐसी ही है। भद्र जब से चलने लगा है, तभी से वह बाबा के समीप ही सोता है। एक दिन उसको बाबा के पास सायंकाल खेलते-खेलते निद्रा आ गयी और तभी से वह और कहीं सोता ही नहीं। अपने घर तो भला, वह क्या रहेगा। जागते समय तो वह शिशु था, तब भी अपनी माता की गोद में नहीं रहा है। उसकी माँ बड़े सबेरे उसे ले आती। देर होने पर रोते-रोते वह सब को तंग कर लेता। नन्दभवन में जेठानी को पुत्र देकर माँ चली जाती यह कहकर कि 'अपने लाड़ले को सम्हालो!' रात्रि में जब वह सो जाता, माता आकर उठा ले जाती। यह क्रम भी थोड़े ही दिनों चला। घुटनों चलने लगा वह और घर जाना बंद हुआ। रात्रि में निद्रा टूटते ही जब वह रो-रोकर हिचकियाँ लेने लगता तो उसी समय नन्द-भवन पहुँचाना पड़ता उसे। कब तक यह क्रम चल सकता था। उसने मैया का ही दूध पिया श्याम के साथ और मैया की गोद में ही वह पला; पर पता नहीं क्यों वह मैया की अपेक्षा बाबा से अधिक हिल गया और उन्हीं के पास सोने लगा। बाबा को रात्रि के तृतीय प्रहर में ही उठ जाना ठहरा। वे गायों की सेवा और गो-दोहन सेवकों पर छोड़ नहीं सकते। वृन्दावन आने पर भद्र की नींद टूटी एक दिन और वह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बाबा के पास खिरक में जा पहुँचा। इस क्रम में वह गो-दोहन करने लगा। बाबा उसे मना कर नहीं सकते थे, वह रूठता जो बड़ी जल्दी है और पूजा की ओर ध्यान ही नहीं गया किसी का। लेकिन कन्हैया जो गो-दोहन की हठ किये बैठा है।

'मैं तो कल ही दुहूँगा!' श्याम ने किसी प्रकार मुख धुलाया और कलेऊ किया।

× × × ×

'मैं इस हेमा को दुह लूँ!' श्याम आज फिर सबेरे उठ गया। चुप-चाप कहीं से एक छोटी-सी लुटिया उठा लाया है वह। उसे पता है कि यदि मैया जान जायगी तो रोक लेगी। मैया उसके लिये मक्खन सँवारने और दूध देखने में लगी और वह चुपके से उठकर खिसक आया। बाबा ने देखा और बलात् हँसी आ गयी उन्हें। यह कृष्णचन्द्र उनसे भी डरता है। वे कहीं रोक न दें, इसलिये उनसे भी दूर एक बछड़ी को दुहने बैठ गया है। सोने-सी पीली बछड़ी—अभी वह पिछले साल की ही तो है, अभी तो एक वर्ष लगेगा उसे बच्चा देने में; लेकिन श्याम तो उसीको दुहने बैठा है और वह भी उसका मस्तक सूँघ रही है। बाबा के हाथ रुक गये, उनका दुहना बंद हो गया। वे

देखने लगे अपने पुत्र की क्रीड़ा। कन्हैया बार-बार उनकी ओर देखता है। उसने दोनों घुटनों के बीच में लुटिया दबा ली है और ठीक दुहने की मुद्रा में बैठ गया है।

'उसका बछड़ा कहाँ है ? तू बिना बछड़े को पिलाये दुहेगा कैसे ?' भद्र ने भी देखा श्याम को। उसने चिढ़ाने का प्रयत्न किया।

'बछड़ा, बछड़ा कहाँ है ?' कन्हैया ने लुटिया तो नीचे रख दी और इधर-उधर देखने लगा। सचमुच इस हेमा का बछड़ा तो कहीं दीखता नहीं। बछड़ा हो या न हो, उसे तो दूध दुहना है—दुहना ही है आज और वह भी इसी हेमा को। एक क्षण सोचा उसने और तब स्वयं मुख लगाकर पीने लगा उस बछड़ी के छोटे-छोटे स्तनों को। अनेक बार वह गायों के स्तन इस प्रकार पी चुका है, तब आज बछड़े के बदले क्यों नहीं पी सकता।

'कनू तो बछड़ा है !' भद्र ने दुहना छोड़ दिया और ताली बजाने लगा। बाबा का ध्यान इधर नहीं। वे तो कृष्णचन्द्र की ओर देख रहे हैं। यह हो क्या रहा है ? बछड़ी ने कोख नीची की, पैर फैलाये, मूत्र किया और उसके स्तन तो फूल कर मोटे-मोटे हो गये हैं ! तब क्या सचमुच श्याम दूध पी रहा है ? दूध ही तो पी रहा है, क्योंकि बछड़ी के शेष तीन स्तनों से तो उज्वल दूध की धारा गिरने लगी है। वह अद्भुत भङ्गी से शान्त खड़ी है। बड़ी बात क्या है ? व्रज में साधारण गायें तो कभी थीं नहीं और सच तो यह है कि गौ कभी साधरण होती ही नहीं। वह तो नित्य कामदुघा है और व्रज में ये जो गो-लोक की सुरभियाँ हैं······कोई उनसे दूध के अतिरिक्त अन्य कामना करे ही नहीं तो वे क्या करें। जो त्रिलोकी के समस्त ऐश्वर्य को सहज दे सकती है, उसके पास उसका नित्य गोपाल दूध के लिये आ बैठा तो वह दूध भी न दे सकेगी ?

'तेरा दूध तो सब भूमि पर गिर रहा है !' भद्र ने पुकार कर सावधान किया। कन्हैया तो दूधके स्वाद में भूल ही गया था कि वह दुहने आया है। भद्र की पुकार ने उसे सावधान किया। मुख हटाकर उसने देखा—दूध तो सचमुच भूमि पर गिर रहा है। शीघ्रता से लुटिया उठा कर उसमें दूध लेने लगा वह। भूमि पर दूध गिरे तो उसका उपहास होगा। भद्र कहेगा कि उसे दुहना नहीं आता। पर छोटी-सी लुटिया में चारों थनों की धार आये कैसे। एक को लेने के प्रयत्न में दूसरी धार नीचे जाने लगती है।

'बाबा, तुम अपनी दोहनी दो !' श्याम की लुटिया तो भर गयी। उसने लुटिया बाबा को दी और दोहनी के लिये हठ करने लगा। हेमा के स्तनों से दुग्धधारा गिरती जा रही है। अब तो वह ऐसे ही गोपाल के लिये दूध दिया करेगी। श्याम ही जिसका बछड़ा है, वह अब और कोई बछड़ा-बछड़ी क्यों दे।

'तू ने दूध दुह लिया न, अब रहने दे !' बाबा ने दोनों हाथ बढ़ाकर कृष्णचन्द्र को गोदमें उठा लिया; किंतु दूसरे ही क्षण इस चञ्चल को धुन सवार हुई मैया को बताने की। वह अपनी लुटिया लेकर घर में भागा।

× × × ×

मुहूर्त तो जैसे श्याम की इच्छा की प्रतीक्षा किया करते हैं। बाबा ने पूछा और महर्षि शाण्डिल्य ने दूसरे ही दिन प्रातःकाल गोदोहन का मुहूर्त बता दिया। कल प्रातः श्याम गो-दोहन करेगा। आज उसने एक बछड़ी से दूध ले ही लिया तो क्या हुआ। ऐसे तो वह सदा ही मुख लगा कर गायों को पी लेता है। व्रज में महोत्सव की योजना बनी-बनायी है। गोष्ठ स्वच्छ हो रहे हैं, सजाये जा रहे हैं। गायों और बछड़ों का शृङ्गार हो रहा है।

'मैं इसी दोहनी में नन्दिनी को दुहूँगा !' श्याम ने अपनी नवीन सोने की मणिजटित दोहनी छाँट ली है। दाऊ ने अपनी दोहनी पर चिह्न बना दिया है। फिर दूसरे गोप-बालक भी तो हैं। यहाँ तो सभी महोत्सव साथ-साथ ही चलते हैं।

रात्रिभर नन्द-भवन में गोपियों और गोपों की भीड़ लगी रही। ब्राह्ममुहूर्त में ही गोष्ठ में महर्षि शाण्डिल्य का विप्रों के साथ स्वस्तिपाठ प्रारम्भ हो गया। दाऊ एवं सखाओं के साथ कन्हैया

ने गायों का पूजन किया, चञ्चल बछड़ों के मस्तक पर तिलक लगाकर उनके गले में पुष्प-माला पहिनायी। सबको मोदक, पूप, यवस आदि से तृप्त किया। गायों के तृप्त हो जाने पर सामगान, भेरी-घोष एवं गोपियों के मङ्गल-गान के मध्य गोपाल के करों में बाबा ने दोहनी दी। उसने धीरे से नन्दिनी के उज्ज्वल बछड़े को छोड़ दिया। चञ्चल बछड़ा तो माता के पास जाता ही नहीं। वह तो कन्हैया को सूँघ-सूँघ कर फुदकने लगा है। नन्दिनी बार-बार हुंकार कर रही है।

'तू थोड़ा-सा दूध पी ले तो मैं दुहने लगूँ।' कन्हैया ने दोहनी भद्र को दी और दोनों हाथ गले में डालकर बछड़े को पकड़कर ले गया उसकी माता के समीप। 'ले, दूध पी!' बछड़े ने तब स्तनों में मुख लगाया, जब उसका मुख वहाँ श्याम ने पहुँचा दिया।

कन्हैया जैसे ही दोहनी लेकर बैठा, बछड़ा दूर कूदने लगा। नन्दिनी के स्तनों का उन कोमल अङ्गुलियों के स्पर्श करते ही दूध की मोटी धारा गिरने लगी स्तनों से। साथ ही वे लक्ष-लक्ष गायें हुंकार करने लगीं।

'मैं सबको दुहूँगा!' बाबा ने जैसे ही कन्हैया के हाथ से दोहनी ली, वह दूसरी दोहनी उठाकर कामदा के नीचे जा बैठा। ठीक भी तो है, आज किस गौ को वह इस सौभाग्य से पृथक् कर दे। सभी हुंकार कर रही हैं और सभी के स्तनों से दुग्धधारा स्वतः चलने लगी है। दाऊ तथा गोप-बालक भी गो-दोहन में लगे हैं और लगे हैं बड़े विचित्र ढंग से। कन्हैया नन्दिनी के नीचे से उठा तो वहाँ भद्र आ बैठा और स्वयं श्याम भी तो दाऊ के स्थान पर ही कामदा के नीचे जा बैठा है।

'पात्र लाओ!' थोड़ी देर में नित्य के पात्र तो पूर्ण हो गये। आज श्याम गो-दोहन कर रहा है पहिले-पहिल। आज समस्त देव-मन्दिरों में पूरे आठ प्रहर अखण्ड दूध की धारा चढ़ेगी श्रीविग्रहों पर। समस्त ब्राह्मणकुलों को आज बाबा के यहाँ पायस का प्रसाद ग्रहण करना है और उनके पश्चात् नन्दग्राम एवं बरसाने के सभी नर-नारी बिना किसी भेद के आज बाबा के द्वारा आमन्त्रित हैं; आज तो कन्हैया के हाथ से दुहे दूध का पायस प्राप्त होना है।

'पात्र लाओ! पात्र लाओ!' गोपों में दौड़ा-दौड़ मच गयी है। आज किसी वयस्क ने गायों का स्तन स्पर्श नहीं किया है। केवल बालक दुह रहे हैं। दुहने का तो नाम है, वे केवल अँगुली लगाते हैं। लक्ष-लक्ष गायों के स्तनों से अखण्ड दूध की धारा गिर रही है। इतना दूध गायों के शरीर में कहाँ से आता है? आज वे सब क्या दूध ही बन जायँगी? धाराएँ तो रुकने का नाम नहीं लेतीं। घरों में दूध तो क्या, जल तक के पात्र दूध से भर गये। महर्षि की आज्ञा से भगवान् गोपेश्वर का सहस्रधारा से दुग्धाभिषेक भी चल रहा है; पर दूध का स्रोत तो जैसे अनन्त हो गया है।

गायें हुंकार कर रही हैं। बछड़े फुदक रहे हैं। गोपियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। ब्राह्मण वेदध्वनि में लगे हैं। गोष्ठ से बाहर मङ्गलवाद्य बज रहे हैं। बालक एक गाय के नीचे से उठकर दूसरी के नीचे जा बैठते हैं। गोप दुग्धपात्र उठाने, भरने, ढोने में व्यस्त हैं। गोष्ठभूमि दुग्ध से पिच्छल हो चुकी है। बालकों के अङ्ग दूध के बिन्दुओं से भूषित हो रहे हैं। कन्हैया के श्याम अङ्ग पर ये छोटी उज्ज्वल बूँदें बड़ी भली लगती हैं। वक्ष, बाहु, मुख और भाल पर पता नहीं कितनी छोटी-बड़ी बूँदें हैं। अलकों पर भी वे उलझी-सी अटकी हैं।

आकाश में अरुणिमा आयी दिशाओं का राग भूमि पर प्रतिफलित हुआ। महर्षि शाण्डिल्य ने श्यामसुन्दर के समीप जाकर स्नेह से कहा—'अब गो-दोहन समाप्त करो!'

'सब गायें दुही गयीं।' कन्हैया ने दुग्धसीकरों से मण्डित अलकें सम्हालीं, एक बार चारों ओर देखा। सचमुच वह सभी गायों को दुह चुका है। महर्षि का आदेश वह कभी टालता नहीं। पूरे दिन और रात्रि मन्दिरों में अखण्ड दुग्धाभिषेक होता रहा, गोपियों का मङ्गलगान दिनभर और रात्रिभर चलता रहा और पायस—उस सुरदुर्लभ पायस से तो व्रज के मर्कट-मयूर तक आकण्ठ तृप्त हो गये हैं आज।

× × × ×

कृष्णचन्द्र अब गायें दुहने लगा है। जब तक वह गोष्ठ में न आ जाय, गायें दूध देना नहीं चाहेंगी। गो-दोहन का समय आया और सब द्वार की ओर मुख उठाकर हुंकार करने लगीं।

श्याम न आये, तब तक कोई बछड़े को मुँह न लगाने देगी और बछड़े ही कौन-सा दूध पीने चले हैं। यदि कन्हैया के आने से पहिले किसी ने भूल से बछड़ा छोड़ दिया तो वह कूदता-फाँदता सीधे नन्दभवन में चला जायगा और फिर कन्हैया को सूँघकर, अपने सिर से उसको धीरे से ठेलकर, हुंकार कर उलाहना देगा कि 'तू बड़ा आलसी है। अब तक यहीं है। मेरे साथ कूदता दौड़ता चल और दूध पी ले!'

मैया जानती है कि गायों की हुंकार कान में पड़ी और उनका नीलमणि भागा। फिर वह किसी के रोके रुकने का नहीं। बाबा अब गो-दोहन अरुणोदयकाल में कराते हैं; किंतु मैया को लगता है कि इतनी शीघ्रता क्यों रहती है व्रजेश को। ऐसी क्या जल्दी कि मोहन को शीघ्र जगाना पड़े। जगाना तो पड़ता ही है। क्योंकि यदि पहिले उठाकर मुँह न धुला दिया जाय तो वह बिना मुँह धोये ही गोष्ठ में भाग जायगा। कलेऊ तो वह गोदोहन के पीछे ही करता है।

श्याम गोष्ठ में पहुँचा और बछड़ों ने उसे घेर लिया। बछड़े उसके ठेलने पर माता के स्तनों से मुख लगाते हैं। जिस गौ के पास वह जायगा, उसके बछड़े को ठेलकर लगा देगा और बछड़ा एक-दो बार मुख चलाकर कूद खड़ा होगा। भला, श्याम दूध ले—इससे पहिले कौन दूध पिये। बछड़े सचमुच दूध तो पीते हैं गायों के दुहे जाने के बाद।

कन्हैया, दाऊ, भद्र—सब-के-सब दोहनी लेकर बैठ जाते हैं। गौएँ सम्भवतः प्रतीक्षा करती हैं। उनके स्तनों से बालकों की अंगुलियाँ लगीं और दूध की धारा चलने लगी। फिर तो गोपों का पात्र उठाना और भरना भर रह जाता है।

गोदोहन के अनन्तर बड़ी सावधानी से गोप बालकों के निकलते ही गोष्ठ का द्वार बंद कर देते हैं। द्वार न बंद किया जाय तो सब बछड़े श्याम के साथ नन्द-भवन में भीतर भाग जायँ। ये दूध पायें ही नहीं।

उस दिन कन्हैया पूर्णा को दुह रहा था। उसकी बाहु, भाल और अलकों पर दूध के उज्ज्वल सीकर चमक रहे थे। पूर्णा का बछड़ा गौरव उसके चारों ओर कूद रहा था। कूदते-कूदते उसने अपनी कुछ नन्ही जिह्वा से श्याम की भुजा चाट ली। कन्हैया ने उसकी ओर देखा। बछड़ा कूद गया।

'कन्हैया तो जूठा हो गया—बछड़े का जूठा! हम इसे न छुएँगे!' भद्र ने देख लिया बछड़े को चाटते। दाऊ और भद्र दोनों ने चिढ़ाना प्रारम्भ किया।

'मैं छू लूँगा तुमको!' श्याम ने दोहनी रख दी और दौड़ा। दोनों गायों के इधर-उधर दौड़ने लगे।

'बाबा, यह भद्र मुझे जूठा बताता है और दाऊ भी!' बाबा के पैरों से जाकर वह उलझ गया।

'बाबा, इसे गौरव ने चाटा है, यह जूठा है!' भद्र और दाऊ ने भी बाबा का एक-एक हाथ पकड़ा और हाथ पकड़े-पकड़े ही वे बाबा के पीछे छिप गये।

'बड़ा अच्छा है, बछड़े का जूठा तो पवित्र होता है। बछड़ा न पीये तो गो-दोहन कैसे होगा! बछड़े का जूठा दूध तो नारायण को अर्पित होता है!' बाबा ने समाधान किया।

'मैं तो पवित्र हूँ, तुम दोनों से पवित्र हूँ। अब मैं तुम्हें नहीं छूऊँगा!' अब कन्हैया की बारी थी। वह बाबा को छोड़कर भागा गोष्ठ से बाहर। भला, मैया को छोड़कर वह जा कहाँ सकता है।

'मैया, मैं इन दोनों को नहीं छूऊँगा!' मैया की गोद में भी क्या कोई एक छिप सकता है। एक ओर से दाऊ और दूसरी ओर से भद्र, दोनों आये और मैया की गोद तो फिर मैया की है। उसमें तीन तो क्या, सब-के-सब आ जायँ, तो भी स्थान रहेगा ही।

हाँ, तो श्याम अब गायें दुहने लगा है। नित्य वही गो-दोहन सम्पन्न करता है।

—*—*—*—

गोपाल

अधरबिम्बविडम्बितविद्रुमं मधुरवेणुनिनादविनोदिनम् ।
कमलकोमलनम्रमुखाम्बुजं कमपि गोपकुमारमुपास्महे ॥

—श्रीलीलाशुक

आजकल श्रीकृष्ण को एक नवीन हठ सूझ पड़ा है। यह नित्य बाबा से उलझता है, उनकी दाढ़ी खींचता है, झगड़ता है और रूठता है। मैया से दिन में कई-कई बार आग्रह, अनुरोध विवाद और रूठने का क्रम चलता है। वह गाय चराने जायगा। सब गोप गाय चराते हैं, वह भी चरायेगा—अब वह बड़ा हो गया है, दाऊ भैया साथ रहेंगे, इतने सब सखा हैं, सबके साथ वह गायों को चराया करेगा। सच्ची बात तो यह है कि बरसाने के सखाओं की मण्डली संकोच करती है मैया और बाबा के सम्मुख उन्मत्त क्रीड़ा में। पुलिन और घाट भी भवन से समीप ही हैं। अतएव नन्दग्राम एवं बरसाने के मध्य के वनप्रान्त में खेलने का अवसर चाहिये। कन्हैया गाय चराने चले तो फिर सबको यह सुविधा मिल जाय। मोहन ने मन-ही-मन यह सब सोच लिया है।

'भला, इतना छोटा बच्चा कहीं गाय चरा सकता है!' बाबा ने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। अभी कृष्णचन्द्र है ही कितना बड़ा। तीन वर्ष का भी तो पूरा नहीं हुआ। भला, गायें चराने की बात उसकी मानी कैसे जाय।

लेकिन कृष्ण तो फिर कृष्ण ही है—अपनी हठ वह कहाँ छोड़ सकता है। गोष्ठ में भाग जाता है। गायों की सींगें पकड़कर झूलता है। बड़े-बड़े साँड़ों की पीठ पर चढ़कर कूदता है। पकड़ने पर मचलता है और फिर वहीं लोटने लगता है। 'मुझे गायें चराने दो, नहीं तो मैं यहीं खेलूँगा!' उसके हठ को छुड़ाया कैसे जाय। पता नहीं क्यों, अभी से गायों में रहने की उसे धुन हो गयी है।

बाबा क्या करें? 'गायों में अनेकों के शृङ्ग तीक्ष्ण हैं। वे स्वभावतः मस्तक हिला सकती हैं। कहीं श्याम पीठ पर बैठा हो और कोई वृषभ उठ खड़ा हो। वह तो पीठ पर कूदता है। अब तक कोई उठ नहीं खड़ा हुआ, यही भगवान् की कृपा है। पता नहीं कब क्या हो जाय!!'

नन्दबाबा ने व्रजेश्वरी से सलाह की। कोई समुचित मार्ग माता को भी सूझ नहीं पड़ा। अन्त में बाबा ने स्वयं ही सोचा। श्यामसुन्दर को पुचकार गोद में बैठाया। बड़े स्नेह से कहा—'कृष्णचन्द्र, तू गायें चराना चाहता है?'

'हाँ, मैं गायें चराऊँगा! सब-की-सब गायें!'

'देख, गोप बड़े हैं, वे बड़ी-बड़ी गायें चराते हैं। तू छोटा है, तू छोटे बछड़े चराया कर!'

'हाँ, हाँ, मैं बछड़े ही चराऊँगा!' कन्हैया बड़ा प्रसन्न हुआ। अभी तक उसे यह बात क्यों नहीं सूझी। गायों की अपेक्षा चञ्चल बछड़ों से उसकी मित्रता अधिक है। 'कल से ही चराऊँगा!'

'मैं महर्षि से मुहूर्त पूछ लूँ! पूजन करके बछड़ों को चराना प्रारम्भ करना चाहिये!' बाबा ने समझाया और सचमुच महर्षि से पूछकर मुहूर्त निश्चित कर दिया। 'बछड़े माता के स्नेह से गोष्ठ में ही आया करेंगे। वे वैसे भी दूर नहीं जायँगे। गौ तो आराध्य देवता हैं व्रज की। उनकी सेवा-रुचि श्लाघ्य है। बालक का उत्साह भङ्ग नहीं करना चाहिये!' बाबा ने अपना समाधान कर लिया। श्यामसुन्दर के भरे दृग एवं हठ से वे बाध्य हुए।

माता को संतोष कैसे हो। 'कन्हैया अभी है ही कितना बड़ा। बछड़े बड़े चञ्चल होते हैं। उनका क्या ठिकाना कि किधर कूदते-फाँदते निकल भागें। उनका श्याम बहुत सीधा है, लड़के उसे दौड़ा-दौड़ा कर थका देंगे। कोई उसे चिढ़ायेगा तो वह रोने लगेगा। कहीं दूर निकल गया तो—खेल में लगने पर उसे भूख-प्यास का स्मरण ही नहीं रहता। वन में अनेक प्रकार के फल हैं—बच्चों का क्या ठिकाना। उन्हें कच्चे-पक्के फलों की न पहिचान होती, न चिन्ता। कहीं कोई न खाने योग्य फल खा लिया और हानि हुई—! कंकड़ हैं, काँटे हैं, धूप है! तीव्र वायु में शीत लगने का भी भय है। खेलते-खेलते धूप में सीधे जल पी लेना तो बच्चों के लिये स्वाभाविक ही है।' मैया की आशङ्काओं का कहीं अन्त नहीं है; 'किन्तु किया क्या जाय, कन्हैया हठ जो किये बैठा है। वह बड़ा हठी है। एक बार जो धुन चढ़ी-सो-चढ़ी। अपनी बात पूरी ही करके रहेगा। व्रजराज ने मुहूर्त भी निश्चित ही कर दिया है। अब बाधा देने का कोई अर्थ नहीं।'

× × × ×

आज श्यामसुन्दर बछड़े चराने प्रारम्भ करेगा! नन्दभवन में उत्साह का पारावार उमड़ आया है। नन्दव्रज के अतिरिक्त बरसाना भी आज वहीं आ गया है। अन्तःपुर में नारियों और बाहर गोपों की भीड़ है। महर्षि शाण्डिल्य ब्राह्मणों को साथ लेकर पूजन-यज्ञ में व्यस्त हैं। वेदियों पर नवग्रह, सर्वतोभद्र, नक्षत्र, योगिनी आदि के मण्डलअक्षत, मसूरिकान्न, चने की दाल, तिल आदि से बने हैं, उसका पूजन हो चुका है। दिग्पालों का पूजन हुआ। कलशों पर प्रदीप प्रज्वलित हुये अरणि-मन्थन के पश्चात् अग्नि में सस्वर मन्त्र पाठ से आहुतियाँ पड़ती रहीं। बाबा ही इन कृत्यों में यजमान हैं। अन्त में अपने बछड़े के साथ कपिला आयी और तब महर्षि ने श्यामसुन्दर का आह्वान किया।

बाहर गोप परस्पर अक्षत-चन्दन-दधि का एक दूसरे को तिलक कर रहे हैं। गोपियाँ मङ्गल-गान कर रही हैं। उन्होंने अपने उपहार नन्दरानी को निवेदित कर दिये हैं। व्रज में व्रजराजकुमार आज गो-चारण प्रारम्भ करेंगे। गोपजाति के लिये इससे अधिक महत्त्व का और कौन-सा समय हो सकता है। नट, नर्तक, वन्दी—सभी अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं। तरुण गोप लाठियों, भालों, कृपाणों के परस्पर कृत्रिम युद्धकौतुक में लगे हैं। अनेक प्रकार की कलाओं का प्रदर्शन चल रहा है यहाँ। गोपियाँ अन्तःपुरमें गायन करतीं, नाचतीं और अनेक प्रकार के विनोद करने में मग्न थीं।

श्यामसुन्दर की उमंग का क्या पूछना। आज वह दाऊ भैया का हाथ ही नहीं छोड़ रहा है। दोनों भाइयों को नन्दगाँव एवं बरसाने की संयुक्त बालमण्डली ने घेर रक्खा है। कभी आँगन में, कभी बाहर और कभी यज्ञमण्डप में—यह मण्डली एक स्थान पर स्थिर होना जानती ही नहीं। सभी बालकों का माताओं ने भरपूर शृङ्गार किया है। सबने नवीन वस्त्र धारण कर रक्खे हैं और सभी स्वर्णजटित मणि-मय अलंकारों से आभूषित हैं। दोनों माताओं ने किसी प्रकार राम श्याम को स्नेह से पकड़कर स्नान कराया, शृङ्गार किया उनका।

महर्षि ने श्यामसुन्दर को यज्ञमण्डप में बुलवाया। गोपियों का पूरा समुदाय यज्ञमण्डप में एक ओर एकत्र हो गया। गोपगणों ने भी सारे प्रदर्शन बंद किये और सब यज्ञमण्डप में आ गये। वाद्यों ने अपना स्वर उच्च-मधुर-मधुरतर किया। शङ्खनाद के साथ विप्रों का वेदपाठ और उच्चतर हो उठा। श्रीनन्दरानी व्रजराज के वामभाग में आ विराजीं। श्यामसुन्दर माता की गोद में बैठ गये। स्वस्तिवाचन चलने लगा।

कन्हैया जैसे सदासे गोपूजन करता आया हो। महर्षि मन्त्रपाठ कर रहे हैं। कोई कुछ बताये, इससे पूर्व ही श्यामसुन्दर ने उठकर गौमाता को अर्घ्य दिया—चरण धोये। बाबा ने चाहा कि गोद में उठाकर शृङ्गों पर जल चढ़ाने की सुविधा कर दें; किंतु जैसे ही जलपात्र उन नन्हे हाथों में उठा, कामदा ने मस्तक नीचे कर दिया। शृङ्गों पर जल चढ़ा, मस्तक पर तिलक करके अक्षत

लगा और पुष्पमाल्य पहिनायी गयी ! कपिला शान्तभाव से श्यामसुन्दर के अरुण मृदुल करों की पूजा ले रही है। श्रीकृष्ण भी पूजा के मध्य में बार-बार मुड़कर बाबा के मुख की ओर देख लेता है कि 'ठीक क्रम चल रहा है न ? कहीं भूल तो नहीं हो रही है ?' बाबा प्रोत्साहन दे रहे हैं। महर्षि का मन्त्रपाठ गद्‌गद स्वरों में चल रहा है। उनके नेत्र उस नीलोज्ज्वल मूर्ति से हटते ही नहीं। विधि-निर्देश वे कर भी सकते हैं या नहीं—इस समय यह संदिग्ध हो गया है।

गोपूजन के साथ ही बछड़े का पूजन हुआ। उस चञ्चल ने भी चुपचाप पूजा स्वीकार कर ली। न तो उछला और न इधर-उधर हुआ। अवश्य ही बार-बार वह श्यामसुन्दर के हाथों को सूँघ लेता था और जब कन्हैया ने उसे पुष्प-माल्य पहिनाया, बड़ी प्रसन्नता से मस्तक हिलाया उसने। जैसे उस माला से उसकी शोभा कितनी बढ़ गयी है, इसका उसे अनुभव हुआ है।

वृषभ-पूजन—वृषभ तो साक्षात् धर्म ही है न ? वह उज्ज्वल, पर्वतशिखर-सा उत्तुङ्ग, सुचिक्कण वृषभ। कौन जाने भगवान् शंकर का नन्दी ही आ बैठा हो तो—नन्दी इतना उज्ज्वल, इतना उच्च, इतना सुचिक्कण है, संदेह ही है। कन्हैया का सबसे प्रिय वृषभ है वह—गजराज के समान विशाल और धर्म के समान ही सरल। उनका पूजन तो होना ही चाहिये था।

महर्षि की आज्ञा से गोपों ने समस्त गायों, बछड़ों एवं वृषभों का पूजन किया। गोधन का शृङ्गार तो प्रातः ही हुआ था। सबको पूजन के अनन्तर यवस (भीगा हुआ अन्न) दिया गया। आज जब श्यामसुन्दर वत्सचारण को चलेगा, तभी सम्पूर्ण गोधन अनुगमन करेगा उसका।

पूजन का क्रम चलता रहा—आचार्य का पूजन, ब्राह्मणों का पूजन और अन्त में वृद्ध गोपों का पूजन। महर्षि भावमग्न हैं, बाबा ने चाहा भी कि कन्हैया के स्थान पर वे स्वयं सबका सत्कार कर दें; किंतु श्याम आज स्वयं सबके पूजन को उत्साहित है। माता को लगता है वह थक जायगा; किंतु शास्त्रीय कर्म में बाधा कैसे दी जाय ?'

प्रायः सभी गोपों का चरण-वन्दन कर आया वह और तब गोपियों को अभिवादन करने उनकी ओर गया। विप्र-पत्नियों ने पूजन प्राप्त कर लिया है। अन्त में सखाओं का सत्कार हुआ। सबने अङ्कमाल दी। बाबा ने श्यामसुन्दर के साथ रहकर उसके करों से ब्राह्मणों को गायें, धन, रत्नादि दक्षिणा दिलवायी। गोपों को उपहार मिले। माता ने विप्र-पत्नियों को वस्त्राभरणों से तृप्त किया। गोपियों को उपहारों से आभूषित किया। अन्त में सखाओं का शृङ्गार किया श्यामसुन्दर ने। इतने सखा—कौन जाने कैसे—परंतु उसने किया स्वयं। सबको पटुके, उपवस्त्र, आभूषण देने के पश्चात् महर्षि ने उसे पुनः वेदिका के सम्मुख बुलाया। नट, नर्तकादिकों को बाबा ने इतना पुरस्कार दिया, जिसे माँगने की बात वे सोच तक नहीं सकते थे।

वेत्र-लकुट, मृदुल रज्जु, शृङ्ग और इन सबके साथ एक मुरलिका रक्खी है। महर्षि ने क्रमशः सबका पूजन कराया। हिंदू-संस्कृति में अधिष्ठाता देवता के बिना तो कोई वस्तु होती नहीं और किसी वस्तु के ग्रहण से पूर्व उसके अधिष्ठाता देवता का पूजन होना ही चाहिये। पूजन के पश्चात् बाबा ने लकुट उठाकर श्यामसुन्दर के हाथों में दे दिया। कन्हाई आज इस वेत्र को लेकर गोपाल हुआ। उसने महर्षि तथा पिता के चरणों में प्रणिपात किया। महर्षि ने उसे शृङ्ग दिया, वृद्ध उपनन्दजी ने पाश; और मुरली—वह तो उसी की वस्तु है।

× × × ×

मस्तक पर मयूर-मुकुट, भालपर अक्षताङ्कित कुङ्कुमतिलक, गले में वनमाला, कंधों पर पटुका, कटि की कछनी में मुरलिका, वाम स्कन्ध पर कुण्डलाकार रज्जु, वाम हस्त में शृङ्ग, दक्षिण हस्त में अरुणवर्ण सुन्दर वेत्र, कपोलों पर मणि-कुण्डल झलमला उठे, जब अन्तिम बार अपने पूरे गोपाल वेश में श्यामसुन्दर ने महर्षि को प्रणाम किया।

वेत्र उठा और वह उज्ज्वल बछड़ा संकेत पाकर मण्डप के बाहर की ओर कूद चला। वाद्यों के निनाद ने गगन गुञ्जित कर दिया। शृङ्गनाद के साथ भेरीघोष की भी शङ्खनाद पार करने की

प्रतिद्वन्दिता है। ब्राह्मणों के करों से स्वस्तिपाठ के साथ अक्षत एवं पुष्प पड़ रहे हैं। गोपियों ने लाजा फेंकना प्रारम्भ किया। वृद्ध गोपों ने तथा विप्र-पत्नियों ने आशीर्वाद दिये। सखा अपने-अपने लकुट लेकर साथ चल रहे हैं।

वह अभिजित् मुहूर्त धन्य हो गया। द्वार से बाहर आते ही समस्त बछड़े साथ हो गये। गोप-बालक साथ हैं ही। सुरभियों ने अनुगमन किया और उनके पीछे गोपों को चलना है। आज केवल विधि-निर्वाह करना है; किन्तु श्याम ऐसे उल्लास में है, जैसे उसे सदा गोचारण ही करना है। उसका और काम भी क्या है—है भी तो वह शाश्वत चरवाहा ही।

वत्स-चारण—अद्भुत लगा सबको प्रथम यह संवाद। यह तो कोई प्रथा थी नहीं; किंतु जब श्यामसुन्दर बछड़े चराने जायगा तो दूसरे बालक घरों में रोके जा ही नहीं सकते।

फलतः बरसाने में यह महोत्सव पहिले ही सम्पन्न हो चुका है। नन्द-व्रज में जिन बालकों की अवस्था श्यामसुन्दर से वर्ष भर छोटी भी है, उनका वत्स-संचारण-संस्कार श्यामसुन्दर के साथ ही सम्पन्न हुआ। कोई बालक घर रहना कैसे चाहेगा, जब कि कन्हैया बछड़े चराने जाया करेगा। फलतः आज सखाओं का सम्पूर्ण मण्डल साथ ही है।

ग्राम-सीमा से बाहर तक आकर लौटना है; किंतु मैया को तो वही बहुत कष्टकर हो रहा है। 'पूजन में ही उनका नीलमणि बहुत थक गया है। वह इतनी दूर जाकर तो और श्रान्त हो जायगा। सभी गोप साथ ही गये। कोई है भी नहीं कि उसे भेजें। यह वाद्यध्वनि दूर ही होती जा रही है। व्रजराज को भी क्या सूझा है। वे लौटा क्यों नहीं लाते मोहन को। कहाँ तक जायँगे ये लोग!' वे द्वारपर से इस प्रकार नेत्र लगाये हैं मार्ग की ओर, जैसे युगों के पश्चात् उनका पुत्र लौटनेवाला है। वे ही क्यों, सभी गोपियों की तो यही दशा है। मार्ग में, ग्राम में आज कोई नहीं है। किसी का संकोच न होने से गोपियों का समूह मङ्गल-गान करता हुआ ग्राम-सीमा तक पीछे-पीछे चला आया है। गोप आगे बढ़ गये, अतः ग्राम-सीमा पर रुक जाना पड़ा इस समूह को। सबके मनमें एक ही बात है—'क्यों ये सब लोग आज श्याम सुन्दर को थकाये डालते हैं। लौट क्यों नहीं आते। कहाँ तक जायँगे ?'

वाद्य दो भागों में विभक्त हुए। गोपों ने मार्ग के इधर-उधर खड़े होकर मध्य में स्थान प्रशस्त किया। विप्र-वर्ग भी दोनों ओर हट गया। श्यामसुन्दर लौट रहा है। सहस्रों रङ्ग-विरङ्ग उछलते हुए बछड़े, बार-बार वे पीछे को ही लौटते हैं। अपने अद्भुत चरवाहे को छोड़कर उन्हें जैसे और कुछ नहीं देखना है। उससे अधिक दर्शनीय विश्वमें और है भी क्या। जब वह अपना लकुट उठाता है, बछड़े उस लकुट को ही सूँघने लगते हैं। वे जान लेना चाहते हैं कि यह भी कोई हमारे चाट लेने योग्य वस्तु है या नहीं। कन्हैया उल्लसित है, प्रसन्न है; किंतु अवश्य थक गया है। मुख पर अरुणिमा आ गयी है। भाल पर स्वेदकण झलक उठे हैं।' सखाओं के समूह के साथ वह चला आ रहा है। दाऊ उसके दाहिने हैं, श्रीदामा बायें, सुबल और भद्र दोनों उससे लगे हुए पीछे चल रहे हैं। शतशः बालक हैं प्रसन्न, चपल, उल्लसित।

बच्चों के पीछे गौओं का समूह है। गोपों ने चाहा कि गायों को चराने के लिये हाँक ले जायँ, किंतु वे सफल न हुए। गायें श्याम के साथ ही भाग आती थीं। विवशतः लौटना पड़ा। उनके खुरों से उठी गोरज ने श्याम की अलकों को तनिक धूसर कर दिया है। गायें बार-बार हुम्भा करती हैं, एक-एक आगे को दृष्टि लगाये है और मार्ग तो जाते समय ही उनके स्तनों से प्रवाहित होती दुग्धधारा से सिंचित हो चुका है; अब तो वे उसे कर्दममय करती आ रही हैं। विप्रों के सम्मुख आकर श्यामसुन्दर ने मस्तक झुकाया। स्वस्तिवाचन के साथ अक्षत फेंकते उनके हाथ आशीर्वाद देने को उठे। तपःपूत इतने करों की छाया में वह चला आ रहा है। गोपों ने पुष्प वर्षाये और वाद्यों में द्विगुणित ध्वनि हुई। बाबा विप्रवर्ग के पीछे आ रहे हैं। गौओं के पीछे तरुण गोप-वृन्द, उसके पीछे महर्षि शाण्डिल्य के साथ विप्र-वृन्द और उनके पीछे व्रजराज श्रीवृषभानुजी के साथ। सब से

पीछे वाद्य, नट, नर्तकादि और ग्राम-सीमा में मङ्गलगान के साथ गोपियों का समूह पुनः पीछे-पीछे नन्दभवन की ओर चलने लगा।

विप्रों का सामगान, गोपों के शृङ्ग एवं शङ्खनाद और भेरी, नफीरी आदि की गगनभेदी ध्वनि; किंतु गायों और बछड़ों ने उधर ध्यान तक नहीं दिया। वे तो गृह-पशु हैं. ध्यान तो उधर नहीं दिया कपियों ने, पक्षियों ने और मृगों ने। वन-पशु वन-सीमा पर शान्त खड़े रहे इस गोचारण के भव्य दृश्य को देखते। पक्षी और कपि तो गगन एवं भवनों पर उड़ते-उछलते साथ-साथ आये।

श्यामसुन्दर ने गोष्ठ में प्रवेश किया। गोष्ठ-पूजन की समस्त सामग्री प्रस्तुत ही है। माता रोहिणीजी ने उसे स्वयं सज्जित कराया है। महर्षि ने आते ही पूजन सम्पन्न कराया। श्यामसुन्दर ने पुनः गौ, गोवत्स एवं वृषभों का पूजन किया और तब भवन में गया।

'आज बहुत विलम्ब हो गया—श्यामसुन्दर क्षुधित होगा!' मैया को तो कब से यही चिन्ता है। मोहन ने भी आते ही कहा—'मैया, भूख लगी है!' दाऊ भैया के साथ समस्त सखाओं की मण्डली में बैठकर भोजन करने का यह प्रथम ही अवसर है—अन्यथा बरसाने का सखासमूह संकोच किया करता है यहाँ भोजन करने में। कौन जाने इस सुयोग ने ही क्षुधा बढ़ा दी है या और कुछ......।

श्यामसुन्दर ने सबके साथ, उछलते-कूदते, हँसते-हँसाते भोजन किया। वह भोजन भी करता है और परसने में भी मैया के साथ लग जाता है। चल रहा है यह आनन्द!

बाबा को तो आज अवकाश ही नहीं। ब्राह्मण-भोजन, गोपसमूह का सहभोज और फिर महोत्सव तो रात्रि भर चलता रहेगा।

—❀:⁐:❀:⁐:❀—

वेणु-वादन

"वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥"

—श्रीमधुसूदन सरस्वती

मोहन मुरली बजा रहा है—वह तो बजाता ही रहता है। श्याम का वंशीरव क्या कभी विरत होता है। नित्य-चिरन्तन एकरस गूँजता है वह ध्वनि। उस वेणु-वादक को कार्य भी क्या है। वह ध्वनि—वह आकाश का तन्मात्रारूप शब्द तो है नहीं कि उसे सामान्य कान सुनें या यन्त्र पकड़ें, वह तो स्थूल-सूक्ष्म-कारण से परे और तीनों को झकृत करता गूँजनवाला नाद है। प्रणव के ऊपर अर्धमात्रारूप में तो चन्द्राकार उसकी छाया आती है। भावशुद्ध हृदय, उत्कण्ठा-निर्मल कर्ण उससे परिपूत होते हैं।

मोहन मुरली बजा रहा है—कब से? कैसे? सो कुछ नहीं। वह तो बजाता ही रहता है। सुननेवाले ही सुनते हैं उसे और जो सुनते हैं—उनकी बात वे ही जानते हैं; पर इतना ठीक कि फिर वे और कुछ सुनना भी चाहेंगे—ऐसी आशा नहीं करनी चाहिये।

मोहन मुरली बजा रहा है—वह चिरचञ्चल अधरों पर जब इस वेणु खण्ड को रख लेता है, स्वयं स्थिर हो जाता है—शान्त, निस्पन्द। थिरकनी हैं उसकी पल्लवमृदुल अङ्गुलियाँ मात्र और स्वर की लहरियों पर तो ब्रह्माण्ड का अणु-अणु थिरकता है। प्रत्येक परमाणु उसी लहरी पर ही तो थिरक रहा है।

श्याम की वंशी-ध्वनि—वह साकार नीलोज्ज्वल ज्योतिर्मय सुकुमार ब्रह्म—और तब तो एक पशु पाषाण भी ऋषि हो जाता है। श्रुति जो नाद-ब्रह्म कहती है, उसका अर्थ प्रत्यक्ष दर्शन कर ले कोई भी। मुरली की यह ध्वनि—यही तो नाद-ब्रह्म है। उसे मोहन को छोड़कर कौन दूसरा व्यक्त कर सकता है।

श्रीवृन्दावन में तमाल के सघन तरु के नीचे—तमाल या फिर कदम्ब अथवा नीप की छाया ही उसे पसंद है। यहाँ तो आक-ढाक भी इस दिव्य-भूमि में अपवर्ग तक देने में समर्थ हैं, फिर उस अमरावती के कल्पतरु को पूछे कौन। हाँ—तो कन्हैया किसी सघन तमाल के मूल से टिककर, ललित त्रिभङ्गी से स्थित, अधरों पर मुरली रक्खे उस नाद-ब्रह्म को नित्य ही मूर्तिमान किये रहता है। बड़ी भव्य है वह उस व्रजेन्द्रनन्दन की छटा—

अंसालम्बितवामकुण्डलधरं मन्दोन्नतभ्रूलतं
किंचित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचीप्रसारेक्षणम्।
आलोलाङ्गुलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा
मूले कल्पतरोस्त्रिभङ्गललितं ध्यायेज्जगन्मोहनम् ॥

—श्रीलीलाशुक

वह ललित त्रिभङ्गी से खड़ी है व्रज-सौभाग्य की पावन मूर्ति, वह वामस्कन्ध पर कुण्डल टिका है और वे मन्दोन्नत भ्रूलतिकाएँ—वे क्या एक बार हृदय में आ जायँ तो फिर निकलनेवाली हैं। सुदीर्घ लोचन कुछ झुक गये हैं और कोमल पतले-पतले लाल-लाल ओष्ठ को सिकुड़ाकर वे मुरली के छिद्रों को स्वरपूरित करने में लगे हैं। पल्लवमृदुल अङ्गुलियाँ छिद्रों पर कैसी फुरक रही हैं और कितना आनन्द-मग्न है यह श्याम! यह त्रिभुवन-सुन्दर, जगन्मोहन व्रजेन्द्रनन्दन तमालमूल में खड़ा ध्यान में ही आ जाय—आ जाय एक क्षण को—और—और—

'लोकानुद्धरयन् श्रुतीर्मुखरयन्क्षोणीरुहान्हर्षयन्
शैलान्विद्रवयन्मृगान्विवशयन्गोवृन्दमानन्दयन् ।
गोपान्संभ्रमयन्मुनीन्मुकुलयन्सप्तस्वराञ्जृम्भयन्
ओंकारार्थमुदीरयन्विजयते वंशीनिनादः शिशोः ॥'

—श्रीलीलाशुक

प्राणों में, मन में, अन्तर में उस शिशु का वह वंशी-निनाद ही विजयी हो—वही, एकमात्र वही विजयी हो।

वेणु-वादन का वह चिरव्यसनी नवजलधरसुन्दर इस धराधाम पर, इसी अभी बीते द्वापर के अन्त में, अपने ही वृन्दावन में, अपने नित्य सहचरों के मध्य घूम करता व्यक्त हो गया था और फिर वंशी—भला, उस अधरों पर लगाये बिना वह क्या रह सकता है।

'भद्र! आ, तुझे वंशी बजाना सिखा दूँ।' यही एक ऐसा काम है, जिसमें कोई सखा श्याम की समता नहीं कर सकता। नहीं तो और सब बातों में तो कन्हैया से सब अपने को बड़ा ही मानते हैं। यह फूल-सा सुकुमार कनूँ उनसे दुर्बल तो है ही। न वह उनके बराबर दौड़ सकता, न मल्ल-युद्ध में उन्हें जीत सकता और न शृङ्ग ही उनके समान बजा सकता। जब वह शृङ्ग फूँकता है, उसका शृङ्ग भी वंशी के समान लहराता-सा बजता है। कोई भी सुनते ही पहिचान लेगा कि यह तो श्याम की शृङ्ग-ध्वनि है। वृद्ध संनन्दबाबा कहते हैं, 'श्रीकृष्ण के मुख से लगकर शृङ्ग भी सुरीला हो जाता है।' यह भी कोई सुरीलापन है—जैसे फूँक ही पूरी नहीं मिलती शृङ्ग को।

'यह पीं-पीं मेरे बस की बात नहीं!' भद्र भला, क्या मुरली बजायेगा। उससे, कहो तो वह बाबा का बड़ा शङ्ख उठाकर अवश्य फूँक सकता है। बाबा का शङ्ख दाऊ को छोड़कर सखाओं में केवल वही तो बजा पाता है और है भी उसे शङ्ख की गुरु गम्भीर ध्वनि ही प्रिय। वह क्यों सीखे वंशी बजाना। 'छोकरियों की भाँति नाचना और इस जरा-सी वंशी को लेकर चीं-चीं, पीं-पीं करना तुझे ही भला लगता है।' उसने चिढ़ा दिया।

'तू बजा भी तो!' बालकों के साथ श्याम भी हँसते-हँसते दुहरा हुआ जाता है। वह भद्र को तंग करने का यह अच्छा ढंग पा गया।

'यह मेरे बस का रोग नहीं। तू कहता है तो ले!' भद्र ने मुरली के बदले कटिवस्त्र से अपना शृङ्ग निकालकर मुख में लगा लिया। धूतू, धूतू, धू, धू, यह तो मानना ही होगा कि भद्र के समान गुरु गम्भीर शृङ्ग-नाद कोई तरुण गोप ही कर सकता है।

'ना, मुरली बजानी पड़ेगी तुझे।' कन्हैया ने शृङ्ग झपट लिया भद्र के हाथ से और मुख बनाया। मुरली भद्र के हाथों में देकर उसने अपने ही हाथ से उसके मुख पर लगा दी।

भद्र और मुरली! भला, क्या सामञ्जस्य है इसका। उसने सभी छिद्र अङ्गुलियों से बंद करके फूँका तो स्वर ही नहीं निकला। झुँझलाकर उसने सब छिद्र खुले छोड़ दिये और पूरे बल से फूँक मार दी, जैसे यह भी शङ्ख या शृङ्ग हो। एक सीटी-सी बज गयी। सखाओं ने तालियाँ बजायीं और यह श्याम तो हँसते-हँसते लोट-पोट ही हो रहा है।

'ले, अब तू बजा तो! मुझसे जोर से बजा दे तो जानूँ!' भद्र ने वंशी श्रीकृष्ण के करों में दी और दोनों हाथों से उसे उठाकर खड़ा कर दिया। उस नित्य मुरली-मनोहर ने वंशी सम्हाल ली दोनों करों में। वनराजि झूम उठी। कपिदल समीप कूद आया। गायों ने कर्ण उठाये। मृग, मयूर—सब पशु-पक्षी अपनी क्रीड़ा छोड़कर उन्मुख हो गये एक क्षण में। 'श्याम वंशी बजाने जा रहा है!'

सघन फलभार से झुके तरु, पुष्पगुच्छों से झुकी झूमती उन तरुओं से लिपटी लताएँ और उनके मध्य यह अति सघन नील तमाल—सुरपादप कैसे समता कर सकता है इसकी। मयूर, शुक, पिक आदि पक्षी उसपर, समीप के पादपों पर एकत्र हो गये हैं। वनपशु और गायें सब एक साथ वृहत् यूथ बन गयी हैं। सबके नेत्र लगे हैं तमाल की ओर। सहस्रों सखाओं से घिरा वह नव-

जलधर-सुन्दर, विद्युद्वसन मुरली बजाने जा रहा है। वंशी बजायेगा अब वह! सब उत्कर्ण हैं, सबके प्राण कर्णों में ही जैसे आ गये हों।

यह झुका मयूरमुकुट, ये लहरायीं अलकें और ये दीर्घ पलकें अर्धनिद्र-सी हुयीं। वाम कुण्डल कंधे पर और दाहिना कुण्डल कपोलकण्ठ-संधि पर स्थिर हो गया, जैसे इन्दीवर के नीलदल पर दो स्वर्ण-भृङ्ग मधुपान-मत्त होकर सो गये हों। गोरोचन की खौर और उसके मध्य यह अरुण कुङ्कुम-तिलक, काली रेखा-सी कुटिल भृकुटियाँ और कपोलों पर ये जो सखाओं ने श्वेत धातु के कुसुमचित्र अङ्कित कर दिये हैं, इन्हें देख पायें, वे ही नेत्र सच्चे नेत्र हैं।

ये पलकों से झाँकते अरुणाभ विशाल लोचन और पलकें, सुकुमार, इन्द्रवधूटी-से अरुणाभ अधर-पल्लव कैसे आकुञ्चित हो गये हैं। धन्य है यह वेणु-खण्ड। अधरों की अरुणाभा से अलंकृत हो गया है वह और उसके छिद्रों को नन्ही पतली कुसुम-कलिका-सी कोमल लाल-लाल अङ्गुलियों ने आच्छादित कर लिया।

स्वर्णाङ्गदभूषित, मणिकङ्कणसज्जित, कुसुमदाममण्डित, धातुचित्रखचित ये श्याम भुजाएँ और ये विशाल स्कन्ध! कम्बुकण्ठ कुछ तिरछा कितना मनोहारी है। वनमाल, मुक्तामाल, कौस्तुभ, गुञ्जामाल और सखाओं की यह दल, तुलसी, वनकुसुमों की माला, ऊपर से पटुका! भला कितना भार सम्हाले यह कोमल कण्ठ, कदाचित् इसी से झुक गया है और वक्ष—यह विशाल वक्ष तो ढक-सा गया है; बस, यह तनिक-सी वाम वक्ष की स्वर्णिम रोमराजि झलकती है! देखने योग्य है यह त्रिवलीयुक्त नाभि! पीताम्बर पर कसी यह अरुण कछनी और आगे—मुनिजनमानस-मराल, शंकरहृदयधन ये अरुण चरण, यह शत-शत-चन्द्रद्युति-निन्दक नख-मणिज्योति।

हरित दूर्वादल पर ललित त्रिभङ्गी से सज्जित ये पल्लव-मृदुल, किंशुक-अरुण चरण........! पीताम्बर मन्द-मन्द लहरा रहा है, अलकों में सखाओं ने ढेर-से सुमन उलझा दिये हैं, मयूरपिच्छ में स्पन्दन-सा है और श्याम—यह चिरचञ्चल स्थिर हो गया है—शान्त, स्थिर। ये अङ्गुलियाँ हिलीं, ये अधर लगे छिद्र से और यह ध्वनि—वंशीध्वनि—कान्ह वंशी बजा रहा है।

× × × ×

मोहन मुरली बजा रहा है—मुरली की स्वरलहरी—जैसे सृष्टि के प्राण एकाकार हो गये हैं उसमें। श्रवण में, मन में, प्राण में, हृदय के अन्तरतम प्रान्त में और शरीर में, रोम-रोम में, समस्त सचराचर जगत् में वही एक स्वर, एक ध्वनि गूँज रही है सबको आत्मसात् करके।

बालक—ये तो श्याम के सहचर हैं। कन्हैया पता नहीं मुनियों के मानस में बहुत प्रयत्न करने पर कुछ क्षण को आता भी है या नहीं, परंतु इसमें तो संदेह ही नहीं कि ये सब इस इन्दीवर-दल-श्याम के हृदय में ही नित्य निवास करते हैं। इनकी भावस्थिति का वर्णन कर सके, इतनी शक्ति तो शारदा में भी नहीं है। जैसे किसी कुशल कलाकार ने सहस्रों मूर्तियाँ बनाकर नाना भङ्गियों में सजा दी हों, स्थिर! शान्त! निस्पन्द! अपलक नेत्रों से अजस्र धाराएँ चल रही हैं और धाराएँ तो चल रही हैं उनके रोम-रोम से। अश्रु एवं स्वेद के इस पावन प्रवाह में ये सब भीग गये हैं—भीग गये हैं उनके वस्त्र और मन—मन की बात कौन करे। स्रष्टा का मन भी तो इनके अन्तर को झाँकने में समर्थ नहीं।

गायें—उनके कान खड़े हैं, मुख में लिया तृण ज्यों-का-त्यों है और ज्यों-का-त्यों है उनका शरीर। उनके नेत्र भी झर रहे हैं और झर रही हैं उनके स्तनों से उज्ज्वल धाराएँ। यह भेद भी आज नहीं रह गया है कि किसने बच्चे दिये हैं और कौन देनेवाली हैं। बछड़ियों के स्तनों से भी जब यह हृदय का शुद्ध सत्व उज्ज्वल धारा बनकर प्रवाहित हो रहा है, तो गायों की चर्चा कौन करे। बछड़ों ने माता के स्तनों से मुख लगाया था। मुरली ध्वनित हुई, कान खड़े हुए, मुख के दोनों ओर से वह बह चला मुख का दूध। उसे पी लेने के लिये क्या अब प्राण रहे हैं उनके देह में? प्राण तो कर्णों में आ बैठे हैं।

काक ने अपने शावक के मुख में चोंच दी थी चारा देने के लिये, शावक के चञ्चु खुले रह गये, काक की चोंच वहीं पड़ी है, चारा—वह वहीं स्थिर है। शुक ने पंख फैलाये थे दूसरी डाल पर बैठने के लिये, वे फैले रह गये हैं उसके पंख। मृग ने अगला बायाँ पैर उठाया था कि मुख खुजला ले, वह रहा पैर; न नीचे आया, न मुख से लग सका; बीच में उठा-का-उठा रह गया। वह कपि कदाचित् कूदना चाहता था, कैसा कूदने की मुद्रा में स्थिर है। जैसे किसी ने एक साथ वनभूमि के समस्त प्राणियों को वे जैसे थे, उसी रूप में स्थिर कर दिया हो, उनकी चेतना पृथक् करके। पुष्पों पर पंख फैला कर उड़ने को उद्यत भ्रमर, तृणों पर आधे लटके लघुकीट से लेकर मृग, शशक, व्याघ्र, केहरी—सब पशु-पक्षी शान्त, स्थिर, चित्र की भाँति हो रहे हैं। गति का नाम नहीं है किसी में। सबके नेत्रों से अश्रु चल रहे हैं और यही प्रेमाश्रु एकमात्र सूचित करते हैं कि उनमें जीवन है।

मोहन मुरली बजा रहा है! मुरली का अमृत-नाद—तरुओं के तनों से मधु-धाराएँ चल रही हैं। तनों से ही नहीं, शाखाओं से, टहनियों से, पत्तों से, कोंपलों से भी रसस्राव हो रहा है। धाराएँ चलती हैंशाखाओं से और पत्ते-पत्ते टपकते हैं। वृक्षों में भी रोमाञ्च होता है? मनुष्य, गौ, मृग, पक्षी आदि चेतन प्राणियों के रोम-रोम कदम्ब की भाँति पुष्पित हो उठे हैं, यह तो समझ में आने की बात है; किंतु ये तृण, ये क्षुप, ये वीरुध, ये लताएँ, ये वृक्ष, इनको भी रोमाञ्च होता है? यह जो उनके शरीर पर काँटों का जाल-सा सहसा प्रकट हो गया है और तब यह रस-स्राव—इनसे भी प्रेमाश्रु चल रहे हैं? यह मुरली जो बज रही है।

तृण-तरुओं में चेतना तो होती है, अन्तश्चेतना सही। वंशी के स्वर ने जब समाधि में स्थित जन एवं तपोलोक के महापुरुषों की अन्तश्चेतना को उत्थित कर दिया है, जब अपने कमलासन पर वृद्ध पितामह और उनके परम ज्ञानी, नित्य ब्रह्मलीन सनकादि पुत्र, भृगु जैसे महर्षिश्रेष्ठ, लोमश-जैसे नित्य, कालातीत भी चञ्चल हो गये हैं, उझककर नीचे देखते हैं, सिर झुकाकर सोचते हैं—यह कौनसी शक्ति है जो उनके सहज समाधि के नित्य अभ्यस्त मानस को बलात् खींच रही है, प्रयत्न करने पर भी स्थिर नहीं हो पाते, और जब वे—वे चले आ रहे हैं इस वंशीध्वनि की रज्जु में बंधे, विवश, खिंचते-से अस्त-व्यस्त अपने वाहनों पर विराजमान तो इन तरुओं की अन्तश्चेतना को मुरली ने जगा ही दिया—क्या बड़ी बात हो गयी; लेकिन ये पर्वत, ये पाषाण—ये तो पूर्णतः जड हैं। इनमें तो चेतना ही नहीं; पर—पर ये तो जैसे पूरे ही पिघल जायँगे। इनसे तो जल के शतशः प्रवाह फूट पड़े हैं। नन्हा-सा कंकड़ भी आज निर्झर का उद्गम बनने की स्पर्धा में है। कोई इस समय यदि किसी कंकड़ या पाषाण को स्पर्श करे—कोई नहीं कह सकता कि वह नवनीत से अधिक मृदुल नहीं है।

कालिन्दी—आज क्या कालिन्दी अपने समस्त कमल यहीं एकत्र कर लेंगी। कितनी उत्तुङ्ग हिलोरें उठ रही हैं उनमें! यह क्या—यह हो क्या रहा है, उनके प्रवाह की गति क्या नीचे से ऊपर को उलटी चल रही है? नीचे की ओर से ये ढेर-के-ढेर रङ्ग-विरङ्गे कमल, पुण्डरीक, इन्दीवर, शतपत्र, कह्लार एवं कुमद कैसे बहते चले आ रहे हैं यहाँ? यमुना की ये उत्ताल तरङ्गें--समुद्र के समान इतनी ऊँची तरङ्गें कभी किसी सरिता में उठ सकती हैं—कौन विश्वास करेगा। आज कालिन्दी अपने समस्त सुमन अपने आराध्य चरणों पर चढ़ाकर ही रहेंगी। अपनी तरङ्गबाहुओं को दीर्घ, दीर्घतर बढ़ाती वे ढेर-के-ढेर पुष्प उसी तमाल मूल में स्थित मुरलीधारी के श्रीचरणों को लक्ष्य करके ही तो उत्सर्ग करती जा रही हैं।

गति—गति तो आज जैसे मुरली ने चेतन से लेकर गतिहीनों को दे दी है। यमुना का प्रवाह उलटी दिशा में ही तरङ्गित है। वायुदेव उस मयूरमुकुटी के मयूर-पिच्छ तथा वस्त्रों में मन्द स्पन्दन करके ही थकित हो रहे हैं, द्रवित हो रहे हैं। तरु एवं पाषाण और पक्षी, पशु आदि समस्त प्राणी मूर्ति बन गये हैं। एक पल्लव भी हिलता नहीं।

मुरली बज रही है—बज रही है मुरली और रसस्राव हो रहा है उस रसमयी सुधा के स्पर्श से समस्त जड-चेतन के द्वारा। अश्रु, स्वेद, मधु—सबने एकाकार होकर सम्पूर्ण भूमि को,

समस्त धरातल को रस-पिच्छल बना दिया है। रोमाञ्च—पशु, पक्षी, कीट, भृङ्ग के रोमाञ्च की चर्चा ही व्यर्थ है, रोमाञ्च तो हो आया है इस सर्वसहा धरा को। यह एक-एक तृण ऊपर उठ गया है। एक दूर्वा की एक पत्ती तक झुकी नहीं है। यह रोमाञ्च ही तो है धरा का।

श्याम—यह चिर-चञ्चल स्थिर हो गया है, मुरली जो बजा रहा है यह। शान्त, स्थिर—त्रिवली में मन्द मन्द गति होती है, छिद्रों पर अँगुलियाँ फुदक रही हैं, मयूर-पिच्छ तनिक तनिक हिलता है, पीतपट स्पन्दित होता है और मोहन—इसे जैसे कुछ पता नहीं, यह तो निमग्न है अपने राग में सचराचर को निमग्न करके। बड़ी-बड़ी पलकें झुक गयी हैं, किञ्चित् अरुणाभ लोचन कमल-कोरकों की भाँति केवल मुरलिका को देखते हैं, कुञ्चित पल्लव-मृदु अधरों की अरुणाभा वेणु में प्रतिफलित हो रही है।

यह श्याम अङ्ग, यह इस श्रीअङ्ग की नीलोज्ज्वल द्युति और इस द्युति से स्नात यह स्वर्ण-पीत पीताम्बर, वनमाला, रत्नाभरण, मुक्ता-माल, पुष्प-दाम, धातु-चित्र सबके वर्ण विचित्र हो गये हैं। सब कन्हैया को भूषित करने के बदले स्वयं भूषित हो उठे हैं उसकी कान्ति से और यह कन्हैया—इसे भी क्या और कुछ काम है। यह तो मुरली बजाता है। बजाया ही करता है। इसी ललित त्रिभङ्गी से, ऐसे ही तमाल-मूल से टिका, यह वंशी ही बजाया करता है।

—❀⊂❀⊂❀—
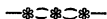
वत्सोद्धार

तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।
महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥

—भागवत १० । १३ । ४५

श्यामसुन्दर प्रातः पलक खोलते ही पूछता है—'मैया दाऊ उठा तो नहीं ?' नित्य रात्रि में शयन करते समय माता को सावधान करता है कि उसे शीघ्र जगा दिया जाय; कल की भाँति भूल न हो। किंतु मैया की यह भूल क्या कभी सुधरने की है। श्याम सोचता है—'मैया बहुत शीघ्र भूल जाती है। यह भी कोई बात है कि जब सब सखा द्वार पर आ जायँ, दाऊ भैया हाथ मुँह धोकर उसके समीप आ खड़ा हो, तब उसके नेत्र खुलें। वह सबसे पहिले उठेगा। दाऊ भैया को पता तक नहीं लगने देगा कि कब उठा। चुप-चाप उठकर हाथ-मुख धोकर बछड़े खोल देगा और तब शृङ्ग फूँकेगा। सब सोते से चौंक कर उठेंगे और भागेंगे। बड़ा आनन्द आयेगा।' लेकिन मैया को यह सब कहाँ स्मरण रहता है। वह बार-बार स्मरण कराने पर भी नित्य भूल जाती है। प्रातः बहुत देर से उठाती है उसे। उठते ही हड़बड़ी पड़ती है मोहन को। प्रत्येक कार्य में शीघ्रता करना चाहता है वह।

हाथ-मुख धोकर कलेऊ करने को कन्हैया भला कहीं अकेला बैठ सकता है। मैया जानती है कि यदि सब सखा साथ न बैठेंगे तो मोहन शीघ्रता में कुछ खायेगा ही नहीं। आग्रह करके वे सबको पुचकार कर बैठाती हैं। मैया का स्नेह, उनका अनुरोध, श्याम के संग कलेऊ करनेका सु-अवसर, भला कौन नहीं बैठेगा। कहने को तो सब अपने घरों से कलेऊ करके ही आते हैं; किंतु घर पर क्या कुछ रुचिकर भी लगता है। कन्हैया के साथ मैया के हाथ का नवनीत मिलने की आशा हो तो फिर घर पर पेट कैसे भरे। माताओं की संतुष्टि के लिये मुख जूठा कर लेना ही तो कलेऊ नहीं होता। गोपियाँ भी जानती हैं कि उनके बच्चों को कौन-सा रस लगा है। किसी को न तो आश्चर्य होता और न आपत्ति।

'गोप-बालकों को कलेऊ करने साथ बैठा देने से सखाओं के कारण शीघ्रता करने की आशङ्का तो दूर हो जाती है, किंतु व्रजेश्वर को क्या किया जाय। उन्हें गोदोहन में पता नहीं क्या शीघ्रता रहती है। गौएँ तनिक धीरे-धीरे दुही जायँ तो क्या बिगड़ता है। बछड़े तो सम्भवतः आज-कल दूध पीते ही नहीं। वे दूध पीते तो क्या तनिक भी देर न लगती। यों ही कन्हाई कुछ भोजन नहीं करता, फिर ये सब द्वारतक भाग आते हैं और 'हुम्मा, हुम्मा' करके उसे शीघ्रता करने को उत्सुक बना देते हैं।' माता को कैसे समझाया जाय कि बाबा स्वयं गोदोहन में पर्याप्त विलम्ब करने का प्रयत्न करते हैं। कन्हैया को, दाऊ को, भद्र को वे शीघ्र गोष्ठ से भीतर भेज देते हैं और फिर विलम्ब करने का प्रयत्न करते हैं; बछड़ों को तो सचमुच शीघ्रता रहती है। बाबा को भी संदेह है कि उनके श्रीकृष्णचन्द्र के साथ खेलने की उत्सुकता में वे थनों में एक-दो बार मुख मारकर भाग खड़े होते हैं और यदि द्वार बंद न हो तो सीधे भवन-प्राङ्गण में ही पहुँचें। बड़ी सावधानी से द्वार बंद करा दिया करते हैं।

कलेऊ समाप्त होते ही गोपाल लकुट उठाता है। माता के मुख-हाथ धोने में भी शीघ्रता रहती है। कछनी, पटुका, आभूषण, मयूर-मुकुट, वनमाला, भाल पर गोरोचन की खौर, कुङ्कुम-तिलक और कस्तूरी का बिन्दु—माता का शृङ्गार ही न पूरा हो यदि उसे अवसर मिले। नित्य वह

कुछ-न-कुछ भूलती है, क्रम तो कभी रह नहीं पाता। कन्हैया इतनी शीघ्रता करता है कि उसमें क्रम विस्मृत हुए बिना रहता नहीं। शृङ्ग, लकुट, मुरली सिर के समीप रखकर सोता है। पता नहीं क्यों उसे शङ्का हो गयी है कि कोई उसकी वंशी चुरा लेगा।

माता कभी दाऊ की मनुहार करती हैं, कभी श्रीदामा की और कभी सुबल और भद्र की। 'कन्हैया को दौड़ाना मत! वह नित्य थक जाया करता है। बड़े अच्छे हो तुम लोग, परस्पर झगड़ना मत और चिढ़ाना भी मत। बहुत दूर मत जाया करो। यहीं भवन के सम्मुख तो बहुत तृण हैं। भला, इस सामने के मैदान से हरी-हरी अच्छी दूर्वा कहाँ मिलेगी। यहीं बछड़ों को चरने दो! यहीं बछड़ों को चरने दो। यहीं सब खेलो। बस, उस बड़े वृक्ष से आगे तो जाओ हो नहीं। हाँ—दोपहरी होने से पूर्व ही लौट आना। आजकल धूप तीव्र होने लगी है। वायु उष्ण चलता है।' पता नहीं क्या-क्या समझाना रहता है उन्हें। 'ये बालक हूँ-हाँ तो कर देते हैं; किंतु ध्यान कहाँ देते हैं। बच्चे हैं सब—भूल जाते हैं। एक बात इसीसे तो बार-बार कहनी पड़ती है।'

'कन्हैया तो बहुत चञ्चल है। बहुत सीधा है। खेल में लग जानेपर उसे दूसरा ध्यान ही नहीं रहता। बचपन से ढीठ है। पता नहीं कहाँ जाय, क्या करे। भय तो जैसे उसने जाना ही नहीं।' बार-बार माता समझाती हैं कि वह दूर न जाय और दाऊ का साथ न छोड़े। दाऊ को भी बराबर सावधान करती हैं कि 'वे अपने छोटे भाई को कहीं अकेले न जाने दें। किसी वृक्ष पर कोई चढ़ने का प्रयत्न न करे। यमुनाजी के किनारे भूलकर भी न जाय। प्यास लगते ही सब लोग घर लौट आवें। बछड़े भागकर कहीं जा नहीं सकते, अतः वे भाग भी जायँ तो उनके पीछे दौड़ने की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं घर लौट आवेंगे।' पता नहीं और कितनी आशङ्काएँ, कितनी अत्यावश्यक चेतावनियाँ हैं, पर ये बालक सुनते कहाँ हैं। उन्हें तो बस, खेलने की पड़ी है।

कलेऊ कराके श्यामसुन्दर का मैया शृङ्गार करने में लगती हैं और बालक अपने-अपने बछड़े लाने चल पड़ते हैं। माता को इतनी देर लगती है कि कन्हैया चाहे जितनी शीघ्रता करे; सभी सखाओं के बछड़े द्वार पर आ जाते हैं और जब पुनः सखा आ जाते हैं, तब उनके साथ ही वह भवन से निकल पाता है।

× × × ×

बछड़ों को लेकर दूर जाना न तो सम्भव है और न वैसा करने की आवश्यकता ही है। नन्दग्राम एवं बरसाने का तो अब नाम ही दो रह गया है। दोनों इस प्रकार एक हो गये हैं कि उनकी सीमा का कोई चिन्ह नहीं। जैसे एक ही ग्राम विस्तीर्ण हो गया हो। दोनों के सम्मुख कालिन्दी-कूल के मध्य में तो गोष्ठ ही है। नन्दग्राम के पृष्ठ-भाग में गिरिराज की तराई का समतल भाग बछड़ों के चरने की भूमि है। बछड़े गिरि-शृङ्ग पर तो चढ़ने से रहे और विस्तृत खुला भू-भाग बरसाने से आगे जाने पर प्राप्त होगा। गोपबालक इतनी दूर भला, कहीं जा सकते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह कि घड़ी-घड़ी पर नन्द-भवन से कोई न कोई आकर देख जाया करता है और सावधान कर जाता है कि बछड़े अब और तनिक भी आगे न जायँ। कुछ आगे बछड़े गये हों तो वह लौटा लाता है और दूर भागे बछड़ों को घेरकर एकत्र कर जाता है। बाबा किसी को भेजना थोड़ी देर भूल भी जायँ तो मैया कहाँ भूलती है। उसकी सब इच्छा पूरी हो तो एक व्यक्ति के लौटने से पूर्व ही पता नहीं वह पाँच और भेज चुके या पच्चीस। वह तो बस, एक ही धुन लिये भवन के द्वार तक बार-बार चक्कर लगाती है। 'कोई देख आओ, बालक कहाँ हैं? दूर तो नहीं गये? बछड़े उन्हें हैरान तो नहीं करते? कन्हैया को किसीने चिढ़ाया तो नहीं? अब तो बहुत विलम्ब हो गया। लौटा लाओ सबको। कम-से-कम उन्हें एक बार जल पीने को तो भेज दो!' पुरुष बड़े निष्ठुर होते हैं। कई-कई बार कहने पर तो कहीं एक बार जाते हैं और वह भी केवल समाचार लेकर लौट आते हैं।

'बालक आनन्द से खेल रहे हैं !' माता के मन में यह बात बैठती ही कम है। 'इतनी देर हो गयी, अब तो सब थक गये होंगे। अब तो सूर्य के ताप में उष्णता आ गयी है। अब लौटना चाहिये सबको !' जब तक श्यामसुन्दर लौट न आये, उन्हें दूसरी बात सूझने से रही। गृह में कुछ कार्य है तो बस, एक ही कि उनका नीलमणि आता होगा—उसके लिये स्नान का जल, उस की वनमाला के लिये पुष्प और उसके लिये भोजन-सामग्री, इनके संकलन में भी वे एकाम कहाँ हो पाती हैं। श्याम वन में जो है। उसे विलम्ब जो हो गया। 'वह क्षुधित होगा। थक गया होगा !'

× × × ×

बछड़ों को चरना कहाँ रहता है। वे इधर-उधर कभी-कभी तृण में मुख मार लेते हैं और कूदते रहते हैं। मृगों के मध्य में जैसे वे भी मृग ही हों। उनके चरवाहे भी तो कपियों के साथ किलकते, कूदते, मुख बनाते दौड़ते हैं।

कन्हैया कभी-कभी तमालमूल में ललित त्रिभङ्गी से खड़ा हो जाता है। मुरलिका अधरों से जा लगती है और—आगे तो कहने की बात रह नहीं जाती। कोई नहीं जानता कि उस समय संसार में क्या होता है। सब भूल जाते हैं अपने-आपको। पशु, पक्षी तक विस्मृत हो जाते हैं। बालक जब उस रससिन्धु से उत्थित होते हैं, वे आश्चर्य से देखते हैं—वृक्षों से जलप्रवाह चल रहा था, वह अभी-अभी मुरली के मूक होने के साथ ही कदाचित् रुका है। पाषाण अब भी आर्द्र एवं कोमल हैं। सम्भवतः वे मोम की भाँति कोमल हो गये थे। तभी उनपर खड़े बछड़ों, मृगों तथा स्वयं उनके चरण-चिह्न अङ्कित हो गये हैं।

पक्षी ने शावक के मुख में चारा देने के लिये चञ्चु डाला था। वह अब तक वैसे ही रह गया था। अभी उसने मुख हटाया है धीरे से। मृगों के मुख में तृण पड़े हैं और कुछ मुख से गिर गये हैं। फण फैलाकर झूमते सर्पों ने अभी सिर झुकाया है और सरकते जा रहे हैं। मयूर ने पक्ष फैलाये थे; पर नृत्य तो निश्चय ही वह नहीं कर सका था। और ये पुष्प—इतने पुष्प यहाँ पृथ्वी पर कहाँ से बिछ गये ? वृक्षों और लताओं से क्या इतने पुष्प गिरे हैं ! ऐसे पुष्प तो समीप के वृक्षों या लता-कुञ्जों में हैं नहीं; तब क्या आकाश से जल की भाँति पुष्प भी गिरते हैं। कौन जाने—कन्हैया जब मुरली बजाता है, सब विचित्र ही बातें तो होती हैं।

सदा मुरली ही नहीं बजती—प्रायः बालक खेलते हैं। सब स्पर्धा कर लेते हैं और तब फल, पुष्प, पाषाण फेंकते हैं और देखते हैं कि कौन सबसे अधिक दूर फेंक सकता है। कभी-कभी श्यामसुन्दर के साथ कई एक नृत्य करते हैं। किङ्किणी एवं नूपुर रुनझुन बजने लगते हैं। गुन-गुन करके भौंरे गाते हैं। दूसरे ताली बजाते हैं। कभी वे परस्पर गौएँ और चरवाहे बन जाते हैं और कभी दो बालक वृषभ बनकर हुंकार करते हुए मस्तक से टक्कर करते हैं।

कोई कोकिल के साथ 'कुहू-कुहू' करता है, कोई बिल्ली के समान 'म्याऊँ म्याऊँ' और कोई बकरी के बच्चे के समान 'म्याँ-म्याँ'। अनेक पशुओं की बोलियों का वे बड़ी सफलता से अनुकरण कर लेते हैं। एक एक पशु की बोली बोलता है तो दूसरा दूसरे पशु की। परस्पर एक दूसरे को दौड़कर छूते हैं, भागते हैं और बराबर तालियाँ बजा-बजा कर हँसते हैं। चलती रहती है यह बालक्रीड़ा।

× × × ×

'भैया, यह किसका बछड़ा है ? कितना सुन्दर है यह !' श्यामसुन्दर ने बड़े भैया को एक बछड़े की ओर आकर्षित किया। यह बछड़ा इससे पूर्व तो इस यूथ में कभी देखा नहीं गया। पास के किसी व्रज से भाग आया होगा। सम्पूर्ण शरीर सुचिक्कण कृष्णवर्ण। कहीं दूसरे रङ्गका एक बिन्दु नहीं है। अत्यन्त चञ्चल, सभी बछड़ों से कुछ बड़ा, सबसे पुष्ट ! बछड़ों से बालक तनिक दूर खेल रहे हैं। नवीन बछड़ा बालकों की ओर धीरे-धीरे चरता-चरता चला आ रहा है। उसके नेत्र लाल-लाल हैं और बार-बार सिर उठाकर बालकों को वह देख लेता है।

'कितना सुन्दर है !' कन्हैया ने उसे पकड़कर पुचकारने की इच्छा की। नवीन बछड़ा है, सम्भव है कि समीप जाने से चौंककर भाग खड़ा हो, अतः घूमकर पीछे की ओर से दबे पैर

धीरे-धीरे श्याम उसके समीप तक गया। बालकों ने देखा और सब उधर ही आकर्षित हो गये। पता नहीं किसका बछड़ा आ गया है आज अपने यूथ में। गोपाल कोई नवीन क्रीड़ा करेगा, सबकी यही धारणा है।

लपककर श्रीकृष्ण ने पूँछ पकड़ ली; किंतु बछड़े ने पैर चलाया मारने के लिये। इसके लिये तो कन्हैया सावधान ही था। उसने पहिले से सुन रक्खा है कि काले बैल प्रायः लात मारते हैं। बछड़े ने जैसे ही पैर चलाया, पूँछ वाले हाथ से ही वह पैर पकड़ लिया गया। बछड़े ने दूसरा पैर चलाया और वह दूसरे हाथ में आ गया।

'कन्नूँ, दैत्य है यह!' दाऊ भैया चिल्ला उठे। गोप-बालक तो सन्न रह गये; किंतु कन्हैया कुछ कच्चा खिलाड़ी तो है नहीं। उसने दोनों पैर एवं पूँछ तो पकड़ ही रक्खी है, अब लगा घुमाने सिरके चारों ओर। स्वयं घूमता जाता है और वह असुर आकाश में चक्कर खा रहा है।

'हाथ ढीले मत करना, नहीं तो वह मारेगा!' सुबल ने सावधान तो किया; परंतु आगे क्या होगा सो सोचना कठिन है। भला, कब तक इस प्रकार कोई घुमाता रहेगा, सो इतना बड़ा साँड़ उठाकर। कन्हैया थक तो जायगा ही। बहुत सोचना नहीं पड़ा। घुमाते-घुमाते उसे श्याम ने एक बड़े से कपित्थ (कैथ) के वृक्ष पर फेंक दिया। वृक्ष का वह ऊपरी भाग उसके आघात से टूटकर धड़ाम से गिर पड़ा।

'ठीक! बड़ा अच्छा किया!' बालक ताली बजाकर खिल उठे। उन्होंने दौड़कर अपने श्यामसुन्दर को घेर लिया। उसे हृदय से लगाया और क्रमशः उसके दोनों हाथ बारी-बारी से देखते रहे कि कहीं हाथों में कुछ आघात तो नहीं लगा है, वे अधिक लाल तो नहीं हो गये हैं। निश्चय ही उन्हें हाथ कुछ अधिक लाल जान पड़े। उन्होंने फूँक मारकर उनको ठीक किया।

देवता पुष्प-वर्षा कर रहे हैं। आकाश में विमानों का ठट्ट लगा है। दैत्य का शरीर फट गया है। उससे रक्त की धारा चल रही है; किंतु यह सब तो पीछे देखने की वस्तुएँ हैं। बछड़े, मृग तथा कपि तक घेरकर कन्हैया को ही देख रहे हैं। वह तो अक्षत है न?' उसे क्षत पहुँचा हो—ऐसी सम्भावना होने पर फिर क्या और कुछ देखा जा सकता है?

—※※※—

बक-वध

कर्ण-लम्बितकदम्बमञ्जरीकोमलारुणकपोलमण्डलम् ।
नीलनीरदविहारविभ्रमं नीलिमानमवलम्बयामहे ॥

—श्रीलीलाशुक

बक—मूर्तिमान् पाखण्ड, दूसरों को तो वह भीत ही करता है। श्रीकृष्ण के सहचर उससे भयभीत ही होते हैं। उससे भागते ही हैं। बक के लिये भी वे ग्राह्य नहीं। उसके आहार तो हैं जल-जीव। भौतिक जीवन में ही निमग्न प्राणी।

हम कुछ चाहते हैं—बिना श्रम किये चाहते हैं और पाखण्ड के आखेट होते हैं। उथले जल की मछलियाँ ही बक को प्राप्त होती हैं। जो उद्योग का परिपाक चाहते हैं, आडम्बर भ्रान्त नहीं कर पाता उन्हें।

बक को संतोष कहाँ—वह तो श्रीकृष्ण को ही निगल जाना चाहता है। मुख में रख भी लिया उसे, किन्तु वह नवनीतसुकुमार वहाँ तप्ताङ्गार हो गया। उगलना पड़ा। पचा नहीं सके तो तुण्डाघात ही सही ! तब तो श्रीकृष्ण ने पकड़कर चीर फेंका।

पाखण्ड भी यही करता है। वह वास्तविकता को ही तिरोहित कर देना चाहता है। श्रीकृष्ण को अन्तर्हित करने का ही प्रयास है उसका। वह क्षणभर ही ऐसा कर सकता है। उगलना ही पड़ेगा उसे और तब उसका प्रयत्न होता है उसे नष्ट कर देने का। आक्षेप ही उसका आश्रय है। नष्ट न हो तो क्या ? श्रीकृष्ण सदा से बकारि हैं—पाखण्ड का नित्य विनाशक है वह।

× × × ×

प्रातः कलेऊ करके नित्य की भाँति राम-श्याम सखाओं के सङ्ग बछड़ों को लेकर वन में आ गये। खेल में लगने पर कहीं समय का ध्यान रहता है, कई व्यक्ति नन्दभवन से बुलाने आये और लौट गये। वैसे अब बुलानेवालों की संख्या धीरे-धीरे पर्याप्त घट गयी है। नित्य बालकों का बछड़े चराने ही हैं। वे एक निश्चित स्थान से अधिक दूर नहीं जाते। मध्याह्न होने के पूर्व घर लौट आते हैं। अपने समय से पहिले बहुत आग्रह करने पर भी नहीं लौटते, अतः बाबा ने व्यर्थ बार-बार लोगों को वहाँ भेजना कम कर दिया है। नित्य सायंकाल श्रीकृष्ण उनसे आग्रह करता और झगड़ता है कि वे किसी को न भेजा करें, इतने पर भी चार-पाँच व्यक्ति तो मध्याह्न तक भेजे ही जाते हैं। जब से वत्सासुर मारा गया, बाबा पुनः सशङ्क हो गये हैं। मैया ने तो शक्तिभर हठ किया कि बालकों का वन में जाना बंद ही कर दिया जाय; किंतु कन्हैया जो हठ करता है। उसके बड़े-बड़े कमलनयन भर आते हैं। सखाओं के साथ वनमें खेलने का लोभ वह कैसे छोड़ दे। बालक को निरुत्साह करना बाबा को अभीष्ट नहीं। अतः बुलाने के बहाने देख आने वालों की फेरी लगती रहती है। अभी ही वन से एक गोप बड़ी कठिनता से लौटाया गया है। सभी आनेवाले तो यही हठ लिये आते हैं कि वे बछड़े सम्हाल लेंगे, श्यामसुन्दर सखाओं के साथ लौट जाय।

बालकों को खेलते-खेलते प्यास लग गयी है। आँख-मिचौनी खेलते, बंदरों के साथ कूदते और 'खो, खो' में भागते-दौड़ते थक भी गये हैं वे। लेकिन उन्होंने जो गोप आया था, उसे लौटा दिया। 'अभी से घर कौन जाय। घर जाने पर तो फिर मैया सायंकाल के समीप ही निकलने देगी भवन से।' अतः जल पीकर यहीं खेलते रहना उनके अनुकूल है। श्रीदामा ने अपने को प्यास लगने की बात कही, श्याम ने बताया कि वह भी प्यासा है। फिर तो सबने अनुभव किया कि जल की आवश्यकता प्रत्येक को है।

'यहाँ पास में ही तो 'सरोवर' है !' सुबल ने परसों एक बछड़े को जो कुछ दूर चला गया था, हाँकने जाकर सरोवर देख लिया है। वह उन घने वृत्तों के मध्य में ही तो है !' उसने संकेत किया।

अपने को प्यास लगी है तो बछड़ों को भी लगी होगी। सबने अपने-अपने बछड़ों को घेरा। श्यामसुन्दर ने पुकारा और उसके सब बछड़े कूदते हुए समीप आ गये। सुबल को आगे चलना है मार्ग दिखलाने के लिये। बड़ा सुन्दर सरोवर है—खूब विस्तृत। निर्मल नीला-नीला जल भरा है। लाल, श्वेत, नीले, पीले कमलों से भरा हुआ। अवश्य ही रात्रि को इसी प्रकार कुमुदिनियों से भर जाता होगा। उनके सम्पुटित पुष्प कमलों के मध्य ऐसे लगते हैं, जैसे कमल-कलिकाएँ हों। हंस तैर रहे हैं, सारस एक पैर पर खड़े धूप ले रहे हैं। सरोवर के किनारे के सघन वृत्तों की डालियाँ झुककर जलका स्पर्श कर रही हैं।

बछड़ों ने जल पिया। साथ आये कपि वृत्तों पर से जल में कूदने और लम्बी डुबकी लगा कर तैरने में परस्पर स्पर्धा करने लगे। गोप-बालकों ने कमलपत्र तोड़े। सुबल ने एक पत्रपुटक दाऊ के और एक श्याम के हाथ में दे दिया। उन दोनों से सबने जल पिया। पता नहीं क्यों, उस घाट पर ही सरोवर की सारी मछलियाँ एकत्र हो गयी हैं। जल पीकर बालक उनका उछलना-कूदना देखने लगे हैं।

सहसा हंस क्रन्दन करते हुए जल से उड़ भागे, सारसों ने पंख फड़-फड़ाया और दूसरे किनारे के वृत्तों पर जा बैठे। कपियों ने एक साथ चीत्कार किया। बालक चौंके, उन्होंने इधर-उधर देखा। 'बाप रे !' उनके समीप ही एक बगुला बैठा है और दबे पैर धीरे-धीरे उन्हीं की ओर आ रहा है। साधारण बगुला होता तो समझ लेते कि इतनी मछलियों को देखकर इधर आ बैठा है; परन्तु वह बगुला—वह तो जैसे इन्द्र के वज्र से हिमालय का कोई हिमाच्छन्न शिखर टूटकर गिर पड़ा हो। इतना बड़ा कि पूरे हाथी को खड़ा निगल ले। भला, कहीं इतना बड़ा बगुला होता है। बालक डर गये—भय के कारण भाग भी नहीं सके वे। देखते-के-देखते रह गये उसे। बगुला—बकासुर, कंस ने भेजा है उसे। उसकी बड़ी बहिन पूतना को इस नन्द के लड़के ने मार डाला—आज वह बदला लेने आया है।

बगुला झपटा और उसने श्रीकृष्ण को चोंच में उठाकर बंद कर लिया। लिखने, कहने, सोचने में तो बहुत विलम्ब होता है; किंतु बालकों ने बगुले को देखा और बगुले ने टपसे श्रीकृष्ण को उठा लिया, इसमें विलम्ब नहीं हुआ। जैसे सबके हृदयों की गति बंद हो गयी हो। श्याम—धक् से हो गये हृदय। भय सहसा आया—जैसे वे निष्प्राण हो गये हों। कन्हैया को इस विशाल बगुले ने निगल लिया—मन, बुद्धि, प्राण, रक्त—सब जहाँ, जैसे थे रह गये वैसे ही।

दो पल—दो पल भी मिल गया होता तो दाऊ को सावधान होने को पर्याप्त था। बक ने दो पल भी तो नहीं दिये थे कन्हैया को उठा लेने में। ऐसे ही दो पल वह उस नवनीतसुकुमार, सजल-जलदश्याम को मुखमें भी नहीं रख सका। जैसे भूल से लाल तप्त लौहगोलक उठा लिया हो—पूरी चोंच खोलकर उगल दिया श्रीकृष्ण को! एक बार इधर-उधर चोंच झाड़ी और फिर मारने के लिये अपनी वही तीक्ष्ण चोंच उठाकर झुका।

हो क्या रहा है—बालकों को यह सब सोचने का अवकाश मिला ही नहीं। श्यामसुन्दर ने एक हाथ से चोंच पकड़ ली। दूसरे हाथ से उसे बलपूर्वक खोल लिया। चोंच के नीचे के भाग पर दाहिना चरण रक्खा और हाथ से ऊपरवाले भाग को ऊपर-ऊपर—और ऊपर एक ही झटके से उठाता गया। जैसे कास को पात्र बनानेवाले चीरते हैं, बगुले को उसने चीरकर फेंक दिया। उसके चरण और कर उस असुरपक्षी के रक्त से लाल हो गये हैं। श्याम शरीर पर कुछ रक्तबिन्दु शोभित होने लगे हैं।

× × × ×

बालक!—बालकों ने जैसे ही देखा कि श्याम ने बगुले को चीरकर फेंक दिया है, जैसे उनमें द्विगुणित प्राण आ गये हों। दौड़कर उन्होंने अपने सखा को घेर लिया। मस्तक से लेकर पदतल तक प्राय: प्रत्येक ने रत्ती-रत्ती उनके शरीर को भली प्रकार देखा अँगुलियों से स्पर्श करते हुए कि कहीं खरौंच तो नहीं आयी है। संतोष नहीं हुआ—अनेक स्थानों पर बगुले का रक्त लग गया है—चरण और कर में विशेषतः जल से उन स्थानों को भली प्रकार धोकर उन्होंने विश्वास किया कि आघात नहीं लगा है।

ऊपर आकाश में बाजे बज रहे हैं। आज बालकों को पता लगा कि ये विमानों पर देवता गाते-बजाते और उनके ऊपर पुष्पवर्षा करते हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ उन्हें। 'लोग देवताओं की पूजा करते हैं। देवताओं पर पुष्प चढ़ाते हैं। उनकी स्तुति करते हैं। उनके सम्मुख शङ्ख, घण्टा, घड़ियाल बजाते हैं। ये देवता क्यों इस प्रकार बाजे बजाकर कुसुमवृष्टि में लगे हैं और कुछ गाते भी हैं!' कौन बताये उन्हें कि यह जो देवताओं का परमदेवता उनके मध्य में खड़ा है, उसकी अर्चा का यह समारम्भ है।

'अब तो सीधे घर चलना है!' सुबल ने कहा और सम्मति की अपेक्षा किये बिना बछड़े हाँक दिये। ठीक भी तो है, इतना बड़ा दैत्य बगुला अभी मरा, पता नहीं इसका कोई भाई-बेटा और आस-पास हो। सभी बालक चलने के लिये उद्यत हो गये। दाऊ और कन्हैया ने एक दूसरे की ओर देखा। दोनों हँसे। मध्याह्न समीप है, सब सखाओं की सम्मति है तो नित्य से तनिक शीघ्र ही सही। वे विरोध भी करें तो कोई अब सुनने वाला है नहीं।

× × × ×

'मैया श्याम को गोद में मत लेना! छूना मत इसे।' मधुमङ्गल ने आगे दौड़कर सुनाया।

'क्यों रे, हुआ क्या है?' हँसते हुए माता ने पूछा।

'इसे एक बगुले ने खाकर उगल दिया है। जूठा है यह!'

'बगुले ने...!' मधुमङ्गल को पता नहीं क्या-क्या कहना है; किंतु माता का मुख देखकर वह मूक हो गया! माँ को आशङ्का हो गयी।

'बड़ा भी—पहाड़-सा भारी बगुला था!' सुबलने झटपट घटना सुना दी।

'मेरा लाल!' माता दौड़ीं यह देखने कि उनके नीलमणि को कहीं आघात तो नहीं लगा है।

बालकों से बाबा को समाचार मिला। वे भीतर आये और यह देखकर लौट गये कि श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न एवं अनाहत है। उन्हें अपने कुलपुरोहित महर्षि शाण्डिल्यजी को झटपट बुलवाना है। ये फिर असुर आने लगे। 'शान्ति' होनी चाहिये।

गोप-गोपियाँ—भीड़ लग गयी नन्दभवन में। श्यामसुन्दर एक की गोद से दूसरे की गोद में जाने लगा। सब उसके शरीर को ही देख रहे हैं।

'ओह, इस बच्चे के जन्म से ही इस पर आपत्तियाँ आ रही हैं। अवश्य इसके द्वारा उन असुरों का पूर्वजन्म में कोई बड़ा अप्रिय कार्य हुआ है। इसी से सब इसे कष्ट देने बार-बार आ जाते हैं!' एक वृद्ध गोप गम्भीरता से कह रहे हैं।

'कितने भयङ्कर हैं ये राक्षस; परंतु जैसे पतिंगे अग्नि में पड़कर स्वयं भस्म हो जाते हैं, वे स्वयं ही नष्ट हो गये। बालक का वे कुछ बिगाड़ नहीं सके!' उपनन्दजी ने सबको समझाया।

'पता नहीं क्या होनेवाला है। जिन दैत्यों के भय से गोकुल छोड़ा, वे यहाँ भी आने लगे। अब कहाँ जायँ। नारायण मेरे नीलमणि की रक्षा करें।' मैया की आशङ्का-आकुलता सीमातीत है।

'ब्राह्मणों की वाणी मिथ्या नहीं होती! गर्गाचार्यजी ने जो कुछ कहा था, वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रहा है!' रोहिणीजी माता को अन्तःपुर में आश्वासन दे रही हैं।

'तुम सब अब फिर से स्नान करो!' मधुमङ्गल को एक ही परिहास सूझा है। 'तुमने जूठे कनूँ को छुआ!'

'चल, बड़ा अच्छा हुआ ! अब कोई राक्षस इस मुख से गिरे ग्रास को लेने नहीं आयेगा !' माता को इस परिहास में आन्तरिक आश्वासन मिला।

बछड़े सबके वन से लौटकर नन्द-गोष्ठ में ही आये हैं। यह तो नित्य का क्रम है कि गोप उन्हें अपने घरों को लौटा ले जाते हैं; किंतु बालक तो बछड़े नहीं हैं कि उन्हें बलात् ले जाया जाय। वे सब मध्याह्न-भोजन श्याम के साथ ही करते हैं। दोपहरी में वहीं खेलते हैं। सायंकाल जब सूर्य-ताप अत्यन्त क्षीण हो जाता है, श्याम को माता बहुत आग्रह करने पर निकलने देती हैं। उस समय भवन के सम्मुख सब खेलते रहते हैं।

माता को ही आना पड़ता है कन्हैया को घर ले जाने के लिये। दूसरों की बात तो वह सुनता ही नहीं। सो भी माता सब सखाओं को साथ ले जाती हैं। अकेला श्याम तो घर जाने से रहा। सभी बालकों की माताएँ सायंकाल नन्द-भवन से अपने बालकों को लिवा जाती हैं। बालक बड़ी कठिनाई से तो जाते हैं, और अवसर मिलते ही पुनः मार्ग से ही भाग आते हैं। बार बार उन्हें ले जाना पड़ता है। इसी बहाने श्यामसुन्दर को बार-बार देखने का अवसर मिलता है। केवल श्रीदामा ही अपने घर से किसी सेवक के आते ही चला जाता है। उसके यहाँ का सखा-मण्डल भी उसका अनुगमन नहीं करता।

× × × ×

माता तो चाहती हैं कि यह बछड़े चराना ही बंद हो जाय और कन्हैया की हठ है कि वह दोनों समय बछड़े ले जाया करेगा। गोप तो गायें लेकर प्रातः के गये सायंकाल लौटते हैं; फिर वह दूसरे समय क्यों चराने न जाय। माता की इच्छा कहाँ पूर्ण होती है। उनका यह हठी पुत्र अपनी हठ कहाँ छोड़ता है। वह जब आग्रह पर उतर आया है तो उसे पूरा करेगा ही। बालकों ने शीघ्र ही दोनों समय बछड़े ले जाना प्रारम्भ कर दिया।

व्योम-वध

तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ।
पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥

—भागवत १० । ३७ । ३१

मय के पुत्र—माया की संतति व्योम—आकाशोपलक्षित पञ्चभूतात्मक जगत्—विषयसमूह !

तुम्हारी महामाया तो विख्यात ही है और तुम्हारा पराक्रम भी लोकविश्रुत है। कौन है जो तुम्हारे महाप्रभावशाली स्वरूप को विस्मृत हो जाय।

'कृष्णः शरणं सताम्' बस, जब इसे तुम भूलते हो, तभी तुम्हारा विनाश होता है।

ठीक है कि तुम प्रबल हो, ठीक है कि तुम्हारी माया दुर्भेद्य है। यह भी ठीक है कि श्रीकृष्ण की संनिधि में ही तुम उनके सखाओं को—उनके जनों को हरण कर सके। तुमने उन्हें प्रलुब्ध कर लिया और गिरि-गह्वर में - घोर तमस में बंदी बना दिया।

सीधे-सादे ग्वाल-बाल—अबल जीव—क्रीड़ा में वह अपने नित्य सहचर से दूर जा पड़ते हैं। तुम उन्हें आक्रान्त कर लेते हो। तुम्हारा प्रतिकार करने में वे सदा से अक्षम हैं। श्रीकृष्ण से दूर हुए और व्योम ने—विषयों ने आक्रान्त किया। अन्धतमस गिरि-गह्वर में बंदी हो गये।

तुम जानते थे कि श्रीकृष्ण के सहचर अपने सखा को आपत्ति में पुकारेंगे। वे दूसरे किसी को पुकार ही नहीं सकते। सखा पुकारें और श्याम न सुने—तुमने बेचारों की वाणी रुद्ध कर दी। वे पुकार भी नहीं सकते।

मृत्यु के समय तो गोपाल का स्मरण ही पर्याप्त होता है। तुम जानते थे कि मोहन वाणी से पुकारने की अपेक्षा नहीं करता। इस भय से तुम सावधान थे। तुमने गोप-बालकों को मूर्छित कर दिया था। स्मरण भी छीन लिया उनसे तुमने और बंदी कर दिया अतल अन्धकार में।

जो व्रजराजकुमार के हैं—वे स्मरण करें तब आयेगा वह ? यहीं भ्रान्त हुए तुम, व्योम ! उसके जन जब तुम्हारी माया में मुग्ध होकर अन्धतमस के बंदी हो जाते हैं, वह स्वयं उन्हें स्मरण कर लेता है। व्यर्थ है तुम्हारा विषय-जाल, वह जीव को ही मूर्छित कर सकता है। हमारा स्मरण ही छीन सकता है वह—श्याम का स्मरण आवृत नहीं होता।

तुम्हें उस अच्युत ने पकड़ लिया। जो उसके स्वभाव में नहीं, जो उसने कभी नहीं किया, वही उसने तुम्हारे साथ किया। वह असुरों को मारता तो है, परंतु तुम्हारे लिये तो वह नृशंस हो गया। भूल गया वह अपने दयामय रूप को। छल—उसके निज जनों से छल और वह भी उसीका सखा बनकर ! इतना बड़ा दम्भ वह सह नहीं सकता था।

तड़पा-तड़पा कर, गला घोंटकर, लात, घूसे और थप्पड़ों से उसने तुम्हारी हत्या की। मारा उसने बहुतों को, पर निर्दय केवल तुम्हारे प्रति हुआ। दूसरे उसके जनों को पीड़ित मात्र करते हैं, पर तुमने ? तुमने उसके जनों को अन्धकार में बंद किया और उनसे अपने नित्य सखा का स्मरण तक छीन लिया ! वह भी उन्हीं का रूप धारण करके। इतनी धृष्टता तुम्हारी !!

जो गिरिवर को कनिष्ठिका पर उठा सकता था, उसे शिला फेंकने में क्या श्रम होना था। गुहा का अन्धकार—वह ऐसा, सूर्य नहीं जिससे प्रकाश प्राप्त करने के लिये गृह के द्वार उन्मुक्त करने पड़ते हैं। उसके सखा जब अन्ध-गह्वर में होते हैं और मूर्छित होते हैं—स्मरण भी नहीं कर पाते

व्योम की माया से मोहित होकर, तब वह महासूर्य शिला-द्वार फेंककर स्वयं पहुँच जाता है। स्वयं स्मरण कर लेता है।

व्योम—श्यामसुन्दर को एक बार जिन्होंने अपना कहा, उनके साथ माया—दम्भ ! फिर तो पशु की भाँति—कुत्ते की मौत मरना ही चाहिये तुम्हें। अपनों के लिये उसने तुम्हें मार डाला। आध्यात्मिक जगत् की यह नित्यलीला जब वृन्दावन की भूमि पर भौतिक जगत् में व्यक्त हुई, तब वह यों ही नहीं आयी। उसमें श्यामसुन्दर गुफा में अपने सखाओं को उठाकर कह रहा है—'भैया, भूल तो मेरी ही है। मुझे थोड़ी देर हुई तुम्हारा स्मरण करने में ! बड़ा कष्ट हुआ तुम्हें !' और उसके वरद बाहु उनके कंधों पर फैले हुए हैं।

सदा के लिये शाश्वत आश्वासन की वह अमूर्त क्रीड़ा जब भूमि पर मूर्त होकर मङ्गल-संचार-संलग्न हुई—हम उसके उस मूर्त रूपका ही स्मरण करें।

मध्याह्न व्यतीत हो चुका है। दोपहर के वन-भोजन के उपरान्त थोड़ी देर श्यामसुन्दर ने एक सखा की गोद में मस्तक रखकर किसलय-आस्तरण पर विश्राम कर लिया है। बछड़े उछलना भूल चुके हैं। कोई चुपचाप खड़े हैं, कोई अपने अगले पैरों के जानु पर गर्दन जोड़कर, मस्तक रखकर सो रहे हैं। मयूर कुञ्जों में अपने पंखों पर गर्दन रक्खे अलस भाव से पड़े हैं। केवल कपिदल में कभी-कभी उछल-कूद हो जाती है।

'आज तो 'भेड़-चोरी का खेल खेलें।' एक गोपाल ने प्रस्ताव किया। श्रीकृष्ण ने उसके मुखकी ओर देखा। पता नहीं नेत्रों में क्यों एक चमक आयी और समर्थन हो गया। दूसरे बालकों ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। यह नया गोपबालक किसी दूसरे ग्राम का है। आज ही उनकी मण्डली में आया है। उसका यह प्रथम प्रस्ताव है। अतः उसका मन तो रखना ही चाहिये।

'अब मेरा उद्देश सिद्ध होगा।' उस गोप-बालक ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उसने मनमें यह वाक्य दुहराया, इसे कौन जान सकता था, किंतु उसकी मुट्ठियाँ एक बार बँधकर खुल गयीं और उसका दक्षिण पाद भूमि को एक ठोकर दे गया, इसे भी किसी ने लक्षित नहीं किया। अपने प्रस्ताव के स्वीकृत होने से वह हर्षित हुआ तो इसमें विशेष बात क्या हो गयी।

सब बालक तीन दलों में विभक्त हुए। एक दल के भेड़ बने। वे हाथ-पैरों से चल रहे हैं। श्रीकृष्ण ने उनको चराने का भार लिया। वह सदा का चरवाहा जो ठहरा। उसके साथ तीन-चार बालक और हुए, एक चोर बना। सबसे छोटा रक्षक-दल। चार उससे अधिक हैं और नवीन बालक इसी दल में है। शेष सब भेड़ बन गये हैं। यही ठीक है। भेड़ बनना ही ठीक है—शेष तो स्वाँग है सब।

मन्द-मन्द पवन के झोंके आ रहे हैं। वृक्षों से पुष्प गिर रहे हैं। लताएँ झुककर झूम रही हैं। मृदुल हरित भूमि पर गोपबालकों का समूह हाथ-पैरों के सहारे घूम रहा है। सबने पटुके कटि में बाँध लिये हैं। सबके लकुट एक ओर रख दिये गये हैं। केवल श्रीकृष्णचन्द्र तथा उनके दल के लोग लाठियाँ लिये उस भेड़ बने दल को घेरे खड़े हैं। एक दल बालकों का लताकुञ्जों में छिपा है, इस छिपे दल के बालक एक साथ दो-तीन ओर से दौड़कर आते हैं। कभी-कभी छिपकर हाथ-पैरों के बल आकर भेड़ बने दल में आकर मिल जाते हैं। रक्षक बालक जब एक ओर भेड़ें लौटाने दौड़ते हैं तो चोर बना दल दूसरी ओर से प्रयत्न करता है। भेड़ बने बालकों को केवल इतना करना है कि जो उनको स्पर्श कर दे, उसके संकेत की दिशा में चलें।

पीठ पर काली चिकनी अलकें लहरा रही हैं। कटि में मुरलिका लगा दी गयी है। एक छोटी-सी छड़ी लेकर श्याम कभी इधर दौड़ता है और कभी उधर भागता है। चोर एक-दो भेड़ भी ले जा पाते हैं तो खूब ताली बजती है। लौटाकर भी सब प्रसन्न होते हैं। बंदरों ने इस क्रीड़ा को देखा तो वे भी वृक्षों से भूमि पर कूद आये। उनकी उछल-कूद और किलकारी ने आनन्द और बढ़ा दिया।

× × × ×

'मेरे पिता दानव-सम्राट् हैं।' उस दिन महा मायावी, असुर-कुल के विश्वकर्मा मय का पुत्र व्योमासुर पृथ्वी पर विचरण करता हुआ वृन्दावन पहुँच गया था। उसने सुन लिया था कि नन्दनन्दन बकासुर को यमधाम भेज चुके हैं। वृन्दावन वह रुष्ट होकर पहुँचा था। "धरा के असुर हमारी प्रजा हैं। मुझे उनकी रक्षा करनी चाहिये। कंसराज हमारे अनुगत हैं। उनकी अनुनय रक्षित होनी चाहिये।" कंसने उसे प्रेरित किया था। मथुरा होकर ही वह आया था।

उसने दूर से गोपमण्डली एवं गायों के समूह को देखा। गोवर्धनधारी उस समय अपनी बालमण्डली के साथ शीतल छाया में विश्राम कर रहे थे। 'मैं सफल होऊँ या असफल; किंतु प्रतिकार पूरा करके छोड़ूँगा।' व्योम मय का पुत्र था। वह सहज भ्रान्त नहीं हो सकता था। उसने देख लिया कि श्रीकृष्ण से सीधे भिड़ना आपत्तिशून्य नहीं है।

'आप लोग क्या मुझे भी अपने साथ रहने देंगे! मैं दूर से आपके साथ खेलने के लोभ में चला आया हूँ।' व्योम ने एक सुन्दर गोप-बालक का वेश बनाया और समीप जाकर उसने बड़ी नम्रता से प्रार्थना की।

'इसमें भी भला, कोई पूछने की बात है!' श्यामसुन्दर के साथ सभी बालक हँस पड़े। वह उनकी बालमण्डली में सम्मिलित हो गया। केवल श्रीकृष्ण ने उसे एक बार गम्भीरता से देखा। एक क्षण को उनके नेत्रों में अरुणिमा आयी और चली गयी। वह काँप उठा। व्यर्थ था वह भय। उसे ऐसी कोई बात नहीं जान पड़ी कि वह पहिचान लिया गया है। थोड़ी ही देर में जब बालक खेलने को उद्यत हुए, उसीने एक खेल का प्रस्ताव किया। 'दम्भ—यह भी मेरे सखाओं के वेश तक का—ठीक!' श्याम मन-ही-मन कुछ गुनगुनाता-सा गम्भीर हो गया। लक्षित नहीं किया किसी ने।

'बक—मेरा सखा' उस अपने एक सखा के बदले इन सब गोपकुमारों का अन्त तो मैं करके ही रहूँगा। ये बालक तो गुफा में खुद ही जायँगे।' उसने निश्चय किया 'श्रीकृष्ण को अकेला कर दूँगा और जब वह अपने सखाओं को ढूँढ़ने लगेगा, तब कहीं उपयुक्त स्थान पर छिपकर उसपर आघात करूँगा।'

व्योम को कोई कठिनाई अपने कार्य में नहीं हुई। क्योंकि वह आज ही इस मण्डली में आया है, अतः रक्षक बालक उसे संकोचहीन करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहते हैं। उसे भेड़ों को चुराने में अधिक सुविधा दी जानी है। यहाँ आने से पूर्व वह एक भयङ्कर गुफा गोवर्धन पर समीप ही देख आया है। बहुत भारी एक शिला वह उस गुफा का द्वार बंद करने योग्य वहाँ रख आया है। भेड़ बने बालक उसके द्वारा संकेत पाने पर वहाँ तक चले जाते हैं। बालक समझते हैं, यहाँ छिपना अच्छा है। यहाँ रक्षकों को अन्वेषण करने में कठिनाई होगी। बड़ा आनन्द आयेगा।

गुफाद्वार खुलने पर बालक उसके महा अन्धकार को देखकर हिचकते हैं, पर व्योम उन्हें अपनी माया से मूर्छित करके गुफा में रख आता है और द्वार बंद कर देता है। इस क्रम से जब भेड़ बने बालकों की संख्या थोड़ी रह गयी, तब चोर बने बालकों में से भी जिसे वह अकेले पाता, बलपूर्वक पकड़कर गुफा में लाकर बंद कर देता।

धीरे-धीरे चोर बने बालकों में दो-तीन ही रह गये। भेड़ बने बालक तो प्रायः सभी रक्षकों के हाथ से निकल गये। व्योम ने अन्त में चोर बने बालकों में से बचे उन बालकों को भी एक-एक करके बलात् ले जाना प्रारम्भ किया।

'कन्हैया, सब सखा गये कहाँ?' एक रक्षक बालक ने इधर-उधर देखकर पूछा। उसे आश्चर्य हो रहा है कि चोर बने बालक अपनी विजय पर भी ताली बजाकर हर्ष क्यों नहीं प्रकट करते। पास की कुञ्जों में उनके छिपे होने के लक्षण भी तो नहीं हैं।

'हाँ, यहाँ से सब कहीं चले गये!' सशङ्कित की भाँति श्रीकृष्ण ने इधर-उधर देखा। 'हम उन्हें ढूँढ़ें!'

एक कुञ्ज में एक बालक दूसरे को पकड़ कर लिये जा रहा है। वह बालक छूटने का यत्न नहीं कर रहा है, पर भेड़ों की भाँति भी नहीं जा रहा है।

'कुमुद है यह तो !' भद्र चौंका। 'वह तो भेड़ नहीं बना है। वह तो चोर है। उसे क्यों यह ले जाता है? कुमुद कैसा हो रहा है?' बहुत ही आश्चर्य से बालक ने श्रीकृष्ण को दिखलाया। ले जानेवाला आज ही गोपमण्डली में सम्मिलित होनेवाला नवीन बालक है। वह तीव्रता से भाग रहा है उसे लेकर।

जैसे सिंह अपने आखेट पर कूद पड़ा हो—सखाओं ने तो पीताम्बर की एक विद्युत्-रेखा-सी चलते देखी और भय से वे स्तम्भित हो गये। कुमुद मूर्छित है। वह भूमि पर गिर पड़ा है और कन्हैया ने जिसे पकड़ लिया है, वह तो गोप-बालक नहीं है। काला, पर्वतकाय, लाल रूखे केश, भयङ्कर जलते नेत्र—एक दैत्य है वह—दैत्य !

'वहाँ क्या देखता है !' केशव ने एक हाथ से दैत्य का गला पकड़ रक्खा है। दूसरे हाथ से उन्होंने एक थप्पड़ मारा कसकर। ऊपर देखा गोपकुमारों ने। दैत्य ने बड़ी आशा से ऊपर क्यों देखा, यह जानने के लिये। वहाँ देवताओं के दिव्य विमान दूर-सुदूर नभ में पीले-पीले, सायं-सूर्य की किरणों में चमकते मेघखण्ड से उन्हें जान पड़े। उन्होंने नहीं देखा कि उन्हीं के मध्य हिमधवल वृषभ पर भगवान् शंकर भी विराजमान हैं और अपने पिता के उन परमाराध्य से सहायता की कातर याचना लेकर ही असुर के नेत्र ऊपर उठे थे। व्यर्थ थी वह आशा। भगवान् शंकरने मुख फेर लिया है और इधर कन्हैया के हाथ-पैर चल रहे हैं। वह ओष्ठ काटते हुए कह रहा है 'तू गोप-कुमार है न !—मेरे सखाओं के रूपमें उन्हीं को ले चलने आया है न !'

'ओह, बड़ा निष्ठुर है तू भी ! मार भी दे !' बेचारा दैत्य तड़फड़ा रहा है। उसके नेत्र निकल पड़े हैं। मुख से फेन तथा रक्त आ रहा है। उसकी ऐंठ और उछल-कूद तो क्षण भरमें चली गयी; पर कन्हैया जो उसे सता-सताकर मार रहा है, यह तो देखा नहीं जाता। अब उसे बचाना तो सम्भव नहीं। हाथ टूट गये, नेत्र फूट गये, अब जीवन मिले तो क्या; पर गोप-बालकों को—जो तीन-चार वहाँ हैं दया आयी। 'तू नहीं मारता तो हमी मार देंगे। तू थक गया, दूर हट !' उन्होंने अपनी लाठियाँ उठायी। श्रीकृष्ण को रोकना चाहा।

"हूँ" कन्हैया की हुंकार के साथ उसकी दृष्टि देखकर तो बेचारे बालक सन्न-से हो गये। उनका सखा आज इतना रुष्ट है—वह रुष्ट होना भी जानता है, यह उन्होंने पहिली बार देखा। 'बड़ा दुष्ट है यह ! घोर दम्भी है" श्रीकृष्ण ने एक हाथ से दैत्यका गला दबा रक्खा है। मरोड़कर उसके दोनों हाथ तोड़ डाले हैं। वे छिन्न-अस्थि हाथ झूल रहे हैं। पदाघात से दोनों जङ्घाएँ भी भग्न कर दी हैं। अब उसे एक हाथसे घूसे, थप्पड़ तथा पैरों से बराबर मारता जाता है। उसके शरीर में ऐंठने की शक्ति भी नहीं। अस्थियाँ टूटती जा रही हैं। जैसे शरीर को ऊखल में रखकर कूटा गया हो। श्रीकृष्ण ने उस निष्प्राण दैत्यदेह को भूमि पर फेंक दिया और एक ओर तीव्रता से दौड़ चला। गोपबालकों ने अनुगमन किया। कुमुद की चेतना लौट आयी। वह आश्चर्य से सब देखता रहा।

एक बड़ी-सी शिला फेंककर कन्हैया एक गुफा में घुसा ही चला गया। उसके कण्ठ की दिव्यमणि ने गुफा को प्रकाशित कर दिया। 'भैया, वह नवीन बालक—वह सखा नहीं है अपना !' वहाँ मूर्छित बालक सहसा उठ खड़े हुए। श्रीकृष्ण को घेरकर उन्होंने कहा। उन्होंने समझा, उस दुष्ट ने श्याम को भी यहाँ बंद किया है।

'बड़ा निष्ठुर है यह !' साथ आये बालकों में से एक ने बताया—'उस बेचारे को इसने कुत्ते की मौत मारा !' और जब बालक बाहर आये—उन्हें एक भयंकर काला लोथड़ा मिला देखने को, जो स्थान-स्थान से फटकर रक्त से लथपथ हो रहा था। कौन बताये कि उनके सखा की निष्ठुरता के आवरण में जो दया थी, उसने इस लोथड़े के भीतर के कलुष तत्त्व को परमोज्ज्वल पद दे दिया है।

देवताओं ने—केवल देवताओं ने ही देखा कि वह असुर सचमुच गोप-बालक बनकर श्रीकृष्ण के नित्य धाम में जा रहा है और अब महेन्द्र को भी मार्ग में उसे पाद्यार्घ्य से सत्कृत करने में गौरव की अनुभूति होनी ही है। वह श्रीकृष्णचन्द्र का नित्यसखा जो बन चुका।

—❀❀❀—

अघ-अर्दन

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥

—भागवत ६ । ३ ।२६

अघ—पाप के मुख में अनन्त काल से प्राणी स्वतः प्रविष्ट हो रहे हैं। वे प्रविष्ट होते हैं क्रीड़ा के लिये—सुखबुद्धि से। पच जाते हैं वहाँ। नष्ट हो जाते हैं।

असुर अघ ने कितनों को भ्रान्त किया, कितनों को पचाया, कोई गणना नहीं।

श्रीकृष्ण के सखा—उनके जन भी उसके मुख में पहुँच गये। नवीन बात थी उस दिन—उन्होंने श्यामसुन्दर से पूछा नहीं, उसे साथ नहीं लिया, बुलाया भी नहीं—उससे पृथक् आमोद क्रीड़ा करने चले !

'कुपथं तद्विजानीयाद् गोविन्दरहितागमम् ।'

गोविन्द से रहित हुए और अघ के उदर में गये। 'अमृषा मृषायते।' जो असत्य है, उसे सत्य और जो सत्य है, उसे असत्य—अघ की—अघरूप इस संसार की यही तो माया है। इसके परम दुःखद, महाभीषण रूप को रोचक, सुखद मानकर ही तो सब इसके दुर्गन्धपूरित मुख-विवर में प्रविष्ट होते हैं। प्रविष्ट हुए वे बालक भी; पर वे उन अनन्त जीवों में से नहीं थे, जिन्हें अघ ने पचा लिया था। श्रीकृष्ण के जन थे वे—संदेह हुआ, आशङ्का थी; पर 'कन्हैया जो है !'

'तथा चेद्बकवद् विनङ्क्ष्यति' 'इसने नष्ट करना ही चाहा तो श्याम इसे बक की भाँति मार डालेगा !' यह विश्वास था वहाँ। गये भी थे वे अपने सखा का मुख देखते हुए ही।

अघ ने मारा नहीं उन्हें—वह श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहा था। श्रीकृष्ण—उनकी विस्मृति के बिना उनके जनों को अघ पचा सकता ही नहीं।

श्याम—जहाँ उसके सखा—उसके जन, वहाँ वह। उसे छोड़कर उसके सखा अघ के उदर में चले गये—क्रीड़ाबुद्धि ने उन्हें उससे दूर अघ के अन्तर में पहुँचा दिया—तब उसे भी वहीं होना ही चाहिये। सखाओं ने नहीं बुलाया तो वह स्वयं जायगा।

श्रीकृष्ण के सखा-जन भी क्रीड़ा-बुद्धि से अघ के अन्तर में जाते तो हैं—जाते हैं तो श्याम से दूर होकर ही जाते हैं, भ्रान्तिवश ही जाते हैं। अपने नित्य सखा की ओर देखते हुए जाते हैं।

वहाँ—अघ के अन्तर में पहुँचकर—वहाँ तो मूर्छित होना ही है। वहाँ स्मृति—चेतना रह नहीं जाती। मुग्ध हो जाते हैं।

श्याम जो सजग रहता है उनके लिये ! वह स्वयं वहाँ आता है। अघ के मुख में ही वे श्रीकृष्ण का सांनिध्य पाते हैं ! उन्होंने पुकारा नहीं—मूर्छित थे वे तो ! श्रीकृष्ण आये थे—वे ही आते हैं।

'अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः' यह क्या अघ रह जायगा जहाँ श्यामसुन्दर पहुँच जाय ! वह अघ—सायुज्य प्राप्त हो गया उसे !

सखाओं ने प्रायश्चित्त किया ? शुद्ध हुए ?

किस लिये ?- वे जहाँ गये, वह अघ तो अघ रहा ही नहीं। औरों के लिये ही अघ था वह। जिनके लिये अघ था, उन्हें पचा जाता था। वे प्रायश्चित्त करते निकल नहीं पाते थे। जिन्हें वह पचा न सका—उनके लिये सदा को वह क्रीड़ागह्वर हो गया।

श्रीकृष्ण के सखाओं ने जिसे क्रीड़ागह्वर समझा—उसे तो उनका क्रीड़ागह्वर ही बनना होगा ! वह अघ है—रहे, जो विनोद श्रीश्यामसुन्दर के सखा चाहते हैं, वह तो उसे देना होगा !

वह भी उसी रूप में। वह अघ नहीं--क्रीड़ागह्वर, विनोद मात्र रहेगा। उसका विष—उसकीपतन-कारिणी शक्ति नष्ट होगी; क्योंकि कन्हैया के जन सुखबुद्धि से जब उसमें आये तो कन्हैया भी तो आयेगा वहाँ !

नित्य ही वह नटनागर अपने सुहृदों के लिये अघ—पाप को प्राणहीन क्रीड़ागह्वर बनाया करता है !

अघ--जो उस बकारि का मुख देखते नहीं प्रविष्ट होते, उन्हीं को पचा पाता है।

बक--पाखण्ड को जिसने चीर फेंका, उसके सखाओं को उसी बक का छोटा भाई अघ पचा लेगा ? आकर्षित करना मात्र उसके बस में है और तब वह मरता ही है।

बहुत पहिले—द्वापर में ही अपने सखाओं के लिये श्याम ने अघ को मार डाला। अमूर्त—आध्यात्मिक जगत् में नहीं—मूर्त जगत् में ! श्रीवृन्दावन धाम में !

× × × ×

आज श्यामसुन्दर अरुणोदय से पूर्व ही जग गया। सायंकाल ही उसने मैया को बार-बार सावधान किया था कि कल बड़े प्रातः बछड़ों को ले जाना है। उसके छींके में खूब-सा मक्खन, बड़ी मोटी रोटी, मिश्री—सब अभी रात्रि में ही रख दी जाय। कई बार उसने मैया को स्मरण कराया, कई बार पूछा कि छीका ठीक हो गया या नहीं। कभी सब वस्तुएँ जो छींके में रखनी होतीं, गिना देता और थोड़ी देर में स्मरण करके कहता—'मैया उसमें नमक भी रखना, मूली भी।' पता नहीं क्या क्या बताया। बड़ी कठिनता से मैया मना सकी उसे कि रोटी और मक्खन वह रात्रि के पिछले प्रहर में बनाकर ताजे रख देगी। अभी रखने से वे बासी हो जायँगे। 'भूल जाय तू तो ! देर हो जायगी !' माता को बहुत हँसी आती थी, फिर भी उसने विश्वास दिला दिया कि वह भूलेगी नहीं।

अब तक बछड़े पास ही चरते थे व्रज के। बालक कलेऊ करके जाया करते थे घरों से और मध्याह्न का भोजन वे घर पर आकर कर जाते थे। कल सबों ने परस्पर निश्चय किया कि अगले दिन थोड़ी दूर श्रीयमुनाजी के तट पर जहाँ खूब पुष्प खिले हैं, वे बछड़ों को ले जायँगे। वन में ही मध्याह्न के लिये भोजन-सामग्री लायेंगे। संध्या को घरों को लौटेंगे। सबने अपने घरों पर जाकर माताओं से यह बता दिया।

बाबा ने तो सरलता से आज्ञा दे दी, पर मैया मानती नहीं थी। 'श्यामसुन्दर दिनभर वन में रहेगा !' यह बड़ी दुःखद एवं आशङ्कापूर्ण कल्पना है। 'कल तो दाऊ भी साथ नहीं रहेगा ! उसके करों से गोदान कराना है ब्राह्मणों को। उसका जन्मनक्षत्र है कल।' लेकिन कन्हैया तो हठी है। वह सखाओं के साथ वन-भोजन का निश्चय कर आया है। अपनी बात छोड़ना जानता नहीं। उसके मनको दुःख भी नहीं होना चाहिये। समझाने का प्रयत्न सफल होते न देखकर मैया ने किसी प्रकार स्वीकृति दे दी है।

'मेरा छीका भर गया क्या ?' सम्भवतः उल्लास में श्रीकृष्ण सोया ही नहीं। आशङ्का के लिये कोई कारण नहीं था। मैया स्वयं अनेक पक्वान्न बनाने में लगी थी। जब भी कन्हैया ने पूछा, उसे उत्तर मिला—'तू तनिक नींद तो ले ले ! अभी तो बहुत रात्रि है !' इतने पर भी वह अँधेरा रहते ही उठ बैठा। और दिनों मुख धोने, कलेऊ करने, सबके लिये मैया को आग्रह करना पड़ता था; परन्तु आज तो बात ही दूसरी है। आज शीघ्रता श्यामको है। 'मेरा पटुका ? मेरा लकुट कौन ले गया ? दाऊ भैया पता नहीं कहाँ रख आता है रोज ऐसे !' कलेऊ भी थोड़ा ही किया उसने।

'भद्र को आने दे, बाबा के पास से; छीका वह ले जायगा !' माताने छीके में अनेक पदार्थ सजाये हैं। वह बहुत भारी है; परन्तु कन्हैया मानता कहाँ है। उसने बायें कंधे पर लटका लिया उसे। कटिकी कछनी में मुरली लगायी, दाहिने हाथ में वेत्र—लकुट लिया और बायें में शृङ्ग।

'बहुत दूर मत जाना ! सखाओं के साथ ही रहना ! बछड़े भाग भी जायँ तो उनके पीछे दौड़ने की आवश्यकता नहीं, वे घर चले आयेंगे ! यमुनाजी में स्नान करने या जल पीने मत जाना !' मैया पता नहीं कितनी चेतावनी देती, परन्तु श्याम तो हँसता हुआ द्वार से बाहर हो गया।

"धूतू, धूतू, धू, धू," गोपबालक चौंककर अपने-अपने छीके उठाने लगे। 'यह तो कन्हैया का शृङ्गनाद है!' नित्य तो सब अपने घरों से बाबा के द्वार पर प्रस्तुत होकर आ जाते हैं, तब कहीं आप सोकर उठते हैं, धीरे-धीरे मैया की मनुहार से मुख-हाथ धोकर कलेऊ करते हैं। मैया सखाओं को भी विवश करती है दुबारा श्याम के संग कलेऊ करने के लिये। इस प्रकार घड़ी-दो-घड़ी में तो निकल पाते हैं और आज........आज सबको स्वयं बुलाने लगे हैं, इतना शीघ्र! भद्र चुपके दाऊ के पास माता रोहिणी के समीप आ गया था—वह आज दाऊ का छीका ले जायगा।

उत्सुकता सबको है। सभी कुछ शीघ्र उठे हैं। सबके छीके विविध व्यञ्जनों से भरे हैं। व्रज में रात्रि भर घर-घर कड़ाहियाँ छनन-मनन करती रही हैं। माताओं ने बालकों को कलेऊ करा दिया है। मुक्ता एवं गुञ्जा की माला, स्वर्णाभरण, मणिजटित कुण्डल, केयूर, दर्पणजटित अङ्गद प्रभृति आभूषणों से सब भूषित किये गये हैं। सब प्रथम निकलने के प्रयत्न में थे—लेकिन आज बाजी कन्हैया ने मार ली। वह शृङ्ग बजाकर सबको बुला रहा है, इतने जोर-जोर से शृङ्ग बजा रहा है, जैसे समझ लिया कि अभी सब सो रहे हैं, उन्हें जगाना है।

मयूरमुकुट मन्द-मन्द वायु में हिल रहा है, दोनों कर्णों के पद्मराग-कुण्डल कपोलों में प्रतिबिम्बित होकर झलमला रहे हैं, भाल गोरोचन की पीताभ खौर से ऐसा हो गया है जैसे नील जलद पर भास्कर की रश्मियाँ और भृकुटियों से ऊपर सीध में कुङ्कुमतिलक के मध्य मैया ने कस्तूरिका का कृष्णबिन्दु रख दिया है, भ्रमरशिशु परागपटल पर बिखरे दो पाटलदलों के मध्य आ बैठा हो जैसे। नेत्र कुछ ऊर्ध्वोत्थित हैं और चञ्चलता से इधर-उधर देख भी लेता है। अधरों में वही टेढ़ा शृङ्ग लगा है। वनमाला, मुक्तामाल, कङ्कण, अङ्गद आदि आभूषणों की चर्चा कौन करे। मैया ने आज अपने श्याम को खूब सजाया है।

सहस्रों उज्ज्वल, लाल, काले, पीताभ, कर्बुर, चित्र-विचित्र वर्ण वाले चञ्चल, सुपुष्ट बछड़े सम्मुख चल रहे हैं। वे चञ्चल कूदते हैं दौड़ते हैं और फिर पीछे मुख करके अपने अलौकिक चरवाहे की ओर देखने लगते हैं। उसे सूँघकर फिर कूदते हैं। गलियों से, गृहों से बछड़ों के यूथ-के-यूथ दौड़ते चले आ रहे हैं। यह मुख्य यूथ बढ़ता ही जा रहा है। बछड़ों के समूहों के पीछे उनके चरवाहे भी दौड़ते आते हैं। अन्ततः वे बछड़ों के बराबर तो दौड़ नहीं सकते। बछड़े अपने दल में और चारक अपने दल में बढ़ रहे हैं। शृङ्ग बजता ही जा रहा है। प्रत्येक सखा के आते ही श्याम उसकी ओर देखता है। उसकी दृष्टि में उल्लास है। वे नेत्र मानो कहते हों 'क्या करूँ, तुम नहीं आये तो मैंने बुलाया! अभी और तुमसे भी आलसी हैं, उन्हीं को बुलाने के लिये बजा रहा हूँ इसे!'

'अच्छा, आज तनिक शीघ्र उठ गये तो यह रंग!' सखाओं के नेत्र उत्तर देते जा रहे हैं। वे हँसते हैं खुलकर। 'शृङ्गनाद बज रहा है! प्रबुद्ध कर रहा है! श्यामसुन्दर बुला रहा है! कितने आलसी हैं जो नहीं सुनते, नहीं जागते, नहीं दौड़ते, क्या करे वह?' परन्तु व्रज में कोई आलसी नहीं। अट्टालिकाएँ भर उठी हैं। मार्ग के दोनों ओर पुरुष एवं वृद्धाएँ खड़ी हो गयी हैं। श्याम आज मध्याह्न में नहीं लौटेगा। पूरे दिन भर उसके दर्शनों से नेत्र दूर रहेंगे। एक बार देख लेने की लालसा सबको खींच लायी है।

शृङ्ग बज रहा है, बछड़े उछल रहे हैं, गोपबालक दौड़ते आ रहे हैं। कंधों पर छीके, हाथों में वेत्रदण्ड—स्नेहमय गोपबालक। मन्द गति से बछड़ों को आगे करके कन्हैया चला जा रहा है। राजपथ से ऊपर से पुष्प फेंके जा रहे हैं उस समूह पर—लाजा, अक्षत और दूर्वा भी। वृद्धाएँ आशीर्वाद दे रही हैं। विप्रवर्ग स्वस्तिवाचन कर रहे हैं। अधिकांश नेत्र बाष्परुद्ध किये अपलक हैं।

ऊपर—अट्टालिकाओं के ऊपर कूदता कपिदल साथ किलकता जा रहा है। पक्षियों के लिये जैसे उड़ने को और कहीं स्थान ही न हो। उनके पक्ष की छाया ने पूरे मार्ग पर छत्र लगा रक्खा है और वन-सीमान्त अपने अनन्त नेत्रों से प्रतीक्षा कर रहा है इस अद्भुत अतिथि की। पूरे वन के पशु सीमान्त पर आकर मुख उठाये ग्राम-मार्ग की ओर देख रहे हैं। मयूरों ने पंख फैलाकर नाचना प्रारम्भ कर दिया, बुलबुल फुदक-फुदक कर संवाद सुना आया, मृगों ने दीर्घ दृगों में आलोक

बजाया, वंद मुख से मृगराज ने गूंज दी, कीर एवं कोकिल के कण्ठों से स्वागत-गान निकला— वनश्री का अधिष्ठाता वन में प्रवेश कर रहा है।

× × × ×

बछड़ों की गणना है कोई—कन्हैया ने अपने बछड़ों का यूथ पृथक् किया—सबने अपने-अपने बछड़े पृथक् करने चाहे! भला, चञ्चल बछड़े क्या भेड़ हैं जो एकत्र होंगे; अन्ततः सबको एक कर देना ठीक जान पड़ा। बड़ा विशाल है यह वत्स-यूथ। चरना किसे है—बछड़ों ने तो भरपेट दूध पिया है माताओं का। गोप-गण जानते हैं कि बछड़ों को आवश्यकता से कुछ अधिक दूध पिलाने से वे कम कूदेंगे और वन में बालकों को कष्ट न देंगे। बछड़े परस्पर खेलते या चरवाहों के साथ उछलते रहते हैं। कन्हैया से दूर जाना उनके स्वभाव में नहीं है।

बालकों ने देखा लाल-लाल गोल-गोल त्रिपत्रिका के फल, पीले सुचिक्कण कटेरी के फल, उज्ज्वल धारीदार मजिकाफल बड़े सुन्दर लगते हैं। किसी ने उन्हें अपने कङ्कण में बाँधा और किसी ने अङ्गद में लटकाया। कन्हैया के कुण्डलों के पद्मरागमणि बिम्बाफलों से द्विगुण हो गये। एक दूसरे के कानों पर आम के लाल-लाल किसलय उन्होंने रख दिये और लवङ्गलतिका, दन्तिका, माधवी के गुच्छों से सजाने लगे अपने आप को। अलकों में रङ्ग-बिरङ्गे पुष्प ग्रथित हुए। कन्हैया ने मयूर-पिच्छ धारण किया है तो दूसरे शुक, नीलकण्ठ एवं हंसों के पिच्छ धारण करके चित्र-विचित्र शोभा से सम्पन्न हो गये।

'मैं तेरी भुजा पर कपोत बनाऊँगा!' एक छोटा-सा गोपबालक दुग्धोज्ज्वल मृत्तिका ले आया और उसने श्रीकृष्ण की दक्षिण भुजा अपनी गोद में रख ली।

'तेरे कपोत के चोंच और पद मैं रँग देता हूँ।' दूसरा गेरू लेकर वाम बाहु पर कुछ बनाते उसे छोड़कर दक्षिण बाहु के समीप आया। 'तू मेरे खञ्जन पर थोड़ी उज्ज्वल रेखायें तो खींच दे!'

'कनूँ, देख मैंने कितना बड़ा वंदर बनाया!' दो ने मधुमङ्गल के हाथ पकड़ लिये हैं और एक ने उसके पेट पर रामरज से बड़ा-सा पीला कपि चित्रित कर दिया है। सब किसी-न-किसी की पीठ, पेट, भुजा, वक्ष पर अपनी कला प्रदर्शित कर देना चाहते हैं। श्यामसुन्दर तो पूरा चित्रमन्दिर बन गया इस उद्योग में।

'मेरा छीका क्या हुआ?' श्रीदाम ने देखा, किसीने उसे कहीं खिसका दिया है! 'कन्हैया, यह परिहास अच्छा नहीं, तू छीका दे दे, भला!' यही नटखट सदा उसके पीछे पड़ा रहता है।

'मैं यहीं तो बैठा हूँ!' जैसे आप को कुछ पता नहीं।

'हूँ, तू अपना छीका उठा तो सही!' श्रीदाम ने बहुत ढूढ़-ढाँढ़ के पश्चात् देखा कि सुबल के कंधे पर उसका छीका बहुत मोटा दीखता है।

'पूरे ऊधमी हो तुम सब!' श्रीदाम इधर-से-उधर कहाँ तक दौड़े। सुबल ने पता लगते ही छीका दूसरे को दे दिया। उसके पीछे भागे तो उसने तीसरे को दिया। सब हँस रहे हैं ऊपर से। अन्तमें झल्ला उठा वह।

'ले! रो मत!' पास लाकर देने का नाट्य करके भी सब दे नहीं रहे हैं। बड़ी कठिनता से वह एक को पकड़ पाया। कदाचित् शान्ति देखकर देने के लिये ही वह पकड़ में आ गया। इस दौड़-धूप में कइयों के छीके, वेत्र, पटुके लुप्त हो गये। वही अन्वेषण, दौड़-धूप, उन्मुक्त हास्य।

'मैं छूऊँगा!' एक दौड़ा!

'छू चुका तू!' दूसरे की गति उससे तीव्र है।

—और सब-के-सब दौड़ रहे हैं। कहाँ? वह श्यामसुन्दर अपराजिता के गुच्छे देखने चला गया है न—बस, उसीके पास।

'कनूँ, देख! मैं तेरे-जैसी वंशी बजा लेता हूँ न?' एक सखा ने मुरलिका के छिद्रों पर अँगुली रक्खी।

'रहने दे अपनी पें-पें!' दूसरे ने शृङ्ग मुख से लगाया और 'धूतू-धू' करके कानन क्षुभित कर दिया।

एक छोटा गोपबालक भौंरों के साथ 'गुन-गुन' कर रहा है। दूसरे ने 'कुहू, कुहू' करके कोकिल को चिढ़ाना प्रारम्भ किया। पक्षी उड़ रहे हैं। बालक उनकी छाया पर दौड़ते चले आते हैं। एक हंस के साथ धीरे-धीरे चरणक्षेप करता चलने का नाट्य कर रहा है और एक-दो बगुलों के साथ एक पैर पर स्थिर बैठने का अभिनय करने में लगे हैं।

'ताथेइ, ताथेइ, ता-ता थेइ, थेई, श्यामसुन्दर मयूर के साथ चारों ओर मुख घुमा-घुमाकर नाचने में लगा है। कुछ सखा ताल दे रहे हैं। एक ने एक बंदर के बच्चे को पकड़ लिया है। एक-दो बालक बाल-कपियों को पकड़ने के लिये उनके साथ पेड़ों पर चढ़ रहे हैं। बंदरिया दाँत दिखला रही है और वे भी दाँत दिखाकर उसे चिढ़ा रहे हैं। बंदरों के साथ कुछ कूदने में लगे हैं।

कुछ मेढ़कों के साथ बैठकर कूद रहे हैं, कुछ ने स्नान करना प्रारम्भ कर दिया और कोई बड़े जोर से हँस रहे हैं। गिरिराज से उस हास्य की प्रतिध्वनि आती है और वे फिर हँसते हैं। कुछ ने प्राप्त ध्वनि को पाजी, उजड्ड, नटखट, भीरु, ऊधमी, बनाया। सब खेलने में लगे हैं। आनन्द-क्रीड़ा—निश्छल हास्य !

बछड़े, मयूर, मेंढक, हंस, कपि, भ्रमर, पुष्प, बगुले—यहाँ तक कि जड पर्वत तक उनके सहचर हो गये हैं। श्रीकृष्ण उनमें क्रीड़ा कर रहा है और सब सचराचर क्रीड़ामय है उनके लिये। उनकी क्रीड़ा के ही लिये सम्पूर्ण प्रकृति-सम्भार है।

× × × ×

आज पहिली बार कन्हैया वनभोजन करने आया है। पहिली ही बार दाऊ के बिना वह वन में आया और पहिली ही बार इतनी दूर आया। पहिली बार कंस ने देखा भी अपने उस महा-काल को। वृन्दावन से गोप-बालक दूर आ गये हैं कुछ। मथुरा-नरेश अपने पार्षदों के साथ आखेट करने आये थे। बछड़ों का शब्द, वेणुरव, शृङ्गनाद, बच्चों की किलकारियाँ और प्रतिध्वनि को पुकार-पुकारकर डाँटना उन्होंने सुना। हृदय काँप गया। इस प्रकार अकस्मात् श्रीकृष्ण के सम्मुख होने को वे प्रस्तुत नहीं थे; फिर इस खुले कानन में ? परंतु अपना भाव उन्होंने प्रकट नहीं होने दिया। बालक-मण्डली गिरिराज के पाद-प्रान्त में है, शिखर पर ऊँचाई से अपने को तरु-लताओं के ओट में करके कंसराज अपने दलके साथ इनकी क्रीड़ा देख रहे थे।

"कैसे उछल-कूद रहे हैं ! एक श्वास में ही सबको खींचकर निगल जाऊँ।" अघासुर ने धीरे-धीरे अपने-आप कहा। उसकी अङ्गार-सी दृष्टि नीचे लगी थी। यह क्रीड़ा उसे असह्य लग रही थी। दूसरों का सुख यों ही कलुषित-प्रकृति लोगों को असह्य होता है, फिर वह तो सर्प ठहरा।

'यदि तुम ऐसा कर सको ! मैं बड़ा प्रसन्न होऊँगा !' कंस ने उस अजगर की फुस-फुसाहट सुन ली। 'जाओ, सबको उदरस्थ कर लो ! देखो, सावधान रहना, वह काला लड़का कहीं छिटक-कर भाग न जाय !' अघ को आदेश मिला। वह सरकता हुआ पर्वतशिखर से उतरा। घनी झाड़ियों में से खिसककर बालकों की दृष्टि बचाता उसके मार्ग में मुख फाड़कर शान्त पड़ रहा। जैसे उसमें प्राण ही न हों, निष्कम्प—निश्चल।

'हे प्रभु !' आकाश में विमानों की पंक्तियाँ लगी हैं। देवता श्यामसुन्दर की मनोरम क्रीड़ा देखने में तन्मय हो रहे थे। सहसा दृष्टि उस अजगर पर गयी। एक पल में सबने भयपूर्वक उस सर्पाकार महादैत्य को देखा। उनके विमान और ऊपर—ऊपर चले गये। 'इन बछड़ों और बच्चों से तो उसका उदर भरना है नहीं। कौन जाने ऊपर मुख करके श्वास खींच ले ! अमृत पीकर अमर होना क्या अर्थ रक्खेगा उसके उदर की जठराग्नि में !'

'यह काला लड़का—इसी ने मेरी बड़ी बहिन पूतना को मारा और मेरे बड़े भाई बक को भी चीर डाला है !' अघासुर पड़ा-पड़ा सोच रहा था। 'मैं आज इसे और इसके सब साथियों को निगल जाऊँगा। मेरे बन्धु जहाँ गये, वहीं इन सबको भी भेज दूँगा ! इन लड़कों के न रहने पर व्रजवासी स्वयं मृतप्राय हो जायँगे ! महाराज को उनके मारने में कोई प्रयास न होगा !'

असुर बछड़ों और बालकों की ओर एकटक देख रहा था। वे खेलते, कूदते, उछलते धीरे-धीरे उसी की ओर बढ़े आ रहे हैं। पर्वत से कंस का दल और नभ से देववर्ग उत्सुकता, आशङ्का से वहीं दृष्टि लगाये हैं।

'अरे, यह क्या है ? बड़ी अद्भुत गुहा है यह तो!' भद्र की दृष्टि पड़ी अजगर पर। वही सबसे आगे है। उसने दूसरों को पुकारकर बताया। कन्हैया पीछे है। वह कलापी के साथ नाचने में तन्मय हो रहा है। शेष सब बालक दौड़ आये। बछड़े आगे ही हैं। वे पता नहीं क्यों ठिठक गये हैं।

'हम सब कभी इधर आये ही नहीं। वृन्दावन में यह कितनी सुन्दर गुफा है!' समीप खड़े होकर वे ध्यान से उसे देखने लगे हैं।

'ठीक ऐसी है, जैसे किसी अजगर का मुख हो!' सुभद्र ने कल्पना दौड़ायी।

'सच—हू ब हू अजगर के मुख-जैसी!' सुबल ने कल्पना को पूरा रूपक बना दिया। 'वह गैरिक भाग ऊपर का, उसपर सूर्य की किरणें पड़कर चमक रही हैं, जैसे वह ऊपर का ओष्ठ हो। उसीका प्रतिबिम्ब पड़ने से यह नीचे का भाग लाल होकर नीचे का ओष्ठ बन गया है। दाहिने-बायें काले पाषाण गैरिक स्तर में निकल आये हैं और उनमें से जल मन्द-मन्द स्रवित हो रहा है, जैसे लाला-लिप्त सर्प के दोनों जबड़े हों। ये उज्ज्वल-उज्ज्वल नुकीले पाषाण-शिखर दाँतों की भाँति लटक रहे हैं और यह खुरदरा चौड़ा द्विधा मार्ग जो इसमें जा रहा है, ऐसा लगता है जैसे सर्प की बीच से फटी जिह्वा हो। ऊपर दोनों गुफाओं से लाल-लाल ज्योति निकल रही है। वे अजगर के नेत्रों के समान जान पड़ती हैं। अवश्य भीतर दावाग्नि लगी है। वही उन गुफाओं से दीख रही है।'

'सर्प के श्वास के समान यह उष्ण वायु इसमें दावाग्नि के कारण ही तो आ रही है!' श्रीदाम ने भी अपना भाग पूरा किया। 'जैसे सर्प ने बहुत जीव खाये हों और उसकी श्वास में दुर्गन्ध हो। बेचारे पशु-पक्षी दावाग्नि में भस्म हो रहे हैं। उन्हीं की गन्ध आ रही है!'

'आओ, भीतर चलकर देखें!' मणिभद्र आगे बढ़ा!

'कन्हैया तो अभी वहीं नाच रहा है!' सुबल ने पीछे देखा।

'बछड़े भी सब हाँक लो भीतर! हम सब इस अँधकार में, जो सर्प के मुख के समान जान पड़ता है, छिप जायँगे। श्याम को ढूँढ़ने तो दो!' श्रीदामा को दूसरा कौतुक सूझ पड़ा।

'कहीं यह सचमुच अजगर हुआ और भीतर जाने पर सबको गट से निगल गया तो?' मधुमङ्गल को इस दुर्गन्धित वायु से भरे अन्धकार में प्रवेश करना रुचिकर नहीं लग रहा है।

'तू तो डरपोक है!' भद्र ने परिहास किया। 'ऐसा हो भी तो बगुले की भाँति मर जायगा यह। कन्हैया कहीं चला नहीं गया है! वह रहा--वह नाच रहा है!' ताली बजायी सबने इस बात पर। श्रीकृष्ण के मुखकी ओर देखा और अँधेरे में शीघ्रता से छिपने के लिये बछड़ों को सम्मुख दौड़ाते हुए घुस गये।

'हैं! हैं!' श्यामसुन्दर सहसा चौंका। पुकारा उसने, परंतु बालकों को तो शीघ्र छिप जाने की धुन है। उन्होंने सुना ही नहीं।

'ओह!' एक क्षण के लिये मुख गम्भीर हो गया। 'इस दुष्ट के जीवन का क्या उपयोग—अपने लिये भी तो यह अपने घोर कर्मों से परिताप-संताप-पीड़ा ही प्रस्तुत करेगा! मेरे सखा, मेरे बछड़े, उनका विनाश तो नहीं ही होना चाहिये।' कदाचित् कुछ इसी प्रकार की बातें सोच रहा है वह।

अब—उसने अभी बच्चों और बछड़ों को निगला नहीं। वह काला लड़का तो अभी बाहर ही है। आ रहा है, वह भी आ रहा है। वह भीतर आये और मुख बंद कर लूँ!' प्रतीक्षा कर रहा है वह। वह आया उसके मुख में। खुरदरी जिह्वा पर चरण रखता सीधा गले तक चला गया। भय से विमानों पर देवता हाय-हाय करने लगे। कंस ने अट्टहास किया। उसके साथियों ने भी साथ दिया उसका।

'मुख बंद कर लूँ!' अघ ने सोचा। हाय-हाय, मुख तो बंद ही नहीं होता कदाचित् सब बछड़े और बालक गले के छिद्र में ही अटके हैं। उसे क्या पता कि वे तो मुख में पहुँचते ही

मूर्छित हो गये। गले तक तो वह नीलमणि सरक गया है और अकेला वही पूरे छिद्र को रोककर खड़ा है, जैसे महाकाय हो गया है वह।

गलेका गोल छिद्र, नासिका का मिलने वाला एक छिद्र और वहाँ, नेत्रों के स्नायुछिद्र—वह विशाल अजगर! बड़ी गिरिकन्दरा-सा उसका गला। परन्तु कन्हैया तो ऐसा वहाँ अड़ा, जैसे उसका शरीर वहीं निरोध के लिये ही गठित हुआ हो। कहीं से तनिक भी वायु निकल नहीं पाती। सर्प ने पूँछ पछाड़ी। शरीर मोड़ने का प्रयत्न किया। उसके नेत्र प्राणरोध से निकल आये। मस्तक में वायु भरने से वह गुब्बारे-सा फूलता जा रहा है। नस-नस फट रही है। जोड़-जोड़ उखड़ रहे हैं। अन्त में जैसे अधिक वायु भरने पर फुग्गा फूटता है, फड़ाक से मस्तक फट गया। बड़े वेग से वायु निकली। उसी वेग से उसके साथ मुख में स्थित सब बालक और बछड़े बाहर कोमल हरित तृण-भूमि पर गिर पड़े। पिचकारी में भरकर उन्हें बाहर फेंक दिया गया हो जैसे।

कन्हैया जैसे गया था, वैसे ही निकला। उसी जिह्वा पर चरण रखता मुख से ही। वायु के साथ दैत्य के शरीर से एक दिव्य ज्योति निकली। वह महाज्वाला के समान ज्योति इस प्रकार चारों ओर मँडरा रही थी, जैसे किसी की प्रतीक्षा में हो, किसी का अन्वेषण कर रही हो। श्यामसुन्दर ने जैसे ही बाहर चरण रक्खा, वह उस चरण में ही प्रविष्ट हो गयी।

देवता हर्ष से जयनाद कर रहे हैं। गगन से पुष्प-वर्षा हो रही है। दूर—सघन वृक्षावलियों के पीछे स्तब्ध, मूक कंस अपने रथ पर बैठने जा रहा है मथुरा जाने के लिये और उसके अनुचर उसका अनुगमन कर रहे हैं। श्याम की दृष्टि यहाँ नहीं है। उसके सखा, उसके बछड़े अस्त-व्यस्त इतस्ततः घास पर मूर्छित पड़े हैं। बड़ी ही करुणापूर्ण दृष्टि से उसने उन सबों की ओर देखा। जैसे वे सब सोकर उठे हों, भागकर उन्होंने घेर लिया श्यामसुन्दर को।

'बड़ी भयंकर थी उष्णता और दुर्गन्ध!' सब-के-सब श्रीकृष्ण का एक-एक अङ्ग ध्यान से देख रहे हैं। छूकर जान लेना चाहते हैं कि कन्हैया को कहीं खरोंच तो नहीं लगी।

'कितना बड़ा अजगर है!' मधुमङ्गल अब भी भय से उस महासर्प की ओर देख रहा है। 'तू ने मारा कैसे इसे?'

'कहीं सुबल की लाठी से तो उसका सिर नहीं फूटा है?' श्रीकृष्ण ने हँसते हुए पूछा।

'अरे हाँ, हम सब ने लाठियाँ उठा रक्खी थीं। तालू ही फूट गया इसका!' एक साथ हास्य गूँज गया।

'चलो, स्नान करें। चरण पिच्छल हो गये हैं; पटुके में और श्रीअङ्गों पर भी कहीं-कहीं कुछ आर्द्रता आ गयी है। बछड़े और बालकों के शरीर तथा वस्त्रों पर सर्प के मुख का रस एवं रक्त के छींटे पड़े हैं। श्रीकृष्णचन्द्र ने यमुनाजी की ओर प्रस्थान किया।

'कन्हैया, तू सर्प के मुख से गिरा ग्रास हो गया है।' श्रीदाम ने तनिक दूर हटकर न छूने का नाट्य किया।

'तुझे तो रक्त लगा है!' उत्तर मिला।

'हम मुख से जाकर मुख से ही तो नहीं निकले!' इस तर्क में सबका समर्थन है। सब हँस रहे हैं, तालियाँ बजा रहे हैं। आकाश में दुन्दुभियाँ बज रही हैं, जयघोष हो रहा है, वहाँ से पुष्पों की झड़ी लगी है—यह सब देखने का अवकाश उन्हें नहीं है।

उनके श्यामसुन्दर ने अघ को मार डाला! अघ को भी शुद्ध कर दिया और अब वे स्नान करने जा रहे हैं श्रीयमुनाजी में। शुद्ध होने के लिये? क्रीड़ा करने के लिये।

अघ—मर गया वह तो। उसका शरीर पड़ा है वहाँ। सूख गया धीरे-धीरे। श्रीकृष्ण के सखा उसे छिपने का गह्वर ही तो बनाना चाहते थे। उन्हीं के लिये नहीं, समस्त व्रजवासियों के लिये क्रीड़ा-गह्वर हो गया वह। आँखमिचौनी के समय बालकों को छिपने के लिये वह बड़ा सुन्दर स्थान हो गया।

—❀❀❀—

वन-भोजन

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ॥

—भागवत १०।१३।११

कालिन्दी की श्यामल तरल तरङ्गें, उनमें विकच शारदीय कमल, पुण्डरीक, इन्दीवर, कह्लार, शतपत्र लहरा रहे हैं, भ्रमर गूँज रहे हैं। पिङ्गल सुरभित पराग लहरियों पर तैर रहा है। पटुके एवं धोतियाँ किनारे उतारकर, मालाएँ रखकर गोप-बालकों का मण्डल स्नान कर रहा है। कन्हैया ने भी मयूर-पिच्छ, वनमाला आदि तट पर रख दिये हैं। वे परस्पर एक दूसरे पर छींटे उछाल रहे हैं, जैसे पद्मपत्रों से मुक्तावृष्टि हो रही हो। एक दूसरे के शरीर मल रहे हैं। हाथ-पैर पटक-कर तैर रहे हैं। पुष्प तोड़कर एक-दूसरे के ऊपर फेंकते जाते हैं। श्याम के कमलदलायत लोचन जलस्पर्श से अरुणिम हो गये हैं। काली अलकें नील जलराशि पर तैर रही हैं और चरणों तथा करों की क्रीड़ा से रक्तिम कमलों की शोभा भी लज्जित हो रही है। उल्लास, हास, चाञ्चल्य—सब एकत्र हो गया है।

स्नान समाप्त हुआ। अलकों से मुक्ताबिन्दु गिराते वे तट पर आये। आर्द्र अङ्गों को पोंछनेका झंझट कौन पाले, तट पर के वस्त्र पहिन लिये। धोतियों के ऊपर लपेटे कछौटे के लघु वस्त्र को धारण करके ही उन्होंने स्नान किया है। वे वस्त्र-खण्ड निचोड़ लिये गये। सबने अपने-अपने लकुट धोये। श्याम ने बड़ी सम्हाल से मुरली को प्रक्षालित किया।

'बड़ा सुन्दर है यह पुलिन। खिले कमलों की मधुर सुगन्ध लेकर सुन्दर वायु आ रही है। यह रेत हम लोगों के खेलने योग्य कोमल है। सुचिक्कण मृदुल स्थल है लेकिन मुझे भूख लग गयी है। सूर्य कितने ऊपर आ गये हैं! बछड़ों को जल पिला दें और फिर हम लोग यहाँ भोजन करें!' बात सबके मनकी ही कन्हैया ने कही। सबने बछड़ों को, जो वन में बिखर गये थे, घेरा और जल पिलाया।

'कुछ लोग बछड़े देखें और जब सब भोजन कर लें, तब वे लोग पीछे करें! ऐसा न हो कि हम लोग भोजन करने लगें और ये भाग जायँ कहीं दूर!' सुबल ने सूचना दी। बात तो ठीक है; परतु श्याम के साथ भोजन करने का लोभ छोड़े कौन? सब एक-दूसरे का मुख देखने लगे। किसे पीछे प्रतीक्षा करने को कहा जाय?

'ना, आज तो हम सब साथ ही भोजन करेंगे!' कन्हैया ने प्रतिवाद किया। 'मैं वन की ओर मुख करके बैठता हूँ। कितनी हरी-हरी घास है पास में। बछड़े जायँगे कहाँ! उनको घास पर एकत्र करके छोड़ दें। देखो, वे चर तो रहे नहीं हैं—एक-एक तृण धीरे-धीरे नोच रहे हैं। चरते रहेंगे पास में!' चाहते यही सब हैं। बछड़ों को हरित भूमि पर घेरकर वे पुलिन पर आ गये।

एक ओर सघन कानन, फलभार से झुके विटप, पुष्पित लतिकाएँ। दूसरी ओर नील सलिलपूर्णा लहराती यमुनाजी। उनमें खिले कमलदल। वन में मयूर नृत्य कर रहे हैं। कीर एवं कोकिल कलगान-मत्त हैं। जल में सारस पुकार रहा है। हंस तैर रहे हैं। जलपक्षी डुबकियाँ ले रहे हैं। दोनों के मध्य में विशाल रजत पुलिन। स्वच्छ कोमल वालुका। वालुका पर पीताम्बर-परिवेष्टित नीलमणि बैठा है और उसे चारों ओर से घेरकर चित्र-विचित्र वर्णों में सरल, कोमल,

गौरवर्ण व्रज-बालक बैठे हैं। कन्हैया का मुख किधर है ? जिधर से जो देखे—उधर। श्रुति उसे 'सर्वतोमुख' जो कहती है। वह अपने गौरवर्ण सखाओं को कमलदल बनाकर स्वयं कर्णिका बन गया है। कर्णिका का मुख किधर ? सब के मुख उसकी ओर हैं और उसका मुख सबकी ओर।

कानन से कपिदल पुलिन पर आ गया। वह बालमण्डली को दूर से घेरकर बैठा है, जैसे इस स्वर्णकमल का रक्षक दल हो। ऊपर देवताओं के विमान छाया किये हुए हैं, पक्षियों का समूह वहीं घूम-फिरकर मँडरा रहा है, जैसे किसी के लिये और कहीं कोई कार्य न हो।

गोपबालकों ने अपने एक ओर लकुट तथा शृङ्ग रख लिये और एक ओर छीके। उनके सम्मुख अनेक प्रकार के पात्र हैं। किसी ने केले के पुष्प को पत्तल के समान बिछा लिया है, किसी ने शतपत्र कमल के दलों को। किसी का पात्र केले या कमल का पत्ता बना है, किसी का भू-कूष्माण्ड का विस्तृत अङ्कुर। किसी ने नारिकेल फल को पात्र बनाया और किसी ने बाँस का त्वक्पत्र या भूर्जपत्र बिछाया। कुछ लोगों ने चिकने पत्थर सम्मुख रख लिये हैं और कुछ छीका ही सम्मुख रक्खे बैठे हैं। अपने-अपने छीकों में से वे भोज्यपदार्थ निकालकर पात्रों पर सजा चुके हैं।

कन्हैया—उसने मुरली तो कटि-वस्त्र में खोंस ली। शृङ्ग तथा वेत्रलकुट कक्ष में दबा रक्खे हैं। दाहिनी ओर उसका छीका खुला पड़ा है। बायें हाथ की हथेली पर एक ग्रास रख लिया है उसने। उसी बायें हाथ की अँगुलियों की संधियों में द्राक्षा, अमरूद, कदली के फल दबा रक्खे हैं। दाहिने हाथ से तनिक-तनिक, छोटे-छोटे ग्रास मुख में डालता है। उसी हाथ से छीके में से भाँति-भाँति के पकान्न निकाल-निकालकर सखाओं को बाँटता जाता है। वह शृङ्ग-वेत्र दबाये इस प्रकार बैठा है, जैसे कहीं जाने को प्रस्तुत हो। बछड़ों की रक्षा का भार आज उसने लिया है और पता नहीं मध्य में कब उन्हें हाँकने जाना पड़े, इसलिये प्रस्तुत है पूर्व से ही।

'तेरा दही तो खट्टा है !' एक सखा ने उसके मुख में दही की मलाई डाली। मुख बनाया उसने। सखा का मुख तनिक मलीन हुआ। उसने छीके में से कुछ दूसरा मधुर पदार्थ निकालना चाहा, इधर लपककर दधिपात्र उठा लिया श्याम ने और पूरी मलाई दही की मुख में भर ली।

'मेरा खट्टा दही क्यों खाता है तू !' जो उसने मुख फेरा तो निहाल हो गया। वाणी में कृत्रिम उलाहना है। श्याम अँगूठे नचा रहा है और दूसरे हँस रहे हैं।

'मैया ने यह मोदक बड़ा मधुर बनाया है।' तनिक-सा मुख से लगाकर उसने सुबल की ओर हाथ बढ़ाया। 'उहूँ, मुख खोल !' हाथ पर देना स्वीकार नहीं है। बड़ा-सा मोदक मुख में बलपूर्वक ठूँस दिया। सुबल के लिये मुख चलाने में कठिनाई हुई, दूसरों के पेट में हँसते-हँसते बल पड़ गये।

'कन्हैया, तनिक यह मठरी तो देख !' श्रीदाम ने केवल दिखाया दूर से। वह ललचा रहा था। श्याम ने ऐसा मुख बनाया जैसे बहुत रद्दी मठरी है, उसकी तनिक भी रुचि नहीं। किंतु श्रीदाम उसे मुख तक ले जाय, तब तक तो श्रीमान् का दाहिना हाथ झपट ले गया। छीना-झपटी से बचने के लिये पूरी मठरी कपोलों को ऊँचा करके मुख में विराज गयी।

'टेंटी बहुत स्वादिष्ट तली है !' जान-बूझकर मधुमङ्गल को टेंटी देने चले। उसने मुख बनाया 'मैं तेरा जूठा नहीं खाऊँगा !'

'यह मक्खन—मोदक' अबकी बढ़िया माल है कर में।

'तेरी श्रद्धा, गोरस में उच्छिष्ट-दोष मैं नहीं मानता !' मधुमङ्गल ने बड़ी गम्भीर मुद्रा से कहा, जैसे महापण्डित हो वह।

'हूँ !' अँगूठा दिखाकर बहुत थोड़ा मुख से काट सके। इस बार झपटने की बारी मधुमङ्गल की है।

परस्पर परिहास चल रहा है। कन्हैया के वाम कर का कवल (ग्रास) परिवर्तित होता जा रहा है। प्रत्येक चाहता है, उसके छीके में जो भी स्वादिष्ट पदार्थ हैं, कन्हैया ही उन्हें भोजन करे। थोड़ा तो अवश्य ले उसमें से। कन्हैया भी अपने छीके में से सब-का-सब दूसरों को ही बाँटने में लगा

है। कन्हैया का छीका—पता नहीं मैया ने कितने पदार्थ भरे हैं उसमें। वह थोड़ा भी घटता नहीं जान पड़ता। श्याम भी आज भोजन करने पर तुला बैठा है। वह किसके प्रेम का अनुरोध अस्वीकार कर दे।

वाम करतल का ग्रास—बहुत कम उठाता है वह उसमें से। तनिक-सा उठाते-न-उठाते कोई हथेली पर हाथ मार देता है। दूसरी ओर से सार्थक होने दूसरा ग्रास पहुँच जाता है उस पर। सखा उसकी हथेली पर ग्रास रखकर ही संतोष नहीं कर लेते। अधिकांश अपने हाथों ही उसके मुख में ग्रास दे रहे हैं। वह भी तो अपने छीके के पदार्थ दूसरों के पात्र या कर पर नहीं दे रहा है।

दो चार उज्ज्वल छींटे उदर पर पड़ गये हैं और दो-एक भुजाओं तथा कपोलों पर भी। अधरों की छटा तो दधि की उज्ज्वलता से लिप्त होकर अद्भुत हो रही है। दक्षिण हस्त की अँगुलियों तथा वाम हथेली की भी विचित्र शोभा है। दधि से उज्ज्वल हास्य है सबके मुखों पर।

कपिवृन्द छीना-झपटी की घात में नहीं; किंतु मध्य में कुछ पदार्थ बालक जब उनकी ओर फेंक देते हैं, तब सब उस पर टूट पड़ते हैं। उस पदार्थ के लिये धमाचौकड़ी मचती है। पक्षी भी उसके एकाध कण के लिये झपटते हैं। देवता—वे देवता हैं न। उनके मुखों में जल भर आया है। उनके अमृत में यह स्वाद कहाँ! इस उच्छिष्ट का एक कण पा जाते—पर इन बंदरों और पक्षियों की छीना-झपटी में यह सौभाग्य कहाँ। यदि वे भी कपि या पक्षियों में कोई होते—हीन है देवत्व इस सौभाग्य के सम्मुख।

'बछड़े किधर गये?' सहसा सुबल की ही दृष्टि सम्मुख गयी। एक भी बछड़ा दिखायी न पड़ा। चरते, कूदते वे सब दूर चले गये थे कहीं। सघन वनराजि में पता नहीं किधर गये। सबकी दृष्टि वन की ओर गयी। तनिक-से चिन्तित हुए वे विकचसरोजमुख। भोजन का उल्लास एवं विनोद विरमित हो गया।

'मैं अभी सबको हाँक लाता हूँ!' कोई कुछ निर्णय करे, इससे पूर्व ही कन्हैया खड़ा हो गया। वह तो पहिले से प्रस्तुत है।

'नहीं, कनूँ!' सुबल ने रोका। 'चञ्चल बछड़े पता नहीं कहाँ गये होंगे। तू कहाँ भटकेगा। हम सब ढूँढ़ लायेंगे। तू यहीं बैठ और भोजन कर!'

'अकेले-अकेले तो मुझसे भोजन होगा नहीं।' कन्हैया ने सबको उठने से रोका। 'मेरे तो पुकारने से ही सब दौड़ आयेंगे और तुम सब जाओगे तो बड़ी देर होगी।' बात ठीक है। बछड़े श्याम का शब्द सुनते ही उसके समीप दौड़ आयेंगे और दूसरों को देखकर तो वे दूर भाग सकते हैं।

'लेकिन वन-पथ बड़ा बीहड़ है!' भद्र से रहा नहीं गया। 'तू काँटे-कंकड़ों में भटकता फिरे, यह ठीक नहीं। हम घेर लायेंगे उनको। थोड़ी देर ही तो लगेगी।'

'हूँ, मैं अभी भूखा हूँ। मुझे देर नहीं करने देना है और भोजन तो तुम सबके साथ ही करूँगा।' यह श्याम भी बड़ा हठी है। जो हठ पकड़ ले, उसे छोड़ना जानता ही नहीं। 'मैं कहाँ काँटे-कंकड़ों की ओर जाता हूँ। वहाँ—उस हरित भूमि से आगे तक जाकर देखता हूँ। वहाँ से तो बछड़े दिखलायी ही पड़ेंगे। फिर तो पुकार लूँगा सबको!' सबका अनुमान यही है कि बछड़े बहुत दूर नहीं गये होंगे। उस हरित कुञ्ज के आगे जाने पर वे दीख जायँगे।

'अच्छा, चल!' सुबल साथ चलने को लकुट उठाने लगा।

'नहीं, तुम सब बैठो! उठने से भोजन का आनन्द भङ्ग हो जायगा। मैं अकेला ही जाऊँगा। अभी चुटकी बजाते लौटता हूँ।' वह अकेला ही चल पड़ा।

'बछड़े कहाँ गये?' गोप-बालकों ने परस्पर एक-दूसरे का मुख देखा। कन्हैया के अनुरोध से वे बैठे रहे; किंतु उनकी दृष्टि वन की ओर जाते श्रीकृष्ण पर लगी है। वह—वह जा रहा है श्याम। वह तो और आगे जा रहा है। बछड़े वहाँ से भी कदाचित् दृष्टि नहीं पड़ते। कितनी दूर गये वे?' उन्होंने मुड़कर पुकारा, लौट आने का आग्रह किया; किंतु श्रीकृष्णने मुड़कर पीछे देखा, उन्हें हँसकर बैठे रहने का संकेत किया। ऐसा भाव दिखाया जैसे बछड़े निकट ही हैं। वे बैठे रहे।

कन्हैया दृष्टिपथ में नहीं है। वृक्षों के झुरमुट की ओट में निकल गया। कहाँ जा रहा है वह, किस मार्ग पर, किस स्थल पर वह चरण रख रहा है। कहाँ रुककर वह इधर-उधर उझककर देखता है, सब बालक हृदय से यह देख रहे हैं। पल-पल भारी हो रहा है।

कक्ष में वेत्र एवं शृङ्ग दबाये, वाम कमलारुण हथेली पर नवनीत का एक उज्ज्वल स्निग्ध ग्रास रक्खे, उसी हथेली की अङ्गुलियों में कुछ फल दबाये श्यामसुन्दर वन-पथ में चला जा रहा है। चला जा रहा है वह। दक्षिण कर की अङ्गुलियाँ दधि से सनी हैं। मुख में भोज्यपदार्थ का कुछ भाग लगा है। जूठे मुँह, जूठे हाथ, हाथ पर ग्रास रक्खे वह बछड़े ढूँढ रहा है। अब दक्षिण हस्त ग्रास को स्पर्श नहीं करता। उसके सखा उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं भोजन के लिये, फिर वह कैसे भोजन कर सकता है। वह लताओं को हटाता, वृक्षों का चक्कर करता, इधर-उधर देखता, कहीं रुकता, कहीं उझकता चला जा रहा है।

'हरित भूमि—तृणों पर कोई चिह्न नहीं। वन-पशु एवं पक्षी पुलिन पर एकत्र हो गये हैं। कपि होते तो वे भी उछल-कूद से कुछ संकेत करते। यहाँ तो कोई पशु भी नहीं। बछड़े गये कहाँ? विलम्ब हो रहा है। सखा मार्ग देखते होंगे।' बछड़ों को लौटाये बिना लौटने पर सखा चिढ़ायेंगे। बछड़ों को तो ढूँढ़ना ही है। वह चला जा रहा है वन-पथ में—चला ही जा रहा है।

—❀⊂❀⊂❀—

विधि-विडम्बना

यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिकं
यावद् यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥

—भागवत १० । १३ । १९

श्रीकृष्ण अन्वेषण कर रहा है—कन्हैया ही ढूँढ़ता है। वह 'सुहृदं सर्वभूतानां', श्रुति के 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' का चिरसखा ही अपने सखाओं को खोजता है। वह स्वयं न खोजे तो उसे कौन पायेगा? वह अन्वेष्य नहीं, अन्वेषक है। उसे अन्वेषण करके पा ले—ऐसा अन्वेषक कहाँ? 'यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः।'

उसके सखा—वत्स एवं वत्सप दोनों ब्रह्मा की माया से मोहित पड़े हैं। यह जगत्कर्ता ब्रह्मा की माया का विस्तार—दृश्य प्रपञ्च—मोहित ही तो किये है समस्त प्राणियों को। मोहित हैं सब—वर्ष चले जाते हैं और क्षण भी प्रतीत नहीं होता। विवश जीव! पर जो श्रीकृष्ण के हैं—उसके सखा हैं, उन्हें तो वह ढूँढ़ ही लेगा। वह अन्वेषण कर रहा है—जूठे मुख, जूठे हाथ, भोजन छोड़ कर, वन-वन अन्वेषण कर रहा है। उसके वाम हस्त पर बड़ा मधुर, बड़ा स्निग्ध ग्रास है—किस के लिये? जिन्हें वह अन्वेषण कर रहा है।

× × × ×

'कन्हैया तो लौटता नहीं है!' सखाओं की प्रतीक्षा की सीमा बहुत छोटी है। वे इधर-उधर उझकने लगे। 'वह पुकारता भी नहीं है—बछड़े दूर चले गये!' अब वे बैठे नहीं रह सकेंगे। श्याम पता नहीं कहाँ भटक रहा है। बछड़े बड़े चञ्चल हैं। उन्हें भी दूर भागने की अभी सूझी थी। लेकिन नेत्र क्यों बंद हो रहे हैं? झपकी सी क्यों आती है? उठा क्यों नहीं जाता? सचमुच उनके नेत्र बंद हो गये अकस्मात्।

'अघासुर—इतना प्रकाण्ड दैत्य मार डाला श्रीकृष्ण ने!' ब्रह्माजी अपने धाम से देवताओं का जयनाद सुनकर आये थे। उन्होंने आश्चर्य से मृत अजगर के मुख से श्रीकृष्णचन्द्र को निकलते देखा। उनके चरणों में उस असुर का तेजोमय तत्त्व देखते-देखते प्रविष्ट हो गया। 'पृथ्वी का भार दूर करने के लिये मैंने प्रार्थना की और भगवान् ने उसे स्वीकार कर लिया। करुणा करके उन्होंने अवतार ग्रहण किया है!'

'द्वापर के युगावतार तो श्रीबलरामजी हैं?' ब्रह्माजी के मनमें संदेह हुआ। शास्त्रों का जितना जिसे अधिक ज्ञान हो, उसे उतना ही संदेह भी तो होता है। 'जीवका तेज तो भगवान् नारायण को छोड़कर दूसरे में प्रविष्ट नहीं होता। सायुज्य देने की सामर्थ्य तो श्रीहरि में ही है! यह नवजलधरवर्ण—जान पड़ता है, प्रभु ने इस बार दो स्वरूपों में अवतार धारण किया है!'

'यह गोपकुमारों का उच्छिष्ट भोजन—सर्वेश ने वेदोद्धार के लिये अवतार धारण किया और उन्हीं के द्वारा मर्यादा का यह अतिक्रम?' वेदों के मूर्त रूप की निष्ठा त्रयी तक ही तो होगी। सखाओं के मध्य श्यामसुन्दर को भोजन करते देख वे विचलित हो गये। 'श्रीपति भला, उच्छिष्ट क्यों ग्रहण करेंगे?'

'अघासुर का ज्योतिर्देह?' इस प्रत्यक्ष को कैसे अस्वीकार किया जाय। 'प्रभु यह कौन-सा नाट्य कर रहे हैं? उनकी यह कौन-सी मनोहर लीला है?' बहुत सोच-विचार करके पितामह ने परीक्षा

लेने का निश्चय किया। बछड़े जैसे ही वन में गोप-बालकों की दृष्टि से ओझल हुए उनको माया से मोहित करके एक गुफा में वे रख आये ! जब कन्हैया बछड़े ढूँढ़ने गया, तब बालकों को मोहित किया और उन्हें भी छीके, पात्र, लकुट प्रभृति के साथ उसी गुफा में ले जाकर रख दिया। वे वहाँ माया-निद्रा में सो गये।

× × × ×

'बछड़े गये कहाँ ?' कन्हैया वन में ढूँढ़ रहा है। 'वे पर्वत पर तो नहीं चले गये ? किसी गम्भीर गुफा में तो नहीं हैं ? कदाचित् वहाँ से निकलने का मार्ग न पाते हों।' गोवर्धन पर चढ़ कर उसने पुकारा। आस-पास की सब गुफाएँ देख डालीं।

'किसी कुञ्ज में सब चरकर बैठे होंगे और पागुर करते होंगे !' कुञ्जें देख ली गयीं। पुकारने पर कोई 'हुम्मा' भी तो नहीं करता। 'कहीं किसी खड्ड में तो नहीं गिरे ! हरे तृणों के लोभ से ऐसा होना अशक्य नहीं !' चरण चञ्चल हो गये। बड़ी आतुरता से उसने एक-एक खड्ड झाँक लिया।

'मुझे बहुत देर हो गयी ! सभी सखा व्याकुल होंगे। बछड़े अकेले मिलते दीखते नहीं। सबको बुला लाऊँ। सब मिलकर ढूँढ़ेंगे। कहीं सब-के-सब घर न भाग गये हों !' वह पुलिन की ओर लौटा। बछड़े घर चले गये हो सकते हैं, सखाओं को चिन्तित करना ठीक नहीं।

'मैं आज मार्ग भूल रहा हूँ !' पुलिन पर कोई नहीं है। लेकिन यहीं तो सब बैठे थे। यह क्या रेत पर सबके बैठने के चिह्न हैं !' अब भी वहाँ पक्षी एकाध कण पा जाने के प्रयत्न में हैं। कपिदल सीमान्त से कन्हैया के पास लौट आया ! बंदर विचित्र भाँति से मुख बनाकर देख रहे हैं और कूद रहे हैं। यह सब देखने का अवकाश नहीं है श्याम को।

'मुझे बहुत विलम्ब हुआ !' श्रीकृष्ण ने विचार किया। 'बेचारे प्रतीक्षा करते-करते थक गये तो छीके लेकर वन में मुझे ढूँढ़ने चले गये।' अब वन की ओर पुनः लौटना था।

'तनिक यहाँ रुकूँ, कदाचित कोई सखा लौट आये !' एक क्षण को चरण रुके। 'बुलाना ठीक होगा !' 'श्यामसुन्दर यह ग्रास तो अब कहीं-न-कहीं विसर्जित ही करेंगे, सखाओं के बिना भोजन तो वे करने से रहे !' इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि उसके एक-एक कण की आशा लगाये थे; किंतु ग्रास तो कन्हैया ने बंदरों को दे दिया। झटपट हाथ-मुख पोंछ लिये पटुके से और कक्ष से निकालकर शृङ्ग फूँका। एक बार, दो बार—कई बार। कहाँ ? कहीं से किसी का शृङ्ग उत्तर कहाँ देता है।

'सखा दूर वन में चले गये !' वह बड़ी तीव्रता से पुनः कानन में प्रविष्ट हुआ। बछड़े तो घर भाग गये हो सकते हैं, किंतु कोई सखा उसे वन में छोड़कर घर जाने की बात भी नहीं सोच सकता। अवश्य वे उसे ही अन्वेषण करने गये हैं।

'सुबल ! श्रीदाम ! भद्र ! अरे कहाँ हो सब ? छिपो मत ! मैं थक गया हूँ, बोलो तो !' पुकार—कोई उत्तर नहीं इस बार-बार की पुकार का। अनेक बार का शृङ्गनाद भी केवल पर्वतों से ही प्रतिध्वनित होता है।

जिसकी श्रुतियाँ युग-युग से स्तुति करती हैं, साधन-परिशुद्ध हृदय जिसे बड़ी आकुलता से प्रतिपल पुकारता है, आज वह गोपकुमारों को पुकारते-पुकारते थका जा रहा है। यज्ञों में जिसका बड़ी विधि से आह्वान होता है, वह आज स्वयं पल-पल आतुर आह्वान कर रहा है। बड़ी प्रबल लालसा लेकर भाव-विभोर हृदय जिसके कर्णों तक एक बार अपनी प्रार्थना पहुँचा देना चाहता है, उसके कर्ण सखाओं की एक किलक अथवा बछड़ों की एक 'हुम्मा' सुनने को उत्कर्ण हैं। योगियों की युगों की समाधि जिसके रूप की एक पल की झाँकी पर निछावर होकर सार्थक होने की प्रतीक्षा करती है,' उसके नेत्र भी किसी सखा के पटुके की कोर की झलक को आज उत्कण्ठित हैं। जिसे प्रकृति का कण-कण अनन्त काल से ढूँढ़ रहा है, जो समस्त साधनों का अन्वेष्य है, वही आज वन-वन भटककर आभीर-बालकों का अन्वेषण कर रहा है।

'मेरे सखा—कहाँ गये वे ? पता नहीं कितने व्याकुल होंगे !' मध्याह्न हुआ, सूर्य पश्चिम की ओर चले, सायंकाल समीप आ गया; किंतु उसे बैठने का अवकाश नहीं। उसके चरण रुकते नहीं। क्षुधा पता नहीं कहाँ चली गयी। बार-बार शृङ्ग बजता है, बार-बार पुकार होती है। 'कहाँ गये सब ?'

'कोई असुर······' प्रेम बड़ा शङ्काशील होता है। 'मैंने सब वन तो देख डाला!' सचमुच कन्हैया ने एक-एक कुञ्ज, एक-एक गुहा, प्रत्येक झुरमुट छान लिया। सायंकाल समीप आ चुका है, सखा घर तो लौट सकते ही नहीं।

ये बंदर क्यों मेरे पीछे पड़े हैं? ये इस प्रकार मुख बनाकर क्यों ऊपर देखते हैं? क्यों बार-बार मेरा पटुका खींचते हैं ये?' अब तक सखाओं के अन्वेषण में ध्यान होने से कपियों के अद्भुत व्यवहार पर ध्यान नहीं गया था। 'मेरे साथी कहाँ गये?' ध्यान जाने पर कुछ विचित्र चेष्टा लगी। अवश्य ये कुछ कहते हैं। उसने पूछा।

'ऊपर-ऊपर क्या?' बंदरों का संकेत बराबर ऊपर है। वे ऊपर हाथ उठाते और किलकते हैं। 'ऊपर तो देवताओं के विमान हैं? कोई असुर आकाश में तो सबको नहीं ले गया? नहीं, असुर आता तो देवविमान पलायन करते या संघर्ष। ऐसा कुछ नहीं हुआ। तब क्या देवताओं में से किसी को परिहास सूझा है? कौन होगा वह?' वह विमानों को एकाग्र दृष्टि से देखने लगा।

'अच्छा!' खुलकर हँस पड़ा। विमानों में पितामह के हंस का पता नहीं। पितामह पधारे थे, यह तो देख ही लिया था उसने; भले ही देवताओं ने स्रष्टा को न देखा हो। 'वृद्ध पितामह को बच्चों से परिहास सूझा है! वे बड़े हैं, प्रसन्न करना चाहिये उन्हें!'

सब गोप-बालक, समस्त बछड़े एक क्षण में प्रकट हो गये। वैसे ही बछड़े, उन्हीं रङ्गों के, वैसे ही चपल। उन्हीं अवस्थाओं के गोप-बालक, वैसे ही स्वभाववाले, उन्हीं वस्त्राभरणों में, वैसे ही वेत्र-लकुट, शृङ्ग एवं छीके लिये। सब गुण, स्वभाव, नाम, रूप, अवस्था से जैसे वे ही हों। सम्पूर्ण अभिव्यक्ति कन्हैया की ही तो है। श्रुति उसे ही तो कहती है कि 'रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।' आज कन्हैया प्रत्यक्ष अपने सखा एवं बछड़ों के रूप में होकर श्रुति की सत्यता का समर्थन कर रहा है।

संध्याकाल समीप है। बछड़े आगे हो गये, सखाओं ने श्यामसुन्दर को घेर लिया। कन्हैया ने मुरली रक्खी अधर पर, सखा ताली बजाकर गाते जाते हैं। यह आज का चिन्मय गोपबालक-वत्स-समूह व्रजेन्द्र के भवन की ओर वन से चला।

× × × ×

'श्याम कब आयेगा? संध्या तो होने को आयी, वह अभी लौटा नहीं। पता नहीं कहाँ होगा। दिन भर भूखा रहा वह। भला, शीतल भोजन क्या रुचा होगा!' मैया की चिन्ता का पार नहीं। वह बार-बार देहली से बाहर आती है। घर में एक पल रुका नहीं जाता। 'दाऊ, तू देख तो, कनूँ आ रहा है?' बाबा पहिले ही आगे जा चुके। कई दूसरे लोगों को भेजने पर भी संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने बलभद्र को कहा।

व्रज में आज सब विक्षिप्त-से ही हैं। दिन भर से वह श्याममुख देखने को नहीं मिला। उन्हें लगता है युग व्यतीत हो गये। कर्ण मुरली-ध्वनि सुनने को उत्कण्ठित हैं। बार-बार नेत्र वन-पथ की ओर जाते हैं। घर से निकलकर देख लेना सबके लिये स्वाभाविक हो रहा है। अन्त में पथ पर आ रहे सब।

'वह बजी मुरली!' अट्टालिकाएँ झूम उठीं। मार्ग के दोनों ओर पंक्ति बन गयी। गायों ने गोष्ठ में हुंकार भरना प्रारम्भ किया। 'वे पक्षी मँडरा रहे हैं! वह धूलि उड़ रही है! वे रहे बछड़े!'

'आज यह क्या है?' दाऊ ने मन-ही-मन सोचा। नित्य तो व्रज के सब लोग कन्हैया के पीछे-पीछे बाबा के द्वार तक जाते थे। बछड़े भी सब अपने गोष्ठ में ही जाते थे। सब सखा सायं-कालीन जलपान कन्हैया के साथ ही करते थे। श्रीव्रजराज के गोष्ठ से गोप अपने-अपने बछड़े हाँक लाते थे। पर आज तो ऐसा कुछ नहीं हुआ गोपोंने अपने बच्चों को उल्लसित होकर हृदय से लगाया। बछड़ों को गोप-बालकों ने मार्ग से ही अपने घरों की ओर हाँक दिया। बछड़े भी अपने गोष्ठों की ओर उछलते चले गये। माताएँ द्वार तक अपने बच्चों को लेने दौड़ी आयीं। दाऊ, कन्हैया, और नन्द बाबा अपने बछड़ों के साथ ये ही अपने गोष्ठ तक पहुँचे। 'जान पड़ता है, सब दिन भर वन में रहने से बहुत क्षुधित हैं। इसी से घर चले गये।' दाऊ ने अपना समाधान कर लिया।

गोष्ठ में गायों ने बछड़ों को देखा, उनके स्तनों से दुग्ध-धारा झरने लगी। बछड़े दूध पीने लगे। गायें चाटने लगीं उन्हें। इन बछड़ों से छोटे बछड़े हैं गायों के, ये दूध छोड़ चुके हैं; किंतु आज नवीन वात्सल्य जग गया है गौओं में।

'श्याम मेरा पुत्र होता !' व्रजदेवियों में यह भाव नित्य उन्हें उद्विग्न करता था। गायें उस नीरदनील को चाटने के लिये मुख बढ़ाकर रुक जाया करती थीं। इतना कोमल शरीर खुरदरी जिह्वा से चाटा कैसे जाय—पशु होने पर भी इतनी समझ तो उनमें है ही। आज व्रजदेवियों को अपने पुत्रों में, गायों को बछड़ों में वही रस, वही आनन्द मिल रहा है। उस भक्त-भावन ने सबकी भावना पूर्ण कर दी आज।

'मेरा लाल !' आज प्रत्येक माता के हृदय में मैया यशोदा का वात्सल्य उमड़ आया है। प्रत्येक गोप-बालक कन्हैया जो है। 'मुख सूख गया है। दिन भर से भूखा है !' माताओं ने गोद में उठा लिया। वात्सल्य उज्ज्वल दुग्ध बनकर हृदय से निकल रहा है। मुख धोकर कलेऊ कराया उन्होंने। प्रत्येक गृह आज नन्दभवन है। प्रत्येक गृह में बच्चों को उसी स्नेह से स्नान कराया जा रहा है, वस्त्र बदलकर तैल लगाया जा रहा है, तिलक किया जा रहा है या खिलाया जा रहा है, जो स्नेह श्याम को प्राप्त है।

× × × ×

'कनूँ !' दाऊ ने सम्बोधित किया। श्याम ने एक बार शिखर से पूँछ उठाये दौड़ती आती गायों की ओर देखा और मुस्करा पड़ा। गायें हुंकार कर रही हैं। लताएँ तोड़ती, पत्थर लुढ़काती वे वेग से दौड़ती नीचे आ रही हैं। मार्ग की उन्हें चिन्ता नहीं। उन्होंने गिरिराज के शिखर पर चरते समय नीचे चरते अपने बछड़ों को देख लिया और दौड़ पड़ीं।

हाँफते, लाठी उठाये, स्वेद से लथपथ, क्रोध से कुछ अरुणाभ मुख किये गोप पीछे दौड़ते आ रहे हैं गायों के। उनकी पगड़ियाँ अस्त-व्यस्त हो गयी हैं। गायों को रोकने का प्रयत्न करके विफल हो चुके हैं वे। पूरी शक्ति से दौड़कर भी उन्हें आगे से घेर नहीं पा रहे हैं। 'अवश्य वे आकर गायों को एकाध लाठी तो मारेंगे ही। यह कैसे देखा जायगा !' दाऊ के सम्बोधन में यह आशङ्का है।

गायें आयीं और सीधे अपने-अपने बछड़ों को चाटने में जुट पड़ीं। बछड़े दूध पीने लगे। पीछे गोप आते होंगे, यह भूल ही गया उन्हें। गोप दो क्षण पीछे ही आये। क्या हुआ उनका क्रोध ? बालकों पर दृष्टि पड़ी। लाठियोंवाले हाथ नीचे हो गये। 'तू यहीं है ?' प्रत्येक ने अपने बच्चे को हृदय से लगा लिया। प्रत्येक अपने बालक के सिर पर हाथ फेर रहा है। 'शीघ्र घर लौट जाना !' बड़ी कठिनता से बच्चों को पृथक् कर सके वे। गायें दूध पिला चुकने पर किसी प्रकार हाँकी जा सकीं। वे बार-बार भाग आने का प्रयत्न करती हैं। गोप मुड़-मुड़कर बच्चों को देखते जाते हैं।

'कन्हैया की ओर इनमें से किसी का ध्यान ही नहीं गया। जैसे वह यहाँ है ही नहीं !' दाऊ को आश्चर्य हुआ। 'ये गायें अपने इन बच्चों से इतना प्रेम क्यों करती हैं ? यह तो पशु-स्वभाव के विपरीत है !' वे सोचने लगे।

'उस दिन—हाँ, स्मरण आया एक वर्ष पूर्व जिस दिन श्याम प्रथम दिन दिन भर वन में रहा, उसी दिन से व्रज में यह व्यतिक्रम हुआ है। पहिले तो सब केवल कन्हैया से ही प्रेम करते थे। मनुष्य-गायें-कपि और पक्षी भी; परंतु उसी दिन से यह दशा हो गयी है। फिर गायें अपने दूध पीते बछड़ों से स्नेह क्यों नहीं करतीं ? इन बछड़ों में क्या विशेषता है ? उसी दिन से व्रजवासियों का स्नेह बालकों में बढ़ता ही जाता है। वह सीमातीत हो चुका है। पक्षी, कपि—वे भी किसी बालक के साथ हो लेते हैं। उसी दिन से—पूरा वर्ष होने को आ रहा है—सायंकाल गोपियाँ, गोप, कोई उत्सुक नहीं होता कन्हाई के लिये। सब अपने ही बच्चों को लेकर घर चले जाते हैं। मैं ही कनू के साथ घर आता हू। गायें भी अब इन बछड़ों से ही स्नेह करने लगी हैं। मैया के पास न गोपियाँ आज-कल आतीं, न द्वार पर गोपों का समुदाय एकत्र होता। कन्हैया तो प्रेम करने के लिये ही है। वह

तो है ही प्रेममय—परंतु सभी बालकों में उसके समान ही प्रेमाकर्षण क्यों ?' दाऊ को अपने कान्ह की उपेक्षा लगी इसमें !

'हाँ—मैं उस दिन कन्हैया के साथ नहीं जा सका था। उस दिन मेरा जन्मन-क्षत्र था। उसी दिन से यह विचित्र स्थिति प्रारम्भ हुई। बनमें कोई असुर आया उस दिन ? उसने कोई माया फैलायी है, जिससे व्रजवासियों का आकर्षण श्रीकृष्ण से दूर हो जाय ?' आशङ्का हुई। बात ठीक है, यदि व्रज के लोगों का प्रेम श्रीकृष्ण से पृथक् हो जाय तो श्रीकृष्ण व्रज की रक्षा करना छोड़ देंगे। वे तो प्रेम के वश में हैं। फिर व्रज का विनाश करना सहज होगा। राक्षस ऐसा सोच तो सकते हैं।

'आसुरी माया कन्हैया के सांनिध्य में टिकेगी कैसे ? देवताओं में से किसी की माया हो तो ?' देवता बड़े ईर्ष्यालु हैं। श्यामसुन्दर को सब लोग इतना चाहें, उनसे यह देखा न गया होगा।

'एक वर्ष हो गया, मुझे इस रहस्य का पता तक न लगा। मेरे मनमें अब तक संदेह न आया !' दाऊ की ऐश्वर्यशक्ति उपस्थित हो गयी। 'मुझे वर्ष भर तक तो क्या, क्षण भर भी प्रभावित कर सके—ऐसी शक्ति राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, देवता, किसी में नहीं। मुझे तो केवल मेरे श्यामसुन्दर की योगमाया ही विस्मृत कर सकती है। वही मुझे मोहित करने में समर्थ है। यह कोई कृष्ण की ही लीला है !'

दाऊ ने छोटे भाई के मुख की ओर देखा। वह मुस्करा रहा है। 'क्या लीला है ?' एक क्षण को नेत्र बंद हो गये। 'अच्छा !' हँस पड़े वे।

'सब एक ही है, सब भेदों में अभेद व्याप्त है—श्रुति ऐसा क्यों कहती यदि तू यह नाट्य न करता !' लेकिन दूसरे ही क्षण उनका स्वर्णगौर अरुणाभ मुख गम्भीर हो गया। 'कनूँ, अपने सखा गुहा में बंद हैं न ?' लीला तो ठीक; परंतु वे परम दयामय सखाओं को इस प्रकार माया-मुग्ध समझते ही क्षुब्ध-से हो गये।

'वे सब तो आनन्द से सो रहे हैं !' बड़े भैया से बहानेबाजी व्यर्थ है। श्याम ने सीधे कह दिया। 'आप दो क्षण यहीं रुकें, उनके उठने की व्यवस्था हुई जाती है !' यों कहकर एक ओर एक कुञ्ज की ओट में चला गया।

× × × ×

'मेरी तो एक त्रुटि हुई, परंतु मनुष्यों का एक वर्ष हो गया !' ब्रह्मलोक की ओर जाने में हंस को जैसे कोई उत्साह नहीं। अपने आरोही के असमञ्जस ने उसे शिथिल कर दिया था। 'प्रभु क्या करेंगे ? यहीं रहूँ या ब्रह्मलोक जाऊँ ?' हृदय कोई समाधान नहीं दे रहा था। ब्रह्माजी सहसा लौटे। 'नन्हे-नन्हे बच्चे, छोटे-छोटे बछड़े, उनको गुफा में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? उनका कोई प्रारब्ध ऐसा नहीं, जिससे उन्हें कष्ट हो। उनके माता-पिता, बन्धु-बान्धव, स्वजन—बड़ा अन्याय हुआ मुझसे। मैंने यह तो देखा ही नहीं कि उन मनुष्यों या गायों में से किसी के प्रारब्ध कर्म स्वजन-वियोग का दुःख दें, ऐसे नहीं। बिना प्रारब्ध के कष्ट मिलना तो महान् अनर्थ है। आज यह नवीन बात हुई।' लोकपितामह से कौन पूछे कि इन बच्चों और बछड़ों तथा व्रजवासियों का कोई और भी प्रारब्ध आपको दीखता है या यही प्रारब्ध देखने चले हैं आप। वे आपकी सृष्टि के हों तो प्रारब्ध दीखे। वे चञ्चल हो गये। हंस समीप आ गया।

'बच्चे तो अभी सो रहे हैं ! उन्हें कोई कष्ट हुआ, ऐसे लक्षण नहीं हैं।' मार्ग में पहिले गुफा देख ली। अभी बालकों एवं बछड़ों को उठा देना ठीक नहीं। व्रज की परिस्थिति देखकर उन्हें अनुकूल समय पर उपस्थित करना ही समीचीन जान पड़ा। हंस वृन्दावन की ओर चल पड़ा।

'हैं !' हँस रुका। स्रष्टा के आठों नेत्र नीचे लगे हैं। उनके विस्मय का पार नहीं। 'ये श्रीकृष्णचन्द्र, ये गोप-बालक, ये बछड़े ? मैंने तो व्रज में एक बछड़ा या बालक छोड़ा नहीं था। ये श्रीकृष्ण के साथ खेलनेवाले कहाँ से आये ?' सृष्टिकर्ता को गणना करने में विलम्ब नहीं

हुआ। 'उतने ही बालक, उतने ही बछड़े ! इन सबकी आकृति भी ठीक वैसी ही है और हैं भी सब अवस्था में उतने ही बड़े। वय में केवल एक वर्ष का अन्तर पड़ा और वही अन्तर जो इस बीच में व्यतीत हुआ है !'

'कहीं वे गुफा से मुझसे पहिले ही तो यहाँ नहीं आ गये ?' ब्रह्माजी फिर गुफा की ओर उड़े। 'ये तो यहीं सो रहे हैं !' लौटने पर व्रजभूमि में फिर वही दृश्य। बड़े चकराये। सच्चे बालक एवं बछड़े कौन-से हैं ? दोनों में से एक तो मायिक प्रतीत होने ही चाहिये। दोनों स्थानों को उन्होंने आकाश से एक साथ देखा। चतुर्मुख के दो मुख गुफा की ओर थे और दो वृन्दावन की ओर। कोई लाभ नहीं हुआ इससे। स्रष्टा का प्रयत्न व्यर्थ है। ये सोनेवाले उनकी सृष्टि के प्राणी नहीं और न ये खेलनेवाले इन्द्रजाल हैं। उनकी बुद्धि इस चिन्मय तत्त्व को भेदन करने में असमर्थ है। उन्होंने नित्य प्रारब्ध के कारण जीवों की विडम्बना ही की थी। आज व्रज की प्रेमभूमि में स्वयं विधि की विडम्बना का अवसर था।

ब्रह्माजी ने मस्तक झुका लिया क्षण भर को। पुनः सिर उठाकर देखा और देखते रह गये। वही वृन्दावन, वही कालिन्दी की धारा; परंतु गोप-बालक, बछड़े, श्रीकृष्ण—कोई नहीं है वहाँ। प्रत्येक बालक या बछड़ा—नहीं-नहीं, वे तो साक्षात् भगवान् विष्णु हैं इतने रूपों में। प्रत्येक शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी तथा किरीट, कुण्डल, मणिमाला एवं वनमाला से आभूषित। पार्षद—पार्षद भी भगवद्रूपधारी होते हैं, पर पार्षद नहीं हैं ये। प्रत्येक के वक्षपर श्रीवत्स का चिह्न है, भृगुलता है, शङ्ख-जैसे कण्ठ में कौस्तुभमणि है। सारूप्य-प्राप्त पार्षदों में ये लक्षण तो होते नहीं। करों में कङ्कण, पैरों में नूपुर, भुजाओं में अङ्गद, कटि में किङ्किणी तथा अँगुलियों में अँगूठियाँ धारण किये हैं सब। यहीं तक नहीं—महान् पुण्यात्माओं द्वारा चढ़ायी हुई नवमञ्जरीयुक्त कोमल तुलसीदल की मालाओं से मस्तक से लेकर श्रीचरण तक सबके सम्पूर्ण अङ्ग सुसज्जित हैं। भगवान् के अतिरिक्त—दूसरा कोई चरणों पर तुलसी कैसे धारण करेगा—कोई महापुरुष चढ़ा ही कैसे सकता है किसी दूसरे के चरणों पर तुलसीदल। तब सब श्रीहरि हैं इतने श्रीहरि ? हानि क्या—बहुत-से ब्रह्माण्डों के पालक विष्णु आ गये होंगे आज यहाँ। अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, अतः भगवान् विष्णु के इतने स्वरूपों का एकत्र होना कोई बड़ी बात नहीं है।

यह समाधान ब्रह्माजी को संतोष दे, ऐसी स्थिति नहीं है। इन विविध रूपों में से प्रत्येक भगवद्रूप अपने निर्मल चन्द्रज्योत्स्ना-जैसे हास्य से सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के पालक विष्णुस्वरूपों को पुष्ट कर रहा है। अपने कमलारुण नेत्रों के अरुणिम कटाक्ष से वहाँ के अधिष्ठाता सृष्टिकर्ताओं को सर्जनशक्ति दे रहा है और उसका कुटिल भ्रूमण्डल ही ब्रह्माण्डों के विनाशक रुद्रों की संहार-शक्ति का उद्गम है। अपने उज्ज्वल हास्य, करुण कटाक्ष, कुटिल भ्रूकुञ्चन से प्रत्येक रूप सत्व, रज एवं तमोगुण के अधिष्ठाताओं का भी पालक स्पष्ट ब्रह्माजी को दृष्टि पड़ रहा है। भला, इस परात्पर स्वरूप को ब्रह्माण्डाधीश कैसे समझ सकते हैं वे। परात्पर रूप और वह भी इतनी संख्या में ?

वे रूप अकेले-अकेले नहीं हैं। तृण से लेकर ब्रह्मलोक तक के अधिष्ठाता देवता प्रत्येक की उपासना कर रहे हैं। प्रत्येक के समीप दूसरे देवताओं के साथ एक-एक ब्रह्मा भी हैं उपासकों में। वे उपासक नृत्य करते हैं, अनेक प्रकार से गाते हैं, शङ्खादि वाद्य बजाते हैं। उपासना-लग्न हैं सब। अणिमा-महिमादि सब सिद्धियाँ, माया-योगमायादि समस्त विभूतियाँ, प्रकृति-महत्तत्त्व-अहंकारादि चौबीसों तत्त्व—ये सब मूर्तिमान् होकर प्रत्येक की सेवा कर रहे हैं। काल, कर्म, स्वभाव, संस्कार, वासना, गुण प्रभृति सबके अधिदेवता उनकी सेवा में हैं। अपने प्रभाव से ही इन सब देवताओं के मलिन स्वभाव को उन्होंने निरस्त कर दिया है। शुद्ध, शान्त होकर सब वहाँ प्रत्येक की उपासना में लगे हैं।

ब्रह्माजी व्याकुल हो गये। एक क्षण के लिये एक बार जैसे विद्युत् स्पर्श कर जाय, हृदय में एक अनुभूति झलक दे गयी। 'जिनका माहात्म्य अनन्त है एवं उपनिषत् के परममर्मज्ञों की अन्त-

दृष्टि भी जिसका स्पर्श तक नहीं कर पाती, ये तो उसी सत्य, ज्ञान एवं आनन्द के घनीभूत रसमय विग्रह हैं! जिनके आभास से—प्रतिबिम्ब से ही सचराचर प्रकाशित है चैतन्य एवं सत्ता में है, वही परमब्रह्म इन सम्पूर्ण रूपों में प्रत्यक्ष है।' एक ही बार, एक ही क्षण के लिये यह अनुभूति हुई। नेत्र बंद हो गये। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ सुप्त हो गयीं। ब्रह्माजी इस प्रकार निश्चल हो गये जैसे हंस पर किसी ने चतुर्मुख प्रतिमा बनाकर रख दी हो। आये थे श्यामसुन्दर को मोहित करने और स्वयं मोहित हुए हंस पर बैठे हैं।

समर्थ नहीं हैं वे उस स्वरूप के साक्षात् करने में। एक क्षण की अनुभूति ने ही 'यह क्या ?' इस प्रकार स्तब्ध कर दिया उन्हें। वे उसे देखने में समर्थ न हो सके। श्यामसुन्दर ने उनकी ओर देखा और दूसरे ही क्षण उस अनुभूति पर पर्दा पड़ गया।

इन्द्रियों में चेतना आयी, जैसे ब्रह्माजी का पुनर्जन्म हुआ हो। प्रत्येक इन्द्रिय में क्रमशः चेतना, हिलने की शक्ति आ गयी। बड़ी कठिनाई से वे धीरे-धीरे पलकें खोल सके। पहिले उन्होंने अपने को ही देखा। यहाँ वे क्यों आये हैं, यह स्मरण हुआ। स्मृति लौटी। झटपट चारों ओर देखने लगे। उन्होंने नीचे देखा—वही वृन्दावन! लताएँ झूम रही हैं, वृक्ष फलभार से लदे हैं,। शुक, पिक, मयूर—सब अपनी-अपनी क्रीड़ा में लगे हैं। बंदर उछल रहे हैं और आश्चर्य से कभी ऊपर और कभी श्यामसुन्दर की ओर देख रहे हैं।

'यह वृन्दावन!' ब्रह्माजी ने देखा 'यहाँ तो मनुष्य, मृग, सिंह, मयूर, सर्प, वृक, शशक—सब प्राणी साथ रहते हैं! इस भूमि में स्वतः मन का कषाय नष्ट हो जाता है। क्रोध, द्वेष, छल यहाँ पशुओं तक में नहीं।'

'वृन्दावन के अधीश्वर, गोपकुमार का नाट्य करने वाले ये अनन्त ज्ञानघन अद्वय परात्पर परमब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र!' दृष्टि वन से हटकर व्रजेन्द्रकुमार पर गयी। वही वेष—वही नाट्य! कटि में मुरली लगाये, कक्ष में वेत्र दबाये, बायें हाथ की हथेली पर एक ग्रास रक्खे, दाहिने हाथ में शृङ्ग लिये 'ओ सुबल, अरे श्रीदामा! हे भद्र! कहाँ हो तुम सब? अरे छिपो मत! बोलो तो सही!' चारों ओर सखाओं को ढूँढ़ता फिर रहा है श्यामसुन्दर।

'क्षमा! क्षमा! करुणामय! प्रभो!' ब्रह्माजी हंस के भूमि पर उतरने की प्रतीक्षा नहीं कर सके। कूद पड़े सीधे और जैसे स्वर्णदण्ड किसी के हाथ से छूटकर भूमि पर गिर पड़ा हो, उन हिरण्यगर्भ का शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उनके चारों मुकुटों के किरीटों का अग्रभाग श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श कर रहा है। किरीटों की उज्ज्वल मणियाँ, उस चरणाग्र की अरुणिमा से रञ्जित हो उठी हैं। श्याम—वह तो मुसकराता हुआ शान्त खड़ा है।

ब्रह्म-स्तुति

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥

— भागवत १०।१४।१

वाम पद्मारुण हथेली पर नवनीत का उज्ज्वल खण्ड लिये, कक्ष में वेत्र दबाये, कटि में मुरली लगाये, दाहिने हाथ में शृङ्ग लिये वह पीताम्बरपरिवेष्टित मयूरमुकुटी वनमाली नवजलधरश्याम अपने चरणों के सम्मुख लेटे, चतुर्मुख, स्वर्णगौर, रजतश्मश्रु स्रष्टा की ओर देख रहा है। अधरों पर मन्द स्मित है और नेत्रों में एक विचित्र कुतूहलभाव।

प्रकृति स्तब्ध है। वृक्षों के पत्ते तक नहीं हिलते। कीर का बोलना बंद है। पिक मूक हो गया है। कपियों में उछल-कूद नहीं रही, केवल उनके नेत्र अवश्य आश्चर्यचकित हैं। जैसे सब जड-चेतन देख रहे हैं-यह क्या हो रहा है? कन्हैया को आज यह क्या परिहास सूझा है।

ब्रह्माजी—उन्हें केवल वे श्रीचरण दीखते हैं। अरुण, मृदुल, ज्योतिर्मय श्रीचरण। उनके आठों नेत्रों से धारा चल रही है। प्रेमाश्रु की धारा—क्योंकि क्षार अश्रु तो देवताओं के ही नेत्रों में नहीं आते। वे किसी प्रकार उठते हैं, कन्हैया के अङ्गुष्ठाग्र का पलकों से स्पर्श करते हैं और फिर साष्टांग करने लगते हैं। उनके प्रणामों को विराम नहीं है। वे उठते हैं और फिर प्रणाम करते हैं। कन्हैया चुपचाप खड़ा है। उसके दोनों चरण अश्रुधारा से धुल गये हैं-धुल रहे हैं। ब्रह्मा जी उठते हैं, उस देखी हुई महिमा का स्मरण करते हैं और फिर प्रणत हो जाते हैं। बड़ी देर तक यह क्रम चलता रहा।

बहुत देर—शत-शत प्रणिपात के अनन्तर सृष्टिकर्ता ने अपने को तनिक आश्वस्त किया। वे धीरे से उठे, नेत्र पोंछे। एक बार श्यामसुन्दर की ओर देखा—गर्दन झुक गयी। दोनों हाथ जोड़ लिये। जैसे अपने को वे निराश्रय अनुभव कर रहे हों और आश्रय की याचना करते हों। मन उस श्याम रूप में एकाग्र हो रहा था। शरीर में कम्प था। गद्‌गद वाणी से वे स्तुति करने लगे।

'नवजलधरश्याम, विद्युद्वसन, गुञ्जागुच्छों को कुण्डल बनाये, मयूरमुकुटी, वनमाली, हथेली पर ग्रास रक्खे, कक्ष में वेत्र दबाये, कटिवस्त्र में मुरलिका खोंसे, दक्षिण हस्त में शृङ्ग लिये, शोभासिन्धु, किसलयकोमलचरण गोपाल, स्तवनीय प्रभु, आपको प्रणाम!' दृष्टि ने शरीर का वर्ण देखा, वसन देखे और फिर कुण्डलों की अरुणाभा से मयूर-मुकुट तक जाकर वह क्रमशः श्रीचरणों पर उपस्थित हो गयी। ब्रह्माजी इस छवि में क्षण भर निमग्न रहे।

'करुणामय, आपने यह गोपाल-वेश मुझ पर कृपा करने के लिये—मेरी प्रार्थना पर, मेरे सर्जन की विकृति को दूर करने के लिये धारण किया है। आपका यह स्वेच्छा-विग्रह—इसमें पाञ्च-भौतिकता की गन्ध तक नहीं। इस आपके साक्षात् विग्रह की महिमा भी मन के द्वारा हृदय में लाने में मैं असमर्थ हूँ, जिसका अनुभव आपने कृपा करके एक क्षण के लिये अभी कराया।

'ज्ञानस्वरूप का अनुभव हो भी तो क्या लाभ—मैंने सदा देखा है कि ज्ञानस्वरूप की अनुभूति का प्रयत्न छोड़कर, बिना घर से कहीं गये, घर पधारे संतों के श्रीमुख से निकली आपकी कथा का श्रवण करते हुए जो लोग आपको ही प्रणाम करते हैं, शरीर से आपकी अर्चा करते हैं, वाणी से आपका गुणानुवाद गाते हैं, मनसे आपका चिन्तन करते हैं, त्रिलोकी में सबसे अजेय होने पर भी आप उनके द्वारा जीत लिये जाते हैं।

'दूसरी ओर जो आपकी कल्याण-स्रोतस्विनी भक्ति की उपेक्षा करके कैवल्यज्ञान की प्राप्ति का ही प्रयत्न करते हैं, उनको केवल क्लेश ही प्राप्त होता है। धान्य की भुस कूटनेवाले को श्रम के अतिरिक्त और क्या हाथ लगना है।

'यह नवीन बात—इस व्रजभूमि में आकर हो गयी हो, सो नहीं। प्राचीन काल से बहुत-से योगी अपनी समस्त इच्छाएँ आप पर छोड़कर, अपने प्रारब्धप्राप्त भोगों पर संतुष्ट रहते हुए, आपकी अमृतमयी कथा से प्राप्त भक्ति के द्वारा आपके आराध्य स्वरूप को जानकर इस संसार से आपके शाश्वत, च्युतिहीन, निर्मल परम धाम को प्राप्त हुए हैं।

'इतना होने पर भी, हे विभु, जो निर्मल-अन्तःकरण पुरुष हैं, वे ही आपके निखिलगुण-गणैकधाम स्वरूप को जान पाते हैं; क्योंकि आपका स्वरूप निर्विकार, स्वानुभवरूप, समस्त रूपों से परे होने से एकात्मरूप से ही जानने योग्य है। दूसरा कोई मार्ग ही नहीं उसके जानने का।

'आप सम्पूर्ण गुणों की आत्मा हैं। सम्पूर्ण गुण आप से ही अपना गुणत्व प्राप्त करते हैं। अतः मेरे कल्याण के लिये अवतार धारण किये आपके गुणों की गणना करने में कौन समर्थ हो सकता है! अनन्त काल में भूमि के रजःकण, आकाश के तारे, वायु में उड़नेवाले त्रसरेणु भले गिने जा सकें, परंतु आपके गुणों का वर्णन तो सम्भव नहीं।'

इसलिये जो, आप कब कृपा करेंगे!' इस प्रकार आपके कृपा-कटाक्ष की अनवरत प्रतीक्षा करते हैं, प्रारब्ध के भोगों को शान्त भाव से भोगते हुए, हृदय, वाणी एवं शरीर से आपके प्रति प्रणत रहकर जीवनयापन करते हैं, मुक्तिपद के तो वे स्वतःसिद्ध अधिकारी हैं।'

श्यामसुन्दर-छवि सम्मुख है। 'मुझपर कृपा करके ही प्रभु इस रूप से धरा पर आये हैं' यह स्मरण हुआ—श्रीविग्रह का महत्त्व मन से वाणी में प्रकट हुआ। उस श्रीविग्रह से स्नेह एवं उससे पृथक् साधना के परिपाक पर ध्यान गया। इस सौन्दर्यघन के प्रेम ने कितनों को परिपूत किया है, यह भी मानस में प्रत्यक्ष हुआ। 'यह लीलामय रूप—निर्गुण स्वरूप भी इसी का है; पर वह तो निर्मल अन्तःकरण की सम्पत्ति है। लीलाचिन्तन, गुणकथन ही उपाय है एक मात्र; परंतु गुणों का तो कोई पार ही नहीं। तब ? तब जिसकी कृपा की प्रतीक्षा में ही मुक्तिपद 'दाय' बन जाता है वहाँ की करुणा का कोई ठिकाना है! 'ऐसे दयामय से मैंने छल किया!' ब्रह्माजी का मस्तक और झुक गया। उनकी वाणी और गद्‌गद हो गयी।

'मैं आर्यमर्यादा का प्रतिष्ठाता कहा जाता हूँ; किंतु प्रभो! मेरा अनार्यत्व तो देखिये! महामाया के स्वामी, अनन्त, अनादि आप परात्पर प्रभु के ऐश्वर्य को देखने के लिये मैंने माया की—जैसे अग्नि की एक तुच्छ शिखा भास्कर को प्रकाशित करके देखना चाहे। अच्युत! नाथ! आप मुझे क्षमा करें। मैं रजोगुण का अधिष्ठाता हूँ—मेरी यह राजसिकता—मैंने आपसे पृथक् अपने को मान लिया। आपकी महामाया से मेरे नेत्रों पर तमस् की यवनिका पड़ गयी। मुझपर आपका परम अनुग्रह हुआ। मैंने समझा—मैं अनाथ नहीं हूँ। मेरे भी नाथ हैं! मैं तो तुच्छ हूँ, पञ्चतत्त्वों से निर्मित इस सात वितस्ति (सात लोक) के अण्डरूप शरीर को धारण करनेवाला कहाँ मैं और कहाँ वह आपकी महा महिमा—वह विराट् स्वरूप, जिसके एक-एक रोम-कूप में ऐसे अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड परमाणुओं-से चिपके रहते हैं।'

'मैं क्षम्य हूँ—क्योंकि, हे अधोक्षज, शिशु जब माता के गर्भ में पैर पटकता है, तब माता उसे अपराध नहीं मानती। अनन्त प्रभु—यह 'है और नहीं है' का सम्पूर्ण प्रपञ्च आपके भीतर ही तो है! प्रपञ्च ही क्यों—श्रुति कहती है कि प्रलयपयोधि में शेषशय्या पर सोये श्रीमन्नारायण की नाभिनाल से ही ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है। मैं आपका पुत्र हूँ—इसे आप अस्वीकार नहीं कर सकते! तब क्या पिता से पुत्र को क्षमा भी न मिलेगी ?'

अच्छी रही—ये पक्वकेश वृद्ध पितामह तो पुत्र हैं और यह कन्हैया, यह गोपाल पिता है उनका। अच्छा हुआ कि दाऊ नहीं है पास में। लेकिन ब्रह्मा बाबा तो कहते ही जा रहे हैं—

'आप सचमुच उस अनन्त समुद्र में सोनेवाले नारायण नहीं हैं। आप तो सबके हृदय में रहनेवाले, सबके आत्मरूप, सम्पूर्ण लोकों के स्वामी और सबके द्रष्टा हैं! वैसे वह आपके शरीर से ही उत्पन्न जल में सोया आपका शरीर भी मिथ्या नहीं। वह आपका योगमाया से आश्रित विग्रह भी सत्य ही है। मैंने सृष्टि के आदि में जल में सोये आपके उस शरीर का साक्षात् किया, उस शरीर में सम्पूर्ण संसार को देखा, फिर उसी रूप को अपने हृदय में भली प्रकार साक्षात् किया। जब मैंने ध्यान किया, तभी आपने कृपा करके शीघ्र ही मुझे दर्शन दिया है।' श्यामसुन्दर मुस्करा रहा है। पता नहीं ब्रह्माजी ये किसकी बातें कह रहे हैं। उस स्मित को स्रष्टा ने देख लिया; किंतु वे अब भ्रान्त होने से रहे।

'योगमाया को स्वीकृत करके आपका यह अवतार—इस अवतार में भी तो इस जगत् में और इससे बाहर जो कुछ है, वह सब आपने अपने उदर में ही मैया को दिखला दिया था। जिसके उदर में ही यह सब जड-चेतन विश्व अपने सम्पूर्ण अङ्गों के साथ ज्यों-का-त्यों है, उसकी यह अन्वेषण-क्रीड़ा माया नहीं तो और है क्या? आपकी माया का साक्षात् तो मैंने अभी ही किया है। पहिले अकेले थे; फिर समस्त बालकों एवं बछड़ों के रूप में हो गये; फिर उतने ही चतुर्भुज स्वरूप, जो मेरे सहित सम्पूर्ण देवताओं से उपासित थे, दिखलायी पड़े और फिर वही अकेले खड़े हैं। सर्वरूप में और सबको निरस्त करके अद्वय ब्रह्मस्वरूप—यही तो शिक्षा दी आपने मुझे?'

श्रीनन्दनन्दन का वह श्रीविग्रह—मयूरमुकुटधारी गोपाल-वेश सम्मुख है। कुछ ही समय पूर्व ब्रह्माजी ने उसे गोप-बालकों एवं बछड़ों के रूपोंमें, फिर चतुर्भुजरूपों में देखा है। सृष्टि के आदि में जिस भगवान् नारायण का साक्षात् दीर्घकालीन तप से उन्होंने किया था, वही रूप तो वे सब चतुर्भुज रूप थे। ब्रह्माजी ने समग्र ब्रह्म का वर्णन प्रारम्भ किया। निर्गुण स्वरूप, परात्पर सगुण रूप, दोनों का एकत्व और दोनों का अभेद-तत्त्व यह सम्मुख गोपाल-वेश में प्रस्तुत है। उपनिषदों का सर्वात्मवाद वाणी में—ब्रह्मवाणी में व्यक्त होता रहा। वह तत्त्वज्ञान तो श्रीमद्भागवत में ही देखने योग्य है।

श्यामसुन्दर के मुख पर वही मन्द स्मित। ब्रह्माजी सारा वेदान्त कह गये, पर वह ज्यों-का-त्यों खड़ा है। वाणी तनिक रुकी—वे पुनः बोले—'प्रभो! मैंने यह सब वैदिक ज्ञान जाना भर है। आपके तत्त्व को, आपकी महिमा को तो आप के चरणकमलों की कृपा के लेश से ही कोई परम भागवत जानते हैं। दूसरा तो कोई भी चिरकाल तक मनन करके भी उसे जान नहीं सका है। किसी ने जाना भी हो तो जाने—मुझे उसे जानने की कोई इच्छा नहीं। मैं तो अपना यह परम सौभाग्य मानूँगा कि इस शरीर में या और किसी भी पशु-पक्षी आदि शरीर में रहकर आपके किसी एक प्रियजन का सेवक होकर आपके चरणकमलों की सेवा कर सकूँ! मेरा यह ज्ञान, यह ब्रह्मपद—व्यर्थ है सब! ये व्रज की गोपिकाएँ, ये सुरभियाँ धन्य हैं—जिनके स्तनों के अमृत का आपने अत्यन्त प्रसन्न होकर पान किया है। उनके बच्चे और बछड़े बनकर इतनी तृप्ति से इनका दुग्ध पिया है—आप उसी यज्ञभोक्ता ने परम तृप्ति से आरोगा है, इनके दूधको जिसे अब तक कोई यज्ञ तृप्त करने में समर्थ न हुआ। ये नन्दव्रज के निवासी धन्य हैं, परम सौभाग्य है इनका! परमानन्द, पूर्ण, शाश्वत ब्रह्म इनका मित्र है।'

'देव! इनके भाग्यों की महिमा का वर्णन तो असम्भव है; किंतु हम ग्यारह इन्द्रियों के ग्यारह अधिष्ठाता देवता भी अत्यन्त भाग्यशाली हैं। इनकी इन्द्रियों को पात्र बनाकर निरन्तर हम आपके उसी अमृतासव को पान करते हैं, जिसके लिये भगवान् शंकर आपके चरण-कमलों के ध्यान में लगे रहते हैं। पर—यह इन्द्रिय-अधिष्ठाता देवता के रूप में, अंशतः तृप्ति कहाँ संतुष्ट करती है। मुझे तो इस व्रज में ही आप कुछ बना दीजिये! कुछ भी—तृण, पाषाणादि कुछ! मुझे यह ब्रह्मापद नहीं चाहिये। मेरा बड़ा सौभाग्य होगा कि गोकुल के किसी के भी श्रीचरणों की रज मुझपर पड़ेगी। यहाँ तो सबके जीवन-सर्वस्व वही आप हैं, जिनकी चरण-रज श्रुतियाँ अब तक ढूँढ़ रही हैं। श्रुतियों का यह मूर्तरूप मुझे नहीं चाहिये!'

'प्रभो ! करुणामय ! मैंने बड़ा अनर्थ किया है। मैंने इन व्रजवासियों को संतति-वियोग देना चाहा ! वह सफल हो या विफल, परंतु मैंने तो अपनी ओर से किया ही। उसका परिमार्जन होना चाहिये। इन सबको कुछ पुरस्कार मिलना चाहिये। मैं तो स्वयं इनकी चरण-रज का भिक्षुक कंगाल हूँ। मैं इन्हें क्या दे सकूंगा। अच्छा या बुरा, मैं आपका पुत्र हूँ ! आप ही मेरे इस अपराध का मार्जन कर दें। आप ही इन्हें पुरस्कृत करें !'

लेकिन—लेकिन आप इन सबको क्या देंगे ? मेरा चित्त तो बड़ा चञ्चल हो रहा है यह सोचकर। विश्व का समस्त भोग तो उन्होंने आपको समर्पित कर दिया है। मोक्ष—आपका परम धाम ? कैसा अन्याय होगा। विष देने आनेवाली पूतना को उसके समस्त कुल के साथ आपने अपना धाम दिया है; फिर जिन्होंने आपके लिये घर, सुहृद्, प्यारे प्राण, चित्त—सब समर्पित कर रक्खे हैं, उन्हें भी वही पुरस्कार कैसे दिया जा सकेगा ? आप उन्हें निर्मल-चित्त कर देंगे—यह सोचा ही नहीं जा सकता। वे तो स्वतः परम पावन हैं। रागादि तभी तक हृदय में रहते हैं, घर तभी तक बन्धन-कारक होता है, मोह तभी तक मोहित करता है, जब तक कोई तुम्हारा नहीं हो जाता !'

अब तक योगमाया का प्रभाव चल रहा था। व्रजवासियों को कुछ देने की इच्छा थी। लेकिन कब तक ? श्यामसुन्दर के जनों के निर्मल स्वरूप का चिन्तन करते ही रहस्य हृदय में प्रत्यक्ष हो गया। स्रष्टा चौंके—

'देव ! यद्यपि आप प्रपञ्चहीन हैं, तथापि है सब यह आपकी ही माया। आपने ही मुझे इस प्रकार अपनी लीला का पात्र बनाया है। यह सब तो अपने शरणागतों की आनन्द-वृद्धि के लिये लीला कर रहे हैं आप। अतएव जो इस लीला रहस्य को जानते हों, वे जानें। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि आपका ऐश्वर्य मन, वाणी एवं शरीर से परे है। यह जगत् आपका है। आप ही इसके स्वामी हैं। आपने ही मुझे इसकी रचना का भार दिया है। अतः अब आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ।'

'वृष्णि-कुल-कमल को प्रकाशित करनेवाले महासूर्य, पृथ्वी-देवता-विप्र-गौ की अभिवृद्धि करनेवाले नाथ, धर्मध्वंसी नरेशों एवं राक्षसों के विनाशक, कल्प-कल्प तक भगवान् भास्कर के समान पूज्य भगवान् श्रीकृष्ण ! आपके श्रीचरणों में प्रणाम !' ब्रह्माजी पुनः साष्टाङ्ग प्रणिपात करने लगे भूमि पर लोट कर।

पितामह, आप बछड़े तो यहाँ समीप छोड़ दें और सखाओं को वे जहाँ जैसे बैठे थे, बैठा दें ! शीघ्रता करें ! दाऊ भैया आने ही वाला है। वह प्रतीक्षा करते ऊब रहा है। अब ब्रह्मलोक पधारें ! सृष्टिकर्त्ता का कमलासन आपकी प्रतीक्षा कर रहा है !' कन्हैया ने बड़े शान्त स्निग्ध स्वर से कहा।

ब्रह्माजी उठे। उन्होंने हाथ जोड़े। कुछ कहनेवाले थे; किंतु श्यामसुन्दर के नेत्रों में भाव है 'अब हो गया—आप शीघ्र पधारें !' उनका हंस चुपचाप एक ओर बैठा है, अतः उन्होंने तीन बार परिक्रमा की, पुनः चरणों में प्रणाम किया। हंस पर बैठे।

× × × ×

'कन्हैया, अरे आ गया तू ! बड़ी जल्दी आया ! हम सबने अभी तक एक ग्रास नहीं खाया है !' सारे गोप-बालक उल्लसित हो उठे। उन्होंने देखा, श्यामसुन्दर हाथ पर वही ग्रास रक्खे, बछड़ों को साथ लिये चला आ रहा है। 'ओह, दाऊ भैया भी आ गया !' उल्लास द्विगुणित हो गया। बछड़े तो पास हरितभूमि पर चरने लगे और श्याम-बलराम सखाओं के मध्य आ विराजे।

बालकों ने समझा—श्यामसुन्दर क्षण भर में लौट आया है। एक वर्ष व्यतीत हो चुका—किसी को पता नहीं। यही तो होता है—अनन्त-अनन्त जन्म ब्रह्मा की माया में मोहित, संसार-स्वप्न देखते व्यतीत हो जाते हैं; किंतु जब वह नित्य सखा आता है—ये वियोग के कल्प—स्मरण भी आता है क्या इनका? क्षण के बराबर भी तो नहीं लगते। ब्रह्मा की माया—पर ब्रह्मा की माया कहाँ मुग्ध कर सकती है श्याम के सुहृदों को। ये बालक—ये तो अपने इसी चपल की योग माया से मुग्ध थे।

वही पुलिन, वही बाल-मण्डली, वे ही छीके, वे ही पात्र और वही भोजन का आदान-प्रदान। वही हास्य, वही उल्लास। इस बार थोड़ा-सा अन्तर पड़ा। कर्णिका पर श्याम के साथ दाऊ भी है और वह पता नहीं क्यों विचित्र ढंग से बीच-बीच में मुस्करा रहा है। उसके आजाने से तनिक कन्हैया कम चापल्य करने लगा है। एक वर्ष—पूरा एक वर्ष हो गया, बालकों को क्षणार्ध लगा है। उनके सब पदार्थ—योगमाया ने उसी प्रकार तो सुरक्षित रक्खा है सब को।

भोजन समाप्त हुआ। कपियों एवं पक्षियों ने उच्छिष्ट पात्रों पर छीना-झपटी प्रारम्भ की। सब ने कालिन्दी-सलिल में हाथ-मुख धोये। इतनी मछलियाँ, इतने कछुए, ये सब जल-पक्षी—सब-के-सब वहीं एकत्र हो गये। मछलियाँ एक के ऊपर एक उछल रही हैं। कछुए एक दूसरे पर चढ़े जाते हैं। पक्षी उनकी पीठों पर बैठे फुदक रहे हैं। बगुले तक मछलियों की ओर नहीं देखते। जल में धुला एक कण—उस जल का एक बिन्दु—सबकी छीना-झपटी हाथों से धोये उच्छिष्ट के लिये ही है। प्रवाह के साथ वे उस जल को लेने झपटे बह रहे हैं।

बालकों ने कमल-पत्र तोड़े—पत्र-पुटक से जल पिया। कन्हैया ने एक के दूसरे के पटुके से हाथ पोंछ दिये और तीसरे के उत्तरीय से मुख। सब एक दूसरे के उत्तरीय को खींच-खाँचकर उससे हाथ-मुख पोंछ रहे हैं। भोजन के अनन्तर वृक्ष की छाया में थोड़ी देर विश्राम हुआ। कोई बैठा, कोई लेटा, कोई गाता रहा। बछड़े भी बैठ गये हैं।

'यह अजगर का चर्म! कैसी अच्छी गुफा बन गयी खेलने योग्य!' कन्हैया ने अघासुरका शरीर दिखलाया।

'यह तो सूख भी गया! बड़ी तीव्र धूप थी आज!' भद्र ने उसे छूकर मस्तक हिलाया। उनकी समझ से तो आज ही सूखने के लिये धूप ही कारण हो सकती है। घर लौटे वे सायंकाल। व्रज में एक वर्ष पूर्व का जीवन आ गया। सब बछड़े नन्द-गोष्ठ में भाग गये और वहाँ से लाये गये। माताओं को बालकों को बलात् मैया यशोदा के यहाँ से घर लाना पड़ा, किसी को अद्भुत न लगा—जैसे सब स्वाभाविक हो। घर-घर बच्चों में एक ही चर्चा है—कन्हैया ने आज वन में बड़ा भारी अजगर मारा है! बहुत बड़ा अजगर!'

—❀⊂❀⊃❀—

गो-चारण

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥

—भागवत १०।२१।५

'बाबा, अब मैं बड़ा हो गया न ?' कन्हैया ने बाबा की गोद में बैठकर दोनों हाथ उनके गले में डाल दिये ।

'हाँ, हाँ, तू अब बड़ा हो गया और चतुर भी !' बाबा ने उसे हृदय से लगा लिया और पुचकारा ।

'बाबा, तब मैं अब सब गायें और वृषभ चराने को ले जाया करूंगा !' श्याम ने पहिले ही सखाओं से मन्त्रणा कर ली है ।

'अरे नहीं, गायें चराने योग्य बड़ा तू कहाँ हुआ है ।' बाबा चौंके । उन्हें क्या पता था कि इस प्रकार की बात कहने के लिये भूमिका बना रहा है उनका यह कृष्णचन्द्र ।

'नहीं, मैं बड़ा हो गया हूँ ! मैं सब गायें ले जाऊँगा ! कल से सब ले जाऊँगा !' एक बार कोई हठ पकड़ लेने पर वह हठी क्या मानता है । उसने बाबा की दाढ़ी में अपनी अँगुलियाँ उलझा दीं और मचलने लगा ।

'गायें बड़ी चञ्चल होती हैं । वे भाग जाती हैं दूर-दूर । वृषभ तो परस्पर लड़ने लगते हैं ।' बाबा ठीक ही कह रहे हैं । गोपों ने उनका अनुमोदन किया ।

'मैं वृषभों को लड़ने नहीं दूंगा ! वे लड़ेंगे तो कान पकड़कर अलग कर दूँगा । गायें तो मेरे पुकारते ही दौड़ आयेंगी ! अब भी तो वे मेरे पास वन में दौड़ आती हैं ।' कौन कहे कि कन्हैया ठीक नहीं कह रहा है । सब जानते हैं, वृषभ लड़ते हों और श्याम वहाँ पहुँच जाय तो वे लड़ना भूलकर एक साथ उसके समीप दौड़ जायँगे । गायें वन में उसकी मुरली-ध्वनि सुनकर या पटुके का छोर देखकर जब कान उठाकर, पूछें ऊंची करके हुंकार करती दौड़ती हैं, गोप उन्हें रोकने में कभी सफल नहीं हो पाते ।

'गायों को दूर चराने ले जाना पड़ेगा ! तू थक जायगा ।' गायें क्या दो-चार हैं या नन्हे बछड़े हैं, जो उन्हें पास ही घुमाकर लाया जा सके । सहस्र-सहस्र गायों को चराने के लिये विस्तृत वन में गये बिना कैसे काम चल सकता है ।

'मैं थकूँगा नहीं !' कन्हैया को तो दूर वन में जाने को मिलेगा, यह एक कुतूहल मिल गया है ।

'तू कुछ और बड़ा हो जा तब !' बाबा ने उसे समझाने का प्रयत्न किया ।

'मैं कल सबको खोल दूंगा और फिर भगा ले जाऊंगा !' श्याम रूठकर भाग गया । उसकी धमकी ने बाबा को चिन्तित कर दिया । सचमुच जब गोप गायें ले जाने लगें, उस समय वह उन्हें पुकार ले तो कैसे गायों को रोका जा सकता है । गायें उसके पीछे निश्चय ही भाग जायँगी ।

'नीलमणि पांच वर्ष का हो गया है ! बालक का आग्रह तोड़कर उसके हृदय को दुखी नहीं करना चाहिये । गोप उसके साथ जायँगे ।' वृद्ध उपनन्दजी तो सदा श्याम का ही समर्थन करते हैं । जब श्याम मानता ही नहीं, तब उपाय भी क्या । उस हठी से कोई उपाय चलने से रहा । महर्षि शाण्डिल्य से पूछकर गो-चारण-महोत्सव शुभ-मुहूर्त में प्रारम्भ करना निश्चित हो गया ।

× × × ×

'कन्हैया गायें चराने जायगा !' मैया को कोई यह बात समझा दे। 'वह बछड़े चराने जाता है, यही क्या कम है। जब वह प्रातः घर से जाता है, वह बेचैन हो जाती है। श्याम चञ्चल है। पता नहीं कितनी दूर चला गया हो। कहीं यमुना किनारे न चला जाय। वह बार-बार किसी-न-किसी को भेजती रहती है यह देखने के लिये कि उनका नीलमणि समीप ही है न। फिर ये असुर—यहाँ वृन्दावन में भी वे पहुँचे ही रहते हैं। पता नहीं व्रजेश्वर को यह क्या सूझी है। एक ही तो पुत्र है। घर में गायें चरानेवाले सेवकों का क्या अभाव है। गायें लेकर दूर जाना पड़ेगा। नन्हा-सा कन्हाई—थक जायगा वह। पता नहीं मध्याह्न में लौट भी सकेगा या नहीं। गोप साथ तो जायँगे; परंतु वह चञ्चल गोपों की बात क्या मानेगा ? गोप उसे क्या यमुनातट पर, ह्रद में, आतप में जाने से रोक सकेंगे ? इन गोपों का ही क्या भरोसा—ये सब स्वयं तो छाया में बैठ जायँगे और उसके भोले, सुकुमार लाल को गायों के पीछे दौड़ा-दौड़ाकर थका डालेंगे !' मैया जितना ही सोचती है, उतनी ही व्याकुल होती है। वह करे क्या ? व्रजेश्वर का उसने कभी प्रतिवाद किया नहीं। हृदय मानता नहीं और व्रजेश्वर के सम्मुख मुख खुलेगा नहीं।' वह बार-बार सोचती है कि दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर देगी इस प्रस्ताव को; पर स्वयं सोचती है कि व्रजेश के सम्मुख होने पर ऐसा कैसे कर सकेगी।

'व्रजेश कभी आग्रह करना या आज्ञा देना जानते ही नहीं। उनको तो सहज सहमत किया जा सकता है; पर यह श्याम—यह बड़ा हठी है। व्रजेश कह ही तो रहे थे कि वह सबसे बड़े वृषभ 'धर्म' के सींग पकड़कर लटक गया था।' मैया का हृदय धक्-से हो गया ! 'कहीं वृषभ ने तनिक सिर हिलाया होता ! पता नहीं कितने उत्पात करेगा वह अपनी हठके पीछे।' पृथ्वी पर मचलकर लोटते, गोष्ठ में गायों के मध्य भूमि पर पड़े, कमल-लोचनों से अश्रु बहाते श्यामसुन्दर की हठ का स्मरण करके ही मैया के सब निश्चय डावाँडोल हो उठते हैं।

× × × ×

'कृष्णचन्द्र, तू हठ मत कर, बेटा !' प्रातः ही कनूँ गोष्ठ में जा खड़ा हुआ। वह अड़ा है कि आज सब गायें ले जायगा। बाबा ने उसे पुचकारा गोद में उठाकर। 'आज ही मैं महर्षि शाण्डिल्यजी से मुहूर्त पूछूँगा। तू गायों की पूजा करके तब उन्हें ले जायगा न ?'

'महर्षि के समीप मैं भी चलूँगा !' गो-पूजन श्याम को बहुत प्रिय है। गायों की पूजा होगी, वह उन्हें सजायेगा, यह तो बड़ी अच्छी बात है। कहीं बाबा महर्षि को मना कर दें तो—उसने हठ की तुरंत मुहूर्त निश्चित करा देने के लिये। बाबा को विवश होना पड़ा, उसी समय महर्षि के यहाँ जाने को।

'कार्तिक शुक्लाअष्टमी कल ही तो है !' आज कन्हैया गोप-बालकों के साथ बड़ी उमंग में है। वह कल गो-पूजन करेगा। कल से उसका गो-चारण प्रारम्भ होगा। सखाओं को साथ लिये आज वन में वह मयूरपिच्छ, गुञ्जा, मणि, पुष्प एकत्र करने में लगा है। 'यह कामदा के लिये है ! यह धर्म को पहिनाऊँगा ! यह माला कृष्णा के गले में सुन्दर लगेगी और यह नन्दिनी के !' ढेरों सामग्री एकत्र की सबने। जब वे वन से लौटे, माता को बड़ी कठिनाई हुई ब्यालू कराने में। बड़ी देर तक वह अपनी सामग्री दिखाता और सम्मति लेता रहा। मैया को, रोहिणीजी को, बाबा को, पता नहीं किसको-किसको उसने अपने संचय दिखाये। सभी सखाओं ने कुछ-न-कुछ संग्रह किया है। सब में उत्साह है दिखाने का। सब मानते हैं कि उनका संकलन सर्वश्रेष्ठ है।

श्याम कल गो-चारण प्रारम्भ करेगा। उसके साथ सभी गोप-बालक अपनी गायें ले जाये बिना कैसे मान सकते हैं। सबको यह महोत्सव करना है। नन्दग्राम और बरसाने के एक ही आचार्य हैं—महर्षि शाण्डिल्य। उनकी अनुमति से बृहत् पटमण्डप गोपों ने दोनों ग्रामों के मध्य में खड़ा कर दिया है। अन्ततः लक्ष-लक्ष गायें, शतशः गोप-बालक और सभी नर-नारियों के एकत्र होने को स्थान भी तो चाहिये।

बालक का गो-चारणारम्भ—गोकुल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार—व्रज का महामहोत्सव और वह कल ही है। प्रत्येक घर में उसी की प्रस्तुति हो रही है। प्रातःकाल ही नन्दबाबा ने महर्षि से मुहूर्त पूछा है। दिनभर गोप और गोपियाँ व्यस्त रहे हैं। भवन, मार्ग, द्वार, सभी सज्जित किये गये हैं। मण्डप तो किसी चक्रवर्ती सम्राट् के अभिषेकमण्डप से भी अधिक शोभा-सम्पन्न हो गया है। कदलीस्तम्भ, तोरण, मालाएँ, रत्नहार, कलश, फल, पुष्प—जैसे सम्पूर्ण व्रज आज एक छोटा पीठ बन गया है। साज-सज्जा का विपुल विस्तार उसमें सीमित ही नहीं हो पाता। गोपों के कुशल कर आज विश्वकर्मा से अधिक कलामय हो उठे हैं।

समिधा, आज्य, दधि, दुग्ध, शाकल्य, शर्करा, मधु, तिल, अक्षत, चन्दन, सुगन्धित ओषधियाँ, तीर्थजल, पता नहीं क्या-क्या अभी से एकत्र होने लगा है। विप्रवर्ग वेदियाँ, हवनकुण्ड, मण्डप आदि बनाने-बनवाने में लगा है। स्वयं महर्षि शाण्डिल्य निर्देश कर रहे हैं।

'व्रजेश, इस ओर उच्चासन देवताओं के लिये ! यहाँ तीन रत्नासन त्रिदेवों के लिये ! यहाँ बृहत् विस्तृत भाग ऋषिगण के लिये !' महर्षि केवल ब्राह्मणों को ही नहीं, मण्डप के सभी निर्माण में आदेश दे रहे हैं। भला, कौन महर्षि या देवता कन्हैया के इस महोत्सव में पहुँचने का सौभाग्य छोड़ देगा। महर्षि शाण्डिल्य लगे हैं सबकी यथोचित सम्मान-व्यवस्था की पूर्व प्रस्तुति में।

गोपियाँ—उनके कार्यों का भी ठिकाना नहीं। गायों, बछड़ों, वृषभों के लिये यथोचित रत्नखचित झूलें चाहिये। आभरण छाँटने हैं उन सबके लिये। गृह एवं द्वार को सज्जित करना है। बालकों के लिये, अभ्यागतों के लिये, विप्रों के लिये वस्त्र-रत्नादि सज्जित करने हैं। पूजन-सामग्री प्रस्तुत करनी है।

पूरे दिन भर और पूरी रात्रि भर समस्त व्रज आनन्द, उल्लास, उत्साह और कार्य में व्यस्त रहा। गोपियों ने जैसे ही सबको भोजन कराया, वे स्थान-परिष्कार करके पकान्न बनाने में लग गयीं। रात्रि भर उनके कलकण्ठ से कन्हैया के मधुर चरित सहज रागबद्ध निकलते रहे। कङ्कण क्वणित होते रहे। कड़ाही छन-मन करती रही।

गोप रात्रिभर प्रकाश किये गोष्ठ सज्जित करते रहे, मण्डप में सामग्री पहुँचाते रहे और इधर-उधर उनका आवागमन बना रहा। ब्राह्मणों को कहीं सर्वतोभद्र बनाना है और कहीं दूसरे मण्डल ! उनकी सात्त्विक कला कदाचित् ही अन्यत्र कभी इस पूर्णता से अभिव्यक्त हुई हो।

कन्हैया सायंकाल में, रात्रि में देर तक जागता रहा है। सखाओं के साथ वह मण्डप में, द्वार पर, गोष्ठ में, गृह में, पता नहीं कहाँ कितने चक्कर काटता रहा। 'यह क्या है ? इसका क्या होगा ? इसे यहीं क्यों लगाया जाय ?' उसे जैसे आज ही सब समझ लेना है। लेकिन इतना अवकाश उसे है नहीं कि अपने प्रश्न के पूरे उत्तर सुनने के लिये खड़ा रहे। बड़ी कठिनाई से माता ने उसे सुलाया है। सभी सखा आज नन्दभवन में ही सो गये हैं।

× × × ×

'मैया, प्रभात नहीं हुआ क्या ?' रात्रि में कई बार कन्हाई ने माता रोहिणी से पूछा है। वह ब्राह्ममुहूर्त में ही जाग्रत् हो गया। आज सब सखाओं को उसी ने जगाया। अरे उठो भी, अपनी गायें जल्दी से सजा लाओ तो !'

गोप-बालक उठे और उन्होंने घर जाने के लिये किसी के साथ की भी अपेक्षा नहीं की। चारों ओर जागरण हो रहा है। घर-घर गायनध्वनि उठ रही है। गोप इधर-से-उधर जा रहे हैं। बालकों को साथ की आवश्यकता प्रतीत ही नहीं हुई। मैया बहुत थोड़े बालकों के पीछे सेवक दौड़ा सकी।

क्षितिज पर अरुणिमा आयी। यज्ञमण्डप से गम्भीर शङ्खनाद हुआ। गायों ने एक साथ हुंकार किया, जैसे उन्हें आज के महोत्सव से अपने सम्बन्ध का पता है। गोपों ने उन्हें स्नान कराके वस्त्र से पोंछ दिया है, भली प्रकार सजा दिया है। उनके शृङ्ग, खुर स्वर्ण-रत्नों से भूषित हो चुके हैं। उनके शरीर पर बहुमूल्य झूल है। उनके कण्ठों में मौक्तिक, हीरक मालाएँ हैं। गोष्ठों से सुगन्धित धूप उठ रही है। बड़ी शान्ति से गायें, वृषभ, बछड़े निकले गोष्ठों से। बछड़ों ने बहुत

कम उछल-कूद की। अवश्य ही वे सिर हिलाकर अपने कण्ठ की मालाओं को ध्वनित करते रहे। जब सब यज्ञमण्डप में निश्चित स्थान पर एकत्र हो गये, चपल बछड़े तक मस्तक हिलाना भूल गये—जैसे वे बड़े आश्चर्य में पड़े हों कि यह सब क्या हो रहा है।

रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्रों, आभूषणों से सजे, नूतन लकुट लिये गोप-बालक पंक्तिबद्ध बैठ गये। उनकी चञ्चलता आज दृगों में ही सीमित हो गयी है। गोपियों और गोपों ने भी नवीन वस्त्राभरण धारण किये हैं। आनन्द से बाबा का अङ्ग-अङ्ग पुलकित है।

आवाहन से पूर्व ही देवताओं ने अपने आसन स्वीकार कर लिये। मण्डप के बाहर मङ्गल-वाद्य बजे, नभ के दिव्य वाद्यों ने जैसे प्रतिध्वनि की। गोपियों के कलकण्ठ के साथ सूत-मागधों का स्तवन और विप्रों का मन्त्रपाठ एकाकार हो गया। नट अपनी कला का प्रदर्शन करने में लगे हैं, मागध और वन्दी अपनी स्मृति तथा प्रतिभा का और वादकगण अपने कौशल का।

कन्हैया - पूजन कर रहा है। गणपति-पूजन, कलश-पूजन, देविका-पूजन, उसके हाथों सम्पन्न कराके महर्षि ने अग्न्याधान किया। व्रज में अग्निदेव अरणि की प्रथम मन्थन-रज्जु के घूमते ही प्रकट हो जाया करते हैं, जैसे वे प्रतीक्षा ही कर रहे हों! देवताओं ने प्रत्यक्ष यज्ञभाग स्वीकार किया। उनकी सविधि अर्चना हुई। पूर्णाहुति देकर महर्षि ने गो-पूजन का उपक्रम किया।

'धर्म!' कन्हैया ने अपने करों में जलपात्र लेकर पुकारा! हिमधवल, पर्वतोत्तुङ्ग, महाककुभ, वृषभश्रेष्ठ धर्म हुंकार करता सम्मुख आ खड़ा हुआ। उसके चरण धोये गये, शृङ्गों पर जल डालकर उससे महर्षि ने श्याम को सिक्त किया। चन्दन, अक्षत, माल्य, धूप, दीप और नैवेद्य। गोपाल ने अपनी अञ्जलि भरकर मोदक, संयाव, मृदुल दूर्वादल दिये उसे और तब नीराजन करके साष्टाङ्ग प्रणिपात किया।

'भद्र, नन्दी का तू पहले पूजन कर! गोप-बालक श्याम के साथ ही पूजनकृत्य करते चल रहे हैं। अब तक वह पूजन का अग्रणी रहा है। अब उसने बारी-बारी से सखाओं को प्रधानता देनी प्रारम्भ की। वृषभ-पूजन के पश्चात् जैसे ही उसने कपिला के लिये अर्घ्य उठाया, उस धेनु के चारों थनों से अखण्ड उज्ज्वल दुग्धधारा झरने लगी। पूजन-वेदिका से दुग्ध प्रवाहित हो चला।

'कृष्णचन्द्र, तुम लोग एक-एक धेनु एवं एक-एक वत्स का पूजन कर लो!' महर्षि ने स्नेह-पूर्वक समझाया। व्रज का सम्पूर्ण गोधन आज एकत्र है। यदि सबको ये बालक केवल तिलक भी करें—लक्ष-लक्ष गोवंश को पूजित करने में कितना विलम्ब होगा।

'मैं सबकी पूजा करूँगा!' कन्हैया का आग्रह भी ठीक है। आज नवजात बछड़ा भी उसके हाथों मोदक एवं माल्य पाने को समुत्सुक है। किसे इस समारम्भ में निराश किया जाय।

महर्षि ने एक बार गम्भीर दृष्टि से देखा उन कमलनेत्रों की ओर और मौन स्वीकृति दे दी उन्होंने। पता नहीं क्यों उनके नेत्र सजल हो गये। गोपों ने, विप्रों ने, सखाओं ने, सबने प्रत्यक्ष देखा कि प्रत्येक गाय, वृषभ, बछड़े की षोडशोपचार से सविधि पूजा हुई। अकेले कन्हैया ने ही नहीं, सभी सखाओं ने सम्मिलित पूजन किया सबका। न बालकों ने उतावली की और न महर्षि ने। यज्ञ-मण्डप में दुग्ध-कीच हो गयी। दुग्ध बाहर प्रवाहित होने लगा। समस्त पशुओं के कण्ठों में बालकों द्वारा अर्पित पुष्प एवं रत्न-मालाएँ हैं। सबके भालपर तिलक हैं। कैसे यह अपार पशुओं का पूजन कुछ ही देर में सम्पन्न हुआ, कौन कह सकता है। बाबा, मैया, गोप, गोपियाँ इसे महर्षि का योग-चमत्कार बतलाते हैं।

गो-पूजन के अनन्तर श्याम ने सखाओं के साथ आचार्य का पूजन किया। बाबा ने महर्षि के चरणों में अपना सर्वस्व रख दिया। विप्र-पूजन हुआ और उधर मैया ने गोपियों के साथ विप्र-पत्नियों का पूजन किया। असंख्य गायें दान की गयीं। अन्न, वस्त्र, आभरण, रत्न किसे कितने दिये गये या मिले, इसकी न दाता गणना कर सकते हैं और न ग्रहीता। मागध, सूत, वन्दीजन, याचक, सबके लिये समस्या बन गयी कि प्राप्त पदार्थ ले कैसे जायँ। देना चाहकर भी वे ऐसा किसी को नहीं देखते, जो उसे स्वीकार करे।

'बच्चे भूखे होंगे !' मैया ने धीरे से बाबा की ओर मुख करके कहा। वे कहाँ तक यह बात मन में दबाये रहें। आज किसी ने कलेऊ नहीं किया। कन्हैया प्रातः ही क्षुधातुर हो उठता है। आज तो मध्याह्न का भोजन-समय भी व्यतिक्रान्त हो रहा है। विप्रवर्ग के सुपूजित होकर भोजन कर लेने पर मैया ने महर्षि को सुनाने के लिये ही कहा है। गोप तथा गोपियाँ तो अब सायंकाल प्रसाद ग्रहण करेंगी, पर बालक कैसे रहेंगे।

'श्यामसुन्दर, तुम लोग प्रसाद ले लो तो फिर अग्रिम कृत्य हो। गो-चारण से पूर्व कलेऊ कर लेना चाहिये तुम लोगों को !' महर्षि ने आदेश दिया।

मैया को संतोष नहीं है। उसे लगता है, किसी बालक ने कुछ खाया नहीं। सब-के-सब संकोची हैं। यहाँ सबके सम्मुख सब भला, क्या खाते। मुख भर जूठा कर लिया सबने। प्रातः से भूखे हैं और तनिक-तनिक प्रसाद भर लिया। उत्सव की उत्सुकता में इन सबों को इस समय खिलाया भी तो नहीं जा सकता।

× × × ×

मयूरमुकुट एवं रत्नाभरणों से भूषित, अङ्गरागखचित मनोहर श्याम अङ्ग, काजल लगे दीर्घ नेत्र, कुङ्कुम का महर्षि द्वारा खींचा ऊर्ध्वपुण्ड्र और उस पर चिपके चार-पाँच अक्षत, कानों में रत्नकुण्डल, कक्ष में पूजित व्रजेश्वरप्रदत्त वेत्रलकुट, कंधे पर पीतपट एवं कोमल कामरी, अधरों पर मुरलिका—कन्हैया गो-चारण करने जा रहा है। उसी के समान सुसज्जित शत-शत गोप-बालक हैं उसके साथ। आगे है गायों, वृषभों, बछड़ों, का पूजित, सज्जित, अपार समुदाय। दोनों ओर गोप अपने दण्ड लिये चल रहे हैं। गायें, वृषभ बार-बार हुंकार करते हैं। लौट-लौटकर, घूम-घूमकर अपने अद्भुत चरवाहे को देखते हैं और बछड़े तो कूदते, उछलते उससे दूर जाकर फिर उसी के पास लौट आते हैं।

आगे शृङ्ग, नगारे, भेरी आदि वाद्य बज रहे हैं। दोनों ओर आरती का थाल सजाये गोपियाँ खड़ी हैं। उनके करों से और गगन से पुष्पवृष्टि हो रही है। महर्षि शाण्डिल्य विप्रवर्ग के साथ बालकों के पीछे स्वस्तिपाठ करते चल रहे हैं। सस्वर सामगान के साथ अभिषेक करता जाता है विप्रवर्ग। शत-शत शङ्ख निनादित हो रहे हैं। बाबा, वृद्ध गोप-गण और उनके पीछे सेवक, बन्दी आदि। सबके पीछे मैया को आगे करके मङ्गलगान करता गोपियों का समूह चला जा रहा है।

× × × ×

'कनूँ, तू इनको भी चराया कर !' वनसीमा से कुछ ही दूर दिखायी पड़ा मृगयूथ। वे दौड़े हुए आये और गायों में मिल गये। भद्र ने हँसकर ताली बजायी।

'अरे इन सबों को एक-एक फूल ही दे दे, !' सुबल ने व्याघ्र, सिंह, महिष, खड्गी, गवय के उस दल की ओर संकेत किया, जो अभी-अभी दौड़कर गायों के साथ मिलकर चलने लगा है।

'कनूँ, देख न वे भल्लूक कैसे नृत्य करते हैं !' केवल भल्लूक ही नहीं, कपि-मयूरादि सभी थिरक रहे हैं। मधुमङ्गल को भल्लूकों ने अधिक आकर्षित किया।

'तू इन शशकों का कूदना तो देखता ही नहीं !' कन्हैया के चरणों में ही कई उज्ज्वल शशक उलझे-से कूद के चल रहे हैं। वे गायों और गोप-कुमारों के दल में झुंड-के-झुंड आ गये हैं। कुचल जाने की शङ्का भी उन्हें नहीं।

वन्यपशु तो आज गायों के साथ हो गये हैं। ऐसा चरवाहा मिले तो कौन उसके नियन्त्रण में चलने को लालायित न हो। बेचारे पक्षी अवश्य ऊपर ही चहकते उड़ रहे हैं। छोटे पक्षी ही तो पशुओं की पीठ पर बैठ सकते हैं। ये बछड़े तो उन्हें भी बैठने नहीं देते।

आज तो वनसीमा में प्रवेश मात्र करना है। महर्षि ने बहुत शीघ्र लौटने का आदेश दे दिया। गोपियाँ मार्ग के दोनों ओर हो गयीं। गोपों ने भी दोनों ओर होकर मार्ग दिया। विप्रवर्ग भी स्थिर होकर मन्त्र-गान करने लगा। श्याम सखाओं के साथ गायों के मध्य से आगे बढ़ गया।

उसने अपना नन्हा लकुट उठाया और पशु घूम गये। वाद्य पुनः आगे हुआ। गायें चलीं उनके पीछे और तब क्रमशः सबको अधरों पर वेणु धरे, सखाओं से घिरे गोपाल को अपने सम्मुख से निकलते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

× × × ×

धर्म ने गम्भीर हुंकार की। आज केहरी भी उसके सम्मुख सामान्य क्षुद्र पशु है। गायों और वृषभों ने कान उठाये। गोपों को स्मरण आया कि उत्सव का सबसे मनोरञ्जक अंश तो अब आया है। वाद्य पूरे वेग से बजने लगे। सुविस्तृत भूमि के चारों ओर सब लोग पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। समस्त पशु मध्य में हो गये उस मण्डल के। सखाओं के साथ श्याम भूमि के मध्य में पहुँच गया। वनपशुओं ने भी हुंकार की। सबने पूँछें उठायीं और दौड़ना प्रारम्भ किया।

मृग छलाँगें भर सकते हैं, गवय दौड़ सकता है, केहरी और व्याघ्र कूद सकते हैं; किंतु गायों की भाँति वे पूँछ उठाकर चौकड़ी भरते हुए नृत्य कहाँ कर सकते हैं। उन्हें बहुत शीघ्र पता लग गया कि आज उनकी गति यहाँ असफल है। धर्म स्थिर हुंकार कर रहा है। इस उत्सव का जैसे वही आचार्य है। वनपशु एक ओर खड़े हो गये। बछड़ों ने भी इधर-उधर फुदकने के पश्चात् उनका अनुकरण किया। आज गायें वृषभों से अधिक सफल हुई हैं। नन्दिनी—अद्भुत छटा है उसकी। वह अपनी छलाँगों में थकती ही नहीं। कामदा उससे अधिक है और कृष्णा तो सबसे श्रेष्ठ सिद्ध होकर रहेगी।

कन्हैया ताली बजा रहा है। बालक उच्चस्वर से नाम ले-लेकर पशुओं को पुकार रहे हैं। गोप भी उन्हें प्रोत्साहित करते हैं बार-बार। वाद्य तीव्रतर होते जा रहे हैं। गति बढ़ती जा रही है। गो-रज से वायुमण्डल पवित्र हो रहा है।

'कपिला !' उल्लसित होकर गोपाल ने अपनी वनमाला कपिला के गले में डाल दी ! कपिला ने आज सबको हरा दिया। सब थकने लगे, पर वह तो जैसे थकेगी ही नहीं। कन्हैया दौड़ पड़ा। माल्य गले में डालकर वह लिपट गया उसके कण्ठ से। कपिला ने शब्द सुनते ही अपने पद स्थिर कर दिये और उसके स्तनों से धारा चलने लगी।

कन्हैया ने एक-एक पशु को पुचकारा। सबको मोदक, संयाव तथा दूर्वा समर्पित की। वन्य पशुओं को भी आज यह सत्कार मिला। 'ले, तू भी थोड़ी घास खा ले !' व्याघ्र और केहरी-दल ने अस्वीकार नहीं किया घास खाना। भला, श्यामसुन्दर भोजन करा रहा हो तो पंक्तिभेद कौन करे।

'अच्छा, तुम सब जाओ !' वनपशुओं को विदा करना सरल नहीं है। वे तो कदाचित् गोष्ठ में बाँधे जाने में भी प्रसन्न ही होंगे। 'अरे, भाग जाओ, नहीं बाँध दूँगा खूँटे में !' भला, कौन इसे सुने। बालकों ने बड़े प्रयत्न से सबको पृथक् किया। वे बार-बार भाग आते हैं और गायों में छिपे रहने का प्रयत्न करते हैं।

'आज सब पशु धर्म का आतिथ्य स्वीकार करें !' बाबा ने हँसकर अपने महावृषभ के पृष्ठदेश पर हाथ रक्खा। गोपों ने प्रयत्न किया कि पशुओं को गोष्ठ में ले जायँ; परंतु कोई भी सफल नहीं हो रहा है।

'सब व्रजवासी आज व्रजेन्द्रनन्दन के अतिथि रहें !' महर्षि शाण्डिल्य के परम गम्भीर मुखमण्डल पर भी मन्द स्मित आया।

'व्रज तो श्रीचरणों का आज्ञावर्ती है !' व्रजेश्वर ने चतुराई से हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया महर्षि के पदों में।

जब वृद्धों में भी विनोद आया हो, तरुणों और बालकों की क्या चर्चा। गोपों ने परस्पर दधि-चन्दन उछालना प्रारम्भ कर दिया है पहले से और गोपियों ने माता रोहिणी तथा मैया को भली प्रकार रँग दिया है। बहुत देर तक यह विनोद चलता रहा और तब सबने स्नान किया।

व्रजेश्वर ने सबको नवीन वस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये। मैया ने विवश किया अपने प्रेमानुरोध से समस्त नारियों को अपने दिये वस्त्राभूषणों को धारण करने के लिये।

महर्षि ने विधिवत् देवताओं का विसर्जन किया। सब यज्ञिय जल से अभिषिक्त हुए। विप्रों ने पुनः भोजन किया। व्रजेश्वर ने उनको फिर दान किया। विप्रों के विदा होने पर याचक-मागधादि विद्योपजीवी संतुष्ट किये गये।

आज किसी के घर जाने का प्रश्न ही नहीं है। पशु व्रजेश्वर के गोष्ठ में सत्कृत हो रहे हैं। प्रत्येक के समीप घृतदीप रक्खा गया है। समस्त नर-नारीवर्ग रात्रि-जागरण करके उत्सव मनायेगा ही। बाबा ने गोपों को साथ लेकर भजन-कीर्तन प्रारम्भ कर दिया है और मैया का प्राङ्गण गोपियों के सुललित गान से गुञ्जित होता रहेगा।

सचमुच कन्हैया थक गया आज। सभी बालक थक गये। उत्सव के उत्साह में उन्हें अनुभव नहीं हुआ—यह ठीक; परंतु मैया ने सबको शीघ्र भोजन करा दिया और सब स्वतः बहुत शीघ्र निद्रित हो गये। मैया का मन तो बालकों में है। कोई उनकी निद्रा में बाधा न दे। वह बार-बार उन्हें देखने उठती है।

कालिय-मर्दन

तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद् यत् समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।
नृत्यन् पदानुनमयन् दमयाम्बभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः ॥

भागवत १०।१५।२९

श्याम, तुम्हारे ही वाहन सुपर्ण—सत्-शास्त्र से प्रताड़ित यह शतैकशीर्षा कालिय तुम्हारी क्रीड़ा-सरिता कालिन्दी में आ बसा है। तुम्हारी उपासना की यह पावन धारा इस अहंकार से विष-दूषिता हो गयी है। सर्वस्व तुम्हारे श्रीचरणों में समर्पित करके अमानी—अकिंचन होने के स्थान पर दूसरों में हेय-बुद्धि और अपने में श्रेष्ठत्व का आरोप ही तो विष-प्रभाव है। मृतप्राय हैं ये तुम्हारे जन तुम्हारे पथ में; इन्हें अपनी अमृतदृष्टि से कौन जीवनदान देगा, नन्दनन्दन !

दुर्दम कालिय—यह अहंकार तो उपासना की कालिन्दी में आकर और भी अदम्य हो गया। अन्यत्र सुपर्ण—शास्त्र के सम्मुखीन होकर मरणासन्न ही हो गया था यह; पर यहाँ—यहाँ तो यह तुम पर भी आक्रमण करता है। जैसे तुम इसके 'भोग' में आबद्ध हो गये हो, मूर्छित हो गये हो।

नहीं, कनूँ, ऐसा कैसे होगा ! तुम्हारे जन आर्त हैं, आकुल हैं। उनकी दृष्टि एकमात्र तुम्हारे ही श्रीमुख पर है। उन्हें और कोई अवलम्बन नहीं। जिन्हें स्वयं तुमने अपनी दयादृष्टि से इस अहंकार-कालिय के विष से जीवन दिया, तुम उन्हीं की उपेक्षा करके कब तक यह मूर्छा-नाट्य करोगे ? देखो, सारा व्रज—पूरा अन्तर्जगत् आकुल है तुम्हारी इस लीला से।

भैया ! यह वक्रगति, परम क्रोधी और किसी के बस का नहीं ! तुम—एकमात्र तुम्हीं इसका दमन कर सकते हो। दूसरे 'पिपीलिका', 'विहंगम' आदि तो इसके ह्रद की वायु से ही मृत हो जाते हैं।

और सच कालिय कहीं कन्हैया को अपने भोग में बाँधे रह सकता है। जब उसके जन इस अहंकार के विष से मूर्छित होते हैं, अपनों को जीवन देकर वह स्वयं कूद पड़ता है इसके ह्रद में। कालिय का ह्रद—झूठी बात ! यह हृदय का कालिन्दीह्रद तो नित्य कृष्ण का क्रीड़ाह्रद है। कालिय तो यहाँ आ बसा है। श्याम के सखाओं ने जब तक ह्रद की ओर पदार्पण नहीं किया, तभी तक उसका निवास सम्भव है। अब श्याम को वह बाँध रक्खे तो उसके भोग के टुकड़े उड़ जायँगे ! नष्ट होकर रहेगा वह।

श्याम की मूर्छा—आराध्य की विस्मृति—कालिय का प्राबल्य—अहंकार का उत्कर्ष—अपने जनों के लिये यह तो कन्हैया की एक लीला है। कितनी व्यथा, कितना अन्तःपीड़न लिये है यह अहंकार का उत्कर्ष, इसे दूसरा कैसे अनुभव करेगा।

व्रजेन्द्रनन्दन—वह नित्य नटनागर है। उसके चञ्चल चरण थिरकते ही रहते हैं। कालिय के फणों पर थिरकने में उसे आनन्द आता है। श्रुति उसे 'गर्वहारी' कहती है। जो फण उठा, उसी पर उसके कोमल चरण कूद पड़ते हैं। गर्व—अहंकार से वे डरें, जो साधन करते हों। जिन्होंने अपने को उस नित्य-नर्तक पर छोड़ दिया है, उनकी उपासना-कालिन्दी में अहंकार-कालिय के फणों पर उनका वह चिर-चपल नृत्य कर लेगा। जो फण उठेगा—जहाँ अहं का उत्थान होगा—कुचल दिया जायगा वह फण—वह आधार विशीर्ण हो जायगा। कब तक—कहाँ तक कालिय इस कन्हैया की धमा-चौकड़ी सह सकता है। उस गोविन्द का क्रीड़ाह्रदरूप हृदय उसे छोड़ना होगा—वह तो निर्विष—अमल होकर रहेगा और यह साधन से नहीं, उस श्यामसुन्दर के श्रीचरणों से सम्पन्न होगा !

अध्यात्म-जगत् की यह भाव-लीला जब अध्यात्म के नित्याधार दिव्य परात्पर जगत् से इस भौतिक जगत् में अवतीर्ण हुई—

× × × ×

'गरुड़, यदि तुमने पुनः यहाँ किसी जीव को पकड़ा तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी !' महर्षि सौभरि को बड़ा दुःख हुआ था। वे वर्षों से यमुना-जल में तपस्या कर रहे थे। समस्त जलजन्तु उन्हें अपना सुहृद् मानने लगे थे। छोटी-बड़ी मछलियाँ उनके समीप, उनके शरीर से क्रीड़ा किया करतीं। आज गरुड़ ने मत्स्यराज को पकड़ लिया। मछलियाँ इधर-उधर व्याकुल सी दौड़ रही हैं। उनकी विकलता ने ऋषि को क्षुब्ध किया। गरुड़ को उन्होंने पहिले ही मना किया था कि यहाँ वे हिंसा न करें; परंतु गरुड़ क्षुधातुर थे। मत्स्यराज को पकड़ने में उन्हें क्षण भर लगा। क्षुधा के कारण उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। ऋषि ने अन्ततः शाप दे दिया।

भाग्य की बात—कालिय नागने ऋषि के शाप की बात किसी से सुन ली। वह तमोगुणी नाग यह न समझ सका कि समर्थ वैनतेय केवल महर्षि की वाणी का इसलिये सम्मान कर रहे हैं कि वे अपने 'ब्रह्मण्यदेव' आराध्य के अनुगत हैं। मूर्ख नाग ने समझा 'गरुड़ भीरु है।'

× × × ×

'प्रत्येक मास यदि तुम लोग मेरी आराधना करोगे तो तुम्हें मेरे द्वारा कोई भय न होगा !' पक्षिराज गरुड़ को शरणागत नागों पर दया आ गयी थी। उन्होंने परित्राण का एक मार्ग निर्दिष्ट कर दिया। रमणक द्वीप नागों का आवास है। गरुड़जी प्रायः भूख लगने पर वहाँ जा धमकते। उनके तुण्ड, नख, पत्रों के आघात से छोटे-बड़े शतशः नाग छिन्न, आहत होते। एक प्रलय-सा दृश्य उपस्थित हो जाता। अन्यत्र कहीं कोई शरणद न देखकर नागों ने एकत्र होकर गरुड़जी की ही शरण ली। गरुड़जी के आदेश से उन्होंने उनकी उपासना प्रारम्भ कर दी।

'गरुड़ हमारा जाति-शत्रु है। मैं उसकी पूजा नहीं होने दूँगा !' कालिय नाग पर अहंकार की मादकता छायी थी। वृद्ध नागों के उपदेश का उसने तिरस्कार कर दिया। तरुणों को अपनी फूत्कार से भयभीत करके पञ्चमी को गरुड़जी की पूजा के लिये एकत्र सामग्री उसने स्वयं भक्षण कर ली।

'एक के अपराध से जातिका ही विनाश होता दीखता है !' नागों की चिन्ता उचित ही थी। उनमें से एक वृद्ध ने साहस किया। वैनतेय समय पर पधारें और आराधना की सामग्री न पाकर रुष्ट हों, इससे पूर्व ही उन्हें सूचना देना हितकर था। वह आगे बढ़ा और सूचना देने में सफल हो गया।

'मैं गरुड़ को देख लूँगा !' एक सौ एक विशाल फण और महाविष के गर्व से मत्त कालिय ने किसी की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। आकाश में आँधी चलने-जैसा शब्द हुआ। नाग अपने बिलों में भागे। निश्चय था कि अमित-पराक्रम गरुड़ पूरे वेग से आ रहे हैं। रुष्ट गरुड़ भूमि-आवरण को सरलता से भेदन करके नागों को बिलों में से पकड़ लेने में सहज समर्थ हैं; परंतु नाग करें भी क्या, डूबते को तिनके का सहारा !

'आज पता लगेगा कि नाग का विष कैसा होता है !' मदान्ध कालिय ने अपने भोग को कुण्डलाकार किया और फणों को ऊपर उठाकर फूत्कार की। वायु विष से उष्ण हो गया।

'पुरारि ! रक्षा करो !' बेचारे कालिय को एक बार फण फटकारने का अवसर भी नहीं मिला। उसको पक्षिराज के पक्ष का एक ही झटका प्राणान्तक जान पड़ा। जैसे सारे फण फट गये हों। नेत्रों के आगे अन्धकार-सा छा गया। भागा वह पूरी शक्ति से जलमें कूदकर और समुद्र से भगवती भागीरथी के मार्ग से यमुनाजी में पहुँच जाने पर जब उसे निश्चय हो गया कि वह 'सौभरि-ह्रद' में आ गया है, तब कहीं उसने जल से बाहर मस्तक निकाला। यह स्थल पूर्णतः निरापद था उसके लिये।

पक्षिराज से शत्रुता करके कालिय कहाँ जा सकता था। उसने 'सौभरि-ह्रद' को ही अपना स्थायी आवास बना लिया। उसके परिवार के स्त्री-पुत्रादि वहीं आ गये। 'सौभरि-ह्रद' कालिय-

ह्रद हो गया। कालिय-नाग के महाविष से ह्रद का जल अत्यन्त कृष्णवर्ण रहने लगा। उस ह्रद के ऊपर से उड़नेवाले पक्षी ह्रद की वायु लगने से मृत होकर नीचे गिर पड़ते थे। ह्रद के चारों ओर के तरु, लताएँ, तृण उसकी विषैली वायु से सूख कर नष्ट हो गये। वहाँ यमुनाजी के दोनों किनारों पर दूर तक ऊजड़ भूमि हो गयी। रह गया ह्रद के ठीक तट पर वह हरा-भरा विशाल कदम्ब। स्वर्ग से अमृतघट जब गरुड़ ला रहे थे, कदम्ब पर कुछ सीकर अमृत के पड़ गये। वह तरु अमृत-स्पर्श से अमर हो चुका था। विष उसे प्रभावित करने में असमर्थ था।

आज दाऊ का जन्म-नक्षत्र है। माता रोहिणी ने पूजादि के लिये उन्हें रोक लिया, वे गोचारण में न आ सके। कन्हैया भला, अब किसकी सुनने वाला है। 'आज कुछ दूर तक चलें तो सही!' भद्र को उसने अपने कुतूहल से ही सहमत कर लिया। बालक भी नवीन वनश्री देखने के लोभ में बढ़ते गये।

'यह कैसा वन है। यहाँ इतनी उष्णता क्यों है!' किसी को अब तक वृन्दावन में ज्ञात ही नहीं हुआ था कि वसन्त और ग्रीष्म में अन्तर क्या होता है। आज कालिय-ह्रद के समीप पहुँच कर सबको ऋतु का पता लगा। ह्रद के विषैले जल से आती वायु ने पूरे वायुमण्डल में एक ऊमस भर रक्खी है।

'वह ऊँचा हरा वृक्ष है न, हम सब वहाँ चलेंगे!' दूर से श्याम ने ह्रद के तट पर स्थित कदम्ब की ओर संकेत किया।

'तू पेड़ पर चढ़ेगा तो मैं मैया से कह दूँगा!' वरूथप ने समझ लिया कि भारी, सघन कदम्ब क्यों उसके सखा को आकर्षित कर रहा है।

'देख न, कैसी स्वच्छ भूमि है! हम वहाँ खेलेंगे!' सचमुच दूर तक एक तृण का नाम नहीं है। उज्ज्वल, मृदुल पुलिन है।

'वहाँ जल भी है!' सभी को कुछ प्यास लग गयी है। इस विचित्र वन में उन्हें कहीं मार्ग में निर्झर दिखायी ही नहीं पड़ा।

भगवान् भास्कर पर्याप्त ऊपर आ चुके हैं। आतप में उष्णता है और वायु भी सर्प की फूत्कार के समान हो रहा है। वह तट का कदम्ब—बालकों ने जितना सोचा था, उससे कहीं अधिक दूर निकला। पुलिन की रेणुका में उनके मृदुल चरण तपने लगे। वे भागे और भागीं उनके साथ गायें भी। सबने कदम्ब की छाया में पहुँचकर क्षणभर खड़े होकर श्वास की गति ठीक होने दी और तब जल पीने ह्रद के तट पर बैठ गये।

मञ्जुल मुख स्वेदकणों से भूषित हो गये हैं। मार्ग की धूप ने प्यास को तीव्र कर दिया है। कदम्ब के नीचे और अधिक उष्णता, प्राणों को आकुल करने वाली वायु तथा बेचैनी भरा वातावरण जान पड़ता है! बालक इसकी मीमांसा कर नहीं सकते। उन्होंने इसे प्यास का परिणाम समझा। सब-के-सब साथ ही अञ्जलि भरकर जल पीने लगे। यहाँ कमल या कुमुद जल में कहाँ, जिनके पत्तों से दोने बनाये जायँ। कदम्बपत्र तोड़ने-जितना धैर्य प्यास ने रक्खा नहीं। गायें उनके साथ ही जल पीने लगीं।

यह क्या—जैसे किसी ने एक साथ हृदय और समस्त नाड़ियों को मसल दिया हो। किसी के मुख से चीत्कार या कराह तक नहीं निकली। सब-के-सब वहीं लुढ़क गये। गायें, बछड़े, वृषभ—सब गिरे। पशुओं ने पैर छटपटाये और फिर शान्त हो गये। बालकों के नेत्र ऊपर हो गये। अरुण अधर गाढ़ नीलिमा से काले हो गये। सम्पूर्ण शरीर पर जैसे नीली भयानक छाया व्याप्त हो गयी हो। उनके मुखों से झाग-फेन जो निकला, वह भी कृष्णवर्ण ही।

कन्हैया—आज कन्हैया को इस उष्ण पुलिन में पता नहीं क्या आनन्द आया। वह करों से बार-बार रेत उछालता धीरे-धीरे चला आ रहा है। सखाओं के साथ दौड़ने में उसने भाग नहीं लिया। आज, केवल आज ही ऐसा हुआ कि सारे सखा उसे छोड़कर दौड़ गये। पता नहीं क्यों—किसी ने उसके साथ आने की प्रतीक्षा नहीं की। सम्भवतः सब बहुत प्यासे थे। भद्र ने उसे दौड़ते

समय पुकारा तो मधुमङ्गल ने उसे हाथ दबाकर चुप कर दिया। बात ठीक थी—सब दौड़कर पहले कदम्ब के नीचे पहुँच जायँ तो कनूँ को पीछे रहने के लिये चिढ़ा जो सकेंगे।

वह दौड़ा श्याम। उसने मुट्ठी की रेत फेंक दी। उसके सखा और गायों को हो क्या गया। सब इस प्रकार क्यों गिर पड़े। ये गायें, वृषभ क्यों पैर पटकते हैं। 'अरे क्या हुआ? भद्र! सुबल! श्रीदाम!' उसने पूरी शक्ति से पुकारा, बहुत व्यग्र हो उठा वह।

'यह क्या!' कन्हैया ने पहुँचते ही भद्र का हाथ पकड़ा, सुबल को झकझोरा, श्रीदाम को उठाने का प्रयत्न किया। 'अच्छा!' सहसा पता नहीं क्या सोचकर उसने प्रयत्न छोड़ दिया। एक बार दृष्टि खौलते-से कालिय-ह्रद के जल पर गयी और वह उठ खड़ा हुआ। स्थिर दृष्टि से एक बार उसने सखाओं, गायों, बछड़ों, वृषभों—सबको घूमकर देखा। कैसी है वह दृष्टि—यह वाणी में आने की बात नहीं। उसकी एक कोर भी कभी ब्रह्मा, इन्द्र तथा बड़े-बड़े महर्षियों को उपलब्ध नहीं हो सकी। वह तो उसके अपनों की वस्तु है।

श्याम की अमृतस्यन्दिनी स्नेह-दृष्टि घूम रही है! सब के प्राण, देह, रोम-रोम में अमृत व्याप्त हो रहा है। मृत्यु, मूर्छा, क्लेश की तो चर्चा ही क्या, वहाँ आलस्य तक के टिकने को अवकाश नहीं। जैसे सबने यह पड़े रहने का कोई नाट्य किया था, इस प्रकार शीघ्रता से उठ खड़े हुए।

'कालिय-ह्रद में अत्यन्त विषधर सर्प रहता है। उसके आगे का यमुना-जल दूर तक विष-दूषित है। उस जल को पीनेवाले तत्काल मर जाते हैं।' बालकों में से सभी ने ये बातें सुनी हैं। उन्हें पता भी है कि नन्दग्राम से कुछ दूर पर ही कालिय-ह्रद है। वहाँ किसी वृक्षादि के न होने की चर्चा भी उन्होंने सुन रक्खी है। आते समय उन्हें यह सब ध्यान नहीं था; पर अब उठते ही सबकी दृष्टि ह्रद की ओर गयी और वे सन्न रह गये। 'यही तो कालियह्रद है! हम सब तो मर ही गये थे!' सबने भीत नेत्रों से ह्रद की ओर देखकर फिर दूसरी ओर देखा।

'कनूँ!' एक साथ बालकों के सहस्र-सहस्र कण्ठों ने परम स्नेह से पुकारा। उनके इस सखा ने ही उन्हें पुनर्जीवित किया है, यह उन्हें समझना बाकी नहीं है। उनके उत्तरीय, छीके, लकुट, इधर-उधर पड़े हैं। मुख भी ठिकाने से पोंछने का किसी को ध्यान नहीं है। सब ने दौड़कर श्याम को घेर लिया। गायों, बैलों, बछड़ों ने उनका अनुकरण किया। पुलिन पर बालकों के शरीर से गिरे पुष्प, पत्र, पिच्छ, गुञ्जादि बिखरे रहे, बालकों के शरीर में पुलिन की रज लगी है—यह कौन देखे। वे तो गोपाल को हृदय से लगा लेना चाहते हैं। पशु उसे सूँघ लेना चाहते हैं। सब सफल हो गये और एक साथ ही। न धक्का लगा किसी को और न किसी को प्रतीक्षा करनी पड़ी। क्यों? कैसे? ये प्रश्न व्यर्थ हैं।

'गोविन्द!' आज कन्हैया को हो क्या गया है। सखाओं ने कितने उत्साह से उसका हाथ पकड़ा, उसे हृदय से लगाया; पर जैसे वह यह कुछ देखता ही नहीं। वह एकटक बड़ी गम्भीरता से इस ह्रद को क्यों देख रहा है। अन्ततः क्या सोचता है वह। यह ह्रद—उसके सखाओं को इससे कितना कष्ट हुआ! क्या सहज ही इस बात का वह भूल सकता है।

'कनूँ, तू क्या देखता है!' भद्र को भय लगा कि यह उत्पाती कोई नया ऊधम न करे। उसने हाथ पकड़कर हिलाया। 'इसका जल बहुत विषैला है। चल, हम सब यहाँ से वनमें दौड़ चलें!'

'मैं तो इस धूप में अब नहीं जा सकता!' श्याम ने भद्र की ओर देखकर मुख बनाया। 'रेणुका कितनी तप गयी है, तुझे क्या पता। तू तो दौड़कर भाग आया था!'

'मैं तुझे कंधे पर बिठा लूँगा!' वरूथप के सुदृढ़ शरीर को देखते यह कोई बड़ी बात नहीं है। सचमुच इस तप्त बालुका-भूमि में कन्हैया के कोमल चरण कष्ट पायेंगे, यह बात उसके हृदय में बैठ गयी।

'यह कदम्ब कितना बड़ा है! यहाँ कैसी भली वायु आ रही है। वन में तो दूर जाना पड़ेगा इस समय। यहीं हम लोग खेलेंगे। गायें विश्राम करेंगी। मध्याह्न के पश्चात् जब धूप कम होगी, तब वन में चलेंगे!' श्याम ठीक ही कह रहा है। भला, इतनी खुली, शीतल वायु

समीप के वन में कहाँ मिलने को है। कालिय-ह्रद के समीप शीतल वायु! परंतु जिस अमृत- दृष्ट ने बालकों को जीवन दिया, वह ह्रद पर कई क्षण स्थिर रही है,—यह भूलने की बात नहीं है।

गायों में बहुत-सी झुंड-की-झुंड बैठकर अधमुँदे नेत्रों से जुगाली करने लगी हैं। कुछ वृषभ खड़े-खड़े ही ऊँघने लगे हैं और बछड़ों ने माताओं के समीप पैर फैला दिये हैं। उनमें कभी-कभी किसी का तनिक-सा कान या पूँछ हिलती है। बालक अपने खेल में लग गये हैं। उन्होंने दण्ड, छीके आदि वृक्षमूल के समीप रख दिये हैं एकत्र करके और उनका उन्मुक्त हास्य, पुकार, दौड़-धूप, स्नेह-कलह अबाध चलने लगे हैं।

× × × ×

'कनूँ, देख—तू दाव नहीं देगा तो अच्छा न होगा!' यह कन्हैया है ही झगड़ालू। जब तक अपनी बारी थी, श्रीदामा को दौड़ाता रहा और जब उसके दौड़ने की बारी आयी, तब झट गेंद हाथ में उठा ली। श्रीदामा को रोष आना ही था। वह झपटा।

'नहीं देता मैं दाव, क्या कर लेगा तू!' श्याम ने उसे चिढ़ाने के लिये मुख बनाया और तनकर खड़ा हो गया। श्रीदामा आकर उसे पकड़े, तब तक तो उसने पूरे वेग से गेंद फेंक दी ह्रद में। 'अब ले दाव!' अँगूठा दिखाया उसने।

श्रीदामा एवं अन्य बालकों ने भी देखा—वह मृदुल अरुण सुचित्रित सुरभित कन्दुक ह्रद के खौलते जल पर इधर-उधर तैरने लगा है। जैसे चिरकाल के पश्चात् ह्रद के जल पर एक अरुण सरोज खिल उठा हो और ह्रद उसकी शोभा पर झूम-घूम रहा हो। बालकों में कुछ के मुख गम्भीर हो गये हैं यह सोचकर कि श्रीदाम अब झगड़ेगा; पर कुछ ने कन्हैया के साथ ताली बजायी। वे हँसने लगे।

'मेरी गेंद ला!' श्रीदामा का मुख रोष से लाल हो गया! उसने श्याम की कटि की कछनी पकड़ ली और अब सम्भवतः दोनों मल्लयुद्ध करेंगे।

'वह रही तेरी गेंद!' कन्हैया ने एक झटका दिया और अपने वस्त्र छुड़ाकर भाग खड़ा हुआ कदम्ब की ओर। वह नटखट शीघ्रता से कदम्ब पर चढ़ गया, चढ़ता ही चला गया।

'चल तू! कहाँ तक जायगा, देखता हूँ!' श्रीदाम उससे कम कहाँ है। वह भी झपटा और चढ़ने लगा कदम्ब पर; परंतु क्रोध से उसका शरीर काँपने लगा है। वह अधिक ऊपर तक चढ़ नहीं सकेगा। एक मोटी डाल पर तनकर ऊपर घूरता, ओष्ठ काटता वह स्थिर होकर खड़ा हो गया। कन्हैया उसे अँगूठा दिखा रहा है। नीचे बालक चिल्ला रहे हैं! मना कर रहे हैं।

'दाम, मैं तुझे अपनी गेंद दे दूँगा!' भद्र ने श्रीदाम को समझाने का प्रयत्न किया।

'मैं तो अपनी गेंद लूँगा! देखें, यह कब तक नहीं उतरता!' श्रीदाम ने घूसा बाँधा और कदम्ब की उसी डाल पर जमकर बैठ गया। कन्हैया के पास तक वह वृक्ष पर चढ़ नहीं सकता तो क्या हुआ। वृक्ष पर ही तो वह चढ़ा नहीं रहेगा। रोष के कारण उसके पतले लाल ओष्ठ काँप रहे हैं। नेत्रों में अश्रु आ गये हैं और वे विशाल नेत्र और अरुणाभ बन गये हैं। बालक सशङ्कित हुए। आज क्या सचमुच श्रीदाम श्याम को पीटेगा।

'श्रीदाम, तू अपनी गेंद ही तो लेगा!' सम्भवतः प्रिय सखा के नेत्रों में अश्रु देखना श्याम को सहन नहीं हो सका। वह डाली पर और ऊँचे चला गया। वहीं खड़े होकर उसने अलकों को पीछे किया, पटुके को कटि में और कसकर बाँधा और खड़ा हो गया।

'हाँ, मैं अपनी गेंद लूँगा! तू नीचे आ तो पता लगेगा!' श्रीदामा का स्वर भारी है। यदि उसने ऊपर मुख करके श्याम के मुख को देख लिया होता तो यह बात कभी उसके कण्ठ से निकलती नहीं।

'कनूँ! कनूँ! उतर आ तू!' सखा एक साथ चिल्लाये। 'यह करने क्या जा रहा है!' भय से हृदय काँप गये उनके। गोपाल डाल पर खड़ा ह्रद की ओर देखने जो लगा है। श्रीदाम ने भी मुख उठाया! 'ओह, इतने ऊपर जाकर यह डाल पर खड़ा हो गया है! वहाँ से गिर पड़े तो!...' धक्-से हो गया हृदय। सब रोष भूलकर चिल्ला पड़ा—'उतर आ, कनूँ....'

श्रीदाम की बात पूरी नहीं हो पायी। कन्हैया ने बड़े जोर से ताल ठोंकी और कूद पड़ा वह। एक धमाका हुआ, ह्रद का जल उछल पड़ा। सखाओं में जैसे प्राण ही न हों। वे एकटक मूर्ति की भाँति ह्रद की ओर देखने लगे। श्रीदामा—वह झपटकर उतरने में गिर पड़ा—कुशल था कि नीचे मृदुल बालुका है। उसे अपने गिरनेका ध्यान नहीं, उठा और ह्रद की ओर दौड़ने ही वाला था—

कन्हैया वेग से कूदा था। सीधे नीचे गया और दो क्षण में ऊपर आ गया। घुँघराली अलकें लहराने लगीं। पीताम्बर भीगकर कटि से चिपक गया है। अरुण पद्मपाद एवं कर वेग से जलपर पटक पटक कर वह तैर रहा है। नन्ही भुजाएँ बड़ी शीघ्रता से जल काट रही हैं। ह्रद में इतनी बड़ी लहरें तो कदाचित् किसी गजराज के हिण्डन से भी न उठेंगी। ह्रद के नील वक्ष पर वह नीलोज्ज्वल चञ्चल जैसे अपने कर-पदों के चार-चार कमल उछालता क्रीड़ा कर रहा है।

'कनूँ, मैं गेंद नहीं माँगूँगा!' श्रीदामा ने पूरी शक्ति से पुकारा। 'तू निकल आ, जल्दी से निकल आ! जाने दे गेंद को!' लेकिन यह नटखट सुनता कहाँ है। वह तो तैरने में लगा है। एक बार पीछे मुख करके देखता तक नहीं। सखा पुकार रहे हैं, पर कहां सुनता है वह।

कन्दुक—कन्दुक जैसे यमुना की भी प्रियवस्तु हो गया है। लहरों पर वह इधर-से-उधर कूदता भागता फिरता है। सखा कन्दुक को भूल चुके हैं। उनके नेत्र श्याम पर स्थिर हैं। उनके प्राणों में एक ही ध्वनि है—वह शीघ्र निकल आवे।

'साँप! साँप! साँप!' बालक एक साथ चिल्लाये। पशुओं ने क्रन्दन किया। वे सब श्याम के ह्रद में कूदते ही चौंककर खड़े हो गये थे और कान उठाये एकटक उधर ही देख रहे थे। बड़ा भयंकर सर्प जल में ऊपर उठा। बालकों ने पहले समझा कि बहुत-से सर्प हैं; परंतु जब वह भयंकर सर्प फण उठाकर स्थिर हुआ -स्पष्ट हो गया कि उसके ही अनेक सिर हैं। सर्प ने भी दो क्षण स्थिर होकर तैरते, मुस्कराते नीलरत्न को अपने आग्नेय नेत्रों से देखा। उसे सम्भवतः स्मरण हुआ कि इस धृष्ट बालक ने उसके आवास में आकर उसका अपमान किया है। वेग से झपटकर एक साथ सर्प ने कन्हैया के श्रीवत्साङ्कित वक्ष पर फण मारे, फिर उसे अपने भोग में लपेट लिया।

कन्हैया पर सर्प ने आघात किया—जैसे वह फणाघात सखाओं के हृदय पर हुआ हो। वह गिरा भद्र, वह श्रीदामा मूर्छित हुआ। वे पड़े हैं मृतप्राय सुबल, वरूथप, मधुमङ्गल। कोई खड़ा नहीं। सहस्रों बालक, जैसे आँधी के प्रबल आघात से आर्द्र भूमि के इक्षु गिर पड़ें, एक साथ गिर पड़े और चेतनाहीन हो गये। पशुओं के नेत्र स्थिर हो गये। उनकी क्रियाएँ लुप्त हो गयीं। जैसे वे पाषाण—प्रतिमाएँ हों।

सर्प ने श्याम को अपने भोग में लपेट लिया, पर वह डूबा नहीं। जैसे वह चिर-शेषशायी अपनी सुपरिचित शय्या पाकर योगनिद्रा का आश्रय लिये नेत्र मूँदे पड़ा हो और सर्प उसके विश्राम में व्याघातरूप अङ्ग-चालन—चेष्टा में असमर्थ हो गया हो। सर्प जल के ऊपर कन्हैया को लपेटे, उसके मस्तक पर अपने मणिमण्डित एक सौ एक फण उठाये, रोषके आवेग में स्थिर हुआ फूत्कार कर रहा है।

× × × ×

'आचार्य शाण्डिल्य को कोई झटपट बुला लाये! मेरे दाहिने अङ्ग एक साथ बार-बार फड़क रहे हैं!' व्यग्र होकर मैया ने एक दासी को पुकारा।

'बार-बार बिल्ली मेरा मार्ग काटती है!' माता रोहिणी दौड़ी आ रही थीं।

'ये कुत्ते एक साथ क्यों रो रहे हैं?' व्रज में दौड़-धूप मच गयी। कहीं जल का घड़ा स्वतः गिरकर फूटा और कहीं दधि-भाण्ड। किसी को जान पड़ा कि सूर्य-मण्डल म्लान हो रहा है और किसी ने देव-प्रतिमा को रोते पाया। सब एक साथ नन्दभवन की ओर दौड़े।

'श्याम कहाँ है?' बाबा ने सचिन्त होकर पूछा।

'नीलमणि सकुशल तो है?' बरसाने के गोपों ने बाबा से दौड़ते हुए आकर प्रश्न किया।

'नारायण कन्हैया की रक्षा करें!' गोपियों ने मैया को घेरकर निःश्वास लिया। पूरे वातावरण में संदेह—आशङ्का व्याप्त है। सबके मुख उदास, चञ्चल हो रहे हैं।

'आज दाऊ यहीं है! श्रीकृष्ण अकेला ही वन में गया?' बाबा ने दाऊ को देखकर चौंकते हुए पूछा।

'दाऊ का जन्म-नक्षत्र है!' माता रोहिणी से पूर्व ही मैया बोल उठी; पर हृदय उसका धक्-से हो गया।

'श्याम आज अकेला वन में गया!' सबके मुख पर एक ही बात। इतने सखा हैं तो क्या हुआ। वे तो सब बालक हैं। जैसे दाऊ ने ही अब तक सारे असुर मारे हैं। सबको दाऊ को देखकर बड़ा भय लगा। अकेले कन्हैया पर पता नहीं क्या विपत्ति आयी हो।

'मेरा नीलमणि!' मैया ने नहीं देखा उस भीड़ को, नहीं देखा स्वजनों को और नहीं देखा अन्य किसी ओर। वह घर से निकल पड़ी और यथासम्भव शीघ्रता से दौड़ी वन की ओर।

'हम कन्हैया को ढूँढेंगे!' गोपों ने अपनी लाठियाँ सम्हालीं।

'श्याम के बिना व्रज में कौन रहे!' गोपियाँ मैया के पीछे दौड़ रही हैं। नन्दगाँव और बरसाना सूना हो गया है। नर-नारी, बालक-वृद्ध—सब वनपथ की ओर दौड़े जा रहे हैं। सब व्याकुल, चिन्तित हैं। शान्त हैं केवल दाऊ। वे बाबा के साथ चल रहे हैं।

'आज बालक किधर गये हैं?' एक क्षण को सब लोग वन-भूमि में आकर रुक गये। तृणों से आच्छन्न हरित भूमि में कोई चिह्न सरलता से नहीं मिल सकते।

'ये तृण कुछ कुचले-से हैं!' एक ने उन लघु तृणों में चिह्न लक्षित कर लिया।

'यह आगे गोबर पड़ा है। आज का ही तो है।' फिर तो गो-मूत्र और गौओं के खुर-चिह्न भी बहुत मिले।

'कहीं गायें यहाँ इधर-उधर चरती, दौड़ती न रही हों! हम सब इसके पीछे भटकते रहें देर तक।' गोप का अनुमान ठीक है।

'ये छोटे-छोटे पद-चिह्न भी नहीं पहिचानते?' सचमुच वे वज्र, अङ्कुश, ध्वज, कमल आदि के चिह्नों से युक्त पद-चिह्न क्या पहिचान की अपेक्षा करते हैं। गोपाल इधर से ही गया है।

'सब कालिय-ह्रद की ओर गये हैं!' वनसीमा की ओर चिह्नों को जाते देख एक वृद्ध ने कहा और सब सन्न रह गये। 'कालिय-ह्रद?' एक भयंकर आशङ्का से और वेग आया सबके चरणों में।

'कन्हैया! बेटा!' मैया ने पूरी शक्ति से पुकारा! वे दूर कदम्ब के समीप गायों के समूह दिखायी पड़ते हैं।

'कोई बोलता नहीं! एक भी बालक वहाँ दीखता नहीं!' एक ने ध्यान से देखकर कहा।

'गायों में से कोई हिलती भी नहीं! किसी की पूँछ तक नहीं हिलती! सबके मुख ह्रद की ओर हैं!' दूसरे का भयविह्वल स्वर विकृत हो गया।

'मेरा लाल!' मैया की वाणी में जो वेदना है, उसे कैसे कहा जाय।

सहसा दाऊ दौड़ पड़े। सब दौड़ रहे हैं—सब पूरी शक्ति से दौड़ रहे हैं; परंतु दाऊ के चरणों में जैसे आज मरुत् ने स्थान पाया है। वे तो दौड़ते नहीं, उड़े-से जा रहे हैं। पता नहीं उनके लीलामय अनुज ने क्या लीला की है। वे यदि सबसे पहले ह्रद-तट पर न पहुँच जायँ तो पता नहीं क्या अनर्थ होगा।

'मैया!' एक क्षण में दाऊ ने अपने भुजग-भोगशायी अनुज को देख लिया और दोनों हाथ फैलाकर, ह्रद की ओर पीठ करके, दौड़ी आती मैया के चरणों से लिपट गये।

'लाल!' मैया तो कुछ देखती ही नहीं! उसके नेत्र तो फटे-फटे से हो रहे हैं। उसके पलक गिरते ही नहीं। वह तो पागलों की भाँति ह्रद को एकटक देखती दौड़ती जा रही है। दाऊ को उसने न देखा और न उनके स्पर्श का अनुभव किया।

'कन्हैया को कुछ नहीं हुआ! वह सर्प को फेंककर आयेगा। वह देखो, उसके मुख पर मन्द मुस्कान है! पकड़ो मैया को पकड़ो!' दाऊ ने पूरे जोर से चिल्लाकर सबको सावधान किया। कुछ गोपियों ने बढ़कर बलपूर्वक मैया के हाथ पकड़ लिये। वह उनसे अपने को छुड़ाने के लिये छटपटाती प्रयत्न करती रही।

'बाबा!' दाऊ ने ह्रद से कुछ ही दूर पर बाबा के सम्मुख जाकर उनके पैर पकड़े। बाबा अपने-आप में नहीं हैं। वे इस तनिक-से धक्के से ही गिर पड़े और असमर्थ से बैठे-बैठे ह्रद को घूरने लगे। जैसे उनमें जीवन ही न हो।

'तुम सब.......' एक क्षण की देर होती तो वे बालिकाएँ ह्रद में गिर चुकी होतीं। उनमें अधिकांश मूर्छित हो गयी हैं। जो ह्रद तक पहुँचीं, वे दाऊ की उस वेदनाभरी दृष्टि की ओर देखते ही तट पर गिर पड़ीं।

चीत्कार, मूर्छा, ह्रद की ओर दौड़ने का प्रयत्न—दाऊ अकेले कहाँ तक किनको-किनको रोकें। मूर्छित लोग चैतन्य होते ही ह्रद की ओर दौड़ते हैं। मैया को कइयों ने पकड़ रक्खा है। कोई अपने-आप में नहीं। दाऊ—वे ६ वर्ष के शिशु दाऊ ही सबको आश्वासन देने में लगे हैं।

'कनू!' दाऊ ने ह्रद में अपने अनुज की ओर देखा और पुकारा। जैसे वे उलाहना दे रहे हों—'बहुत हो चुका यह अभिनय। इस सर्प-शय्या को अब तो छोड़ो। यह किसका स्थान किसे दे रहे हो, कुछ स्मरण है?'

सर्प का शरीर जड की भाँति पड़ा था। वह स्वयं भी क्रोध-मूर्छित हो रहा था। सहसा उसके शरीर में हल्का-सा कम्प हुआ और वेग से उछलकर वह दूर जा कूदा। श्रीकृष्ण को छोड़ दिया उसने। उसे लगा कि उसके बन्धन में पड़ा यह बालक मोटा हो रहा है और बहुत शीघ्र उसके शरीर की गाँठ-गाँठ टूट जानेवाली है। पीड़ा से व्यथित होकर उसने अपना शरीर सीधा किया और उछला।

'कन्हैया सर्प से छूट गया!' दाऊ चिल्लाये। सबके मुखों पर तनिक जीवन की उज्ज्वलता आयी। सर्प अपने एक सौ एक फण उठाये दूर से फूत्कार कर रहा है और श्याम जल में धीरे-धीरे तैरता स्थिर-सा उसकी ओर देख रहा है। दोनों ने एक क्षण एक दूसरे की ओर देखा। सर्प ने आक्रमण के लिये और तीव्रता से अपने को मोड़ा। श्याम के स्वर्णाङ्गद नील जल पर चमक उठे। उसकी भुजाएँ तीव्रता से उठने लगीं। भीगी अलकें पीठ पर लहरा उठीं। वह तैरकर दूसरी ओर हो गया।

तट पर क्रन्दन बंद हो गया। सबके प्राण नेत्रों में आ बसे। एकटक स्थिर सब ह्रद की ओर देखने लगे। ह्रद में सर्प जिस तीव्रता से मुड़ता है, श्रीकृष्ण उससे अधिक तीव्रता से दूसरी ओर तैर जाते हैं। बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठ रही हैं। ह्रद आलोड़ित हो रहा है। अनेक बार सर्प प्रयत्न करता है कि स्थिर होकर अपने लक्ष्य को देख ले या विश्राम कर ले; पर उसके फण उठाते ही श्याम के चिर-चञ्चल कर जल में थपेड़ा मारकर छींटों का आघात करते हैं। सर्प स्थिर नहीं हो पाता। उसकी रोष-भरी फूत्कार बढ़ती जाती है, परंतु उसका वेग घटने लगा है। कब तक वह इस गति से तैरता रह सकता है।

सर्प आक्रमण कर रहा है या अपने को बचा रहा है, अब यह कहना कठिन हो गया है। उस पर जल के छींटों का वेग बढ़ता जा रहा है। उसे ठीक भागने का मार्ग ही नहीं मिलता और कनूँ—वह तो अपने लाल-लाल चरण पटकता, छींटे मारता हँस रहा है। उसे तो यह अच्छा खेल मिल गया है। बालक ताली बजाने लगे हैं तट पर।

× × × ×

'यह क्या हुआ? कन्हैया तो सर्प के समीप पहुँच गया!' सबके हृदय धक् से हो गये, परंतु वहाँ तो दृश्य ही बदल गया। श्याम ने हाथ बढ़ाकर सर्प का एक फण पकड़कर झुकाया और उसपर चरण रखकर खड़ा हो गया। सहसा आकाश में बाजे बजने लगे हैं। पुष्पवृष्टि

हो रही है। जयध्वनि से गगन गूँज रहा है। यह सब कौन देखे। सबके नेत्र तो श्याम पर स्थिर हैं।

सर्प के मोटे-मोटे फण—उसने झट दूसरा फण ऊपर किया और उसके साथ ही वह लाल चरण पड़ा उस फण पर। यह क्या—फण तो उस कोमल चरण के पड़ने से ही फट गया। उसमें से रक्त के फुहारे निकल पड़े। श्याम का पद्मारुण चरण सर्प के रक्त के छींटों से रँग गया है, जैसे उसके चरणों पर किसी ने नन्हे रक्तिम पुष्प बिखेर दिये हों। फणों की मणि-किरणों के प्रकाश में वह अरुणिमा और भी भासित हो उठी है।

'वह फण उठा!' जब श्याम सर्पभोग से छूटा, उसके साथ ही, सम्भवतः उनकी चेतना लौटी थी। वे सब-के-सब बार-बार चिल्लाते हैं। कन्हैया को सावधान करते हैं; पर कन्हैया तो नीचे देखता ही नहीं। आज तो जैसे उसके पैरों में नेत्र हो गये हैं। फण उठा और चरण पड़ा। सर्प जो फण उठाता है, उसी पर नटराज के चरण पड़ते हैं।

कटि का पीताम्बर भीगकर चिपक गया है। उससे श्रीअङ्ग की छटा झाँकती जान पड़ती है। वनमाला वक्ष पर लहरा रही है और अलकें पृष्ठभाग पर। दोनों से सीकर बिखर रहे हैं। मुख और भाल पर जलबिन्दु श्रम-सीकर के समान शोभित हो रहे हैं। पटुका कटि में कसा है। भीगे हुए मयूर-पिच्छ की आज विचित्र ही छटा है।

कटि से निकालकर उसने मुरलिका अधरों पर रख ली। देववाद्य भला, मुरली की मधुरिमा कहाँ से प्राप्त करें। लास्य नहीं—आज ताण्डव चल रहा है—ऐसा विचित्र ताण्डव, जिसकी समता इतने भेदों-उपभेदों के साथ भगवान् शशाङ्कशेखर भी कदाचित् ही अपने 'सम' में ला सकें। कभी 'थैया, थैया' का मन्द और कभी 'द्रां, द्रां, द्रां...' का 'द्रुत'—पद कहाँ पड़ेंगे ? एक ही उत्तर है, सर्प का जो फण ऊपर उठेगा, वहाँ। इस 'चित्र ताण्डव' की समान गति है परंतु सर्प के फण फटे जा रहे हैं। वह फूत्कार के साथ विष उगल रहा है। उसके फणों का रक्त-प्रवाह बढ़ता जा रहा है—बढ़ती जा रही है श्याम के श्रीचरणों की अरुणाभा।

नृत्य चल रहा है—गोपियों के नवनीत पर उनके पावन प्राङ्गण में जिस नृत्य का अभ्यास हुआ है, आज कालिय के फणों के रङ्गमञ्च पर उसका अवतरण हो रहा है। देववाद्य, पुष्पवृष्टि, मुरलीध्वनि और सब से बड़ा ताल है बच्चों की 'विजय-उल्लासभरी पुकार'—'वह फण उठा!'

सर्प शिथिल होता जा रहा है। उसे लगता है, उसके फणों पर मन्दराचल क्षण-क्षण में किसी के द्वारा पटका जा रहा है। उसका गर्व—रोष कब का दूर हो चुका। अब तो वह जीवन-रक्षा के लिये संघर्ष कर रहा है। किसी प्रकार छूट सके, किसी प्रकार भाग सके! प्रहर भर से अधिक होरहा है मस्तक पर इस धमाचौकड़ी को सहते। वह अब फण नहीं उठा सकेगा—ना, अब नहीं उठा सकेगा कोई फण।

कालिन्दी के नीले जल में एक सौ एक फणों का वह महासर्प। प्रत्येक मुख से लप-लप करती दो-दो जीभें। फणों से निकलती रक्तधारा में प्रकाशित मणियाँ और अंगारों-सी चमकती आँखें। उन फणों पर भीगा पीताम्बर पहिने रक्तारुण चरणों से ताण्डव की गति पर कूदता, अधरों से मुरली लगाये इन्दीवरदलश्याम कन्हैया। लेकिन फणों का उठना क्रमशः शिथिल होता जा रहा है। अब ये उस वेग से फूत्कार करते नहीं उठते और पूरे उठ भी नहीं पाते। ऊपर देववाद्य बज रहे हैं! ह्रद तैरते दिव्य सुमनों से भर उठा है और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है।

कन्हैया तो वंशी बजाता नाच रहा है। उसके कुण्डल अलकों में उलझकर स्थिर हो गये हैं। मयूरपिच्छ सूखकर फर्र-फर्र उड़ने लगा है। पीठ पर अलकें लहरा रही हैं। वह आज नृत्य की उमंग में है।

× × × ×

ह्रद में एक साथ छोटे-छोटे सर्पों ने सिर उठाये। नागपत्नियों के मस्तक उनके पीछे दीख पड़े। बालक डरे—क्या ये सब उनके श्याम पर आक्रमण करेंगे? लेकिन वे तो स्थिर हैं। वे केवल देख रहे हैं कन्हैया की ओर। अपने मुखों से कुछ ध्वनि कर रहे हैं।

'नाथ! दयामय! आपने अच्छा किया जो अपने श्रीचरणों से इनके मस्तक को पवित्र किया। ये नागराज वासुकि और शेष से भी अधिक भाग्यशाली हैं! आपके पावन चरणों के मस्तक पर धारण का सौभाग्य मिला इन्हें। पता नहीं कौन सा महापुण्य किया था इन्होंने। दुष्ट-दलन—आपका दण्ड-विधान उचित ही है; परन्तु क्षमासिन्धु, हमारे इन पतिदेव के अपराध को अब क्षमा करें! ये नाग-शिशु, हम अबलाएँ आपकी शरण हैं! ये अज्ञानी हैं, इन्होंने आप को पहिचाना नहीं! अब क्षमा करें!' वे नागपत्नियाँ स्तवन कर रही थीं।

'कन्हैया, छोड़ भी दे बिचारे सर्प को! छिः, तू उसे मार ही डालेगा क्या?' भद्र को दया आ गयी। उसने देखा, सर्प ने फण उठाना बंद कर दिया है। उसके फणों के चिथड़े हो रहे हैं। उसे लगा, ये सब नन्हे सर्प 'किट् किट्' करके दीनता से प्रार्थना कर रहे हैं।

श्याम ने एक बार तट की ओर देखा। मुरली कटि में लग गयी। वह सर्प के मस्तक से जल में कूद पड़ा। सर्प ने दीर्घ श्वास ली। उसे फूत्कार किसी प्रकार नहीं कह सकते। दो क्षण वह मूर्छित-सा पड़ा रहा। फिर उसके मुख से बड़े करुण शब्द निकले—'प्रभो! आप सर्वेश्वर, सर्वसमर्थ हैं! जन्म से ही आप ने हम सर्पों को क्रोधी बनाया है। कोई भी प्राणी अपना स्वभाव छोड़ नहीं पाता। मैं तो एक क्षुद्र जीव हूँ। अब आप मुझ पर कृपा करें या रोष!' उसके नेत्रों से अश्रु गिरने लगे। उसने अपने फण जल पर फैला दिये।

'कालिय, यहाँ अब तुम्हें रहना नहीं चाहिये। यहाँ मेरे सखा, स्वजन और पशु क्रीड़ा करेंगे। तुम झटपट समुद्र में चले जाओ! डरो मत! गरुड़ तुम्हारे फणों पर मेरे पद-चिह्न देखकर तुम्हें भक्षण करने की कभी इच्छा नहीं करेंगे!'

'अरे, कन्हैया गया कहाँ?' बालकों ने, गोपों ने, गोपियों ने वह संवाद सुना नहीं। सर्पों की किट्-किट् में उनका कोई आकर्षण नहीं। उन्होंने तो देखा कि वह महासर्प, वे छोटे सर्प और नागिनें सहसा जल में डूब गयीं और उनके साथ ही श्यामसुन्दर ने भी हँसकर डुबकी लगायी। उस नटखट ने तट की ओर हँसकर देख लिया था—भीत होने की बात नहीं है; पर--

कुछ क्षण—व्रजवासियों को तो वे क्षण युग--जैसे जान पड़े, पर लगे कुछ क्षण ही। श्यामसुन्दर जल से बाहर निकला। कालिय ने उस सौन्दर्यधन की आराधना की जल में। श्रीअङ्ग में यह दिव्य अङ्गराग ह्रद के अन्तस् में लगा है। वनधातुओं के चित्र तो कब के धुल चुके थे। जान पड़ता है, वनमाला के पुष्प नागकुमारों को, पटुका और कछनी के वस्त्र कालिय को और मुक्तामाला के मोती नाग-पत्नियों को वह प्रसाद दे आया। उसकी कटि में पीताम्बर की कछनी है, कंधे पर पटुका है; पर ये ऐसे दिव्य वस्त्र हैं जो जल में भीगे नहीं। गले में तो मोटी लंबी नील-कमलों की माला है और कण्ठ में सर्प की महामणियों का हार है। उसकी भुजाओं में भी अद्भुत अङ्गद हैं। कुण्डल, केयूरादि समस्त आभरण बदल आया है वह।

'नीलमणि!' मैया ने दोनों भुजाएँ फैला दीं।

'कृष्णचन्द्र!' बाबा झपटे उसे कण्ठ से लगाने।

'श्यामसुन्दर!' गोपियों की उत्कण्ठा का क्या कोई वर्णन करे!

'कन्हाई!' गोपों में उल्लास व्याप्त हो गया।

'कनूँ!' प्रत्येक बालक चिल्लाकर दौड़ा।

कन्हैया—प्रत्येक को जान पड़ा कि श्याम पहिले उससे गले मिल रहा है।

तेरे चरण तो देखूँ! बालकों ने वहीं उसे भूमि पर बैठाया और उसके अरुण पादतल ध्यान से देखने लगे।

'साँप ने कहाँ काटा था तुझे ?' भद्र हाथ में कुछ पत्तियाँ लिये सब अङ्ग देख चुका। उसने सुना है, इन पत्तियों से सर्पविष नष्ट हो जाता है।

'सर्प बड़ा गुदगुदा होता है और शीतल भी। उसपर सोने में बड़ा आनन्द आता है और उसके सिरपर नाचना तो और मजे की बात है !' कन्हैया खुलकर हँस पड़ा। नटखट कहीं का, सबको चिन्तित करके वह यह आनन्द ले रहा था।

तेरा गेंद तो नहीं दूँगा मैं !' ह्रद से लाया है वह, यह तो श्रीदाम ने देख लिया पर मस्तक झुका लिया उसने एक बार और दूसरे ही क्षण हँसकर बोला—'गेंद ले ले, पर फिर साँप पर सोने मत जाना !'

× × × ×

मैं तो थक गया हूँ, अब यहीं सोऊँगा !' कन्हैया केवल अपनी बात नहीं कह रहा है। सभी थक गये हैं। श्यामसुन्दर जब ह्रद से निकला, सूर्यास्त हो चुका था और सायंकालीन फुटपुटा प्रकाश भी समाप्त ही होने वाला था ! अब उससे मिलने के उत्साह में जो विलम्ब हुआ, उससे तो पूरा अन्धकार हो गया। इस अँधेरे में व्रज को सब पशुओं के साथ वनमार्ग से लौटना सरल नहीं है। विषैले ह्रद से, यमुना के उस कूल से हटकर उपकूल पर सब आ गये थे, यही दूरी उस श्रान्ति में सबको बहुत अधिक लगी है।

'तुम सबों के छीकों में कुछ है या नहीं ?' बाबा ने ठीक सोचा है। सभी बालक आज मध्याह्नकाल का कलेऊ लेकर बिना भोजन किये वन में आये हैं। यदि उनके छीकों में कुछ हो तो इस समय उनके जलपान की चिन्ता नहीं रहेगी। उन्हें कुछ मिल जाय तो शेष लोग जल पीकर रात्रि व्यतीत कर लेंगे। इस अन्धकार में बालकों को वन में से लेकर जाना ठीक नहीं, सब लोग दौड़ने और दीर्घ शोक के वेग से शिथिल भी हो रहे हैं।

'हमने तो आज भोजन किया ही नहीं !' कन्हैया दौड़ा जल्दी से भद्र का छीका लेने। वह छीका तो कभी लाता है नहीं।

'सब छीके मेरे पास तो ले आओ !' आज अन्धकार में मैया ने छीना-झपटी का अवकाश नहीं दिया। सब बालकों को बैठाकर परसकर भोजन कराया।

वहीं सबने रात्रि-विश्राम करना निश्चित किया। बालक सब मध्य में सोये। गोपियों ने उन्हें घेर लिया। गोपगण सारे समूह को घेरकर चारों ओर स्थित हुए। बारी-बारी से कुछ लोग रक्षार्थ जागते रहें, यह निश्चय हो चुका है।

× × × ×

भय का कोई कारण जहाँ नहीं दिखायी पड़ता, अनेक बार वहीं भय सम्मुख आ जाता है। रक्षा के लिये नियुक्त गोप भी थके हैं, वे भी निद्रा के कारण झपकियाँ लेने लगे हैं। शीतल वायु, खुला तारकखचित गगन और निशीथ को अतिक्रान्त करती निशा—ऐसे समय में पलकें भारी होने लगें और विवशतः बंद हो जायँ तो कोई क्या करे।

'क्यों? क्या बात है !' सहसा गोप चौंके। चारों ओर जैसे चीत्कार गूँज रहा हो। पशु क्रन्दन कर उठे। वायु उष्ण हो गया है। भली प्रकार पलकें खुली भी नहीं थीं कि भय, आश्चय से वे चिल्ला पड़े—'उठो ! उठो ! आग ! आग !'

दावाग्नि तो सदा निदाघ में मध्याह्नोत्तर प्रकट हुआ करता है। रात्रि में दावाग्नि और वह इतने समीप धाँ धाँ करके वन को जलाता, ऊँची-ऊँची लाल लपटों की शतशः जीभों से समस्त चर-अचर को चाटता दौड़ा आ रहा है ! यह घेरा बनाकर चारों ओर से बढ़नेवाला अग्नि !

'कृष्ण ! श्याम ! कन्हैया !' सबके मुख से एक ही नाम आर्तवाणी में फूटा ! वे कनूँ को अपनी रक्षा के लिये पुकार रहे हैं या उसकी रक्षा के ध्यान में अपने को भूल गये हैं ? सब ने श्रीकृष्ण को घेर लिया। गोपियों, बालकों, गोपों ने ही नहीं, पशुओं ने भी।

'जल्दी करो! नेत्र बंद कर लो! बंद करो नेत्र!' कन्हैया ने पुकारना प्रारम्भ किया। उसने मैया के दोनों हाथ उसके नेत्रों पर रख दिये उठाकर। 'सब लोग नेत्र बंद कर लो! मैं कहूँ, तब तक बंद किये रहो! वनदेवता हमारी रक्षा कर देंगे। पर कोई नेत्र खोले नहीं!'

'वनदेवता! श्रीनारायण! दयामय! हमें भस्म करके भी श्याम की रक्षा करो। उसे बचा लो, प्रभो!' नेत्र बंद हो गये हैं सबके और प्राण पुकार रहे हैं।

श्याम ने देखा—गायें, बछड़े, वृषभ और वन से भागकर आये मृग, मयूर, पशु-पक्षी, कीट सब उसी की ओर देख रहे हैं। वनदेवता—व्रजवन के उस शाश्वत अधिदेवता ने अग्नि की ओर देखा। यह दिव्य दावाग्नि तो है नहीं। रात्रि में प्रकट होने वाला यह कंस-प्रेरित अभिचाराग्नि छद्म-दावाग्नि बनकर आया है। उसका मुख खुल गया। एक शब्दहीन हास्य और...और क्या, वह कदाचित् वायु खींच रहा है। लपटें खिंचती उसके मुख में चली जा रही हैं! प्रज्वलित काष्ठ अध-जले रह गये। उनकी चिनगारियाँ तक लुप्त हो गयीं। उस अग्निपायी ने उष्णता तक पी ली।

'तुम सब नेत्र बंद किये रहना, भला!' उस नटखट ने धीरे से मैया के हाथ नेत्रों से हटा दिये; परंतु अपनी कोमल हथेली उसके मुखपर रख दी। मैया ने देखा और उसका मौन बना न रह सका। उसके नेत्र भर आये और गद्गद भक्तिविह्वल कण्ठ से निकला—'नारायण! दयामय!'

'दावाग्नि वनदेवता ने शान्त कर दी!' सबने आश्चर्य से देखा नेत्र खोलकर।

'वह भाग गया! वह भागा जा रहा है दावाग्नि!' प्राची में अरुणोदय की लालिमा प्रकट होने लगी है। कन्हैया ने उस ओर इस भोलेपन से संकेत किया, जैसे कुछ जानता ही न हो।

प्रकाश हुआ! आज सायंकाल के बदले प्रभात में अधरों पर वेणु धरे, गायों को आगे किये, सखाओं से घिरा श्याम वन से व्रज में प्रवेश करने चला है। आज ग्राम में प्रतीक्षा करनेवाले नेत्र उसके पीछे चल रहे हैं। सारा व्रज—अपार जन एवं पशुसमुदाय से घिरा गोपाल जा रहा है!

कल श्याम के कालियह्रद से निकलने पर बाबा ने ब्राह्मणों को जो सहस्रों गोदान किये, वह तो कल की बात हो गयी। आज ग्राम में पहुँच कर वे पुनः हवन, देवाराधन, गोदान, विप्र-पूजन में लग गये हैं। समस्त गोप एवं गोपियों का आज नन्दभवन में ही सत्कार होना है। आज भीतर और बाहर महामहोत्सव है वहाँ और सबके लिये सर्वाधिक महोत्सव है—श्याम आज वन में नहीं जायगा! दिनभर वह नेत्रों के सम्मुख रहेगा।

—❀⊂❀⊃❀—

धेनुक-वध

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥

—भागवत १०।१५।४२

पावस का प्रारम्भ—आपादस्नात तरु-लता-वृन्द, अद्भुत छटा है वन की। सुपक्व आम्र-तरु जैसे अरुणिम स्वर्णफलों से पूर्ण हो गये हैं। जम्बू ने श्याम अङ्ग की शोभा धारण कर ली है। सरिता और सरोवरों के जलों में वृद्धि हुई, पर अभी मलिनता नहीं आयी। उनमें उत्पल, कल्हार, इन्दीवर, कुवलय खिल उठे हैं। कुमुद-दल ऊपर आने लगे हैं। भूमि पर हरितिमा बिखर उठी है। तृणों में कोमलपत्र, कन्दों में अङ्कुर और बीजों में द्विदल आ गये हैं। भ्रमर गुंजार करते हैं, कोकिला कुहकती है, मयूर पुच्छ प्रसारित करके 'थनगन' नाचते हैं।

श्यामसुन्दर नित्य प्रातः सखाओं के साथ वन में गोचारण के लिये आता है। वृषभ भूमि को सूँघकर उन्नाद करते हैं और सींग से टीलों को खोदते हैं। बछड़े फुदकते हैं। बंदर किलकारियाँ मारते हैं। लताएँ पुष्पों के भार से और पादप फलभार से झुक गये हैं। उनकी डालियाँ भूमि का स्पर्श करने लगी हैं। जब गायें आगे-आगे चलती हैं, सखा पीछे ताली बजाकर गाते हैं और उसके मध्य में कन्हाई अग्रज के साथ अधर पर वंशी रक्खे, मत्तगयंद-गति से चलता है।

लताओं के पुष्प, वृक्षों के किसलय, दल, फल—सब मार्ग के दोनों ओर झुक आये हैं। जैसे समस्त वन इन गौर-श्याम की चरण-स्पर्श-स्पर्धा में नत हो गया हो। हाथ उठाकर बालकों के साथ कन्हैया कभी पुष्प तोड़ता है, कभी किसलय और कभी फल। बछड़े, गायें, वृषभ—जिसके मन में आये, वही मुख ऊपर उठाकर कोमल दल या फल का आहार करने लगता है।

'भैया, ब्रह्मा ने इन्हें वृक्ष बना दिया, इतने पर भी ये अपने पुष्प और फलों का उपहार लेकर तेरे चरणों में अपने मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं। देवता भी तो तेरा वन्दन करते हैं, फिर ये अपने उस तमस् के नाश के लिये क्यों तेरा अर्चन न करें, जिसने इन्हें जड बनाया!' आज कन्हाई उल्लास में है। उसने वृक्षों की ओर देखा और दाऊ को सम्बोधित कर कविता-सी करने लगा।

'सब विद्वान् ऋषि-मुनि जैसे बड़े स्वर से परमात्मा की स्तुति करते हैं, वैसे ही ये भौंरे तेरा गुणगान कर रहे हैं। अवश्य ये सब भी मुनिगण होंगे। ये तेरे मुख्य भक्त हैं, अतः इस रूप में ये छिपे हैं और यहाँ भी अपने निष्पाप आराध्य को छोड़ते नहीं।' आज भाई की स्तुति चल रही है।

'देख, भैया, ये मयूर तुझे देखकर नृत्य कर रहे हैं। ये मृगियाँ गोपियों की भाँति अपनी दीर्घ दृगों से स्नेहपूर्वक तुझे देख रही हैं। ये कोकिल अपने कलकण्ठ से तेरा स्तवन कर रहे हैं। धन्य हैं ये वनवासी, घर आये अतिथि का सत्कार करना सज्जनों का स्वभाव ही होता है।' चारों ओर वह चञ्चल देखता जा रहा है।

'यह पृथ्वी, तृण, वीरुध, क्षुप धन्य हैं, इन्हें तेरे श्रीचरणों का स्पर्श प्राप्त हो रहा है। ये वृक्ष और लताएँ भी धन्य हैं, जिन्हें तू अपने हाथों से स्पर्श कर रहा है। यह यमुना, गिरिराज, पशु-पक्षी जिन्हें तू बड़े प्रेम से देख रहा है, सब धन्य हैं!' सब सखा ताली बजाकर हँस न पड़ते तो पता नहीं कितना वृहत् बनता यह काव्य।

× × × ×

श्याम—उसका भ्रमरों के साथ गुनगुन कर गायन कितना मधुर होता है! जब वह मयूरों को चिढ़ाने के लिये हँसता हुआ नाचने लगता है—जैसे नृत्य का वही अधिष्ठाता हो। चकोर,

क्रौंच, सारस, मयूर, मृग, सिंह, वनकुक्कुट, विडाल और कभी-कभी बछड़ों को भी वह चिढ़ा लेता है। कोई बोला और बालकों में से अनेक उसके शब्द का अनुकरण करने लगते हैं। कन्हैया इतना हूबहू अनुकरण करता है कि कोकिल, मृग, सिंहादि को भ्रम में डाल देता है वह।

दाऊ ने सखाओं के एकत्र किये किसलय और सुमनों की शय्या पर जहाँ सुबल की क्रोड़ में मस्तक रखा, श्याम स्वयं उसके चरण दबाने अवश्य बैठ जायगा। पता नहीं क्या आनन्द आता है उसे। बड़े भाई के पैर तो वह दबायेगा ही। दाऊ का मना करना कभी सुनता नहीं वह ऐसे समय!

सखाओं के साथ कभी हाथ पकड़कर नाचता है और कभी सब स्वर मिलाकर गाते हैं। कछनी कटि में समेटकर, अलकों को बाँधकर, पटुका एवं मुरलिका एक ओर रखकर जब वह श्रीदाम, सुबल या भद्र के साथ मल्लयुद्ध करने लगता है—विचित्र छटा बनती है। सखा ताली बजाते हैं। कोई कन्हैया की प्रशंसा करता है, कोई प्रतिपक्षी की। बार-बार कमलमुख अरुणाभ हो उठता है। कमलदलनील अङ्ग धूलि में सन जाता है। भाल पर स्वेद कण झलमल करने लगते हैं। वह बल लगाता है, कूदता है, ताल देता है और यदि पटका गया तो बहाने बनाकर झगड़ता है और जीतने पर अँगूठा दिखाकर, ताली बजाकर चिढ़ाता है।

गायें दूर चली गयीं। उतनी दूर पृथक्-पृथक् दिशाओं में सखा उन्हें घेरने जायँ—खेल में विलम्ब होगा। वह गया श्याम टीले पर। वह उसने पटुका कंधे से दाहिने हाथ में लिया। वह घूमा पीताम्बर। 'कामदा! सुरभी! कृष्णा! कपिला। धर्म! नन्दी!' वह पुकार रहा है नाम ले-ले कर गायों और वृषभों को। वह कामदा ने कान उठाये! पुकार का उत्तर हुंकार से देकर पूँछ उठा कर वे दौड़े पशु! एक दौड़ा श्याम की 'ओर तो दूसरे पीछे कैसे रह जायँ। चारों ओर टीले के ऊपर मुख उठाये जैसे हुंकार भरा सागर उमड़ आया हो—श्वेत, लाल, चित्र-विचित्र। और ये मृग, सिंह, ये क्यों इनके साथ दौड़े आये? कन्हैया बुला रहा है! वह पुचकारेगा—बस! उसने किसी को पुचकारा, किसी को थप-थपाया—'यहीं चरो, दूर मत जाना भला!'

× × × ×

मध्याह्नकाल हो गया। सखाओं ने कलेऊ कर लिया। कदम्ब-मूल में वरूथप ने किसलय बिछाकर उनपर स्वर्णयूथिका के सुमन और पाटल-दल आस्तृत कर दिये। कनूँ ने भद्र को बैठाया और उसकी गोद में मस्तक रखकर लेट गया। शीतल, मन्द वायु चल रही है। गगन में श्वेताभ घन छाये हैं। सुबल को इतने से संतोष नहीं। कनूँ के भाल पर क्रीड़ा में जो स्वेद झलक उठे, अभी सूखे कहाँ। सुबल ने कमल-पत्र को व्यजन बना लिया। वह वायु करने लगा है। वरूथप और मणिभद्र ने खिले हुए कमल के समान चरण गोद में रख लिये हैं। वे धीरे-धीरे दबाने लगे हैं चरणों को।

'तेरे हाथ स्वतन्त्र रहेंगे तो तू कुछ-न-कुछ ऊधम करेगा!' मधुमङ्गल और तोक ने कृष्ण के दोनों करों को अपनी गोद में ले लिया। भद्र तो अलकें सुधारने में ही व्यस्त है।

'कन्हैया, तूने कभी ताल खाया है!' श्रीदामा ने बड़े विचित्र ढंग से पूछा।

'नहीं तो, तू ले आया है क्या?' कनूँ ने मस्तक उठाया।

'यह वायु में जो ताल की गन्ध है!' सुबल ने उसे समझाया 'कैसी मधुर गन्ध है यह!'

'दाऊ, यहाँ से यह तालवन समीप ही है! वहाँ खूब ताल पके हैं! देख न, वे दीख रहे हैं। कैसे लाल-लाल हैं। वहाँ खूब पके फल गिरे होंगे। देख, अब भी उनके गिरने का शब्द हो रहा है!' मधुमङ्गल भोजन में सदा सबसे आगे रहनेवाला है। उसने इसीलिये कन्हैया से नहीं कहा कि यह नटखट उसे चिढ़ायेगा और दाऊ भैया तो झट प्रस्तुत हो जायगा।

'जैसे वे फल तेरे लिये रक्खे ही होंगे!' श्याम ने चिढ़ाया।

'नहीं तो उन्हें कौन ले जायगा। दुष्ट राक्षस धेनुक गधे का रूप धारण करके उस वन की अपने परिवार के साथ रक्षा करता है, यह बात उस दिन मेरे बाबा ने कही थी। उस राक्षस के

भय से वहाँ मनुष्य तो क्या, पशु भी नहीं जाते। पक्षी जाते तो हैं, पर क्या वे ताल-भक्षण कर सकते हैं।' सुबल ने पूरा ही विवरण दे दिया।

'दाऊ! भला, उस राक्षस में रक्खा क्या है। वह गधा नहीं, राक्षस है!' भद्र ने इस प्रकार कहा, जैसे राक्षस वास्तविक गधे से दुर्बल ही होते हैं।

'मैं ताल खाऊँगा। बहुत दिनों से मेरे मनमें ताल खाने की इच्छा है। उसकी बड़ी-सी गुठली रख दूँगा और जब उसमें अङ्कुर आयेगा, मक्खन की भाँति गिरी निकलेगी गुठली को कुल्हाड़ी से काटने पर। बड़ी मीठी होती है गिरी!' तोककृष्ण तो ताली बजाकर कूदने लगा, जैसे ताल और अङ्कुरित गिरी दोनों उसके हाथ में आ गयी हैं।

'उस गधे ने अनेक मनुष्य खा लिये! उस वन के फल अब तक किसी ने खाये नहीं!' वरूथप ने सावधान करना चाहा।

'तब तो बहुत फल होंगे वहाँ!' दाऊ उठ खड़े हुए।

'बहुत हैं, बहुत!' सबने समर्थन किया।

'वहाँ बड़ी-बड़ी मृदुल घास होगी! पशु तो वहाँ जाते ही नहीं!' सुबल और भद्र ने गायों को हाँक दिया तालवन की ओर।

बड़े-बड़े ऊँचे ताल के—केवल ताल के वृक्ष। वृक्षों पर चारों ओर पके, अधपके कुछ कालिमा, अरुणिमा, पीताभा लिये बड़े-बड़े गोल-गोल फलों के गुम्फ। वन एक मादक सुरभि से पूर्ण हो रहा है। भूमि हरित बढ़े हुए तृणों से ढकी है। दाऊ ने मस्तक उठाकर देखा। इन वृक्षों पर चढ़ा तो जा ही नहीं सकता। उसने एक वृक्ष के तने को दोनों हाथों से पकड़ा—'अरे, दूर हटो! दूर हो जाओ!'

'धब्-धब!' दाऊ के वृक्ष हिलाने से उसपर के सभी पके फल गिर पड़े ऊपर से। बच्चे दौड़े फल उठाने; परंतु सहसा स्तम्भित-से हो गये। यह, यह शब्द,यह हरहराहट, अवश्य असुर गर्दभ आ रहा है। सचमुच वह दौड़ता हुआ आया और सीधे दाऊ के सम्मुख जाकर उसने अपने पिछले पैर चलाये। दाऊ तनिक एक ओर हो गये। गर्दभ कुछ आगे दौड़ा गया। उसने मुख ऊपर करके 'चींपों! चींपों!' चिल्लाकर वन को भर दिया उस नाद से और फिर घूमा। दाऊ के सम्मुख आकर वह घूम गया। उसने अपने पिछले पैर उनकी ओर किये और दुलत्ती झाड़ी।

'अच्छा!' दाऊ ने दोनों पैर पकड़ लिये। बालकों ने तालियाँ बजायीं और मस्तक के चारों ओर घुमाकर दाऊ ने उस गजराज के समाज विशाल गधे को सम्मुख के तालवृक्ष पर फेंक दिया। घुमाने में ही उसने जीभ निकाल दी थी और नेत्र बाहर निकल आये थे। वृक्ष पर पड़ते ही उसका शरीर फट गया। वृक्ष तो टूटकर समीप के वृक्ष पर गिरा और वह वृक्ष दूसरे से जा टकराया। पूरा वन हिल उठा, जैसे प्रचण्ड आँधी आ गयी हो। उनके सब फल भदाभद् गिर पड़े।

'गधे! गधे आये!' लड़कों ने पुकार की। धेनुक के परिवार के गधों का बड़ा भारी दल दौड़ता-चिल्लाता चला आ रहा है। सखाओं ने लाठियाँ उठायीं, परंतु उनको हँसकर दाऊ ने रोक दिया। कन्हैया ही उनकी इस विचित्र क्रीड़ा में सम्मिलित हो सका। अद्भुत क्रीड़ा है यह भी। वह दौड़ता गधा आया। राम या श्याम ने झपटकर उसके पीछे के दोनों पैर पकड़े और सिर के चारों ओर घुमाकर फेंक दिया एक वृक्ष पर। धड़ाम से वृक्ष टूट पड़ा। यह क्रीड़ा चलती रही तब तक, जब तक सब गधे मारे न गये।

चारों ओर मध्य से टूटे भूमि पर सिर धरे, प्रणाम करते-से ताल वृक्ष, उनके चारों ओर खड़े ताल। भूमि पर बड़ी-बड़ी घास, जो गधों के दौड़ने से जहाँ-तहाँ कुचली पड़ी है। गधों के शव पड़े हैं उसपर इधर-उधर और ताल के फलों से तो पृथ्वी बिछ-सी गयी है।

सहस्र-सहस्र गायें, वृषभ, बछड़े और उनके साथ मृगादि पशुओं ने उसमें प्रवेश किया है प्रथम बार। वे इस अस्पृष्ट तृण को बड़े चाव से चरने लगे हैं। कपियों का दल किलकता आया तो है, पर ताल उन सबों ने सूँघकर छोड़ दिया। वह उनके योग्य फल नहीं।

राम-श्याम ने उछलते, चिल्लाते सखाओं के मध्य कटि से पटुका पुनः खोलकर कंधे पर डाला। बँधी अलकों को उन्मुक्त किया। श्रम-सीकर तो वायु ने प्रथम ही सुखा दिया। बालकों ने तालफल उठाये।

'ऐसे ही ताल खायगा !' कन्हैया ने बहुत प्रयत्न किया उसे छीलने का; परंतु जब सफल न हुआ तो मुख से काटने का यत्न करने लगा। सब बालक खिल-खिलाकर हँस पड़े।

'यह लकड़ी घुमा इस प्रकार और जो मक्खन की भाँति गूदा निकले, उसे खा !' सुबल ने एक छोटी-सी लकड़ी ताल के उपर के छिलके को छीलकर उसके रेशों में उलझा दी और उसे घुमाया। सब ताल में लकड़ियाँ लगाकर उसे खाने में लगे हैं।

'गुठलियाँ एकत्र रख दो ! इनमें अङ्कुर निकलेंगे, तब इन्हें खायँगे हम सब !' वरूथप ने एक चेतावनी दी।

'मैं तो अभी खाऊँगा ! तू इसे काट दे !' कन्हैया भला, अङ्कुर निकलने तक मानने वाला है।

'अभी क्या अच्छा लगेगा !' लेकिन वरूथप को काटना पड़ा गुठली को और उसने ताल का भीतरी भाग निकाल लिया।

'यह कैसा उज्ज्वल और चिकना है !' श्याम ने मुख में लगाया और फिर फेंककर मुँह बनाने लगा। सब-के-सब हँसकर चिढ़ाने लगे उसे। सबने तालों को उछाला, फेंका, उनकी कन्दुक-क्रीड़ा की।

दोनों हाथ, अधर, मुख और कपोल भी ताल के उस केसरिया गूदे से रँग गये हैं। बालकों ने इच्छानुसार ताल खाये और तब निर्झर के किनारे पहुँचना ही है उन्हें। पशुओं ने आज बहुत शीघ्र चरना बंद कर लिया। वे इस हरित मृदुल तृण से शीघ्र तृप्त हो गये। सबने बैठकर या खड़े होकर इधर-उधर रोमन्थन प्रारम्भ किया।

× × × ×

मुरली अधरों से लगी और वह नित्य के निश्चित स्वर में गूँज गयी। गोप-कुमारों ने अपने-अपने शृङ्ग उठाये। कानन का प्रत्येक कोना ध्वनित हो गया। गायों ने कान खड़े किये, पूँछें उठायीं और हुंकार करती दौड़ीं। श्याम अब व्रज को लौटेगा।

कपिदल किलकता-कूदता एकत्र हो गया। मयूरों ने नृत्य बंद किया। पक्षियों के स्वरों में वेदना आयी ! कन्हैया अब उनसे रात्रिभर के लिये दूर जायगा ! गायों के साथ मृग, वराह, रीछ, सिंह, सब दौड़ आये। सब एक साथ उस झुंड के साथ चले। वनसीमा तक तो वे सब जा ही सकते हैं।

पीछे तरु-पंक्तियाँ पक्षियों के भार से झुकी हैं। वन्यपशुओं के ठट्ट पंक्तिबद्ध खड़े हैं; जैसे वनदेवता सहस्र-सहस्र नेत्रों से अपने आराध्य का दर्शन कर रहे हैं। आगे गायें, बछड़े, वृषभ चल रहे हैं। घर की स्मृति में आगे दौड़ने के बदले वे बार-बार पीछे घूमकर हुंकार करते जाते हैं।

दोनों दलों के मध्य में रस्सी, लकुट, शृङ्ग, छींके लिये गोप-बालकों का समुदाय है। वे सब बार-बार हँसते हैं, तालियाँ बजाते हैं, पुकारते हैं, गाते हैं और जयनाद करते हैं—'जय जय कुँवर कन्हाई !'

बालकों से आगे तप्तहेमवर्ण, नीलाम्बरधारी दाऊ अपनी मत्तगयंद-गति से चल रहे हैं और उनके बायीं ओर है उनका पीताम्बरधारी, इन्दीवरनील, चपलनेत्र छोटा भाई ! उसके अधरों की मुरली-ध्वनि गायों की हुंकृति, पक्षियों के कलरव, वन्यपशुओं के विविध शब्द, गोप-कुमारों के कोलाहल, सबको एकाकार करके गूंज रही है। सब उस परमराग के अनुगामी बन गये हैं। उसने सबको 'साज' बना लिया है।

मोहन आ रहा है ! अस्तंगत सूर्य की अरुण रश्मियों में उसका मुख अबीर से मला-सा जान पड़ता है। उसके कपोलों पर कुण्डल झलमला रहे हैं। मस्तक पर बँधा मयूरपिच्छ, अलकें,

भाल, भ्रूमण्डल, कपोल, वनमाला—सब पर गायों के खुरों से उठी धूलि के कण सुशोभित हैं। कपोल, भुजा, पृष्ठ, वक्ष—समस्त अङ्गों पर वनधातुओं के रंग-विरंगे चित्र हैं। वन्यपुष्पों के आभूषण धारण किये हैं उसने और अलकों में सखाओं ने इतने कुसुम उलझा दिये हैं, जैसे गगन में तारे खिले हों ! वह आ रहा है— मन्द-मन्द चलता, तनिक-तनिक झूमता, कभी गायों या बछड़ों को पुचकारता, कभी सखाओं की ओर मुड़कर देखता, कभी इधर-उधर चपल नेत्र चलाता, मन्द-मन्द मुस्कराता चला आ रहा है।

मोहन आ रहा है ! जैसे व्रज के कर्णों में अमृत पड़ा हो। वेणु-नाद के साथ सब दौड़ पड़े। गोपों ने मार्ग के दोनों ओर स्थान लिया। वृद्धाओं ने आरतियों के थाल सजाये। तरुणियों ने अट्टालिकाओं पर कुसुम की संचित ढेरियों के समीप अञ्जलि भरी और बालिकाओं ने केसर, चन्दन, अक्षत की कटोरियाँ उठायीं।

मोहन आ रहा है ! कितने युगों की प्रतीक्षा-तपस्या जैसे पूर्ण हुई है। कौन ऐसा है, जिसने द्वारदेश के बार-बार चक्कर नहीं काटे। उनकी गणना कौन करे, जो ग्रामसीमा तक तीसरे प्रहर तक ही बार-बार जाकर लौटने लगे हैं। सूर्यास्त के बहुत पूर्व से मार्ग में या वातायन के सम्मुख स्थिर हुए लोगों की उत्कण्ठा क्या शब्दों में व्यक्त हो सकती है।

मोहन आ रहा है ! वह नित्य इसी प्रकार आता है; परंतु लगता है, वह युगों के पश्चात् आ रहा है। वह नेत्रों से, हास्य से, मस्तक हिलाकर सबको तृप्त करता, सबके मध्य से, नन्दभवन जा रहा है ! कुसुमवर्षा, केसर के छींटे, द्वार-द्वार के नीराजन के साथ सबके हृदय, प्राण, मन उसके साथ जा रहे हैं और नन्दभवन तक सब को उसका अनुगमन करना है ! सबके चरण स्वतः चले जा रहे हैं !
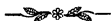
दधि—दान

"आपादमाचूडमतिप्रसक्तैरापीयमाना यमिना मनोभिः ।
गोपीजनज्ञातरसावतान्नो गोपालभूपालकुमारमूर्तिः ॥"

—श्रीलीलाशुक

मुरली—मुरली बजती है, वही तो व्रजजन-जीवन है। वही तो प्राणों में सुधा-सिञ्चन करती है कर्ण-कुहरों में प्रविष्ट होकर। श्यामसुन्दर सखाओं के साथ प्रातः गोचारण के लिये वन में चला जाता है। अब वह प्रायः मध्याह्न में लौटता नहीं। उसका कलेऊ वन में ही पहुँचाया जाता है। वह लौटता है सायंकाल को और व्रज के मन, नेत्र, प्राण उस प्रातः के वियोगक्षण से सायं के स्वर्णिम क्षण की आकुल प्रतीक्षा करते रहते हैं। मुरली-ध्वनि--दिन में प्रायः यह अमृत-ध्वनि उनके कानों में पहुँचती है। वे सहसा उसी स्थिति में, जिसमें होते हैं, निःस्पन्द होकर उस शब्द-सुधा का पान करते हैं।

गोपियाँ—वे क्या करें ? वह मोहन का मक्खन चुराना, वह भवन के प्राङ्गण में, कोष्ठ में उसका सखाओं के साथ उन्मुक्त हास्य, वह उसका इधर-उधर चपल होकर देखना, भागना, दौड़-धूप, छीना-झपटी, और वह चिढ़ाना, मैया को उलाहना देने के बहाने बार-बार उसका वह कृत्रिम गम्भीरता धारण कर लेना, वे अटपटी युक्तिया--जैसे आज की ही तो बातें हैं सब; पर--पर ये तो गोकुल की बातें हैं। वे दो यमुलार्जुन के वृक्ष--वे दोनों गिरे और ले गये वह आनन्दोत्सव। श्याम सकुशल रहे! लेकिन इस वृन्दावन में ही क्या कम उत्पात करता था वह। उसका वह घड़ों को कंकड़ मारकर फोड़ देना, घड़े लुढ़का देना, छीना-झपटी करना, सखाओं के साथ ताली बजाकर कूदना, वह विजयोल्लास और उलाहना देने जाने पर उसकी मैया से वे युक्तियाँ, वह विचित्र मुखभङ्गी · हाय, व्रजेन्द्र को क्या अभाव था। कन्हाई के ही गाय चराये बिना क्या गायें न चरतीं। व्रजेश करें भी क्या--वह चञ्चल वन में गये बिना मानता कहाँ है। उसकी वह धूम, वह लीला, वह उन्मद बालचपलता --आज भी प्राण तड़प उठते हैं। वह सायंकाल लौटेगा ? उफ, कितना बड़ा है दिन, कब होगा सायंकाल !' गोपियाँ एकत्र होती हैं और परस्पर उसी ऊधमी के ऊधमों की चर्चा करती हैं। मुरलीध्वनि कभी प्राणों को सिञ्चित कर जाती है और तब चल पड़ती है मुरली की चर्चा।

बालिकाएँ—वे श्याम के साथ अब तो खेल नहीं पातीं। अब वह नटखट न उनसे झगड़ता और न उन्हें चिढ़ाता, उनकी जलभरी स्वर्णकलशियों को छीनकर कोई लुढ़काने वाला घाट पर ही नहीं तो घाट पर जल भरने गयीं तो और न गयीं तो...... अवश्य वहाँ जाकर वे कुछ क्षण बैठ लेती हैं। सखियों में परस्पर कुछ उसकी चर्चा हो जाती है। वे छः से आठ वर्ष तक की बालिकाएँ—अभी से उनकी चञ्चलता पता नहीं क्या हो गयी। अभी से वे गुम-सुम रहने लगीं। प्रातः जब मोहन सखाओं के साथ गायों को आगे करके इधर से निकलता है--वह इधर से ही निकलता है। अब वह बरसाने के मध्य से होता आगे के वन में ही जाता है। हाँ, उस उषःकाल की सिन्दूरी वेला में और सायंकाल जब वह गोरज से भरी अलकें, पलकें, वनमालाभूषित, विचित्र वनधातुसज्जित, अधरों पर मुरली धरे, इधर-उधर चञ्चल नेत्रों से अमृतवर्षा करता मन्दगति से मृगराज के समान झूमता-घूमता आता है—जैसे किसी पुत्तलिकागृह के सूत्रधार ने सूत्रों को एक संग झकझोर दिया हो। उसी समय तो इन सब में जीवन-सा आता है। इतना उन्मद-प्रवह जीवन जो उल्लसित, अस्त-व्यस्त कर देता है और फिर—दिन में तो कुछ पूछना नहीं। जो जहाँ है, वहीं बस बैठी है। कोई पुकारे, कोई समीप से आये-जाय, ये सब तो जैसे मूर्तियाँ हैं। माता-पिता, घर के दूसरे लोग ठेल-ठाल कर नहला दें, भोजन करा दें—बस इतना ही।

हाँ, मुरली बजती है--वह तो बजती ही है। सब जैसे वन की ओर ही कान लगाये ध्यान किया करती हैं। वह बजी मुरली—वह बजी ! प्राणों में एक अद्‌भुत उत्तेजना—अब दौड़ पड़ें, अब दौड़ पड़ें। 'वहाँ तमालतरु के नीचे ललित त्रिभङ्गी से खड़ा मोहन कदाचित् इधर ही देखता होगा !'

कब तक कोई अपने को रोके रक्खे। लड़कियों ने प्रस्ताव किया—'हम तो दही बेचने जायँगी !' भला यह भी कोई बात है। घर मणि-रत्नों से भरा है। तेली, तंबोली, बजाज, स्वतः आवश्यक पदार्थ पहुँचा जाते हैं; तब दही क्यों बेचें ये बालिकाएँ। कुछ गोप-रमणियाँ दही बेचती तो हैं। दही के बदले वे तेल, लवण, वस्त्र ले आती हैं। मणि-रत्नों को कौन पूछे। लगता है कि इन लड़कियों ने उनमें से ही किसी को देख लिया है। इन्हें भी धुन चढ़ी है सिरपर मटकी रखकर पुकारते-पुकारते घूमने की। श्रीकीर्तिकुमारी दही बेचने निकलेगी—कैसी बात है यह।

'लड़की दिनभर गुमसुम बैठी रहती है। वह बराबर दुबली होती जा रही है। उसकी उदासी का कारण तो समझा जा सकता है। सारा व्रज ही जिसके दर्शनों के लिये दिनभर बेचैन-सा रहता है, वह वन में जो रहता है दिनभर। लेकिन श्याम को गो-चरण से रोका कैसे जा सकता है। इन लड़कियों की उदासी का उपाय भी क्या। और ये सब तो अब न ठिकाने से भोजन करतीं—न स्नान।' माता-पिता के हृदय पर जो बीतती है इनकी दशा देखकर, वे ही समझते हैं। 'अच्छा है !' दही बेचने के बहाने इनका मन तनिक प्रसन्न होगा। यह उदासी मिटेगी। किसी प्रकार ये सब प्रसन्न तो रहने लगें। गोपकुमारियाँ ही तो हैं, गोरस बेचने में कोई अपमान तो है नहीं। यह तो कुल का शास्त्रनिर्दिष्ट व्यवसाय है।' आज्ञा मिल गयी, जैसे जीवनदान मिला हो। यह कुतूहलजन्य उत्कण्ठा तो थी नहीं। दहेड़ियाँ सजायीं सबने स्वयं। नवनीत के लौंदे भरे देख-देख के। आज उनमें जो उल्लास है, जो तत्परता है, माता-पिता के लिये भी जैसे जीवन का ही वरदान मिला है।

'दूर मत जाना ! सब साथ ही रहना ! पृथक्-पृथक् मत होना ! झगड़ना मत ! जो कोई कुछ विनिमय में दे. ले लेना। कोई बहुत अधिक दे तो लेना नहीं है। उन पदार्थों को तुम सब मत लाना। वहीं छोड़ देना। सेवक ले आयेंगे। कोई कुछ न भी दे तो हानि नहीं। देर मत करना। शीघ्र लौटना। तुम्हारे दही-मक्खन बिकें ही, यह कुछ आवश्यक नहीं है।' पता नहीं कितने उपदेश दिये गये; पर किसी ने उन्हें सुना भी या नहीं, कौन जाने।

श्रीवृषभानुकुमारी और उनकी सहेलियाँ—वे दही और नवनीत लेकर निकलें और बिके नहीं ! किसके मनमें उत्कण्ठा नहीं कि वे उसे कुछ दे दें; किंतु उनका ग्राहक क्या यहाँ है ? वे क्या साधारण ग्राहक को यह अपने हृदय का धवल स्नेह देने चली हैं। साहस भी किसमें है जो उनसे बेचने को कहे। उन्हें कहाँ जाना है, किसे देना है, यह सब वे जानती हैं। उन्हें इधर-उधर देखना कहाँ है। उन्हें बेचना हो तो पुकारें।

गायों की यह खुरपंक्ति, यह गोमय और गोमूत्र से पावन मार्ग—इधर ही गया है उनका वह ग्राहक और वे उसे ढूँढ़ तो लेंगी ही।

× × × ×

'कनूँ, मुझे तो भूख लगी है !' मधुमङ्गल सदा भूखा ही रहता है। उसने नूपुर की रुनझुन, किङ्किणी का क्वणन, आभूषणों का सिञ्जन सुना और भूख लगी उसे। ब्राह्मण के लड़के को भोजन ही सूझता है। लेकिन कन्हैया भी तो पता नहीं क्या सोचता, उधर ही कान लगाये है। वह कोई विचित्र खेल अवश्य बतायेगा—उसकी मुद्रा ही बता रही है।

'तुझे भूख लगी है तो फल खा ले !' सुबल श्यामगिरि के ऊपर चढ़ा बैठा है। वह इस प्रकार दौड़ता-कूदता क्यों उतर रहा है ? इतना प्रसन्न क्यों है ? कलेऊ देखकर तो इतना प्रसन्न कभी नहीं होता। 'तू जानता होगा कलेऊ आ रहा है ! ये तो दही बेचने को जा रही हैं और कौन हैं, जानता है ?' सीधे श्याम के पास आकर उसने धीरे कान में कह दिया कुछ।

'फल तू खा ले, मैं तो इनका दही खाऊँगा !' मधुमङ्गल ने मुख बनाकर कन्हैया की ओर देखा। कोई हों, अन्ततः दही तो है ही उनके पास और जब उसे भूख लगी है तो भला दही क्यों नहीं मिलेगा ?

'श्रीदाम, देख ! तेरी बहिन दही बेचने जा रही है !' श्याम को यह क्या सूझा। सुबल ने कुछ चकित होकर देखा। उसने तो बात कान में कही थी।

'कनूँ, तू मुझे चिढ़ायेगा तो ठीक नहीं होगा !' श्रीदाम को रोष आया।

'मैं झूठ नहीं बोलता; तू न माने तो ऊपर जाकर देख ले !' कन्हैया का बोलने का ढंग तो चिढ़ाने-जैसा नहीं है। 'देख, है न यह अटपटी बात। भला, इन सबों को क्या पड़ी थी दही बेचने की। बाबा का नाम छोटा करेंगी सब। आज तो बड़ी सहानुभूति हो गयी है इसे।

'आने तो दे !' श्रीदाम ने अविश्वास नहीं किया। वह तनकर खड़ा हो गया। वह अवश्य डाँटेगा सबको।

'तू क्या अपनी बहिन को डाँट सकेगा ?' कन्हैया उसकी दुर्बलता जानता है। बहिन को—भला, वह क्या डाँटने योग्य है ? उसे कोई भी कैसे डाँट सकता है। उसके भोले मुखको देखते ही उसी की बात मानने को जी चाहता है। और तनिक भी झगड़ने का प्रयत्न करते ही जब वह हँस पड़ती है—ना, उसे डाँटा तो नहीं ही जा सकता। श्रीदाम की समस्या तो मोहन को सुलझानी है। 'हम सब मिलकर इनका सब दही माखन छीनकर खा-पी लें ! न कुछ रहेगा, न बेचने जायँगी और फिर दूसरे दिन अपने आप निकलेंगी।' सच्ची बात तो यह है कि नटनागर ने श्रीदाम को भी फोड़ लेने की युक्ति रच ली और भला, इस भोले बालक की स्वीकृति क्यों न मिले। अपने ही घर का दही माखन है, उसे छीनकर भी श्याम खा ले तो अच्छा ही है।

'आओ, सब चुपचाप इधर-उधर कुञ्जों में दुबक जाओ ! कोई दिखायी न पड़े। खाँसना-छींकना मत। कहीं सब डरकर आशङ्का से दूसरी ओर से न चली जायँ। यहाँ साँकरी खोर से निकलें, तभी दाव पूरा लगेगा ! मैं ताली बजाऊँ तो सब दौड़ आना।' नटखट दौड़कर समीप की कुञ्ज में जा छिपा। सखाओं ने भाग-दौड़कर जिसे जहाँ स्थान मिला, वहीं छिपाया अपने को।

× × × ×

लक्ष-लक्ष गौएँ चर रही हैं, कोई खड़ी और कोई बैठी रोमन्थ कर रही हैं। बछड़े फुदकते हैं और उनके साथ मृग, सिंह आदि वनपशु खेल रहे हैं। वृषभ सींगों से; पैरों से भूमि खोदते गर्जना कर रहे हैं। उनकी प्रतिद्वन्दिता करने का अमर्ष भी केसरी में नहीं; लेकिन ये सब मयूर क्यों नाचते नहीं ? ये सब-के-सब बंदर कैसे पर्वत पर एकत्र होकर मार्ग के इधर-उधर बैठे हैं। सब इतने शान्त क्यों हैं ? सहस्रों गोप-कुमारों में से यहाँ तो कोई दीखता नहीं ! सब-के-सब कहाँ गये ? कोई आशङ्का की बात होती तो पशु, पक्षी, कपिदल इस प्रकार क्या शान्त दिखायी पड़ते ? लेकिन सब गये किधर ? ये बंदर परस्पर क्या संकेत कर रहे हैं ?

लड़कियों ने एक दूसरे की ओर देखा। उनके मुखों पर मन्द हास्य आया। वे उस चिर-चपल की चञ्चलता से अपरिचित तो हैं नहीं। यह सामने साँकरी खोर है। यह श्याम और श्वेत पर्वत खड़े हैं ठीक बराबर-बराबर। ये दोनों के ढाल उतरकर नीचे मिल गये हैं। श्रीराधा और श्यामसुन्दर के मिलन का पावन प्रतिबिम्ब ही तो है यह। इस धन्यभूमि से अधिक और कौन-सा उपयुक्त स्थान होगा। लड़कियों ने देखा, नेत्रों में ही एक दूसरी से संकेत किया—'इस साँकरी खोर—साँकरे मार्ग से एक-एक को ही निकलना पड़ेगा। इसमें हम दो-दो भी नहीं जा सकतीं और यह निश्चय ही है कि वे यहीं रोकेंगे !' पैरों की गति उल्लास से अटपटी हो उठी। हृदय जाने कैसा करने लगा। मुख अरुण हो उठे। पर वे चल ऐसे रही हैं, जैसे सचमुच उन्हें कहीं जाना ही है और इस स्थान में उनकी कोई रुचि नहीं। उन्होंने हठपूर्वक इधर-उधर देखना बंद कर दिया है। चरणों की गति भी कुछ बढ़ी ही है।

वे हिलीं लताएँ और यह क्या ? सब-की-सब ठिठककर खड़ी हो गयीं। एक बार ताली बजी और अब—अब तो आगे बढ़ने को मार्ग ही नहीं है। सम्मुख तो श्यामसुन्दर खड़ा है। मस्तक पर लहराता मयूरपिच्छ, मणि-मुकुट और वन्य-सुमन उन काली घुँघराली स्निग्ध अलकों में उलझे हुए। कपोलों पर झलमलाते कुण्डल, भाल पर गोरोचनतिलक, कण्ठ में मोटी वनमाला के मध्य मुक्तामाल, भुजाओं में स्वर्णाङ्गद, कटि में कछनी के ऊपर कसा पटुका और उसमें वह मुरली—हाँ सब उपद्रवों की जड़ वह मुरली, हाथ में वेत्र-लकुट लिये आज विचित्र भङ्गी से वह मार्ग रोके

खड़ा है—ठीक ऐसे, जैसे हृदय में अड़ जाता है। कुटिल भौंहें विचित्र हो गयी हैं। अधरों पर हास्य के स्थान पर गम्भीरता है। और उसके पीछे वे खड़े हैं उसके सहस्रशः सहचर। कोई भला, कैसे इनके बीच से निकले—बीच हो तब तो निकले। बालिकाओं ने मुख घुमाकर एक दूसरी को देख भर लिया। उनका स्मित भी अलक्ष्य ही रहा।

'तुम सब नित्य चोरी-चोरी इधर से निकल जाती हो। मेरे वन में से जाना और वह भी बिना मेरा भाग दिये। आज बहुत दिनों पर पकड़ में आयी हो। चुपचाप मेरा भाग दे दो!' एक अधिकारी की गम्भीरता आ गयी है उस नटखट की वाणी में।

'तुम्हारी यह छेड़खानी अच्छी नहीं! हम जाकर बाबा से सब कह देंगी। हमें जाने दो! तुम्हारा वन कहाँ से आया? कैसा तुम्हारा भाग! हम तो आज ही आयी हैं और फिर वन में जाने में भाग कहाँ का! चलो मार्ग दे दो!' एक ने कुछ आगे खिसककर कहा। ठीक भी तो है, बरसाने के सीमान्त के इस वन को कोई अपना कहे तो धृष्टता नहीं तो क्या है; लेकिन कन्हैया यदि यही बात श्रीवृषभानुजी से कहे—वे कैसे अस्वीकार करेंगे। तब वह क्या अनुचित करता है?

'तुम सबों को चुपचाप भाग देना है या नहीं? तुम्हें चाहे जिससे जो कहना हो, जाकर कह देना; पर मेरा भाग दे जाओ!' मोहन तो आगे बढ़कर सर्वथा समीप जा खड़ा हुआ।

'अच्छी बात, हम जाकर कहेंगी ही!' वह आगे की लड़की तो लौटने ही लगी। सब चेष्टा तो ऐसी ही कर रही हैं कि जैसे उन्हें अभी सीधे लौटकर कह ही देना है।

'उधर कहाँ? मेरा भाग दे ले, तब जा!' यह लो, कन्हैया ने तो मटकी पकड़ ही ली। वह लगा छीनने। लड़के तो पर्वतों के ढाल पर चढ़कर कूद-फाँदकर इधर-उधर से पीछे भी आ गये। बालिकाएँ तो घिर गयीं। अब वे जाना भी चाहें तो कैसे जा सकती हैं।

'कनूँ, मुझे बहुत भूख लगी है!' अन्ततः ब्राह्मण कब तक धैर्य रक्खे। मधुमङ्गल ने अपनी बात कही और आगे आ गया।

'तो ले, तू भोग लगा!' छीना-झपटी में दहेड़ी तो फट् से हो गयी। दोनों हाथ भरकर मक्खन का लौंदा कन्हाई ने दे दिया उसे।

'मुझे! मुझे!' सखाओं में जैसे होड़ लगी है। ये लड़कियाँ भी बड़ी हठी हैं। वे चुपचाप मटकियाँ दे क्यों नहीं देतीं? वे तो उन्हें गोद में दबाकर बैठ ही गयी हैं, जैसे कोई निधि छिपाये बैठी हों। श्याम किसी को गुद-गुदाकर, किसी को ठेलकर, किसी के हाथ बलात् छुड़ाकर छीन रहा है। यह तो बनी बात है कि इस छीना-झपटी में वस्त्र फटेंगे, आभूषण टूटेंगे, बर्तन फूटेंगे। कन्हैया का दोष भी क्या है; ये सब चुपचाप दे दें तो यह क्यों हो।

'भद्र, तू लकुट से फोड़ तो इसकी मटुकिया।' भद्र को लकुट मारते कितनी देर लगनी है। यह लो, फैल गया दही। सुचिक्कण पर्वतीय भूमि है, भर-भर अञ्जलि पीने में कोई हानि नहीं।

'तू मुझे क्या घूरती है? तेरी दहेड़ी ही तो फोड़ी है, ले मक्खन खा ले!' भद्र ने एक लौंदा नवनीत बलात् फेंक दिया विचारी के मुख पर।

'श्याम, तेरी मटकी बाकी है अभी!' सुबल ठीक ही तो कह रहा है। कीर्तिकुमारी की मटकिया तो अभी अछूती ही है।

'मोहन, देखो! तुम बहुत धृष्टता करोगे तो ठीक न होगा!' यह सरल मोर्चा नहीं है। सब-की-सब भिड़ पड़ी हैं रक्षा करने में। किसने छीना और किसने बचाया या जान-बूझकर दे दिया—कौन जाने। इतनी लड़कियाँ एकत्र टूट पड़ी हैं, उनसे मोहन अकेला उलझा है—पर वह विजयी तो हो ही गया। वह भर लिया माखन से उसने मुख।

पर्वतों के चिकने ढाल पर फिसलते हुए वे बालक नवनीत, दही खाते और फेंकते ताली बजाते, हँसते मग्न हो रहे हैं। बंदरों की तो बन आयी है और बालिकाएँ इन मयूरों, मृगों, शशकों पर रुष्ट हों या हँसें, समझ नहीं पातीं। उनके तो बर्तन फूटे, दही-नवनीत गया और ये पेट भरते हैं और उलटे उन्हीं को सूँघने आते हैं!

यह श्रीदाम—सब एक से ही हैं ! सब घुले-मिले हैं । कैसे मुख और हाथ भर लिये हैं । किसी को कुछ कहना तो दूर, किसी की ओर देखना भी शङ्का की ही बात है । देखते ही कहीं उसने 'ले खा ले !' कहकर दही फेंक दिया तो ? भूमि—वह तो उज्ज्वल हो गयी है । ये पशु-पक्षी उसे अभी स्वच्छ कर देंगे ! अरे, ये बर्तनों के टुकड़े भी बचेंगे नहीं ? केहरी ने तो फूटे टुकड़े ही चबाने प्रारम्भ कर दिये हैं । ये सब भी इसी उपद्रवी के सहचर हैं । इसके अपराध का चिह्न तक नहीं रहने देंगे ।

बालिकाएँ देख रही हैं—श्यामसुन्दर फूटी मटुकी के टुकड़े में माखन भरे वह गौर पर्वत की शिला पर बैठ गया है । उसका मुख, दोनों हाथ, दोनों लाल-लाल चरण—सब उज्ज्वल हो गये हैं । पटुके पर, पेट पर, वक्ष पर, भुजाओं पर भी खूब दही लगा है । भाल पर, अलकों पर, सारे अङ्ग पर छोटे-बड़े बिन्दु हैं उज्ज्वल-उज्ज्वल । वह स्निग्ध हो गया है, मग्न है । बड़े भाई के मुख में मक्खन देते हुए कितना हँस रहा है अँगूठे दिखाकर । यह दाऊ—वह तो छीना-झपटी में था नहीं । वह तो छोटे भाई की लूट में भाग लेने बैठ गया ।

'भद्र, देख तो कैसा मीठा है !' वह चाहे जिसके मुख में मक्खन दे देता है । चाहे जो उसे खिलाने लगता है । यह मधुमङ्गल भी पूरा लालची है । अच्छा हुआ, उसे चिढ़ा दिया अँगूठा दिखाकर ।

बालिकाएँ देखती रहीं—देखती रहीं चुपचाप । उन्हें जाना है, उनको रोष का नाट्य करके ही जाना चाहिये । सब बात तो ठीक—उनके वस्त्राभरण भी फट-फूट गये, यह भी ठीक और वर्तनों के तो टुकड़े भी व्याघ्र-केसरी के उदर में जा चुके; पर यह सम्मुख कन्हैया सखाओं के साथ दधि-भोजन में लगा है । उसे जैसे लड़कियों से कुछ मतलब नहीं । अब तो सब अपनी ही धुन में लगे हैं ।

'अच्छा, तुम सब घर लौटो तो पता लगेगा !' लड़कियों ने मुख कठोर करके चेतावनी दी और लौटने लगीं । कन्हैया हँस पड़ा । किसी ने अँगूठा दिखाया, किसी ने घूसा । सब ताली बजाकर हँसने लगे । भला, इन उपद्रवियों पर कहीं धमकी का प्रभाव पड़ता है । वे चिढ़ाकर ही मान जाते हैं, यही क्या कम है ।

'कनूँ, ला मैं तेरा मुख धो दूँ !' वरूथप बड़ा है न, वह तो प्रयत्न करेगा ही । सबों ने ह्रद में हाथ-मुख धोये, जैसा आधा-पूरा वे धो सकते थे । एक दूसरे के अङ्गों को धोने और पोंछने लगे । श्याम का शृङ्गार भी तो करना है, उसके अङ्गों के तो सब चित्र मिट गये । कुसुम भी बहुत गिर गये और बहुत दही में सन गये । वे सब अपने आयोजन में लगे ।

× × × ×

बालिकाओं के विषय में कुछ कहने को है ही नहीं । वृन्दावन में बहुत बंदर हैं । वैसे तो वे बड़े सीधे हैं, किसी को छेड़ते नहीं; परंतु पता नहीं इन लड़कियों से उनकी क्या शत्रुता है । कौन जाने, उनका भी कोई दोष न हो । ये सब तो बहुत भीरु हैं । कपियों ने स्वभाववश-कूदा फाँदी और हूँ-हूँ कर दी तो इन्होंने समझा, हमें ही काटने आते हैं । अच्छा ही हुआ जो दही—नवनीत के पात्र फेंककर भागीं । लेकर भागतीं तो गिरनेपर चोट लग जाती । घनी लताएँ, वनपथ, इसमें डरकर भागने पर वस्त्र क्या बचे रहेंगे ! आभूषण टूट गये तो हुआ क्या ? नन्दनन्दन का भला हो, उसने इन सबको दौड़कर आश्वासन दिया और गाँव के पास तक पहुँचा गया । भला, माता-पिता आदि कैसे अविश्वास कर लें इन बातों पर ।

बालिकाएँ बड़ी हठी हैं—वे कुछ हो, पर जायँगी नित्य दही बेचने और कभी बंदर, सर्प, कभी व्याघ्र—भला, वन में डरानेवाले पशुओं की क्या कमी है । जो भी हो, उनका घरमें उदास बैठे रहने से तो यह घूम आना अच्छा है । अब वे प्रसन्न तो रहती हैं । अब वे नित्य 'कल अवश्य बेंच आऊँगी !' इस आशा में लगी तो रहती हैं । वे थोड़ी डरती हैं; लेकिन वृन्दावन के वनपशु—उनसे कोई आशङ्का नहीं और मोहन—वह बड़ा दयालु है, वह नित्य इन्हें बचा देता है ।

ढुएढा की होली

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥ —गीता १० । ४१

आज होलिका-दहन का दिन है। बाबा ने नवान्नेष्टि यज्ञ की प्रस्तुति की है। व्रज में कृषि तो होती नहीं, वन की सुरभित ओषधियाँ, मुन्यन्न, घृतकुम्भ प्रातः से ही सज्जित हो रहे हैं। नित्य सज्जित, नित्य स्वच्छ, नित्य मङ्गलमय व्रज आज जैसे नूतन हो गया है। घर-घर गोप लगे हैं। बरसाने और नन्दग्राम ने इस बार यह उत्सव सम्मिलित करने का निश्चय किया है। रात्रि के प्रथम प्रहर के अन्त में भद्रा नक्षत्र के अन्तिम भाग में यह यज्ञ होगा। सब गोप प्रातःकाल से ही व्यस्त हैं।

बालकों का तो यह होलिका-दहन है। श्रीपञ्चमी को ही उन्होंने नन्दग्राम और बरसाने की सीमापर एक अरंड का पेड़ गाड़ दिया। उसपर गो-चारण से लौटने पर कन्हैया अपने सखाओं के साथ नित्य सूखी समिधाएँ डालता है। सत्ययुग में फाल्गुन-पूर्णिमा को सायंकाल वह हिरण्य-कशिपु की बहिन होलिका नन्हे प्रह्लाद को लेकर काष्ठ की विशाल चिता में बैठ गयी थी। उसे बड़ा गर्व था कि उसके पास ऐसा वस्त्र है, जिसे ओढ़ लेने से अग्निदेव जला नहीं सकते। वह भस्म ही हो गयी और प्रह्लाद आनन्द से भगवन्नाम लेते बैठे रहे। कन्हैया को यह स्मरणोत्सव मनाने में बड़ा आनन्द आता है। नित्य उस निश्चित स्थान पर समिधाएँ एकत्र करके वह व्रज की गलियों में सखाओं के साथ गाता घूमता है। सब लड़के गाते हैं, ताली बजाते हैं; भगवान् नृसिंह तथा प्रह्लाद का नाम-कीर्तन करते हैं। इन्हीं समिधाओं के ढेर में नवान्नेष्टि यज्ञ होता है। जब बरसाने और नन्दग्राम के लड़कों ने एक ही स्थान पर समिधाएँ एकत्र की हैं, तब यज्ञ भी एक ही स्थान पर होगा। यह हवनकुण्ड में होने वाला यज्ञ तो है नहीं। पर्वताकार समिधाओं में सहस्रों मन ओषधियाँ, सैकड़ों मन मुन्यन्न और शतशः घृतकुम्भ उड़ेल दिये जायेंगे। महर्षि शाण्डिल्य विप्रों के साथ दूर खड़े केवल मन्त्रपाठ करेंगे।

आज ही यह यज्ञ होना है। श्रीपञ्चमी से ही कन्हैया सखाओं के साथ वन से गायों को कुछ शीघ्र लौटा लाता है। गायें गोष्ठ में बाँधकर सब साथ ही नन्दभवन में कलेऊ करते हैं और तब समिधा डालने निकल पड़ते हैं। मैया को श्याम के इस काम में एक ही आपत्ति है कि वह नित्य लौटने में अँधेरा कर देता है। उसे भगवान् के इस नामकीर्तनोत्सव में जाना चाहिये, ऐसे कार्य से रोककर भगवान् नृसिंह का अपराध कैसे किया जा सकता है; पर ये लड़के बड़े चञ्चल हैं। वे जल्दी लौटते ही नहीं। बहुत रात्रि कर देते हैं। नित्य श्याम को ढूँढ़ने किसीको भेजना पड़ता है। बड़ी कठिनता से सब सखाओं को ले आने पर वह आता है।

आज यज्ञ तो एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर होना है। माता ने सभी सखाओं को समझाया था कि आज वे समिधाएँ डालकर शीघ्र लौट आयें। थोड़ी देर विश्राम कर लें। यज्ञ के समय लड़के घर में रुकने वाले नहीं हैं, यह माता जानती थीं। आज बालकों ने बात मान ली है। कन्हैया सखाओं के सङ्ग नित्य से कुछ पूर्व ही लौट आया है।

गोप-कुमारों ने मन्त्रणा की कि वे अपने-अपने घरों से खूब घृत में भिगाकर चन्दनदण्ड लायेंगे और यज्ञ के समय उन्हीं की आहुतियाँ वे देंगे। कन्हैया, भद्र और दाऊ को मैया ने रोक लिया; शेष अपने-अपने घर से आहुति लिये चन्दनकाष्ठ लेने चले। श्याम ने देखा कि मैया उसे नहीं जाने देती है तो उसने सुबल से कहा कि वह श्रीदाम को बरसाने की सीमा तक पहुँचा दे। बालकों ने झट निश्चय कर लिया—वे पहिले सब बरसाने जायँगे और वहाँ से साथ ही लौटेंगे। लौटकर अपने घरों से चन्दनदण्ड लेंगे और तब नन्दभवन आयेंगे।

× × × ×

'अरे, यह कौन है ?' श्रीदाम की दृष्टि आगे मार्ग पर पड़ी। सब बालक नन्दभवन से कुछ दूर निकल आये थे।

'बाप रे ! यह तो राक्षसी है !' मधुमङ्गल डरकर सुबल के पीछे हो रहा। लड़के अपनी ही बातों में उलझे न होते तो वे दूर से ही इस कृत्या को देख लेते। भयंकर काली आकृति, बड़े-बड़े दाँत, लाल-लाल अङ्गारों-जैसे नेत्र, बाल फैलाये वह बालकों को घूरती खड़ी थी। मधुमङ्गल एकदम डरकर चिल्ला पड़ा, 'कनूँ ! दाऊ !...'

'चुप !' वरूथप ने उसके मुखपर हाथ रख दिया। 'कन्हैया अभी-अभी तो अपने साथ घूमकर गया है। वह शय्या पर लेटा ही होगा। उसने अकेले इतने बड़े-बड़े राक्षस मारे हैं तो हम सब मिलकर इस राक्षसी को नहीं भगा सकते ? सुबल !'

'हाँ, हाँ, कन्हैया की क्या आवश्यकता है। इसे तो मैं ही मार दूँगा !' सुबल में उत्साह आ गया। वह चिल्लाया 'मारो !'

'मारो ! मारो !' बालकों ने अपने-अपने लकुट ऊपर किये और दौड़ पड़े। उन्होंने सोचा ही नहीं कि राक्षसी कितनी बड़ी, कितनी बलवती है। कन्हैया उनके जैसा ही तो है। वह जब इतने राक्षसों को अकेला मार सका तो वे इस समय इतने हैं।

'मारो ! मारो !' राक्षसी ने शतशः बालकण्ठों की ध्वनि सुनी और सेकड़ों लकुट उठे देखे ! वह पहिले से भयभीत थी। उसने पूतना, बकासुर आदि के वध की बातें सुनी थीं। वह श्रीकृष्ण को पहचानकर अकेले में धोखे से मारने आयी थी। इतने लड़कों को देखकर वह मार्ग में पहिले ही ठिठककर खड़ी हो गयी थी। इन गोपों के लड़कों में पता नहीं कितनी शक्ति है। नन्द के एक लड़के ने तो इतने दैत्यों को खेल-खेल में मार दिया और ये इतने लड़के दौड़े आ रहे हैं।' भागी वह। लड़के गाली देते दौड़े आ रहे थे।

'मारो ! मारो !' लड़कों ने देखा कि राक्षसी भाग रही है तो उनका उत्साह और बढ़ गया। वे दूने वेग से दौड़े।

'श्रीदाम ! घेरना तो आगे से ! भागने न पाये !' वरूपथ ने ललकारा और सचमुच दोनों ओर की गलियों से सुबल और श्रीदाम कुछ सखाओं के साथ आगे बढ़ गये उसे रोकने के लिये। भय में बल, बुद्धि, विद्या सब हवा हो जाती है। राक्षसी अदृश्य हो सकती है। ऊपर उड़ सकती है। उसके पास आसुरी माया है। लेकिन वह इतनी भयातुर हो गयी है कि उससे वेगपूर्वक भागा भी नहीं जाता। उसे लगता है कि प्रत्येक बालक उसका काल है। इतने रूप धारण करके महाकाल उसके समीप आता जा रहा है।

'यही होलिका है ! जला दो इसे !' मधुमङ्गल सबसे पीछे आ रहा है। उसने ग्राम से बाहर एकत्रित समिधा-राशि दूर से देखी और उसे स्मरण हो आया कि राक्षस फिर जी जाते हैं। अवश्य प्रह्लाद को जलानेवाली होलिका उस काष्ठ-समूह से जीवित होकर निकल आयी है।

'इसी ने प्रह्लाद को जलाना चाहा था ! इसे जलाओ !' मधुमङ्गल दूसरी बार चिल्लाया। 'मैं अग्नि लाता हूँ ! भागने न पाये !' सचमुच वह पीछे पास के घर अग्नि लेने दौड़ पड़ा।

'हाँ, यही होलिका है ! हम इसे फूँक देंगे !' वरूथप ने पीछे देखा और उसकी समझ में भी बात आ गयी।

'जलाओ ! जलाओ इसे !' सब लड़कों ने समिधाओं की ढेरी से जितनी समिधाएँ उठायी जा सकती थीं, झपटकर उठायीं। राक्षसी ने देखा कि वह घिर गयी है। जिधर भागना चाहती है, उधर ही लड़के दिखायी पड़ते हैं। लड़कों ने उसे घेर लिया है। इतने में उस पर तड़-तड़ सूखी लकड़ियाँ फेंकी जाने लगीं। एक-दो नहीं, शतशः कर फेंक रहे हैं। राक्षसी चिल्ला रही है, रो रही है; पर बालकों के चिल्लाने में उसका स्वर डूब गया है। उस पर सूखे काष्ठ की ढेरी बढ़ती जा रही है। उसकी शक्ति पता नहीं क्या हो गयी। वह हिलने में भी असमर्थ है। देखते-देखते समिधाओं का पूरा पर्वत उसके ऊपर हो गया।

'कहाँ गयी होलिका ! फूँक दो उसे !' मधुमङ्गल अग्नि लेकर दौड़ता हुआ दूर से पुकारता आ रहा है।

'तू आ भी जल्दी ! हमने उसे इस ढेर में दबा दिया है !' सुबल ने संकेत किया ढेर की ओर और ढेर में अग्नि लगा दी गयी। लड़के कूदने लगे, उछलने लगे। राक्षसी को गाली देने लगे।

× × × ×

नन्दग्राम और बरसाने के गोपों ने देखा कि सीमापर अग्निज्वाला उठ रही है। सबने सोचा कि उन्हें बिलम्ब हो गया है। यज्ञ प्रारम्भ हो गया। सब सामग्री लेकर दौड़े। कन्हैया दाऊ को लेकर अपना चन्दनदण्ड लिये दौड़ा।

'कनूँ, हमने होलिका फूँक दी ! अरे बड़ी भारी थी वह राक्षसी !' मधुमङ्गल ने पहले ही दौड़कर सुनाया।

'राक्षसी ! राक्षसी कहाँ से आयी ?' दाऊ ने चौंककर पूछा।

'हुँ, वह प्रह्लादजी को जलानेवाली होलिका लकड़ियों के ढेर से जी उठी और हमारे गाँव में आ रही थी। बड़ी भयंकर थी। हमने 'दारी' को लकड़ियों में दबाकर फिर से फूँक दिया !' सुबल ने पूरी बात समझाने का प्रयत्न किया।

'आज फिर राक्षसी आयी थी !' बाबा ने महर्षि शाण्डिल्य के पास जाकर बड़े शङ्कापूर्ण स्वर में सूचना दी।

'भय की कोई बात नहीं ! वह ढुण्ढा थी। बच्चों ने जला दिया उसे !' महर्षि के लिये जैसे कोई बात ही नहीं हुई। वे विप्रों के साथ मन्त्रपाठ करने लगे हैं। गोप अग्नि में सामग्री डालने लगे हैं।

× × × ×

'कनूँ ! कहीं वह राक्षसी फिर उस अग्नि से जीवित होकर भाग न गयी हो !' भद्र को यही एक धुन है। उसने सवेरे ही कन्हैया से कहा। प्रातः उठकर वह बिना कलेऊ किये ही भागने की धुन में है। सब बालक तनिक ही पीछे आये। सबको वही आशङ्का है।

'चलो, देख आयें !' कन्हैया को तो खेल का कोई बहाना चाहिये। रात्रि में सब बहुत देर तक होलिकोत्सव में जगते रहे हैं, फिर भी नित्य से पूर्व ही उठकर नन्दभवन आ गये हैं। मैया चाहती हैं कि श्याम कुछ देर तक विश्राम कर ले। वह तो कलेऊ किये बिना ही भाग गया। धूलि-वन्दन होता भी तो बिना खाये ही है।

अग्नि भला, कहीं इतनी शीघ्र शान्त होती है, फिर इतने बड़े यज्ञ की अग्नि। एक महीने तो यहाँ अग्निदेव विराजेंगे ही। बालकों ने लकड़ियों से उलट-पलटकर देख लिया कि राक्षसी के शरीर के चिह्न भस्म में बहुत नीचे कुछ-न-कुछ हैं। वह भाग नहीं सकी है। कल उन्होंने भरपेट राक्षसी को गालियाँ दी थीं। आज भी कुछ उठा नहीं रखना है।

उन्होंने किनारे-किनारे से भस्म ली और एक दूसरे पर मल दी। श्याम के सर्वाङ्ग में विभूति लग गयी। अलकें भस्म से पूर्ण हो गयीं। विचित्र छटा हो गयी है उसकी। सभी बालक भस्मभूषित हो गये हैं। अब उन्हें एक खेल सूझा है। उत्तरीय की झोलियाँ बनाकर उनमें भस्म भर ली उन्होंने और सब बरसाने की ओर चल पड़े।

व्रज में होली का रङ्गोत्सव तो मध्याह्नोत्तर होगा और खूब धूम से होगा; पर कन्हैया ने आज यह प्रातःकालीन भस्मोत्सव की धूम मचा रक्खी है। जो मिलता है, उसी के मुख पर एक मुट्ठी भस्म। मुट्ठियाँ डालती तो एक ही मुट्ठी हैं, पर वे हैं कितनी ? जब एक दल भस्म डाले तो दूसरे को भी कुछ ढूँढ़ना ही पड़ता है। भस्म के उत्तर में पानी में घुले गोबर का आविष्कार करने में कुमारियों को देर न लगी और झोली की भस्म समाप्त होने पर बालकों ने भी गोबर उठाया। बरसाने और फिर नन्दगाँव—घर-घर धूम हो गयी। राक्षसी ढुण्ढा को गालियाँ देते हुए बालकों ने यह विचित्र उत्सव कर लिया।

—✻⊂✻⊂✻—

प्रलम्ब का पाखण्ड

तमुद्वहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः।
स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः॥

—भागवत १०।१८।२६

यह वृन्दावन है। इस ग्रीष्म ऋतु में भी यहाँ ऋतुराज वसन्त ही विहार कर रहे हैं। झिल्ली-झंकार होती होगी; परंतु ये 'कल-कल', 'हर-हर' करते निर्झर—इनके शब्द में क्या वह सुनायी पड़ सकती है। यहाँ के पादप नवकिसलयों से नित्य पल्लवित ही रहते हैं। लताओं का पुष्पभार नित्य उन्हें नमित ही रखता है। सरोवरों में, निर्झरप्रवाहों में, यमुनाजी में कह्लार, कंज, उत्पल (पूर्ण विकसित, अधखिले, विकासोन्मुख कमल) अपनी सुरभित पराग से वायु को सौरभमय ही रखते हैं। श्रीयमुनाजी में अगाध जल है। उनकी उत्तुङ्ग हिलोरें पुलिन के दोनों किनारों को सींचती ही रहती हैं। ग्रीष्म के मार्तण्ड का ताप यहाँ की शीतलता में शान्त-सुखद हो गया है। चण्डांशु की किरणें यहाँ जीवन को अलस करने के बदले उन्मुख, उत्फुल्ल करती हैं।

केहरी कहीं गुफाओं में विश्राम करे ग्रीष्म की दोपहरी में—यह तो जहाँ ग्रीष्म हो, वहाँ सम्भव है। वृन्दावन में तो वह व्याघ्र के साथ गर्जन करता हुआ मृगयूथ तथा बछड़ों के साथ खेलने का समय ही दिन में पाता है। मयूर पूँछ समेटकर डालियों पर या कोटरों में रात्रि में सो लेंगे, दिन में तो घनश्याम को देखकर वे थनगन-थनगन नाचते ही रहते हैं। भ्रमर और कोकिल भला, इस शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु की उमंग में कहीं दुबके रह सकते हैं; वे गुंजार करने और कुहकने का उल्लसित भाव तो अभी प्राप्त करते हैं।

प्राण आ जाते हैं पत्ते-पत्ते और कण-कण में जब मुरली की ध्वनि गूँजती है। प्रातः जब श्याम दाऊ भैया के साथ शतशः सखाओं से घिरा हुआ हुंकार भरती गायों तथा चञ्चल बछड़ों को आगे करके नन्दगाँव से निकलता है, वनसीमा पर वनके सब एकत्र पशु-पक्षी ही उसका मार्ग नहीं देखते होते। वन का क्षुद्रतम कीट भी सीमा पर ही होता है। उस समय एक मधुमक्षिका, एक तितली वन में नहीं प्राप्त हो सकती। वृक्ष, वीरुध्, क्षुप, लतिकाएँ, गुल्म, तृण, पाषाण, निर्झर—यदि वे बोल पाते तो कहते कि किस अवश अवस्था की उन्हें अनुभूति होती है। यदि वे चल पाते—सब-के-सब सीमा पर भाग गये होते। धन्य हैं सीमा पर के पादप, जो प्रातः आते समय मुरली-मनोहर का प्रथम साक्षात् पाते हैं और सायं उसकी अन्तिम छटा देख लेते हैं।

आजकल श्यामसुन्दर की इस वनराजि में ग्रीष्म में भी ऋतुराज का राज्य है; अतएव वह नित्य उल्लसित रसराज भी उच्छलित ही रहता है। आते ही बालकों को शृङ्गार की सूझती है। कोमल लाल-लाल किसलय, बड़े-बड़े पुष्पगुच्छ और मयूर भी तो आजकल ही पंख गिराते हैं! यह सब देखकर भी शृङ्गार की न सूझे तो हो क्या। फूलों की मालाएँ बनती हैं। रंग-बिरंगे पुष्पों के गुच्छे कर्णपालियों को, भुजाओं को, कलाइयों को भूषित करते हैं। मयूर-पिच्छ तो बना-बनाया किरीट है और किसलय, गुच्छे, पुष्प – इनसे केश-शृङ्गार चाहे जैसा सम्पन्न हो सकता है।

श्याम स्वयं पिच्छ एकत्र करता है। बालक पिच्छों के लिये यहाँ-से-वहाँ वृक्षों के नीचे दौड़ते हैं, धूम करते हैं और फिर दाऊ को दिखलाते हैं कि किसने कितने मयूरपंख पाये। कन्हैया पुष्प, गुच्छे, पल्लव तोड़ता है। सखाओं का शृङ्गार जो करना रहता है उसे। दाऊ भैया का शृङ्गार तो श्याम के साथ सभी करना चाहेंगे; परंतु श्रीदाम का, सुबल का और सब सखाओं का शृङ्गार—पता नहीं कन्हैया कैसे यह कर लेता है। किसी के मयूर-पिच्छ खोंस देगा, किसी के कानों पर

किसलय रख देगा और किसी के बाहु में गुच्छे लटका देगा। सबको कुछ-न-कुछ सजायेगा अवश्य। दाऊ भैया को भद्र का शृङ्गार ही करना रहता है। भैया न सजायें तो वह कनूँ को छोड़ दूसरों को कुछ करने जो नहीं देगा। दाऊ को भी अपनी कला दिखलानी रहती है। कन्हैया तो चञ्चल है। वह सजाता सबको है, पर सब उसकी साज-सज्जा से दूर ही भागते हैं। किसी के गुच्छे लटकायेगा तो बेडौल; पिच्छ खोंसेगा तो टेढ़ा, किसलय रक्खेगा तो उलटा और फिर चिढ़ायेगा ऊपर से।

चाक, गेरू, रामरज—इनकी बारी आती है पुष्पशृङ्गार हो जाने पर। श्याम को इनसे चित्र बनाने में आनन्द आता है। उसके बनाये चित्र होते भी बड़े सुन्दर हैं; परंतु वह ठिकाने से बनाता जो नहीं। लँगड़ा मृग, काना शशक, बड़ा बछड़ा, एक पैर की चिड़िया, एक पंख टूटी तितली या फिर चींटी, साँप, कीड़े—यही सब बनायेगा और सब सखाओं के ऊपर कोई-न-कोई चित्र बनाये बिना रहेगा नहीं। स्वयं उसे तो बालक चित्रमन्दिर बना ही देते हैं।

कन्हैया नाचता है तो मयूर भी लज्जित हो जाते हैं। वह 'ताथेइ, ताथेइ, ताता थेइ-थेइ' का उसका नृत्य—कोई गाता है, कोई ताल देता है, कोई शृङ्ग बजाने लगता है और कुछ प्रशंसा करते हैं। कभी दोनों हाथ फैलाकर सब घूमते हैं—चक्कर खाते हैं, कभी कूदते हैं और कभी परस्पर मल्लयुद्ध करते हैं।

श्याम की मुरली के स्वरों पर तो पशु-पक्षी तक नाचने लगते हैं। वह वंशी बजाये तो कौन नाचना नहीं चाहेगा। साथ ही जब दाऊ भैया प्रशंसा करने लगते हैं और कन्हैया गाने और ताल भी देने लगता है, तब बालकों का नृत्य कला की पराकाष्ठा पर स्वतः पहुँच जाता है।

बिल्वफल कन्दुक बन जाते हैं। निर्भर के किनारे की स्निग्ध मृत्तिका से खिलौने और बर्तन बनाये जाते हैं। दानों हाथों में गुञ्जा या आँवले छिपाकर उनकी संख्या पूछने पर दाऊ भैया प्रायः ठीक-ठीक बतला पाते हैं। भद्र और सुबल भी कदाचित् ही भूलते हैं। कन्हैया कभी ठीक संख्या नहीं बताता और मधुमङ्गल तो पूरा पोंगा है। वह दस-पाँच संख्याएँ एक ही स्वर में बोल जायगा। जो न बता पाये, उसके नेत्र बाँध दिये जाते हैं। श्याम सदा से नटखट है। वही प्रायः संख्या बता नहीं पाता और फिर झगड़ता भी है कि संख्या उसी की ठीक थी। कूदता भी सबसे पहिले संख्या बतलाने है। पूछनेवाले तो चाहते हैं कि वह पीछे बताये। कोई भूल कर ले तो शेष को बताना ही न पड़े; पर वह तो दाऊ भैया के बताते ही झगड़ने लगता है कि पीछे क्यों रहे। भूल करेगा ही और नेत्र भी बँधेंगे; परंतु वस्त्र हटाकर देखे बिना मानेगा भी नहीं। इसी पर तो श्रीदाम रूठता है। श्याम को भी सनक है कि वह छुयेगा तो श्रीदाम या मधुमङ्गल को ही। दूसरे चाहे उसके सिर को स्पर्श करके समीप ही खड़े रहें, उन्हें नहीं छुयेगा। कोई कहाँ तक सहे—मधुमङ्गल या श्रीदाम छू जायँ तो उन्हें नेत्र बँधवाने होंगे ही। वस्त्र हटाकर उन्हें देखे बिना यह कनूँ मानने से रहा। फिर झगड़ा तो करना ही है इसे।

दाऊ भैया किसी को अधिक श्रमित होते देखते हैं तो सम्मुख खड़े हो जाते हैं। उन्हें कोई छूना चाहता भी नहीं। वे नेत्र बँधवा लें तो सब भागेंगे भी खूब और प्रायः भद्र ही उनकी पकड़ में आयेगा। पता नहीं भद्र को क्या सुर्खाब के पर लगे हैं। कनूँ उसके नेत्र बँधते ही स्पर्श में आ जायगा। भद्र को कोई इसीलिये नहीं छूता कि उसके बाद कन्हैया का क्रम बँधा-बँधाया है। भद्र चाहे या न चाहे, यह बलात् उसके हाथ पकड़ लेगा और फिर वही नटखटपन और झगड़ा। दाऊ भैया ही मध्यस्थता करते हैं और श्याम उन्हीं की सुनता भी है।

हरिणों की भाँति उछलना, पक्षियों के समान बोलना, कोकिल को चिढ़ाना, बंदरों के साथ वृक्षों पर चढ़ना, मेढ़कों के साथ बैठकर कूदना, प्रतिध्वनि को चिढ़ाना, लताओं को बाँधकर झूला झूलना, पता नहीं कितने खेल हैं। तैरते हुए जल उछालना, पुष्पों का एक दूसरे के ऊपर फेंकना, डूबकर दूसरे को छूना—यह तो स्नान के समय होता ही है। पर्वत के सपाट तिरछे भागों पर फिसलने और उच्च शिखरों पर दौड़कर चढ़ने का एक निराला ही रस है। कुञ्ज में आँखमिचौनी के

लिये सुविधा रहती है। इस प्रकार वन, सरोवर, गिरिराज, निर्झर—सब कृष्ण की क्रीड़ाभूमि ही तो हैं। बालकों के खेल सब कहीं चलते हैं।

× × × ×

श्रीकृष्ण को तो एक नवीन साथी पाने की सदा धुन रहती है। किसीको मित्र बनाते समय वह कभी नहीं देखता कि उसका रूप-रङ्ग, शील-स्वभाव कैसा है। कोई मित्रता करना चाहे तो वह पहले से प्रस्तुत रहता है। बालक खेल रहे थे, इतने में यह एक नवीन लड़का कहीं से आ गया। उसने आते ही कहा—'मुझे भी अपने साथ खेलने दोगे क्या ?'

'हाँ, हाँ, आओ !' कन्हैया पहले ही उसके पास पहुँच गया। मोटा-सा काला-काला लड़का बड़ा बलवान् लगता है। उसके सिर के बाल कुछ लालिमा लिये मोटे और रूखे हैं। नेत्र गोल-गोल भयङ्कर से। देखने में उसका वेश गोप-बालक-जैसा ही है; परंतु ऐसा बालक तो आस-पास कभी देखा नहीं। कोई गोप भी ऐसा कभी नन्दग्राम में नहीं आया कि उसकी आकृति से इसका अनुमान हो। बालकों को इस बालक का सङ्ग पता नहीं क्यों अच्छा नहीं लग रहा है। वे बालक, जो पशु-पक्षी तक से स्नेह करते हैं, पता नहीं क्यों इस नवीन बालक के आने से प्रसन्न नहीं हुए हैं। उनके मनमें इस नवीन लड़के के प्रति एक विचित्र तटस्थता तथा दूरता का भाव प्रबल हो रहा है। श्याम ने उसे मण्डली में लेकर साथ खेलने की अनुमति दे दी, इससे किसी ने विरोध नहीं किया; परंतु किसी में इतना उत्साह नहीं है कि उसका नाम-ग्राम भी पूछे। उससे परिचय करने को जी जो नहीं चाहता।

बालक तो बालक ही हैं। वे कहाँ कोई बात मनमें लिये फिरते हैं। श्रीकृष्ण ने एक नवीन सखा बढ़ा लिया, ठीक है। वे खेल में लगे थे, लगे रहे। कन्हैया ने देखा कि उसने जिसे मित्र-मण्डली में लिया है, उससे सब सखा दूर खिंचे से हैं तो स्वयं उसके साथ हो गया। उसे प्रोत्साहित करने के लिये खेल में उसकी सलाह लेने लगा। नवीन बालक की सलाह से एक खेल निश्चित हुआ। बालकों के दो दल हुए। एक ओर दाऊ भैया और दूसरी ओर वह नवीन बालक। देखने में वह दाऊ से तगड़ा ही दीखता है। श्रीकृष्ण और श्रीदाम को तो बनी-बनायी जोड़ी है। श्याम ने उस बालक के साथ रहना चाहा। श्रीदाम को भी दाऊ का साथ प्रिय है। इस प्रकार सब दो भागों में विभक्त हो गये।

दो दलों में चलनेवाले प्रतिद्वन्द्विता के खेल चलने लगे। 'खो-खो', कबड्डी आदि। निश्चय हुआ कि जो दल हार जायगा, वह विजयी दल के अपने प्रतिद्वन्दी को पीठ पर बैठाकर भाण्डीरवट तक ले जायगा। नवीन लड़का चाहे जितना मोटा हो, दाऊ की ओजस्विता कहाँ से लाये। श्याम का दल हार गया है। मोटे लड़के ने दाऊ को पीठपर बैठाया। श्रीदामा ने श्यामसुन्दर की पीठ पर चढ़ी कसी। भद्र ने उठाया वृषभ को। इस प्रकार सब पराजित दलके विजयी प्रतिद्वन्दी को पीठपर लेकर चले।

कोमल-कोमल हथेलियाँ, श्यामल घुटने—श्याम चल रहा है। श्रीदाम पीठपर बैठकर भी बार-बार अपने पैर भूमि पर लगा देता है। 'कहीं कन्हैया पर भार न पड़े।' वैसे वह भी दूसरों की भाँति सिर हिला-हिला कर कह रहा है—'चल रे घोड़े चल !' उसने सुबल का यह आग्रह अस्वीकार कर दिया कि कन्हैया के बदले वह सुबल की पीठपर बैठ जाय।

'चल, तुझे किसी गड्ढे में फेंकता हूँ ! छठी का दूध याद आ जायगा, हाँ !' कन्हैया भी कभी सीधे चल सकता है ? वह कभी पीठ हिलाकर श्रीदाम को झकझोर रहा है, कभी धप् से पेट पृथ्वी से लगा देता है और कभी फुदक पड़ता है। सब परिहास कर रहे हैं। उन्हें भाण्डीरवट तक ही तो जाना है।

'अरे, वह ले गया दाऊ को तो !' सुबल ने देखा कि नया लड़का बड़े सपाटे से भागा जा रहा है।

'वह तुम सबों-जैसा अड़ियल टट्टू नहीं !' एक की पीठपर मचकते हुए मणिभद्र ने कहा।

'पूरा गधे-जैसा है भी तो !' मधुमङ्गल झुँझला रहा है कि न वह श्याम के दल में सम्मिलित होता और न उसे इस प्रकार एक बालक को पीठ पर लादना पड़ता।

'हूँ, तेरे जैसा......'

'अरे, वह तो भाण्डीरवट से आगे भागा जा रहा है ! दाऊ को कहाँ ले जायगा ?' भद्र ने मधुमङ्गल की पीठ पर बैठे बालक की बात पूरी होने नहीं दी। उसके मनमें उस मोटे बालक के प्रति आरम्भ से कुछ शङ्का है। अब तो वह चौंक गया और वृषभ की पीठ से लुढ़का खड़ा हो गया।

'कनूँ ! कनूँ !' मधुमङ्गल ने पीठ के बालक को लुढ़का दिया और उठ खड़ा हुआ। श्रीदाम ने आगे देखा और उस तनिक-सी असावधानी में कन्हैया ने उसे भी लुढ़का दिया। झगड़ने का अवसर नहीं, सब भागे आगे को।

× × × ×

प्रलम्ब—कंस ने भेजा है उसे। उसने सोचा था कि गोपकुमार के वेश में खेलते समय किसी बहाने वह श्रीकृष्ण को अकेले दूर कहीं ले जा सकेगा और तब वहाँ प्रयत्न करेगा, किसी कन्दरा में उन्हें बंद करने का।

'कहीं श्रीकृष्ण को आशङ्का हो जाय, वह मुझे मार डाले !' आरम्भ से ही उसके मनमें भय है। जब श्यामसुन्दर ने उसे अशङ्क भाव से अपने साथ खेलने की स्वतन्त्रता दे दी तो वह और भी भयभीत हो गया। उसने कन्हैया के पराक्रम की बात सुन रक्खी है। 'जो इतना निर्द्वन्द्व है, जो इतना निःशङ्क है, उसे धोखा नहीं दिया जा सकता।' उस असुर को पता है कि निर्भयता शक्ति से ही आती है। उसने समझ लिया कि श्रीकृष्ण के यहाँ उसकी दाल नहीं गलेगी। इतने पर भी किसी अवसर की प्रतीक्षा में था। जब श्याम ने खेलके सम्बन्ध में उससे सम्मति माँगी, तभी उसने अपना कार्यक्रम स्थिर कर लिया। छोटे भाई पर बस नहीं चलता तो बड़े भाई पर सही। उसने सोच लिया कि उसका दल हारेगा और वह दाऊ को पीठपर बैठाने में सफल होगा।

प्रलम्ब ने दाऊ को पीठपर बैठाया और बड़े वेग से भाण्डीरवट की ओर चला। जब वह वट से आगे बढ़ने लगा, तब दाऊ ने कहा—'बस, अब उतार दो !'

असुर दौड़ा ही जा रहा है। दाऊ का बार-बार का कहना उसे सुनना नहीं है। दाऊ समझ नहीं पा रहे हैं कि यह लड़का उन्हें कहाँ ले जा रहा है, उतारता क्यों नहीं। आरम्भ में उन्होंने समझा कि यह प्रकट करना चाहता है कि उसमें कितनी शक्ति है। वह कितनी दूर तक उन्हें ढो सकता है। अतः चुप हो गये। लेकिन उनकी परात्पर शक्ति योगमाया—अधीश्वर चाहे भावमुग्ध होकर नरनाट्य करें, पर वे भी क्या प्रमत्त हो सकती हैं। सहसा प्रलम्ब को लगा कि पीठ का भार बहुत अधिक बढ़ गया है। कटिदेश टूटा जा रहा है। गति निरुद्ध हो गयी है। अब इस रूप से आगे नहीं बढ़ा जा सकता। उसने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर दिया और फिर भागा।

जैसे काला अञ्जन का पर्वत उड़ा जा रहा हो ! दैत्य की पीठपर बलभद्र की शोभा—जैसे वे भी पृष्ठदेश के कोई स्वर्णाभरण हों। स्थिर विद्युत्-युक्त काले मेघ पर जैसे पूर्ण चन्द्रोदय हो गया हो। अनन्त नीलसमुद्र में जैसे बड़वानल प्रकट हो गया हो।

असुर के मस्तक पर प्रज्वलित अग्निशिखा के समान रत्नजटित स्वर्णमुकुट है। उसकी भुजाओं में सोने के अङ्गद हैं। उसने मस्तक घुमाकर पीठपर बैठे दाऊ की ओर एक बार देखा। उसके कानों के कुण्डल अग्नि के समान चञ्चल हो गये। प्रज्वलित अङ्गारों-जैसे नेत्र, भयंकर भ्रुकुटियाँ, बड़े-बड़े भयंकर मुख से बाहर निकले दाँत। दाऊ ने देखा कि यह दैत्य अब उन्हें लेकर आकाश-मार्ग से चलने लगा है। उसने भूमिपर दौड़ना छोड़ दिया है। एक बार तनिक से हिचके वे।

'अरे यह तो राक्षस है !' दूर से दौड़कर आते बालकों में से भद्र चिल्लाया।

'भैया, देखता क्या है ! मार एक घूसा !' कन्हैया ने ललकार दी। दैत्य भागा जा रहा है। उसे लगता है कि कहीं श्रीकृष्ण आ गये तो कुशल नहीं। दाऊ का भार ही उसे दबाये जा रहा है।

'हूँ !' दाऊ ने अपने छोटे भाई की ललकार सुनी। हिचक के चिह्न जो मुखपर आये थे, वे विद्युत्-गति से निकल गये। उन्होंने एकबार दौड़कर आते अपने अनुज की ओर देखा और फिर उस दैत्य की ओर। जैसे कोई शीघ्रता आवश्यक नहीं। यदि कन्हैया इस प्रकार दौड़ता न होता तो वे इस नवीन वाहन का कदाचित् थोड़ी देर आनन्द लेते; पर कनूँ जो दौड़ा आ रहा है। दाहिने हाथ की मुट्ठी कठोर हो गयी। तौलकर एक घूसा धर दिया दैत्य के मस्तक पर।

दाऊ का घूसा—जैसे पर्वत पर महेन्द्र ने वज्राघात किया हो। पत्ती चिल्लाकर उड़ने लगे। पशु चौंक पड़े। दिशाएँ शब्द से भर गयीं। बालक ठक्-से हो गये। घूसे के शब्द को प्राण छोड़ते दैत्य की चिग्घाड़ ने द्विगुणित कर दिया। दूसरे ही क्षण सबने देखा कि असुर पृथ्वी पर पड़ा है मुख के बल। उसका मस्तक चूर-चूर हो गया है। गिरने के वेग से दाँत टूट गये हैं। मुख से रक्तप्रवाह चल रहा है। दाऊ कूदकर अलग खड़े हैं। उनके दाहिने हाथ की मुट्ठी अभी बँधी है और रक्त से भर गयी है।

कन्हैया तो आते ही बड़े भाई से लिपट गया। सखाओं ने पहिले वह हाथ देखा जो रक्त से भरा है। उनको परम संतोष हुआ कि उसमें कोई आघात नहीं लगा है।

'मैं यह आया, तभी से चौंका था !' भद्र ने कहा।

'देखो न, दाऊ भैया को ले चला था ! इसे तो कनूँ ही मसल देता !' मधुमङ्गल इस प्रकार कह रहा है जैसे वह स्वयं तो कन्हैया से बहुत अधिक बलवान् है ही।

'भैया ने घूसा भी तो बढ़िया दिया !' वरूथप अभी उस घूसे के शब्द के विषय में ही सोच रहा है।

ऊपर गगन में दुन्दुभियाँ बजने लगी हैं। पुष्पवृष्टि हो रही है। गोप-बालक स्वयं दाऊ की प्रशंसा कर रहे हैं, उन्हें हृदय से लगा रहे हैं। गायें सब दौड़ आयी हैं और उनके साथ वन-पशु भी। पत्तियों ने उड़ते हुए ऊपर वितान बना दिया है। सब देख लेना चाहते हैं कि क्या हुआ। बछड़े पहले ही कूदकर समीप आ गये हैं।

'अरे क्या हुआ है तुम सबको ?' प्रत्येक गाय, प्रत्येक बछड़ा, प्रत्येक मृग तथा सिंह, व्याघ्र तक दाऊ को सूँघकर देख लेना चाहते हैं कि वे प्रसन्न तो हैं। दाऊ ने किसी को पुचकारा, किसी पर हाथ फेरा, किसी को थपकी दी।

'चलो, स्नान करो ! तुम सबने असुर का स्पर्श किया है और दाऊ भैया के हाथ में लगा उसका रक्त लगा लिया है सो ऊपर से। स्नान करके श्रद्धा हो तो ब्राह्मण को दक्षिणा भी दे देना !' मधुमङ्गल ने बड़ी गम्भीर मुद्रा बनाकर इस प्रकार कहा, जैसे वह सचमुच धर्माचार्य हो गया है।

'जी, पण्डित जी !' दाऊ भैया ने दोनों हाथ हँसते हुए जोड़ लिये। सब बालक खिलखिला-कर हँस पड़े। मधुमङ्गल लज्जित हो गया। वह दाऊ से उपहास करने तो चला नहीं था।

'मैं तो स्नान करूँगा, तुम सब मत आओ !' वह निर्झर की ओर मुड़ चला। स्नान तो सभी को करना है। मध्याह्न हो भी गया है, परंतु इतनी सरलता से क्या इन सबों से पीछा छुड़ाया जा सकता है। मधुमङ्गल पकड़ लिया गया और सब साथ ही जल-स्रोतपर पहुँचे।

—:※-※-※-※:—

दावानल-पान

नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसीदितुम्।
वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः॥

—भागवत १०।१९।१०

मध्याह्न का समय—बालक बड़ी देर तक जल-क्रीड़ा करते रहे। स्नान समाप्त करके उन्होंने अपने-अपने छीके वृक्षों की डालियों से उतारे। उनके छीके बंदर या पक्षी छेड़ेंगे, इसका तो कोई भय ही नहीं है। कन्हैया के कलेऊ से पूर्व तो कपि और पक्षी वन्य तरुओं के भी पके फल नहीं छूते—वे भला, छीके स्पर्श करेंगे! गोप-कुमारों ने पत्ते, पाषाण, दल आदि के पात्र बनाये और अपने छीके पास में रखकर भोजन परस लिया। राम-श्याम उन बालकों से घिरे मध्य में विराजे। दाऊ भैया के सम्मुख भद्र ने कमल का पत्ता रख दिया और कन्हैया तो बायीं हथेली पर एक ग्रास रखकर संतुष्ट हो जाता है। उसे तो दूसरों के हाथ से ही भोजन करने में आनन्द आता है। वह घर से अब छीका लाता ही नहीं। भद्र के छीके में ही मैया दोनों का भोजन भर देती है और यह निश्चित है कि भद्र को दाऊ भैया अपने साथ भोजन करायेंगे; क्योंकि श्याम भद्र के पूरे छीके को अपना बताकर उसपर अधिकार कर लेगा और पदार्थ दूसरों को वितरित कर देगा। श्रीदाम की भाँति भद्र इस कन्हैया से झगड़ जो नहीं सकता। वह चुपचाप छीका छोड़ देगा और दाऊ भैया के साथ तो सबका भाग है। जो चाहे, वहाँ बैठ जाय। भद्र को वहीं सुविधा मिलती है।

बड़ी देर तक भोजन होता रहा। गायें-भैंसें वृक्षों के नीचे बैठी रोमन्थ कर रही हैं। मध्याह्न में अलस भाव से बछड़े भी माताओं के समीप बैठ गये हैं और ऊँघने लगे हैं। बकरियों ने भी चरना समाप्त कर लिया है और वे भी एकत्र होकर कुछ बैठी और कुछ खड़ी-खड़ी ही सोने लगी हैं। मध्य में तनिक-तनिक कान-पूंछ हिलाने भर की गति पशुओं में रह गयी है। वातावरण शान्त हो गया है।

सब शान्त हो जायँ, पर कहीं बंदर और बालक भी शान्त हुए हैं। बालकों ने देखा कि अपने पशु तो बैठ गये हैं तो उधर से पूर्णतः निश्चिन्त हो गये। उनकी क्रीड़ा में जो मध्य में गायों का ध्यान आ जाता था, वह भी नहीं रहा। वे खेल में लगे और फिर समय का क्या पता लगना है। बकरियों ने एक-एक कर मुख चलाना प्रारम्भ किया। बछड़े उठ खड़े हुए। उन्होंने सिरों से हिला-डुलाकर माताओं को उठाया और दूध पिया। उनकी उछल-कूद देखकर भैंसों के बच्चे भी उठे और तब भैंसों को भी उठना पड़ा। पशु चरने लगे। वे चरते हुए आगे बढ़ते गये—बढ़ते ही गये और दूर निकल गये। बालक अपनी क्रीड़ा में मस्त हैं, उन्हें इन सब बातों का कुछ पता नहीं लगा।

'सुबल, अरे अपनी गायें कहाँ गयीं?' मधुमङ्गल इस कन्हैया से सदा तंग रहता है। अन्ततः चिढ़ाने और चुटिया खींचने की भी एक सीमा होती है। वह छुड़ाकर एक ओर भाग निकला और सहसा उसे स्मरण आया—'गायें तो यहीं बैठी थीं।' यहाँ गोबर स्थान-स्थान पर पड़ा है; पर गायों का पता नहीं। उसने इधर-उधर देख लिया और जब किसी पशु का कहीं चिह्न न मिला तो बड़बड़ाया—'अच्छा हुआ जो मैं इधर आ गया!'

'गायें!' सब के सब चौंके। जो जहाँ जैसे थे, वैसे ही रह गये। जो वृक्षों पर चढ़े थे, वे और ऊपर जाकर इधर-उधर देखने लगे। नीचे सब खेल जहाँ-के-तहाँ समाप्त हो गये। वृक्ष पर चढ़े

बालकों ने बताया कि गायें तो दीखती ही नहीं। कुछ और लड़के वृक्षों पर चढ़ने दौड़े। कन्हैया ने मुख से शृङ्ग लगाया और फूँक दिया। 'कनूँ की बुद्धि है तो तीव्र। वह युक्ति बड़ी सुन्दर सोच लेता है!' सबने अपने-अपने शृङ्ग बजाने प्रारम्भ किये। वनप्रान्त गूँज गया। जो बालक वृक्ष पर चढ़े हैं, वे वहीं से चारों ओर डाली पकड़कर सिर घुमाते हुए शृङ्ग बजा रहे हैं और देख भी रहे हैं।

शतशः शृङ्ग—यद्यपि उन्हें बालक ही बजा रहे हैं और प्रत्येक शृङ्ग की ध्वनि कोमल है, पर संख्या भी तो कोई वस्तु होती है। वन का कोना-कोना गूँज गया। गायों ने, पशुओं ने उन्हें सुना—पर वे करें क्या? वे तो सब पता नहीं कब से हुंकार करके अपने रक्षकों को पुकार रही हैं। शृङ्गनाद सुनकर उन्होंने पूँछें और कान उठा लिये तथा और वेग से हुंकारें भरनी प्रारम्भ कीं। उन्हें क्या पता था कि ऐसी विपत्ति भी होती है। सब पशु चरते दूर आ गये थे, उन्होंने देखा—सम्मुख ऊँचे हरे-हरे तृणों का समुद्र-सा लहरा रहा है। वे उधर ही चले आये। यह तृण तो चरने योग्य था नहीं, परंतु कुछ दूर तक उसके मध्य में अच्छे तृण भी मिले। कुछ दूर पशु तृण ढूँढ़ते निकल गये। उनमें यही सोचने की शक्ति होती कि यहाँ तृण नहीं हैं तो पीछे लौट चलो—तो वे पशु क्यों कहलाते। तृण नहीं मिले तो मुख उठाया और आगे बढ़ते गये। सहसा सबने कान खड़े किये। वायु उष्ण चलने लगा था। पशुओं को दावाग्नि का पता पहिले लगता है। वे हुंकार करते जिधर ठीक लगा, दौड़ पड़े।

गायें, भैंसें, बकरियाँ, बछड़े—सब भाग रहे हैं। वे जिधर जाते, उधर ही कुछ आगे जाने पर लगता है कि आगे अग्नि लगी है। इधर-से-उधर वे पूरी शक्ति से दौड़ रहे हैं। मूँजों का यह वन खूब घना है। मूँजों के झुरमुट वृक्षों के समान ऊँचे हैं। आगे कुछ दिखायी नहीं पड़ता। दौड़ने में भी बड़ी कठिनाई है। मूँजों को रौंदते हुए पशुओं को बड़ा श्रम पड़ रहा है। उन्हें प्यास लग गयी और बढ़ती गयी। वायु में उष्णता के साथ उनकी व्याकुलता भी बढ़ती गयी। शृङ्गों की ध्वनि से एक सान्त्वना मिली, पर प्रयत्न करके भी वे उस दिशा में निकल नहीं सके। मार्ग भूल चुका था। उनकी हुंकारें शृङ्गनाद-सी तो हैं नहीं कि बालक उसे सुन लेंगे। प्यास, प्राण छोड़कर दौड़ना—उनकी हुंकारें शिथिल होती गयीं।

'भैया, अपने पशु कहीं भी समीप नहीं हैं!' श्याम ने शृङ्ग मुखसे हटा लिया। वह दाऊ की ओर देखने लगा और उसका नित्य-प्रसन्न मुख उदास हो गया। बालक पेड़ों से उतर आये। सब एकत्र हो गये।

'कनूँ!' दाऊ ने अपने छोटे भाई को हृदय से लगा लिया। उनका कण्ठ भर आया। नेत्र सजल हो गये।

'बाबा क्या कहेंगे?' मधुमङ्गल सिसककर रोने लगा।

'वे लोग तो कुछ नहीं कहेंगे!' दाऊ भैया ने बिना किसी की ओर देखे कहा। श्याम ने उनके वक्ष पर मुख छिपा लिया है और वे उसके मस्तक की ओर ही देख रहे हैं। जैसे वे कहते हों कि इस आपत्ति से रक्षा यह मयूर-मुकुटी ही कर सकता है। कन्हैया की कुटिल अलकों पर दाऊ के अश्रु हीरक-कणों-से झलमल करते बढ़ते जा रहे हैं।

'हाँ, सब पशु खो दिये और कोई कुछ नहीं कहेगा!' मधुमङ्गल हिचकियां लेने लगा। फूट-फूट कर रोने की शक्ति भी किसी में नहीं रही।

'वे तो कुछ भी नहीं कहेंगे; परंतु व्रज का जीवन ये पशु ही तो हैं!' दाऊ भैया का गम्भीर कण्ठ आगे नहीं चला। जो कहा गया है, वह क्या कम भयंकर बात है। गायें व्रज की आजीविका ही नहीं, आराध्य हैं। स्वजन हैं। प्राण हैं।

'हमारी, तुम्हारी, बाबा की, सारे व्रज की पालिका, रक्षिका, ये गायें ही हैं! और अब....' कन्हैया ने एक बार सखाओं की ओर मुख फेरा। वह इतना ही कह सका। बड़े भाई के कण्ठ के समीप उसने पुनः मुख छिपा लिया।

'कन्हैया के कमलदल-से नेत्र लाल-लाल हो गये हैं। उसका चन्द्रमुख अश्रु से आर्द्र हो गया है।' सखाओं ने एक क्षण में ही यह देख लिया। 'अब वह हिचकियाँ लेने लगा है। तभी तो उसका शरीर इस प्रकार हिलने लगा है।'

'व्रज की आजीविका ये पशु ही थे। व्रज की यह समृद्धि, जिस पर महेन्द्र को भी ईर्ष्या हो, इन गौओं की कृपा का ही परिणाम है। पूरा व्रज कंगाल हो गया। अब क्या होगा? दान लिया नहीं जा सकता, भिक्षा माँगी नहीं जा सकती। कृषि के लिये वृषभ चाहिये और वे भी गायों के साथ ही गये। तब क्या सेवा करनी होगी पूरे व्रज को किसी की? व्रजेश्वर, बरसाने के अधिपति, नन्दगाँव और बरसाने के गोप—गोप ही क्यों—गोपियाँ—मैया—आह, क्या ये किसी की सेवा करते दीखेंगे अब?' गायें—क्या अब गोप प्रातः गोमाता के दर्शन नहीं पायेंगे? गो-ग्रास दिये बिना क्या कदन्नभोजी बनेंगे वे? गोप और गायों से हीन—प्राण से हीन शरीर और क्या होगा।' पता नहीं कनूँ दाऊ और बालक क्या-क्या सोच रहे हैं। वे रो रहे हैं और हतप्रभ हो गये हैं, बाहर तो बस इतना ही।

'कनू!' भद्र ने कन्हैया के कंधों पर हाथ रक्खा। वह श्याम को इस प्रकार रोता नहीं देख सकेगा। इससे तो मर जाना भी सरल है। उसकी पुकार का क्या प्रभाव होना है; परंतु वह कहता जा रहा है—'कनू, तू इस प्रकार रो मत! मैं गायें ढूँढ़ने जाता हूँ और उनका पता लगा-कर ही लौटूँगा!'

'गायें पास होतीं तो शृङ्गनाद से क्या हुंकार तक न करतीं!' भद्र के स्वर की दृढ़ता ने श्याम को प्रभावित किया। उसने मुख घुमाकर उसकी ओर देखा।

'तू बस रो मत!' भद्र ने उन भरे हुए दीर्घ दृगों को अपने पटुके से पोंछ दिया। 'वे दूर ही तो गयी हैं। चाहे जितनी दूर गयी हों, मैं गोकुल तक उन्हें ढूँढ़ने जाऊँगा!

'तू कैसे उनका मार्ग पायेगा?' भद्र का स्वर कह रहा है कि वह सचमुच, चाहे जहाँ तक जाना हो, गायों को ढूँढ़ने जायगा—अवश्य जायगा; कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती! उसका कनू रो रहा है, वह जा क्यों नहीं सकेगा। कन्हैया को भी शङ्का नहीं हुई कि भद्र गायों के पास तक नहीं जा सकेगा। वह किधर जायगा, यही पूछना था।

'मार्ग कैसे पाऊँगा?' भद्र ने यह बात सोची ही नहीं है अब तक; परंतु उसे गायों के पीछे जाना है, उन्हें ढूँढ़ लाना है—अवश्य ढूँढ़ लायेगा वह। उसका श्याम रो रहा है—तब उसके मस्तिष्क को काम करना ही चाहिये। उसने नीचे मस्तक झुकाया। 'कैसे जाऊँगा? देख! यह गाय के खुर का चिह्न है!'

'हूँ, जैसे सब कहीं खुरों के चिह्न बनते ही हैं!' रोते-रोते मधुमङ्गल ने भद्र का विरोध किया। इतनी सरलता से गायें ढूँढ़ी जा सकतीं तो क्या वह इतना बुद्धू है कि अब तक खड़ा रहता।

'यह चिह्न में एक तिनका कुचल गया है!' भद्र—उसका मस्तिष्क जाग्रत् हो गया है। भगवती सरस्वती उसके मस्तिष्क में अपने उज्ज्वल हंस से कूदकर आ विराजी हैं। उसका कनू रो रहा है—उसे कोई बाधा इस समय बाधित नहीं कर सकेगी।

'लेकिन गायें कहाँ गयीं? कंस उन्हें अपने यहाँ ले गया हो? कोई असुर अकेली पाकर···!' सुबल की आशङ्का व्यर्थ नहीं है। यही शङ्का सबको व्यथित कर रही है। कहीं कंस ने व्रज को नष्ट करने की यह युक्ति न की हो।

'कोई ले गया हो—वह असुर हो या असुर का बाप मैं उसके पास जाऊँगा, उससे कहूँगा कि मेरे पशु लौटा दो, चाहे मुझे मार ही डालो! यदि किसी असुर ने उन्हें अपने उदर में पहुँचा दिया हो तो मैं उसका पेट फाड़कर पशुओं को लाऊँगा! कनूँ, बस तू रो मत! मैं यह चला!' भद्र

ने फिर कन्हैया के नेत्र पोंछे। उसके नेत्रों के अश्रु कबके सूख चुके हैं। वह पृथ्वी की ओर देखता एक ओर चल पड़ा।

'मैं तेरे साथ आऊँगा!' कन्हाई ने भी नेत्र पोंछ लिये।

'चलो, हम सब चलेंगे!' दाऊ भैया का स्वर अब भी गम्भीर है। यद्यपि उसने पटुके से मुख पोंछ लिया है और अब कोई भी रो नहीं रहा है; फिर भी दाऊ के दृगों में चिन्ता ज्यों-की-त्यों है। भद्र की गति में आज सब को दौड़ना पड़ रहा है। आज पता नहीं उसने किसके प्राण प्राप्त कर लिये हैं।

'यह दूर्वा कुचली है। पिछला भाग तृण का कुचलने से कुछ बचा है, अगला भाग पूरा कुचल गया है। आगे जाते समय खुर अगले भाग पर पूरे पड़े हैं। यहाँ इस शाल तरु में धर्म (वृषभ) ने अपना शरीर रगड़ा है। ये वृक्ष की छाल में कुछ रोम लगे हैं। रोम का मुख हमारी ओर है। यह बतलाता है कि पशु आगे गये हैं! उस झाड़ी की पत्तियाँ कुछ नुची हैं। बकरियों ने उस पर मुख मारा होगा। ये कंकड़ अपने स्थान से उखड़कर इधर आगे उछल आये हैं। खुरों की ठोकर लगी है इन्हें। वह पड़ा है गोबर। यहाँ की भूमि गोमूत्र से पवित्र हुई है।' भद्र आज किसी आखेट-विशेषज्ञ की अपेक्षा भी तीव्रता से पशुओं की गति के चिह्न पहचान रहा है। इतने वेग से चलते हुए उसके नेत्र यह सब कैसे देख लेते हैं, यह आश्चर्य की ही बात है। दूसरे बालक भी कुछ नवीन चिह्न पाने के प्रयत्न में मार्ग को ध्यान से, उत्सुकता से देख रहे हैं—परंतु आज भद्र की अग्र-गति स्पर्धा से परे है। दाऊ और कन्हैया उसका अनुमोदन करते जा रहे हैं चुपचाप।

'अब?' भद्र के पीछे सब दूर तक मूँजों के वन में आ गये हैं। ऊँचे-ऊँचे मूँज के झुरमुट ही हैं चारों ओर। उनके मध्य में पशुओं को देख पाना सहज नहीं। आगे वन रौंदा हुआ है। पशुओं के पदचिह्न किसी एक ओर नहीं हैं। अवश्य वे इसे रौंदते हुए इधर-से-उधर भागे हैं। भद्र सहसा खड़ा हो गया। इधर-उधर ध्यान से देखा। 'कनूँ, तू पुकार तो सही! गायें कहीं पास ही होनी चाहिये!'

'पद्मा! सुरभी! कामदा! कपिला! कृष्णा! धर्म! आनन्द!' श्यामसुन्दर ने अपने जलद-गम्भीर स्वर में पुकारना प्रारम्भ किया और पुकारने का क्रम आनन्द-उल्लास के कारण तब और बढ़ गया, जब उत्तर में हर्षपूर्ण हुंकारें सुनायी देने लगीं। जैसे बालकों ने नवीन जन्म पाया हो, वे हर्ष से उछल पड़े।

श्याम पुकारता जा रहा है, अपने-अपने नाम सुनकर गायें या वृषभ हुंकार कर रहे हैं। दाऊ और भद्र श्याम को मध्य में करके उस घने मूँजों के झुरमुटों को हटाते ध्वनि का आधार लेकर बढ़ रहे हैं। बालक पीछे चल रहे हैं। दूर से पशुओं का शब्द सुनायी पड़ा, वे जैसे क्रन्दन कर रहे हों। कन्हैया ने लकुट में अपना पटुका उलझा कर ऊपर उठाया। एक ओर मूँजों का हरा सागर आन्दोलित हो उठा; सब पशु दौड़े, पूँछ उठाये, वन को रौंदते आ रहे हैं- आते जा रहे हैं। पशु तो पहले से प्यासे थे, बालक भी थक गये हैं। उन्हें प्यास लग गयी है। पशुओं को पाकर अवश्य ही वे उल्लसित हैं। सब शीघ्र वन में लौटने लगे। वहाँ मूँजों के वन में भला, जल का क्या काम।

बात क्या है? कन्हैया के समीप आकर भी गायों को शान्ति क्यों नहीं मिल रही है? 'हुम्मा, बाँ, म्याँ' सभी चिल्लाते ही जाते हैं। सबने बालकों को चारों ओर से घेर लिया है। बकरियाँ और बछड़े तक बालकों से पृथक् उनको घेर कर खड़े हो गये हैं। हाँकने पर भी टस-से-मस नहीं हो रहे हैं। सब चिल्ला रहे हैं और सब के कान खड़े हैं। सबके नेत्रों में भय है, पर भागने का नाम कोई नहीं लेता।

'अरे, तुम सबों ने हम लोगों को क्यों बंदी बना लिया है?' दाऊ ने सम्मुख के वृषभ को हटाना चाहा। कन्हैया एक गाय को पुचकारकर आगे चलाने के प्रयत्न में लगा। व्यर्थ—न तो पशुओं का क्रन्दन बंद और न वे हटे।

'भैया, यह आँधी क्यों चल रही है ? इसमें इतनी उष्णता क्यों है ?' भद्र ने दाऊ की ओर देखा। पशुओं के कार्य में उसे कोई रहस्य ज्ञात हुआ।

'वह दूर आकाश में कुछ धुआँ-सा है न ?' सुबल ने एक ओर संकेत किया।

'धुआँ ?' सचमुच वे जिधर से आये हैं, उधर ही तो यह धुआँ है। अब तक तो और किसी ओर ध्यान गया ही नहीं था, अब सबने चारों ओर देखा—'हे भगवान्, चारों ओर धुआँ-ही-धुआँ उठ रहा है। वह दूर एक लपट-सी दृष्टि पड़ी। यह क्या ?' उन्हें क्या पता कि कंस के अनुचरों ने गायों को यहाँ पहुँचाया और फिर चारों ओर से वन में अग्नि लगा दी।

'दाऊ भैया ! हम सब मूँज के वन में खड़े हैं। यह तो दावाग्नि है। कितनी देर लगेगी इस मूँज में अग्नि फैलते। वह देख, वे लपटें अब स्पष्ट हो गयीं। हमें जिधर जाना है, उधर का मार्ग धुआँ उगल रहा है। चारों ओर से घिर गये हम। ये पशु—ये बिचारे और क्या करें, उनका घेरा बता रहा है कि पहले वे भस्म होंगे। इससे अधिक वे क्या कर सकते हैं ! राम, तेरा पराक्रम अपार है ! तू कोई उपाय कर !' भद्र ने भय-विह्वल स्वर में आग्रह किया। दाऊ क्या कहें ? क्या करें। अपने छोटे भाई की ओर देखकर केवल गम्भीरता से बोले 'कनूँ !'

बालकों ने देखा लपटें चारों ओर स्पष्ट हो गयी हैं। वायु का ताप अब असह्य होता जा रहा है। वे अत्यन्त भयातुर हो गये। सबने एक दम चिल्लाकर कहा—'कनूँ, बचा ले, भैया !'

'श्याम, तेरे स्वजनों को कष्ट नहीं ही होना चाहिये ! तेरे रहते यह अग्नि जला देगा—ऐसा कैसे हो सकता है ! हमारा नायक तो तू ही है ! बचा, भाई ! बचा ले ! तू बचा सकता है !' भद्र ने कन्हैया की ओर कातर नयनों से देखा।

'तुम सब अपने नेत्र बंद तो कर लो !' कन्हैया ने गम्भीरता से कहा। जब दाऊ भैया कहते हैं, सखा कहते हैं और यह भद्र भी कहता है तो अवश्य यह रक्षा करेगा। भैया ने उसे आज्ञा दी है तो करना ही पड़ेगा और यह भद्र कहता है न कि वह रक्षा कर सकता है; तब अवश्य कर सकता है। भद्र तो झूठ बोलता ही नहीं। श्याम ने कुछ नहीं सोचा। उसने जैसे किसी के कहलाने से कह दिया हो और नेत्र तो दाऊ तक ने बंद कर लिये हैं कहते ही।

अब—श्याम ने वाम हस्त से संकेत किया और मुख खोल दिया। जैसे यह आज्ञा है अग्निदेव को कि 'अब बहुत हो चुका, यह ध्वंस बंद करो ! चुपचाप आओ और जठराग्नि के रूप में यहीं भीतर जठर में स्थित रहो।' गायों ने, वृषभों ने, भैंसों ने, बछड़ों ने, बकरियों ने आश्चर्य से देखा कि नदी की धारा के समान लपटों की धारा कन्हैया के मुख में प्रवेश कर रही है। वह खड़ा है, शान्त, अचल। दो क्षण में वह धारा समाप्त हो गयी। दिशाएँ धूम्रहीन हो गयीं। वायु शीत-स्पर्श हो गया।

'पता नहीं ये सब क्या सोचेंगे ! सब थके हैं और प्यासे भी ! बहुत दूर तक है यह मुञ्ज-वन ! भाण्डीरवट सब पहुँच जायँ तो....!' कन्हैया सोच रहा है और योगमाया—वे तो सदा आज्ञाकारिणी हैं।

'हैं—भाण्डीर ही तो है यह ! श्याम स्वयं ही चौंक पड़ा। उसे हँसी आयी सबको नेत्र बंद किये देखकर। धीरे से एक चपत मधुमङ्गल और एक श्रीदाम के सिरपर जड़ते हुए बोला—हाँ, देखो नेत्र खोलना मत ! बंद किये रहो !'

शीतल-मन्द वायु शरीर को लग रहा है। कन्हैया के स्वर में विनोद है। भद्र ने नेत्र खोल लिये। 'अरे, देखो तो—हम सब कहाँ आ गये हैं !' वह आश्चर्य से चिल्ला पड़ा।

सबने नेत्र खोल लिये। गायें, बछड़े आदि पहले ही निर्झर पर पहुँच गये हैं। भैंसें तो पानी में तैरने भी लगी हैं। बालक भी प्यासे हैं। सब जल की ओर दौड़ गये।

'श्याम, दावाग्नि क्या हुई ? हम सब यहाँ कैसे आये ? भद्र ने बड़ी सरलता से पूछा।

'तू तो स्वप्न देखा करता है !' कन्हैया कभी सीधी बात बतलाने से रहा।

'अवश्य यह कोई देवता है। इसने हमें आज बचा लिया!' वरूथप का स्वर आज भाव-स्निग्ध है।

'हाँ—मैं देवता हूँ, अब मुझसे झगड़ा मत किया कर! अपना छीका चुपचाप मुझे दे दिया कर और सेवा—मेरी पूजा किया कर!' मुँह बनाकर कन्हैया हँस पड़ा।

'तू वरदान में अपने सब लड्डू मुझे दे दिया करे तो यही सही, मैं अत्ते-पत्ते चढ़ा दिया करूँगा!' हँसते हुए मधुमङ्गल ने एक पूरी किसलय-भरी टहनी तोड़ ली और मस्तक पर रखने बढ़ा। परिहास में गम्भीरता उड़ गयी। बालक गम्भीर रहें, तो बालक ही काहे के।

'भद्र, सायंकाल समीप है!' दाऊ ने सूचना दी। आज प्रातः से वन में झंझटें ही बढ़ रही हैं। पहले वह दुष्ट राक्षस (प्रलम्ब) आया और फिर यह थकान—चिन्ता। वन से शीघ्र लौटना चाहते हैं वे। शृङ्ग बजे, पशु एकत्र हो गये। कन्हैया ने मुरली अधर से लगायी और वे सदल-बल ग्राम की ओर चल पड़े।
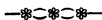
गोवर्धन-पूजन

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति।
न तस्माद् विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा॥

—भागवत १०।२४।१९

अभी कल सायंकाल मैया ने ग्राम से दक्षिण ओर यमराज के लिये दीपदान कराया है। आज रात्रि में महालक्ष्मी का पूजन होगा। गोपियों ने घरों को भरपूर सजाया है। आज नित्य का स्वच्छ व्रज जैसे पुनर्नवीन हो गया है। रात्रि में घृत-दीपकों की पंक्तियाँ जलेंगी। समस्त ग्राम दीपकों की ज्योति में जगमग-जगमग करेगा। नित्य के मणि-प्रदीप तो रहेंगे ही; परंतु दीपावली के शृङ्गार तो घृतदीप हैं न। मैया नित्य श्रीतुलसीजी के समीप, गोष्ठ में, दूर अश्वत्थमूल में, श्रीयमुना-जी के तट पर तथा गृह के प्रत्येक कोष्ठ में घृतदीप रखवा देती है। बिना घृतदीप के उन क्षेत्रों के अधिष्ठाता देवता कैसे तुष्ट होंगे; परंतु आज तो दीपकों की पंक्तियाँ लगेंगी। आँगन में छोटा-सा पर्वत लग गया है यमुनाजल से शीतल किये दीपकों का। सब दासियाँ वर्तिकाएँ बनाने में जुटी हैं। श्याम आज गो-चारण के लिये नहीं गया है। वह सखाओं के साथ घर पर ही है। आज के दिन मैया उसे कैसे वन में भेज दे। आज जो होता है, वर्ष भर वैसा होता ही रहता है। श्याम को आज आनन्द मनाना चाहिये।

गोपियाँ दीपोत्सव की प्रस्तुति में लगी हैं और गोप—वे और ही किसी साज-सज्जा में हैं। विविध प्रकार की समिधाएँ, घृतकुम्भ, यव, तिल, अक्षत, सुगन्धित ओषधियाँ और नाना प्रकार के फल—मिष्टान्न! यह सब क्या होगा? रात्रि की पूजा में तो इसकी आवश्यकता जान नहीं पड़ती। ये सामग्रियाँ घर से एकत्र करके ये गोप कहाँ जा रहे हैं? श्यामसुन्दर ने सखाओं को साथ लिया और यह देखने चला कि गोप क्या कर रहे हैं।

नन्दग्राम से बाहर गिरिराज गोवर्धन के समीप गोप सब सामग्री एकत्र कर रहे हैं। बरसाने और नन्दग्राम से बराबर लोग ढेर-की-ढेर वस्तुएँ ला रहे हैं। अवश्य ही कोई यज्ञ वहाँ होगा। श्यामसुन्दर अपने बड़े भाई और सखाओं के साथ वहीं खेलता रहा। उसे गोपों को इस प्रकार दौड़ते, सामग्री ढोते देखकर कुतूहल हो रहा है। नन्दबाबा आसन लगाये सब वस्तुओं का निरीक्षण कर रहे हैं। उन्हें आज ही यह सुयोग मिला है कि कृष्णचन्द्र अपने सखाओं के साथ इतनी देर उनके सम्मुख रहे। वह बार-बार उनके पास आता है, उनसे पूछता है—'यह क्या है? यह कहाँ से आया?' अनेक बार वे उसे गोद में बैठाकर पूरा उत्तर भी नहीं दे पाते कि सखाओं में से कोई पुकार लेता है और वह उनके मध्य भाग जाता है।

'भैया, महर्षि शाण्डिल्य तो आये नहीं! यहाँ तो अभी तक यज्ञकुण्ड भी नहीं बना। अबकी बार रात्रि में यज्ञ होगा क्या?' श्याम ने अपने बड़े भाई से पूछा। सायंकाल होनेवाला है, अतः दिन में यज्ञ होने के तो लक्षण हैं नहीं। रात्रि में कभी यज्ञ होते देखा नहीं है।

'मैया तो कहती थी कि यज्ञ रात्रि में नहीं होते।' दाऊ ने भी कौतूहल ही प्रकट किया।

'पिछले वर्ष भी तो ऐसा ही हुआ था!' भद्र ने कुछ सोचकर बताया। दीपावली के दूसरे दिन इन्द्र का यज्ञ तुम्हें स्मरण नहीं है क्या?'

'हूँ—तो कल भी अपनी गायें चरने नहीं जायँगी!' कन्हैया ने मुख गम्भीर बना लिया। 'सुबल, देख न! अपनी गायें तो बिचारी गोष्ठ में प्रातः से हैं। बछड़ों को कूदने का अवकाश ही नहीं मिला। कल भी सब चरने नहीं जायँगी। यह इन्द्र बड़ा देवता बना है, मैया कहती थी और महर्षि शाण्डिल्य ने भी कहा था कि व्रज के लिये सबसे महान् देवता गौएँ हैं। गायें तो चरने नहीं

जा पातीं और इन्द्र की पूजा होगी! यह हमारी गायों से भी बड़ा हो गया जो उनका चरना बंद कराके अपनी पूजा करायेगा!'

'हाँ, गायें तो सबसे बड़ी देवता हैं; पर बाबा तो यज्ञ कराने में लगे हैं न!' दाऊ को भी छोटे भाई की बात जँच गयी।

'तब इस सब सामग्री से गायों की पूजा कर ली जाय!' श्रीकृष्णने मान लिया कि पूजा-सामग्री उसी को व्यय करनी है, चाहे जैसे करे।

'बाबा कहते थे—गायों को बहुत अन्न देने से वे रुग्ण होती हैं! यहाँ तो सामग्री का पर्वत लग गया है अभी से!' मणिभद्र ने बात ठीक कही। इतना और कि इनमें से सब सामग्री गायों के लिये उपभोग्य भी नहीं है।

'इस सामग्री के पर्वत से हमारे गिरिराज की भी तो पूजा होगी!' कन्हैया को युक्ति सोचते क्या देर लगती है। वह तो मान चुका कि इन्द्र की पूजा नहीं होगी। श्रुति उसे सत्यसंकल्प कहती है। इन्द्र की पूजा तो गयी। हुआ करें महेन्द्र वैदिक देवता—अब लोक में उनका यह वार्षिक यज्ञ नहीं चलेगा। श्याम के संकल्प को तो सार्थक होना ही है।

'गिरिराज गोवर्धन की पूजा होगी!' स्वयं कन्हैया अपनी इस युक्ति से उत्फुल्ल हो उठा। सखाओं में भी उल्लास आया। भला, इतने बड़े देवता की पूजा कैसी अद्भुत लगेगी। मन्दिर की छोटी-सी मूर्ति और ये इतने बड़े विशाल गिरिराज। इतनी बड़ी देवमूर्ति—एक दिन के ही लिये सही—है तो बड़ी भव्य योजना।

योगमाया अनन्त अन्तरिक्ष में मुस्करा उठीं। जगत् के परमाराध्य श्रीकृष्ण व्रज में हैं और उनकी उपस्थिति में, उन्हीं के सम्मान्य जनों द्वारा की गयी पूजा देवराज गत सात वर्षों से बराबर स्वीकार करते आ रहे हैं! यह धृष्टता क्षमा करने योग्य नहीं है। सुरेन्द्र का यह दर्प कि वे व्रज की पूजा ग्रहण करें, व्रजेन्द्र के पूज्य बनना चाहें! उन्हें लोक से ही पूजा मिलना बंद होना चाहिये। आराध्य के संकेत के बिना यह कैसे हो। आज श्रीकृष्ण ने इच्छा की और योगमाया को अवकाश मिल गया महेन्द्र का दर्प शमन करने का।

× × × ×

'बाबा, यह सब किस समारोह के लिये है? क्या फल होता है इस यज्ञ का? क्या-क्या सामग्री इसमें लगती है? महर्षि शाण्डिल्यजी ने कोई शास्त्रीय यज्ञ बताया है क्या? या यह अपने कुल में सदा से होता आ रहा है?' सायंकाल प्रायः सभी गोप एकत्र हो गये हैं। कुछ लोग सामग्री लाने में लगे हैं; पर कन्हैया कुछ पूछ रहा है, यह देखकर वे भी खड़े हो गये। श्याम के मुख से उसके अटपटे तर्क भी कानों में अमृत सींचते हैं। सखा शान्त बैठ गये हैं आकर। बाबा ने समझ लिया कि कृष्णचन्द्र उनकी गोद में इस बार गम्भीरता से अपने प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये बैठा है। एक साथ ढेरों प्रश्न कर देना तो उसका स्वभाव ही है।

'बताओ, बाबा! मेरी बड़ी इच्छा है जानने की! देखो, छिपाओ मत! लाओ तुम्हारे हाथ दबा दूँ, पर बताओ! मैया कहती है कि अच्छे मनुष्य कोई बात छिपाया नहीं करते! बाबा, तुम तो सबसे अच्छे हो!' कन्हैया को सदा शीघ्रता रहती है। सभी बातों में शीघ्रता। बाबा सोचने लगे हैं कि कहीं यह देवराज के सम्बन्ध में कोई ऐसा प्रश्न न कर दे, जो देवता की मर्यादा के विरुद्ध हो। बालक से देवापराध न बन जाय, अतः वे उसे समझाने का ढंग सोचने लगे हैं। यह कुछ क्षण का विलम्ब श्याम कैसे सह ले।

'बात तो उससे छिपायी जाती है, जिससे शत्रुता हो जाय। यह मधुमङ्गल जब मुझसे लड़ाई कर लेता है, तो बोलता ही नहीं। बाबा तुम तो मुझसे ही छिपा रहे हो!' कन्हैया ने मुख बनाया रूठने का।

'कृष्ण, तू क्या करेगा यह सब जानकर?' बाबा ने श्याम की ठुड्डी में हाथ लगाया और उसका मुख ऊपर करके पूछा।

'महर्षि शाण्डिल्य उस दिन कह रहे थे न कि कोई कर्म करना हो तो पहले उसका फल जान लेना चाहिये। फल न जानकर कर्म करने से फल गड़बड़ हो सकता है! बाबा, तुमको इस

यज्ञ का फल ज्ञात न हो तो मत करो इसको !' बाबा के साथ सभी गोप हँस पड़े। श्यामसुन्दर कभी-कभी पूरा पण्डित बन जाता है।

'कृष्ण, देख ! यह जो वर्षा होती है, उसके देवता भगवान् इन्द्र हैं। ये बादल उनके शरीर के अंश हैं। इन मेघों से समस्त जीवों को पुष्ट करने और जीवन देनेवाले जल की वर्षा होती है। ये सब पदार्थ जल से ही बढ़ते हैं। हम लोग और संसार के दूसरे लोग भी वर्ष में एक दिन वर्षा करने वाले उस देवराज इन्द्र की पूजा उन्हीं के दिये जल से बढ़े पदार्थों से करते हैं। यह यज्ञ-सम्भार उन्हीं के लिये है। इस प्रकार उनका यज्ञ कर लेने पर जो पदार्थ बच रहेंगे, वे उनका प्रसाद बन जायँगे। उसी प्रसाद से हम सबका वर्षभर काम चलेगा। वर्षभर में हमलोग जो भी काम करेंगे, उसका फल भी देवराज ही हमें देते हैं। इसलिये भी उनकी आराधना करना हमारा कर्तव्य है। यह यज्ञ परम्परा से संसार में चला आ रहा है। जो मनुष्य पदार्थों के लोभ से, किसी विशेष कामना से या राजा अथवा किसी के भय से इसे छोड़ देता है, उसका कल्याण नहीं होता !' बाबा ने सरल रीति से समझाने का प्रयत्न किया।

'जीव तो अपने प्रारब्ध कर्म से उत्पन्न हुआ है। प्रारब्ध के अनुसार ही वह सुख-दुःख, भय या कल्याण पाता है तथा प्रारब्ध ही उसकी मृत्यु का कारण है। कोई एक ईश्वर है तो सही; पर वह भी जीव को उसके कर्मों का ही फल देता है। बिना कर्म के वह भी कुछ देता नहीं। जब जीव को अपने कर्मों का ही फल पाना है, तब इन्द्र के द्वारा उनका क्या प्रयोजन सिद्ध होगा। प्रारब्ध से जो होना है, उसे पलट देने में तो इन्द्र असमर्थ ही हैं।' बाबा और गोप सोचने लगे; अवश्य ये बातें श्याम ने महर्षि शाण्डिल्य के उपदेशों से स्मरण कर ली हैं। इसकी बुद्धि बड़ी तीव्र है !

'मनुष्य कर्म के वश में है। अपने स्वभाव के अनुसार वह कर्म करता है। सब देवता, राक्षस, मनुष्य अपने स्वभावानुसार ही चेष्टा करते हैं। अपने कर्म के अनुसार ही जीव ऊँचे या नीचे शरीरों में जाता अथवा उन्हें छोड़ता है। उसे शत्रु, मित्र, उदासीन भी कर्म के अनुसार ही मिलते हैं। कर्म ही सबसे बड़ा है। वही ईश्वर है। अतएव अपने स्वभाव के अनुसार, अपने कर्म के द्वारा, उस कर्म के प्रेरक देवता की पूजा करनी चाहिये। जो जिसके द्वारा संसार में जीवन चलाता है, वही उसका देवता है। जो अपनी आजीविका के प्रेरक को छोड़कर दूसरे किसी के द्वारा जीवनोपार्जन करने का प्रयत्न करता है, वह उस दूसरे से कभी कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता !' श्याम बोलता ही जा रहा है। दाऊ और सब सखा उसके मुख की ओर देख रहे हैं। उनका 'कनूँ' इतना बड़ा पण्डित है—यह तो सोचा ही नहीं था उन्होंने। इतनी बातें वह कहाँ से सीख गया। कन्हैया भी मानो सखाओं की कौतुकभरी दृष्टि से प्रोत्साहित हो रहा है। आज वह पूरा पाण्डित्य प्रकट कर देगा।

'शास्त्रों के द्वारा ब्राह्मण को जीविका चलानी चाहिये और पृथ्वी की रक्षा करके क्षत्रिय को। वैश्य व्यापार करके अपना जीवन-निर्वाह करे और शूद्र द्विजातियों की सेवा से, यह विधान है। इसमें वैश्य के लिये खेती, व्यापार और गो-सेवा तथा एक चौथी निन्दित वृत्ति सूद लेना भी है। इन चारों वृत्तियों में हम लोगों की वृत्ति गो-सेवा है। अतएव गायें ही हमारे जीवन का आधार हैं। हमारे लिये वे ही देवता—आराध्य हो सकती हैं।' अब सखाओं ने समझा कि कन्हैया ने इतनी लंबी भूमिका क्यों बनायी है। सचमुच उसने बात बड़े ढंग से कही। सबके नेत्रों में प्रशंसात्मक भाव व्यक्त हो गया।

'प्रकृति में तीन ही गुण हैं—सत्व, रज और तम। रजोगुण से सृष्टि, सत्वगुण से पालन तथा तमोगुण से प्रलय होता है। संसार की नाना प्रकार की सब सृष्टि रजोगुण से होती है। रजोगुण से प्रेरित होकर मेघ सब कहीं बर्षा करते हैं। उसी वर्षा से प्रजा का पालन होता है। इसमें भला, इन्द्र क्या कर लेंगे ? वर्षा के लिये इन्द्र की पूजा की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है !' कृष्णचन्द्र अपनी बात इस ढंग से कहेगा, यह तो बाबा ने भी कहीं सोचा था।

'न तो हम लोगों का कोई बड़ा नगर है मथुरा-जैसा, न भीड़भाड़ से भरा जनपद है, न ठीक ग्राम ही इसे कह सकते और न हमारे घर ही कोई सौध हैं। हम सब तो वन-वासी हैं।

झोपड़ियों-जैसे भवन बनाकर वन या पर्वत पर रहते हैं। हमारी गायें वन और पर्वतों में ही पालित होती हैं। अतएव हमारे देवता तो ये गिरिराज और गायें ही हैं। साक्षात् देवता ब्राह्मण भी हैं ही। हम किसी अलक्ष्य देवता को क्यों पूजें, जब हमारे देवता साक्षात् उपस्थित हैं। अतएव गायों का, ब्राह्मणों का और इन गिरिराज का पूजन व्रज में आरम्भ होना चाहिये। इन्द्र के यज्ञ के लिये जो यह सामग्री एकत्र है, उसीसे यह यज्ञ किया जाय!' श्यामसुन्दर ने पूरी गम्भीरता से अपना प्रस्ताव उपस्थित किया।

दृष्टि सामग्रियों की ओर गयी। वहाँ हवनीय द्रव्य तो हैं, पर ब्राह्मणों और गौओं के लिये पर्याप्त पूजन-द्रव्य नहीं हैं। श्यामसुन्दर ने नूतन यज्ञ की सामग्री का निर्देश किया—'आज रात्रिभर नाना प्रकार के पकान्न बनाये जायँ। दीपावली है ही, अतः रात्रि में कोई सोयेगा नहीं। मालपुए, लड्डू, खीर, संयाव, पूड़ियाँ आदि सब प्रकार के पक्के व्यञ्जन बनें। व्रजके घरों में जितना भी दूध, दही, घृत हो, एकत्र कर लिया जाय। प्रातःकाल महर्षि शाण्डिल्य के नेतृत्व में सब ब्राह्मण भली प्रकार हवन करें! उनको अनेक प्रकार के व्यञ्जनों से तृप्त करके सब लोग गोदान करें। कुत्ते और चाण्डाल तक जितने भी प्राणी हैं, सबको उनके योग्य आहार से संतुष्ट किया जाय। अभी से गायों के लिये यवस (मूँग, उड़द, यव, गेहूँ आदि अन्न) भिगो दिया जाय। गायों को संतुष्ट करके तब गिरिराज की पूजा हो। कल सब लोग अच्छे-से-अच्छे वस्त्राभूषण धारण करें, अङ्गराग लगायें और सुन्दर-से-सुन्दर भोजन करें। हवन, ब्रह्मभोज, गो-पूजन, समस्त प्राणियों का पूजन तथा सह-भोज क्रमशः हो जाने पर गायों की, ब्राह्मणों की, अग्नि की और गिरिराज की प्रदक्षिणा की जाय!'

सखाओं ने देखा कि कन्हैया ने उत्सव तो धूमधाम का बताया। यज्ञ तो होगा ही; परंतु उसके साथ सहभोज, गिरिपूजन और प्रदक्षिणा का अपार आनन्द भी रहेगा। बाबा कुछ गम्भीरता से सोचने लगे। गोपों में से भी किसी ने तत्काल प्रतिवाद नहीं किया। कन्हैया ने केवल इन्द्र के निमित्त यज्ञ न हो, इतना ही मना किया है। वह हवन तो करने को कह ही रहा है। ब्राह्मण, गौएँ, गिरिराज—ये पूज्य हैं ही। इनकी पूजा और की जाय—यह उसका कहना उचित ही है।

'यह मेरी सम्मति है। यदि आप लोगों को ठीक लगे तो इसी प्रकार कल यज्ञ हो। यह गौ-ब्राह्मण तथा गिरिराज को प्रसन्न करने वाला यज्ञ होगा और मुझे भी यही प्रिय है!' उपसंहार हुआ प्रवचन का।

'हमें गायों, ब्राह्मणों और गिरिराज की प्रसन्नता को छोड़कर और क्या चाहिये! श्याम-सुन्दर ठीक तो कहता है!' एक युवक गोप ने बोलने की धृष्टता कर ली।

'और तो सब ठीक; पर देवराज...?' बाबा अपना संशोधन रखने जाकर भी नहीं रख पाये। श्रीकृष्ण कहीं रुष्ट होकर देवता के सम्मान के विपरीत न कुछ बोलने लगे।

'कृष्णचन्द्र जो कह रहा है, करना वही चाहिये! मैंने देखा है कि बोलते समय उसके मुख से एक दिव्य तेज प्रकट हो रहा है। हमारे आराध्य श्रीनारायण की ही प्रेरणा है यह। यदि आज श्याम की बात न मानी जाय और कल वह सखाओं के साथ कोई बालहठ कर बैठे तो......।' उप-नन्दजी ने बड़ी गम्भीरता से श्यामसुन्दर का समर्थन किया। भला, उपनन्दजी—इतने बड़े धर्मज्ञ कह रहे हैं तो बात तो माननी ही ठीक है।

'अनादि काल से चला आता यह इन्द्रयाग?' बाबा विचार करने लगे। योगमाया अन्त-रिक्ष में हँसी। बाबा का विचार एक क्षण में बदल गया। 'श्रीकृष्ण का ठिकाना क्या! वह यज्ञकाल में कोई हठ कर सकता है। तब विधिभङ्ग होने से यज्ञ करना भी व्यर्थ हो जायगा। बालक से देवा-पराध हो, इससे तो उसका अवसर न आने देना ही श्रेष्ठ है। गौ, ब्राह्मण, गिरिराज का पूजन, हवन तो होगा ही।' बाबा ने मन-ही-मन सोचा और स्वीकृति दे दी।

'गिरिराज का पूजन होगा!' कन्हैया बाबा के निर्णय को सुनते ही ताली बजाते हुए कूदने लगा। सखाओं के साथ वह मैया को यह संवाद सुनाने दौड़ा।

'देखो न, श्रीकृष्ण कितना प्रसन्न है !' संनन्द ने कूदते, हसते जाते बालकों की ओर दृष्टि जमाये हुए ही कहा। 'हमें तो यज्ञ का फल इसकी प्रसन्नता से ही मिल गया।'

नन्दबाबा और सभी गोप उधर ही देख रहे हैं। जिस कार्य में कृष्णचन्द्र को इतना आनन्द प्राप्त हो, व्रज के लिये तो वही कार्य सर्वश्रेष्ठ है। सब नवीन यज्ञ की तैयारी करने उठ पड़े। महर्षि शाण्डिल्य को भी सूचित करना ही है।

× × × ×

गिरिराज का पूरा पदप्रान्त अरुणोदय से पूर्व ही गौओं, गोपियों तथा गोपों से जनपद प्रतीत होने लगा। दीपमालिका-महोत्सव में रात्रिभर घर-घर कड़ाहियाँ चढ़ी रही हैं। पकवानों की राशियों की गणना ही शक्य नहीं। घृत, दुग्ध, दधि के कुम्भ बड़ी कठिनाई से एक के ऊपर एक रखकर किसी प्रकार गिरिराज के चारों ओर समा सके हैं। सामग्रियों की ढेरी दूसरे गिरिराज के समान हो गयी है।

ब्राह्मणों के साथ महर्षि शाण्डिल्य ने सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही कुण्ड में अग्नि-स्थापन किया। अरणिमन्थन व्रज में तो नाम मात्र को होता है। यहाँ के हविष्य के लिये तो अग्नि-देव सदा भूखे ही रहते हैं। उन्हें प्रकट होने में विलम्ब होता नहीं। महर्षि ने समाचार पाते ही कल हँसकर स्वीकार कर लिया था कि इन्द्रयाग से यह श्रीकृष्ण का बताया नवीन यज्ञ बहुत प्रभाव-पूर्ण है। प्रातः ही उनके साथ द्विजवृन्द उपस्थित हो गया यज्ञस्थल पर। गणेश, गौरी, नवग्रह, कलशादि के पूजन में विलम्ब होना ही नहीं था।

यज्ञ के अनन्तर महर्षि ने गौओं का पूजन कराया। कन्हैया ने प्रत्येक गाय, वृषभ, बछड़े को अपने हाथ से मोदक खिलाये। गोपों ने उन्हें यवस दिये। ब्राह्मणों का पूजन हुआ और उन्हें भोजन कराके बाबा ने सहस्रों गायें दान कीं। सभी गोपों ने यथाशक्ति सौ, सहस्र गायें दान कीं। यज्ञिय अग्नि की, गायों की और ब्राह्मणों की पूजा, प्रदक्षिणा करने के पश्चात् गिरिराज का पूजन प्रारम्भ हुआ।

गिरिराज—साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूप ही तो हैं वे। उनका भी क्या कोई दूसरा अधिष्ठाता देवता हो सकता है ! व्रजके गोप—बाबा और स्वयं गोपाल उनकी अर्चना करने जा रहे हैं। महर्षि शाडिल्य पुरुषसूक्त का सस्वर पाठ कर रहे हैं विप्रों के साथ ! गिरिराज क्या अव्यक्त रह सकते हैं ? प्रकट हो गये वे। गोपों ने देखा सहस्र-सहस्र सूर्य जैसे एक साथ उदित हो गये हों। शीतल-स्निग्ध तेजोमयी मूर्ति—गगन को स्पर्श करती, विशाल। यह तेज, यह विशालता यदि न होती तो मूर्ति तो श्यामसुन्दर की ही है वह भी। वही मयूरमुकुट, वही पीताम्बर, वही नीलोज्ज्वल वर्ण। भाल, नेत्र, वक्ष—सम्पूर्ण आकृति तो वही है; परंतु विशाल—विशाल कितनी है !

'गिरिराज प्रत्यक्ष प्रकट हो गये !' गोपों, गोपियों, विप्रों, सबमें आश्चर्य और उमंग आयी। पूजन में उल्लास आ गया। अपने विशाल हाथों से गिरिराज ने नैवेद्य स्वीकार करना प्रारम्भ किया। श्रीकृष्ण सखाओं के साथ सामग्री निवेदित करने में तत्परता प्रकट कर रहा है। गोपियाँ पात्र उठाकर गोपों को दे रही हैं। सहस्र-सहस्र गोप पात्र आगे बढ़ाते जा रहे हैं। गिरि-राज कब पात्र लेते हैं, यह कहना कठिन है। पात्र रिक्त होते देर ही नहीं लगती। कोई साधारण देवता तो नहीं हैं वे। पूरी सामग्री उन्होंने स्वीकार कर ली और तब आचमन किया।

'बाबा, गिरिराज प्रसन्न हैं ! इस वर्ष खूब वर्षा होगी ! बाघ, सिंह बनकर ये ही उन लोगों को मार देते हैं, जो इनका अपमान करता है। हम लोगों का, हमारी गायों का ये पालन करते हैं। ये हम सबका कल्याण करेंगे ! रक्षा करेंगे !' श्रीकृष्ण ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया और फिर पृथ्वी पर लेटकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सखाओं ने तो उसका अनुगमन किया ही, सब गोप और गोपियों ने भी किया।

गिरिराज पूजा लेकर अदृश्य हो गये। गोपों ने देखा, उनके समस्त रिक्त पात्र भरे हुए हैं। देवता का अनुग्रह है यह। सबने साथ ही बैठ कर भोजन किया। गोपियाँ पृथक् बैठीं वह प्रसाद स्वीकार करने आज। कन्हैया सखाओं के साथ परसने में लगा है। मध्याह्न हो गया, पर उसने कलेऊ

नहीं किया। मैया का आग्रह भी आज शिथिल हो जाता है—यह सोचकर कि आज का उत्साह पवित्र है। बाबा ने बहुत चाहा, पर वह तो आज यज्ञशेष भोजन करेगा। श्याम न बैठे तो भोजन किया कैसे जाय—पर वह बलात् बैठा जो रहा है। उसका आग्रह उपेक्षा की वस्तु भी तो नहीं। परसने-वाले तो बहुत हैं; पर ये बालक जब अपने छोटे हाथों में कुछ उठाकर किसी को देने जाते हैं. अस्वीकार कैसे कोई करे। श्याम गोपों और गोपियों में सब को कुछ-न-कुछ परस आया, सबको चिढ़ा आया और तब किसी प्रकार बाबा ने उसको सखाओं के साथ बैठाया।

कोई प्राणी, कोई पशु-पक्षी वहाँ ऐसा नहीं बचा, जिसके लिये उच्छिष्ट की प्रतीक्षा करनी हो। सबको पर्याप्त अन्न इधर-उधर देकर ही यह गोपमण्डली भोजन करने बैठी थी। अब यदि व्रज के कुत्ते, पक्षी, बंदर उस अन्न को छोड़कर व्रजवासियों के उच्छिष्ट में ही स्वाद पाते हों तो कोई क्या करे। वे केवल कन्हैया के उच्छिष्ट पर छीना-झपटी करके रह जायँ, ऐसा भी शक्य नहीं। प्रत्येक को प्रत्येक पात्र से कुछ-न-कुछ चाहिये। उनकी छीना-झपटी भी तो विनोद-जैसी ही है। लड़ना तो यहाँ किसी को आता ही नहीं।

'अब गिरिराज की परिक्रमा होगी!' भोजन समाप्त हो जाने पर कन्हैया ने बताया।

'परिक्रमा पहिले क्यों नहीं कर ली!' मधुमङ्गल रुष्ट हुआ। उसे इस कनूँ ने इतना खिला दिया है हँसा-हँसा कर कि चलना ही कठिन है।

'कृष्णचन्द्र, मैया! तुम सब माताओं के साथ यहीं रहो! हम लोग परिक्रमा कर आयेंगे!' संनन्दजी ने ठीक ही कहा। बच्चे और स्त्रियाँ कहाँ गिरिराज की परिक्रमा करने जायँगे। श्याम तो सवेरे से दौड़ रहा है। ये सब थक गये होंगे।

'मैं कहाँ पैदल परिक्रमा करने जा रहा हूँ! मेरा छकड़ा जुतवा दो! मैं उसमें मैया के साथ बैठूँगा! पैदल तो बस, यह मधुमङ्गल ही परिक्रमा करेगा!' श्रीकृष्ण ने परिक्रमा भी सबके लिये सुगम बना दी।

'जैसे मेरे बैठने के लिये कोई छकड़ा ही नहीं है।' मधुमङ्गल ने देखा इधर-उधर—कोई छकड़ा जुता हो तो वह पहले चढ़ जाय।

छकड़े जोते गये। गोपियाँ बालकों के साथ छकड़ों पर बैठीं। माता यशोदा और रोहिणी के साथ उसी छकड़े पर राम-श्याम बैठे। बाबा पैदल ही परिक्रमा करेंगे, अतः भद्र भी कन्हैया के साथ ही बैठा। गायें, बछड़े आगे किये। उनके पीछे उनको सम्हालने के लिये तरुण गोप चले। स्वस्तिवाचन करते महर्षि शाण्डिल्य और विप्रवर्ग के पीछे छकड़ों की सुदीर्घ पंक्ति। सबसे पीछे पैदल गोपगण बाबा के साथ चल रहे हैं।

गिरिराज ने जैसे आज मालाएँ धारण की हैं, वैसे ही ये चल मेखलाएँ भी। गायों, विप्रों, छकड़ों, गोपों—सब की मेखलाएँ बन गयी हैं उनके चारों ओर। चलती हुई मेखलाएँ। स्वर्ण-मण्डित शृङ्ग, रजत-खुर, अनेक प्रकार के मणि-रत्नों से भूषित चित्र-विचित्र गायें, उनके साथ वैसे ही भूषित, पूजित चञ्चल बछड़े। ब्राह्मणों का समूह सामगान करता हुआ अपने तेज में प्रज्वलित अग्निमाला के समान। छकड़ों की शोभा तो अवर्णनीय है। रंग-बिरंगे वस्त्र, सुसज्जित ऐरावत के बच्चों-से वृषभ, उनके गले की घंटियों का नाद आभूषणों की झंकृति से मिला हुआ। कोमल कण्ठों से निकलती सुललित स्वरबद्ध राग-रागिनियाँ और मध्य में बालकों की चपलता। पीछे गोपों का नृत्य, गायन, ताल।

तनिक और ध्यान से देखिये—ऊपर उड़ते पक्षी—और ऊपर पुष्पवर्षा करते जयध्वनिपूरित विमान, वृक्षों पर कूदते कपि, साथ-साथ चलते वन-पशु, पृथ्वी पर रेंगते सर्प से पिपीलिकातक। आज श्याम के साथ गिरिराज की परिक्रमा का सौभाग्य कोई छोड़ नहीं सकता। सब परिक्रमा कर रहे हैं।

तीसरे प्रहर के अन्त में परिक्रमा पूर्ण हुई। छकड़े लौटे। गोपों ने पात्र सम्हाले! ब्राह्मण दक्षिणा पाकर विदा हुए। गोप, गोपियाँ, बालक—सब पहिले नन्दभवन गये बिना घर कैसे जा सकते हैं। श्याम के सामीप्य का सुयोग छोड़ना कैसे किसी के लिये सम्भव हो सकता है।

गिरिधर

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन्।
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा
बिभ्रद् गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयान्न इन्द्रो गवाम्॥

—भागवत १०।२६।२५

'ये गोप—इन्होंने मेरी पूजा नहीं की!' महेन्द्र ने अन्त तक प्रतीक्षा की; किंतु गोप तो गिरिराज की परिक्रमा करके घरों को लौट गये। किसी ने उन्हें प्रणाम करके क्षमा याचना तक नहीं की। इतना बड़ा यज्ञ हुआ और उसमें उन्हें आहुति तक नहीं मिली और यह सब समारम्भ उनका भाग रोककर किया गया। उनके लिये यज्ञ की सामग्री संकलित हुई, वे यज्ञभाग लेने को प्रस्तुत थे; पर उन्हें स्मरण तक नहीं किया गया। भारत के दूसरे सभी ग्रामों ने उन्हें पूजित किया, यह संतोष किस काम का। व्रजवासियों ने उनका इतना बड़ा अपमान जो कर दिया।

'ये वन्य गोप—ऐश्वर्य के मद में चूर होकर एक मर्त्य शिशु कृष्ण के बहकाने से देवताओं का अपमान करने लगे हैं ये!' देवराज के दृगों में कषाय आया।

'गिरिराज प्रसन्न हैं, इस वर्ष खूब वर्षा होगी!' सुरेन्द्र ने श्रीकृष्ण के शब्द स्मरण किये—'अच्छी बात—ऐसी वर्षा कि संसार भी स्मरण रक्खे! पर्जन्याधीश का अनादर करके खूब वर्षा का क्या अर्थ होता है, यह मैं समझा दूँगा!'

क्रोध अन्धा होता है। वह स्वयं आसुरभाव है और जिसमें भी आता है, उसे असुर बना देता है। देवताओं के अधीश्वर तक क्रोधावेश में नहीं सोच सके कि वे करने क्या जा रहे हैं। उन्होंने सांवर्तक नामक प्रलयकालीन मेघों का जो सदा सृष्टिकाल में बन्धन में रहते हैं, बन्धनमुक्त कर दिया। 'इससे केवल गोप और गोकुल का ही विनाश नहीं होगा, वहाँ के अनेक निरपराध जीव-जन्तु मरेंगे। संसार पर भी विनाशक प्रभाव पड़ेगा। वहाँ की वृष्टि वहीं तो रहेगी नहीं। नदियों को यह प्रलय-वर्षा समुद्र बना देगी। पता नहीं कितने जनपद जलमग्न हो जायँगे। उन सबका कोई अपराध नहीं। उन्होंने पूजा की है। देवराज स्वयं लोकपालों में श्रेष्ठ हैं। लोकरक्षा उनका कर्तव्य है।' ये सब बातें क्रोध में कहाँ सूझती हैं। प्रतिशोध होना चाहिये—विनाश चाहे जितना बड़ा करके वह प्राप्त हो!

'यह श्रीकृष्ण बहुत बकवादी है। बुद्धि-विचार और ज्ञान तो है नहीं और मानता है अपने को महापण्डित। इस मर्त्य के बलपर इन गोपों ने मेरा अपमान किया है!' देवराज को कौन कहे कि यदि आप श्यामसुन्दर को मर्त्य मानते हैं तो इतने लाल-पीले क्यों होते हैं। वह अभी कुल सात वर्ष का बालक है और आप देवाधिपति होकर भी उससे गम्भीरता, बुद्धिमानी, विचारशीलता तथा पाण्डित्य की आशा करके क्षुब्ध हो रहे हैं! यह किसका दोष है? कौन अज्ञानी सिद्ध होता है?

'ये सब गोप अपने ऐश्वर्य-मद से मत्त हो गये हैं! कृष्ण ने इनके गर्व को और बढ़ा दिया है। इनके पशु ही तो इनके गर्व के कारण हैं, उनको नष्ट कर दो! ध्वस्त कर दो इन सबों के धनमद को!' छिः! सुरपति होकर सुरभि को नष्ट करने का आसुरी संकल्प!! श्रीकृष्ण का सामना करने चल रहे हैं आप और प्रलयघनों को प्रेरित करके भी अभी से मान लिया है कि गोपों को नष्ट करना सम्भव नहीं है। वे तो बच जायँगे ही, परंतु पशुओं का क्षय अवश्य कर देना है! आरम्भ से पूर्व ही यह दशा है?

'मैं स्वयं ऐरावत पर बैठकर तुम्हारे साथ आ रहा हूँ ! मेरे साथ प्रलयकालीन प्रबल बलशाली मरुद्गण भी चलेंगे !' सांवर्तक मेघों को आज्ञा देते समय सुरपति ने बता दिया कि तुम अकेले नहीं हो ! तुम्हारे साथ प्रचण्ड मरुत् भी हैं और मैं उपस्थित रहकर देखता रहूँगा कि तुम सब कोई कोर-कसर तो नहीं कर रहे हो।

प्रलयमेघ बन्धन-मुक्त हुए ! उनके साथी मरुद्गणों ने उन्हें प्रेरित किया। 'मेघों को नन्द-व्रज पर ही रखना है !' वायुदेव को देवेन्द्र की आज्ञा ने सचेत कर दिया था। दीर्घ काल से बंदी मेघ स्वच्छन्द हुए हैं, उन्हें अपना सम्पूर्ण उत्साह व्यक्त करना है।

× × × ×

'आँधी आ रही है ! बड़ी भारी घटा है !' व्रज में कोलाहल मचा। गोप, गोपियाँ दौड़े ! पशुओं ने भागकर गोष्ठ में शरण ली। लोग अपने बाहर पड़े पदार्थों को छाया में करने के प्रयत्न में भाग-दौड़ करने लगे। व्यर्थ हैं ये प्रयास—क्षण भर में तो चारों ओर अन्धकार छा गया। दिन के तीसरे प्रहर में ऐसा प्रगाढ़ अन्धकार, जो कभी सुना ही नहीं गया। क्षण-क्षण पर विद्युत् के प्रकाश में ही कुछ दीखता है। प्रत्येक चमक के साथ वज्रपात होता है। वायु के वेग से भवनों की भित्तियाँ तक हिल रही हैं ! धड़-धड़, पड़-पड़ शब्द हो रहे हैं। द्वार, वातायन—सब बंद करके भी छुटकारा नहीं।

मूसलाधार वर्षा के साथ उपलवृष्टि नवीन बात है। कार्तिक में ही ये पत्थर पड़ने लगे ! 'यह क्या ! भवनों में जल भरने लगा ! उसका वेग बढ़ता ही जा रहा है ! यह देव-कोप है ! आज इन्द्र की पूजा नहीं हुई, वे क्रुद्ध हो गये हैं !' सबके मुखपर ये ही शब्द हैं। क्या होगा ? भय के कारण हृदयों में एक ही प्रश्न उठता है।

श्याम अपने सखाओं के साथ अभी तक भवन से बाहर नहीं गया है। मैया को इतने से ही संतोष है। वह बालकों के पास आ गयी और बाबा भी यह देखने वहीं आ पहुँचे कि श्रीकृष्ण-चन्द्र को कोई असुविधा तो नहीं, इस परिस्थिति में। भवन, सामग्री आदि की बात क्या श्याम के सम्मुख मन में आ सकती है।

बालकों का तो कौतुक हो गया है। वर्षा, विद्युत् का दृश्य देखते हैं। कभी कोई श्वेत हिम-खण्ड कक्ष में छिटक आता है तो सब उसे लेना चाहते हैं। सबने छोटे-छोटे हिम के टुकड़े मुख में रक्खे। मैया द्वार के सम्मुख इस प्रकार उन्हें रोककर न बैठी होती तो वे उसे खोलकर अवश्य जल में निकल जाते। उछलते, कूदते और हिम लूटते। वातायन तो श्याम के आग्रह से एक खुला रखना ही पड़ा है। सब उसीसे यह नवीन कौतुक देखने में लगे हैं। बाबा पास खड़े हैं कि कोई हाथ बाहर न निकाले !

× × × ×

देवराज को संतोष नहीं हो रहा है। 'व्रजमें एक भी वृक्ष नहीं गिरा, मरुद्गण ठीक काम करते तो ऐसा कैसे होता। अब तक इतने बड़े-बड़े हिमखण्डों की वृष्टि से भी कोई झोपड़ी नीचे टूटी नहीं ! ये मेघ भी उनका अपमान कर रहे हैं ! यह सब तो है; परंतु उनका बार-बार का वज्र-प्रहार क्यों परिणाम नहीं प्रकट करता ? प्रत्येक बार नन्दभवन को लक्ष्य करके ही तो वे वज्र चलाते हैं ? एक प्रबल आलोक—भयंकर गर्जन और फिर कुछ नहीं। क्यों प्रत्येक बार लक्ष्य-च्युत होता है और वज्र की विद्युत्-धारा यमुना-जल में जाकर शान्त हो जाती है !' क्षोभ से महेन्द्र सबको फट-कारते जा रहे हैं और झुँझलाहट ने उनके प्रयास को तीव्र कर दिया है।

यदि इस समय कहीं देवर्षि नारद आ जाते ! वे बड़ी सरलता से समझा देते—'सुरेश, व्रज-भूमि पर आपका यह कोप व्यर्थ है। वहाँ के तरु, भवन, जीव ऐसे नहीं जो आपके अंधड़ में टूट जायँ या इस जल में डूब जायँ ! वहाँ आपके ये हिम-उपल छोटी कंकड़ियाँ होकर गिर रहे हैं। वहाँ के तरु इस वायु में आनन्द से झूम रहे हैं और पक्षी स्नान कर रहे हैं। यदि वे स्वयं हिलने से

आनन्द न लें तो आपके मरुद्गण व्यर्थ हो जायँगे। आपका वज्र वहाँ किसी का एक पत्ता तोड़ने की शक्ति तो रखता ही नहीं। यह तो श्रीकृष्ण की कृपा है कि वज्र की अमोघता की रक्षा के लिये उसकी विद्युत्-धारा यमुना में जाकर शान्त होती है।'

देवेन्द्र यह सब समझ सकें, ऐसी मनःस्थिति उनकी नहीं है। वे तो देख लेना चाहते हैं कि कब तक ये व्रजवासी इस प्रकार बचे रहते हैं। उन्होंने देखा 'गायें गोष्ठ से निकल कर दौड़ पड़ीं। बछड़े, वृषभ, भैंसें, बकरियाँ—सब भागे जा रहे हैं! शीत के कारण गोष्ठ में रहना उनके लिये अशक्य हो गया! जल भरता जा रहा था वहाँ। सब काँप रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। नन्दभवन की ओर भागे जा रहे हैं।'

'ये पशु—ये अब बाहर आये!' सुरेन्द्र ने मेघों को ललकारा! 'ये अब लक्ष्य में हैं!' उन्होंने अपना वज्रधर दक्षिण हस्त वेग से चलाना प्रारम्भ किया।

'ये गोप, ये गोपियाँ! अब पता लगेगा इन्हें कि सुरपति के अपमान का क्या परिणाम होता है!' गोप और गोपियाँ नीचे वर्षा में भीगते भागे जा रहे हैं। माताओं ने छोटे बालकों को गोद में अपने शरीर से छिपा लिया है। ऊपर से पड़ते पत्थरों के आघात से बचाने के लिये उन शिशुओं के मस्तक पर अपने शरीर की छाया कर रक्खी है। सब काँप रहे हैं। सब भागे जा रहे हैं। घरों में जल भर गया है, वहाँ रहा नहीं जा सकता।

'अब इन्हें सुबुद्धि आयेगी! अब ये क्षमा माँगेंगे! अब संकल्प करेंगे यज्ञ करने का!' इन्द्र की आशा एक ने भी सफल नहीं की। एक ने भी ऊपर दृष्टि करके कातर नेत्रों से कहा होता—'क्षमा करो, देवाधिराज!' तो कदाचित् वे क्षमा कर देते; पर यहाँ तो बकरियाँ तक ऊपर मुख नहीं कर रही हैं। सभी नन्दभवन जा रहे हैं। सभी एक ही रट लगाये हैं—'श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण!'

'श्रीकृष्ण! देखता हूँ वह लड़का क्या कर लेता है।' देवराज का रोष व्यर्थ गया। खुले आकाश में भागते हुए एक भी पशु को बहते, आहत होते या एक भी बालक लिये माता को फिसलते देखने में उनके सहस्र नेत्र समर्थ नहीं हो सके।

'बाँ-बाँ, म्याँ-म्याँ' पुकारते-चिल्लाते पशु नन्दभवन में प्रविष्ट हो गये। उनका रोम-रोम खड़ा हो गया है। थर-थर काँप रहे हैं वे। मैया ने झट से द्वार खोल दिया। सखाओं ने पटुकों से उनको पोंछना प्रारम्भ किया। पशुओं के पीछे ही गोप और गोपियों का दल आने लगा। कितने लोग उस कक्ष में आ सकेंगे? दूर, दूर, जहाँ तक सम्मुख मार्ग पर दृष्टि जाती है, सब पशु और मनुष्य भागे आ रहे हैं। किसी को रोका नहीं जा सकता। कक्ष में स्थान कहाँ से बनता जा रहा है—पता नहीं; पर सब भीतर आ जाते हैं। नन्दग्राम पूरा और तनिक देर में बरसाने को भी यहीं आना है।

'श्रीकृष्ण! देवराज इन्द्र तो रुष्ट हो गये। उनका यज्ञ नहीं हुआ! वे अब हम लोगों को नष्ट कर देने के लिये ऐसी वर्षा कर रहे हैं। अब कोई उपाय कर! व्रज को इस विपत्ति से तू ही बचा सकता है!' एक ही पुकार है मनुष्यों की वाणी में और सम्भवतः पशु भी यही कह रहे हैं। उनके नेत्र भी श्याम की ओर ही लगे हैं।

'सुबल, देख तो! कितनी भयंकर वर्षा है!' कन्हैया ने द्वार के समीप पहुँचकर बाहर देखा। 'इस उपलवृष्टि से सब बिचारे पशु-पक्षी मनुष्य कष्ट पा रहे हैं!'

'कितनी आँधी चल रही है!' विद्युत् के प्रकाश में ही देखकर दाऊ ने कहा 'इन्द्र अपना यज्ञ नष्ट होने से क्रोधित हो गये हैं!'

'भैया, इस घमंडी इन्द्र को ठीक कर दे न!' भद्र ने कन्हैया का हाथ दबाया। वह जानता ही नहीं कि इन्द्र कौन है, कहाँ रहता है। कोई देवताओं का राजा है—सुन लिया है। कोई हो, उसका कनूँ अवश्य उसे ठीक कर सकता है।

'इन्द्र देवता हैं! वे सारे लोकों के स्वामी हैं!' मणिभद्र ने जो अपनी माता से सुना है, सुना दिया।

'तभी तो वह इतना घमंडी हो गया है!' जो व्रज को इस प्रकार सताये, भद्र की दृष्टि में वह भला नहीं हो सकता।

'हूँ !' कन्हैया ने भद्र के मुख की ओर देखकर द्वार से बाहर ऊपर देखा। गम्भीर हो गया एक क्षण को।

'अरे! तू द्वार के पास कब से खड़ा है। इतनी तीव्र वायु है, जल की बूँदें भीतर आ रही हैं। भीग रहा है। सर्दी लग जायगी। चलो, सब हटो भीतर!' मैया आनेवालों की व्यवस्था में एक ओर चली गयी थी। उन्होंने दूसरी ओर से देखा कि श्याम बालकों के आगे द्वार पर ही खड़ा है। वे वहीं से पुकारती आगे बढ़ीं। पशुओं और मनुष्यों से भरे कक्ष में द्वार तक आने में कुछ क्षण तो लगेंगे ही!

'हमने गिरिराज गोवर्धन की पूजा की है। व्रज के वे ही देवता हैं! वे ही हमारी रक्षा करेंगे। चलो! चलो आओ उनके समीप!' श्यामसुन्दर ने माता की बात सुनी ही नहीं। उसने उच्चस्वर से पुकार कर कहा और द्वार से बाहर निकल गया। 'अरे ऐसे मत आओ! अपने-अपने घरों को जाओ। छकड़े जोतो! सब वस्तुएँ लाद लो और आओ! शीघ्रता करो!' सखा उसके साथ ही बाहर निकल गये। अब वे वर्षा में स्नान का आनन्द लेंगे।

'यह अङ्गों से भीगकर चिपका पीताम्बर, आर्द्र अलक-जाल, झलमलाते कुण्डल, वक्ष पर हिलती वनमाला, यह श्रीकृष्ण!' देवराज विद्युत्-प्रकाश में देख रहे हैं। सखाओं से घिरे कृष्णचन्द्र खुली वर्षा में आ गये हैं। भला, उनके कक्ष से बाहर आने पर पशु कक्ष में रह सकते हैं; सब उनके साथ हैं। देवेन्द्र के लिये इससे अधिक सुयोग कब होगा। वर्षा में प्रबलता आयी, उपलवृष्टि द्विगुणित हुई और वज्रपात क्षण में अनेक आवृत्ति करने लगा। वायु का वेग प्रचण्ड से प्रचण्डतर हो गया। 'हो क्या रहा है? क्यों नीचे बालक, पशु, व्रजवासी अब चिल्लाते तक नहीं। नीचे उपलवृष्टि पहुँच ही नहीं रही है। सब ऊपर ही गल जाते हैं। विद्युत् केवल प्रकाश दे रही है।' सुरेश का श्रम थकित नहीं हो रहा है, इतने पर भी।

'श्याम तो बाहर भाग गया!' मैया ने देखा वे भूल गयीं कि कहाँ हैं, क्या कर रही हैं। दौड़ीं वे। 'वह जा रहा है श्याम—वर्षा में उसे सर्दी लगेगी। पकड़ ही लेना है उसे।' मैया को यह भी स्मरण नहीं कि स्वयं वे भी जल में दौड़ रही हैं, उनपर भी वर्षा हो रही है। श्याम ने क्या कहा, किसी को स्मरण नहीं। वह वर्षा में बाहर भागा—सब मैया के पीछे उसे पकड़ने दौड़ पड़े। कन्हैया—वह किसी ओर देख नहीं रहा है। वह तो सीधे गिरिराज की ओर जा रहा है। जब कन्हैया इस वर्षा में चला जा रहा है, तब किसी को घर में रहना कैसे अच्छा लगे। सखा साथ ही हैं। नन्दभवन से, मार्ग से, जिसकी जहाँ से दृष्टि गयी, सब श्यामसुन्दर की ओर ही दौड़ पड़े। आज यह नटखट इस जलमयी भूमि में छपाछप करता सबकी अपेक्षा तीव्रगति से भागा जा रहा है।

'यह लो, रक्षा का प्रबन्ध हो गया!' सबने तो देखा भी नहीं कि हुआ क्या। साथ-साथ दौड़ते सखाओं ने देखा कि श्याम तनिक झुका। उसने गिरिराज के पद-प्रान्त की भूमि में वाम हस्त लगाया और पूरा पर्वत उठता ऊपर चला गया। जैसे कोई छत्रक उखाड़कर ऊपर उठा लिया हो उसने। श्याम के वाम हस्त की कनिष्ठिका पर गिरिराज छत्र के समान संतुलित हो गये।

'मैया, मैं भीग गया हूँ! मेरे वस्त्र भी तो ला!' मुस्कराते हुए उस नटखट ने माता को लौटने पर बाध्य किया—'मुझे क्षुधा भी तो यहाँ लगेगी!' मैया अभी ही किसी प्रकार पहुँची हैं। श्याम पता नहीं वर्षा में कहाँ भागा जा रहा है। उसे पकड़कर लौटाना ही चाहिये!' वे पूरे वेग से दौड़ी आयी हैं। किसी दासी को कहने की बात ही मनमें नहीं आयी! अब यहाँ सचमुच वस्त्र तो चाहिये। इस अंधड़-पानी में फिर नन्दभवन तक श्रीकृष्ण जाय, यह तो ठीक नहीं। उनके गये बिना सब वस्त्र कैसे आयेंगे। वही तो जानती हैं कि पद्मगन्धा कपिला का नवनीत किस छोटे मटके में है। श्याम दूसरा नवनीत तो छूता ही नहीं।

'बाबा, सब लोगों को कहो कि जिसको जहाँ सुविधा हो, गिरिराज के नीचे वहीं आनन्द से आ विराजें! कोई बाहर न रहे!' श्रीकृष्ण के स्वर में गम्भीरता है।

'अरे, डरो मत! ये गिरिराज हैं! मेरे हाथ से गिरना तो दूर, वे हिलेंगे तक नहीं!'

सखाओं ने इधर-उधर लकुट के टेक लगाने प्रारम्भ कर दिये हैं। अकेला कन्हैया इतना बड़ा पर्वत उठाये रहे, यह वे कैसे चुपचाप देखते रहें।

'देखो मत ! सब लोग इसके नीचे आ जाओ ! कोई वस्तु बाहर या घरों में छोड़ो मत ! भय की कोई बात नहीं ! सबको बता दो ! जाओ, सब गृहसामग्री छकड़ों में भर ले आओ ! सब स्त्री-पुरुष, बालक इसी के नीचे आ जाओ ! जिनके पशु न आये हों, उनके पशुओं को भी हाँक लाओ। सेवकों को भी साथ ले लो ! घरों में किसी को मत छोड़ो ! कुछ मत छोड़ो ! यहाँ स्थान का अभाव नहीं है !' कृष्णचन्द्र ने गोपों को आग्रहपूर्वक लौटाया। पशु पहले ही साथ आ गये हैं। छकड़े भरे हुए कुछ ही देर में आने लगे।

× × × ×

'ये सब तो पर्वत के नीचे जा छिपे ! कोई चिन्ता नहीं। पर्वत के सहित इनको बहा दो !' देवराज सोचते हैं कि जो मेघ सम्पूर्ण जगत् को प्रवाहित कर सकते हैं, वे इस टीले-जैसे पर्वत को नहीं बहा देंगे। उनका वज्र भी तो है। इसी वज्र से तो पर्वतों के पक्ष काटे हैं उन्होंने। इस पर्वत को तो आज वे चूर-चूर करके कंकड़ियाँ बना देंगे।

देवराज यह नहीं सोच पाते कि जब गोप और गोपियाँ तथा गायें घरों से नन्दभवन को भागीं, तब वे कुछ न कर सके। जब श्रीकृष्ण सखाओं तथा व्रजवासियों को लेकर गिरिराज तक आ रहे थे, तब वे कुछ न बिगाड़ सके। जब गिरिराज के पास से गोप घरों को लौटे, तब भी कुछ नहीं किया जा सका और जब इस जलमयी भूमि में, जहाँ सब ऊँचे-नीचे स्थल डूब गये हैं, शतशः छकड़े लदे हुए छपाछप करते पाँत-के-पाँत गिरिराज के नीचे जा रहे थे, तब भी उनमें से एक वस्त्र-खण्ड तक बहाया नहीं जा सका। खुले आकाश के नीचे इस प्रकार बार-बार उन्हें कृष्णचन्द्र ने चुनौती दी और अब तो सारा व्रज गोवर्धन के नीचे पहुँच चुका।

देवराज देखते हैं कि वर्षा की धारा गिरिराज से नीचे नहीं गिर रही है। तपे तवे पर बिन्दु की भाँति जल पड़ता है और बाष्प बन जाता है। वायुदेव समस्त वर्षा को महेन्द्र की प्रेरणा से गोवर्धन पर ही केन्द्रीभूत कर चुके हैं; परंतु वहाँ से तो गिरिधातुएँ तक प्रवाहित नहीं होतीं।

जल-बाष्प और फिर जल—यह क्रम चले तो यह वर्षा कभी समाप्त ही नहीं होगी; लेकिन गोवर्धन पर यह सहस्र-सहस्र सूर्यों-सा प्रदीप्त तेजोमण्डल कहाँ से आ गया। उसपर जो जल गिरता है, वह तो बाष्प भी नहीं बनता। उस तेजोमण्डल के मध्य में कोई है। अवश्य कोई जटाएँ फैलाये खड़ा है। उसको जटाओं में ही अधिकांश जल लुप्त होता जा रहा है। बहुत-सा वह तेजस्-चक्र पी जाता है और जो गिरिराज पर पड़ता है, वह तत्काल बाष्प बन जाता है।

योगमाया के आवरण ने सहस्राक्ष को भी पहचानने नहीं दिया कि नीचे भगवान् का सहस्रार चक्र घूम रहा है और उसकी आणि पर जटा फैलाये स्वयं भगवान् विश्वनाथ अवस्थित हैं। उन गङ्गाधर की जटाओं में प्रलयघनों का सम्पूर्ण जल एक बिन्दु के समान समा जायगा। उन महाप्रलय के अधिष्ठाता की इच्छा के बिना कोई एक तृण का नाश नहीं कर सकता। आज—आज तो इस समय इस पर्वत को उठाये उनका आराध्य खड़ा है। कैसे सम्भव है कि गिरि का एक कण भी प्रवाहित हो जाय।

× × × ×

'कनूँ, कितनी देर हो गयी ! तू थक गया होगा। यह पर्वत थोड़ी देर श्रीदाम को सम्हला दे ! तू तनिक विश्राम तो कर ले !' भद्र देखता है अपने सखा के वामहस्त की वह छोटी सी अँगुली। कोमल, पतली अँगुली। उसका अग्रभाग अवश्य कुछ अधिक अरुण लग रहा है उसे। यह कन्हैया बड़ा हठी है। यह किसी की बात मानता ही नहीं। 'अच्छा, तू पर्वत अपने दाहिने हाथ पर ले ले ! ला, मैं तेरा बायाँ हाथ दबा तो दूँ !'

कोई चरण दबा रहा है और कोई व्यजन करने में लगा है। छकड़े ज्यों-के-त्यों खड़े हैं। सामग्री सम्हालने का किसी को स्मरण नहीं। गोपों ने अपनी-अपनी लाठियाँ पर्वत से लगा ली हैं।

अपनी समझ से पूरे बल से वे पर्वत को रोके हैं। गोपियाँ, सखा, पशु—सब श्याम को घेरे खड़े हैं। श्यामसुन्दर की ओर ही देख रहे हैं।

'ला, मैं उठाये रहूँगा गिरिराज को ! तू सुस्ता ले !' भद्र को लगता है कि कन्हैया थक गया है, परंतु हठ वश मानता नहीं। 'किसी को नहीं देना है तो दाऊ भैया को ही दे दे !' बात तो ठीक है। दूसरे चाहे उठा न सकें पर दाऊ तो उठा ही सकते हैं। श्याम भी इसे कैसे अस्वीकार कर दे। जो निखिल लोकों को अणु के समान सम्हाले रहता है, वह एक पर्वतखण्ड नहीं ले सकेगा ?

'पहले मेरी वंशी दे मुझे !' श्यामसुन्दर ने देखा कि भद्र के साथ दूसरों का आग्रह भी बढ़ता जा रहा है। जब एक घड़ी भी नहीं हुई और यह दशा है तो अभी तो कई दिन लगेंगे। कौन उसे इस प्रकार खड़ा रहने देगा। वह पर्वत उठाये खड़ा रहे, इससे तो व्रजवासी वर्षा में भी भीगना ही पसंद करेंगे। कोई उपाय चाहिये सबको दूसरी ओर भुलाये रखने का। मैया ने आते ही उसके वस्त्र बदल दिये हैं। वह कभी मुख में माखन देती है, कभी मिष्टान्न। उसकी आतुरता भी बढ़ती जा रही है। इन सबमें मुरली ही एक व्यवस्था रख सकती है।

'तू पर्वत दाऊ को दे दे और फिर मुरली बजा !' भद्र ने मैया के हाथों से मुरली ले ली।

'तू दे भी ! पहले दे !' कन्हैया मानता नहीं और इस समय उसकी हठ रक्खे बिना वह पर्वत किसी को देगा नहीं। भद्र को वंशी देनी पड़ी। श्याम ने आज एक हाथ से मुरली-वादन प्रारम्भ किया। दक्षिण हस्त की अँगुलियाँ छिद्रों पर थिरकने लगीं। एक अङ्गुष्ठ वंशी को सम्हाले रहा।

बाहर घोर अन्धकार है। न दिन का पता लगता और न रात्रि का। विद्युत् का प्रकाश होता होगा; परंतु उधर किसी का ध्यान ही नहीं है। सब एकटक श्यामसुन्दर के मुख की ओर देख रहे हैं। छोटा-सा कन्हैया, उसका नन्हा-सा हाथ, वह कुछ लंबा नहीं हो गया है। इतने पर भी पर्वत इतने ऊँचे कैसे उठा है कि उसके नीचे छकड़े, वृषभ और गोप खड़े हैं—जैसे यह बात किसी को स्मरण नहीं आयी; वैसे ही किसी को यह भी स्मरण नहीं हुआ कि कितना समय व्यतीत हो रहा है। क्षुधा-पिपासा-निद्रा आदि की क्या चर्चा, किसी को शरीर का ही पता नहीं है। श्यामसुन्दर सम्मुख है। उसकी मुरली से अमृतवृष्टि हो रही है ! सब के प्राण कर्ण और नेत्रों में आ गये हैं। मूर्ति की भाँति सब खड़े या बैठे हैं। निश्चल—निष्कम्प मूर्ति के समान।

× × × ×

'बाबा, वर्षा बंद हो गयी ! देखो न, कैसी धूप निकली है ! आकाश स्वच्छ हो गया दीखता है। बाहर तनिक भी जल नहीं है। यमुनाजी अवश्य उतर गयी हैं। अब सब लोग निर्भय होकर यहाँ से निकलें !' कन्हैया ने मुरली अधरों से हटायी। सब सावधान हुए। बालक पहले ही बाहर निकल आये और देखकर वे लौटे श्याम की बात का समर्थन करने।

अब गोपों ने छकड़ों की ओर देखा। बैल फिर से जोड़ गये। बालक, वृद्ध, युवक, स्त्रिया, पशु, छकड़े—सब वहाँ से निकले धीरे-धीरे। श्यामसुन्दर पता नहीं कब से पर्वत उठाये है; उसे जितनी शीघ्र विश्राम मिले, उतना अच्छा। वह हठ किये है कि सब से पीछे निकलेगा। जितनी शीघ्रता सम्भव है, की जा रही है। एक बार सब सामग्री पर्वत के नीचे से बाहर कर देनी है।

सब निकल आये ! सम्पूर्ण सामग्री बाहर आ गयी। कन्हैया ने मस्तक बाहर किया, हाथ झुकाया—जैसे गिरिराज स्वयं उसके हाथसे उतरकर अपने स्थान पर बैठ गये हों। सब लोग यह दृश्य देख रहे हैं। कन्हैया जैसे ही खड़ा हुआ, मैया ने उसे अङ्क में ले लिया। पता नहीं कैसे यह सम्भव हुआ; पर हुआ ऐसा ही कि बाबा ने, दाऊ ने, सखाओं ने, सभी गोपों ने उसे हृदय से लगाया। सबके नेत्रों से प्रेमाश्रु झरने लगे। गोपियों ने उसे दधि मलकर स्नान कराया। उसका श्रम दूर होना चाहिये न। विप्रों ने स्वस्ति-पाठ के साथ अक्षत डाले उस पर। सब उसे आशीर्वाद दे रहे हैं, प्रशंसा कर रहे हैं।

यह आकाश—अब वहाँ वर्षाघोष के स्थान पर दुन्दुभियाँ बज रही हैं। उपल के बदले वहाँ से पुष्प-वर्षा हो रही है। श्यामसुन्दर ग्राम की ओर चला। सब सखाओं ने, पशुओं ने उसे

घेर रक्खा है। मैया शीघ्रता में है कि कम-से-कम एक छकड़ा तो श्याम के पहुचने से पूर्व भवन पहुच जाय। कन्हैया भूखा है। उसे भोजन करना है। थका है—विश्राम करना है। भवन में तो कुछ छोड़ा नहीं गया और जो रह गया, वह वर्षा से उपयोग के योग्य ही न होगा।

गोप और गोपियाँ ग्राम में लौटे। श्यामसुन्दर को छोड़कर घर कौन जाय। गोपों ने अपने छकड़े अपने घरों के द्वार पर छोड़ दिये और बैलों के पीछे स्वयं भी नन्दभवन की ओर भागे। उन्होंने देख लिया कि वर्षा का केवल इतना प्रभाव पड़ा है कि भूमि और गृह धुल कर स्वच्छ हो गये हैं, कहीं तनिक भी हानि का चिह्न नहीं है।

× × × ×

'देवराज हमें क्षमा करें!' सांवर्तक-गण मुख लटकाये खड़े हो गये थे। उनका वर्ण श्वेत हो गया था। 'हमारे समीप एक बिन्दु जल शेष नहीं!'

'सुरपति, अवज्ञा क्षमा हो! हम थककर चूर हो चुके हैं!' उन्चासों मरुद्गण एक पंक्ति में नीचे मुख किये खड़े थे।

'अच्छा, लौटो!' देवेन्द्र देख रहे थे कि उनकी अमृतस्यन्दिनी भुजा पीड़ा करने लगी है। अब, एक बार भी वज्र इस समय चलाया नहीं जा सकता।

'नीचे पृथ्वी पर कहीं जलप्लावन के चिह्न नहीं हैं!' आश्चर्य से सहस्राक्ष धरा को और उसमें भी व्रज को देख रहे थे। उनका संकल्प नष्ट हो गया था। 'व्रज के किसी भवन में इतना जल नहीं गया कि कोई वस्तु आर्द्र हुई हो! भवन धुल भर गये हैं!'

'यमुना में जल का कोई पूर नहीं!' वे गम्भीर हुए। 'मैं लोकपाल हूँ और वह भी पर्जन्य-रूप! यहाँ प्रलय-मेघ भी जलशून्य हो गये। जल समुद्र में गया होता तो सूर्य उसे अपनी किरणों द्वारा मेरे पास पहुँचा ही देते; परंतु वह तो मूलतः लुप्त हो गया। जल ही नहीं रहा मेरे पास तो मेरा मेघाधिपतित्व कैसा!' देवराज का गर्व क्षीण हो गया।

'जल के बिना लोक का पालन कैसे होगा?' सुरेन्द्र की चिन्ता वस्तुतः अपने लिये ही थी। 'लोक में तो श्रीकृष्ण हैं न! भगवान् ऋषभ ने भी तो मेरे रुष्ट होकर वर्षा न करने पर योगबल से वृष्टि कर ली थी। जो जल का लोप कर सकता है, वह जल प्रकट भी कर लेगा! मैं—मैं अब किस बात का इन्द्र हूँ।' सुरपति ने देखा कि उनकी शक्ति का आधार ही छीन लिया गया।

'जल का हुआ क्या? पदार्थ का निरोभाव तो होता है; पर यहाँ तो जल का अस्तित्व ही नहीं दीखता। अस्तित्व का नाश तो नहीं होना चाहिये!' स्मरण आया कि गोवर्धन पर एक ज्योतिर्मय चक्र था और उसके मध्य में कोई जटाधारी महामूर्ति।

'भगवान् का चक्र और ये भगवान् शशाङ्कशेखर!' महेन्द्र ने देखा, अब भी गोवर्धन पर सुदर्शन चक्र के मध्य आशुतोष आसीन हैं। अवश्य ही दोनों ने अपना स्वरूप अब सूक्ष्म बना लिया है। 'मेरे द्वारा यह किसका अपमान हो गया? उनका जो परात्पर परम प्रभु हैं!' महेन्द्र का पश्चात्ताप सीमा से परे था। गोप पर्वत से निकल रहे थे। श्याम ने पर्वत अपने स्थान पर रख दिया। सब लोग नन्दभवन आये; पर महेन्द्र अमरावती नहीं लौट सके। इतना बड़ा अपराध करके भी प्रभु के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने का अवकाश नहीं मिल रहा है। स्वजनों के मध्य में इस समय प्रभु हैं। इस समय उनके प्रियजनों के अनुराग में बाधा पड़ने पर वे और भी असंतुष्ट होंगे। महेन्द्र को क्षमा चाहिये। क्षमासिन्धु प्रभु क्षमा तो कर ही देंगे; परन्तु एकान्त मिले तब तो क्षमा माँगी जाय।

इतनी बड़ी विपत्ति टल गयी; अतएव ब्राह्मणों को गोदान तो करना ही चाहिये। बाबा ने महर्षि शाण्डिल्य को दान देना चाहा। महर्षि ने दान के संकल्प में ज्यों ही कार्तिक शुक्लाअष्टमी पढ़ा, सब लोग चौंक पड़े। प्रतिपदा को सायंकाल वर्षा प्रारम्भ हुई थी, जब वे गोवर्धन पूजन करके लौटे थे। तब क्या सात दिन वे पर्वत के नीचे ही रहे? महर्षि तो यही कह रहे हैं।

'श्रीकृष्ण ने सात दिन-रात्रि गोवर्धन को एक अँगुली पर धारण कर रक्खा! हम सब उसकी मुरलीध्वनि में ऐसे मग्न थे कि कुछ क्षणों के समान यह समय व्यतीत हो गया। कैसे हो गया यह? इतना बड़ा पर्वत और सात वर्ष का कोमल कन्हैया!' एक गोप अपने आश्चर्य को रोक नहीं सका।

'इस कृष्ण में अद्भुत चमत्कार जन्म से ही हैं! उसने उतनी भयंकर राक्षसी पूतना तब मार दी, जब वह उत्पन्न ही हुआ था। ठीक से पलकें भी नहीं गिरा पाता था।' दूसरे ने शङ्का को बल दिया।

शकट-भञ्जन, तृणावर्त-वध, अर्जुनवृक्ष-पातन, बक और वत्स का संहार, धेनुक-वध, प्रलम्ब-मृत्यु, दावाग्निपान, कालिय-मर्दन—यह सब चरित फिर तो स्मरण किये गये। जो कर्म दाऊ ने किये हैं, वे भी मान लिये गये कि इसी श्रीकृष्ण ने कराये हैं। संदेह बढ़ता ही गया।

'व्रजेन्द्र, हम सबका आपके इस पुत्र में अपार स्नेह है! ऐसा स्नेह भी स्वाभाविक नहीं है!' एक ने एक अद्भुत शङ्का उठायी।

'व्रजेन्द्र, ये अद्भुत कर्म तो किसी देवता में ही हो सकते हैं; पर कोई देवता हम ग्रामीण गोपों के मध्य में कैसे अवतीर्ण होना चाहेगा! कन्हैया के कर्म मनुष्यों के समान नहीं हैं। आप के इस पुत्र के सम्बन्ध में हम सबों को बड़ा संदेह हो रहा है। यह कौन है?' एक वृद्ध गोप ने शङ्का को पूरा स्वरूप दिया।

'भाई, आप लोग मेरी बात तो सुनिये! इस मेरे नन्हे-से कृष्णचन्द्र पर आप सबको शङ्का करने का कोई कारण नहीं है। महर्षि गर्ग जब गोकुल में आये थे, तब उन्होंने इसके सम्बन्ध में जो बताया था, वह सुनकर आप सबका समाधान हो जायगा!' बाबा ने सबको आश्वासन दिया। सब लोग इस प्रकार श्यामसुन्दर को संदेह की दृष्टि से देखें तो कैसे निर्वाह होगा।

'महर्षि गर्गाचार्य त्रिकालज्ञ हैं! उन्होंने कहा था कि इस कृष्णचन्द्र के बहुत-से नाम हैं। यह पहिले अनेक बार जन्म ले चुका है। इसके सब नाम और गुण वे आचार्य ही जानते हैं। उन्होंने ऐसा ही कहा। मुझे तो इतना ही बताया कि इसके द्वारा समस्त गौओं और गोकुल का कल्याण होगा। इसके द्वारा सम्पूर्ण विपत्तियों से हम लोग पार हो जायँगे। सदा से यह दस्युओं से सज्जनों की रक्षा करता आया है। इसमें नारायण के समान गुण हैं। इसके कार्यों पर आश्चर्य नहीं करना चाहिये। महर्षि के इन वचनों के साथ आप देखते ही हैं कि हमारे इष्टदेव भगवान् नारायण की इस पर कृपा है और कभी-कभी उन्हीं की शक्ति का इसमें आवेश हो जाता है।' बाबा ने जैसा समाधान अपना किया है, वैसा ही तो दूसरों का भी करेंगे।

'व्रजेन्द्र, तुम धन्य हो!' गोपों ने बाबा को प्रणाम किया। भला, जिसमें श्रीनारायण की शक्ति प्रकट हो, वह क्या साधारण बालक है? ऐसा बालक क्या सामान्य पुण्य से प्राप्त होता है? गोपों ने मान लिया कि व्रजेश कोई बहुत बड़े महापुरुष हैं उस जन्म के।

'हम सब सात दिनों से भूखे हैं!' बाबा स्मरण न दिलाते तो सब भूल ही गये हैं कि पिछले सात दिन जो उन्हें कुछ क्षण-से लगे हैं, बिना खाये-पीये ही बीते हैं। यहाँ आकर दान और ब्राह्मणों के सत्कार के पश्चात् यह शङ्का-समाधान चल पड़ा।

'आज तो सब साथ ही बैठकर भोजन करेंगे!' बाबा को अभी-अभी सेविका सूचित कर गयी है कि मैया ने समस्त गोकुल के भोजन की आज यहीं व्यवस्था की है। सायंकाल तो हो चुका और अभी सबके घरों का सामान छकड़ों पर पड़ा है। कन्हैया के साथ बालकों के भोजन से ही क्या हुआ। घर जाकर भोजन बनाने में कितना कष्ट होगा गोपियों को अब। यहाँ से हटने की इच्छा भी तो नहीं होती। गोकुल के गृह तो अब भोजनोपरान्त ही जनपूर्ण होंगे।

—❀⊂❀⊃❀—

गोविन्द

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वञ्जगदीश ! मानिनाम् ॥

—भागवत १०।२७।६

'श्रीकृष्णचन्द्र मुझे कैसे क्षमा करेंगे ! मेरे द्वारा उनके स्वजनों को क्लेश हुआ है ! मैंने व्रज को ही नष्ट करने का प्रयत्न किया ! मेरे अपराध का परिमाजेन कहाँ है !' सुरेन्द्र को साहस नहीं हो रहा है कि वे श्यामसुन्दर से क्षमा भी माँगें।

'मैं कैसे उन सर्वेश्वर के सम्मुख उपस्थित होऊँ !' इस व्रजलीला में इसके लिये भी अवकाश नहीं कि गोपों के ही चरणों में गिरकर क्षमा माँगी जाय। उनका देवत्व ही आज भार बन गया है।

'पितामह ब्रह्मा ! देवगुरु बृहस्पतिजी ! भगवान् आशुतोष !' इन्द्र का चित्त किसी के स्मरण से आश्वासन नहीं पाता। भला, श्रीकृष्णचन्द्र के अपराधी को कौन अपने यहाँ प्रवेश करने देगा। देवराज को विश्वास है कि यदि वे अमरावती लौटे तो देवता उसी प्रकार उन्हें नीचे फेंक देंगे, जैसे किसी दिन त्रिशङ्कु फेंका गया था। इतने से भी प्रायश्चित्त हो जाता तो इसे भी वे स्वीकार कर लेते; परंतु अपने अपराध का तो अन्त ही दिखायी नहीं पड़ता उन्हें। भूमि पर तो दो दिन व्यतीत हो गये; परंतु देवराज की तो एक घटिका भी पूर्ण नहीं हुई है। देवताओं का दिन तो मानव के ६ महीनों के बराबर है। देवराज असमंजस में पड़े व्याकुल हो रहे हैं।

'मातः, रक्षा करो !' महेन्द्र ने देखा सुदूर नभ से एक अमित तेजोमूर्ति अवतरित हो रही है। वहाँ—वहाँ से जहाँ उनकी दिव्य दृष्टि भी नहीं पहुँचती। कदाचित् पितामह के लोक से भी ऊपर से। एक बार वे भय से सिहरे—स्वयं योगमाया उन्हें दण्ड देने तो नहीं पधार रहीं हैं। 'प्रकाश स्निग्ध है, शीतल है, सहस्र-सहस्र चन्द्रों की ज्योत्स्ना से धवलसुधास्यन्दी है ! उग्रता के चिह्न तक नहीं उसमें !' कानों में घंटियों के स्वर में नादात्मक प्रणवध्वनि आयी। आकृति स्पष्ट हुई—स्पष्ट होती गयी ! सुरेश ने पहले कभी दर्शन नहीं किया है; परंतु देवगुरु के भावक्षुब्ध कण्ठ से इस मूर्ति का ध्यान सुना है। ये गोलोक की कामधेनु पधार रही हैं। देवलोक की कामधेनु इनकी ज्योति के अंश मात्र से प्रकट हुई हैं। इन्द्र ने वहीं दण्ड की भाँति गिरकर प्रणिपात किया।

'अभय हो, ओ वत्स ! गोपाल तुम पर अनुकूल हो !' माता का भंडार भी क्या कभी अवरुद्ध रहता है। पुत्र को क्या माता से भी क्षमा माँगनी पड़ती है। गौ तो स्वयं क्षमामूर्ति हैं। क्या कभी गौ माता भी किसी के क्रूरतम अपराध को भी हृदय में रखती हैं। जब पृथ्वी पर गौ माता की उदारता प्रत्यक्ष है, तब ये तो गोलोक की अधीश्वरी, जगज्जनन गायों की परमाधिदेवी हैं। स्नेह, वात्सल्य के अतिरिक्त वहाँ और कुछ है ही नहीं।

'माँ, विश्वास हो गया कि गोपाल मुझे क्षमा कर देंगे !' जिसे गोलोक की कामदा ने अपने अनुग्रह से पवित्र कर दिया, उससे गोपाल रुष्ट कैसे रह सकते हैं। उसने कितना बड़ा अपराध किया है, इसका प्रश्न कहाँ रहता है। इन्द्र ने तो गायों और गोपों का ही अपराध किया है न ! अब तो उन्हें गोकुल की आदि माता का आशीर्वाद प्राप्त हो चुका। क्षमा तो उन्हें मिल गयी। गोपाल के क्षमा करने की बात अब रही ही कहाँ।

'तुम श्रीकृष्ण से भी डरते हो ! आओ मेरे साथ !' सुरभि के स्वरों में माता का स्नेह है। एक हल्की झिड़की भी—श्रीकृष्ण भी क्या भय के योग्य हैं। वे तो रुष्ट होना जानते ही नहीं। उनसे भयभीत होने का क्या अर्थ ! वे तो स्नेह करने के लिये ही हैं।

'वे बैठे हैं गोपाल, जाओ ! मिल लो !' कामधेनु तनिक पीछे ही रुक गई। महेन्द्र अभी उनके लिये तो बालक ही हैं। उनके जाने पर गोपाल उनके सत्कार में लग जायँगे। इन्द्र का अपनी बात कहने का अवसर मिलना चाहिये। तब तक अपनी संतानों से भी उन्हें मिल लेना है। ये गायें, ये वृषभ, ये बछड़े—सब ऊपर मुख किये उन्हीं की ओर तो देख रहे हैं। उनका वात्सल्य भी सबको चाटने को उत्सुक बना रहा है।

'माँ !' इन्द्र ने पीछे मुड़कर देखा। कामदा के नेत्रों ने ही संकेत किया—'डरो मत ! जाओ तो !' अभिवादन किया उन्होंने पुनः उन पावन चरणों में।

× × × ×

सखा मध्याह्न में विश्राम कर रहे हैं। कोई कहीं लेटा है और कोई पुष्पचयन कर रहा है। कोई गिरिधातुएँ उठाने गया है और कोई गुञ्जा या मयूर-पिच्छ लेने। सब शृङ्गार के वन्यसाधन एकत्र कर लेंगे, तभी तो श्याम को और परस्पर भी एक दूसरे को सजायेंगे। कन्हैया एक कुञ्ज में सबसे पृथक् आया। वह भी कुछ संग्रह करने ही आया होगा। ऊपर दृष्टि गयी। कोई सुपरिचित स्वर कानों में पड़ रहा है। शीघ्रता से उसने लतिकासुमनगुच्छ तोड़े और समीप की शिला पर एक पत्र पर रख दिये। वह किसके लिये इतने आदर से पुष्प-चयन कर रहा है ? पुष्पों को रखकर वह शिला पर बैठ गया। इस प्रकार ऊपर मुख करके जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो !

'प्रभो !' जैसे आकाश से तीर की भाँति कोई तेज गिर पड़ा हो। इन्द्र पृथ्वी पर पड़े हैं दण्ड की भाँति और उनका सूर्य के समान तेजोमय रत्नजटित किरीट व्रज की धूलि से पवित्र हो गया है। अपने फैले हुए दोनों हाथों से वे श्याम के चरणाग्र का स्पर्श कर रहे हैं !

'देवराज !' कन्हैया न उठा, न झिझका। जैसे उसे सदा इस प्रकार के लोगों से प्रणिपात पाने का अभ्यास है। उसका स्वर भी गम्भीर ही बना रहा।

इन्द्र कुछ क्षण पड़े रहे उसी प्रकार। फिर धीरे से उठे। घुटनों के बल बैठकर उन्होंने अपने किरीट से श्रीकृष्ण के चरणाग्र का स्पर्श किया। हाथ जोड़कर सम्मुख खड़े हो गये। लज्जा से उनका मुख नीचे झुका हुआ है। श्रीकृष्णचन्द्र की ओर दृष्टि उठाने का साहस नहीं हो रहा है। देवेन्द्र ने देख लिया कि प्रभु इस प्रकार देख रहे हैं, जैसे उनके नेत्र कहते हों—'तुमने किया, वह बड़ा अच्छा किया। गोकुल की अधिदेवी माता कामदा ने तुम्हें क्षमा कर ही दिया; अतः मुझे तो कुछ कहना है नहीं। अब यहाँ क्यों आये हो ? क्या इच्छा है अब ? आप तो देवाधिपति हैं ! त्रिलोकेश हैं ! एक मानव को इस प्रकार क्यों प्रणाम कर रहे हैं !'

श्रीकृष्णचन्द्र कुछ बोलते नहीं पर उनकी दृष्टि क्या कम बोलती है। देवता संकल्पों में ही तो वार्तालाप करते हैं। देवराज को तो दृष्टि में निहित संकल्प सुनायी पड़ रहे हैं। 'कहाँ हैं वे त्रिलोकेश !' आज तो सर्वेश के सम्मुख एक तुच्छ अपराधी के समान उपस्थित हैं। यह ठीक है कि उन्होंने गोपों का श्रीमद ध्वस्त करना चाहा था; पर स्वयं उनका श्रीमद ध्वस्त हुआ—कभी ध्वस्त हो चुका। उन्होंने गद्‌गद कण्ठ से प्रार्थना प्रारम्भ की—

'प्रभो ! आप विशुद्ध सत्वस्वरूप हैं ! रजस् और तमस् तो आपके स्मरण से ध्वस्त हो जाते हैं। अतएव आप में रजोगुण तथा तमो गुण के धर्म रोष, क्रोधादि सम्भव ही नहीं हैं। इतने पर भी धर्म की रक्षा और दुष्टों के प्रशमन के लिये आप दण्ड का विधान करते हैं ! आप ही इस संसार के उत्पादक, स्वामी और मर्याद भङ्ग होने पर दण्ड देनेवाले कालस्वरूप भी हैं। इस विश्व के कल्याण के लिये आप स्वेच्छा से नाना स्वरूपों में विविध प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं ! मेरे समान जो कोई भी अपनी अज्ञता से अपने को सर्वेश्वर मान लेता है, आपके श्रेष्ठ मार्ग को छोड़कर

प्रमत्त होता है, समय-समय पर उसे दण्ड देकर आप उसके गर्व को नष्ट कर दिया करते हैं। यह दुर्जनों पर आपका अनुग्रह ही है !' महेन्द्र ने स्वीकार किया कि प्रभु रुष्ट तो होते नहीं, परंतु उत्पथ-गामियों पर कृपा करने के लिये उन्हें दण्ड देते हैं, जिससे वे ठीक मार्ग पर आ सकें। दण्ड देने में भी वे करुणा से ही प्रवृत्त होते हैं।

'मैं आपका प्रभाव नहीं जानता था। ऐश्वर्य के मद ने मुझे अंधा बना दिया था। मैंने बड़ा अपराध किया। प्रभो, मुझे आप क्षमा कर दें !' जब सुरभि माता ने क्षमा कर दिया, तब फिर यह क्षमा क्यों ? लेकिन देवराज तो इस अपराध की क्षमा से ही संतुष्ट नहीं हैं। वे तो क्षमा चाहते ही दूसरे रूप में हैं --'फिर कभी मुझमें ऐसी दुर्बुद्धि न आये !'

'देव ! आपका यह अवतार पृथ्वी के भारभूत उन स्वार्थपरायण लोगों के विनाश और उन लोगों के कल्याण के लिये हुआ है, जो आपके श्रीचरणों के आश्रित हैं !' तात्पर्य यह कि देव-राज संकेत कर रहे हैं कि 'मैं आपके श्रीचरणों का आश्रित हो गया हूँ, अतएव अब मेरा कल्याण होना चाहिये।' 'मैं बड़ा क्रोधी हूँ ! अपने यज्ञ के न होने पर प्रचण्ड वायु के साथ वर्षा द्वारा गोकुल के विनाश का मैंने यत्न किया। आपने मुझपर महान अनुग्रह किया कि मेरे प्रयत्न को व्यर्थ कर दिया। मेरे गर्व का ध्वंस किया ! आप सर्वेश्वर हैं ! मेरे स्वामी हैं ! मैं आपकी शरण हूँ !' देवराज ने अपराध स्वीकार किया और फिर चरणों पर गिर पड़े।

एक बार भी जो किसी प्रकार कह देता है 'मैं तुम्हारी शरण हूँ', उसे तो श्याम छोड़ नहीं पाता; इन्द्र तो भावक्षुब्ध होकर शरणागत हुए हैं। उनके नेत्रों का प्रेमजल श्रीकृष्ण के चरणों को प्रक्षालित कर रहा है। कन्हैया अब उपेक्षा कैसे कर सकेगा। वह हँस पड़ा। गम्भीरता समाप्त हो गयी।

'बराबर इन्द्रत्व के अबाध ऐश्वर्य ने तुम में गर्व उत्पन्न कर दिया था। देवराज में गर्व-जैसा तामस भाव नहीं होना चाहिये। तुम बराबर पिछले सात वर्ष से गोकुल की पूजा स्वीकार कर रहे थे, जब कि गोकुल तुम्हारे लिये सेव्य है। मैंने तुम पर अनुग्रह करने के लिये तुम्हारा यज्ञ अवरुद्ध कर दिया। यह भारत भूमि नित्य पूज्य है। यहाँ सर्वदा ऐसे महापुरुष रहते ही हैं, जो तुम्हारे पूजनीय हों। यह अपराध है कि ऐसे महत्तमों द्वारा तुम अपनी अर्चा कराओ ! मैंने तुम्हें इससे बचा दिया। यों तो जो बहुत प्रमत्त हो जाता है, उसे मार्ग पर लाने के लिये मैं ऐश्वर्य से उसको गिरा देता हूँ; परंतु तुम शीघ्र समझ गये हो ! अब अमरावती जाओ ! अपने अधिकार का उपभोग करो ! परंतु आगे कभी गर्व मत करना !' श्रीकृष्ण ने आश्वस्त किया देवराज को।

'प्रभो ! जो ऐश्वर्य इस प्रकार मदान्ध कर दें, जो अधिकार प्रमत्त बनायें, मुझे उनकी इच्छा नहीं है। मैं तो यहीं इन श्रीचरणों...!'

'तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिये ! तुम फिर प्रमाद करने जा रहे हो !' पता नहीं महेन्द्र क्या-क्या कहते; किंतु मूक होना पड़ा उन्हें। आज्ञा के सम्मुख मस्तक झुकाने के अति-रिक्त उपाय भी क्या।

× × × ×

'माँ !' कन्हैया झट से उठा। उसने देखा—सुरभियाँ, बछड़े, वृषभ, सब चले आ रहे हैं कामधेनु के पीछे-पीछे। पुष्पों को अञ्जलि में भरकर कामदा के चरणों पर चढ़ा दिया उसने और भूमि पर सम्मुख लेट गया प्रणाम करता हुआ। 'तुमने व्रजभूमि पर कृपा की ! गोकुल पुनीत हो गया।'

'गोपाल, मेरी संतानों के तुम्हीं शाश्वत पालक हो !' कामधेनु के स्तनों से अविरल अमृत की धारा झर रही है। 'तुम इस धरा पर आये, यह इन्द्र यहाँ हमारी संतानों के प्रति अनु-त्तरदायी सिद्ध हुआ।' स्वर में तिरस्कार नहीं, स्नेह भरा है।

'माँ, देवराज को आपने क्षमा कर दिया है न ?' श्यामने पूछ लिया।

'मैंने और मेरी संतति ने रोष करना सीखा ही कहाँ है; परंतु तुमने गोकुल की रक्षा की है। गायों के इन्द्रत्व पर मैं तुम्हारा अभिषेक करूँगी। मेरी निरीह संतति अपनी रक्षा का भार एकमात्र तुम्हीं पर छोड़ सकती है!' कामधेनु ने इन्द्र की ओर देखा। देवराज ने मस्तक झुकाया। श्रीकृष्ण गौओं के ही इन्द्र बन जायँ, तो भी देवराज का इन्द्रत्व गौरवमय हो जायगा।

'माँ, यह गोलोक नहीं है न! यहाँ तो पितामह द्वारा निश्चित मर्यादा ही चलनी चाहिये!' श्याम ने निकलने का मार्ग ढूँढ़ा।

'ब्रह्माजी भी अपनी ओर से बछड़े चुराकर, उनकी माताओं को पुत्रों से पृथक् करने का प्रयत्न कर चुके हैं!' कामदा के स्वर में उलाहना है। जो एक बार प्रमाद कर चुका है, गायों के समान सीधी, निरीह जाति उसकी व्यवस्था पर निर्भर कर दी जाय—यह कहाँ का न्याय है। 'मैं आ रही थी तो ब्रह्मलोक में स्रष्टा ने मुझे अर्घ्य दिया और प्रार्थना भी की कि गोविन्द-पद पर तुम्हारा अभिषेक कर दूँ। वे स्वयं अनुभव करते हैं कि यह भार उनकी सृष्टि में कोई वहन नहीं कर सकता!'

'हुम्मा!, बाँ!' गायों और बछड़ों ने एक साथ पुकार की। कामधेनु के समान वे मानव-वाणी भले न बोलें; परंतु उनका यह चिरचारक उनकी भाषा समझता ही है।

'आज देवोत्थानी एकादशी है! इससे शुभ मुहूर्त कब मिलेगा!' सुरभि ने तत्काल अभिषेक करना है, यह सूचित कर दिया।

'इस सेवक को भी गौरवलाभ का लालच है!' महेन्द्र ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया!

'बिना राजा को तिलक किये कोई राजतिलक पूर्ण नहीं होता! यह गायों के इन्द्र-पद का अभिषेक तुम्हारे द्वारा सम्पन्न होकर ही तो साङ्गता प्राप्त करेगा! इसमें पूछना क्या है!' कामधेनु देवेन्द्र पर इस समय परम सानुकूल हैं। हमारे गोविन्द का अभिषेक करो! इस अनन्त का अभि-षेचन-जल तुम्हारे मेघों को पूर्ण कर देगा!' मेघपूर्ण हों या न हों, इन्द्र ने तो यह बात सोची ही नहीं। वे तो श्रीकृष्णचन्द्र को अभिषिक्त करने की सेवा का सौभाग्य पा जायँ, यही बहुत है।

अभिषेक होगा। गायों के इन्द्र का अभिषेक भी तो उसी प्रकार होगा। श्यामसुन्दर ने मुकुट, पटुका, वनमाला—सब एक ओर उतार दिया। कछनी को पहनकर पीताम्बर भी उनके साथ रख दिया गया। हाथ में लकुट लेकर वह शिला पर बैठ गया। कामधेनु आकाश में इस प्रकार स्थित हो गयीं कि उनके स्तनों से झरती धारा श्रीकृष्ण के मस्तक पर पड़े। चल रहा है यह दुग्धस्नान।

इन्द्र के स्मरण करते ही ऐरावत ने अपनी सूँड़ों से दिव्य स्वर्णघटों में भरकर स्वर्मन्दा-किनी का जल देना प्रारम्भ किया। 'वज्र-प्रहार के कलुष से कलुषित भुजाएँ इस अभिषेक से पवित्र हों!' देवराज के हाथों और ऐरावत में होड़-सी चल रही है। ऐरावत अपनी आठ सूँड़ों से घड़े भर रहे हैं; परंतु सुरपति के हाथों उन्हें रिक्त होने में विलम्ब ही नहीं लगता।

'सहस्र शीर्षा पुरुषः....' अन्तरिक्ष में यह मन्त्र-पाठ चल रहा है। देवगुरु, ब्रह्माजी तथा सनकादि महर्षियों को अपने वेदपाठ को सार्थक करने का इससे सुन्दर अवसर कब प्राप्त हो सकता है।

अभिषेक हो रहा है—कामधेनु के अमृतपय, मन्दाकिनी के दिव्य जल की धाराओं से अखण्ड अभिषेक। श्यामसुन्दर स्नान कर रहा है। वह आज गोविन्द हो गया। अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं, गन्धर्व गान कर रहे हैं। देवर्षि, तुम्बुरु आदि अपने-अपने वाद्य सार्थक करने में लगे हैं। पुष्प-वर्षा हो रही है! देवता स्तुति कर रहे हैं।

नीचे बछड़े कूद रहे हैं! गायें हुंकार कर रही हैं, उनके स्तनों से दुग्धधारा चल रही है। वृक्षों से मधु-स्राव हो रहा है। वृक्षों पर एक भी डाल नहीं, जो फलभार से झुक न गयी हो। एक

भी फल नहीं, जो पूर्ण पक न हो गया हो ! गिरिराज पर मणियाँ ऊपर चमकने लगी हैं। श्याम गोविन्द जो हो गया।

× × × ×

कनूँ, तूने स्नान किया है ?' अलकें आर्द्र हैं। अङ्गराज धुल गया है ! कछनी का वस्त्र गीला है और वह है भी हाथ में ही। एक बार कछनी खोल लेने पर कन्हैया फिर कहाँ उसे बाँध पाता है। धोती पहिन लेता है, यही बहुत है। कछनी तो धोती के ऊपर भद्र के हाथों बँधी ही उसे पसंद है। दाऊ का अनुमान ठीक ही है। वह स्नान न किये होता तो वनधातु के चित्र कहाँ जाते उसके अङ्गों से।

'भद्र, मैया से आज कहना है कि कनूँ अकेले स्नान करने लगा है !' वरूथप ने रोष प्रकट किया। मैया ने मना कर रक्खा है कि श्याम अकेले कहीं जल में उतरने न पाये। उसने यह जो विचित्र तिलक कर रक्खा है, पहले तिलक के स्नान से धुल जाने पर किसी ने शीघ्रता में उसे तिलक लगाया है ! वनमाला के पुष्प भी विचित्र हैं। अवश्य यह कहीं दूर गया था !

'क्यों गोविन्द ?' भद्र ने कहा और स्वयं अपने ही सम्बोधन से चौंका भी। कन्हैया भी कुछ चौंका—'इसको किसने यह नाम बता दिया। इस नाम से तो कामधेनु ने सम्बोधित किया है।

'गोविन्द !' मधुमङ्गल ने भद्र की ओर देखा। इस नाम से कन्हैया चिढ़ता तो नहीं—ऐसा हो तो आनन्द आये।

'गौ, गोप, गोकुल और उसका इन्द्र—गोविन्द !' भद्र ने व्याख्या तो कर दी; पर कैसे कर दी, यह वह भी बता नहीं सकता। 'वह पानी बरसाने वाला इन्द्र—बड़ा घमंडी है और अच्छा भी नहीं है। उसने हम लोगों को पानी से बहा ही देना चाहा। हम उसे इन्द्र नहीं मानेंगे। हमारा इन्द्र यह कन्हैया रहेगा। गोकुल का, हम गोपों का, गायों का इन्द्र—यह गोविन्द !'

'गोविन्द !' बालकों को आनन्द आया भद्र की बात सुनकर। हाँ, उनका इन्द्र कनूँ को छोड़कर दूसरा कोई नहीं रहेगा !' श्याम को घेर लिया उन्होंने—'गोविन्द ! गोविन्द ! गोविन्द !'

—❀—❀—❀—

दिव्य-दर्शन

'नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात् कथं वदेत् युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥'

—भागवत १०।१३।३९

वही कार्तिक शुक्लपक्ष की देवोत्थानी एकादशी। आज सखाओं ने श्याम को 'गोविन्द' बना लिया है। सुरभि और इन्द्र का अभिषेक प्रकारान्तर से विधिवत् पूर्ण हुआ है। बाबा ने, मैया ने और व्रजके गोप-गोपियों ने उपवास किया है। देवोत्थानी को उपोषित रहकर उन्होंने अनन्तशायी भगवान् नारायण का जागरण-महोत्सव किया है। दिन भर व्रज में विधिवत् पूजा होती रही है। सबके हृदय में एक ही कामना है—कृष्णचन्द्र सुखी रहे!

एकादशी का व्रत तो विशेषतः रात्रि-जागरण का पर्व है। व्रजराज के द्वार पर श्रीजनार्दन के सम्मुख आज रात्रि भर नृत्य गीत, हरिकीर्तन चलता रहेगा। गोप अपने नाना प्रकार के वाद्यों के साथ नृत्य कर रहे हैं। गोपियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। तरुण गोप अनेक प्रकार के व्यायाम और शस्त्र-कलाएँ प्रदर्शित कर रहे हैं।

श्याम अपने सखाओं के साथ बहुत देर तक जागता रहा। उसे उत्सव में आनन्द आ रहा था। आज उसने भी भगवत्प्रसाद का फलाहार ही लिया है। जब मैया ने देखा कि उसके नेत्रों में आलस्य आने लगा है, तब उसे ले जाकर सुला दिया। वह तो मानता ही नहीं था। सब बालक आज नन्दभवन में ही सो गये हैं। मैया ने सबके लिये व्यवस्था कर दी है। गोप-गोपियों को यहाँ रात्रि-जागरण करना है तो बच्चे घरों को कैसे जा सकते हैं। श्याम भी सबके साथ किसी प्रकार सोने चला गया। अकेले तो आज वह जाता ही नहीं। अब बालक सो रहे हैं। मैया निश्चिन्त हुई है। जनार्दन उसके श्याम को सदा निर्विघ्न रक्खें!

× × × ×

'सवेरा हो गया!' बाबा को सदा ब्राह्ममुहूर्त के प्रारम्भ में ही स्नान कर लेने का अभ्यास है। उसी समय एकाग्र चित्त से भगवान् नारायण का ध्यान और पूजा हो सकती है। उन्होंने लोटा, धोती मँगायी। नित्य कर्म से निवृत्त हुए और श्रीयमुनाजी के किनारे स्नान करने पहुँच गये। वृद्ध गोप भी उनके साथ हैं। आकाश में श्वेत अविरल बादल हैं। चन्द्रमा उनके पीछे दिखायी नहीं पड़ते। धुँधली चन्द्रिका से प्रातःकालीन प्रकाश का भ्रम हो रहा है, इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया।

'हर!' बाबा ने सबसे पहिले जलमें प्रवेश किया। डुबकी लगायी। मस्तक जल से बाहर निकला और वे करुण स्वर में पुकार उठे 'कृष्ण···!' कोई उनके चरण पकड़कर जल में खींच रहा है। शब्द पूरा भी नहीं हुआ और वे जल में अदृश्य हो गये।

'व्रजराज डूब गये!' साथ के गोपों ने जल में प्रवेश किया, परंतु वे कोई सहायता न कर सके! 'दौड़ो! दौड़ो! व्रजेन्द्र डूब गये!' उन्होंने पुकार मचायी।

'बलराम! श्रीकृष्ण! अरे नन्दराज डूब गये! दौड़ो!' कोई नहीं सोचता कि छोटे बालक क्या करेंगे यदि दौड़ भी आये। स्वभाव हो गया है 'राम—श्याम' को पुकारने का और आपत्ति में तो स्वभाव ही व्यक्त होता है। उस समय कुछ सोचा थोड़े ही जा सकता है।

'व्रजराज डूब गये!' दूर उत्सव में पुकार पहुँची। गोपों ने सुना और वे भी पुकारते हुए भागे। गोपियों ने सुना और वे भी यमुना-तट की ओर दौड़ पड़ीं।

'व्रजराज डूब गये !' पता नहीं कैसे शब्द कन्हैया के कानों तक पहुँचे। वह चौंककर उठा। गोप उसका नाम लेकर पुकार रहे हैं। उसी प्रकार दौड़ पड़ा वह। उसने देखा ही नहीं कि लगभग उसीके साथ दाऊ और दूसरे सखा भी उठ गये हैं। सब उसके पीछे ही दौड़े आ रहे हैं।

× × × ×

'राम, श्याम, दौड़ो ! अरे नन्दबाबा यमुनाजी में डूब गये !' पूरी-अधूरी पुकारें सब के मुख से निकल रही हैं। सहस्त्रों गोप जैसे वस्त्रों में थे, वैसे ही धारा में कूद पड़े हैं। कोई एक ओर, कोई दूसरी ओर गम्भीर डुबकियाँ लगा रहा है। यमुना का अतल प्रवाह—यदि दिन होता तो देखा जाता कि गोपों ने मथकर उसे मटमैला कर दिया है केवल कुछ क्षणों में।

मैया तो जैसे पागल हो गयी हैं। यदि गोपियों ने उन्हें पकड़ न रक्खा होता तो अवश्य वे यमुना में कूद गयी होतीं। उनके नेत्र फट-से गये हैं। उनमें अश्रु तक शुष्क हो गये हैं। एक-टक वे प्रवाह को घूर रही हैं और बराबर प्रयत्न कर रही हैं, अपने को गोपियों के हाथों से छुड़ा लेने का। गोपियों के दुःख का पार नहीं। रोदन-क्रन्दन—शोक, बस वहाँ यही है आज !

'श्याम !' इस उन्मत्त दशा में भी केवल मैया ने अब तक श्रीकृष्ण को पुकारा नहीं है। वे क्यों चौंकी ? वह आया श्याम ! वह दौड़ा। आया प्रवाह की ओर। वह—वह कहाँ जा रहा है जल के समीप ? मैया ने चिल्लाकर पुकारा—'पकड़ो ! श्याम को पकड़ लो ! श्याम ! श्याम !'

एक बार पूरा बल लगाकर मैया ने अपने को छुड़ा लिया ! वे झपटीं श्रीकृष्ण की ओर ! श्रीकृष्ण तो आया—दौड़ता आया और जैसे जल है ही नहीं ! वह दौड़ता ही चला गया। उसने नहीं सुनी मैया की पुकार। नहीं सुना गोप-गोपियों का क्रन्दन ! नहीं देखा गोपों का विकल उद्योग ! नहीं देखा समीप तक आ पहुँचे सखाओं और दाऊ को ! वह तो सीधे दौड़ता आया और जैसे यमुना के तल तक दौड़ता ही चला गया हो !

'कन्हैया !' मैया मूर्छित होकर दो पद दौड़कर ही गिर गयीं। श्याम तो यमुनाजल में अदृश्य हो गया। गोप-गोपी-बालक सब जहाँ जैसे थे, जैसे शरीर से एक साथ प्राण चले गये हों ! ज्यों-के-त्यों, जहाँ-के-तहाँ रह गये। श्रीकृष्णचन्द्र को रोकने के लिये सभी ने मुख खोले थे—मुख खुले ही हैं और पलकों में गति नहीं। नेत्र फैल गये हैं। जल में जो गोप हैं—बस, वे ही श्यामसुन्दर जहाँ अदृश्य हुआ है, उस स्थान को घेर कर कण-कण छान डालने के प्रयत्न में हैं।

योगमाया—वे अन्तरिक्ष में हँस क्यों रही हैं ? वे यदि शक्ति न दें तो इन व्रजवासियों में जीवित कौन रहेगा? अपने अधीश्वर के स्वजनों की रक्षा वे न करें तो क्या वह उन्हें क्षमा कर देंगे !

× × × ×

'यह हमारे समय में कौन विक्षेप करने आ गया !' ब्राह्ममुहूर्त हुआ नहीं था। रात्रि के तृतीय प्रहर का आसुरी काल था। यमुनाजल में विक्षोभ हुआ। वरुण का एक सेवक असुर उस समय वहाँ जल के तल में घूम रहा था। जलाधीश ने उसे आदेश दिया है कि यदि कोई ब्राह्ममुहूर्त से पूर्व जल में प्रवेश करे तो उसे दण्ड दिया जाय। 'इस समय कौन आ गया !' उसने स्नान करने वाले के पैर पकड़े और भीतर खींच लिया।

'कौन है यह !' क्रूर असुर के लिये स्वाभाविक तो यह था कि उसने जिसे डुबाया था, उसे मार देता। उसे दण्ड देने की आज्ञा भी थी; परंतु जिसे उसने पकड़ा था, वह पता नहीं कैसा पुरुष था। असुर अनुभव कर रहा था कि उसके हाथ भस्म हुए जा रहे हैं। इस पुरुष को दण्ड देने की शक्ति वह अपने में नहीं पाता। उसे भय भी है कि कहीं छोड़ देने से जलाधीश असंतुष्ट न हों ! उसने अपनी समग्र शक्ति से शीघ्रता की वरुणलोक तक पहुँचने में। अभियुक्त को वह वरुणदेव के सम्मुख उपस्थित कर देना चाहता था। यमुना से गङ्गा और वहाँ से समुद्र होकर वरुणलोक नहीं—देवता सूक्ष्मतम होते हैं। असुर को यमुना के जलतत्व की सूक्ष्मता में ही प्रवेश करके वरुण-लोक की यात्रा करनी थी।

'श्रीव्रजराज !' वरुणदेव सिंहासन से वेगपूर्वक उठे और भूमि पर गिरकर उन्होंने बाबा को प्रणिपात किया। बेचारा असुर भय से दूर खड़ा काँप रहा था। पता नहीं उससे कितनी बड़ी भूल हुई है। क्या दण्ड मिलेगा उसे।

'मुझे क्षमा करें !' लोकपाल—असुर-सम्राट् का रत्नमुकुट बाबा के पदों में अवनत हुआ। 'अपराध तो हुआ ही; परंतु मेरा यह तुच्छ भवन श्रीचरणों से पवित्र हुआ। आज मैं धन्य हो गया !'

'यह सब हो क्या रहा है ?' बाबा समझ ही नहीं पा रहे हैं कि वे कहाँ हैं, जागते हैं या स्वप्न देख रहे हैं। 'यह देवलोक-जैसा ऐश्वर्यमय लोक और उसके ये अधीश्वर—ये क्यों उन्हें इस प्रकार दीन बनकर प्रणाम कर रहे हैं ?'

'मूर्ख !' वरुण ने बड़ी कठोर दृष्टि से उस असुर को देखा। यदि बाबा का आतिथ्य तत्काल न करना होता तो अवश्य अपने पाश से उसकी चमड़ी अभी उधेड़ डालते।

'नहीं ! नहीं ! इसका कोई अपराध नहीं ! इस बेचारे को कुछ मत कहो !' बाबाका दयामय हृदय तो यहाँ भी साथ ही है न। अपने सम्मुख क्या किसी को वे प्रताड़ित होते देख सकते हैं। किसी का गुरुतर अपराध भी क्या उनकी करुणा को कभी थकित कर सकता है।

'बाबा ! मुझे चरण-सेवा का सौभाग्य मिलना चाहिये !' ये महान् देवता भी उन्हें बाबा क्यों कह रहे हैं, यह बात बाबा नहीं समझ सकेंगे। 'देवता सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होते हैं। उनके जब जो मन में आता है, वही करते हैं। कभी वे मनुष्य से पूजा लेते हैं और कभी स्वयं उसकी पूजा करके प्रसन्न होते हैं। उनकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। वे जो आज्ञा दें, मनुष्य का तो उसे पालन करना ही धर्म है।' बाबा ने अपना समाधान कर लिया। जलाधीश की पूजा स्वीकार किये बिना छुटकारा नहीं था।

× × × ×

'प्रभो !' बाबा का सत्कार पूरा हुआ ही नहीं था। होना भी नहीं था। वरुणदेव के अन्तर में जो उल्लास है, वह क्या क्रिया और पदार्थों से व्यक्त हो सकता है। उन्हें भली प्रकार अर्घ्यादि देने को अवसर भी नहीं मिला, श्रीकृष्ण पहुँच गये। जलेश ने द्वार तक दौड़कर उनके चरणों में दण्डवत् की।

बाबा देखते हैं, उनका कृष्णचन्द्र शान्त भाव से वरुण की पूजा स्वीकार कर रहा है। उसने इस प्रकार सिंहासन स्वीकार कर लिया, जैसे किसी तुच्छ सैनिक के यहाँ सम्राट् पधारे हों। वरुण तो फूले नहीं समाते। अर्घ्य, पाद्य, चन्दन, पुष्प-माल्य, वस्त्र, आभरण, नैवेद्य, नीराजन और एक-एक पूजनकृत्य शत-शत प्रकार से। सम्पूर्ण विभावरी (वरुणलोक) में नवीन उमंग, नया जीवन आ गया है। प्रचेता प्रेमोन्मत्त-से हो रहे हैं। बाबा अब समझ रहे हैं कि उनका इतना सत्कार क्यों हुआ था।

'आज मेरा लोकपाल होना सार्थक हुआ ! आज मैंने अपने जीवन का फल पाया ! आज यह पुरी धन्य हुई ! आपके श्रीचरण हमें आज मिले !' पूजनोपरान्त जलाधीश श्यामसुन्दर के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। गद्‌गद कण्ठ से स्तुति करने लगे। 'सर्वेश्वर, मैं श्रीचरणों में प्रणत हूँ ! मेरा दूत महामूर्ख है ! वह समझता नहीं कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये ! उसका अपराध मेरा ही है ! मुझे आप क्षमा करें ! वह व्रजेन्द्र को यहाँ ले आया। आज तो उसका अपराध भी मेरे लिये वरदान ही हुआ। बाबा के आने से ही तो आप पितृवत्सल यहाँ पधारे ! अब मुझपर कृपादृष्टि हो !

'बाबा यहाँ कुछ दिन विराजते तो मैं सेवा से सार्थक होता !' वरुण जानते हैं कि व्रज में कितनी व्यथा व्याप्त होगी। अपराध हो गया, पर उसे बढ़ाना तो नहीं ही चाहिये। 'ऐसे भाग्य मेरे नहीं हैं। आप ले जायँ बाबा को अपने साथ ! व्रज की आतुरता स्मरण करके मैं अनुरोध को दुराग्रह नहीं बनाऊँगा।'

'आप निश्चिन्त रहें। कोई अपराध नहीं हुआ!' श्रीकृष्ण स्वयं शीघ्रता में हैं। उन्हें किसी प्रकार यहाँ के पूजन से छुटकारा लेना है। वे उठ खड़े हुए।

'बाबा!' श्यामसुन्दर ने पिता का हाथ पकड़ा।

'मेरे क्षेत्र तक तो मुझे साथ जाने की अनुमति होनी चाहिये!' जलेश ने सूचित कर दिया कि वे यमुनाजल से बाहर प्रकट न होंगे, परंतु उससे पूर्वक्षण तक पहुँचाने जायँगे। उनका चर जहाँ से बाबा को बलात् ले आया है, वहाँ तक वे पहुँचाने भी न जायँ, ऐसी अशिष्टता कैसे सम्भव है।

× × × ×

'श्याम!' मैया ने जल से ऊपर उठता मयूरमुकुट उस रात्रि में भी देख लिया! उनके प्राण नेत्रों में और नेत्र उस यमुनाजल पर ही तो एकाग्र हैं।

'बाबा!' दाऊ ने दूसरी उल्लास-भरी पुकार की। कन्हैया एक क्षण में बाबा का हाथ पकड़े कटि से नीचे जल तक पहुँच गया। वह हँसता हुआ चला आ रहा है।

मैया ने दौड़कर श्याम को अङ्क में उठा लिया। बाबा विचित्र रीति से गम्भीर हो गये हैं। श्याम और बाबा दोनों अद्भुत वस्त्रों, अलंकारों और पुष्पमालाओं से अलंकृत हैं। यमुनाजी में से निकलने पर भी उनके शरीर या वस्त्र भीगे नहीं हैं। इन बातों की ओर किसी का ध्यान नहीं है। सब कन्हैया को हृदय से लगाने और बाबा को देखने तथा यथायोग्य उनका सम्मान करने में लगे हैं। जैसे श्याम और बाबा युगों के पश्चात् व्रज लौटे हैं।

× × × ×

'हुआ क्या था?' सभी को जिज्ञासा है। बाबा ने जो देखा है, वह उनके मुख से ही प्रत्येक सुनना चाहता है। 'कन्हैया ने बाबा को वरुणलोक से लौटाया है! जलाधीश इस प्रकार श्याम का सम्मान करते हैं, जैसे श्रीकृष्ण के सम्मुख वे तुच्छ सेवक हों!' बात घर-घर व्याप्त हो गयी है, सब सुन चुके हैं; परंतु गोपियों को मैया के मुख से ही सब सुनना है। व्रजेन्द्र ने उसे विस्तार से सब सुनाया होगा। जिसको जब अवकाश मिलता है, तभी वह पूछने आ जाती है। वृद्धा, बालिका, तरुणियाँ, नववधुएँ—सबको पूछना है। मैया के बताने से संतोष नहीं होता, वृद्धाओं के द्वारा वे बाबा से पूछती हैं। बालक, वृद्ध, तरुण पुरुष तो सब बाबा से पूछते ही हैं। एक बार सुनकर संतोष हो जाय, सो भी नहीं। बार-बार पूछा जाता है। बाबा और मैया भी सब सुनाने में आनन्द पाते हैं।

'बाबा तो जल में डुबकी लगाते ही मिल गये! उन्होंने घबड़ाहट में कोई स्वप्न देखा है!' कन्हैया ने एक समाधान दे दिया है सखाओं को। मैया और बाबा से सखाओं ने इस समाधान का समाधान पूछा। 'बात तो श्याम की ही ठीक है!' बाबा को अब यही लगता है। मैया तो पहले दिन से सब कथा सुनाकर कहती आ रही है कि यह सब है व्रजेश का मनोविलास ही।

समाधान की अपेक्षा घटना में अधिक बल है! व्रजेन्द्र और श्याम के वे वस्त्र-भरण जो यमुना में से निकलते समय उनके शरीर पर थे, अभी कहीं गये नहीं हैं। वे व्रज के तो हैं नहीं। जलाधीश के देवपुष्प न होते तो क्या वे मालाएँ अब तक म्लान न होतीं। बाबा और श्याम भीगे क्यों नहीं? बहुत से हृदयों को उस घटना की सत्यता पर संदेह नहीं है। वे उसे बाबा का मनोविलास मानने में समर्थ नहीं; भले, बाबा स्वयं उसे अब मनोविलास कहें।

'हम पहले कहते आ रहे हैं कि श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य नहीं! वे कोई देवता हैं!' सायंकाल बाबा के द्वार पर गोप-मण्डली बैठी है। आज कार्तिकी पूर्णिमा है। रात्रि भर भगवान् नारायण का गुणगान होगा। पूजन होगा। सभी गोप एकत्र हो गये हैं।

'जिसका लोकपाल वरुण भी इस प्रकार सम्मान करें, वह तो उनसे बहुत बड़ा होना चाहिये!' एक गोप समीप के गोपों से कह रहा है।

'वरुण के लोक का ही इतना ऐश्वर्य व्रजेन्द्र बतलाते हैं तो श्रीकृष्ण के लोक की क्या विभूति होगी!' दूसरे ने चर्चा की दिशा बदल दी।

चीर-हरण

"मदशिखण्डिशिखण्डविभूषणं मदनमन्थरमुग्धमुखाम्बुजम् ।
व्रजवधूनयनाञ्चलवञ्चितं विजयतां मम वाङ्मयजीवितम् ॥"

—श्रीलीलाशुक

मुरली—वह सम्मोहनजननी मुरली बजती है, प्राण आकुल हो उठते हैं। प्रातः मयूर-मुकुटी सखाओं से घिरा, गायों को आगे करके मन्द-गयंदगति से झूमता निकलता है। उसके चञ्चल नेत्र, चपल कटाक्ष, मन्द हास्य और वह यहीं तक रहता कहाँ है—किसी को मुख बनाकर चिढ़ाता जायगा, किसी को अँगुलियाँ नचायेगा और किसी को लक्ष्य करके अलकों या वनमाला से लेकर पुष्प फेंक देगा। उसके लिये तो सब परिहास है; पर ......।

वन में प्रायः दधि-दान की धूम होती है। इसी बहाने उसकी एक झाँकी मिल जाती है। एक बार उसका स्पर्श प्राप्त होता है। वह झाँकी—उसे देखने से क्या नेत्र कभी तृप्त होते हैं? यह तो अग्नि को घृत से बुझाने का प्रयास है। उत्कण्ठा उद्दीप्त ही होती जाती है। वह—वह सदा नेत्रों के सम्मुख ही रह पाता! सायंकाल लौटता है—कितने युगों के पश्चात् आया-सा जान पड़ता है सायंकाल! धूलिसनी अलकें, पलकें, वनमाला, धातुचित्रित श्याम शरीर, वन्य कुसुमों के आभरणों से मण्डित नटनागर, सखा उन्मुक्त हास्य में ताली बजाते संग-संग गाते हैं "जय जय कुँवर कन्हाई!" गायें हुंकार करके बार-बार पीछे देखती हैं। वह अधरों पर मुरली रक्खे ऊपर, नीचे, इधर-उधर चञ्चलता से देखता, घूमता-झूमता, अपने अङ्ग और अलकों के पुष्पों को छज्जों पर फेंकता, मुसकाता, खिलखिलाता निकल जाता है। उसकी यह धूम......।

बालिकाएँ—वे बालिकाएँ ही तो हैं, वे स्वयं नहीं जानतीं कि उनके हृदय क्यों बेचैन हैं। उनके अन्तर में क्यों यह उद्वेलन उन्हें आकुल किये रहता है। श्याम—अवश्य वे इतना जान गयी हैं कि इस श्याम के बिना वे रह नहीं सकेंगी। श्याम!—उनके हृदय का प्रत्येक स्पन्दन यही पुकारता है। उनके मन में, देह में वही मुरलीवदन श्याम प्रतिफलित होता है। वे स्वप्न में श्याम-श्याम कहकर बोलती हैं; खेल में, किसी के पुकारने पर, प्रायः आत्मविस्मृत-सी 'श्याम!' पुकार उठती हैं और तब स्वयं संकुचित हो जाती हैं। माता-पिता, दूसरे सुहृद्—सब जानते हैं और जानना कठिन क्या है। उन्हीं के मन कौन से उनके हाथ में हैं। माताएँ सायंकाल से पूर्व ही किसे देखने बार-बार भवनद्वार तक जाती हैं? गोप किसकी वंशी-ध्वनि सुनते ही सब कार्य छोड़कर मार्ग की ओर दौड़ते हैं? जब वृद्धों और तरुणों की यह दशा है तो वे तो बालिकाएँ हैं,—उनका हृदय त नन्हा-सा है।

'श्याम—यह तो उसकी दया है जो हम सब की ओर देखकर मुस्करा उठता है, कभी पुष्प फेंक देता है। हम इतनी दूर उसके लिये दही-नवनीत लेकर जाती हैं, यह क्या उससे छिपा है? दया करके ही वह उसकी छीना-झपटी कर लेता है। अब वह सात वर्ष का हो गया। आठवें के भी दो महीने बीत गये, किसी दिन व्रजेश्वर उसकी सगाई कर देंगे।' बालिकाएँ इस कल्पना से ही अस्तव्यस्त हो जाती हैं—'श्याम की सगाई हो जायगी! वह किसी दूसरे का हो जायगा! वह उनका नहीं रहेगा'

'सगाई तो होगी ही। श्रीव्रजराज का एकमात्र कुमार कबतक इसी प्रकार रहेगा। व्रजेश्वर का ऐश्वर्य—सुना है कंस चक्रवर्ती सम्राट् होकर भी उनसे खुली शत्रुता करने का साहस नहीं कर

कर पाता। छिप-छिपाकर असुर भेजता है। उसके इतने असुर मारे गये, फिर भी कुछ कर नहीं पाता। व्रजेश्वर का ऐश्वर्य न भी हो, यह त्रिभुवनसुन्दर—राजाओं में स्वयंवर ही तो होता है, इस के गले में वरमाला डालने में तो वे सिन्धुसुता भी अपने को धन्य मानेंगी। आभीर-कन्याओं को कौन पूछता है। व्रजपति अपने युवराज की सगाई किसी भी सम्राट् की कन्या से करना चाहें तो वह कृतार्थ मानेगा अपने को और मोहन--वही क्यों हमारी चिन्ता करेगा। उसे तो देव-कन्याएँ भी दुर्लभ नहीं हैं!' कौन बताये इन श्रीकीर्तिकुमारी को कि उनमें जो है, वह केवल वही वनमाली जानता है। देवकन्याएँ, सिन्धु-सुता उनकी दासियों की चरणसेवा का अधिकार पा जायँ तो वे अपना अहोभाग्य मान लेंगी। उनमें इतना साहस नहीं है कि वे स्पर्धा की बात भी सोच सकें; किंतु प्रेम शङ्कालु होता ही है। ये बालिकाएँ—उनका नन्हा हृदय और यह चञ्चल कन्हैया, उनकी आशङ्काओं को निरर्थक भी कोई कैसे कह दे।

भगवती पूर्णमासी—व्रज की अधिदेवता के समान वे स्नेहमयी—उज्ज्वल केश, वलीपलित-युक्त काय, वीतराग तपस्विनी वृद्धा—बालिकाओं का हृदय उनके परम वात्सल्य के कारण उन्हीं के सम्मुख खुल पाता है। उन्हीं की गोद में बैठकर वे कुछ संकोचहीन हो पाती हैं और सिकुड़ती, सकुचती कुछ मन्द स्वर में कह पाती हैं। व्रजपुर के आवास से बाहर, वनसीमा की वह पावन भूमि, वह सुरम्य आश्रम ही बालिकाओं का एक आश्वासन है और वहाँ दिन भर उनके लिये कोई बाधा नहीं। भगवती पूर्णमासी का वह स्नेहपात्र—वह महाचपल, हास्यमूर्ति चिरकुमार मधुमङ्गल श्याम के साथ वनमें चला जाता है और सायंकाल ही लौटता है।

बालिकाओं ने किसी प्रकार अपनी मनोव्यथा का संकेत दिया भगवती को। तपस्विनी—वात्सल्यमूर्ति—उनसे छिपा क्या है; किंतु—किंतु वे करें क्या, श्यामसुन्दर तो साधन-साध्य नहीं हैं, वे तो स्वयं ही कृपा करें तो''' वे नीरव हो गयीं। दो क्षण को पलकें बंद हो गयीं और जैसे वे ध्यानस्थ हो गयी हों। 'तुम—तुम्हीं कुछ कर सकती हो—तब तुम अपनी ही आराधना करो!' भगवती प्रायः उन्मना-सी होकर कभी-कभी पता नहीं क्या-क्या कहा करती हैं। बालिकाओं को कोई आश्चर्य नहीं हुआ, जब उन्होंने श्रीवृषभानुनन्दिनी को अङ्क में बैठाकर उनकी ठुड्डी पकड़कर मुख अपनी ओर करके यह सब कहा।

'दो ही दिन हैं कार्तिकी पूर्णिमा को, उसी दिनसे तुम सब प्रातःकाल स्नान करके भगवती महामाया भद्रकाली कात्यायनी की पूजा करो। वे ही तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण करेंगी! उन्हीं से प्रार्थना करो!' दो क्षण में ही भगवती ने अपने को स्थिर कर लिया। उन्होंने एक आराधना बता दी।

× × × ×

'मैं कल बड़े सबेरे यमुनास्नान करने जाऊँगी!' माता ने कन्या की बात पर ध्यान ही तब दिया, जब उसने बताया कि वह कल से भवानी का पूजन करेगी। यमुनास्नान और पूजन—बड़ी अच्छी बात है। कन्याएँ तो गिरिजा-पूजन करती ही हैं। माता को क्या आपत्ति होनी है। ये लड़कियाँ नित्य वन में जाती हैं और डरकर तंग होती हैं, वहाँ जाने की इनकी धुन छूटे तो अच्छा ही है।

'बड़े सबेरे, सूर्य भगवान् के निकलने से पहिले ही स्नान कर लेंगी हम सब!' भोली बालिका ने माता को अनुकूल देखकर उल्लास प्रकट किया।

'इतनी क्या शीघ्रता है!' माता कैसे मान ले कि उनकी यह फूल-सी बच्ची अँधेरे ही उठकर चल देगी यमुनाजी की ओर। वैसे अभी से ये लड़कियाँ ब्राह्ममुहूर्त में ही जग जाती हैं और तभी उन्हें स्नान कर लेने की धुन सवार होती है। माता ने समझाया 'मैं स्वयं साथ चलूँगी, सेविकाएँ चलेंगी और तुम सबों को नित्य पूजा करा देने के लिये आचार्य से आज तुम्हारे पिता प्रार्थना कर देंगे।'

'नहीं, भगवती पूर्णमासी ने आदेश दिया है कि दूसरा कोई साथ नहीं जायगा ! मैं अपनी पूजा कर लूँगी !' इतनी भीड़-भाड़ में भला, कैसे होगी वह पूजा।

'तू अकेली जायगी ?' आशङ्का से माता ने गोद में बैठी पुत्री की ओर देखा ! भला, यह कैसे अँधेरे में जा सकेगी। कैसे इसे एकाकी यमुना में स्नान को भेजा जा सकता है।

'अकेली कहाँ, सब सहेलियाँ रहेंगी।' बालिका ने इस प्रकार कह दिया, जैसे उसकी सहेलियाँ रक्षा के लिये पर्याप्त ही तो हैं।

'भगवती पूर्णमासी ने आदेश दिया है—अच्छा !' मन नहीं मानता, हृदय को संतोष नहीं होता; किंतु भगवती पूर्णमासी—वे महातपस्विनी योगमाया जगदम्बा—उनका आदेश टाला कैसे जा सकता है। कितना स्नेह है उनका इन बालिकाओं से, कितनी दयामयी हैं। जब उन्होंने आदेश दिया है तो अवश्य मङ्गल ही होगा। सामान्य कारण से वे इन बच्चियों को ऐसा आदेश दे कैसे सकती हैं। माता के वात्सल्य ने मङ्गल-भावना के कारण अपने को संयत किया।

× × × ×

'तुम सब वहाँ जल में अधिक देर न रहना, शीत लग जायगा ! शीघ्र लौटना ! पूजा के समय परस्पर परिहास मत करना !' माता को कैसे संतोष हो। बड़ी विवशता है, ये सब लड़कियाँ—बच्ची ही तो हैं ये। स्वभाव से चञ्चल हैं। माता की यह हृदय-कलिका—बहुत भोली, बहुत सीधी, बहुत अबोध है। भगवती पूर्णमासी ने दूसरे किसी को साथ जाने से रोक दिया है—उनका आदेश भला, कैसे भंग किया जा सकता है। लड़कियाँ तो ब्राह्ममुहूर्त से भी पहिले उठ गयीं। कदाचित् रात्रि में नींद ही नहीं आयी है। माता ने जितनी देर सम्भव हो सका, विलम्ब करने का प्रयत्न किया।

सोने की मणिमण्डित डलिया, उसमें अक्षत, पुष्प, रक्तचन्दन, सिन्दूर, कुङ्कुम, कण्ठसूत्र, मधु, दूध, कर्पूर, फल, नैवेद्य—पता नहीं क्या-क्या इन सबों ने स्वयं सजाया है। दिनभर उन्हें एक ही काम रहा—कल पूजा के लिये क्या, कितना रक्खेंगी वे अपनी डलिया में यह दिनभर का कार्य तो उनका बन गया। अब यह कार्यक्रम चला महीने भर के लिये।

उषःकाल का झुटपुटा होते-न-होते श्रीकीर्तिकुमारी अपने भवन से पूजा की डलिया लिये निकल पड़ीं। व्रज के घरों से दूसरी बालिकाएँ उनके द्वार तक पहुँचीं लगभग उसी समय। उन्हें लिये बिना क्या अकेली जा सकती हैं ये ? सबके हाथों में पूजा की डलिया है। भला, भगवती की अर्चा की सामग्री क्या दूसरे को ढोने के लिये दी जा सकती है ? वह भी क्या कोई भार है। सबने एक दूसरे के हाथ पकड़ लिये और उनका वह सम्मिलित सुमधुर गान—अप्सराएँ, किन्नरियाँ, तुम्बुरु—व्यर्थ है इनकी चर्चा; भगवती वीणापाणि की वीणा से भी ऐसी कोमल, श्रुतिसम्मोहन स्वरलहरी उठ सकती है—सन्देह ही है। वह क्या गा रही हैं ? व्रज में श्याम के मनोहारी चरित्रों को छोड़कर और भी कुछ गेय हो तो यह प्रश्न उठे। गोपों के आलाप में, गोपियों के दधिमन्थनगानमें, वन्दियों के यशोगान में—यहाँ सर्वत्र ही तो उसी नवघनसुन्दर का मङ्गलचरित गाया जाता है।

बालिकाएँ न बरसाने के मुख्य घाट पर गयीं और न उस प्रख्यात पनघट पर। उन्हें आराधना करनी है, अतः एकान्त चाहिये। बरसाने के मुख्य घाट से हटकर वे एक नीरव पुलिन पर पहुँचीं और उन्होंने पुलिन की स्वच्छ भूमि पर अपनी डलिया रख दीं। तटपर पहुँचकर शरीर पर के सब वस्त्र उतार कर रख दिये। ये कौशेय वस्त्र—ये तो नित्य पवित्र हैं। इन्हें धोने की आवश्यकता ही नहीं होती। घर से स्नान के पश्चात् बदलने के लिये वस्त्र लाने की बात उन्होंने सोची ही नहीं। इसकी आवश्यकता भी नहीं। ये छः से साढ़े नौ वर्ष तक की बालिकाएँ—इन्हें भला, यह विचार भी कैसे हो कि उनके नंगे स्नान करते समय कोई इधर आ जाय तो ?—आ जाय तो हुआ क्या !

उन सबों ने स्नान किया—मार्गशीर्ष का पावन मास कल से प्रारम्भ होगा, परंतु उसका स्नान तो कार्तिकी पूर्णिमा से आज ही प्रारम्भ हो गया है। शीत बढ़ गया है, जल में देर तक रहा नहीं जा सकता। डुबकियाँ लगाकर वे बाहर आ गयीं, वस्त्रों पर जल के छींटे देकर पहिन लिये और

झटपट पूजा करने बैठ गयीं। वेणियों से बूँदें टपक रही हैं, मुख पूरे भीगे हैं, शरीर पोंछा नहीं गया, सूक्ष्म वस्त्र भीगे शरीर से लगकर भीग गये स्थान-स्थान से—यह सब देखने, सोचने-समझने योग्य अभी वे हुई ही कहाँ हैं और फिर इस समय—इस समय तो उनका ध्यान यहाँ है ही नहीं। उन्हें पूजा करनी है। वे महामाया भद्रकाली कात्यायनी की पूजा करेंगी--भला, कहीं ऐसा भी हो सकता है कि उनकी पूजा से जगदम्बा प्रसन्न न हों। फिर भगवती पूर्णमासी ने कहा जो है। उन्हें लगता है कि भद्रकाली उनकी पूजा की प्रतीक्षा में ही हैं—इनकी पूजा की प्रतीक्षा वे न करें, तो करेंगी किसकी प्रतीक्षा।

× × × ×

बालिकाएँ अपनी-अपनी डलिया लेकर मण्डलाकार बैठ गयीं। उन्होंने मृदुल लाल-लाल करों से ऊपर की रेत एक ओर हटाकर स्वच्छ की भूमि और वहीं की कुछ गीली रेत एकत्र करके बड़ी-सी स्तूपाकार पिण्डी बनायी। अपने हाथों से उसे धीरे-धीरे थप-थपाकर ऐसा कर दिया कि पूजा सामग्री चढ़ने पर फिसले नहीं। यह हो गया उनका भद्रकाली-पीठ। जिसके भ्रू-विलास के संकेत पर महामाया कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का सृजन-पालन-संहार किया करती हैं, उसीने बड़ी उत्कण्ठा से यह पीठ बनाया है। इसमें भी क्या प्राण-प्रतिष्ठा की आवश्यकता है? इतना जाग्रत्, इतना भाव-शबल पीठ कभी भी बना या बन सकेगा—स्वयं भद्रकाली भी नहीं बना सकती; किंतु इस पीठ को वे महामाया कात्यायनी प्रणाम ही कर सकती हैं। इस पर चरण रखकर अर्चा का उपहार स्वीकार करने का साहस उनमें नहीं। यह तो उनका भी वन्द्य, आराध्य पीठ ही है।

आराधना है ही भाव की वस्तु। विधि—वहाँ भाव ही मुख्य विधि है और फिर ये लड़कियाँ—ये क्या जानें विधि। किसी ने पहले चन्दन चढ़ाया, किसी ने पुष्प और किसी ने नैवेद्य से महामाया को पहले तृप्त करके तब चन्दन-पुष्प से शृङ्गार करना ठीक समझा। वे भी जब क्षुधातुर होती हैं तो पहले भोजन करके ही तो वेणी गुँथाने बैठती हैं। उनके करों के नैवेद्य के लिये महामाया क्षुधातुर न होंगी, यह कहने का साहस कौन करेगा? क्रम कुछ भी रहा हो, उन्होंने पूजा तो कर ही दी। डलिया में जो कुछ ले आयीं थीं वे, सब चढ़ा दिया। चन्दन, अक्षत, पुष्प जो बच भी गया था, उसे दुबारा चढ़ा दिया। कुछ बचा क्यों रह जाय।

पूजा समाप्त हुई। सबने अञ्जलि बाँधी, नेत्र बंद कर लिये और एक ही प्रार्थना करनी है सबको—'कात्यायनी, जगदम्बा, भगवती, महामाया, तुम सर्वेश्वरी हो! तुम सब कुछ करने में समर्थ हो! ये व्रजपति नन्द के जो कुमार हैं, उन्हें हमारा पति बना दो!' बड़ी सीधी-सी प्रार्थना, पर सबके कमल-दल-विशाल दृगों की बंद पलकों से बिन्दु टपक रहे हैं। सबने वहीं पर भूमि पर मस्तक रखकर प्रणाम किया।

बात क्या है? पूजा हो गयी, प्रार्थना भी हो गयी; पर वे महामाया तो प्रगट नहीं हुईं। उन्होंने अलक्ष्य रहकर ही 'एवमस्तु' कह दिया होता, वह भी तो नहीं हुआ। बालिकाओं ने एक क्षण भूमि पर मस्तक रक्खे-रक्खे ही प्रतीक्षा की—कदाचित् वे भद्रकाली आती हों। भगवती पूर्णमासी झूठ तो बोलतीं नहीं, तब क्यों कात्यायनी ने उन्हें आशीर्वाद नहीं दिया। उन्हें तो आशा थी कि पूजा करते ही भगवती प्रगट हो जायँगी। 'कुछ भूल हुई होगी, यह पुष्प कुछ मलिन है, यह फल पूरा पका नहीं है, मेरा पूजा का क्रम ठीक नहीं था—भला, कहीं सिन्दूर भी पीछे चढ़ाया जाता है! अच्छा कल—कल सब खूब सावधान रहेंगी। कल सब ठीक-ठीक पूजा करेंगी। कल तो भगवती प्रगट हो ही जायँगी।' पता नहीं क्या-क्या मन्त्रणा कर डाली उन्होंने परस्पर। कल—कल—कल, इस प्रकार दिन टलता गया। वह कल कभी आज बनता ही जो नहीं।

भगवती भद्रकाली—इतना संकोच, इतना असमंजस, इतनी अन्तर व्यथा उन्होंने भी कभी अनुभव नहीं की। वे जिनके पदों में स्वयं प्रणत रहती हैं, वे ही—वे ही आज-कल नित्य अपनी सहेलियों के साथ उनकी श्रद्धा, उत्कण्ठा, उल्लास से पूजा करती हैं! यह हेमन्त का शीतकाल, इसमें बड़े सबेरे वे सुकुमार कर पूजा की सामग्री भरी डलिया ले आते हैं। कालिन्दी के हिम-शीतल जल में

स्नान करके कितनी आशा से वे पूजा करने बैठती हैं, प्रार्थना के समय जब उनके विशाल लोचनों से बिन्दु टपकने लगते हैं, भद्रकाली, कात्यायनी, महामाया कहकर जब वे पुकारने लगती हैं, इच्छा होती है, प्रकट होकर, हाथ जोड़कर, उनके श्रीचरणों में मस्तक रखकर कह दें—'आज्ञा दो, देवि !' और कृतार्थ हो जायँ; किंतु किंतु ये श्यामसुन्दर, ये साधन-साध्य कहाँ हैं। इनको देने की बात—यहाँ भी तो केवल इच्छा का अनुवर्तन करने ही का अधिकार है महामाया को। वे भी केवल इन मयूरमुकुटी से प्रार्थना ही तो कर सकतीं हैं। जब वह नटनागर श्रीकीर्ति-किशोरी की नित्य-नित्य की प्रार्थना को अभी सुनकर भी अटका है, तो उनकी प्रार्थना किस गिनती में है; लेकिन आज पूर्णिमा है, आज बालिकाओं के अनुष्ठान की पूर्णिमा है, आज भी क्या वे निराश ही लौटेंगी ? महामाया का हृदय आज आकुल है। वे अपने आराध्य को कातर की भाँति स्मरण करने लगीं हैं।

'आज मार्गशीर्ष की पूर्णिमा है—भगवती पूर्णमासी ने पूर्णिमा तक स्नान-पूजन करने का आदेश दिया था। आज ही महामाया प्रकट होंगी। व्यर्थ हम सब बीच में प्रतीक्षा करती थीं। यदि बीच में ही उन्हें प्रत्यक्ष होना होता तो भगवती एक महीने तक की पूजा ही क्यों बतातीं। भूल तो हम सबों की है; लेकिन आज पूर्णिमा है। आज तो कात्यायनी अवश्य 'एवमस्तु' कहेंगी।' बालिकाओं का विश्वास तो कभी विचलित हुआ ही नहीं। आज उनकी डलिया अधिक सुसज्ज, अधिक भारी हो गयी है। आज उनके कलकण्ठ के गीत गद्गद स्वर के कारण कुछ विचित्र हो गये हैं। आज उनके शरीर का रोम-रोम पुलकित है।

× × × ×

कन्हैया आज बड़े सबेरे जग गया है। दाऊ का जन्म-नक्षत्र है, वह वन में नहीं जायगा। मैया की इच्छा नहीं कि श्याम एकाकी वन में जाय; पर वह तो आज अँधेरे में ही उठ गया। गो-दोहन के लिये आज उसने बाबा को उकताहट में डाल दिया। गायों के पुकारने से पूर्व ही वह गोष्ठ में पहुँच गया।

'भद्र, बड़ा आलसी है तू ! उठेगा भी या मैं सब गायें दुह लूँ !' आज उसीने बाबा के पलँग पर सोये भद्र को जगाया। दाऊ को तो जाना नहीं है, अतः उसे जगाने की भी आवश्यकता नहीं जान पड़ी; गोदोहन में आज ही दाऊ को सम्मिलित नहीं होने दिया इस नटखट ने।

'मैया, जल्दी से कलेऊ करा दे ! मैं आज चुपचाप गायें और बछड़े ग्राम से बाहर ले जाकर तब शृङ्ग बजाऊँगा। सब सोते से उठेंगे और भाग-दौड़ मचायेंगे, बड़ा आनन्द आयेगा।' मैया कहाँ कर पाती है इतनी शीघ्रता; लेकिन श्याम की तत्परता ने उसे विवश किया। आज सूर्योदय के पूर्व ही उसने गायें खोल दीं और यह बजा उसका शृङ्ग !

'मैं कितना सबेरे उठा, तुझे पता भी है !' सखाओं के एकत्र होने पर श्याम ने श्रीदामा को सम्बोधित किया।

'चाहे जितना सबेरे उठे, मेरी बहिन से पहले थोड़े ही उठा होगा। वह तो अपनी सखियों के साथ कब की श्रीयमुनाजी के तटपर चली गयी और अब तो स्नान करके पूजा भी करती होगी।' श्रीदामा भला, हार क्यों मान ले। क्या हुआ जो वह कुछ देर से जगा, उसकी बहिन जब शीघ्र जग गयी तो भाई होने के नाते इस गौरव में उसका कुछ तो भाग होगा ही।

'अच्छा, यह बात है ! तभी वे सब आज-कल वन में दही नहीं ले आतीं। आओ, देखें तो कैसी पूजा करती हैं सब !' श्याम ने यमुनाजी की ओर मुख किया।

'जैसे वे सब घाट पर तुझे मिल ही जायँगी !' श्रीदामा ने बताया कि वे सब तो उधर दूर अकेले में नहाने जाती हैं।

'गायों को इधर ही चरने दो ! चुपचाप आओ ! किसी की पूजा में विघ्न करना अच्छा नहीं होता।' छिपकर ही देखना है तो धीरे-धीरे चुपचाप तो चलना ही पड़ेगा।

'दाम, देख न ! सब नंगी स्नान कर रही हैं ! है न बुरी बात ! अच्छा छकाता हूँ इन्हें !' श्रीदाम ने जब समाचार दिया, उसका अनुमान कुछ बहक गया। ये लड़कियाँ अभी तो स्नान ही कर

रही हैं। कन्हैया ने एकबार उसके मुख की ओर देखा, कंधे पर हाथ रक्खा और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वह क्या झुका हुआ, दबे पैर चला जा रहा है पुलिन पर।

'अरे, श्याम ने तो सबके कपड़े उठाकर लाद लिये कंधों पर! वह भागा, वह तो समीप के मौलिश्री के वृक्ष पर ही चढ़ गया।' लड़कों ने तालियाँ बजायीं।

लड़कियाँ चौंक पड़ीं। वे आज उल्लास में हैं। आज उनकी पूजा का अन्तिम दिन है। आज तो अवश्य जगदंबा प्रगट होंगी। परस्पर जलके छींटे देकर विनोद करने लग गयीं थीं वे। उन्होंने बालकों की तालियाँ और हास्यध्वनि सुनी, चौंककर तट की ओर देखा! 'ये सब क्यों इस प्रकार हँस रहे हैं!' बालकों की दृष्टि के साथ उनकी दृष्टि भी वृक्ष पर गयी। 'अरे' वे एक दूसरे का मुख देखने लगीं। उनके अधरों पर हास्य खेल गया। 'वह बैठा है पत्तों के बीच से झाँकता मयूर-मुकुटी। वे हँस रहे हैं उसके विशाल किंचित् अरुणाभ लोचन। वे रक्खी हैं पास की शाखा पर साड़ियाँ और उत्तरीय। वह तो इस प्रकार डालपर जम कर बैठा है, जैसे उसे वहाँ से उतरना ही नहीं है।' बालिकायें कुछ और गहरे जल में जाकर खड़ी हो गयीं। क्या करें वे, परस्पर एक दूसरी को और उस कदम्ब पर बैठे नटखट को देखकर मन्द-मन्द हँसती जा रही हैं।

'अरे, तुम सब इस प्रकार क्यों खड़ी हो! यहाँ आओ और अपने-अपने वस्त्र ले लो! मैं सच कहता हूँ, तुम सब तो स्वयं इस सबेरे-सबेरे के स्नान और पूजा से दुबली हो गयी हो; भला, तुमसे क्या हँसी की जाय। तुम्हारे यहाँ आते ही मैं वस्त्र दे दूँगा। मैं झूठ नहीं कहता, तुम्हें विश्वास न हो तो इन में से किसी सखा से पूछ लो। मैंने तो पहले भी कभी झूठ नहीं कहा है, ये सब इसे जानते हैं। तुम सब चाहे एक-एक करके आकर वस्त्र ले लो, चाहे सब साथ आ जाओ!' आज जैसे बड़ा दयालु हो गया है यह चपल। लड़के तो ताली बजा-बजाकर हँस रहे हैं और वह भी हँसता जाता है। पाँच से नौ वर्ष तक के ये लड़के, सब सोचते हैं कि कन्हैया ने अच्छा छकाया है इन सबों को।

बालिकाएँ—उनमें भी कोई पूरे दस वर्ष की नहीं है। इन बालकों में अधिकांश के भाई हैं, लेकिन सब नटखट हैं। सब आज उन्हें चिढ़ाने पर उतारू हो गये हैं। उन्हें जल से बाहर आने में क्या संकोच होना था, यदि ये लड़के या दूसरे कोई गोप होते; लेकिन यह श्यामसुन्दर—इसी को पति बनाने के लिये वे इस प्रातः-स्नान में लगी हैं। इस वनमाली के सम्मुख कैसे नंगे निकला जाय। इसके सम्मुख लज्जा का अनुभव तो स्वाभाविक है। उन्हें भी हँसी आ गयी श्याम की इस चपलता पर। जैसा वह स्वयं है, वैसे ही सखाओं को साक्षी बना लिया है इसने। सब परस्पर एक दूसरे को देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ीं और वहीं जल में खड़ी रहीं।

'कन्हैया, तू बड़ा निष्ठुर है! देख न, सबके कमल-जैसे मुख लाल-लाल हो गये हैं शीत से। सब काँपने लगी हैं। दे भी दे इनके वस्त्र।' लेकिन भद्र की बात आज कौन सुने? ये सब लड़के इतने मग्न होकर ताली बजा रहे हैं, कूद रहे हैं, हँस रहे हैं कि भद्र के शब्द किसी को सुनायी पड़ ही नहीं सकते। 'अच्छा, मेरी बात नहीं सुनता तू!' भद्र यह उपेक्षा कैसे सह ले। 'सब दुष्ट हैं। यह श्रीदाम—यह भी दुष्ट है। इसे अपनी बहिन पर दया भी नहीं आती। बिचारी भोली लड़की कैसी काँप रही है। कितना लाल हो गया है उसका मुख। मैं इन सबों से बोलूँगा ही नहीं।' भद्र ने लकुट उठाया और गायों की ओर अकेला ही रूठकर चला गया। किसी का ध्यान ही उसकी ओर नहीं गया।

यह हेमन्त का शीतकाल, यह यमुना का हिम-शीतल सलिल, कण्ठ तक जल में खड़ी ये सुकुमार बालिकाएँ, इनका शरीर काँप रहा है। पतले अधर हिलने लगे हैं। कब तक वे इस कष्ट को सह सकती थीं। उनमें एक ने बड़ी नम्रता से कहा—'मोहन! तुम तो श्रीव्रजपति के कुमार हो, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। व्रज में सब लोग तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करते हैं, तुम हमें अत्यन्त प्रिय हो; देखो, हम सर्दी से काँप रही हैं, हमारा वस्त्र दे दो!' कन्हैया क्या बातों में आनेवाला है? वह तो वह नीप के सघन पत्तों में खिलखिला कर हँस रहा है!

'यह कहे तो श्याम मान लेगा !' लड़कियों ने श्रीवृषभानुकुमारी को प्रेरित किया। भला, यह भोली लड़की क्या कहे। मुख नीचे करके बड़ी कठिनता से वह कोकिल-कण्ठ कूजित-सा हुआ— 'श्यामसुन्दर, हम सब तो तुम्हारी दासियाँ हैं ! तुम जो कहो, वही करेंगी। तुम स्वयं धर्म को जानते हो, हमारे वस्त्र दे दो !'

'बड़ा धर्मज्ञ है यह—ऐसे कहीं प्रार्थना की जाती है !' एक लड़की का तेज श्रीराधा की इस प्रार्थना को नहीं सह सका। उसने झटपट बात पूरी की—'देखो, यदि तुम वस्त्र नहीं दोगे तो हम जाकर व्रजराज से कह देंगी।

'जा, तू कहकर आ !' धमकी का उत्तर तो कन्हाई ने दिया; पर अभी जो धमकी से पूर्व वह नम्रतर स्वर था, भला, क्या उसकी उपेक्षा की जा सकती है। मोहन का स्वर भी भावक्षुब्ध हो गया। 'तुम सब यदि मेरी दासियाँ हो और मेरी बात तुम्हें माननी है तो यहाँ आकर अपने वस्त्र ले लो!

'इस भोली बालिका के भोलेपन का कुछ ठिकाना !' श्याम आज्ञा दे रहा है तो वह एक क्षण भी कैसे रुकी रह सकती है। सबसे सुकुमार, पुष्प-सी कोमल, सम्भवतः शीत अब इसे असह्य हो गया है। सखियों को अच्छा तो नहीं लगा; किंतु श्रीवृषभानुनन्दिनी ने तो उनकी ओर देखा तक नहीं। दोनों हाथ नीचे करके गुप्ताङ्ग छिपा लिया और जल से तट की ओर मुख नीचे किये चल पड़ीं वे। सखियाँ अब कैसे रुकी रहें। उनके हठ का अर्थ भी अब क्या रहा। सब उसी प्रकार पीछे चलीं और उस नीप के नीचे आकर खड़ी हो गयीं।

श्याम ने सबके वस्त्र उठाकर अपने कंधों पर लाद लिये। 'तुम सबों ने जल में इतने दिनों नंगी होकर स्नान किया। बाबा कहते हैं कि जल के देवता होते हैं। नंगे नहाने से उनका अपमान होता है। तुम्हारी पूजा में तो रोज यह अपराध हुआ है।' बड़ी गम्भीरता से उसने यह बात कही है। हास्य का लेश तक नहीं उसकी वाणी में।

'नित्य अपराध हुआ !' बालिकाएं चौंकीं। कदाचित् इसी अपराध से भगवती कात्यायनी ने अबतक उनको आशीर्वाद नहीं दिया। तब क्या उनका उद्देश सफल नहीं होगा ? उनका यह व्रत व्यर्थ गया ?' उनके विशाल दृग भर गये। उनके काँपते अधर सूखने-से लगे। चिन्ता से उनका मुख कुछ और झुक गया।

'चिन्ता करने की बात नहीं है !' श्यामसुन्दर की स्वस्थ वाणी सुनायी पड़ी। 'बड़ा सरल है इस अपराध का प्रायश्चित्त। तुम सब अञ्जलि बाँधकर मस्तक से लगाकर भगवान् सूर्य को प्रणाम कर लो और फिर अपने वस्त्र ले लो !'

भद्र—वह रूठकर चला तो गया, पर क्या इस प्रकार एकाकी दूर जा सकता है वह। उसके कान पीछे ही लगे हैं, कोई उसे पुकारेगा, कोई मनाने आयेगा। नीप के उच्चवृक्ष से सुनी उसने भी श्याम की वाणी। 'ओह, कितना दयालु है उसका कन्हाई ! बिचारी लड़कियों का महीने भरका परिश्रम मिट्टी में मिला जाता था, यह कनूं अपनों की बिगड़ी बनाने सदा ही तो समय पर उपस्थित हो जाता है। वह नटखट है सही—पर बड़ा दयालु है ! उससे क्या रूठा जा सकता है।' भद्र का मान स्वतः गल गया। वह लौटा।

बालिकाएँ—उन्हें तो जैसे प्राणदान मिला। उन्होंने अपने छोटे-छोटे कोमल हाथ जोड़ लिये और मस्तक से लगाकर ऊपर देखा। पूर्व दिशा में जैसे किसी ने होली खेली है। वह ज्योतिर्मय भास्कर-बिम्ब और उसके मध्य—श्याम के ठीक पीछे ही वह भगवान् आदित्य का बिम्ब है और ऐसा लगता है, मोहन के मुख-मण्डल का ही वह ज्योतिर्वलय हो। व्रजेन्द्रनन्दन ही जैसे उस बिम्ब का अधिष्ठाता है। मुग्ध-सी एक पल दृष्टि उस छविपर स्थिर रही और फिर लड़कियों के मस्तक श्रद्धा से झुक गये।

मोहन सबके वस्त्र पहचानता है। एक साथ, एक क्षण में उसने सबको उनके वस्त्र उनके ऊपर गिरा दिये। सबको लगा, वस्त्र पहले उसे ही मिला है। न तो वस्त्र देने में भूल हुई और न

विलम्ब। लड़कियों ने झटपट वस्त्र पहिने और अब उन्हें जाना चाहिये; पर वे तो मुख नीचे किये, पद के नखों से भूमि कुरेदती खड़ी ही हैं।

सखाओं ने देखा, श्याम वृक्ष से उतर आया है। लड़कियों में प्रत्येक ने देखा, वह उसी के सामने कूदकर खड़ा हो गया है। लड़कियों ने सिर झुका रक्खा है--उन्हें भ्रम होना सम्भव है। 'तुम सबों ने जिस उद्देश से यह भद्रकाली की आराधना की है, वह मुझे ज्ञात है। अगले वर्ष शारदीय रात्रियों में तुम मेरे साथ क्रीड़ा करना!' और भी कुछ कह गया वह---परंतु लड़कियों के श्रवण-हृदय तो यहीं तृप्त हो गये। आगे सुनने, समझने योग्य न उनका मन है और न उन्हें आवश्यकता है।

'कनूँ, तू इन सबों से कब तक अनुनय करेगा और क्षमा माँगेगा। श्रीदाम ने चिढ़ाया। 'हमारी गायें दूर चली गयीं!'

सचमुच गायें दूर चली गयी हों तो? वह कूदता-उछलता सखाओं के मध्य में आ गया। लड़कियाँ देखती रहीं--देखती रहीं उसे।

—❀◯❀◯❀—

विप्र-पत्नियाँ

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः । प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वित्तं न बहुज्ञता ॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च । प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम् ॥

— भागवत ७।७।५१,५२

'मुझे तो भूख लगी है ।' मधुमङ्गल ने सुबल के कंधे पर हाथ रखा । सचमुच उसका मुख कुछ म्लान-सा हो रहा है ।

'भूख तो मुझे भी जान पड़ती है; पर इस वन में तो कोई अच्छे फल भी नहीं देख पड़ते ।' सुबल ने इधर-उधर देखा ।

'मैं पहले कहता था कि दूर मत चलो । कलेऊ साथ लाये नहीं और भला, यहाँ कोई कैसे पहुँचेगा कलेऊ लेकर !' मधुमङ्गल भोजन के सम्बन्ध में धैर्य नहीं रख सकता । वह झल्लाया । सच-मुच बालक आज दूर तक बढ़ आये हैं । मध्याह्न होने को आया । अवश्य कलेऊ लेकर आनेवाले उन्हें कहीं दूसरी ओर वनमें ढूँढ़ते होंगे । इधर आने की बात वे कैसे सोचेंगे । मथुरा की ओर आने के लिये तो बार-बार, नित्य मैया सबको मना करती है; पर इस गोपाल का क्या हो । वह नवीन वन देखने की ही उमंग में रहता है । गायों को नवीन वन में बढ़े तृण मिलते हैं, यह तो ठीक—पर आज यह जो कलेऊ नहीं आया सो ?

'कन्हैया न नाचता है न गाता है, न कूदता है और न वंशी ही बजाता है । देखो न, वह कैसा थका-सा तमाल के नीचे बैठ गया है दाऊ के साथ । दोनों ही भूखे दीखते हैं ।' भद्र को लगा कि कन्हैया का मुख सचमुच भूख से कुछ उदास लगता है । दाऊ भी तो चुपचाप बैठा है ।

'मुझसे तो रहा जाता नहीं !' मधुमङ्गल बैठ गया और फिर लेट गया घास पर । सबने अनुभव किया कि वे बहुत भूखे हैं । वहीं उनकी मंडली बैठ गयी कोई उपाय सोचने ।

'यह कनूँ ही सब उत्पात करता है; वह इधर न ले आता तो यह कठिनाई आती ही क्यों । उसी से कहो कि भोजन लाये !' श्रीदामा झल्लाया ।

कन्हैया कोई उपाय चाहे तो निकाल सकता है !' भद्र ने भी वही बात कही, पर दूसरे ढंग से । उसका कनूँ अवश्य ऐसे समय उपाय सोच निकालने में बड़ा कुशल है, यह सब जानते हैं ।

'अरे, तुम सब वहाँ क्या पंचायत कर रहे हो !' श्यामने सखाओं को दूर इस प्रकार कुछ मन्त्रणा करते, मण्डली बनाकर बैठे देखा तो पहिले दाऊ से कुछ कहा और फिर पुकारने लगा ।

'कनू, मुझे भूख लगी है—बड़ी जोर की भूख !' मधुमङ्गल सबसे आगे दौड़ा । उसे लगा कि कन्हैया झट कहीं से भोजन निकाल देगा ।

'तब तू पत्ती खा ले या फिर उस बड़े बछड़े के साथ घास चर !' श्याम ने मुख बनाकर चिढ़ाया उसे ।

'गोविन्द !' भद्र ने उसका दाहिना हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया । 'सचमुच हम सब भूखे हैं, तू कोई उपाय सोच तो !'

'कन्हाई ! आज यहाँ तक भला, कलेऊ कैसे आयेगा ! अभी तो आया नहीं ! लौटने में भी कितनी देर लगेगी !' सुबल ने श्रीदाम का हाथ दबाकर उसे बोलने से रोक दिया । श्रीदाम के बोलने पर कहीं कन्हैया उससे झगड़ने लगे तो भोजन की समस्या अटकी रह जायगी । बालकों ने दूर तक इधर-उधर जाकर, पेड़ों पर चढ़कर देख लिया है—कलेऊ लाता कहीं कोई दीखता नहीं । बड़ी देर हुई आज तो ।

'इसमें सोचने की क्या बात है!' श्याम ने अँगुली से एक ओर संकेत किया। 'वह धुँआँ उठ रहा है न, वहाँ मथुरा के ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं। उनसे जाकर भोजन माँग लाओ।'

'वहाँ, वहाँ भोजन मिल जायगा! वे ब्राह्मण भोजन दे देंगे! चल तब!' सब उठ खड़े हुए!

'वे ब्राह्मण हैं न!' बात तो ठीक है। ब्राह्मण तो बड़े दयालु होते हैं, सीधे होते हैं।

'अरे! *प्रणाम करके कह देना कि हम सब वन में गायें चराते दूर आ गये हैं और भूखे हैं*–बस!' कन्हैया ने समझाया। 'न हो तो मेरा नाम बता देना और दाऊ भैया का भी। कह देना कि हम दोनों थोड़ी ही दूर पर हैं।' भला, यह भी कोई बात है कि श्याम और राम का नाम सुनकर भी कोई उनके लिये भोजन नहीं दे।

'तू क्यों नहीं चलता? हम अकेले नहीं जायँगे!' श्रीदामने ठीक तो कहा है। दाऊ बड़ा है, वह न जाय तो ठीक, यह कन्हैया क्यों नहीं जाता?

'मैं थक गया हूँ! मुझ से तो भूख के मारे चला ही नहीं जाता!' मुँह बनाया उस नटखट ने।

'यज्ञ-मण्डप है कितनी दूर, इसे यहीं रहने दो!' वरूथप को अच्छा नहीं लगा कि श्याम से इस समय चलने का हठ किया जाय। वह आगे बढ़ा।

'सब-के-सब मत जाओ! वहाँ गैया भागेंगी तो..!' श्रीदामा नहीं जा रहा है, पर वह क्या गायें घेरेगा। वह तो कहने पर झगड़ेगा। कन्हैया ने भद्र को रोका। उसके साथ कुछ बालक रुक गये।

'अरे, सुनो!' श्याम ने खड़े होकर पुकारा! सब दौड़े जा रहे हैं, भूख जो लगी है। 'बता देना कि सौत्रामणि यज्ञ को छोड़कर दूसरे किसी यज्ञ में अतिथि को अन्न देने से यज्ञ में दोष नहीं आता!' पता नहीं इस कन्हैया को क्या-क्या ज्ञात है। बालकों को प्रश्न करने का अवकाश होता तो वे पूछते · क्यों दोष नहीं होता? तुझे कैसे पता? आदि। पर इस समय तो वे दूसरी धुन में हैं।

× × × ×

कदली-स्तम्भ से सज्जित, तोरण बँधे मुख्य द्वार के समीप पहुँचकर बालकों ने पृथ्वी पर लेट कर प्रणाम किया ब्राह्मणों को। माता-पिता ने उन्हें यह शिक्षा दी है। उन्होंने देख लिया कि मण्डप में भीतर चारो कोनों पर वेदियों पर कुछ चित्रित मण्डल बने हैं। उनके समीप कलशों पर दीपक प्रज्वलित हो रहे हैं। मध्य में बड़ी-सी वेदी है और तीन हवन-कुण्ड हैं। एक गोल, एक चन्द्राकार और एक चौकोर। हवन कुण्डों में अग्नि प्रज्वलित हो रहे हैं। सुगन्धित धुआँ उठ रहा है। यज्ञ-मण्डप में चारो ओर ब्राह्मण पंक्तिबद्ध बैठे हैं। अधिक देखने का अवकाश नहीं है, उन्होंने केवल यह देख लिया है कि किसी कारण से मन्त्रपाठ तथा आहुतियाँ कुछ क्षणों के लिये रुक गयी हैं। उनके काम योग्य पकान्नों का वहाँ अभाव नहीं है।

प्रार्थना करने के लिये उपयुक्त समय है। वरूथप ने नम्रता से कहा—'विप्रवरों, आप सब व्रजराज-कुमार श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम को तो जानते ही हैं।' भला, ऐसा भी कोई हो सकता है, जो राम-श्याम को न जाने—यह तो बालक सोच ही नहीं सकते। आशा थी कि इतना कहना ही पर्याप्त होगा, पर ब्राह्मण तो बोलते ही नहीं। उनमें से कुछ ने मुख फेर कर देखा है जिज्ञासा से और कुछ ने तो सुना ही नहीं। वरूथप ने ही कुछ और ऊँचे स्वर से कहा—'हम सब उनके साथी हैं!' 'अरे, ब्राह्मण तो इतने पर भी कुछ बोलते नहीं!' एक बालक ने दूसरे के कान में धीरे से कहा। वे सब बहुत संकुचित हुए, एक दूसरे से सटे खड़े हैं।

'गायें चराते हुए हम सब यहाँ से थोड़ी दूर तक आ गये हैं। *श्याम और दाऊ वहीं*—यहाँ से पास ही बैठे हैं। आज यहाँ तक कलेऊ आया नहीं। वे दोनों और हम सब बहुत भूखे हैं। यदि आप लोग कृपा कर...।' वरूथप से आगे बोला नहीं गया। वह संकोच के कारण चुप हो गया। पीछे उसने सखाओं की ओर देखा।

'वह सौत्रामणीवाली बात !' एक ने धीरे से उसके कान में कहा। सब उसी को कहने का संकेत करते हैं। दूसरा कोई बोलना नहीं चाहता।

'श्याम ने बताया है कि सौत्रामणी यज्ञ को छोड़कर और किसी यज्ञ में अतिथि को अन्न देने से यज्ञ में कोई दोष नहीं आता !' श्याम ने ठीक ही कहा होगा, इसमें तो संदेह नहीं; पर ये ब्राह्मण तो कुछ बोलते ही नहीं। जिन्होंने मुख फेरकर देखा था, वे भी मुख मोड़ चुके। ये लोग तो अपने काम में लग गये !

बालकों ने एक दूसरे की ओर देखा। कुछ क्षण वे प्रतीक्षा में खड़े रहे। किसी ने उनकी ओर नहीं देखा। इतनी उपेक्षा तो उन्होंने कभी सही नहीं। धीरे-धीरे पीछे हटे वे। उनके मुख नीचे झुक गये। निर्मल नेत्रों में जल भर आया।

'कन्हैया ने हमें यहाँ भेजा ही क्यों ? क्या पता ये सब ब्राह्मण सौत्रामणी यज्ञ ही कर रहे हों; दूसरों से न बोलने का नियम लिया हो इन्होंने तो ? श्याम बड़ा नटखट है।' अनेक प्रकार के विकल्प उठे परस्पर। सब कन्हैया से कुछ रुष्ट हैं। उसे जाकर उलाहना देंगे कस के। एक तो भूख लगी है, दूसरे इतनी दूर दौड़ा दिया और वह भी ऐसे स्थान पर कि जहाँ कोई बोलता तक नहीं !

× × × ×

'अबकी बार अवश्य भोजन मिलेगा ! एक बार उन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाओ और मेरा नाम लेकर कहो। वे बड़ी सीधी हैं। मुझसे बहुत स्नेह करती हैं। वे खूब बढ़िया भोजन देंगी।' श्यामसुन्दर ने सखाओं को दूसरी बार भेजने का प्रयत्न किया। उसका खिन्न-सा मुख, बार-बार उदर पर हाथ फेरना, थक कर बैठ रहना क्या ऐसा है कि उसे देखकर भी कोई उलाहना दे सके। सबने केवल लौटकर उसके मुख की ओर देखा और सबके नेत्र भर गये। 'वे ब्राह्मण तो बोलते ही नहीं।' टप-टप आँसू गिराते हुए उन्होंने इतना ही कहा है। कन्हैया ने तुरंत फिर जाने का प्रस्ताव कर दिया।

'कनूँ, तू साथ चल न ! स्त्रियों से तेरी ही खूब पटती है।' एक ने आग्रह किया।

'मुझे बड़े जोर की भूख लगी है ! मैं चल कैसे सकता हूँ ! तुम सबों के हाथ जोड़ता हूँ, एक बार और जाओ ! जल्दी से जाओ तो !' उस चपल ने सचमुच हाथ जोड़ लिये और फिर घास पर लेट गया। जैसे उससे बैठा भी नहीं जायगा। 'वहाँ अबकी बढ़िया-बढ़िया खूब सारा भोजन अवश्य मिलेगा ! देखो, कहीं रास्ते में ही मत खाने लगना।'

'भोजन मिलेगा, श्याम कहता है न !' इस समय बालक बहुत भूखे हैं। वे फिर दौड़ पड़े शीघ्रता से उस यज्ञ स्थान की ओर।

× × × ×

'इधर से नहीं, उधर के द्वार से !' बात ठीक है। बालक ब्राह्मणों की दृष्टि बचाकर ही जाना चाहते हैं। क्या पता कि वे अपनी स्त्रियों को भी कुछ देने से मना कर दें। क्या पता कि वे डाँटने ही लगें। पीछे के द्वार से सबने उस यज्ञस्थान के घेरे में प्रवेश किया और अग्निशाला को दूर छोड़कर सीधे 'पत्नीशाला' के सम्मुख गये।

रंग-विरंगे वस्त्र पहने, आभूषणों से सुसज्जित, कुछ गाती हुई ब्राह्मण-पत्नियाँ विविध कार्यों में लगी थीं। कोई व्यञ्जन बना रही थी, कोई वस्तु-सम्भार में लगी थी, कोई हवि प्रस्तुत कर रही थी, कोई स्थान स्वच्छ कर रही थी। जल, समिधा, फल, पुष्प, माल्य-ग्रन्थन आदि अनेक कार्य चल रहे थे। आभूषणों की झंकृति के साथ उनका कोमल गायन-स्वर गूँज रहा था। सहसा सबके हाथ रुक गये। इतने सुन्दर बालक तो उन्होंने मथुरा में देखे नहीं। एक दो नहीं, शतशः छोटे-छोटे सुन्दर बालक कहाँ से आ गये ? उत्सुकता वश उन्होंने द्वार की ओर देखा।

'आप सब विप्र-पत्नियों को प्रणाम ! आप हमारी प्रार्थना सुनें !' अरे, कितने नम्र, भोले बालक हैं। सबने भूमि पर मस्तक रखकर प्रणाम किया और तब वरूथप ही आगे होकर बोला।

'नन्दग्राम से गायें चराते हुए हम सब यहाँ तक आ गये हैं। हम सब बहुत भूखे हैं। हमारे साथ श्रीकृष्ण और बलराम भी हैं। वे यहाँ से थोड़ी ही दूर पर गायों के समीप हैं। यदि आप हम सबको कुछ खाने को दे सकें ···!' वरूथप ने मस्तक झुका लिया था। उसने देखा नहीं कि बात पूरी होने से पूर्व ही उन विप्र-पत्नियों में कितनी व्यग्रता प्रकट हुई।

'श्रीकृष्ण और बलराम पास ही हैं! वे ही श्रीकृष्ण जो अनेक असुर मार चुके हैं! परम सुन्दर, भुवन-मोहन, मुरलीधर श्रीकृष्ण पास ही हैं! वे भूखे हैं!' नारियों ने जो थाल पास मिला, उसी को उठा लिया। कौन देखे कि थाल किसका है। कौन देखे कि अन्न जो मैंने बनाया है, वही है या दूसरे का बनाया है। कौन सोचे कि कौन-सा अन्न यज्ञ में अभी आवश्यक होगा। 'श्रीकृष्ण पास हैं, वे भूखे हैं!' थालियों में अन्न भरा जाने लगा। थाल उठाते-उठाते कई बार नीचे रखे गये। अनेक पदार्थों का स्मरण हुआ। कोई वस्तु छूटनी नहीं चाहिये। मथुरा में घर-घर श्रीकृष्णचन्द्र की चर्चा होती है। विप्र-पत्नियों ने बड़ी आशा की थी यहाँ यज्ञ-मण्डप आते समय कि वे उस त्रिभुवन-सुन्दर का वन में दर्शन कर सकेंगी। कई दिन व्यतीत हो चुके थे। वे निराशप्राय हो चुकी थीं। आज यह सहसा समाचार मिला, जैसे उन्हें अपार निधि लूटनी है। स्वर्ण-थालों में विविध पकान्न भरकर वे निकलीं। वस्त्र-आभरण—किसे इनका स्मरण है। वे स्वयं अस्त-व्यस्त हो रही हैं।

'चलो, शीघ्रता करो!' बालक तो यह चाहते ही हैं। उन्हें भी भय है कि कहीं कोई ब्राह्मण-देवता इधर न आ जायँ। कोई इन सबों को रोक न दे। बार-बार वे सशङ्क दृष्टि से देख लेते हैं, यज्ञ मण्डप की ओर।

'अरे, क्या हो रहा है? कहाँ जा रही हो तुम सब? ठहरो! रुको! बात सुनो! महाराज कंस सुनेंगे तो सबको मरवा डालेंगे!' ब्राह्मणों में से एक ने थाल लेकर पत्नीशाला से निकलती स्त्रियों को देख लिया। उसने देख लिया पिछले द्वार से शीघ्रतापूर्वक एक दूसरे को ठेलते, भागते बालकों को। उसके बोलते ही सब चिल्लाने लगे। कुछ उठकर दौड़े भी। स्रुवा छोड़कर, पात्र लुढ़काते वे दौड़े।

'अरे वे ब्राह्मण आ रहे हैं!' लड़कों ने जो पुकारते-दौड़ते ब्राह्मणों को देखा तो भाग चले। 'भागो! भागो!

'सुनो! रुको! मत जाओ!' क्रोध से, अनुरोध से पुकारते ब्राह्मण दौड़े कुछ दूर। आभूषणों की झंकार करती, भोजन-थाल का भार सम्हाले स्त्रियाँ इतनी तीव्र गति से दौड़ सकती हैं, उन्होंने कभी सोचा नहीं था। पति, पिता, भाई, कौन पुकार रहा है, क्या कह रहा है—यह वे सुनती कहाँ हैं। वे तो लड़कों से तनिक पीछे रहनेवाली नहीं। कहीं कोई पकड़ न ले। किसी के पीछे कोई हिंस्र पशु दौड़े और वह प्राण लेकर भागे—कुछ इसी प्रकार भाग रही हैं वे। ब्राह्मण क्रोध से काँपते, पुकारते, ओष्ठ काटते खड़े हो गये हैं। वे समझ गये हैं कि आज दौड़कर वे इनको पकड नहीं सकते।

'चल, कहाँ चली है!' हाय, हाय, बेचारी को थाल सजाने में कुछ क्षण अधिक लग गये थे। सबसे पीछे रह गयी थी यह एक ब्राह्मणी। उसका युवक पति कितना निष्ठुर है। दौड़कर उसने वेणी पकड़ ली। स्वर्ण-थाल झन-झनाकर गिर पड़ा। व्यंजन बिखर गये। वह तो रोती भी नहीं, चिल्लाती नहीं। नेत्र बंद करके पति के केश खींचते ही उसके पैरों के पास भूमि पर गिर पड़ी। मुखपर एक ज्योति आयी, मन्द मुस्कान आयी और—शरीर विवर्ण हो गया।

'उठती है या नहीं!' अपने कर्कश कण्ठ से चीत्कार-सा करता ब्राह्मण पत्नी के हाथ को स्पर्श करते ही चौंक गया। कहाँ है उसकी स्त्री? वह जिसे पकड़ने चला था, उसका प्राणहीन पार्थिव देह पड़ा है उसके सम्मुख। वह—वह तो हृदय में उसे पाकर उसके शाश्वत सांनिध्य में पहुँच गयी, जिसके लिये चली थी।

× × × ×

आगे-आगे लकुट लिये, कंधों पर चित्र-विचित्र पटुके रक्खे गोप-बालक और उनके पीछे, रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहिने हाथों से व्यञ्जन-भरे स्वर्ण-थाल सिर पर रखकर किसी प्रकार सम्हाले,

आभूषणों की झंकार से वन को गुंजित करती ब्राह्मणों की स्त्रियाँ दौड़ी जा रही हैं—दौड़ी जा रही हैं पूरे जोर से। श्वास की गति बढ़ गयी है। मुखों पर स्वेद की बड़ी-बड़ी बूँदें झलमला उठी हैं। कोई पकड़ न ले! कोई आ न जाय!

'कहाँ, कोई तो नहीं आता!' एक बालक ने पीछे देखकर सबको बताया। सब-के-सब खड़े हो गये। उन्होंने पीछे देखकर हँसते हुए तालियाँ बजायीं, जैसे बड़ा समर जीत लिया हो। ब्राह्मण-स्त्रियों ने भी तनिक रुककर पीछे देखा और सन्तोष की दीर्घ श्वास खींची। बालक अब क्यों दौड़ने लगे। उन स्त्रियों को यह अच्छा नहीं लगा। इससे दौड़ना कितना अच्छा था! श्यामसुन्दर के समीप शीघ्र पहुँच जातीं; किंतु बालकों को छोड़कर वे दौड़ें तो जायँ किधर? वे ही तो उनके मार्ग-दर्शक हैं।

दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे सघन वृक्ष हैं। उनपर पुष्पित लतायें चढ़कर छायी हैं। वन-मृग स्त्रियों की आभूषण-ध्वनि से चकित होकर बार-बार घूम-घूमकर उनकी ओर देखते हैं। स्त्रियाँ आगे, इधर-उधर बराबर देखती जाती हैं। उनके नेत्र किसी को ढूँढ़ रहे हैं, बड़ी आतुरता से।

'वह रहा धर्म, वह नन्दिनी है!' बालकों ने फिर ताली बजायी। दूर सघन झुरमुट से कुछ पशु दीख पड़ गये। बालक हर्षित हैं। उनके मुख-कमल खिल गये हैं। 'हम सब आ गये अब!' ब्राह्मण-स्त्रियों के नेत्र ललक उठे। हृदय की गति तीव्र हो गयी। चरणों में और वेग आया।

× × × ×

चारो ओर ऊँचे-ऊँचे अशोक के वृक्ष हैं। उनके कोमल-कोमल लाल-लाल पल्लव वायु से धीरे-धीरे हिल रहे हैं, जैसे वे अपने अरुण करों से संकेत द्वारा किसी को समीप बुला रहे हों। वृक्षों से घिरा एक छोटा-सा मैदान है उनके मध्य में। दूर्वादल ने उस भूमि पर हरित-मृदुल आस्तरण बिछा रक्खा है। कहीं-कहीं कुछ नन्हे कुसुम हैं भूमि के उन तृणों पर। पूँछ फैलाकर इधर-उधर मयूर नृत्य कर रहे हैं! निदाघ में मयूरों का यह नृत्य? किंतु उनका श्यामघन उनके सम्मुख जो है। भृङ्गों पर बंदर उछल-कूद कर रहे हैं। तोते, कोयल तथा दूसरे पक्षी फुदकते, बोलते धूम मचाये हैं। नीचे चारों ओर गायें-ही-गायें वन में फैली हैं। कुछ बैठ गयी हैं, कुछ खड़ी हैं और कुछ चरने में लगी हैं। वृषभ बार-बार गर्जन करते हैं और बछड़े उछल-कूद मचाये हैं। मृग, वाराह, रीछ, सिंह, शशकादि वनपशुओं का दल—यह क्यों है यहाँ? समस्त वन का जैसे यहीं केन्द्र हो।

बछड़ों ने दौड़कर बालकों को सूँघा। समीप की गायों ने नाम लेने पर मुख उठाया। वरूथप ने जोर से पुकारा—'कनूँ!' सम्मुख कुछ बालक मैदान में खड़े हो गये झट से। ओह, मैदान में भी बहुत-से बालक हैं। सब एक साथ हर्ष से खड़े हो गये हैं उछलकर।

'वह दाऊ भैया है!' एक बालक ने ब्राह्मण-स्त्रियों को संकेत से बताया। स्वर्णगौर, नीलाम्बरधारी वह दिव्य छटा परिचय की अपेक्षा नहीं रखती।

'वह—वह खड़ा है कन्हाई भद्र के कंधे पर हाथ रखके!' दिखलाने से पूर्व ही नेत्र वहाँ पहुँच चुके हैं। उन आगताओं को भला, उस सजल-जलद-श्याम को भी क्या पहिचानना होगा? वह क्या खड़ा है वह अपने दीर्घ अरुणाभ दृगों से कुछ हँसता-सा, पतले लाल अधरों से मुस्कराता इधर ही देखता। मस्तक पर मयूर-पिच्छ लहरा रहा है, अलकों में ढेर-से वन-कुसुम उलझे हैं, विशाल भाल पर गोरोचन का तिलक है, कपोलों पर पद्मराग के कुण्डल झलमल कर रहे हैं। नेत्रों में माता का लगाया काजल है—और भी कुछ है—कुछ अवर्णनीय। गले में वनमाला है, मुक्तामाल और गुँजामाल भी है। कंधे पर पटुका है, कटि की कछनी में मुरली लगी है और ललित त्रिभङ्गी से खड़े वे अरुण-मृदुल चरण.. । पूरा श्याम शरीर वन धातुओं से चित्रित है। वाम भुजा सखा के कंधे पर है और दाहिने हाथ में डंठल-सहित एक अरुण शतदल लिये बार-बार घुमा रहा है उसे। विश्व में इतनी सुषमा की कल्पना भी कहाँ। ब्राह्मण-स्त्रियों के नेत्रों से अश्रु-धारा गिरने लगी। पलकों के

साथ उनके चरण भी स्थिर हो गये, यह उन्हें पता ही नहीं। बालकों ने आश्चर्य से उनकी ओर देखा। 'इन सबों को हो क्या गया ?'

× × × ×

'ब्राह्मण-पत्नियो, आप स्वयं यहाँ आ गयीं ! आपका स्वागत !' कन्हैया हँसा। वह भद्र के साथ स्वयं उनके सम्मुखतक बढ़ आया। तनिक मस्तक झुकाकर उसने प्रणाम किया। स्वर—उस परम मधु स्वर ने उन सबको सावधान किया। सबने, जैसे निद्रा से चौंककर उठी हों, थालों को झुककर सम्मुख रख दिया और फिर स्थिर खड़ी हो गयीं सिर झुकाकर।

'अरे, आप सबने इतना कष्ट क्यों किया ? आपके यहाँ तक आने की क्या आवश्यकता थी ? भोजन तो मेरे सखा ही ले आते !' वह इतना गम्भीर बन गया है कि क्या पूछना। ब्राह्मणियाँ क्या कहें। कहने को तो बहुत है; पर मुख जो नहीं खुलता।

'अच्छा, आप सब मुझे देखने आयी हैं। बड़ा अच्छा हुआ। प्रायः मै जहाँ जाता हूँ, सब लोग—सब प्राणी मुझे देखने दौड़ आते हैं; पर आप यहाँ चली आयीं, वहाँ आपके परिवार के लोग आप सबों को ढूँढ़ते होंगे !' अपने-आप ही श्याम सब कहे जा रहा है।

'वे ब्राह्मण तो इन्हें पकड़ ही लेने दौड़े थे, पर ये सब हमारे साथ खूब दौड़कर चली आयी हैं। ब्राह्मण दौड़ ही नहीं सके इतना।' कुतूहलपूर्वक एक बालक ने कहा। स्त्रियों ने सिर झुका लिया।

'अरे, वे ब्राह्मण आप सबकी प्रतीक्षा करते होंगे ! अब उनके यज्ञ का समय हो गया है। बिना पत्नी के यज्ञ-कार्य कैसे आगे चलेगा ? उनके देव-पूजन में विघ्न नहीं पड़ना चाहिये। आप सब अब जल्दी लौट जाइये !' कन्हैया तो इस प्रकार कह रहा है, जैसे प्रार्थना कर रहा हो।

ब्राह्मणों की स्त्रियों के मस्तक बहुत झुक गये हैं। उनके नेत्रों से टपा-टप बूँदे गिरने लगी हैं। वे अपने पैर के अँगूठों से भूमि खोदने लगी हैं। भरे कण्ठ से किसी प्रकार उनका स्वर सुनायी पड़ा—'तुमको तो हम लोगों ने सर्वसमर्थ सुना है। सारी विधि-मर्यादाओं को छोड़कर, पति-पिता-भाई आदि के आग्रह, आदेश की उपेक्षा करके तुम्हारे श्रीचरणों में आयी हैं। अब तुम्हें तो इस प्रकार निष्ठुर नहीं बनना चाहिये। ऐसी बातें मत कहो। हमें अब वे हमारे पति, पिता, भाई, पुत्रादि अपने पास फटकने भी नहीं देंगे। तुम्हारे लिये ही हम सब यों निराश्रय हुई हैं। तुम्हीं हमारी एकमात्र गति हो !'

'अरे, तो ये लौटेंगी नहीं !' बालकों ने एक दूसरे की ओर देखा। 'तब ये क्या करेंगी ? गायें चरायेंगी हमारी या घर चलकर मैया की सेवा करेंगी ?' मन के इस प्रश्न को कहने या पूछने का अवसर नहीं है। कभी उन स्त्रियों की ओर और कभी कन्हैया की ओर वे देख रहे हैं।

'नहीं, नहीं, ब्राह्मण बहुत सीधे हैं। वे लोग तुममें से किसी से कुछ नहीं कहेंगे। अब तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि मेरे पास से लौटे व्यक्ति से कोई द्वेष करे ! वे तुम्हारा स्वागत करेंगे !' श्याम सुन्दर ने इतने स्थिर स्वरों में यह बात कही है कि बालक भी इसपर अविश्वास नहीं कर सकते; परंतु ये स्त्रियाँ तो खड़ी ही हैं। वे तो जाने का नाम ही नहीं लेतीं।

'समीप रहने से उतना प्रेम नहीं होता, जितना दूर रहकर मनसे चिन्तन करने से होता है। मुझ में मन लगाकर घर में ही रहो ! मैं तो मथुरा भी आऊँगा ही। तुम सब बहुत शीघ्र मुझ से मिल सकोगी !' उस मदनमोहन ने लौटने के लिये पूरा आग्रह स्वरों में भर लिया।

'तुम···!' ब्राह्मणियाँ क्या कहें ? नेत्र वृष्टि कर रहे हैं। कण्ठ बोलने नहीं देता और··· मैं कहाँ दूर हूँ !' पता नहीं यह मथुरा पधारने की भूमिका है या और कुछ। श्याम ने स्वर को अद्भुत बना लिया। 'पर यज्ञ में बाधा पड़ेगी न ? चलो, मैं पहुँचा आऊँ !' 'तुम पहुँचा आओगे ?' भला, भूखा श्यामसुन्दर साथ चले, यह कौन पसंद करता। वे विवशतः मुड़ीं।

× × × ×

'अरे, तुम सब लौट आयीं ! बड़ी शीघ्रता से लौटी हो ! अच्छा, बड़ा अच्छा किया ! अब जल्दी से पैर धो डालो और यज्ञ-मण्डप में चलो ! समय हो गया है !' स्त्रियाँ किस प्रकार लौट

आयी हैं, यह वे ही जानती हैं। उनके चरण किसी प्रकार चले आये हैं। बार-बार मुड़कर वे देखती आयी हैं, कोई तो पुकार ले फिर से—मार्ग में क्या पड़ा, कौन मिला। उन्हें कुछ पता नहीं। उनका मन तो वहाँ वन में रह गया। उनके नेत्रों में है वह ग्वाल-बाल-मण्डली, वह नील सुन्दर और अब वे भोजन करते होंगे···पर इन ब्राह्मणों को क्या हो गया है ? इतने हर्ष से तो उन्होंने अपनी स्त्रियों का स्वागत किया नहीं था पहिले कभी। यज्ञशाला से आभूषणों की ध्वनि सुनते ही दण्ड लेकर द्वार तक दौड़ क्या वे स्वागत करने आये थे ? पर स्त्रियों पर दृष्टि पड़ते ही उन्हें कुछ हो गया है। दण्ड उन्होंने फेंकने, छिपाने का लज्जापूर्वक प्रयत्न क्या यों ही किया है ? स्त्रियाँ चौंकीं—पुरुषों के कण्ठ-स्वर ने एक क्षण के लिये भीतर के भय से उनके चरणों को स्थिर किया और फिर वे सीधे पत्नीशाला में चली गयीं। यह अनपेक्षित स्वागत, पुरुषों द्वारा यह अभ्यर्थना उनकी उदासीनता को प्रभावित करने में तनिक भी सफल नहीं हो सकी। जैसे उन्हें किसी की अपेक्षा नहीं। जैसे उनके शरीर यन्त्र-चालित हों।

'हम सब लोगों को शिक्षा देते हैं, पवित्र आचार्य कहलाते हैं, उच्च कुल में उत्पन्न हुए हैं और सभी ने वेदों का स्वाध्याय किया है; परंतु मूर्ख हैं हम ! हमारी श्रेष्ठता को धिक्कार है। हम जानते हैं कि ये श्रीकृष्णचन्द्र, वसुदेव-नन्दन साक्षात् परमात्मा हैं, परंतु हमने उनके सहचरों का अपमान किया। हम यज्ञ करने चले हैं और यज्ञेश ने दया करके जब हमसे अन्न चाहा तो हम सब-के-सब उपेक्षा कर गये !' स्त्रियों के जाते ही उनमें जो सबसे वृद्ध ब्राह्मण हैं, वे फूट-फूटकर रोने लगे।

'भला, उन पूर्णकाम सर्वेश प्रभु को क्या आवश्यकता ! वे इच्छा करते ही त्रिभुवन को तृप्त करने में समर्थ हैं। प्रत्येक देश में, प्रत्येक समय में, नाना द्रव्यों, विविध मन्त्रों तथा उपचारों से उन्हीं की तो आराधना होती है। वे ही मन्त्र, यन्त्र, मूर्तिस्वरूप हैं। वे यज्ञमूर्ति, धर्मस्वरूप ही यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं—यह हमने सुना है, पर मूर्खतावश इसे हमने समझा नहीं। हम पर परम दयालु होकर जब वे हमारी सेवा स्वीकार करने का प्रस्तुत हुए, हमारे मुख से उनके स्वजनों की प्रार्थना के उत्तर में एक शब्द तक नहीं निकला।' वृद्ध के नेत्र झर रहे हैं। हिचकी बँध गयी है। आज भर्त्सना किसकी करे वह। सभी ने मस्तक झुका लिये हैं। हतप्रभ हो रहे हैं सब।

'मनुष्य-जीवन का परम स्वार्थ हमें प्राप्त हो रहा था और समाज के गुरु होकर भी हम सब-के-सब मूर्खतावश उसे खो बैठे. यह उन सर्वेश की माया ही है ! वह मुनियों-योगियों को भी मोहित करनेवाली माया—हम सब उससे पार पायें, ऐसी शक्ति है हमारी ?' दूसरे ने अपने नेत्र पोंछ लिये।

'ये स्त्रियाँ—न इनका द्विजाति-संस्कार होता, न ये वेदों की अधिकारिणी हैं, न ये तपस्या करतीं, न पवित्र रहतीं और न इन्हें आत्मज्ञान ही है; परंतु कितना प्रेम है इनका श्रीकृष्णचन्द्र में ! हम सबके रोकने पर, गृह से निकाल देने का भय दिखाने पर भी सबको तृण की भाँति ठुकराकर चली गयीं। और एक हम हैं—सब संस्कारों से सम्पन्न, तप-यज्ञादि करके अपने को पवित्र मानने वाले, गोप-बालकों ने कहा—बताया कि 'श्रीकृष्ण और बलराम ने हमें भेजा है' इतने पर भी हमें स्मरण न हुआ।' अब प्रभुकी माया स्मरण करके सबमें कुछ आश्वासन का भाव आया है। सबने नेत्र पोंछ लिये। उनमें परस्पर कुछ बातचीत चलने लगी।

'हम सब धन्य हैं ! हमें ऐसी परम भागवत पत्नियाँ मिलीं, जिनके कारण श्रीकृष्णचन्द्र में हमारा अनुराग हुआ !' एक तरुण ने गद्‌गद् स्वर से कहा और पत्नीशाला की ओर देखने लगा।

'श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम ! वे सर्वसमर्थ हम सबको क्षमा करें। हम अल्पशक्ति जीव उनकी माया से मोहित होकर इस कर्ममय प्रपञ्च में फँसे भ्रान्त हो रहे हैं !' सबने एक साथ मस्तक झुकाया अञ्जलि बाँधकर।

'श्रीकृष्णचन्द्र दूर तो हैं नहीं, हम सब भी दर्शन कर आयें और उनके श्रीचरणों में पहुँचकर क्षमा प्रार्थना करें !' एक युवक ने उत्साहपूर्वक कहा—

'यदि कहीं महाराज कंस को पता लग गया ?' दूसरे ने शङ्कित स्वर में कहा। 'स्त्रियों की बात दूसरी है; पर हम स्वयं गये थे, यह सुनने पर तो कोई बहाना नहीं रहेगा बचने के लिये।'

'जो सर्वव्यापक सर्वेश हैं, वे क्या हमारे हृदय को नहीं देखते!' दूसरे ने अपने भय को दूसरा रूप दिया। श्रद्धा चाहे जितनी हो, कंसका रोष सहने का साहस उनमें नहीं है। स्त्रियों ने पैर धो लिये हैं और कुछ आश्वस्त होकर अनमने भाव से यज्ञ-मण्डप में वे आ रही हैं। यज्ञ भी तो पूरा करना है।

× × × ×

'अच्छा, तुम सब पंचायत किया करो!' मधुमङ्गल ने एक बड़े-से थाल के पास आसन लगाया। अब तक तो किसी को भोजन का स्मरण ही नहीं आया था। ब्राह्मण-स्त्रियाँ थाल छोड़कर लौटने लगीं। वे बिचारी बार-बार मुड़कर देखती गयी हैं। कन्हैया भी उनकी ओर देखता रहा है। अब भी वह उधर ही देख रहा है। स्त्रियाँ अब दिखायी नहीं पड़तीं। बंदरों ने कूँ-काँ करना प्रारम्भ कर दिया है। मधुमङ्गल को ही पहले भोजन का स्मरण हुआ। है भी वही भोजनभट्ट।

'तू इस थाल से उठना मत!' सबने एक साथ हाथ डालकर थाल खाली कर दिया। भला, इन चञ्चल बालकों में कोई इस प्रकार थाल परसकर भोजन कर सकता है।

दाऊ को कहने को तो एक पूरा थाल दिया गया और श्रीदाम, सुबल, कन्हैया ने भी एक एक थाल सम्मुख किया, पर कितने क्षण को ? भद्र बिना दाऊ के साथ भोजन किये रह नहीं सकता और दाऊ का पेट भरने से रहा, जब तक दो-चार उसके पात्र के सामने न बैठ जायँ। श्याम ने अपने थाल की पूरी सामग्री सुबल के सम्मुख ढेर कर दी और श्रीदाम के थाल को अपना बताकर झगड़ना ही है उसे। भला, श्रीदाम वह रिक्त पात्र कैसे ले ले।

छीना-झपटी, हास-परिहास, एक दूसरे के थाल से उठा लेना, एक दूसरे के थाल में ढेरों पदार्थ डाल देना, इस उछल-कूद के बिना क्या श्याम का वन-भोजन चल सकता है ? कुछ मुख में गया, कुछ वस्त्रों पर या शरीर पर गिरा, कुछ भूमि पर गिरा और बहुत कुछ बंदरों, पक्षियों, मृगों आदि के लिये फेंका जाता रहा। कहाँ तक अन्न की यह सद्गति की जाय। अन्त में बचा भाग पशु-पक्षियों के लिये थालों के साथ वहीं छोड़कर वे सब श्रीयमुनाजी की ओर दौड़े जलपान के लिये। यहाँ तक कि पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, पिपीलिकाएँ भी उस अवशेष उच्छिष्ट में भाग लेने एकत्र हो गयीं।

—❀○❀○❀—

मदन-विजय

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥

—भागवत १० । २९ । ३

प्रेम और काम—पिता और पुत्र—श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न; किंतु हृदय इतना छोटा है कि वहाँ एक ही रह सकता है। जहाँ काम है, वहाँ प्रेम कैसे आ जाय और जहाँ प्रेम है, वहाँ काम का काम भी क्या ?

काम—जगद्विजयी कुसुमधन्वा मकरध्वज, सामान्य प्राणी किस गणना में हैं उसके सम्मुख ! भगवान् शंकर ने उसे भस्म कर दिया यह ठीक; किंतु उसके छोटे भाई क्रोध ने तो वहाँ भी विजय प्राप्त ही कर ली। वह पराजित हुआ है— बुरी तरह पराजित हुआ है हिमप्रान्त के उन जटिल तपस्वि-युगल नर-नारायण से ! अनेक बार, अनेक ऋषियों, साधकों ने उसका सम्मोहन-बाण व्यर्थ कर दिया है, उन्हीं श्रीनारायण के अरुण-मृदुल श्रीचरणों के बलपर। नारायण—बस उनसे उसकी नहीं चलती। प्रत्यक्ष उनसे तो क्या चलेगी; जो मनमें भी उनकी एक झलक पा लेते हैं, जो उनका नाम लेकर ही उन्हे कातर भाव से पुकार लेते हैं—व्यर्थ हो जाते हैं मन्मथ के कुवलय, आम्रमौर, मल्लिका, शिरीष और करवीर के पाँचो सुमन-शर वहाँ।

यह भी कोई विजय है—मार लज्जित होना तो जानता ही नहीं। मार और लज्जा—उसे गर्व है कि कोई उसे चुनौती देकर कभी पराजित नहीं कर सका। उसकी मीनाङ्कित सिन्दूरी ध्वजा जगद्विजयिनी है। अकेले तपोवन में, शरीर को उपवासादि से सुखाकर किसी ने उसे विमुख ही कर दिया तो हुआ क्या। उसकी पराजय तो तब हो, जब कोई सुपुष्ट काय, युवावस्था लेकर उसके साधनों के मध्य ललकारकर उसे नीचा दिखा सके। वह ठूँठ में सरसता ला देने में समर्थ है, यह ठीक; किंतु ये मनुष्य—कभी-कभी ये नारायण में एकाग्र होकर जब पार्थिव जीवन से ही ऊपर उठ जाते हैं—मृतकों को भला, कौन जीवित कर सकता है। कोई जीवनधारी चुनौती दे उसे तो ठीक भी है।

ये देवर्षि—ये क्यों बार-बार मुस्कराते हुए उसे छेड़ते हैं—क्या धरा है व्रज के गोपों में। ये क्यों बार-बार कहते हैं—'देवता, अच्छे-भले सुकुमार सुमन-देवता ! देखो, कहीं व्रज की ओर मत भटक पड़ना ! वहाँ वह जो मयूर-मुकुटी कमल-दल-लोचन नव-जलधर-सुन्दर कुमार है—बड़ा चञ्चल है। बड़ा नटखट है। बड़ी दुर्गति करेगा तुम्हारी !'

'नव-जलधर-वर्ण—ठीक मेरा ही स्वरूप, कमल-दल-लोचन—मयूर-मुकुटी—मेरी विजय के, मेरी उत्तेजना के प्रोत्साहन के, सब साधन जुटाये, वह कुमार और चञ्चल—न कोई वृद्ध, न स्थिर संयमी ! कोई ब्राह्मण भी नहीं—गोप-कुमार ! और वह मेरी दुर्गति कर लेगा !' भुवन-विजयी मकरध्वज इस चुनौती को कैसे सहन कर ले।

'यह शरत्-पूर्णिमा—आज वन स्वभावतः मेरे बाण के सर्वश्रेष्ठ मल्लिका-सुमनों से भर जायगा। आज सुधांशु पूर्ण होकर अमृत के साथ मादकता की वर्षा करेगा। आज गो-धूलि के पश्चात् का अरुणिम राग हृदयों को रञ्जित करेगा दिशाओं को रञ्जित करने के स्थान में। आज—आज ही मैं इस गोप-कुमार की शक्ति देख लूँगा !' मार की ध्वजा लहरायी। उसके कुसुम-धनुष पर ज्या आयी और मल्लिका के सुमनों ने उसके सम्मोहन-शर की शक्ति प्राप्त कर ली !

'यह हो क्या रहा है !' मन्मथ आरम्भ में ही चौंका। यह श्रीगणेश ही हतोत्साह करनेवाला ! उसे स्मरण है, जब उसने त्रिलोक-गुरु योगीश्वर भगवान् शंकर पर विजय करने के लिये इसी प्रकार धनुष चढ़ाया था—जड़ तक उन्मत्त हो गये थे उस दिन। त्रिलोकी मर्यादा भूलकर उसके प्रभाव में पशु हो गयी थी और आज—आज एक सामान्य गोप-कुमार उसका लक्ष्य है ! आज भी वही धनुष चढ़ा है और अब तो वह प्रयत्न भी कर रहा है कि कम-से-कम भूमण्डल पर तो वह अपना प्रभाव पहुँचने से पूर्व देख ले ! ये जगती-प्राणियों के मानस क्षुब्ध क्यों नहीं होते ? क्यों आज वह किसी के अन्तर को उल्लसित--उन्मद नहीं कर पाता ?' देवर्षि चले न गये होते तो बता देते--'भैया काम, तुम इस समय आक्रमण के लिये ही सही, उस प्रेम-धाम व्रज की ओर दृष्टि लगाये हो ! अपने ही अन्तर को देखो तो--उसमें क्या विकार है इस समय ? जब तुम में ही विकार नहीं तो तुम्हारे प्रभाव में विकारोत्पादन आये कहाँ से।'

'काम—वह क्या इतने से भीत होनेवाला शूर है ? वह त्रिभुवन-विजयी ! ये पञ्चबाण क्यों जगती के लिये इस समय प्रयुक्त हों ! वह रहा वृन्दावन ! वह रहा कालिन्दीकूल ! वह पुष्पित कानन--वास्तविक युद्ध-भूमि तो यहाँ है।' मीनकेतु ने अमरावती छोड़ दी और वह अनङ्ग व्रज की पावन कुञ्जों में एकाकार हो गया।

× × × ×

योगमाया—ये निखिल-कौतुकमयी, आज-कल इनके आराध्य व्रज में हैं। ये भी व्रज को छोड़ कहाँ अपना केन्द्र बनायें। काम--काम क्या जाने इनकी लीला, वह इनके दर्शनों में समर्थ भी कहाँ ? पर आज ये कर क्या रही हैं ? यह बरसाने की बालिकाओं में सहसा कैशोर--बालिकाएं स्वयं कुछ नहीं समझ पातीं और ये महामाया—ये तो वह चलीं कालिन्दी कूल की ओर। वहीं तो उनके आराध्य पहुँच रहे हैं।

श्याम आज वन से शीघ्र लौट आया है। उसे क्या शीघ्रता है ? उसने गायें बाँधी, मैया ने मुख-हाथ-पैर धोये उष्णोदक से और आज तो कलेऊ करने में उसने मचलने का नाम ही नहीं लिया। दिन भर वन में रहा है, भूखा होगा। कलेऊ करके वह निकला, गो-दोहन भी तो होगा ही सायंकालीन—पर अभी तो गायें गोष्ठ में आयी हैं। अभी उन्हें यवस दिया गया है। गो-दोहन में तो अभी विलम्ब है। अभी तो बाबा सायंकालीन पूजा-प्रार्थना में लगे हैं। मैया को स्वयं गोष्ठ में सुगन्धित धूप देनी है और घृत-दीप रखना है। गो-पूजन दासियों पर छोड़ा नहीं जा सकता।

मोहन कलेऊ करके उस गो-धूलि-वेला में ही पुनः वन की ओर चल पड़ा है। आज वह एकाकी क्यों जा रहा है ? वह तो श्रीयमुनातट के एकान्त मार्ग से जा रहा है ! इस प्रकार छिपकर, सबकी दृष्टि बचाकर कहाँ चला है ? क्या करना है उसे ?

मैया ने गो-रज धो दी है; वनमाला, पटुका, कछनी—सब बदलवा दिये हैं। अलकों में सुगन्धित तैल मल दिया है और भाल पर गोरोचन की खौर के मध्य यह कुङ्कुम-तिलक और कस्तूरिका-बिन्दु भी अभी ही लगा है। अच्छा, आज यह अकेला वन-शोभा देखने आया है। देखने योग्य ही है यह वन-श्री। और इस समय—भला, दिन में यह छटा कैसे देखने को मिले ? वह पश्चिम में दिवाकर का किंशुक-अरुण बिम्ब क्षितिज से नीचे जा रहा है और वह पूर्व में सुधांशु उठ रहा है क्षितिज पर। राग-रञ्जित दिशाएं, अबीर-घोला-सा यमुना-जल और सिन्दूरी-आभा में स्नान-सी किये यह वन-श्री ! उडुराज का यह पूर्ण बिम्ब—अभी अरुणिमा है उसपर ! यह सिन्धुसुता के सहोदर का ज्योतिर्मय अरुण मुख— कुङ्कुमारुण रमानन भी सम्भवतः ऐसा ही होगा। हिमांशु की ये कोमल किरणें फैलीं—यह कुञ्जों की छटा, ये चमचमाते पत्र और ये ढेर-के-ढेर उज्ज्वल नन्हे सुकुमार सुमनों से पुष्पित मल्लिका-कुञ्जें—जैसे नील नभ अपने समस्त तारक-मण्डल के साथ धरा पर उतर आया है। ये हर शृङ्गार के पुष्पित पादप—राग के सुकुमार आधार पर सत्व का छत्र-सा सम्हाले इनके ये सुन्दर सुमन—ये स्वतः नीचे झर रहे हैं, कोई उठा ले—कोई अलकों में उलझा ले—कोई सार्थक कर दे, जैसे अन्तर की उत्कण्ठा सम्हालने में विवश उमक पड़े हों।

यह सुन्दर सुरभित सुकुमार नन्हे उज्ज्वल पुष्पों से सुसज्ज, धवल-कौमुदी-स्नात वनराजि, यह जगमग करता रत्नभूमि-सा उज्ज्वल मृदुल पुलिन और यह नीलम के दर्पण-सा झलमल करता श्रीयमुना-जल—श्याम देखता रहा दो क्षण मुग्ध-सा चारों ओर और अब तो वह एक शिला पर बैठ गया। पारिजात का यह सघन तरु जैसे छत्र किये है उसके मस्तक पर और शिलापर तो वृक्ष से गिरे सुमनों का आस्तरण पहले से प्रस्तुत है। मल्लिका और पारिजात के पुष्पों से वायु की मादकता अवर्णनीय हो उठी है। अब तो वंशी बजेगी। यह एकान्त शान्त सुरभि से झूमता कानन, यह श्री यमुनातट, यह शारदीय पूर्ण ज्योत्स्ना, मुरली अब बजे बिना कैसे रह सकती है। वह निकाली मोहन ने कछनी से, वे अँगुलियाँ जमीं छिद्रों पर और वह अधर तनिक सिकुड़े।

वंशी तो नित्य ही बजती है, नित्य वह परम सम्मोहन स्वर में बजती है; पर आज—आज उसका स्वर—आज वह इस अद्भुत कम्प से क्यों कुहक-सी रही है। मार—भ्रम हो गया है उसे कि वह आज मुरली में आ बैठा है। आज वंशी में उसका राग है। वंशी आज प्रणव को प्रत्यक्ष करने के स्थान पर काम-बीज को जीवन दे रही है। मूर्ख मार—काम-बीज तो नित्य कन्हैया का स्वरूप है, मदन-बीज कब हुआ वह? मन्मथ-नाम के कारण उसे अपना बीज मान ले तो क्या वह उसका हो जायगा? फिर यह श्याम की मुरलिका से निकलता कण्ठ-तालु के स्पर्श को इकार की गति देता, हृदय को मथित करता उन्मद कामबीज—मार ने देखा होता कि उसका उत्थान मदन के स्वाधिष्ठान से होता भी है या नहीं! यह हृदय के अन्तरतम अष्टदल की कर्णिका से उठनेवाला दिव्य राग, मार का नहीं, महामाया ने श्याम की योगमाया का स्वर है। मोहन के अधर मुरली पर लगे हैं और उसके नेत्रों में अधरों का वह नित्य मन्दहास्य आ बैठा है।

गोपियाँ नित्य ही तो वंशीध्वनि सुनती हैं, लेकिन आज की यह वंशीध्वनि—आज तो वंशी उनका नाम लेकर पुकार-सी रही है! आज उनके लिये—केवल उनके लिये गूँज रहा है यह मोहन राग। नित्य वे वंशी सुनती हैं और जहाँ-का तहाँ स्तम्भित हो जाती हैं। उनका शरीर स्पन्दहीन हो जाता है। प्राण कर्णों में आ जाते हैं। उनकी ही नहीं, पूरे व्रज की यही दशा होती है। किन्तु दूसरे तो आज सुनते ही नहीं वह वंशी-राग और गोपियाँ 'वंशी उन्हें ही पुकार रही है! श्याम बुला रहा है!' घर, द्वार, परिजन, शरीर—सब भूल गया उन्हें। जो जहाँ, जैसे, जिस दशा में हैं, वहीं से दौड़ीं—दौड़ना कहना भी ठीक नहीं, उड़ी जा रही हैं वे। अस्तव्यस्त उड़ी जा रही हैं। गिरती-उठती, उलझती-सुलझती वे उड़ी जा रही हैं इस ध्वनि को लक्ष्य बनाये।

आज किसी को पुकारना नहीं है, किसी से कहना नहीं है। वे कहाँ जा रही हैं—आज सखियों से भी वे छिपाना ही चाहती हैं। परस्पर और कदाचित् अपने से भी उन्हें शङ्का है। कोई कुछ पूछे नहीं, कोई एक क्षण का विलम्ब न कर दे। मुख झुकाये, सबसे बचती वे भागी जा रही हैं।

कोई-कोई गोदोहन के लिये बछड़े खोल रही थीं; वंशी बजी, बछड़े छूटे या बँधे है—पता नहीं! कूदते बछड़े से उलझकर उनकी साड़ी भूमि में गिरकर लोट रही है, उनके नूपुरों में बछड़े की रस्सी उलझी और वह टूट गया—पता किसे है। वह भागी जा रही है। कुछ तो दूध दुहने बैठ गयी थीं-दोहनी गिर पड़ी, दूध फैल गया, साड़ी सन गयी दूध से—लेकिन मन जो पहुँच गया उस मुरली-मोहन के समीप।

किसी ने बालक को गोद में लिया था दूध पिलाने के लिये और किसी के अग्निपर चढ़े दूध में उफान उठा था। वह दूध उतारने को उठी—बालक भूमि पर पड़ा रोता है, दूध अग्नि पर गिर रहा है। वे भागीं—वे भागी जा रही हैं।

किसी-किसी को शृङ्गार करना था। अञ्जन, अङ्गराग, आभरण, लाक्षाद्रव—प्रसाधन-सामग्री लेकर बैठी थी। अञ्जन एक या आधी आँख में ही लगा रह गया है और इसने तो ओष्ठों में ही लगा लिया है—दौड़ते में कज्जल-सम्पुट पर चरण पड़ा और काला हो गया, एक चरण में लाक्षाद्रव लगा, यह भी कुशल। नहीं तो लाक्षाद्रव मुखपर और अङ्गराग चरण में भी तो किसी-किसी

ने पोत ही लिया है, एक कान में ही कुण्डल पहिन पायी कोई और किसी-किसी के एक कर में ही कङ्कण या एक चरण में ही नूपुर हैं। कानों में कङ्कण, हाथों में नूपुर भी इस अस्त-व्यस्त दशा में हो गये हैं। मुरली बज गयी--मन-प्राण खिंचे और वे दौड़ी जा रही हैं।

किसी-किसी के पिता, पुत्र, भाई या पति भोजन करने ही बैठे थे। थाल परसी गयी या माँगने पर परसने को कुछ उठाया गया; यह वंशी जो बजने लगी। थाल धरा रहा, स्वजन देखते रह गये, परसने को उठाया पदार्थ हाथ में ही है और वे चलीं—वे दौड़ चलीं उस अमृत के पथ, सूक्ष्म रँगीले 'नाद' के मार्ग से।

बालिकायें, युवतियाँ, तरुणियाँ—आज सभी अद्भुत उन्मादभाव में भागी जा रही हैं। उनके वस्त्र लताओं में, पादपों की झुकी शाखाओं में उलझ रहे हैं, आभरण टूट रहे हैं, कबरियाँ खुल गयी हैं—पृथ्वी पर खिंचते वस्त्र को सम्हालने-जितनी चेतना कहाँ है। वह वंशी-ध्वनि आ रही है। इधर—इधर—ठीक इधर से ही वह ध्वनि पुकार रही है। श्याम बुला रहा है! प्राण तो कब के पहुँच चुके। मन तो कभी उनके पास मोहन को छोड़कर आया ही नहीं। शरीर—श्वास उसे खींचे लिये जा रहे हैं। जैसे वंशी के स्वरों में उनके श्वास आबद्ध हो गये हों।

'कहाँ चली तू!' वह तरुण गोप—बड़ा रूक्ष, बड़ा क्रूर, बड़ा निष्ठुर और बड़ा बलवान् है। बेचारी पत्नी उससे काँपती ही रहती थी। आज वह पति के चरण दबाने बैठी थी। वंशी बजी और फिर क्या उसे पता था कि वह क्या कर रही है। उठी ही थी कि गोप ने झपटकर हाथ पकड़ लिया। किसी ने पकड़ भी लिया, उसे पता नहीं; किन्तु श्वास—श्वास तो मुरली खींच रही है। वह दुर्बल सुकुमार रमणी और वह सुपुष्ट मल्ल गोप—पर गोप को लगा कि आज वह पत्नी को पकड़े रहने में समर्थ नहीं है। आज वह पता नहीं कहाँ की शक्ति पा गयी है—प्रश्नों का उत्तर तक तो देती नहीं और हाथ छुड़ाकर भागने के लिये छटपटा रही है। आज झटक दिया उसने पति को और गोप—सचमुच लड़खड़ा गया वह।

'चल, जा! देखें कैसे जाती है!' अपने को सम्हालकर वह गोप दौड़ गया कक्ष से बाहर और शीघ्रता से द्वार बंद कर दिये। 'श्याम!' गोपी को यह सब कहाँ पता है। वह तो दौड़ी—मस्तक टकरा गया द्वार से—गिर पड़ी धम् से भूमि पर। 'श्याम!' ओह, वह त्रिभुवनमोहन मिला नहीं। वह तड़पन, वह व्याकुलता—वह क्या वाणी में आ सकती है। कल्प-कल्प की नरक-यातना भी उससे कम ही दुःख देगी। पाप—जिसने कभी पाप किये हों, उसका जन्म भी क्या इस व्रजभूमि में हो सकता है। श्याम के सुन्दर श्रीमुख को जिनके नेत्रों ने देखा हो, उनके पाप कहाँ और कैसे! लेकिन यदि कोई कषाय, कुछ अमङ्गल, कुछ प्राकृतांश रहा हो—यह वेदना, यह कल्पनातीत मर्म-पीड़ा—हो चुका उसका प्रतिकार।

'श्याम!' कोई व्याकुल प्राण पुकारे और कन्हाई न आये! 'यह आया मोहन—यह मयूर-मुकुट, यह गोरोचन-तिलकाङ्कित भाल, यह कुटिल भ्रूमण्डल, ये हँसते-से विशाल लोचन, ये कुण्डल-छवि-मण्डित झलमल करते मणि-दर्पण-से कपोल-युगल, ये मन्द-मन्द मुस्कराते पतले किंशुकारुण अधरोष्ठ—भुजाएँ—दीर्घ भुजाएँ बढ़ीं—हृदय में लगा लिया उसने!' पुण्य—जन्म-जन्मान्तर के पुण्य भी क्या यह परमानन्द देने में समर्थ हैं? बड़े पुण्यों से व्रज में जन्म होता है, कोटि-कोटि जन्मों के तप से मोहन एक क्षण के लिये हृदय में आता है, अपार पुण्य-राशि होगी इसकी—वह सब तो घलुए में चली गयी। पाप-पुण्य का लेखा-जोखा तो तभी समाप्त हो चुका, जब मोहन को पाने की प्यास उठी। जो चला उसकी ओर—कौन अटका सकता है उसे। वह गयी—वह तो पहुँच भी गयी अपने हृदय-धन के समीप।

'क्या हुआ?' गोप ने भड़-भड़ाकर द्वार खोल दिये। द्वार पर सिर टकराने का धक्का, गोपी के भूमि पर गिरने का शब्द—दोनों सुने उसने और आतुरता-पूर्वक द्वार खोले। एक क्षण—एक क्षण ही तो लगा उसे; किंतु एक क्षण तो पता नहीं कितने कल्पों का अन्तर्भाव किये रहता है। ये उत्ताल

नयन, यह श्रीहीन शरीर—जिसे शरीर ही चाहिये, वह सम्हाल ले अपना शरीर। श्रुतियों के मन्त्रों द्वारा, अग्नि की साक्षी में उसे यह शरीर ही तो मिला था, अपने स्वत्व पर ही तो उसे गर्व था—यह धरा है उसका स्वत्व। प्राण—वे तो जिसके थे, उसके समीप पहुँच गये।

गोपिका नहीं जा पायी, वह—उसका शरीर नहीं जा सका, यही कहना ठीक है और उसे रोकनेवाला उस शरीर के पास मस्तक पर हाथ रखे उसके शरीर के समीप भूमि पर बैठ गया है। जैसे उसमें भी चेतना न हो। वह सोचने की शक्ति ही खो बैठा है। कितना अनर्थ हो गया उससे! ऐसी—लगभग इसी प्रकार की दशा उन सबकी हुई—जिन्हें उनके निष्ठुर स्वजन बलात् रोकने में सफल हो गये। उनकी सफलता—शव मिला उन्हें। इससे तो विफल होना ही श्रेष्ठ था।

× × × ×

गोपियाँ दौड़ती, उलझती, भागती आयीं—एक साथ ही आयीं। वे एक साथ ही तो चली थीं। एक साथ ही तो वंशी-ध्वनि पड़ी थी उनके श्रवणों में। अस्त-व्यस्त वस्त्राभरण, बिखरे-से केश-पाश, दौड़ने की गति ने श्वासों का वेग बढ़ा दिया। एक साथ आयीं और श्याम के चारो ओर मण्डलाकार क्रम् से सहसा रुक गयीं। वह शिलातल, वह पारिजात-पादप, उसके झरते उज्ज्वल श्वेत सुमन। उस शिला पर बैठा वह मयूर-मुकुटी। उसकी अलकों में पारिजात के उज्ज्वल पुष्प नील क्षितज में तारकों की भाँति उलझ गये हैं। गोपियों के परिशुद्ध चित्त ही तो वहाँ उलझकर व्यक्त नहीं हुए? सब के नेत्रों में लालसा, लज्जा और जाने क्या क्या है। अधरों पर मन्द हास्य, जैसे बिकच कमलिनियों ने इन्दीवर को घेर लिया हो।

'बड़ी भाग्यवती हैं आप सब! आप सबका स्वागत! यहाँ कैसे पधारीं आप? मैं आप लोगों का कौन-सा प्रिय कार्य कर सकता हूँ?' नटखट कहीं का, पहुँचते ही वंशी झटपट अधरों से हटाकर कटि में खोंस ली और सम्हलकर बैठता हुआ इस प्रकार पूछने लगा। जैसे कभी का परिचय ही न हो इन गोपियों से।

'अरे, मुझे कुछ विलम्ब हो गया इधर आये। व्रज में कुशल तो है? वहां कोई असुर तो नहीं आया? आप सब इस प्रकार अस्त-व्यस्त भागी-दौड़ी कैसे आयी हैं?' क्या कहना है, जैसे व्रज में कोई गोप नहीं है, जो समाचार देने आ सके। कैसा स्वर शङ्कायुक्त बना लिया है! गोपियों को हसी न आये तो क्या हो।

'यह बड़ी भयानक रात्रि है। इसमें बड़े-बड़े भयंकर जीव गुफाओं और बिलों में से निकलकर घूमते हैं। यह वन है, यहाँ रात में स्त्रियों को ठहरना नहीं चाहिये। आप लोग झटपट व्रज को लौट जायँ।' यह श्याम, जैसे वन में उसे कोई भय नहीं और स्त्रियों के लिये बड़ा भय है। कैसी बातें गढ़ना और मुख बनाना सीख गया है यह।

'तुम्हारे माता-पिता, तुम्हें ढूंढ़ते होंगे, वे बड़े चिन्तित होंगे, तुम्हारे पुत्र तुम्हारे लिये रो रहे होंगे, तुम्हारे भाई तुम्हारा पता लगाने इधर-उधर निकल पड़े होंगे, सब तुम लोगों की प्रतीक्षा करते होंगे। तुम लोग स्वजनों को दुखी मत करो!' आज ही पता नहीं स्वजनों की इतनी चिन्ता क्यों जाग्रत् हो गयी है; लेकिन वाणी में 'आप' के बदले 'तुम' आया, लक्षण तो अच्छे हैं।

'अरे, तुम सब तो खड़ी ही हो! अब भला, यहाँ रुकने का प्रयोजन क्या! तुमने इस उज्ज्वल धवल चन्द्रिका में स्नान-से किये पुष्पित वृन्दावन की शोभा तो देख ही ली, श्रीयमुनाजी को स्पर्श करके आते शीतल मन्द वायु के झूले पर झूलते-झूमते अरुण किसलय, पत्र एवं पुष्पगुच्छों की छटा भी देख ली; अब देर मत करो! जल्दी घरों को लौटो। तुम सब तो साध्वी हो, पतिव्रता हो, शीघ्र जाकर पतियों की सेवा करो। तुम्हारे बछड़े बार-बार पुकारते होंगे, जाकर गायों को दुहो! तुम्हारे बच्चे क्रन्दन करते होंगे, भूमि पर लोट-लोटकर हिचकियाँ लेते हुए रोते होंगे, उन्हें जाकर दूध पिलाओ।' ये लड़कियाँ—इन्हें माता-पिता, भाई, किसी का भय नहीं लगता! ये युवतियाँ—ये पतियों से भी डरतीं नहीं! ये तरुणियाँ—वात्सल्य भी इन्हें विचलित नहीं करता! ये तो हिलने का नाम तक नहीं ले रही हैं। सब मुख नीचे झुकाये खड़ी हैं चुपचाप।

'अच्छा, तुम्हारा चित्त मुझमें लगा है। तुम मेरे प्रेम के कारण यहाँ दौड़ी आयी हो!' अब की बार श्याम ने ठीक बात कही। सबके मुखों की अरुणिमा बढ़ गयी। यह चपल कितनी देर पर तथ्य पर आया, लेकिन यह तो वैसा ही गम्भीर बना कहता जा रहा है--'यह कोई बुरी बात नहीं, यह तो स्वाभाविक है। मुझसे सभी प्राणी प्रेम करते हैं!' धूर्त कहीं का—सभी प्राणियों का प्रेम और इनका यह लोकोत्तर विशुद्ध परम प्रेम--दोनों समान ही हैं? जान-बूझकर यह वञ्चना!

"स्त्रीका परमधर्म बिना किसी छल-कपट के पति की सेवा करना और पति के स्वजनों एवं संतानों का भरण-पोषण करना है। जो स्त्री परलोक में कल्याण चाहती हो, उसे शील-हीन (क्रोधादियुक्त) ऐश्वर्यहीन ' कुरूप एवं समाज में निन्दित) वृद्ध, मूर्ख तथा निर्धन पति का भी त्याग नहीं करना चाहिये, यदि पति पापी (धर्म-भ्रष्ट) न हो। तुम्हारे पतियों में तो इनमें से कोई दुर्गुण नहीं हैं। फिर कुलीन स्त्री के लिये उपपति (परपुरुष) की कामना परलोक नष्ट करनेवाली, अयश देनेवाली, अत्यन्त दुःखद, भयप्रद और सब कहीं (शास्त्र और लोक में) निन्दित मानी गयी है। रही मेरी बात—सो मेरे गुण एवं चरित्रों को सुनने से, मुझे देखने से, मेरा ध्यान करने से और निरन्तर मेरे नाम-गुण एवं लीला के कीर्तन से जैसा मुझ में प्रगाढ़ भाव प्राप्त होता है, वैसा भाव मेरे समीप रहने से नहीं प्राप्त होता। प्रत्येक दृष्टि से तुम लोगों का लौटना ही उचित है। अतः तुम सब अपने-अपने घरों को अभी लौट जाओ।" बड़ी गम्भीरता से, बड़े शान्त-स्निग्धस्वरों में यह पाण्डित्य प्रकट किया गया। ऐसा बैठा है यह वनमाली, जैसे गोपियों से उसका किसी प्रकार का कोई लगाव ही न हो।

'श्यामसुन्दर तो परिहास नहीं कर रहे हैं, वे तो बड़ी ही स्थिरता से बैठे हैं।' गोपियों ने देखा--क्या-क्या सोचा था उन्होंने, कितनी उमंग, कितना उल्लास लिये दौड़ी आयी हैं वे। यहाँ सुनना था क्या उन्हें। उनके मुख झुक गये, जैसे सायंकाल कमलिनियाँ संकुचित हो गयी हों। वे उत्फुल्ल मुखपीताभ हो गये। उनका संकल्प ही नष्ट हो गया। उनका विषाद—उनकी चिन्ता—कहाँ पार है उनकी इस मनोवेदना का। कष्ट का अपार वेग—नीचे झुके मुख के कमल-दल-विशाल लोचनों से अश्रुप्रवाह चल रहा है, उष्ण निःश्वास ने पतले बिम्बारुण अधरों को सुखा दिया है, अश्रु के साथ अञ्जन ने कपोल से वक्ष तक पर कालिमा फैला दी है; जैसे भीतर की निराशा, अन्तर की आकुलता व्यक्त हो गयी हो। अपने चरणों के अरुण मृदुल अङ्गुष्ठों से भूमि कुरेदती वे चुपचाप खड़ी हैं। 'यह निष्ठुर—यह तो पिघलता नहीं; पर क्षमामयी, तुम क्यों अपनी गोद में स्थान नहीं देतीं!' जैसे भूमि को वे पादाङ्गुष्ठ से प्रेरित करती हों कि अब तो फटो और हम सबों को अङ्क में ले लो।

ये श्रीकृष्ण—ये परम प्रियतम—इन्हीं के लिये घर-द्वार, स्वजन-बान्धव, समस्त कामनाएँ छोड़कर वे दौड़ी आयी हैं और ये इस प्रकार बोल रहे हैं—जैसे कोई परिचय ही न हो। किया क्या जाय, आशा बलवती होती है; जिसमें अधिक प्रेम हो, वही पराजित होता है। श्रीकृष्ण निष्ठुर हो जायँ, ठुकरा दें, उपेक्षा कर दें; पर ये—ये कहाँ जायँ उनको छोड़कर। 'युगों के समान पल बीत रहे हैं, कोई आशा नहीं, वैसे ही बैठा है यह निष्ठुर!' किसी प्रकार नेत्र पोंछे उन्होंने, वाणी स्पष्ट नहीं होती, कण्ठ भरा है; किंतु प्रार्थना के अतिरिक्त मार्ग भी क्या? रोती, हिचकियाँ लेती, गद्गद स्वर, अस्पष्ट वाणी में वे कहने लगीं—वे प्रार्थना करने लगीं! भगवती हंसवाहिनी, वीणापाणि कब ऐसा सौभाग्य मिलेगा उन्हें सार्थक होने का। सेवा का यह स्वर्ण—सुयोग वे कैसे छोड़ देंगी। गोपियों की वाणी—प्रेम-विह्वल उस वाणी में प्रतिभा की अधिष्ठात्री अपनी सम्पूर्ण सेवा अर्पित कर के कृतार्थ ही हो सकती हैं।

'मोहन, संत और शास्त्र तुम्हें विभु कहते हैं। तुम जानते हो कि समस्त लौकिक पारलौकिक भोगों को छोड़कर हम तुम्हारे श्रीचरणों में आयी हैं! यह जानकर तुम्हें ऐसी नृशंस बात नहीं कहनी चाहिये! हम तुम्हारी सेविकाएँ हैं, दुराग्रह के वश होकर हमारा त्याग मत करो! हमें उसी प्रकार स्वीकार करो, जैसे आदिपुरुष श्रीमन्नारायण मुमुक्षु-जनों को स्वीकार करते हैं!'

'श्यामसुन्दर, तुम आज बड़े धर्मज्ञ बन गये हो ! तुमने अभी जो पति-पुत्रों तथा सुहृदों के अनुकूल रहकर उनकी सेवा करना स्त्रियों का परम धर्म बताया है, यह तुम्हारा उपदेश तुम्हारे श्रीचरणों की सेवा में ही सार्थक होता है; क्यों कि समस्त शरीरधारियों के तुम परम प्रिय एवं आत्मा हो। तुम्हारी सेवा ही सबकी वास्तविक सेवा है !'

'ये पति, पुत्र, स्वजनादि--ये तो नित्य संसार में लगाकर कष्ट ही देने वाले हैं, इनसे प्रयोजन क्या। जो चतुर हैं, विज्ञ हैं, वे यह समझकर तुमसे ही अनुराग करते हैं। तुम्हीं हमारे परमेश्वर हो, हम पर प्रसन्न हो ! कृपा करो ! चिरकाल से हमने आशा की है तुमसे; कमल-लोचन, उस सुदीर्घ आशा को इस प्रकार झट से तोड़ो मत !'

'बड़े मजे से तुमने हमारे चित्त को चुरा लिया, अब कहते हो कि घर लौट जाओ। अब तो हमारे हाथ गृहकृत्य में लगेंगे ही नहीं, हमारे पैर तुम्हारे श्रीचरणों के समीप से एक पद हटाने पर भी हटने में समर्थ नहीं। तुम्हीं बताओ, हम कैसे व्रज लौटें, और वहाँ जाकर करें भी क्या ?'

'तुम्हारे मन्द हास्य, चपल कटाक्ष तथा इस श्रवण-मोहन वंशीनाद ने हमारे हृदय में उत्कण्ठा की अग्नि प्रज्वलित कर दी है। अच्छा यही है कि तुम इसे-अपने स्पर्श से शान्त कर दो; नहीं तो ध्यान के द्वारा इस विरहाग्नि में शरीर भस्म करके तुम्हें प्राप्त तो कर ही लेंगी। इससे तो तुम हमें रोक सकते ही नहीं हो !'

'कमलनयन, तुम्हारे ये श्रीचरण--सिन्धुसुता इन्हें एक क्षणके लिये छोड़ना नहीं चाहतीं। घर-द्वार छोड़कर वन में तप-निरत मुनिजन इन्हीं से प्रेम करते हैं, हमने जब से इन्हें देखा है--तभी से हृदय इनसे पृथक् रहने में असमर्थ हो गया है। हम तुम से पृथक् अब कैसे रह सकती हैं।'

'महालक्ष्मी को तुमने अपने वक्षस्थल में निवास दिया; किंतु वे रमा, जिनकी एक कृपा-कोर के लिये समस्त सुर एवं असुर सम्पूर्ण प्रयास करते रहते हैं, तुलसीचर्चित, तुम्हारे परम प्रिय भृत्यों से सेवित इन श्रीचरणों में ही स्थिर रहती हैं, हम सब भी तो उन्हीं की भाँति तुम्हारी चरण-रज की ही शरण हैं, हमारा ही तुम क्यों उपेक्षा करते हो !'

'समस्त दुखों के निवारक श्यामसुन्दर, अब हम पर प्रसन्न हो ! तुम्हारी सेवा प्राप्त होगी, इसी आशा से हम घर-द्वार छोड़कर यहाँ आयी हैं। पुरुष-भूषण, तुम्हारे मनोहारी स्मित और चपल कटाक्ष ने हमारी आकांक्षा को तीव्र कर दिया है, हमें अपनी दासियाँ बना लो !'

'हम तो तुम्हारी दासियाँ हो चुकीं, तुम्हारा यह कुटिल अलकों से घिरा चन्द्रमुख, यह रत्न-कुण्डलों से झलमलाते कपोलों की छटा, यह अधर-सुधा-स्निग्ध उज्ज्वल हास्य, यह चपल निरीक्षण, ये समस्त चराचर को अभय देनेवाले भुज-युगल और यह एकमात्र श्री का नित्य निवास विशाल वक्ष --हमने तो जब से इसे देखा, तभी से तुम्हारी दासियाँ हो गयीं हैं।'

'तुम्हारा यह भुवन-मोहन रूप, मुरली की यह उन्माद भरी सम्मोहन स्वर-लहरी, भला त्रिलोकी में ऐसी कौन-सी स्त्री है, जिसे ये विचलित न कर दें ! प्रियतम, हम अन्ततः तो नारी ही हैं, हममें मनुष्य का ही हृदय है, तुम्हारी वंशी-ध्वनि ने तो गायों, पक्षियों, वन-पशुओं को ही नहीं वृक्षों तक को द्रवित कर दिया है। देखो न, सब के अब तक रोमाञ्च हैं !'

'जैसे आदिपुरुष नारायण भगवान् वामन के रूप में स्वर्ग की रक्षा के लिये ही उपेन्द्र बने हैं, वैसे ही यह स्पष्ट है कि तुम इस व्रज के भय एवं कष्ट को दूर करने के लिये ही उत्पन्न हुए हो ! हम अत्यन्त संतप्त हैं, तब तुम क्या हमारे ताप को दूर नहीं करोगे ? श्याम, हम तुम्हारी किंकरियाँ हैं, दासियाँ हैं, हमारे मस्तक एवं हृदय पर अपने अमृत-स्यन्दी अभय कर रखो और हमें इस ताप से बचाओ।'

श्यामसुन्दर हँस पड़ा --कब तक वह इस प्रकार इन सबों को रोते-हिचकते देख सकता था। शिला से कूद कर उनके मध्य में आ गया। 'अरे, तुम सब तो सचमुच रोने ही लगीं।' उसने स्नेह-पूर्वक पटुके से नेत्र पोंछ दिये सबके ! एक साथ, एक समय ही सबके नेत्र।

'यहाँ पूरा प्रकाश नहीं है ! इन वृक्षों की छाया से हटकर आओ चलें इस कोमल उज्ज्वल पुलिन पर !' वह मुड़ा और उसके साथ चलीं उसे घेरे वे सहस्रशः गोपियाँ, जैसे यूथपति को करिणियाँ घेरे चलती हों। गोपियों का शोक, उनका रोना, अश्रु—ये सब तो कब के दूर हो गये। श्यामसुन्दर बड़ा नटखट है—कितने ढोंग करता है यह ! सबके मुख प्रसन्नता से खिल गये हैं। मोहन बार-बार चिढ़ाकर खिलखिलाकर हँसता जा रहा है और ये सब तो अकारण भी हँसती हैं।

उज्ज्वल पुलिन, कोमल वालुका, कौमुदी-स्नात दिशाएँ, लहराती कलकल करती यमुना, शीतल-मन्द-सुगन्धित-वायु—किसी ने स्वर उठाया और मोहन गाने लगा, दूसरी सब उसके राग में कण्ठ मिलाने लगीं। वह किसी की चोटी खींचेगा और किसी को गुदगुदायेगा ही—श्रीकृष्ण भी क्या शान्त रह सकता है। ये सब भी क्या कम चञ्चल हैं। दौड़ना, कूदना, हँसना, गाना—सब खेल में लग गयीं उस क्रीड़ाप्रिय के साथ।

मोहन ने किसी की अलकें बिखरी थीं—सुधार दीं, किसी के आभूषण ठीक कर दिये, किसी के मुख पर फैले रोते समय के अञ्जन-चिह्नों को पटुके से पोंछ दिया, किसी का हार सुलझा दिया और किसी के उत्तरीय ठीक कर दिये। कन्हैया है ही स्नेहमय।

मदन—मूर्ख काम, वह समझता है कि उसकी विजय समीप ही है। उसके कुसुम-शर, मलय-मारुत, वसन्त इस शरद् में—उसे सब सफल-से दीखते हैं। अब उसके मुख्य बाण—कटाक्ष, स्पर्श, हास्यादि—उसे लगता है कि मोहन आवेश में है। उसे इतनी भी समझ नहीं कि यह खिलाड़ी तो माखन का लोंदा दिखाकर फिर अँगूठा बता देने का चिर अभ्यस्त है। मदन को तो प्रोत्साहित कर रहा है यह। श्रीवृन्दावन और वहाँ मदन का विलास—उस मयूर-मुकुटी की परम मञ्जु क्रीड़ा के लिये जो परिशुद्ध दिव्यतम प्रस्तुति योगमाया ने की है—भ्रान्त काम इसे अपना और वसन्त का प्राकृत वैभव मान बैठा है। श्याम तथा गोपियों के विशुद्ध सात्विक भाव—उसे अपने विकार दीख रहे हैं। इतना मूर्ख है वह और विजय करने आया है।

'मोहन, मेरी वेणी में ये पुष्प लगा दो !'

'श्याम, मेरे उलझे केश-पाश सुलझा तो दो !'

'गोपाल, मेरे लिये इस मल्लिका के सुमनों से केयूर बना दो !'

गोपियों का स्नेह-भरा आग्रह वह कैसे टाल दे। किसी के आभूषण ठीक करने हैं, किसी का उत्तरीय धूलि-सना है—उसे झाड़ देना है, किसी को गुञ्जा चाहिये, किसी को पुष्प-गुच्छा। श्यामसुन्दर सब के अनुरोध की रक्षा कर रहा है।

'मोहन, मेरे ही हैं ! वे मुझे ही सर्वाधिक चाहते हैं !' यहाँ तक तो ठीक; किंतु 'मेरे अतिरिक्त वे किसी को नहीं चाहते, मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। मेरे लिये वे सब को छोड़ देंगे। सब मुझ से तुच्छ हैं—सब।' मान—विशुद्ध सही, पर उसमें भी श्रेष्ठ की अवमानना तो है ही। उसे तो प्रशमित होना ही चाहिये।

'श्याम, पहले वे अरुण किसलय मुझे दे दो ! मैं उन्हें कर्णपल्ली पर सजाऊँगी !

'मोहन, पहले मेरे लिये वह उत्फुल्ल कुमुदिनी ला दो !' एक साथ कइयों ने आग्रह किया और फिर तो सबने कुछ-न-कुछ माँगा। चाहिये किसी को कुछ नहीं, यह तो स्पर्धा है कि मयूर मुकुटी पहले किस की बात सुनता है।

'तुमने पहले मेरी बात नहीं रखी, नहीं बोलती मैं तुम से। यह लो अपना किसलय !' सब के आदेश एक साथ ही पूरे हुए; किंतु सबने देखा समीप की सहेली को भी उसका अभीष्ट पदार्थ मिल गया। जब उसके पास वह पदार्थ आ गया है, तब अवश्य श्याम ने पहले उसे दिया होगा। 'कितना पक्षपाती है यह, कितना कृत्रिम स्नेह दिखाता है !' मान जगा एक साथ सब में। सब ने वे उपहार के पुष्पादि फेंक दिये और मुख घुमा लिया। उन्हें भूल ही गया कि अभी कुछ देर पूर्व ही वे रो रही थीं, गिड़गिड़ा रही थीं। श्यामसुन्दर के स्नेह और सम्मान ने उन्हें 'मान' दिया।

एक—केवल एक बची इस मान से ! यह भोली लड़की, यह क्या जाने कि मान होता क्या है। श्रीकीर्तिकुमारी में इतनी चपलता कहाँ से आये कि गोपियों की इतनी भीड़ में वे मोहन से कुछ माँगने को स्पर्धा करें और इसकी आवश्यकता भी क्या। जब से मोहन उस शिला से उठकर इन सब के मध्य में आया है, वह उन्हीं को मनाने, सजाने में तो लगा है। वे किस से स्पर्धा करें। क्या हानि है, यदि मोहन किसी को सजाता है; मनाता है। वे तो सदा चाहती हैं कि श्यामसुन्दर पहले उनकी सहेलियों को प्रसन्न करें; लेकिन मोहन—और इस वनमाली के मुख की ओर देखने पर क्या उसका प्रतिवाद किया जा सकता है। स्पर्धा-अमर्ष—किससे करें वे—इन अपनी सहेलियों से ? इन गोपियों से ? छिः ! ये तो उन्हें स्वतः अपने से अधिक प्रिय हैं !

'हैं !' श्रीवृषभानुकुमारी तनिक चौंकी, पर श्यामसुन्दर इस प्रकार देख रहे हैं हाथ पकड़ कर कि प्रतिवाद सम्भव नहीं। चुपचाप वे चल पड़ीं उनके साथ। सघन वन, रात्रि का समय, श्यामसुन्दर को छिपने में कितने क्षण लगने थे। गोपियों के मध्य से यह युगल जोड़ी अदृश्य हो गयी।

× × × ×

मन्मथ—हताश, निराश, पराजित मन्मथ, उसका सारा प्रयास व्यर्थ गया ! उसके श्रेष्ठतम साधनों के मध्य श्यामसुन्दर ने उसे ललचाकर अँगूठा दिखा दिया ! उत्तेजित करके धक्का दे दिया ! उसके सम्मोहन शर कुण्ठित हो गये। उसके सुमन-बाण—अब वे वृक्षों से झरने लगे हैं।

'भगवान ब्रह्मा यहाँ चरण-रज की कामना कर गये ! देवराज इन्द्र ने करबद्ध किरीट झुकाया इस भूमि पर !' मदन दो क्षण में पराजय के खेद से मुक्त हो गया। 'पर मेरा अपराध—मेरे अपराध की क्षमा कैसे मिलेगी ?' इस दिव्य भूमिपर तो काम का उपस्थित होना भी अपराध ही है। उसने व्रजभूमि से प्रस्थान किया। उसके अपराध का मार्जन तो देवर्षि ने बताया उसे—उसे द्वारकेश का पुत्र बनकर उनका वात्सल्य प्राप्त करना है।

मान-भङ्ग

"व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥"

— भागवत १०।३१।१८

काम—पराजित, लज्जित, व्यथित काम गया, वह चला गया। उसका अलक्ष्य सूक्ष्मतम प्रभाव भी गया उसके साथ। इस दिव्य भूमि में आज नटनागर जिस दिव्य तम लीला का आविर्भाव करने वाला है—काम—तटस्थ काम उसकी भूमिका प्रस्तुत करके ही तो उपरत हो जाता है। मोहन के लिये जो कामना है, जो उत्कण्ठा है, वह क्या कामना रह पाती है। उसका वासनात्मक अङ्ग तो दूर हो कर रहेगा। यह तो लोकोत्तर परिशुद्ध प्रेम भूमि पर होने वाली क्रीड़ा है।

काम गया और साथ ही गया गोपियों का मान भी। 'मान'—वह भी तो कामका ही एक रूप है। गोपियों ने सोचा था—श्यामसुन्दर उन्हें मनायेंगे, अनुनय करेंगे। उन्हें गर्व हो गया था कि वे परम सुन्दरी हैं, त्रिभुवन-मोहन भी उन पर मुग्ध हो गया है। कहाँ ? यह सब तो कुछ नहीं हुआ। दो क्षण मुख फेरे रहने पर भी कोई उन्हें मनाने नहीं आया। तनिक गर्दन घुमाकर कटाक्ष-पूर्वक देखा उन्होंने—'कन्हाई आ रहा है न! लेकिन वह तो समीप नहीं दीखता। अवश्य वह मेरी उपेक्षा करके किसी दूसरी के समीप चला गया !' पूरा मुख घुमा कर देखा उन्होंने !

श्यामसुन्दर ! मोहन ! प्राणाधार ! कहाँ हो तुम ? कहाँ जा छिपे हो ? आओ, हम अब तुम से मान नहीं करेंगी ! तुमसे कुछ नहीं माँगेंगी ! कुछ नहीं कहेंगी !' मुख घुमाते ही वे व्याकुल हो गयीं। कहाँ—कहीं, किसी के समीप तो वह नव-जलधर-सुन्दर दीखता नहीं। सबने एक दूसरे के मुख की ओर देखा। नेत्रों ने ही कह दिया—'मैं भी तेरे-जैसी ही भाग्यहीना हूँ।' वे व्याकुल हो-कर पुकारने लगीं !

'प्रियतम, छिपो मत ! हमारे प्राण अत्यन्त व्याकुल हैं ! इस घोर रात्रि में तुम्हारे बिना हमें अत्यन्त भय लग रहा है ! रूठो मत ! दया करो ! अपनी इन दासियों पर दया करो ! आओ ! आओ मोहन !' लेकिन आस-पास के वृक्षों की तो डाली-डाली देख ली गयी, समीप की कुञ्जें भी छान लीं, वह तो कहीं है नहीं। वह नीलोज्ज्वल ज्योति क्या वृक्षों और कुञ्जों में छिपी रह सकती है ?

'मोहन हमारे मान करने से रूठ गये ! वे हमें छोड़कर चले गये !' वह चाहे चला जाय, उसे छोड़कर यहाँ इनकी तो कहीं गति है नहीं। 'कहाँ गये श्यामसुन्दर ? कोई बता देता ! कोई कह देता कि वह कमल-लोचन कहाँ है।' आकुलता में बुद्धि रहती कहाँ है। उन्हें लगा, ये तरु, लता, वृक्ष—इनमें से किसी ने तो देखा ही होगा उस वनमाली को जाते हुए। वह इन्हीं के यहाँ तो कहीं छिपा होगा, यदि ये बता दें—उन्होंने वृक्षों लताओं आदि से ही पूछना प्रारम्भ किया।

जो समस्त प्राणियों के बाहर-भीतर सदा सर्वत्र क्रीड़ा करता है, उसे ये वनस्पति नहीं जानते होंगे ? वह इनके समीप नहीं होगा ? श्रीवृन्दावन के ये दिव्य भावरूप तरु, लता, वीरुध्, तृणादि—कल्पतरु जिनके सम्मुख कण्टक-तरु-सा हेय जो चतुवर्ग-चिन्तामणि रूप हैं, वे क्या पूछने पर उत्तर भी नहीं दे सकते ? लेकिन कैसे दें वे उत्तर—उनका अधीश्वर उन्हें जड बनाकर क्रीड़ा कर रहा है उनके मध्य, उनकी मूकता ही श्याम की आज सेवा हो गयी है, योगमाया उन्हें आदेश नहीं देतीं बोलने का और यदि वे बोल पड़े—श्याम की मधुमय लीला के दर्शन का सौभाग्य कैसे बना रहेगा उनका।

गोपियाँ—उन्हें कुछ सोचने का अवकाश नहीं । वे कुछ सोच नहीं सकतीं । वे तो पूछती जा रही हैं—'पीपल, पाकर, वट, तुमने उस नन्दनन्दन को देखा है कहीं, जो अपने प्रेम-पूर्ण मन्द हास्य और बंक बिलोकन से हमारा चित्त चुराकर छिप गया है ?' कोई उत्तर देगा, कोई कुछ कहेगा, इसकी प्रतीक्षा करने-जितना धैर्य उनमें नहीं है । 'कुरबक, अशोक, नाग, पुन्नाग, चम्पक, हम मानिनियों के मान को ध्वस्त करके मन्दस्मित-युक्त श्री रामानुज इधर से गये हैं ?' वटादि बड़े वृक्षों के नीचे तो बहुत ही सघनता है और ये मध्यम वृक्ष भी भला, लता-कुञ्जों की छाया के कारण पूरा वनपथ कहाँ देख पाते हैं । गोपियाँ पूछती ही जा रही हैं—'कल्याणी तुलसी, तुम्हें गोविन्द के श्रीचरण अत्यन्त प्यारे हैं ! ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम्हें भी उनका पता न हो । उनके विशाल वक्ष पर तुम्हारी वैजयन्ती माला है और उस पर भ्रमरों के समूह मँडराते होंगे । तुमने इधर से जाते उन्हें देखा है ?' न देखा होगा, भला, कहीं तुलसी का भी निकुञ्ज होता है कि उसमें वह चपल छिपने आये ।

'मालती, मल्लिका, जाती, यूथिका, तुम लोगों को अपने कोमल करों से स्पर्श करके प्रसन्न करते हुए माधव को इधर से जाते तुम लोगों ने देखा है क्या ?' क्या ठिकाना कि इधर आया ही न हो । यमुना जी के किनारे से ही गया हो । वे तट की ओर मुड़ीं । 'आमड़े, प्रियङ्गु, कटहल, कचनार, अर्जुन, जामुन, आक, बेल, वकुल, कदम्ब, नीप या और भी जो श्रीयमुनाजी के किनारे केवल परोपकार के लिये शरीर धारण करनेवाले तरुवर हैं, आप में से जिन्हें ज्ञात हो, वे हम सबों को श्रीकृष्ण का पता बता दें ! हम उनके बिना जीवनहीन हो रही हैं ।'

वृक्षों में तो कोई उत्तर देता नहीं । भूमि की ओर दृष्टि गयी । ये हरित तृण—धरणी का यह रोमाञ्च ही तो है । बड़ी उत्कण्ठा से पूछा उन्होंने—'देवि पृथ्वी, तुमने ऐसा कौन-सा तप किया कि जिसके फलस्वरूप केशव के चरणों के स्पर्श के आनन्द से तुम्हारे अङ्ग पुलकित हो रहे हैं ! यह रोमाञ्च तुम्हें विराट्-रूपधारी भगवान् वामन के पादस्पर्श से प्राप्त हुआ या भगवान् वराह के आलिङ्गन से ?' यदि वामन या वराह के स्पर्श से यह रोमाञ्च है तो ठीक ही है और यदि श्याम-सुन्दर के श्रीचरणों के स्पर्श से है तो धरा को उस वनमाली का पता बताना चाहिये ।

'मृगियो, तुम्हारे दीर्घ दृगों को अपने त्रिभुवन-सुन्दर स्वरूप से परमानन्द प्रदान करते हमारे प्रियतम इधर गये हैं ? हम सबों के आलिङ्गन में हमारे वक्ष का कुङ्कुम उनकी कुन्द-पुष्पों की बनी वैजयन्ती माला में लग गया था । उस कुङ्कुम से रञ्जित कुन्द-माला की सुगन्ध उन हमारे कुलपति के पास से वायु इधर से ही ला रहा है ! गये तो वे इधर ही हैं ।' भला, उस कुन्द-माला की सुरभि पहिचानने में कहीं भूल हो सकती है उनसे । 'तरुवृन्दो, वाम बाहु अपनी परम प्रिया श्रीकीर्ति कुमारी के कंधों पर रखकर, दाहिने हाथ में कमल लिये वे श्रीबलराम के छोटे भाई अपनी तुलसी की बनमाला पर उसके मादक पराग से मत्त होकर साथ लगे भ्रमर-समूहों को उस लीला-कमल से दूर करते इधर से गये तो हैं, तुम लोगों ने अपनी इन समस्त शाखाओं को झुकाकर अब तक उन्हीं के लिये प्रणाम किया है; पर प्रेम-भरी दृष्टि से तुम्हारी ओर देखकर उन्होंने तुम्हारे प्रणाम का अभिनन्दन भी किया नहीं ?'

'सुरभि आ रही है, वृक्षों ने प्रणाम किया है, श्याम गये तो अवश्य इधर हैं; पर गये कहाँ वे ?' एक ने दूसरी को प्रेरित किया—'सखि, इस लता से पूछ तो । यह अपनी शाखारूपी हाथों से वृक्ष को आलिङ्गित किये है; फिर भी इसमें जो इतना पुलक है, यह जो इतने गुच्छे-के-गुच्छे सुमन हैं, ये वृक्ष के आलिङ्गन से नहीं हो सकते ! अवश्य श्यामसुन्दर का नख-स्पर्श इसे प्राप्त हुआ है । उन्होंने इससे कुछ सुमन लिये हैं और उन्हीं के स्पर्श से यह इस प्रकार पुलकित-पुष्पित हो गयी है ।'

उन्मत्त की भाँति वे चाहे जिससे पूछ रही हैं । पूछ रही हैं—अन्वेषण कर रही हैं और किसे ? जिसे वे अन्वेषण कर रही हैं, वह उनसे भिन्न है भी कहाँ । व्याकुलता चिन्तन, अनुराग—सब एक साथ—एक साथ—उनका चित्त तदाकार हो गया । वे भूल गयीं कि वे किसे ढूँढ़ रही हैं ।

'श्याम, तुम कहाँ हो ? श्याम कहाँ गये ? श्याम ! श्याम ! और—और मैं ही तो श्याम हूँ !' चित्त तदाकार हो गया चिन्तन से। वे श्याममयी—श्याम हो गयीं। जिसके मन में जो लीला स्फुरित हुई, वह उसी का अनुकरण करने लगी।

'यह पूतना है, मैं इसका स्तन पीऊँगा !' एक ने स्तनपान प्रारम्भ किया। दूसरी भूमि में लेटकर रोते-रोते एक को शकट समझकर चरणों से मारने लगी। किसी ने अपने को बालकृष्ण मान लिया और दूसरी उसे तृणावर्त बनकर उठाकर भागी। कोई श्याम के घुटनों चलने का अनुकरण करती, चरणों को उछालती, वैसे ही चलने लगी। दो गोपियाँ राम-श्याम बनकर खेलने लगीं बच्चों के समान। कोई वत्सासुर के बध का और कोई बकासुर-वध का अनुकरण करने लगीं। कोई यह मानकर कि गायें दूर चली गयीं, श्रीकृष्णचन्द्र की भाँति उन्हें पुकारने लगी। कोई अधरों पर कोई टहनी वंशी के समान रखकर त्रिभङ्गी से खड़ी हो गयी और कुछ वेणु-वादन की प्रशंसा करने लगीं। कोई दूसरी के कंधे पर भुजा रखकर झूमती हुई चलते-चलते कहने लगी—मैं ही कृष्ण हूँ। मेरी ललित गति तो देखो !'

'इस आँधी और वर्षा से डरो मत ! इससे रक्षा का उपाय मैंने कर दिया है !' किसी ने उत्तरीय उठाकर इस प्रकार गोवर्धन-धारण का दृश्य उपस्थित किया।

'दुष्ट सर्प, यहाँ से चला जा ! तुझे पता नहीं कि मैं दुष्टों को दण्ड देने के लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ।' इस तर्जन के साथ एक ने दूसरी के मस्तक पर पैर रखा। अपनी समझ से वह कालिय के फण पर चरण रखे थी।

एक ने पुकारा—'अरे गोपो, देखो तो कैसी भयंकर दावाग्नि लगी है। झटपट अपने नेत्र बंद कर लो ! इस संकट से मैं तुम्हारा कल्याण कर दूँगा !' और वह मुख खोलकर वायु खींचने लगी, जैसे दावाग्नि पान कर रही हो। एक ने अपनी माला से एक को एक पेड़ को ऊखल मानकर उसके तने में बाँध दिया और जो बाँधी गयी, नेत्र बंद करके वह भय का नाट्य करने लगी।

न यह सब अभिनय था, न विनोद और न अनुकरण ! कहाँ अवसर है इस सबको वहाँ। श्याम इस पवन में रात्रि में उन्हें छोड़ गया। श्याम, उनका हृदयधन—वे व्याकुल, व्यथित उसे ढूँढ़ रही हैं। चित्त तन्मय हो गया, जो लीला जिसके मन को प्रगाढ़ रूप से सदा स्पर्श करती रही है, उसमें वह व्यक्त हो गयी। विना इस आत्म-विस्मृति के उस कूटस्थ, हृषीकेश गोविन्द के चरण-चिह्न भी कहाँ मिलते हैं।

'अरे, ये तो श्रीनन्दनन्दन के चरण-चिह्न हैं ! यह क्या इनमें ध्वज, वज्र, अङ्कुश, यव आदि के चिह्न हैं।' एक की दृष्टि वन में घूमते-घूमते तृणहीन निकुञ्ज-पथ में भूमि पर गयी और वह चिल्ला उठी। सहसा बैठ गयी उन चिह्नों के समीप। भला, ये चरण-चिह्न भी कहीं छिप सकते हैं। सब उस पुकार से अपने आप में आयीं। सब एकत्र हो गयीं वहीं।

'आओ, हम सब इन पद-चिह्नों को देखते हुए ढूँढ़ें।' चिह्नों के दोनों ओर होकर, उनको बचातीं, उन्हें प्रकाश में रखतीं, झुकीं, ध्यान से उनपर दृष्टि लगाये सब आगे बढ़ीं।

'इन चरणों के साथ ये और किसी के छोटे-छोटे चिह्न हैं ! किसके हैं ये पद-चिह्न ? ये तो इतने निकट हैं कि जान पड़ता है श्रीव्रजराज-कुमार इसके कंधे पर भुजा रखकर, इसे आ-लिङ्गन किये गये हैं !' यह श्रीकीर्तिकुमारी की सहेलियों में होती तो यह पूछती ही कैसे। श्याम-सुन्दर के दक्षिण चरण के सब चिह्न जिसके वाम चरण में ज्यों-के-त्यों हैं, वह भला, कौन हो सकती है ? दूसरे यूथ को– श्रीवृषभानु-नन्दिनी के मण्डल को तो कुछ नवीन बात लगती ही नहीं। उन्होंने तो उन भूमि-नमित वृक्षों को देखते ही समझ लिया था कि ये वृक्ष श्रीकीर्तिकिशोरी के कंधे पर हाथ रखकर जाते मोहन को अभिवादन करने ही झुके हैं।

'अवश्य ये चरण-चिह्न राधा के ही हैं !' बहुत देर नहीं लगनी थी उसे भी पहचानने में। अन्ततः इस समय वे श्रीराधा ही तो इन सबों के साथ नहीं हैं। एक दीर्घश्वास ली बिचारी ने।

'अवश्य इसने बड़ी आराधना की होगी, सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि को इसने प्रसन्न कर लिया। तभी तो हम सबको छोड़कर गोविन्द इसे अकेले ले गये।' कौन कहे इससे कि वे तो आराधना की अधिष्ठात्री होने से ही श्रीराधा कहलाती हैं।

'सखियों, श्यामसुन्दर की यह चरणरज धन्य है! इसे तो लोक-पितामह ब्रह्माजी, भगवान शंकर और भगवती लक्ष्मी भी अपने पापों को दूर करने के लिये मस्तक पर चढ़ाती हैं।' अरे, यह तो उस रज को मस्तक, भाल, नेत्र, कपोल, हृदय पर ही मलने लगी। 'यह ठीक कि सब से श्यामसुन्दर से मान करके उनकी अवमानना का अपराध हुआ। क्या पता कोई पूर्व पाप ही उनके इस वियोग का कारण हो। यह भी ठीक कि यह चरण-रज समस्त पापों को नष्ट करने वाली है—किंतु; यह क्या सूझा पागलपन इसको। इस प्रकार तो चरण-चिह्न ही लुप्त हो जायँगे। उस हृदय-धन को ढूढ़ने का सहारा भी चला जायगा।' सबने किसी प्रकार रोका इस उद्योग से उसे।

'यह श्रीराधा, उसके ये चरण-चिह्न हमारे मन में अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न कर रहे हैं। हम सबको छोड़कर वह अकेला ही अच्युत के साथ चली गयी है…।' इसे तो इस समय भी स्पर्धा ही सूझ रही है।

'देखो, यहाँ उसके चरण-चिह्न दीखते नहीं! अवश्य तृण, अङ्कुर एवं कंकड़ियों से अपनी परम प्रिया के कोमल अरुण चरणों को कष्ट पाते देख प्रियतम ने उसे गोद में उठा लिया है। यह बात तो स्पष्ट है; गोपियों, देखो न अपनी प्रिया को लेकर चलते हुए, उसके भार से दबे श्रीकृष्णचन्द्र के पद-चिह्न यहाँ कैसे गहरे उठे हैं! यहाँ तो पद-चिह्नों में केवल अग्रभाग के चिह्न बने हैं। जान पड़ता है कि यहाँ उन्होंने अपनी प्रियतमा के लिये पुष्प-चयन किया है। पुष्प तोड़ने के लिये पंजों के बल वे खड़े हुए हैं, ये पंजों के ही चिह्न सभी पद-चिह्नों में आये हैं। यहाँ यह किसी के बैठने का चिह्न है। अवश्य यहाँ उन चुने पुष्पों से उन्होंने अपनी प्रिया के केश सजाये होंगे।' पता नहीं क्या-क्या कल्पना करती गयी वह? स्पर्धाजन्य ईर्ष्या के वश। उसे कल्पना ही करना था, कौन रोके उसे। केवल कुछ चिह्नों पर यह सब कल्पना—लेकिन उसे लगता था, वह ठीक कह रही है। खण्डन कौन करे? खण्डन करने-जैसी इस समय स्थिति भी किसकी है।

× × × ×

श्यामसुन्दर—वह तो कीर्तिकुमारी को लिये वन में चला ही गया। दूर-दूर-दूर चलता गया वह। गोपियों की पुकार, उनका रुदन-क्रन्दन इस रात्रि में भी उस तक नहीं पहुँचा। भ्रमरों की गुंजार, कालिन्दी का कलकल, मयूरों का बार-बार केकारव—भला, इसमें नारियों का कण्ठ कहाँ तक पहुँच सकता है।

'मोहन मुझे सबसे पृथक् ले आये हैं। सबको छोड़कर वे मुझसे ही स्नेह करते हैं!' आज स्मरण आया कि बनमाली सदा से कुछ अधिक विशेषता देते रहे हैं उन्हें। अब तक तो कभी कीर्तिकिशोरी ने सोचा ही नहीं कि क्यों श्रीकृष्ण उन्हें सब से कम तंग करते हैं। अनेक बातें, अनेक प्रसङ्ग ध्यान में आये फिर तो। वे यही सब सोचती चली जा रही हैं। तब सचमुच ही मैं सबसे अधिक सुन्दर हूँ। सभी तो इन्हें हृदय से चाहती हैं; पर ये सबको छोड़कर मुझे ही ले आये—कुछ तो विशेषता होगी ही…।' यही या ऐसा ही कुछ मन में आया, आता रहा। मान जगा।

'अब तो मुझसे चला नहीं जाता। मैं दो पग भी नहीं चल सकूँगी अब। तुम्हें जहाँ ले चलना हो, मुझे उठा ले चलो! तुम्हारे साथ चलने को मैं मना नहीं करती, पर मुझसे तो चला ही नहीं जाता।' कौन जाने मान था, कौन जाने वह कुसुमकोमल बालिका सचमुच थक ही गयी थी। कितनी दूर ले आया था श्याम उसे—वह थके भी क्यों नहीं।

'अच्छा, तुम मेरे कंधे पर बैठ जाओ!' मुख की ओर देखकर हँसा वह नटनागर और बैठ गया। धूर्त कहीं का—भोली बालिका बिचारी सरलता से कंधे पर बैठने लगी, वह गिर पड़ी भूमि पर। पता नहीं किस समीप की कुञ्ज में वह झट से खिसक गया।

'श्यामसुन्दर ! मोहन ! प्राणाधार !' वह भूल ही गयी कि गिर पड़ी है, कुछ आघात भी लगा होगा। यह घोर वन, यह रात्रि और उसमें अकेली—वह व्याकुल न हो तो करे क्या। कोई उत्तर नहीं उसकी पुकार का। और जोर से—और कातर कण्ठ से पुकारा उसने—'मेरे स्वामी, मेरे प्रियतम, कहाँ हो ? कहाँ हो तुम ? यह तुम्हारी दासी अत्यन्त दुखी है, मोहन, आओ ! आओ, श्यामसुन्दर, दर्शन दो !' इधर-उधर चकित-भीत नेत्रों से देखती, अश्रुधार ढुलकाती, हिचकियाँ लेती वह उन्मत्त-सी उठी, दौड़ी और गिर गयी—'श्यामसुन्दर, दर्शन दो ! मोहन, कहाँ हो तुम ?' लेकिन उसका मोहन तो आज निष्ठुर हो गया है।

'मेरा अपराध—मैं तुम्हारे कंधे पर बैठने चली थी !' वह तो उन्मत्त होकर ऐसे कहने लगी है, जैसे सुननेवाला पास ही छिपा है। 'तुम थोड़ी दूर मुझे ले ही जाते—बहुत थोड़ा कष्ट होता तुम्हें ! प्यारे, अब बहुत कष्ट होगा ! तुम इस देह को लिये-लिये घूमोगे। तुम्हारे बिना ये प्राण टिक नहीं सकते !' हाय, हाय ! वह तो सचमुच घूमकर गिर पड़ी। उसमें तो पुनः उठने के कोई लक्षण ही नहीं।

× × × ×

'कौन—कौन पड़ी है वह ? किसके वस्त्र हैं ?' श्यामसुन्दर को ढूँढ़ती गोपियों ने धवल चन्द्रिका में दूर से भूमि में देखा किसी को मूर्च्छित। वह वस्त्र—वे पहिचाने वस्त्र।

'श्रीराधा !' बालिकाओं के भय-विह्वल कण्ठ से चीत्कार निकली। वे सबसे पहले दौड़ पड़ीं।

'श्रीराधा !' गोपियों ने पुकारा और भागीं वे भी।

'श्रीराधा ! श्रीराधा !' जैसे प्रतिध्वनि में समस्त वनश्री क्रन्दन कर उठी हो।

'श्रीराधा !' ध्वनि मूर्च्छिता के श्रवणों में भी गयी। उसका नाम ही तो संजीवन है। मुरली ने भी तो आज उसे पुकारा था इसी प्रकार। 'श्यामसुन्दर ! प्राणेश ! आयी मैं !' एक झटके से चेतना आयी और उन्मत्त-सी वह कीर्तिकन्या उठकर दौड़नेवाली ही थी। 'ये सखियाँ, ये गोपियाँ—क्या बात है ? कहाँ है वह ?' भौचक्की-सी देखती रह गयी।

'कहाँ हैं श्यामसुन्दर ?' राधा ने ही पूछा।

'कहाँ हैं श्यामसुन्दर ?' यही तो सब उससे पूछनेवाली हैं। यही प्रश्न तो उनके तन, मन, प्राण पूछ रहे हैं अणु-अणु से।

'मैं अभागिनी हूँ ! मैंने उनसे मान किया और वे रूठकर चले गये ! कितना सम्मान दिया था उन्होंने मुझे और मैंने कैसी क्षुद्रता का परिचय दिया—उनका अपराध क्या ? मैं कहाँ उनके योग्य हूँ !' ये श्रीवृषभानुसुता कहाँ कुछ छिपाना जानती हैं। श्यामसुन्दर का भी कुछ दोष है, यह इनके मन में कभी आ भी कैसे सकता है।

बालिकाओं ने सान्त्वना दी, गोपियों ने समझाया। ढूँढ़ना ही तो है उन्हें—दूर तक वन में ढूँढ़ा उन्होंने। वहाँ तक, जहाँ तक प्रकाश पहुँचता था। वन सघन हो गया आगे। अब आगे पत्तों से छनकर भी चन्द्रकिरणें नहीं पहुँचतीं। घोर अन्धकार है। आगे बढ़ने का कोई उपाय नहीं। विवश होकर सबको लौटना पड़ा।

रात्रि अधिक व्यतीत हो गयी, देर हो गयी वन में आये। घर के लोग व्याकुल होंगे। पता नहीं क्या-क्या सोचेंगे लोग; स्वयं वे सायंकाल से इधर-से-उधर वन में भटक रही हैं, उनके भालपर स्वेद की बूँदे झलमला उठी हैं, उनके सुकुमार शरीर अत्यन्त श्रान्त हो गये हैं, यह सब स्मरण किसे है। जब शरीर का ही स्मरण नहीं, तब घरों एवं स्वजनों का स्मरण हो ही कैसे। श्यामसुन्दर, हृदयेश कहीं छिप गये हैं। वे रूठकर चले गये हैं। मान तो कब का गल गया। मोहन मिल जाते—उनका पता लग जाता ! पर अब आगे वन में घोर अन्धकार है। अब उसमें जाकर भी कुछ देखा नहीं जा सकता। सबका मन उसी नवनीत-चोर ने चुरा लिया है। उसीका नाम, उसीका गुण, उसीका रूप, उसी की लीला, सबकी वाणी पर उसी की चर्चा है। सबके हृदय में वही ललित-त्रिभङ्गमूर्ति है। कोई राग से उनके गुण गाने लगी है, कोई परस्पर उनकी चर्चा में लगी

हैं और रुद्धवाणी से उसका चिन्तन कर रही है। जब वन में उसे ढूँढ़ा ही नहीं जा सकता तब भटकने से लाभ ? उनकी कृपा की ही प्रतीक्षा करनी है। क्या पता, वह थोड़ी देर में द्रवित होकर आ जाय। वह पुलिन पर जहाँ सबको छोड़कर गया है, वहीं तो आयेगा। वहाँ किसी को न देखकर घर लौट जाय तो ? सब वही पुलिन पर लौट आयीं। मोहन की कृपा की प्रतीक्षा करनी है उन्हें। उन्होंने सम्मिलित कण्ठ से वहीं बैठकर प्रार्थना प्रारम्भ की।

× × × ×

जीवन के अनन्त क्षेत्र में जन्म-जन्मान्तर के पुण्यों से जब कभी सत्व का पूर्णचन्द्रोदय होता है—अनेक बार होता है; पर सदा वह स्निग्ध शारदीय कौमुदी धन्य नहीं होती। जब कभी स्वयं कृपा करके उसमें श्यामसुन्दर अपनी मुरली-ध्वनि उठा देता है, उस समय भी कोई भाग्यशाली ही उस 'नादब्रह्म' का आकलन कर पाते हैं। कोई ही सब कुछ भूलकर उस 'गीत-धुन' के मार्ग से आत्मविस्मृत-से दौड़ पाते हैं।

साधना का उज्ज्वल पथ, उत्कण्ठा की परमाभिव्यक्ति और उस नवजलधर-सुन्दर की कृपा—आत्मोत्सर्ग का पुण्यपर्व सार्थक होता ही है। व्रज-सुन्दर की वह दिव्य झाँकी—जीवन उन्मद न हो जाय, कैसे सम्भव है।

'मैं भी कुछ हूँ ! मैं साधन करता हूँ ! मैं श्रेष्ठ हूँ ! आराध्य की मुझ पर ही कृपा है ! दूसरे मुझसे तुच्छ ! निकृष्ट हैं ! उनसे मेरी क्या तुलना।' और जहाँ यह आया मन में—वह 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' कैसे अपना अपमान सहन कर ले। फिर तो जीवन की रात्रि है और नियमों का घोर कानन है। मोहन नहीं रह जाता वहाँ।

मोहन भी क्या ढूँढ़ने से मिलता है ? लेकिन बिना अन्वेषण के भी वह मिलता नहीं। अन्वेषण न हो तो श्रान्ति न आयेगी और यह तो आवश्यक है कि साधन के क्षेत्र में अपनी शक्ति-सीमा पूर्णतः शान्त हो जाय। जब अन्वेषण निराश हो जाता है, जब अज्ञात अज्ञेय अलक्ष्य सत्व की उज्ज्वल चन्द्रिका के लिये भी दुर्भेद्य ही नहीं अभेद्य बन जाता है, निराशा ही तो मिलती है ? तब प्रगति कहाँ ? तब तो लौटना होता है ? कहाँ लौटना ? यदि हृदय में वासना कहीं बच गयी है, यदि ममत्व कहीं किसी कोने में बचा था, इसी कोलाहल में लौट आता है वह निराश और यदि आत्मोत्सर्ग का पुण्यपर्व वस्तुतः धन्य हो चुका है, यदि हृदय में वह ललित-त्रिभङ्गी आ बसी है—शरीर और संसार की स्मृति ही कहाँ होती है। वह तो प्रणय-कालिन्दी के पुलिन पर ही लौटता है। वही उत्कण्ठा, वही अभीप्सा और प्रयास थक गया। वह देखता है-सोचता है, वह जहाँ से चला था, वहीं है। तब—तब प्रतीक्षा और प्रार्थना—और कोई उपाय भी तो नहीं।

अपने प्रयत्न की समाप्ति पर—श्रान्ति पर ही तो साधन का अहंकार जाता है। 'मैं भी कुछ कर लूँगा ! यह जप, यह पाठ, यह अनुष्ठान और सब करके ·····।' ओह, श्यामसुन्दर साधन-साध्य कहाँ है। तब प्रार्थना होती है। सच्ची प्रार्थना तभी हो पाती है। उत्कट अभीप्सा—अविचल विश्वास—गर्वहीन आतुर प्रार्थना—सच्ची साधना तो यही है। उसकी दया पर सर्वतोभावेन अपने को छोड़कर उसी को पुकारा ही तो जा सकता है।

गोपियाँ—वे श्याम की अन्तिम सहचारियाँ, वे महाभाव की अन्तिम मूर्तियाँ, उनकी क्या साधना, क्या मन, क्या प्रतीक्षा और क्या प्रार्थना। मोहन उनका और वे मोहन की। श्याम उनसे रूठेगा ? कहाँ जायगा वह ? उनकी एक पल के भी उपेक्षा क्या वह कर सकता है ? तब यह सब—यह सब एक लीला—एक आदर्श ! नित्य वृन्दावन का धरा पर आविर्भाव, श्रीनिकुञ्जेश्वरी का भूमि पर पदार्पण प्रेम की परम सीमा को विश्व के सम्मुख प्रकाशित करने के लिये ही तो है। श्याम और राधा—वे दो हों तो मान और प्रार्थना चले; किंतु विश्व के पथिकों को प्रकाश देना है—पावन प्रेम-पथ का प्रकाश। गोपियों का यह नाट्य वही प्रकाश तो दे रहा है—और अब अन्वेषण से निराश यमुना-पुलिन पर आकर वे सम्मिलित कातर कण्ठ से प्रार्थना कर रही हैं—

'श्यामसुन्दर, जब से तुम प्रगट हुए हो, व्रज की अत्यधिक श्रीवृद्धि हुई है! ऐसा होना ही चाहिये; क्योंकि इन्दिरा सदा तुम्हारे ही आश्रय से रहती हैं। अब तुम्हारे ही द्वारा हमें क्लेश हो, यह उचित नहीं। हमारे प्राण तुम्हीं में लगे हैं; हम तुम्हें ही ढूँढ रही हैं, आओ! हमारे इन तृषित नेत्रों को दर्शन देकर तृप्त करो!

'वरद, तुम्हारे नेत्र शरत्कालीन पूर्ण विकसित सरोज के अन्तराल की शोभा को भी लज्जित करनेवाले हैं, हम तो नेत्रों को देखकर बिना मूल्य के ही तुम्हारी दासियाँ हो गयीं हैं। तुम अपने वियोग से हमें तड़पा रहे हो, यह क्या हमारा वध नहीं है? तुम दूसरों के तो वरदाता बनो और अपनी ही दासियों को तड़पाओ – ऐसा तो मत करो, जीवन-धन!

'तुमने तो सदा हमारी—हमारे स्वजनों की रक्षा की है! उस कालियह्रद के विषैले जल से तुमने ही मृतकों को जीवन दिया, कालिय को तुमने ही निर्वासित किया, इन्द्र द्वारा की गयी भयंकर वर्षा, प्रबल आँधी, क्षण-क्षण का वज्रपात—तुम्हीं ने तो गिरिराज को उठाकर जीवन-दान दिया सबको; दावाग्नि से तुम न बचाते तो सब भस्म ही हो चुके थे। वत्सासुर, मयदानव का पुत्र वह व्योम और जाने कितने राक्षस—सबसे बचाया तुमने, विश्व के समस्त भयों से तुम आज तक हमारे रक्षक बने रहे, फिर आज यह उपेक्षा क्यों?

'कौन कहता है तुम गोपी-कुमार हो; भगवान् ब्रह्मा की प्रार्थना पर विश्व की रक्षा के लिये सात्वतकुल में प्रकट हुए तुम समस्त प्राण-धारियों के अन्तःसाक्षी हो! तुम अन्तर्यामी हो! हमारे हृदयों को तुम जानते हो! विश्व की रक्षा के लिये अवतीर्ण होकर भी तुम हमारी इस समय रक्षा क्यों नहीं करते?

'तुम्हारा तो स्वभाव ही सबको अभय देना है। जो भी तुम्हारे चरणों की शरण लेता है, उसे तुम संसार के आवागमन के भय से मुक्त कर देते हो! तब तुम हमारे भय को भी दूर करो! अपना वह भव-भयहारी, महालक्ष्मी का पाणिग्राही, समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला कर-कमल हमारे मस्तक पर रक्खो!

'तुम तो व्रजजनों की आर्ति को नष्ट करनेवाले हो न, और उसमें भी हम अबलाओं के तो तुम्हीं आश्रय हो; हमारे 'मान' के कारण तुम ऐसे क्यों रूठ गये? तुम्हारा तो मन्दस्मित ही अपने जनों के गर्व को दूर करनेवाला है! प्यारे, अपनी इन किंकरियों को स्वीकार करो! हमें अपने कमल-मुख का दर्शन दो!

'श्यामसुन्दर, शरण में आये लोगों के समस्त पाप दूर करनेवाले वे मृदुल अरुण अपने चरण-कमल, जो वन में गायों के पीछे चलते हैं, महालक्ष्मी जिनकी स्थिर होकर सेवा किया करती हैं—वही चरण जो उस दिन कालिय के फणों पर थिरक रहे थे, हमारे हृदय पर रक्खो और हमारी अन्तर्ज्वाला शान्त करो!

'कमल-नयन—तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है, कैसे मनोहर नन्हे वाक्य बोलते हो तुम, बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी जब उस वाणी पर मुग्ध हो जाते हैं, तब हम तो स्त्रियाँ ही हैं। हम तो उस वाणी की माधुरी से तुम्हारी दासियाँ ही हो गयी हैं और उसके स्मरण से ही मृतप्राय हो रही हैं। हमें अपने अधरामृत से आप्यायित करके जीवनदान दो, मोहन!

'प्राण कबके चले गये होते तुम्हारे वियोग में; किंतु यह जो तुम्हारी कथा है, यह तो अमृत ही है। इसीने किसी प्रकार जिला रक्खा है। तुम्हारी कथा—यही तो संतप्तों को जीवनदान देनेवाली है। कितने महाकवि इसका वर्णन करते थकते नहीं, समस्त पापों को नष्ट करनेवाली जो है यह। यह तो श्रवण मात्र से सब प्रकार का मङ्गल करने वाली, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से परिपूर्ण है। सचमुच पृथ्वी पर जो तुम्हारी कथा का गान करते हैं—उसे सुनाते हैं दूसरों को, वही सच्चे महादानी हैं।

'व्रजेन्द्रनन्दन, तुम्हारा मन्द हास्य, तुम्हारा प्रणय-विलोकन और तुम्हारी मञ्जुल क्रीड़ा जिसके ध्यान में भी आ जाती है, उसका मंगल हो जाता है। कितनी विपरीत बात है कि तुमने

हमसे जो एकान्त में हृदयस्पर्शी आलाप किया, वह स्वर-लहरी बार-बार हमारे मनको क्षुब्ध कर रही है। इस वैषम्य को दूर करो, नाथ !

'जब तुम नित्य प्रातः व्रज से गो-चरण के लिये चल देते हो, वन में तुम्हारे कमल-कोमल चरण कंकड़ियों, तृणों, अङ्कुरों से कष्ट पाते होंगे—यह सोचकर ही हमारा मन विक्षिप्त हो जाता है।

'और जब सायंकाल गोरज-सनी घुँघराली काली अलकों से घिरे अपने कमल-मुख का दर्शन देते हो—प्रियतम, नित्य-नित्य बार-बार तुम्हारी वह भुवन-मोहिनी मुख-छवि हमारे हृदय में उत्कण्ठा जाग्रत् करती है ! आज तो वह नित्य-नित्य की लालसा पूर्ण हो जाने दो !

'तुम्हारे श्रीचरण प्रणतों की समस्त कामना पूर्ण करनेवाले हैं, श्रीसिन्धु-सुता निरन्तर उनकी अर्चा करती हैं, वे इस समय इस व्रजधरा के भूषण हैं, आपत्ति में वे ही एकमात्र ध्यान करने योग्य हैं, हम भी तो उन्हीं चरणों में प्रणत हैं, हम भी तो इस आपत्ति में उन्हीं का ध्यान कर रही हैं। प्राण-धन, अपने उन शान्तिदायी चरणों को, जो समस्त मनो-व्याधियों को दूर करनेवाले हैं, हमारे हृदय पर स्थापित करो !

'हमारा परमाश्रय, प्रेम को बढ़ानेवाला, शोक को नष्ट करने वाला, स्वरपूर्ण मुरलिका से भली प्रकार चुम्बित अपना वह अधरामृत हमें प्रदान करो, जो मनुष्यों की दूसरी समस्त आसक्तियों को विस्मृत करा देता है !'

'श्यामसुन्दर, जब तुम दिन में वन में चले जाते हो, तुम्हें देखे बिना हमें एक पल युगों-जैसा दीर्घ प्रतीत होने लगता है और जब तुम लौटते हो, तुम्हारी घुँघराली अलकों से घिरे श्रीमुख को भी हम कहाँ एकटक देख पाती हैं। मूर्ख ब्रह्मा ने नेत्रों में ये पलकें जो बना दीं ! सोचा था, आज तुम निकट रहोगे—आज नेत्र तृप्त हो लेंगे; पर तुम तो रात्रि में भी वन में चले गये ! ऐसा तो मत करो, हृदयेश !'

'अच्युत, हम सब अपने पति, पुत्र, गोत्रज, भाई तथा सभी सम्बन्धियों को छोड़कर तुम्हारे पास आयी हैं। तुम तो हमारी गति जानते हो न, तुम्हारे गान से मुग्ध होकर आयीं और तुम—छली -धूर्त, अरे रात्रि को वन में नारियों को कौन एकाकी छोड़ सकता है—कुछ तो विचार करो।'

'तुम्हारी एकान्त चर्चा जब स्मरण आती है—उत्कण्ठा, लालसा का तो वह उद्गम ही है ! तुम्हारा वह हँसता हुआ चन्द्रमुख, वह प्रेमभरी चितवन, वह शोभा का निवास विशाल वक्ष—उस वक्ष को देखकर बार-बार स्पृहा ही उठती है, हमारा मन मोहित हो रहा है, हम तुम्हारे अपरूप रूप के स्मरण से ही मूर्च्छित-सी हो रही हैं।'

'हे अङ्ग, जीवन-सर्वस्व, तुम्हारा प्राकट्य तो हम व्रज के वनवासियों के लिये ही है ! तुम्हीं हमारे समस्त कष्टों को नष्ट करनेवाले हो ! तुम्हीं विश्व में हमारा मङ्गल करनेवाले हो ! तुम तो अपने जनों की अन्तर्व्यथा के विनाशक हो न, अतः हम अत्यन्त से प्रार्थना करती हैं, हमारे हृदय-रोग की औषध थोड़ी हमें भी दो ! हमारी अन्तर्व्यथा को शान्त करने पधारो ! पधारो, श्यामसुन्दर !'

'ओह, तुम्हारे वे विकच कमल-से श्रीचरण—उन्हें तो अपने हृदय पर रखते भी हमें संकोच होता था, कितने मृदुल हैं वे, डरते-डरते, धीरे से हम हृदय पर रखती थीं—कहीं क्लेश न हो, कहीं वे पीड़ित न हों और उन्हीं चरणों से—उन्हीं चरणों से इस रात्रि में पता नहीं कहाँ तुम वन में घूम रहे हो ! कितने कण्टक, कितने कुशादि उग्र तृण, कितनी कंकड़ियाँ हैं इसमें ! ओह, क्या वे कष्ट न पाते होंगे ? मोहन, हमें बड़ा भय लग रहा है, हमारी बुद्धि भ्रान्त हो रही है। तुम्हारे चरण—तुम्हारे वे नवनीत-सुकुमार चरण—बड़ी व्यथा होती होगी उन्हें !'

गोपियाँ—एक ही लालसा, एक ही उत्कण्ठा रह गयी है उनमें—श्यामसुन्दर का दर्शन हो ! वह त्रिभुवन-मोहन मिल जाय। कब का गल चुका मान। वे प्रार्थना करती रहीं, उसके गुण गाती रहीं, नाना प्रकार से विलाप करती रहीं। उनकी विनय, दीनता, उलाहना, अनुरोध—सभी अन्त में

भूल गये।' मोहन अपने अत्यन्त मृदुल अरुण चरणों से इस रात्रि में बनमें कहीं घूम रहे हैं! उनके कमल-कोमल चरण तृणादि से कष्ट पाते होंगे!' उन्हें लगा, नेत्रों के सम्मुख ही मयूर-मुकुटी तृणों पर भागा जा रहा है। उसके श्रीचरणों के तलवे पीड़ित हो रहे हैं! उनको भूल गयी अपनी स्थिति, अपना शरीर, अपनी मनोव्यथा—वे चरण—वे मृदुल अरुण चरण—वे सब रोने लगीं एक स्वर से आर्त होकर। उनका यह रोदन-स्वर, यह रुदन-ध्वनि भी कितनी सुस्वर है!

आदर्श अनुराग, अन्वेषण, साधना—जो चाहे सो कह लीजिये इसे, जहाँ अपने शरीर की, अपनी समस्त विस्मृति होकर उस परम प्रेमास्पद की ही स्मृति रह जाती है, अन्तर में वही—एकमात्र वही रह जाता है—अन्तर्व्यथा उसीके लिये आकुल हो उठती है—यहीं सबकी पूर्णता होती है। यही सब की चरम परिणति है। यहीं उनका परिपाक हो चुका और तब क्या वह बनमाली छिपा रह सकता है? वह चाहे तो भी छिप सकेगा?

रुदन—तीव्र व्याकुलता, एक बार पलकें गिरीं और सबकी सब चौंककर सम्भ्रमपूर्वक एक साथ खड़ी हो गयीं। उनके अश्रु, उनकी वेदना, उनकी आकुलता, एक साथ दूर हो गयी एक क्षण में। नेत्र स्थिर हो गये, उल्लास का जो आवेग हृदय में एक साथ आया—शरीर स्थिर हो गया; वे क्या करना है—यह कुछ सोच ही न सकीं। एक निमेष—एक बार ही तो पलकें गिरी थीं—यह मयूर-मुकुटी, पीताम्बर-धारी नवजलधर-सुन्दर बनमाली मन्द-मन्द मुस्कराता पता नहीं किधर से आखड़ा हुआ उनके मध्य में।

यह भुवन-मोहन रूप, यह तडित्कान्त पीतपट, यह नित्य अम्लान वनमाला और यह मन्द स्मित—मदन-मोहन, आज सचमुच ही तो वह मदन-मोहन, मन्मथ-मन्मथ, अच्युत जैसे काम की अज्ञता, क्षुद्रता पर हँसता आया है। उनके मध्य कहाँ से, किधर से आ गया वह? कौन पूछे, कौन सोचे! वह आ गया! वह प्राणों का प्राण आ गया!

एक क्षण गोपियाँ खड़ी रह गयीं शान्त-स्थिर-मुग्ध और वैसे ही खड़ा रह गया वह उनका नटनागर भी मन्द-मन्द मुस्कराता। दूसरे ही क्षण सबने एक साथ अपने उत्तरीय उतारकर एक के ऊपर एक बिना कुछ सोचे, बिना कुछ देखे झटपट बिछा दिये। भला, यह हृदयेश आया है, आसन भी न दे सकें वे इसे और वह—वही, जो युग-युग तक के तपः-पूत मानस में, समाधि-स्थिर विशुद्ध हृदय में कभी कदाचित् बड़े संकोच से एकाध क्षण को खड़ा हो जाता है, गोपियों के वक्ष के कुङ्कुम से सुचिह्नित उन उत्तरीयों के आसन पर झटके से इस प्रकार जमकर बैठ गया, जैसे उसे वहाँ से कभी उठना ही नहीं है। नहीं ही तो उठना है—भला ऐसे आसन से भी क्या उठा जा सकता है।

—❀—❀—❀—
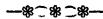
महारास

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

—भागवत १०।३३।४०

मोहन आया—धन्य हो गयी वह शरदीय ज्योत्स्ना, धन्य हो गया वह यमुना-पुलिन और धन्य हो गयी वह मधुमय रजनी—गोपियों में तो जैसे जीवन आ गया—प्राण आ गया! सब एक साथ खड़ी हो गयीं और जब वह उनके उत्तरीयों के आसन पर बैठ गया, वे उसे घेरकर, सटकर बैठ गयीं। सहस्र-सहस्र गोपियाँ—सबको लगा, वही श्याम के सबसे समीप बैठी है। किसी ने उसके कोमल कर-कमल को अपने दोनों हाथों में लिया और आनन्द-मग्न हो गयी। किसी ने उसकी चन्दन-चर्चित वाम-बाहु अपने कंधे पर रख लिया। एक ने अञ्जलि फैला दी, जब वह ताम्बूल का अवशेष मुख से गिराने चला भूमि पर, और उस अवशेष को ही उसने अपने मुख में रख लिया। दूसरी ने उसके—उसके श्रीचरण को अपने हृदय पर रख लिया। ओह, प्रेम-रोष विह्वल-भृकुटिको तिरछी करके, अधर को दाँतों से दबाकर कटाक्षपान से यह जो देख रही है उस मदन-मोहन को—और यह तो एकटक, निर्निमेष उसके कमलमुख को ही देख रही है; इतनी एकाग्रता, इतनी निश्चलता से कोई भी संत क्या उसके श्रीचरणों को देख पाता है! लेकिन यह तो पूरी योगिनी हो गयी है—ध्यान ही तो कर रही है। एक बार, एक दृष्टि से मोहन को देखकर नेत्र बंद कर लिये और अब तो उसका रो-रोम पुलकित हो रहा है, यह चिर-चपल बाहर चाहे कहीं छिप भी जाय, उसके हृदय से भी क्या कहीं जा सकता है?

'श्यामसुन्दर, बड़े दयामय हो तुम! क्या कहना है तुम्हारी दया का!' व्यंग भी सम्मिलित हास्य में मधुर हो गया।

'मोहन, हम सब पर कृपा करने पता, करने पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकना पड़ा तुम्हें; बहुत-बहुत थक गये लगते हो!' दूसरी ने चरणों को दबाते हुये ही परिहास किया। वह मदन मोहन तो हँस रहा है, केवल खुलकर, खिल-खिलाकर हँस रहा है।

'मोहन, हमें एक बात पूछनी है। तुम बड़े बुद्धिमान् हो, बड़े धर्मज्ञ हो, बड़े चतुर हो; बता दोगे? हमें बड़ी उत्कण्ठा है, बड़ी लालसा है, बताओगे?' सबने एक दूसरी को नेत्रों में ही कुछ कह लिया। यह भी क्या छिपा है कि यह गम्भीरता का अभिनय ही है।

'भला, ऐसी क्या बात है जो मैं तुमसे भी छिपाऊँगा!' मोहन तो हँस ही रहा है।

'नहीं, छिपाने-जैसी कोई बात नहीं, नीति और धर्म की बात! हम सब तो जानती नहीं, तुमसे अधिक मर्मज्ञ बतानेवाला भी हमें कोई दीखता नहीं!' गम्भीरता तो बढ़ती ही जा रही है।

'इतनी भूमिका क्यों?' श्याम ठीक तो कहता है, उससे भी कुछ पूछने, कहने के लिये क्या भूमिका की आवश्यकता है?

'देखो, एक तो ऐसे लोग होते हैं, जिनसे प्रेम करो तो वे भी प्रेम करते हैं, दूसरे ऐसे होते हैं कि उनका स्वभाव ही प्रेम करने का होता है; उनसे प्रेम करो या न करो, वे तो प्रेम करते ही हैं। और तीसरे ऐसे हैं कि उनसे प्रेम करो तो भी वे प्रेम नहीं करते। इन तीनों प्रकार के लोगों के प्रेम का स्वरूप हमें भली प्रकार समझा दो!' बात चाहे जितनी गम्भीरता से कही गयी हो, उसका लक्ष्य क्या है, यह भी क्या कहना रहा है?

'इसमें भला, समझना क्या है!' श्यामसुन्दर ने तो लक्ष्य स्पष्ट होते हुए भी ध्यान नहीं दिया उस पर। वह तो उसी गम्भीरता से व्याख्या करने लगा है, जिस गम्भीरता से प्रश्न पूछ गया है। 'जो प्रेम करने पर प्रेम करते हैं, उनमें तो न प्रेम है और न धर्मभाव; वे तो केवल स्वार्थ के लिये प्रेम का दिखावा करते हैं। जब तक स्वार्थ है, तभी तक उनका प्रेम है। प्रेम तो उन्हीं का सच्चा है, जो प्रेम न करनेवाले से भी प्रेम करते हैं, जैसे माता-पिता अपने बालकों से। बस, उन्हीं में अपवाद-हीन धर्म और सच्चा सौहार्द है। रहे तीसरे—जो प्रेम करने पर भी प्रेम नहीं करते, उनमें या तो संसार से तटस्थ आत्माराम, आप्तकाम महापुरुष होते हैं या श्रेष्ठों की अवज्ञा करनेवाले, कृतघ्न नीच पुरुष।'

सबने परस्पर मुख फेरकर देखा और व्यङ्गपूर्वक मञ्जुहास्य आया अधरों पर। श्याम ने अपने-आप को कहाँ रक्खा है इस व्याख्या में? वह है तो तीसरों की कोटि में और भला, वह कहाँ आत्माराम आप्तकाम है; किंतु वह तो इस हास्य से तनिक भी हँसता नहीं, उसका स्वर तो और गम्भीर हो गया है। वह तो कहता ही जा रहा है—'सखियो, पर मैं तो इन सभी से भिन्न स्वभाव का हूँ। जो प्राणी मुझसे प्रेम करते हैं, मैं उनके प्रेम के बदले में प्रेम करनेवाला, स्वार्थी नहीं और न प्रेम की उपेक्षा ही मैं कर पाता हूँ। मैं तो उन लोगों की, जो मुझसे प्रेम करते हैं, उनकी उपेक्षा करने का नाट्यमात्र करता हूँ—इसलिये कि उनके प्रेम की अभिवृद्धि हो। जैसे किसी को सम्पत्ति मिलकर नष्ट हो जाय तो वह एकमात्र उसी की चिन्ता करने लगता है, उसी प्रकार एक बार जब किसी को मेरा सांनिध्य मिल जाता है और फिर मैं छिप जाता हूँ, मेरे अतिरिक्त वह सब कुछ भूल जाता है।'

मोहन का स्वर गम्भीरता से भावक्षुब्ध हुआ—'तुम लोगों ने मेरे लिये समस्त लौकिक-वैदिक मर्यादाओं को छोड़ा, अतः तुम सब मुझे अत्यन्त प्रिय हो! तुम्हारे प्रेम की अनुवृत्ति के लिये ही मैं छिप गया था, मुझे क्षमा करो! मुझसे तुम्हें असंतुष्ट नहीं होना चाहिये।'

स्वर तो और क्षुब्ध—बाष्प-गद्‌गद हो गया! वह कितना भाव-विह्वल कह रहा है—'तुम सबने जो परम प्रेम किया है, मेरे लिये जो महान् त्याग किया है, देवताओं की आयु लेकर मैं केवल उसी का प्रतिदान करना चाहूँ तो भी समर्थ नहीं हूँ। तुमने मेरे लिये—मेरे प्रेम में दृढ़तर गृह-बन्धन को कच्चे सूत के समान तोड़ डाला और यहाँ दौड़ी आयीं—भला, इसका प्रतिकार भी हो सकता है! मैं तो तुम्हारा हूँ—तुम्हारा प्रेमक्रीत हूँ...।' वाणी गद्‌गद हो गयी और कण्ठ रुद्ध हो गया। कमल-नयन ने अपने पटुके से विशाल लोचन पोंछे और गोपियों के कपोल तो प्रेमाश्रु से उज्ज्वल हो गये। वे भाव-विभोर हो गयीं। दो क्षण सब शान्त, मग्न हो गयीं—नीरव, निःशब्द—शान्त।

× × × ×

महारास प्रारम्भ हुआ—रसराज अपने मूर्तिमान् महाभाव से एक होकर युगल हो गया और महारास—जिसकी गति—नृत्य का कम्प ही विश्व के अणु-अणु को अनादि काल से गतिमान् किये है, जिसकी प्रेरणा ही निखिल ग्रह-नक्षत्रादि की प्रगति है, जो विशुद्ध-हृदय सर्वात्म-समर्पित योगीश्वर के मानस के लिये भी केवल ध्येय है—कल्पना की गति नहीं वहाँ। भाव और रस जब मर्त्यमानस में एकाकार होते हैं- वहीं कल्पना सुप्त, तन्द्रित हो उठती है; फिर जहाँ साक्षात रसराज और इसके महाभाव की मंजुमूर्ति आह्लादरूपा श्रीकीर्तिकुमारी सहस्रार के मध्य स्थित अष्टदल की चिन्तामणि-कर्णिका पर ललित त्रिभङ्गी में एकाकार अवस्थित हैं—नित्य, शाश्वत है मोहन का यह महारास।

गोपियों ने मण्डल बनाया—खूब वृहत् मण्डल और उन्हें लगा--प्रत्येक के पार्श्व में उनके कंधे पर भुजा रक्खे त्रिभुवन-सुन्दर वनमाली खड़ा है। सोने की दमकती मणियों के मध्य में महा-नीलमणि के गुथे दानों-जैसा वह मालाकार सुदीर्घ मण्डल—श्याम सचमुच ही तो सभी के पार्श्व में है, सभी के कंधों पर उसकी भुजाएँ हैं और मण्डल के मध्य में—मध्य में श्रीवृषभानुनन्दिनी के साथ वह अधरों पर बंशी धरे त्रिभङ्ग सुन्दर खड़ा है।

महारास प्रारम्भ हो रहा है—गोपियाँ नृत्य करेंगी, श्यामसुन्दर नृत्य करेगा उनके संग, मुरली तो बजेगी ही; परंतु इस महारास—इस महानर्तन की साङ्गता भी होनी चाहिये। आकाश विमानों से भर गया। रास-मण्डल पर छाया न पड़े, इतना अवकाश छोड़कर देवपत्नियों के साथ देवताओं, गन्धर्वों एवं अप्सराओं के विमान परस्पर सटकर भी स्थान नहीं पाते। देववाद्य धन्य हुए, अप्सरा एवं गन्धर्वों ने अपने मनोहर कण्ठ से श्रीकृष्णचन्द्र का यशोगान प्रारम्भ किया, नन्दन-कानन के दिव्य कुसुम आज सार्थक हुए, पवित्र हो गये वे आज व्रजराजकुमार एवं उनकी सहचारियों के लिये पादास्तरण बनकर। गगन में क्षण-क्षण पर पुष्प-वर्षा के साथ जयनाद गूँजने लगा—'श्रीनिकुञ्ज विहारी की जय!'

पुष्पवर्षा हो रही है, कालिन्दी के रजत-पुलिन पर चरणों के नीचे उन दिव्य कुसुमों का सुकुमार आस्तरण उच्च होता जा रहा है; देव वाद्य—दुन्दुभि, मृदङ्ग, वीणा बड़े स्वर से बज रहे हैं, जयघोष और यशोगान चल रहा है; किंतु किसी को पता नहीं—किसी का ध्यान नहीं उधर! श्यामसुन्दर कंधे पर भुजा रक्खे साथ-साथ नाच रहा है, उसकी वंशी बज रही है और गति के कारण कङ्कण, नूपुर, किङ्किणी आदि आभूषण कणित, रणित, झंकृत हो रहे हैं—चल रहा है यह आनन्द-नृत्य—वह तो चलता ही रहेगा—सदा चलता ही रहता है।

आभूषण बज रहे हैं, नृत्य के ताल में अरुण मृदुल कमलचरण थिरक रहे हैं, नीचे सुकुमार देव-सुमन उनके वेगपूर्वक पड़ने पर भी अधिकाधिक उत्फुल्ल ही होते जा रहे हैं और मुरली बज रही है; श्याम की वंशी—वह सकल संगीत का परमोद्गम मुरलिका—गोपियों के कण्ठ कूजित हुए—वे उच्चस्वर से मोहन का यशोगान करने लगीं।

श्याम गा रहा है—वह गा रहा रहा है, वंशी बजा रहा है, नृत्य कर रहा है—एक साथ सब; पर एक साथ सभी तो वही कर रहा है सदा से। श्याम गा रहा है—वह उसके साथ एक और स्वर उठा—यह मञ्जुता, यह आलाप—श्रीकीर्तिकिशोरी के कण्ठ की मधुरता, मुग्धता कहाँ से आये दूसरे कण्ठ में। सबसे पृथक्, सबसे अमिश्रित, सबसे ऊपर—पर सबको सरस-मधुर बनाता, सबको अपने क्रोड में लेता—वह उनका स्वर—मोहन झूम गया, उसने झुककर गायिका के कोमल कर दोनों हाथों की अञ्जलि में ले लिये और—यह सम्मान, यह मोहन का मान दान दूसरे का भाग भी नहीं। अब तो वही स्वर, वही राग इस महारास का 'ध्रुव' बन गया। उसी के दण्डाधार पर राग झूमते हैं, लड़ियाँ चलती हैं और बार-बार मोहन स्वर में स्वर मिलाकर उसकी आवृत्ति करता है। वही—केवल वही तो कुछ उस स्वर से स्वर मिला पाता है।

चरणों की गति बढ़ी—बढ़ी—बढ़ती गयी। नृत्य के वेग में गान स्वतः थकित हो गया। भाल पर सीकर उठे और वे बिन्दु बनकर झलमल करने लगे। वस्त्र, माल्य, आभरण अस्त-व्यस्त होते गये। रास—नृत्य बढ़ता गया। आनन्द के आवेग में वेग वृद्धि पाता गया।

कोई थकने लगी तो उसने तनिक झुककर अपनी बाहु से श्यामसुन्दर के स्कन्ध का सहारा ले लिया। उसकी भुजा का मल्लिका-कङ्कण टूट तो चुका ही था, श्याम के स्कन्ध पर गिर गया धीरे से।

किसी ने अपने कंधे पर पड़ी चन्दन-चर्चित विशाल भुजा को मुख झुकाकर सूँघा—रोमाञ्च हो आये समस्त शरीर में उसके और उसका मुख भुजा पर झुक गया नृत्य के वेग में भी।

किसी ने श्याम के मस्तक से मस्तक लगा लिया, दोनों के कुण्डल सट गये और किसी ने नाचते या गाते हुए ही मोहन के किसलय-कर हृदय पर रख लिये। चलती रही यह क्रीड़ा।

कुण्डल अलकों में उलझकर स्थिर हो गये, केशपाश खुल गये, उनमें गुम्फित माला और सुमन गिर गये, भाल एवं कपोलों पर स्वेद-बिन्दु चमक उठे। श्यामसुन्दर के साथ गोपियाँ पूरे वेग से चक्राकार नृत्य में संलग्न हैं। उनके नूपुरों का कणन, कङ्कणों का रणन, मेखला का शिञ्जन गूँज रहा है। गान-गान तो अब केवल गुंजार करते भ्रमरों के कण्ठ में है।

विमानों की पुष्प-वृष्टि कब से थकित हो गयी, जयघोष—यशोगान विरत हो गया, देववाद्य मूक हो गये। विमानों में देवता, देवाङ्गनाएँ, अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर—सब थकित, मुग्ध, निश्चल हो गये हैं इस दिव्य क्रीड़ा को देखकर। उन्हें तो अपना ही स्मरण नहीं और भूल तो गये चन्द्रदेव। वे स्वयं स्थिर हो गये हैं। उनके रथ के मृग, सारथि, सेवकादि गण सब चकित—स्तब्ध मूर्तिवत् स्थिर होगये हैं।

श्यामसुन्दर की भुजाएँ कंधों पर हैं, उस मदन-मोहन का स्पर्श प्राप्त हो रहा है—गोपियाँ आनन्द-विभोर हैं। उन्हें केश, वस्त्र, आभरण—किसी का स्मरण नहीं, किसी का ध्यान नहीं। वे उन्मद नृत्य कर रही हैं।

नृत्य शान्त हुआ, सब बैठ गयीं वहीं और श्याम—वह तो उतने रूपों में सबके समीप ही है। जैसे अबोध शिशु दर्पण में पड़े अपने ही प्रतिबिम्ब के साथ क्रीड़ा करे—गोपियों के साथ वैसा ही भाव-मुग्ध, वैसी ही सत्व-परिशुद्ध, वैसी ही सरल सहज क्रीड़ा चल रही है उसकी। उसने अपने मृदुल करों से सबके मुख एवं कपालों के स्वेद पोंछ दिये, उलझी अलकें सुलझा दीं, कुण्डल- · · केयूरादि ठीक कर दिये।

गोपियाँ मोहन के अमृतस्यन्दी कर-स्पर्श से परम प्रसन्न हो गयीं। उनकी श्रान्ति—पता नहीं क्या हो गयी वह तो। वे तो पुनः उसी त्रिभुवन-मोहन का भुवन-मङ्गल चरित बड़े भाव-लुब्ध कण्ठ से गाने लगीं।

'हम सब स्नान करें!' मोहन ने प्रस्ताव किया और सब के साथ श्रीयमुनाजी में प्रवेश किया उसने। गोपियों ने उस पर छींटे उछालने प्रारम्भ किये और उसने गोपियों पर। अरुण सरोज-जैसे करों से उछलते, चन्द्रज्योत्स्ना में चमकते मुक्ता-फल-से वे बिन्दु—चलती रही यह जलक्रीड़ा। अङ्गराग, चन्दन, कस्तूरिका-तिलक, अञ्जन—सब धुल गये और उल्लसित, उत्कण्ठित जल-जीवों ने वह सब जल पी लिया। शृङ्गार के कुसुम कालिन्दी की लहरों पर तैरते चले गये। सहज सुन्दर स्वरूप—ये भूषणों का भूषित करनेवाले रूप क्या साज-सज्जा की अपेक्षा करते हैं।

हास्य-विनोद, क्रीड़ा-कौतुक चलता रहा यह—चलता रहा जलमें, पुलिन पर, वनमें घूमता क्रीड़ा करता भुवन-मोहन का यह मण्डल।

'सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः।'

एक दिन—एक रात्रि की यह कथा नहीं है—वह शारदीय पूर्णिमा की धन्य निशा तो ब्रह्म-रात्रि हो ही गयी, श्यामसुन्दर की व्यक्त जगत् में यह निकुञ्ज-क्रीड़ा लगभग ढाई वर्ष चलती रही। जो उसके अधिकारी थे—थी ही वह उन्हीं के लिये। योगमाया का आश्रय लेकर मोहन की यह महा-भाव-क्रीड़ा—यह तो गोपियाँ की ही वस्तु थी। उन्हीं के लिये थी और आज भी उन्हीं के लिये हैं। विकार-हीन निर्मल मानस में ही जिसका प्राकट्य होता है, पुरुष-भाव से सर्वथा रहित, सर्वात्म-समर्पण-सम्यक्-सिद्ध मानस ही जिसके चिन्तन के अधिकारी हैं—लेखनी की वस्तु नहीं वह।

× × ×

आठ वर्ष, एक महीने, इक्कीस दिन का श्यामसुन्दर—मैया, बाबा, गोपगण क्या सोच लें उसके सम्बन्ध में और वह गया ही कहाँ था। वह क्या मैया को बिछायी मृदुल शय्या पर अग्रज के समीप रात्रि भर सोता रहा है। मैया ने ही तो उसे प्रातः उठाया है। सायंकाल तनिक देर से कलेऊ किया उसने और दूध तो वह सदा बहुत आग्रह करने पर तनिक-सा पीता है।

नौ वर्ष, एक मास और कुल ६ दिन की श्रीकीर्तिकुमारी, उसकी सहेलियाँ भी तो उससे कुछ ही बड़ी हैं, कुछ तो उससे भी छोटी हैं। ये बालिकाएँ—बड़ी भोली हैं ये। सायंकाल कहीं से कन्हाई ने वंशी बजाई तो दौड़ पड़ीं। भला, रात्रि में कहीं इस प्रकार घर से इन्हें बाहर जाने दिया जा सकता है। द्वार तक गयीं और बाहर की नीरवता देखते ही डरकर लौट आयीं। कोई क्या कहे इन से। मुरली सुनकर तो पशु-पक्षी तक दौड़ पड़ते हैं। इन्होंने तो लौटकर फिर भोजन में भी आना-कानी नहीं की और सोयीं भी शीघ्र ही।

गोपियाँ—गोपों ने खिल्ली उड़ायी उनकी। 'बड़ी हठी हैं ये सब। सायंकाल वंशीध्वनि सुनायी पड़ी तो पागल की भाँति दौड़ पड़ीं। कितना कहा, कितना पुकारा, कितना रोका; पर सुनना ही नहीं था इन्हें तो। बड़ी साहसी बनी थीं—घर से बहुत हुआ होगा तो दो-चार-दस घर आगे तक चली गयी होंगी या ग्राम-सीमा तक सही, रात्रि को वन में जाना क्या सरल काम है। इन्हें तो वन के नाम से भय लगता है। मार्ग को शून्य देखते ही सब उन्माद शिथिल हो गया। कैसी चुप-चाप लौट आयीं और मुख दिखाने में भी फिर इन्हें संकोच होना ही था। अरे, कन्हैया क्या वन से वंशी बजा रहा था? भला, उसे कौन जाने देगा रात्रि को वन में। रात्रि को वायु से ऐसे ही ध्वनि किसी दिशा की किसी दिशा से आती जान पड़ती है। ये रुकतीं तो बता भी देते कि ध्वनि किधर से आ रही है; पर इन्हें तो दौड़ने की पड़ी थी। बात ही नहीं सुननी थी। श्रीकृष्णचन्द्र बड़ी मधुर, बड़ी मोहक मुरली बजाता है। वह वंशी बजाता हो तो दौड़ जाने का जी क्या हम सबों का नहीं होता; किंतु ऐसे पागल की भाँति दौड़ने से लाभ? सायंकाल व्रजराज के भवन में कहीं वह वंशी बजा रहा था, वह भी क्या उसके पास दौड़ जाने का समय था!'

योगमाया—उनका अधीश्वर तो नित्य पुराण पुरुष होकर भी नित्य किशोर, नित्य कुमार, नित्य शिशु है और उस निकुञ्जविहारी की ये नित्य सहचरियाँ उससे भिन्न कहाँ हैं। 'स रन्तुमैच्छत' की उसकी वह श्रुति-उद्घोषित इच्छा ही तो इस विराट् विश्व में चरितार्थ होती है। वह उसका निकुञ्ज-विहार और यह मैया के संरक्षण में शयन, उसकी सहचरियों का वह महारास और गोप गृहों में यह भीरु भाव—दोनों ही सत्य, दोनों ही नित्य, दोनों ही मङ्गलमय। योगमाया का यह लीला-नाट्य—उसमें क्या देश, काल, परिमाण या संख्या बाधा दे पाती है? गायें हुंकार करने लगी हैं, मैया ने मोहन को जगा दिया है और भाग गया बिना मुख धुलाये ही वह गोष्ठ में गोदोहन करने। कुमारिकाओं ने तो दधिमन्थन भी प्रारम्भ कर दिया।

—❀⊂❀⊃❀—
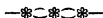
सुदर्शन-उद्धार

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥

—भागवत १०।१०।४१

आज शिवरात्रि है। बाबा के साथ सारे गोप पिछली रात्रि में उपोषित रहे हैं। सबने पृथ्वी पर कुश बिछाकर उन पर ही शयन किया है। कन्हैया आज सवेरे से उल्लास में है। वह नौ वर्ष से पाँच महीने अधिक का हो गया। यह भी कोई बात है कि वह आज व्रत न करे। मैया ने बहुत समझाया 'दूध पीने से व्रत नहीं जाता।' पर वह तो आज पूरा व्रत करेगा।

'श्यामसुन्दर, तुम थोड़ा दूध पी लो !' मैया को कैसे सन्तोष हो। व्रत करता तो ठीक, परंतु उनका सुकुमार कन्हैया क्या निर्जल रहने योग्य है। उन्होंने महर्षि शाण्डिल्य से अनुरोध किया। महर्षि ने गोद में बैठा कर श्रीकृष्ण को प्रेमपूर्वक समझाना चाहा।

'मुझे भूख लगेगी तो पी लूँगा !' भला, वह हठी अपना हठ कहाँ छोड़ना जानता है। महर्षि एक परम पावन व्रत में बालक को निरुत्साहित कर भी कैसे सकते हैं। उनके नेत्र भर आये और चुपचाप वे उस कमल-लोचन के श्रीमुख को देखते रह गये।

'हम भी व्रत करेंगे !' बालकों में भला, कन्हैया से कोई दुर्बल है जो उससे पीछे रहे। कनूँ व्रत करता है तो ये सब क्यों नहीं कर सकते।

श्रीकृष्ण ने व्रत किया है—व्रज के पशुओं और पक्षियों तक ने तृण, दाना या जल मुख में नहीं लिया। आज शिवरात्रि है। भगवान् विश्वनाथ के लिये विश्व के समस्त प्राणियों ने कहीं, कदाचित् ही इस प्रकार व्रत किया हो।

एक कोटि बिल्वपत्र चाहिये एक बार के पूजन के लिये और वह भी सुचिक्कण, चक्र एवं छिद्र-हीन; धतूरों के फल चाहिये, उनके पुष्प चाहिये, आक के फूलों की माला चाहिये। सुगन्धित पुष्पों, पक्वान्नों के साथ भोले बाबा की तुष्टि के लिये ये वन्य सामग्रियाँ भी तो चाहिये और रात्रि में पूजन होना है चार बार। बिल्ववन गये बिना भला, इतने बिल्वपत्र कहाँ से मिलेंगे।

'बाबा, मैं सब एकादश दलों के बिल्वपत्र चढ़ाऊँगा, भला !' श्यामने सुन रखा है कि एकादश दल के बिल्वपत्र सब से अच्छे होते हैं।

'मैं भी तीन या पाँच दलों के नहीं चढ़ाऊँगा !' भद्र ने बाबा के दोनों हाथ पकड़ लिये।

'तुम सब एकादश दल के ही चढ़ाना !' बाबा को क्या आपत्ति है। बिल्ववन में एकादश दल के बिल्वपत्रों का अभाव कहाँ है। बालक कहीं बिल्ववन जाने का हठ न कर लें, यही बड़ी बात है। वहाँ कण्टकों की बहुलता जो है।

'मैं धतूरे का फूल लाता हूँ, दुहरे फूल !' श्याम भला, कहीं एक स्थान पर बैठ सकता है।

'तुम लोग यूथिका के सुन्दर पुष्प चुनो तो !' माता रोहिणी को लगा कि कहीं ये सब धतूरे के फल तोड़ने लगे तो इनके करों में उसके काँटे लग जायँगे।

'यूथिका के नन्हे-नन्हे पुष्प !' श्याम को कुतूहल हुआ और वह सचमुच उस लता-कुञ्ज की ओर दौड़ गया। बालकों ने उसका अनुगमन किया।

× × × ×

तीसरे पहर व्रज के द्वार-द्वार से जुते हुए छकड़े, बड़ी गाड़ियाँ व्रजेन्द्र के द्वार के सम्मुख एकत्र होने लगीं। गोपियों ने नाना प्रकार के पक्वान्न बनाये हैं। दूध, दधि, घृत, मधु, शर्करा आदि के बड़े-बड़े मटके भरे हैं छकड़ों में। पुष्प, बिल्वपत्र, माल्य आदि के छकड़े पृथक् ही हैं। धूप, चन्दन, केसर, कर्पूर, कोई पूजन-द्रव्य छूट कैसे सकता है।

गोपियाँ, गोप, ग्वाल-बाल, गौएँ, वृषभ, बछड़े—सबकी विचित्र छटा है आज। सब अलंकृत हैं। सब नूतन वस्त्राभरणों से सुसज्ज हैं। गोपियाँ बच्चों के साथ छकड़ों में बैठ गयीं मैया एवं रोहिणी मैया के बैठते ही। राम-श्याम उनकी गोद में विराज रहे हैं। ब्राह्मणों ने शङ्खनाद किया। गोपों के एक दल ने गायों को आगे हाँका और दूसरे दल ने अपने धनुष चढ़ाये, त्रोण कसे, भल्ल सम्हाले। वे छकड़ों को घेरकर चारो ओर स्थित हुए। विप्रों के स्वस्तिपाठ के साथ प्रस्थान हुआ।

आगे-आगे महर्षि शाण्डिल्य का वृषभ-रथ है और उसके पीछे विप्रों के पंक्तिबद्ध रथ हैं। भागती, दौड़ती गायों की पद-धूलि सब को स्नान करा रही है। विप्रों के पीछे व्रजेन्द्र एवं श्रीवृषभानुजी के रथ हैं वृद्ध गोपों के रथों की पंक्ति के मध्य में एक दूसरे से सटे-से। आज नन्दगाँव और बरसान, एक हो गया है इस देव-यात्रा में। पुरुषों तथा नारियों के वर्ग ही पृथक्-पृथक् हैं।

तुरही, शृङ्क, शङ्ख, मृदङ्ग की तुमुल ध्वनि में वृषभों, गायों के गलों में बँधी घंटियों का स्वर एक हो रहा है। ब्राह्मणों का सामगान गोपों के जयनाद में सुनायी कम ही पड़ता है। गोपियों के कल कण्ठ के गीत भला, कौन सुन सकता है इस समय।

कन्हैया बार-बार खड़ा हो जाता है छकड़े पर। दाऊ, भद्र—सभी उछलते हैं, खड़े होते हैं, इधर-उधर उझककर देखते हैं। इन चञ्चल बालकों को सम्हालना सरल नहीं है। माताओं का ध्यान और कहीं नहीं है। मैया बराबर श्याम को बैठाये रखने के प्रयत्न में है।

'हर, हर, महादेव!' 'भगवान् शंकर की जय!' बार-बार तुमुल नाद उठता है। श्याम—सब बालक उत्साह से उठ खड़े होते हैं और दोनों हाथ उठाकर जयघोष करते हैं। गोपियाँ जयनाद के साथ हाथ जो जोड़ने लगती हैं, एक पल को नेत्र बंद करके।

× × × ×

'वह भगवान् पशुपति के मन्दिर का त्रिशूल दिखायी पड़ा!' सहसा छकड़े खड़े हो गये। उच्च जयघोष के साथ सब छकड़ों से उतरकर भूमि पर खड़े हो गये। सबने भूमि पर मस्तक रख कर प्रणिपात किया। यहाँ से सब पैदल ही चलेंगे मन्दिर तक।

'मैया, वे श्रीयमुनाजी हैं?' श्यामसुन्दर ने कुछ कुतूहल से पूछा।

'ये सरस्वती हैं!' माता रोहिणी ने परिचय दिया। भला, अम्बिका-वन में यमुनाजी कहाँ।

'मैं स्नान करूँगा!' दूर से ही उस चपल ने पटुका माता को दे दिया। वनमाला और मुकुट उतारने लगा।

'अरे, रुको! मैं स्नान करा दूँगी!' मैया पुकारती रही। दाऊ, कन्हैया, भद्र, सुबल, श्रीदाम—सब दौड़ गये। वे कहाँ माताओं की पुकार सुनते हैं। 'इस अपरिचित घाट पर बालक कहीं फिसल न पड़ें, वे कहीं जलमें भीतर तक न चले जायँ।' मैया ने गोपों को सावधान किया बालकों को सम्हालने के लिये। बालक सब बाबा के पास दौड़ गये हैं। वे पुरुषों के मध्य में स्नान करेंगे। उनके समीप जाना भी इस समय सम्भव नहीं। मैया ने वस्त्र भेजे और बाबा को कहलाया श्यामसुन्दर का ध्यान रखने के लिये।

'आओ, तुम सबको स्नान करा दूँ!' बाबा ने श्याम के साथ बालकों को रोक लिया। गोप उन्हें स्नान कराने लगे।

'अच्छा, तुम लोग यहाँ खड़े तो रहो!' बाबा को भी स्नान करना है। कन्हैया वस्त्र बदलता नहीं। किसी प्रकार तटपर उसे खड़ा किया बाबा ने स्नान करा के।

'तुम सब यह क्या करते हो !' बालकों ने परस्पर छींटे उछालना, तट से जल में कूदना, थोड़े जल में पैर पटक-पटक कर स्नान करना प्रारम्भ कर दिया है। वे क्या किसी के रोकने से रुकने-वाले हैं। अपने कोलाहल में वे किसी की सुनते भी हैं।

'कृष्णचन्द्र, देखो ! तुम लोग निकल कर कपड़े तो जल्दी से पहिन लो ! भगवान् शंकर की पूजा पहिले तुम करोगे या श्रीदाम ?' बाबा ने अब की बार ठीक उपाय किया।

'पहिले मैं पूजन करूँगा !' श्याम, श्रीदाम, दाऊ, भद्र—सभी जल से दौड़ते हुए निकले। उन्होंने न तो ठीक-ठीक अङ्ग पोंछने दिये और न स्थिर रहकर वस्त्र पहिनाने दिये। उन्हें मन्दिर में पहुँचने की शीघ्रता जो है।

× × × ×

भगवान् भास्कर पश्चिम में अन्तर्धान होने लगे हैं। आकाश, वन-भूमि—सब अरुणाभा से रञ्जित हो गया है। गोप गोदोहन में लगे हैं। अभी भगवान् शंकर को दुग्ध-स्नान जो कराना है।

'नमः शम्भवाय च, मनोभवाय च।
नमः शिवाय च, शिवतराय च !'

ब्राह्मणों का घन-गम्भीर कण्ठ बड़े स्वर से मन्दिर को गुञ्जित कर रहा है। श्यामसुन्दर उस पावन लिङ्गमूर्ति का अभिषेक कर रहा है।

दुग्ध, दधि, मधु, शर्करा, घृत, पञ्चामृत के सहस्र-सहस्र कलशों के अभिषेक से मन्दिर से उज्ज्वलवर्णा दूसरी सरस्वती प्रवाहित हो उठीं। सरस्वती का जल दुग्धमय हो गया इस धारा के मिलने से।

घन कानन में निवास करनेवाले ये अरण्यवासी परम तापस भगवान् शिव और भगवती अम्बिका के श्रीविग्रह- आज शिवरात्रि को किसी महानगर के श्रीविग्रह को भी इतनी विपुल श्रद्धा, यह अपार आराधना-सम्भार कदाचित् ही प्राप्त होगा और यहां जो श्यामसुन्दर स्वयं बिल्वपत्र समर्पित कर रहा है महर्षि शाण्डिल्य के मन्त्रपाठ के साथ......

× × × ×

गोपों का अपार समुदाय है। सब एक साथ मन्दिर में खड़े भी नहीं हो सकते। पूजन तो क्रमशः ही हो सकता है। बाबा ने, गोपों ने, बालकों ने, सबने भगवान् पशुपति और अम्बिका को षोडशोपचार से पूजित किया। प्रदोष, निशीथ, तृतीय प्रहर और चतुर्थ प्रहर की पूजा विधिवत् सम्पन्न हुई। रात्रिभर कीर्तन, जयनाद, स्तवन, मन्त्रपाठ होता रहा। कन्हैया ने, बालकों ने भी निद्राका भाव नहीं प्रकट किया। सब इधर-से-उधर जयघोष करते रात्रिभर फुदकते-से रहे हैं। बाबा ने, गोपों ने आज सहस्रों गायें, अपार रत्न, वस्त्र आभरण दान किया है।

कल दोपहर को भोजन हुआ था। आज भी पूरा दिन और रात्रि निर्जल व्यतीत हुई है। दिन में किसी को विश्राम का अवकाश नहीं मिला है। अब तक पूजन-उत्सव के उत्साह में श्रान्ति का अनुभव ही नहीं हुआ। अब चतुर्थ पूजन के अन्त में नीराजन हो चुका। पर्वकृत्य समाप्त हुआ। सबको एक साथ निद्रा और श्रान्ति प्रतीत हुई। श्याम तो मैया की गोद में सिर रखकर सो भी गया। वह दाऊ पड़ा है उसके पास और भद्र तो आज बाबा को छोड़कर माता रोहिणी की गोद में सो गया है। सब सो गये, जिसे जहाँ स्थान मिला।

शिवरात्रि की काल रात्रि—घोर अन्धकार और यह वनभूमि; परंतु निद्रा क्या स्थान का विचार करती है। केवल जलते हुए अलात (मशाल) प्रकाश किये हैं। मन्दिर में तो सोया नहीं जा सकता, बाहर मृदुल तृणों पर ही सब बैठे हैं पूजन से निवृत्त होकर। बैठे-बैठे ही पलकें भारी हुईं, झपकी आयी और गोपियाँ, गोप—सब सो गये। गायें, वृषभ—ये सब तो सोये ही हैं। रक्षा में नियुक्त तथा प्रकाश लिये गोपों ने भी शस्त्र एवं अलातों को वृक्षों की शाखाओं पर स्थिर कर दिया है। वे भी वृक्ष के सहारे तनिक विश्राम कर लेना चाहते थे, पर खड़े-खड़े ही सोने लगे हैं।

मन्दिर में शत-शत--सहस्र-सहस्र प्रदीप प्रज्वलित हैं! पूजन-पात्र, पूजन-द्रव्य इधर-उधर पड़े हैं। बिल्वपत्र, पुष्प, मालाओं से श्रीविग्रह--लिङ्गमूर्ति पूर्णतः आच्छादित हो गयी है। अब भी ऊपर के स्वर्ण-कलश से उसे अखण्ड दुग्धधारा स्नान करा रही है। वस्त्राभरणों से सज्जित, माल्यमण्डित भगवती अम्बिका का केवल श्रीमुख दीख रहा है। जैसे वे लीलामयी मन्द-मन्द हास्य कर रही हों।

बाहर है शान्ति--नीरव शान्ति! कोई वृक्ष से टिके, कोई बैठे-बैठे झोंके लेते और कोई भूमि में घुटने सिकोड़े लेटे हैं। मैया के हाथ निद्रा में भी बार-बार श्याम के ऊपर घूम जाते हैं। गायें, वृषभ कभी-कभी पूँछ या कान हिला देते हैं। अलात चुपचाप प्रकाश कर रहे हैं। कोई रक्षक कभी-कभी मस्तक उठाकर नेत्र खोलते हैं और फिर मस्तक शाखा से जा टिकता है।

× × × ×

'श्रीकृष्ण! कृष्ण!' सहसा बाबा उच्चस्वर से चीत्कार करके चौंक पड़े। एक साथ सारे गोप, समस्त गोपियाँ और बालक जग पड़े। सब दौड़े। 'सर्प! अजगर! दौड़ो! बचाओ!' पूरी बात न तो बाबा के मुख से निकलती और न गोपों के मुख से।

बाबा के दोनों चरण जैसे किसी ने साथ ही पकड़ लिये हों। वे चौंककर उठे और देखते ही चिल्ला पड़े हैं। बड़ा भारी अजगर है। वह पता नहीं कहाँ वन से धीरे-धीरे सरकता हुआ यहाँ तक आ गया है। सम्भवतः वह वन से सीधे सरकता आया है। उसके लिये इधर-उधर मुड़ना सहज नहीं। उसके मार्ग में कोई पशु, कोई प्राणी नहीं पड़ा; वह बाबा तक ही पहुँचा। बहुत धीरे-धीरे वह बाबा के दोनों पैरों को निगलता जा रहा है। बाबा ने उसको पकड़कर, भूमि पकड़कर बहुत बल लगाया; पर कहीं इस प्रकार कोई अजगर के मुख से छूटता है।

गोप दौड़े, उन्होंने लाठियाँ और परशु उठायें। बड़ा सहज उपाय है सर्प को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देना। बाबा ने दोनों हाथ उठाकर पूरी शक्ति से चिल्लाकर सबको रोका--'मारो मत! मारो मत! आज शिवरात्रि के दिन किसी प्राणी का वध महापाप है। यह मुझे भक्षण ही तो कर लेगा।'

गोपों के हाथ उठे-के-उठे रह गये। व्रजेन्द्र रोक रहे हैं, आज शिवरात्रि है--पर यह सर्प व्रजाधिप को निगलता जा रहा है। उसने घुटनों तक उनको निगल लिया है। वे धर्म-संकट में दो क्षण स्तब्ध-से रहे और तब उन्होंने जलते अलात (मशाल) उठा लिये। अग्नि के ताप से व्याकुल होकर सर्प व्रजपति को छोड़ देगा, यह सबको निश्चित-सा लगा।

कैसा है यह सर्प? शत-शत अलात उसके शरीर पर लगाये गये हैं। स्थान-स्थान से उसका शरीर जल गया है। दुर्गन्ध आने लगी है। घाव दिखायी देने लगे हैं। वह अपने शरीर को इधर-उधर व्यथा से मोड़ता, घुमाता तो है; पर बाबा को छोड़ता नहीं। उसका निगलने का क्रम भी बंद नहीं होता। उसका मुख बाबा के जानु तक पहुँच गया है। गोपों को स्मरण ही नहीं आता कि सर्प के दाँत ऐसे नहीं होते कि किसी वस्तु को पकड़कर वह फिर छोड़ सके। एक बार जान या अनजान में जिसे वह पकड़ ले, उसे उदर में पहुँचाये बिना उस सर्प के पास कोई उपाय नहीं।

× × × ×

'क्या हुआ है?' व्याकुलता के कारण गोपों ने बाबा को इस प्रकार घेर रक्खा है कि वहाँ तक पहुँचना सरल नहीं। कन्हैया ने किसी प्रकार झुककर भीतर प्रवेश किया।

'तू बाबा को नहीं छोड़ेगा!' पहुँचते ही श्याम ने एक लात जमायी सर्प को।

यह क्या हुआ--सर्प गया कहाँ? यहाँ तो कोई देवता खड़ा है। रत्न-जटित मुकुट, भुजाओं में रत्नाङ्गद, मणि-स्वर्ण-माला, दिव्य वस्त्र और स्वयं इसका शरीर तेजोमय है! यह कन्हैया को हाथ क्यों जोड़ रहा है?

'तू है कौन ? इस प्रकार मोटा, गंदा साँप क्यों बना था ? मेरे बाबा को क्यों पकड़ा तूने ?' कहा नहीं जा सकता कि नेत्रों में अभी नींद की अरुणिमा है या रोष की; पर वाणी में रोष स्पष्ट है ।

'मेरा नाम सुदर्शन है ! मैं विद्याधर हूँ ! आप मुझे क्षमा करें ! मैं विमान पर बैठा अपने सौन्दर्य एवं धन के मद में मत्त चला जा रहा था एक बार। नीचे मुझे आङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न महर्षि देवल—अष्टावक्र दिखायी पड़े। उनकी कुरूपता पर मुझे हँसी आ गयी। मेरे अविनय से महर्षि ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया। उस शाप के कारण ही मैं अजगर हुआ। बहुत प्रार्थना करने पर महर्षि ने आपके चरण-स्पर्श से इस शाप के निवारण का विधान किया। बहुत दिनों से क्षुधातुर था। आज प्राणियों की आहट पाकर धीरे-धीरे यहाँ आया था। ऋषि का शाप तो मेरे लिये परम वरदान सिद्ध हुआ। आपके परम पावन श्रीचरण के स्पर्श का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपका नाम लेने से प्राणी समस्त पापों से छूट जाता है, मैंने तो आपका चरण-स्पर्श प्राप्त किया है ! मैं ब्रह्मशाप से छूट गया हूँ। दयामय, मैं आपकी शरण हूँ ! सर्वेश्वर, अब आप मुझे आज्ञा करें !' वह दिव्य पुरुष तो हाथ जोड़कर गद्‌गद कण्ठ से स्तुति ही करने लगा। कन्हैया आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। सभी गोप-गोपियाँ—चकित-से मौन होकर देखते रहे उसे। उसने प्रार्थना की और पृथ्वी पर लंबा पड़ गया दण्डवत् करता श्याम के सम्मुख।

'तुम उठो, जल्दी से अपने घर चले जाओ !' कन्हैया ने इस प्रकार कहा, जैसे उसे भय हो कि कहीं यह फिर साँप बनकर किसी को पकड़ न ले ! वह पुरुष उठा, उसने श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा की, उसके सम्मुख फिर दण्डवत् प्रणिपात किया और तब आकाश में चला गया। श्याम अब तक बराबर उसी की ओर देखता रहा था। गोप भी उसे ही देख रहे थे। अब सब जैसे चौंक पड़े हों।

'बाबा !' कन्हैया ने झपटकर बाबा के गले में दोनों भुजाएँ डाल दीं और झूल गया। बाबा ने उसे हृदय से लगा लिया है। उनके नेत्र भरे हैं। वे कुछ बोल नहीं पाते।

'मैंने सबसे पहले भगवान् शंकर की पूजा की थी न, उसीसे तो साँप मेरी एक लात खाकर देवता हो गया !' कन्हैया की बात ही मैया को, सखाओं को, बाबा को और गोपों को ठीक लगती है। महर्षि शाण्डिल्य और विप्रवर्ग क्यों यह सुनकर हँसता है, कौन जाने ।

यह प्राची में अरुण रङ्ग का घड़ा फूटा। महर्षि तो विप्रों के साथ सरस्वती में स्नान भी करने लगे ! बाबा ने भी गोपों को छकड़े जोतने को कहकर स्नान किया। स्नान, नित्यकर्म और आम्बिका के साथ भगवान् पशुपति का पूजन करके बाबा ने सहस्रों गायें दान कीं। छकड़े सज्जित हुए। सबने प्रस्थान किया। आज उपवास का पारण तो ब्रह्मभोज के पश्चात् सबको नन्द-भवन में ही करना है ।

—❀⊂❀⊃❀—

शङ्खचूड़-वध

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायार्चितेषु मूढः ।
प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥

—भागवत ११ । ८ । ८

फाल्गुन की पूर्णिमा, वसन्तऋतु का सौन्दर्य वन के अणु-अणु से फूटा पड़ता है। आम्र-मञ्जरी की सुरभि, कुसुमित तरु-लता और रात्रि में भी गुंजार करते भ्रमर, चन्द्र-ज्योत्स्ना ने पूरे वन को स्नान करा दिया है।

आज की रात्रि भी क्या निद्रा लेने की रात्रि है? महर्षि शाण्डिल्य ने बताया है कि रात्रि के तृतीय प्रहर के अन्त में भद्रापुच्छ में होलिका-दहन होगा। नवान्नेष्टि यज्ञ होना है उसी अग्नि में। गोप उस यज्ञ की सामग्री-सम्भार में लगे हैं। गोपियाँ यज्ञिय पदार्थ प्रस्तुत कर रही हैं। बालक आज पृथक्-पृथक् अपने-अपने क्रीड़ा-उल्मुक बनाने में लगे हैं। कोई समय से पूर्व नहीं चाहता कि उसका उल्मुक दूसरा देख ले। वे चाहते हैं, उनका उल्मुक सबसे विचित्र सिद्ध हो। किसी ने दो शाखाओं का अरंड वृक्ष चुना है और किसी ने तीन, चार या पाँच टहनियों का। शाखाओं में पत्ते बाँधते उन्हें संतोष ही नहीं होता।

कन्हैया बहुत देर तक सखाओं के साथ आज गाता, कूदता, धूम मचाता व्रज की गलियों में घूमा है। अन्ततः बालक ही तो उस होलिका में नित्य समिधा डालते हैं। आज तो समिधा डालने का अन्तिम दिन था। सबों ने भरपूर धूम की। जहाँ जो काष्ठ मिला, उठाकर डाल आये। द्वार-द्वार, गली-गली सब 'डफ' बजाते देर तक गाते, ताली बजाते खूब घूमे। मैया ने किसी प्रकार रात्रि के द्वितीय प्रहर के प्रारम्भ में श्याम को पाया। बड़ी कठिनाई से दोनों भाइयों ने भोजन किया। आज भद्र को छोड़ कोई सखा साथ नहीं भोजन करने में और यह भद्र भी तो भोजन करते ही एक ओर खिसक गया। उसे भी तो अपना उल्मुक बनाना है।

× × × ×

'भैया, देख न आज कैसी ज्योत्स्ना है। वन भूमि कैसी भली लगती है!' कन्हैया अपने अग्रज के साथ वन में पहुँच गया। उसे सेवकों और बाबा के लाये अरंड पसन्द नहीं आये। स्वयं ढूँढ़ेगा वह अपने उल्मुक के लिये अरंड।

'अरे, तुम सब भी आयी हो!' चूड़ियों की झंकृति से घूमकर दोनों भाइयों ने देखा। व्रज की सभी कुमारिकाएँ तो आ गयी हैं। उन सबों ने सिर झुका लिया। सायंकाल से जो धूम श्यामसुन्दर ने द्वार-द्वार मचायी थी, वह क्या ऐसी थी कि उन्हें घर में रहने दे। वे तो घरों से पीछे-पीछे ही इन दोनों के लगी रही हैं। जहाँ-जहाँ बालकों का दल जाता था, वे दूसरे मार्ग से घूमकर उस घर में पहुँचती रही हैं। जब बालक अपने-अपने घर चले गये—वे नन्दभवन में न जा सकीं। संकोच के कारण द्वार से दूर ही ठिठकी रह गयीं। कितनी देर? यह तो स्वयं उनको पता नहीं; पर उनको तो लगा कि कुछ क्षणों में ही राम-श्याम भवन से निकले और वे दबे पैर लग गयी।

राशि-राशि पुष्पभार लिये झूमती लतिकायें, पुष्प-सौरभ से पूर्ण चमकते अरुण किसलय सम्हाले अनुराग-रञ्जित-से पादप, शीतल मन्द समीर, धवल चन्द्र-ज्योत्स्ना में दुग्ध-स्नात-सी वन राजि। दोनों भाइयों को बड़ा आनन्द आया। वे उन कुमारिकाओं के साथ हँसने, दौड़ने, क्रीड़ा करने लगे। भला, ऐसे समय उल्मुक का किसे स्मरण हो। वे सब पुष्प-चयन करने लगे, परस्पर

पुष्प-गुच्छ फेंकते एक दूसरे पर और हँसते। उनकी क्रीड़ा अबतक चलती रही। समय का ध्यान किसे आये और क्यों ? आज रात्रि में शयन नहीं करना है।

× × × ×

'तुम दोनों भाई एक-से नटखट हो। हम सब तुमसे नहीं बोलेंगी !' कुमारिकाओं ने रोष का अभिनय किया और वे झुंड-की-झुंड एक ओर थोड़ी दूर जाने लगीं।

'हम भी तुमसे नहीं बोलते !' श्याम क्या किसी से कम मानी है। उसने बड़े भाई का हाथ पकड़ा 'भैया, आ ! हम दोनों उस शिला पर बैठेंगे। मैं इन पुष्पों से तुझे सजाऊँगा।' दोनों भाई ठीक दूसरी दिशा में एक शिला की ओर चल पड़े।

'श्याम ! राम ! बचाओ ! बचाओ इस दुष्ट से !' अरे, यह क्या हुआ ? सब-की-सब बालिकाएँ इस प्रकार क्यों चिल्ला पड़ीं ? कन्हैया के हाथ में उठा पुष्प-गुच्छ गिर पड़ा। राम उससे भी पहले खड़ा हो गया और दोनों भाई शिला से कूद पड़े।

'बचाओ ! दौड़ो ! श्याम ! राम !' बालिकाएँ रोती रहीं—उनके तो प्राण हाहाकार कर रहे हैं इस क्रन्दन में। यह महाभयंकर यक्ष उन्हें लिये जा रहा है। घसीटे जा रहा है बलपूर्वक। वह उन शत-शत बालिकाओं को अपनी माया से खींचे लिये जा रहा है। विवश खिंचती जा रही हैं वे।

'डरो मत !' वह गूँजा जलद-गम्भीर राम का स्वर। वह महा विशाल शाल-तरु उसने मूलो की भाँति दक्षिण हाथ में उखाड़ लिया। वह दौड़ा आ रहा है वह वायुवेग से।

'मैं अभी आया !' वह श्याम पुकार रहा है। उसने तो भाई से भी बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया है अपने हाथ से। अग्रज के साथ ही तो वह दौड़ा आ रहा है।

'बाप रे !' यक्ष ने इतना गम्भीर वज्रघोषी स्वर सुना ही नहीं था। उसने तनिक पीछे मुड़कर देखा। 'ओह !' प्राण सूख गये उसके। इतने विशाल शालवृक्ष शाखाओं के साथ नन्हीं छड़ियों की भाँति हाथों में उठाये दौड़ आते ये दोनों भाई !' उसने तो सोचा था, 'दोनों बालक हैं। रो-धोकर ये दोनों लौट जायँगे। कितनी सुन्दर हैं ये लड़कियाँ ! ऐसा सौन्दर्य तो स्वर्ग में सुनने में भी नहीं आता ! वह इन सबका सहज ही हरण कर ले जायगा।' वन में कुछ देर छिपकर वह इनको चुपचाप देखता रहा था। जैसे ही ये सब राम-श्याम से कुछ दूर हुईं, लेकर भाग चला। भला, उसकी गति को मनुष्य कैसे पहुँच सकता है; किंतु अब क्या हो ? ये दोनों भाई तो जैसे उड़े आ रहे हैं। नहीं, वह इतनी तीव्र तो कभी दौड़ नहीं सकेगा !

'अरे, ये तो बहुत समीप आ गये !' यक्ष ने पूरी शक्ति से एकबार भागने का प्रयत्न किया। क्षणभर पश्चात् पीछे मुड़कर देखा उसने कि मध्य का अन्तर बहुत कम हो गया है। भय के मारे उसने सभी बालिकाओं को वहीं छोड़ दिया और अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्राण बचाने के लिये भागा। उसे आशा थी कि दोनों भाई इन लड़कियों को पाकर उसका पीछा करना छोड़ देंगे।

× × × ×

'श्याम ! श्यामसुन्दर !' बालिकाएँ खड़ी रहने में असमर्थ होकर बैठ गयीं भूमि पर। उनके नेत्रों से अश्रुधारा चल रही है। उनकी हिचकियाँ बँध गयीं हैं। वे थर-थर काँप रही हैं। उनके स्वर स्पष्ट नहीं हो रहे हैं।

'भैया, तू यहाँ इन सबों के पास रह ! क्या पता इस दुष्ट का कोई दूसरा साथी कहीं छिपा हो ! मैं पकड़ता हूँ इसे !' दोनों भाइयों के मुख तमतमा आये हैं। नेत्र लाल हो रहे हैं।

'तुम सब डरो मत ! दाऊ यहाँ है ! मैं अभी आया !' श्रीकृष्ण ने किसी के उत्तर की अपेक्षा नहीं। एक क्षण के लिये चरण रुके और आगे दौड़ गया कन्हैया। दाऊ खड़ा हो गया वह विशाल शाल-तरु लिये बालिकाओं के पास।

'चल, तू कहाँ तक जायगा !' श्याम ने हाथ का तालवृक्ष फेंक दिया और दौड़ा यक्ष के पीछे। यक्ष सीधे न भागकर इधर-उधर वृक्षों के झुरमुट और कुञ्जों में आड़े-टेढ़े भागने लगा। भला, सीधे भागने पर कैसे बच सकता है वह।

मोटा, तगड़ा, पहाड़-सा भारी यक्ष—भला, वह क्या चञ्चल कन्हैया के साथ दौड़ने में पार पा सकता है। इस पूर्णिमा की रात्रि में कहीं अन्धकार भी नहीं कि दौड़कर छिप जाय। यक्ष के मस्तक में लगी महामणि आज उसका शिरोभूषण न होकर काल हो गयी है उसके लिये। कुंजों के झुटपुटे में वह कदाचित् छिप भी जाता, पर मणि जो मस्तक पर प्रकाशित हो रही है।

यक्ष दौड़ता जा रहा है, हाँपता जा रहा है, पसीने से लथ-पथ हो रहा है। यह आया श्याम—अब पकड़ा! प्राणों की सम्पूर्ण शक्ति यक्ष के चरणों में आ गयी है। किंतु ऐसे वह कहाँ तक भागेगा ? बहुत दूर भी नहीं भाग सका वह कि पीछे से मस्तक पर वज्र की भाँति घूसा पड़ा। भहराकर गिर गया वह। मूर्च्छा और मृत्यु—उसे पीड़ा का पता ही नहीं लगा। श्याम का दाहिना हाथ यक्ष के रक्त से अरुण हो गया। उसने वह मणि उसके केशों में से बलपूर्वक झटक ली और तब मुड़ा।

× × × ×

'भैया, देख न ! कितनी सुन्दर मणि है !' दाऊ के सम्मुख अपना हाथ फैला दिया श्याम ने। रक्त टपक रहा है उस दक्षिण कर से। मणि के प्रकाश में हथेली और अरुण हो गयी है।

'अरे, तुझे क्या हो गया !' दाऊ ने शाल तो छोटे भाई को लौटते देखकर ही फेंक दिया। लेकिन यह क्या ? कन्हाई के हाथ से रक्त क्यों टपक रहा है ? दाऊ को मणि देखने का अवकाश नहीं। बालिकाएँ तो स्तब्ध हो गयीं रक्त देखते ही। वे तो मूर्च्छित ही होनेवाली हैं।

'उहूँ, मैं इसे तेरे सिर में गूँथूँगा ! तेरे भाल पर यह बड़ी सुन्दर लगेगी !' कन्हैया ने झट से मुट्ठी बंद कर ली और कूदता दौड़ गया समीप के निर्झर के पास। वह तो मणि धोने में लगा है। उसने देखा ही नहीं कि दाऊ किस व्याकुलता से पीछे दौड़ा आ रहा है उसके! बालिकाएँ कितनी व्यथित हैं।

'कनूँ, तेरा हाथ तो देखूँ !' दाऊ ने बहुत व्यग्र होकर छोटे भाई का दाहिना हाथ पकड़ा।

'ठहर, पहिले तुझे यह मणि पहना दूँ !' वह नटखट अपनी धुन में है।

'नहीं—श्यामसुन्दर के हाथ का रक्त नहीं था वह !' बालिकाओं में जैसे प्राण आया। वे मुग्ध देखती रहीं कि वह बड़े भाई को भूषित कर रहा है। मणि उस स्वर्णगौर दाऊ के भालपर पहुँचकर धन्य हो गयी है।

'अरे, होली भी तो जलेगी !' कन्हैया को सहसा स्मरण आया। उन्हें लौटना है अब।

अरिष्ट-संहार

अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ।
उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥

भागवत ३।१९।३४

अरिष्ट—व्रज में भी अरिष्ट ? जो श्यामसुन्दर के हैं, कन्हैया जिनका अपना है, उनके समीप भी अरिष्ट पहुँचता है ! पहुँचता तो है; चींटी की मृत्यु आती है, तब उसके पंख निकल आते हैं—अरिष्ट का ध्वंस-काल आता है, तब वह श्रीकृष्ण को अन्वेषण करता है ।

व्रज में—इस गतिशील संसार में अरिष्ट न आये, ऐसा तो हुआ नहीं करता । वह आता है और भयप्रद रूप में आता है ! भयदायक भी होता है; किंतु अरिष्ट की शान्ति का व्यस्त प्रयत्न करें दूसरे; जिनके हृदय-वृन्दावन में वह महानीलमणि विराजमान है, वहाँ तो उसकी समुज्ज्वल श्री स्वतः अरिष्टका विनिवारण कर देती है । श्याम के स्वजन एक ही साधन जानते हैं और वह है उसे पुकार लेना ! उनके यहाँ अरिष्ट का सत्कार नहीं होता । वह पूजित करके शान्त नहीं किया जाता । कन्हैया उसे भीगे कपड़े की भाँति मरोड़ कर फेंक देता है ।

बार-बार नहीं—वह तो हो चुका । श्रीकृष्णने अपने स्वजनों के लिये द्वापर में ही अरिष्ट को प्राणहीन कर दिया । मर चुका अरिष्ट तो कब का । दिव्य जगत् की वह शाश्वत क्रीड़ा स्थूल जगत् में अवतीर्ण हुई । मानस—आधिदैव जगत् में श्रीकृष्ण के अपनों के लिये वह कभी पुरानी नहीं पड़ेगी । मरा सो मर गया, दूसरों के लिये अरिष्ट का भय भले जीवित हो; पर जहाँ वह नीलोज्ज्वल ज्योति है; वहाँ के लिये तो वह एक स्मृति है भूतकाल की—ललित स्मृति और उसके स्मरण में रस है । श्याम की लीला है न वह । हम स्मरण करेंगे उसका—

× × × ×

'सायंकालका समय—दिशाएँ अरुणाभ हो चलीं, गगन ने कपिश से पाटल द्युति धारण करना प्रारम्भ कर दिया । अब तक मुरली का सरस स्वर क्यों नहीं सुनायी पड़ा ? गायों की हुंकृति क्यों कानों में नहीं आती ? क्यों किसी ओर गोरज दिशाओं को आच्छादित करके उठती नहीं दीखती ? गौओं के मध्य में सखाओं से घिरा श्यामसुन्दर आज अबतक वन से क्यों लौट नहीं रहा है ? आज तो बहुत विलम्ब हुआ !' पथ पर गोप, गृहद्वारों पर वृद्धाएँ और छज्जों पर तरुणियाँ, बालिकाएँ, सब कहीं एक ही चर्चा है । सब के नेत्र दूर-दूर तक बार-बार देखते हैं । हृदय कहता है—'कुशल तो है ?' गोप ग्राम से दूर तक निकल गये हैं । पूरा व्रज मार्ग के दोनों ओर एकत्र हो गया है ।

'वह धूलि उठी आकाश में, वह गूँजी मुरलिका, वह महावृषभ की हुंकार आयी !' गोप और आगे बढ़े । वृद्धाओं ने नीराजन के दीप प्रज्वलित कर लिये । छज्जों पर चञ्चल कर पुष्प-राशि अञ्जलि में भरकर प्रस्तुत हो गये ।

'यह हुंकार, यह तो अपने धर्म (महावृषभ) की हुंकृति नहीं ! यह भीषण हुंकार—यह तो इस विपरीत दिशा से आ रही है । यह धूलि का वात्याचक्र इस ओर से ?' चौंककर सब के नेत्र दूसरी ओर गये । जिस ओर से मुरली-ध्वनि आ रही है, ठीक उसकी विपरीत दिशा से बहुत गम्भीर ध्वनि आती है—जैसे सैकड़ों क्रुद्ध वृषभ एक साथ गर्जन करते दौड़े आते हों । आकाश में ऊँचाई तक धूलि उठ रही है । बढ़ती आ रही है वह गोकुल की ओर ।

'श्याम आ रहा है !' गायों का पूरा समुद्र उमड़ता चला आ रहा है। 'वह संध्या की अरुणिमा में मयूरपिच्छ चमकता है !' गायें तो व्रज के गृहों के सम्मुख से आगे बढ़ने लगी हैं।

'यह क्या—गायों ने कान उठाये, एक क्षण सब स्तब्ध खड़ी रहीं और फिर पूछ उठाकर 'बाँ, बाँ' करती, चिल्लाती इधर-उधर कूदती भागने लगीं। मार्ग से, गलियों से सब गायें एक दूसरे को धक्का देती, भयाकुल चिल्लाती वन की ओर क्यों भाग रही हैं ? ऐसा तो कभी होता नहीं था।'

'क्या है ? कौन है ?' गोपों ने लाठियाँ उठाईं और दौड़े दूसरी ओर।

'भागो ! द्वार बंद करो ! भागो ! भागो !' ये गोप उन्मत्त—भयविह्वल मुख्य मार्ग से इधर-उधर गलियों से क्यों भागने लगे हैं ? क्यों वे इतनी शीघ्र दौड़ते हुए लौट पड़े ? क्यों वे घरों में घुस नहीं जाते ?

'श्रीकृष्ण ! श्याम ! सुबल ! भद्र ! भागो ! भागो सब !' गोपों के साथ ये छज्जों पर से गोपियाँ, बालिकाएँ भी सब-की-सब क्यों चिल्लाने लगी हैं ? इनके मुख तो भय से पीत हो चुके हैं। नेत्र जाने कैसे हो रहे हैं ! ये दोनों हाथ उठाकर इस प्रकार क्यों चिल्ला रही हैं सब की सब ?

'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! श्याम !' गोपों, गोपियों—सब के मुख से यही आर्त क्रन्दन—क्या पता कि भागती हुई गायें भी यही पुकारती हों !

ये नवजात बछड़े, ये सद्यःप्रसूता गायें—ये सब तो चरने गयी नहीं थीं। ये गोष्ठ से इस प्रकार कूदती-फाँदती, डकारती-भागती कहां जाती हैं ! किस भय से ये प्राण छोड़कर दौड़ रही हैं ?

वह गूँज रहा है वज्र-कर्कश गर्जन। वह धूलि का पर्वत दौड़ा आ रहा है। ओह, यह ध्वनि—यह गर्जन, कौन स्थिर रख सकता है अपने को। उस धूलि के मध्य में वह काला उत्तुङ्ग पर्वत—वह वृषभाकृति; पर वह क्या वृषभ है ? इतना बड़ा तो कोई गजराज भी कहीं सुना नहीं जाता।

'अरर धम्, धड़ाम !' अरे—वह तो मिट्टी के छोटे खण्डों की भाँति नन्दग्राम की बहिःपरिखा की सुदृढ़ भित्ति को गिरा रहा है। वह उन्मत्त वृषभ—वह दौड़ा परिखा छोड़कर। कितनी दूर तक की परिखा उसने सिर झुकाते ही फेंक दी उठाकर। वह—वह भवन-भित्ति गिरी ! तब क्या वह पूरे नन्दग्राम को इस प्रकार गिरा देगा ? लोग भवन छोड़कर इधर-उधर भागने लगे।

वह आया वृषभ—वह उन्मत्त-सा दौड़ाता, वे लगे उसके तीक्ष्ण शृङ्ग भित्ति में ! वह उठी हुई उसकी पूँछ—जैसे गगन में तारकों को वह इससे नीचे फेंक देगा। बार-बार तनिक-तनिक मूत्र करता है, क्रोध के मारे। जलते हुए-से नेत्र, कभी उन्मत्त दौड़ पड़ता है, कभी खड़ा हो जाता है, कभी गर्जन करता है, कभी भवन गिराता है। ओह, क्या ठिकाना इसका। क्या पता कि वह ठीक पथ से ही दौड़ता जायगा। वह तो कभी इधर, कभी उधर दौड़ता है।

'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! श्याम !' गोकुल के गृह-द्वार बंद होने के स्थान पर खुल गये हैं। सब-के-सब पागल हो गये क्या ? ये गोपियाँ घरों के द्वार बंद क्यों नहीं कर लेतीं ? ये सब क्यों इस प्रकार मार्ग पर दौड़ती, चिल्लाती जा रही हैं ? वह उन्मत्त साँड़ यदि इन्हीं की ओर दौड़ आये ? पर किसे अपनी सुधि है। 'श्रीकृष्ण ! श्याम !' पर उपाय क्या ? श्रीकृष्ण के समीप सीधे दौड़ कर पहुँचने का मार्ग भी तो नहीं। ये सहस्र-सहस्र गायें और वह भी इधर-उधर कूदती, भागती। भला, कैसे कोई श्याम तक जाय। जिनको जिधर से, जिस गली से शीघ्र पहुँचने की आशा है, वह उधर से दौड़ रहा है।

× × × ×

'कनूँ, गायें भाग रही हैं !' सुबल ने सशङ्क होकर उचक कर आगे देखने का प्रयत्न किया।

'सब लोग चिल्ला रहे हैं ! कोई साँड़ बड़े जोर-जोर से वह क्या डकारता है !' वरूथप ने छज्जों से हिलते करों की ओर संकेत किया। साँड़ की डकार तो स्पष्ट ही अपने वृषभों से भिन्न है।

'वह तो राक्षस है !' कन्हैया ने सुबल की ओर देखा। वह भद्र के कंधे पर बायीं भुजा रखे आज बड़े मजे से धीरे-धीरे चला आ रहा है। मुरली तो कब से कटि की कछनी में जा लगी है।

'राक्षस है ?' भद्र ने श्याम की ओर देखा और फिर ताली बजायी। भला, राक्षस के लिये ये गोपियाँ इतनी क्यों चिल्ला रही हैं। कोई साँड़ होता तो कुछ बात भी थी !

'वह खूब बड़ा साँड़ बनकर आया है !' श्रीकृष्ण ने सावधान किया।

'वह बड़ा दुष्ट है, हमारी गायों को डरा रहा है ! कनूँ, देख न ! गायें कैसी भाग रही हैं ! कितना चिल्ला रही हैं ! तू सुबल के कंधे पर हाथ रख ले, मैं उसके कान गरम करता हूँ !' भद्र अवश्य भाग जाता आगे; भला, राक्षसों में दम कितनी होती है ! पर यह कन्हैया जो उसके कंधे को अपनी भुजा से दबाये है।

'मैं उसे यहीं बुलाता हूँ !' कन्हैया ही भला, ऐसे सुन्दर खेल का अवसर क्यों छोड़ दे। उसने बड़े जोर से तालियाँ बजायीं। इतने जोर से ताली भी बजायी जा सकती है—यह अनुमान नहीं कर सकता कोई।

सम्मुख से सहसा गायें पूँछ उठाकर अस्त-व्यस्त इधर उधर भाग खड़ी हुईं। वह दिखायी पड़ा अरिष्ट—वह राक्षस—इतना बड़ा साँड़ ! श्याम ने फिर ताली बजायी। सखाओं ने साथ दिया उसका। उन्मत्त साँड़ 'फों फों' फुंकारता स्तब्ध खड़ा रह गया।

'दुष्ट, मूर्ख कहीं का ! अरे गायों, पशुओं और गोप-गोपियों को डराने से क्या लाभ ? चल इधर आ ! तेरे-जैसे दुष्टों के बल का घमंड चूर तो मैं करता हूँ ! आ मेरे पास ! यह रहा मैं !' कृष्णचन्द्र ने दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर दिखायी और भद्र के कंधे पर उसकी वाम भुजा कुछ सीधी हो गयी है। वह खड़ा हो गया है। कठोर हो गयी हैं नित्य हँसती-सी पलकें। वह सीधे असुर को देख रहा है।

'चल, आ ! पूँछ पकड़ कर सटक दूँगा !' किसने कहा, कौन बताये—पर बालक श्रीकृष्ण के साथ तालियाँ बजा रहे हैं।

अरिष्ट की पूँछ ऊपर—ऊपर—और ऊपर उठ गई। बादलों से जा लगी उसकी पूँछ। सिर नीचे करके, दोनों सींग ठीक सामने करके खुरों से पृथ्वी खोदता वह दौड़ा—वह दौड़ा आ रहा है। उसके नथुने फूल रहे हैं। 'फों फों' करता श्वास के साथ कुछ जल-सा नथुनों से निकाल रहा है वह। नेत्र अङ्गार-से जल रहे हैं। धूलि से भरे शृङ्ग आगे करके वह दौड़ा आ रहा है—दौड़ा आ रहा है, जैसे इन्द्र के हाथ से छूटा वज्र आ रहा हो।

गोप, गोपियाँ, गायें—जो जहाँ हैं; सब-के-सब जैसे मूर्ति बन गये हैं। उनका भागना बंद हो गया है। वे सब श्याम की ओर मुख करके स्तब्ध देख रहे हैं। भयसे उनकी वाणी मूक हो गयी है।

श्याम—वह क्या भद्र के कंधे पर बायीं भुजा फैलाये खड़ा है। बालक उस दौड़कर आते काले पर्वत को देख रहे हैं। उनके मुखों पर केवल कौतुक है और श्याम—वह तो देख भर रहा है एकटक खड़ा।

× × × ×

'वाह, वाह !' बालकों ने सहसा तालियाँ बजायीं। सम्भवतः विद्युत् भी मन्दगति सिद्ध होगी उस स्फूर्ति की तुलना में। कन्हैया ने सखा के कन्धे से कब भुजा उठायी और कब उस असुर वृषभ के सींग पकड़ लिये—यह भद्र ने ही नहीं देखा। कंधे से भुजा हिली और कनूँ तो यह साँड़ का सींग पकड़े उसे पीछे ढकेलता जा रहा है।

पूरे वेग से दौड़ता अरिष्ट आया था। श्रीकृष्ण ने केवल शृङ्ग पकड़े ही नहीं, उसी वेग से उसे पीछे ठेलना प्रारम्भ किया। असुर को अपने वेग के अवरोध का धक्का लगा और वह धक्का इस ठेलने की गति में बढ़ गया। वह लड़खड़ाता, अपने को सम्हालने का प्रयत्न करता पीछे गिरता-सा हट रहा है।

'कनूँ! कनूँ! पटक दे इसे! बड़ा आया है राक्षस कहीं का! भद्र पीछे साथ ही दौड़ा आ रहा है। बालक तालियाँ बजाते, चिल्लाते, कूदते आगे बढ़ आये हैं।

'चल!' कन्हैया ने सचमुच धक्का मारा और कुल अठारह पग बढ़ते-बढ़ते उस असुर को फेंक दिया। वृषभ पिछले पैर लड़खड़ाने से गिरा और धक्के से उसका मस्तक उलटा होकर पृथ्वी से टकराया। उसने अपने पैर फटकारे। करवट होकर शीघ्रता से उठ खड़ा हुआ। उसकी फुंकार बढ़ गयी। नथुनों से फेन निकलने लगा। घूमकर फिर उसने श्रीकृष्ण की ओर मुख किया। मस्तक झुकाकर शृङ्ग सम्मुख करके झपटा।

'अच्छा, तो तू ऐसे न मानेगा!' कन्हैया तो फिर भद्र के कंधे पर भुजा रखकर गिरे हुए अरिष्ट को देखने लगा था। उसने भुजा उठायी, सींग पकड़े और अपना दाहिना पैर अरिष्ट के अगले पैरों में से एक पर जमाकर सींगों को पकड़े-पकड़े उसका मुख घुमा दिया। दैत्य धड़ाम से गिर पड़ा। भद्र और सब बालक चौंककर पीछे हट गये।

कन्हैया तो दैत्यका मस्तक धुमाये ही जा रहा है। जैसे भीगे कपड़े को उमेठते हैं, वह तो अरिष्ट की गर्दन वैसे ही मरोड़ता जा रहा है। सींगों को घुमाता जा रहा है। असुर के मुख और नथुनों से रक्त फच-फच करके निकलने लगा है। वह बार-बार गोबर और मूत्र कर रहा है। अपने पैर पछाड़ रहा है।

'चल!' हाय, हाय, श्याम ने तो उसके सींग उखाड़ ही लिये और दोनों सीगों को उसके मस्तक पर पटक दिया पूरे वेग से।

'कनूँ! कनूँ!' बालक दौड़े। कन्हैया ने सींग फेंक दिये। असुर ने पैर फटफटाये और शान्त हो गया।

'राम, राम!' तूने बेचारे को मार ही डाला!' मधुमङ्गल ने मुख बनाया।

'जा, मैं तुझे अब नहीं छूना!' भद्र ने दूर हटकर चिढ़ाना चाहा; पर ये गोप, ये गोपियाँ जो दौड़े आ रहे हैं।

'कनूँ!' पता नहीं यह दाऊ भैया अब तक कहाँ था। आज वह गोचरण को तो गया नहीं था। इतना सब हो गया, तब वह दौड़ा आया है अपने छोटे भाई को हृदय से लगाने और यह जो ऊपर से पुष्प गिर रहे हैं ढेर-के-ढेर, यह गम्भीर वाद्यध्वनि और जयघोष—बालक इनसे बहुत परिचित हैं। बाबा कहते हैं, यह सब देवता करते हैं। देवताओं को और काम भी क्या है।

बाबा, मैया और यह तो पूरा व्रज ही दौड़ आया श्यामसुन्दर के समीप। ये गायें चारो ओर हुंकार करती, परस्पर उचकती, एक दूसरे को ठेलती-सी भीतर अपने उसी चरवाहे को तो देखना चाहती हैं।

काला पर्वत-सा वह वृषभकार अरिष्ट भूमि पर पड़ा है पेट के बल। रक्त से लथ-पथ हो गयी है वहाँ की भूमि और उस असुर का शरीर। मुख, नासिका और दोनों सींगों के स्थानों से रक्त चल रहा है। सींगों के स्थानों पर मांस झलक रहा है और सींग तो वे दूर पड़े हैं। व्रज-भवनों को गिरानेवाले सींग भला, मस्तक पर कैसे रहते। उसके पीछे गोबर पड़ा है और मूत्र बह रहा है। छटपटा कर उसने गोबर को बिखेर दिया है, शरीर में पोत लिया है, उसकी गर्दन रस्सी के समान एंठी-सी है।

यह रहा कन्हैया। उसके दोनों चरण असुर के रक्त से सन गये हैं। भुजाओं पर, वक्ष पर, जानु पर, जहाँ-तहाँ रक्त के छोटे-बड़े छीटे हैं और कई स्थानों पर कुछ अधिक रक्त लग गया है। अलकें गोरस से सनी हैं। मयूर-पिच्छ लहरा रहा है। वनमाला कुछ रक्त-सीकरों से और भूषित हो गयी है।

कोई नहीं देखता कि श्याम को आलिङ्गन करने से शरीर में रक्त लग जायगा। दाऊ ने तो अपने श्रीचरण, वक्ष, वस्त्र रँग ही लिये; मैया, बाबा और सभी तो उसे गोद में लेने को आतुर हो रहे हैं।

'बाबा, महर्षि शाण्डिल्य को बुलाओ न !' भद्र ने बाबा का हाथ झकझोर दिया।

'महर्षि और दूसरे विप्रों को तू जितनी गायें चाहे, देना। घर तो चल !' बाबा ने सोचा, भद्र अपने सखा की विजय पर गोदान करना चाहता है।

'गोदान तो कनूँ करेगा ! उसीने तो यह बैल मारा है !' मधुमङ्गल ने बाबा का दूसरा हाथ पकड़ा।

'यह तो राक्षस है !' बाबा ने गम्भीरता से भूमि पर पड़े असुर की ओर देख लिया। वैसे स्नान, पूजन, गोदान, शान्ति-पाठ तो होना ही है और ये पुण्य-कार्य क्या कल पर छोड़े जा सकते हैं ?

मार डाला—अपनों के लिये कनूँ ने सदा के लिये अरिष्ट को मार डाला आज !

केशी-वध

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै॥

—भागवत ३।९।१७

ये देवर्षि हैं न, बिना इधर-उधर लगाये इनको भला, कहाँ आनन्द आता है। पतला स्वर्ण-गौर शरीर, कटि में कौपीन और घुटे मस्तक पर बड़ी-सी चुटिया; बस, इनके पास तो कुछ है नहीं। खड़ाऊँ खटकाते, वीणा के तार झन-झनाते ये यहाँ से वहाँ सारे त्रिभुवन में चक्कर ही काटा करते हैं। इनकी वीणा के तार बजते ही रहते हैं—

"हरि नारायण नारायण गोविन्द !
कृष्ण माधव मुरारि अच्युतानन्द ।"

दैत्य, राक्षस, दानव—कोई तो इनसे चिढ़ता नहीं। कोई नहीं कहता कि 'आप यह क्या अलापते हैं!' जमकर बैठना तो जैसे सीखा ही नहीं इन्होंने। सदा प्रस्थान की शीघ्रता में ही पहुँचेंगे और उन कुछ क्षणों में ही कुछ-न-कुछ खटपट का प्रारम्भ कर जायँगे।

"विश्व एक नाटक है प्रभुका,
शोक रहे या हर्ष रहे।
जिसमें अपना स्वाँग सफल हो,
यहाँ एक संघर्ष रहे॥"

सो इनको तो बस, अपना स्वाँग सफल करना है। कोई नहीं मिला, तब उस दिन मथुरा में कंस के राजमन्दिर में ही सबेरे-सबेरे जा धमके!

'ये तो नारदजी हैं!' कंस और उसके सेवक चौंके। भला, देवर्षि को छोड़कर बेरोक-टोक राजसदन में—असुरराज-सदन में और कौन इस प्रकार धड़-धड़ाता, वीणा के तार झनकारता पहुँच सकता है; किंतु देवर्षि के लिये तो सुरेन्द्र और असुरेन्द्र दोनों के अन्तःपुर एक-से हैं। उनकी गति वायु के समान अबाध है समस्त प्राकृत—अप्राकृत भुवनों में। उन्हीं की 'श्रीपति माधव नारायण हरि' की गुंजार कभी-कभी दैत्य-गृहों को झंकृत करने में सफल होती है।

'आपने तो मुझे दर्शन देना ही छोड़ दिया! आज वर्षों के पश्चात् पधारे! मेरे लिये कोई उपयोगी सूचना? भला, आप बिना किसी गम्भीर कारण के कहीं पधारते हैं!' कंस ने पृथ्वी पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। देवर्षि उसके सिंहासन पर विराजमान हो गये। असुर ने अर्घ्य-पाद्य का आयोजन नहीं किया और न देवर्षि को उसकी अपेक्षा थी। कंस जानता था कि देवर्षि कुछ क्षण में उठ खड़े होंगे चलने को और तब उन्हें किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। वह अधिक-से-अधिक अपने काम की सूचनाएं प्राप्त कर लेना चाहता था।

देवर्षि को भी यहाँ रुकने में कोई आनन्द नहीं आता था। वे सीधे अपने उद्देश्य पर आ गये—'राजन्, मैं तुम्हें सावधान करने आया हूँ। आकाशवाणी ने कहा था न कि देवकी का अष्टम पुत्र........।'

'पर वह तो कन्या........' कंस चौंका भय से। उसने बीच में ही बात स्पष्ट करने का प्रयत्न किया।

'यही तो तुम्हारा भ्रम है। वह कन्या तो नन्दराय की थी। देवकी का सप्तम पुत्र रोहिणी का पुत्र हो गया। तुम तो जानते ही हो कि वसुदेवजी ने अपनी पत्नी रोहिणी को श्रीनन्दराय के यहाँ गोकुल में तुम्हारे भय से रख छोड़ा है!' देवर्षि कहते गये।

'वह रोहिणी-पुत्र—बल और अष्टम पुत्र?' कंस प्रत्यक्षतः बहुत सम्हाल रहा था अपने को। वह काँप गया था और उसका मुख कुछ पीतवर्ण हो चुका था।

'अष्टम पुत्र!' देवर्षि खुलकर हँसे। 'तुम इतना भी नहीं समझते कि श्रीनन्दराय वसुदेवजी के घनिष्ट मित्र हैं। वसुदेवजी ने तुम्हारे भय से अपना अष्टम पुत्र उनके यहाँ पहुँचा दिया।'

'कौन? कौन है वह?' कंस उठकर खड़ा हो गया। उसके नेत्र विस्फारित हो गये।

'श्रीकृष्ण!' बड़े शान्त गम्भीर स्वर से देवर्षि कह रहे थे। 'यह भी पूछने की बात है? जिसने तुम्हारे इतने बलवान् सेवकों को खेल-खेल में मार दिया, वह क्या छिपा रह सकता है।'

'विश्वासघात—वसुदेव ने मेरे साथ विश्वासघात किया!' दो क्षण स्तब्ध रहने के पश्चात् कंस के नेत्र जल उठे। उसने पैर पटका और कोश से तलवार खींच ली। 'मैं उसे अभी मार डलूँगा।'

'और तब श्रीकृष्ण तुम्हें अवश्य मार डालेंगे।' देवर्षि ने इस प्रकार कहा, जैसे वसुदेव या कंस—किसी की मृत्यु से उनका कोई सम्पर्क नहीं। 'वसुदेव जीवित हैं, तभी तक तुम्हारे पास कूट प्रयत्न करने का अवसर है। पिता का वध सुनकर तो श्रीकृष्ण वहाँ से सीधे तुम्हारे ऊपर आक्रमण करने सावधानी से चलेंगे!'

'तब?' कंस के पद द्वार की ओर बढ़कर भी रुक गये।

'यह सब मुझे क्या पता! मैं नरेश नहीं हूँ, जो राजनीति जानूँ! अच्छा, जै श्रीहरि!' और देवर्षि ने वीणा के तारों पर अँगुली रक्खी। वे उठ खड़े हुए।

कंस हाथ में नंगी करवाल लिये वहीं धम-से बैठ गया। उसके भाल पर बड़ी-बड़ी बूँदें चमकने लगीं चिन्ता के कारण। देवर्षि को अभिवादन करने का शिष्टाचार भी नहीं निभा सका वह। देवर्षि—उनकी वीणा का स्वर तो दूर दूर जा रहा है। मन्द से मन्दतर होता सुनायी पड़ता है—

'नारायण माधव मधुसूदन
श्री हरि केशव गोविन्द!'

× × × ×

'वसुदेव कहीं भाग न जाय!' वीणा की झंकृति का सुनायी पड़ना शान्त होते-न-होते कंस चौंका। उसने पार्श्वस्थ सेवक को चिल्लाकर पुकारा! अपने आपे में नहीं था वह।

'वसुदेव और देवकी सुदृढ़ लौह शृङ्खलाओं से बाँधकर कारागार में बंद कर दिये जायँ! आज्ञा-पालन की सूचना मैं अभी सुनना चाहता हूँ!' सेवक ने मौन रहकर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया और शीघ्रता से चला गया। उसे तो केवल नरेश का आदेश दुर्गपाल को सुना देना है।

'केशी!' दो क्षण रुककर कंस ने फिर कुछ सोचकर पुकारा। उसका मुख भयंकर हो रहा था। उसके नेत्र अङ्गार बन रहे थे। वह बार-बार दाँत पीसता या चौंककर इधर-उधर देखता जाता था।

'कब पुकारा था तुम्हें!' बेचारा केशी, वह तो नरेश की मुद्रा से ही काँप गया। मध्याह्न से सायंकाल तक खुर्राटे लेनेवाला वह असुर भागता दौड़ता आया। था राजाज्ञा सुनकर त्रस्त-व्यस्त। चुपचाप मस्तक झुकाये खड़ा रहा वह।

'तुम्हें नन्द के व्रज में जाना है! नन्द के यहाँ जो दो लड़के हैं—कृष्ण और बल, उन्हें ठिकाने लगा दो!' कंस नाम लेते भी चौंका। उसने केशी की ओर देखा बड़े ध्यान से।

'भूलना मत! धोखे में मत आना!' एक लड़का काला है और एक गोरा। दोनों से पार न पा सको तो पहिले काले—उस काले लड़के को अवश्य मार दो! अवश्य!' कंसने उठकर असुर केशी के कंधे पर हाथ रक्खा।

'महाराज विश्वास करें!' केशी के स्वर में गर्व था। 'महाराज का आदेश कल प्रातः पूर्ण हो जायगा और मध्याह्न के पूर्व मैं श्रीमान् के समीप उपस्थित हो जाऊँगा!' बात ठीक ही है। आज तो सायंकाल हो चुका। गोप घरों में होंगे। वहाँ पहुँचने तक बालक कदाचित् सो भी जायँ। केशी कहां ढूंढ़ेगा उन्हें।

'मेरे सर्वश्रेष्ठ शूर, तुम सफल होगे!' कंस ने उसके कंधे को थप-थपाया। 'मैं तुम्हें अपना प्रधान सेनापति बनाऊँगा!'

× × × ×

'केशी आ रहा है—महाकाय कृष्णवर्ण अश्व-रूपधारी केशी आ रहा है। वह गूँज रही है उसकी भयंकर हिनहिनाहट!' बेचारे देवता झटपट विमानों में बैठे और भागने को उद्यत हुए। बार-बार इस असुर-घोटक ने उनके नन्दन-कानन को ध्वस्त किया है। अमरावती की पवित्र भूमि अनेक बार इसके लेण्ड से अपवित्र हुई है। महेन्द्र का वज्र और यमका दण्ड प्रभावहीन है इसके वरप्राप्त शरीर पर। इसके खुर, पुच्छ तथा सटाघात से देवताओं के शरीर अनेक बार आहत हो चुके हैं। अब तो अमर इस महादैत्य की 'हिंकार' से ही भयभीत होकर त्रिविष्टप छोड़कर भागते हैं।

केशी आ रहा है—विशाल प्रज्वलित गुफाओं-जैसे नेत्र, फैला हुआ महा भयंकर मुख, लंबी गर्दन, अपनी सटाओं से विमानों को इतस्ततः ताड़ित करता, पृथ्वी को कम्पित करता वह महाघोटक दौड़ा आ रहा है।

'बड़ा भयंकर घोड़ा! पागल घोड़ा! केशी आया!' व्रज में गोप चिल्लाने लगे हैं। सबेरे-सबेरे अभी गोदोहन समाप्त हुआ और यह विपत्ति! इधर-उधर चिल्लाहट, दौड़ा-दौड़ी मची है। केशी दौड़ रहा है, इधर-उधर गलियों में। भयंकर हिंकार कर रहा है। जैसे वह किसी को ढूँढ़ रहा हो।

× × × ×

'अरे, तू कहाँ जा रहा है!' कन्हैया ने माता रोहिणी को वस्त्र उठाते देखा और भागा बाहर को। मैया उसे कलेऊ कराने की प्रस्तुति में है। उसने हाथ का पात्र छोड़ा और दौड़ी।

'अभी आया, तनिक देख लूँ तो!' भला, कनूँ भागने पर कहीं मैया के हाथ आ सकता है। बाहर बड़ा हल्ला हो रहा है। कोई घोड़ा हिनहिना रहा है। श्याम कैसे गुम-सुम भीतर बैठा रहे।

'कहाँ जाता है! ठहर तो!' मैया पुकारती रही। वह द्वार तक आयी। 'दूर मत जा! कलेऊ कर ले! दाऊ, भद्र दोनों तो बैठे हैं! सुबल आता होगा!' इस समय यह सब सुने कौन? वह चञ्चल तो वह जा रहा है—वह दौड़ा जा रहा है!

× × × ×

'घोड़े, चल! चल आ इधर!' कन्हैया ने देखा उस घोड़े को। बड़ा प्रसन्न हुआ वह। इतना बड़ा घोड़ा! ताली बजाकर उछल पड़ा। उसने पुकारा जोर से केशी को, जैसे अपने महा-वृषभ धर्म को ही पुकार रहा हो।

घोड़े ने शब्द सुना, ताली की ध्वनि सुनी और देखा मस्तक उठाकर। 'यही तो वह काला लड़का है!' वह इसी को गलियों में अब तक ढूँढ़ रहा था। सिंह के समान पूरे जोर से हिनहिना-कर दौड़ा। दौड़ा वह मुख फाड़कर।

'श्रीकृष्ण! श्याम!' गोप चिल्ला उठे! लेकिन श्याम तो घोड़े को देख रहा है। घोड़ा दौड़ता आया और उसके सम्मुख से कुछ आगे बढ़कर दोनों पिछले पैरों से दुलत्ती झाड़ दी उसने कन्हैया पर।

'अच्छा!' कन्हैया—चपल कन्हैया कूद गया एक ओर और झुककर उसने घोड़े के दोनों पैर पकड़ लिये। झटके के साथ फेंक दिया उसे। 'ले, मारने चला है!'

वह पहाड़-जैसा घोड़ा धड़ाम-से बहुत दूर जा गिरा, जैसे श्याम ने एक कन्दुक फेंक दिया हो। घोड़ा गिरते ही पैर फटफटाकर उठ खड़ा हुआ। उसके जलते नेत्र दुगुने जलने लगे। नथुने फूलने लगे। पूरा मुख फाड़कर दौड़ा वह। इतना बड़ा मुख कि उसमें एक तो क्या, तीन हाथी समा जायँ !

दौड़ता आया केशी—दौड़ता आया और अबकी बार क्या यह दुष्ट घोड़ा अपने बड़े मुख से कन्हैया को काटना चाहता है ? कन्हैया ने दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधी और जैसे ही घोड़ा समीप आया धक्के से घूसा बँधा हाथ कंधे तक उसके मुख में डाल दिया। घोड़े के मुख से फच-से रक्त की धारा निकल पड़ी। उसके दोनों अगले पैर उठे ही रह गये। श्याम का वक्ष अरुण हो गया। कछनी पर से रक्त बह चला !

घोड़ा कुल दो क्षण खड़ा रहा और धड़ाम से गिर पड़ा। कन्हैया कूदकर उसके सम्मुख झुक गया। भुजा उसने मुख से निकाली नहीं।

'श्रीकृष्ण को घोड़े ने काट लिया ! हाथ काट लिया कन्हैया का !' गोप दौड़े लाठियाँ लेकर। दाऊ, भद्र दौड़े मैया से सुनकर कि श्याम भाग गया। मैया दौड़ी बाहर का कोलाहल सुनकर।

घोड़ा—वह तो पैर पछाड़ रहा है। उसका पेट फूलता जा रहा है। गोप, गोपी, बालक—सब चौंक पड़े। बड़े वेग से शब्द हुआ। बड़ा भारी धड़ाका हुआ। सबने देखा कि श्याम तो पीछे मुड़कर मैया की ओर भागा जा रहा है।

'मैया, घोड़े का पेट तो फूला और फट-से हो गया' उसने मैया का हाथ पकड़कर घोड़े की ओर घूमकर संकेत किया।

'घोड़े ने तुझे कहाँ काटा ?' मैया तो उसे दोनों हाथों हृदय से दबाकर उसकी दाहिनी भुजा देखने लगी है अँगुली से उसमें लगा रक्त पोंछ-पोंछकर।

'कहाँ, मुझे तो कहीं नहीं काटा उसने !' श्याम को जैसे यह पता ही नहीं कि घोड़ा उसे काट भी सकता था। कहाँ, उसे तो कभी कोई पशु नहीं काटता। वह तो कितनी बार धर्म, नन्दिनी या वन के व्याघ्र या केहरी के मुख में हाथ डालता है। कितनी बार भद्र के साथ उसने ऋक्षों, मृगों, गवयों और चीतों के दाँत गिने हैं। कभी कोई तो उसे काटता नहीं।

'तेरे हाथ में घोड़े का रक्त लगा है और थूक भी !' भद्र ने भुजा भली प्रकार देख ली हाथों में लेकर और तब मुख बनाया !

× × × ×

श्रीव्रजेन्द्र के द्वार से थोड़ी ही दूर पर पड़ा है वह काले पहाड़-सा महाघोटक। मुख से पिछले पैरों तक पेट की ओर ठीक नाभिरेखा की सीध से उसका पूरा शरीर फट गया है, जैसे पककर वर्षा की ककड़ी (फूट) फट गयी हो। आँतें बाहर निकल आयी हैं। पूरा शरीर रक्त और स्वेद से लथपथ है। समीप की भूमि में रक्त-कीच हो गया है। घोड़े के नेत्र बाहर निकल-से आये हैं। ढेर-सा गोबर (लेण्ड) किया है उसने। समस्त शरीर से, रोमकूपों से भी सम्भवतः रक्त आया है। बिचारे का श्वास रुक गया होगा और रुद्ध वायु ने शरीर फाड़ दिया।

घोड़े का मुख तो फटा पड़ा है; पर उसमें तो एक भी दाँत नहीं। दाँत क्या हो गये इसके ? वे रहे आँतों के मध्य में उज्ज्वल चमकते दाँत। सम्भवतः कन्हैया के घूसे के वेग से टूटकर वे पेट में चले गये।

× × × ×

'श्याम, आज तू गायें चराने मत जा !' मैया ठीक ही तो कहती है। आज बड़े सबेरे यह दैत्य आया व्रज में। इतना बड़ा असुर घोड़ा ! अब तो पहचान भी लिया गया कि यह कंस का असुर-घोटक केशी है। पता नहीं दिन में और क्या हो। अभी कन्हैया को पुनः स्नान करना है। सभी लड़के स्नान करेंगे। सबके वस्त्रों में रक्त लग गया है। मैया की भी तो वही दशा है। अभी तक कलेऊ नहीं किया है बालकों ने।

'ना, तू मुझे जल्दी से कलेऊ दे दे ! हम सब वन में आज कलेऊ करेंगे !' गोपाल को यह कैसे रुचे कि वह गायें चराने न जाय। वह वन में न जाय तो गायें चरेंगी कैसे ?

'देख, तेरे बाबा महर्षि शाण्डिल्य को बुलवा रहे हैं। तू पूजा करके गोदान करेगा न ?' इतना बड़ा अपशकुन प्रातःकाल हो और नन्दभवन में शान्ति-पाठ न हो, यह कैसे सम्भव है। बाबा ने तो महर्षि के समीप एक गोप को भेज भी दिया।

'मैं महर्षि को कह दूँगा ! पूजा झटपट हो जायगी !' पता नहीं क्या बात है, महर्षि कभी कन्हैया का आग्रह टालते नहीं। इसका आग्रह उनकी विधियों को छोटी-बड़ी करता ही रहता है। श्याम ठीक ही कह रहा है। वह कहेगा और महर्षि बहुत शीघ्र पूजा समाप्त करा देंगे।

'अच्छा, चल तू स्नान तो कर !' मैया क्या करे ! वह जानती है कि उसका यह नटखट वन में गये बिना मानेगा नहीं।

स्नान, पूजन और फिर बड़े आग्रह से किसी प्रकार कलेऊ किया बालकों ने। 'कलेऊ वन में करेंगे' ! भला, आज उनका यह आग्रह कैसे मान लिया जाय। कितनी देर हो गयी है इस दूसरी बार के स्नान और पूजनादि में। अब वन में कलेऊ करने के लिये समय कहाँ रहा है।

गोपों ने गायें कब से खोल दी हैं। उन्होंने भरसक प्रयत्न कर लिया है कि वे आज इनको वन में ले जायें और बालक ग्राम में ही खेलें; पर गायें कहाँ जाती हैं। उनका तो व्रजराज के द्वार के सम्मुख ठट्ट लगा है। वे हाँकने पर इधर-उधर दौड़कर फिर वहीं आ जाती हैं। उन्होंने अपने चरवाहे से इन गोपों के प्रति सम्भवतः अभियोग उपस्थित करना आरम्भ कर दिया है 'हुम्मा ! हुम्मा !' करके !

वह आया कन्हैया ! वह बालकों से घिरा निकला गोपाल। गायों ने हुंकार की और अब तो वे बिना हाँके ही वन की ओर दौड़ पड़ी हैं। अब उन्हें उनका चरवाहा जो मिल गया है। वे बालक गायों को सहलाते, बछड़ों को पुचकारते लिये जा रहे हैं ! गोपाल—यह नित्य गोपाल चला गोचारण को।

अक्रूर का आगमन

"तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥"

—भागवत १० । ३८ । १४

'श्रीकृष्ण—देवकी का अष्टम पुत्र !' कंस को चैन नहीं । उसे अभी तक संदेह था—देवर्षि ने स्पष्ट कर दिया आज। केशी जायगा, उसे आज्ञा हो चुकी; और भी तो इसी प्रकार जा चुके हैं। केशी सफल ही होगा, क्या ठिकाना है ?

कंस को क्षण युग हो गये हैं। 'केशी नहीं लौटेगा !' उसकी आशङ्का ठीक ही है। कन्हैया के समीप जाकर कौन लौटता है। 'अब क्या करना है; क्या करना चाहिये !' केशी गया, तबसे—उससे भी पूर्व से मस्तिष्क में विचारों का अंधड़ चल रहा है। 'जो व्रज जाता है, उसकी मृत्यु का ही संवाद मिलता है ! क्यों न वसुदेव के दोनों पुत्रों को यहीं बुलवा लूँ। यहाँ मथुरा में अनेक साधन हैं; एकाकी न सही, सब-के-सब मिलकर तो उन छोकरों को पीस ही देंगे ! गोप क्या कर लेंगे ?' एक योजना बना ली है मन-ही-मन कंस ने। योजनाएँ तो बनती हैं, कोई त्रुटि दीखती है—दूसरी, तीसरी, प्रातः से योजनाओं का ही क्रम तो चल रहा है। अब एक योजना स्थिर कर ली है इसने।

× × × ×

'दानाध्यक्ष !' बेचारे अक्रूरजी को आज मथुरा नरेश ने बुलाया है। महाराज उग्रसेन के ये पुराने दानाध्यक्ष, कंस का अनुग्रह था कि कभी उसने इन्हें पृथक् नहीं किया। कभी रुष्ट होने का अवसर ही कहाँ दिया उसे नीतिकुशल दानाध्यक्ष ने। आज इन्हें मंत्रणागृह में महाराज स्मरण कर रहे हैं। पता नहीं क्या भाग्य में है। नारायण का मन-ही-मन स्मरण करते हुए सावधानी से ही चले अक्रूरजी।

'अक्रूरजी !' ओह, आज कंस इतना सम्मान क्यों कर रहा है ? ऐसे लोगों का सम्मान भी भयंकर होता है। पता नहीं यह व्यंग है आदर का या किसी कूट प्रयत्न की भूमिका ? अक्रूरजी को कुछ सोचने-विचारने का अवकाश नहीं था। आज कंस—राजा कंस ने उठकर स्वागत किया है। अवश्य कुछ दाल में काला है और अब तो हाथ पकड़कर वह अपने समीप के आसन पर बैठा रहा है।

'दानपति, आप जानते ही हैं कि देवता जब संकट में होते हैं, विष्णु का आश्रय लेते हैं। मैं भी एक महान् काम के लिये ही आपका आश्रय ले रहा हूँ।' यह सदा का देवताओं का द्रोही, भगवान् विष्णु का शत्रु आज स्वयं देवता बन गया है और अक्रूरजी—खल अपने स्वार्थ के लिये क्या नहीं कर सकते। बेचारे अक्रूरजी को तो चुपचाप सुनना है।

'आप ही यदुकुल में मेरे एकमात्र हितैषी हैं। शेष सभी यादव मुझसे शत्रुता करते हैं। आपके अतिरिक्त मैं और किसी का विश्वास नहीं करता !' कंस तो चाटुकारी करने लगा है। उसे संदेह है—कहीं अक्रूर उसका प्रस्ताव अस्वीकार न कर दें। कहीं ये नन्दग्राम जाकर गोपों से मिल न जायँ। मथुरा में और कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति नहीं दीखता, जिसपर गोप विश्वास कर लें और कंस भी विश्वास करे। वसुदेव ने उसे धोखा दिया; भला, अब दूसरे यादवों का क्या विश्वास। अक्रूर फिर भी राजकर्मचारी हैं। इन्हें पर्याप्त आश्वासन, सम्मान, प्रलोभन दे देना है। इनकी प्रतिष्ठा है यादवों में। गोप अवश्य इनपर विश्वास कर लेंगे। कंस ने यह सब सोच लिया है।

'आज ही देवर्षि ने बताया है—वसुदेव ने मेरे साथ विश्वासघात किया ! नन्द के घर उन्होंने अपने दो पुत्र राम और कृष्ण को छिपा रक्खा है । यह कृष्ण ही देवकी का आठवाँ...।' सिहर उठा है कंस इस बात को स्मरण करके ही । 'इन्हीं लड़कों ने हमारे प्रधान शूरों का वध किया है, यह तो आप जानते ही हैं । मेरा अनुरोध है कि आप रथ लेकर नन्दव्रज चले जायँ और सब गोपों को मेरा निमन्त्रण देकर बुला लायें । शिवरात्रि को यहाँ महोत्सव हैं । हमारे मल्ल अपनी कला एवं शक्ति का प्रदर्शन करेंगे ! नन्द के साथ सभी गोपों को आना ही चाहिये और दोनों लड़कों को तो आप अपने ही रथ पर बैठा कर स्वयं ले आयें ! उन्हें गोपों के साथ आने के लिये भी न छोड़ें ! आप परम नीतिज्ञ हैं; जैसे उचित समझें, यह काम करें ! कल प्रातः ही रथ लेकर चल दें ! मेरा जो रथ—जो अश्व आप चाहें, ले जायँ !'

'यह क्यों अपने काल को यहाँ स्वयं आमन्त्रण दे रहा है ? यदि राम-श्याम को बुलाना ही है तो समस्त गोपों को क्यों बुला रहा है ? गोप क्या सहज ही उन बालकों पर कोई अत्याचार होने देंगे ! यह गोपों से संग्राम का आयोजन क्यों ?' अक्रूरजी कंस की ओर देख रहे हैं । वे स्वयं कुछ कहें या न कहें, उनके नेत्रों में जिज्ञासा है ।

'अक्रूरजी परम चतुर हैं, उनसे छल नहीं किया जा सकता । तनिक भी सदेह हो जाय उनके मनमें तो कार्य बनने के स्थान पर और बिगड़ सकता है । उनसे कुछ छिपाना नहीं है । पूरा बात प्रगट करके पूर्ण विश्वास दिला देना है उन्हें ।' कंस यह सब पहले सोच चुका है । वह अपने मन्त्रणागृह में इन प्रधान लोगों—राजसेवकों को यों ही बुलाकर नहीं बैठा है । उसने अक्रूरजी के सम्मुख ही आदेश देना प्रारम्भ किया—'मन्त्रिगण, नन्दव्रज में वसुदेव ने अपने पुत्रों को छिपा दिया है । उन राम-कृष्ण से ही देवताओंने मेरी मृत्यु का विधान किया है ।' उच्चस्वर से कृत्रिम अट्टहास किया कंस ने अपने भय को छिपाने के लिये ।

"ये महाभाग अक्रूरजी यहाँ उन दोनों को लिवा लायेंगे । इस चतुर्दशी पर धनुषयज्ञ महोत्सव होगा ! आप लोग अत्यन्त सुसज्जित रङ्गशाला प्रस्तुत करें ! नाना प्रकार के मञ्च बनाये जायँ । मेरी समस्त प्रजा यथोचित स्थान पर बैठकर इस बार स्वच्छन्द—नियमहीन मल्ल-क्रीड़ा देखे । राम-कृष्ण यहाँ आयेंगे, इस मल्लयुद्ध के बहाने ही आप लोग उन्हें ठिकाने लगा दें । महामात्र ! भद्र ! तुम्हारी कार्य-कुशलता की परीक्षा का अवसर है । महागज कुवलयापीड़ को तुम रङ्गशाला के द्वार पर रक्खो और उसके द्वारा मेरे इन शत्रुओं को नष्ट कर दो ! धूलधाम से यह उत्सव हो ! मङ्गलमय भूतनाथ के लिये पवित्र पशुओं का भरपूर बलिदान किया जाय !" कंस के इस 'पवित्र पशु' में जो व्यंग है, उसे असुर भली प्रकार जानते हैं । कितना उत्साह दीखता है इनमें; किंतु इस समय प्रशंसा सुनना नहीं चाहते । उनका मुख गम्भीर है । उनकी भङ्गिमा कहती है—'बोलो मत ! कहा गया है उसे सम्पूर्ण चित्त से समझो और पूरा करो ।' अब तो संकेत भी मिल गया । 'यहाँ से चले जाओ ! अविलम्ब कार्य में लगो ! समय कम है ।' सच तो है, कुल दो ही दिन हैं और पूरे महोत्सव की प्रस्तुति करनी है । सबने मस्तक झुकाया, अभिवादन किया और क्रमशः बाहर हो गये वहाँ से ।

'श्रीअक्रूरजी, आप तो जानते ही हैं कि विष्णु के आश्रित देवताओं ने वसुदेव को पुत्रों के हाथ मेरी मृत्यु की व्यवस्था की है । वे दोनों नन्दव्रज में हैं । आप उनको साथ ले आयें । नन्दादि गोपों को भी राजोपहार लेकर आने का आदेश सुना दें । वे दोनों यहाँ आये तो उन्हें अपने महाकाल के समान कराल महागज से कुचलवा दूँगा ! यदि किसी प्रकार हाथी से बच गये—मेरे विद्युत् की भाँति स्फूर्ति रखने वाले मल्ल किस दिन के लिये हैं ! वे इन दोनों को पीस देंगे ! उन दोनों बालकों के मरते ही गोप स्वतः अधमरे हो जायँगे । वसुदेवादि वृष्णि-वंशी भी शोक-संतप्त होंगे ! आप उनके विद्रोह की आशंका न करें ! मैं वसुदेव, नन्द और इनके समस्त बन्धु-बान्धवों को स्वयं मार दूँगा ! ये सब वृष्णि, दाशार्ह और मेरे भोजवंशी वसुदेव के पक्ष में हैं । मैं इन सबों को

वध कर दूँगा ! मेरा बुड्ढा पिता उग्रसेन भी राज्य की कामना करता है ! मैं उसे और उसके भाई देवक को भी मार डालूगा और जो भी मेरे द्वेषी हैं, सबको मारूँगा !' सबको कंस स्वयं मारेगा; पर राम-कृष्ण—उन्हें वह दूसरों से मरवाना ही चाहता है। उनके द्वारा देवताओं ने इसकी मृत्यु का विधान किया है—इनके साथ स्वयं उलझने की बात कैसे सोचे यह।

'मेरे परम मित्र अक्रूरजी, आप चिन्ता न करें ! आप तो कुकुर-वंशी हैं। आप पर मेरा पूरा विश्वास है। मैं अपने समस्त शत्रुओं को मार दूँगा। यह पृथ्वी हमारे सम्पूर्ण कण्टकों से रहित हो जायगी। महाशूर मगध-नरेश जरासंध मेरे श्वशुर ही हैं और कपिश्रेष्ठ द्विविद मेरा प्यारा सखा है। शम्बर, भौमासुर, दैत्यराज बाण—ये सब मुझ से मित्रता रखते हैं। इन सबकी सहायता से मैं देवताओं का पक्ष लेनेवाले सभी नरेशों को पराजित करके उनका वध कर दूँगा। इस प्रकार हमारा शासन निष्कण्टक हो जायगा। आप इन बातों को भली प्रकार समझ गये हैं। अब आप शीघ्र राम-कृष्ण को धनुष-यज्ञ तथा इस महोत्सव पर यादव-राजधानी की शोभा देखने के बहाने लिवा लायें !' कंस ने बिना रुके अपनी बात पूरी कर दी।

'राजन्, अपने दुर्भाग्य को दूर करने के लिये आपने बहुत विचारपूर्ण योजना बनायी है। वैसे तो सफलता और असफलता में मनको सम रखकर ही उद्योग करना उचित है; क्योंकि फल तो दैवेच्छा पर निर्भर है। भाग्य का मारा पुरुष बड़े-बड़े मनोरथ करता है और फिर हर्ष या शोक से युक्त होता है। हो चाहे जो, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा !' अक्रूरजी ने कोई उत्साह नहीं दिखाया। उनका स्वर तो ऐसा है, जैसे कंस की विजय अथवा मृत्यु—किसी से उनका सम्पर्क ही नहीं। कंस को समझाना तो व्यर्थ ही है, जो दैवेच्छा हो—हो जाय। उन्होंने केवल राम-श्याम को बुला-लाना भर स्वीकार किया है।

'दैवेच्छा !' क्या रखा है इस दैवेच्छा में। कंस इस दैवेच्छा—देवताओं की इच्छा और विधान को ही बदलने के प्रयत्न में तो है। उसे पूरा विश्वास है—वह सफल होगा। यह अक्रूर—यह बुड्ढा उसे उपदेश देने चला है; किंतु यह अवसर नहीं है रोष प्रकट करने का। यह उन दोनों को लाना तो स्वीकार करता ही है—शेष बातें फिर। इस समय इस अक्रूर से काम निकालना है।

'आप उन दोनों को बस, ले आयें ! फिर तो मैं शेष बातें स्वयं समझ लूँगा ! सभी गोपों को आना चाहिये और उन दोनों को आप साथ ही लायें !' कंस ने एक बार फिर अपनी बात स्पष्ट कर दी और आज तो वह अक्रूर को द्वार तक पहुँचाने आया है। अक्रूरजी को कहाँ इस सम्मान में उत्साह प्राप्त हो रहा है। वे तो मस्तक झुकाये, कुछ सोचते उठे, सोचते-से द्वार तक आये और कंस को अभिवादन करके गम्भीरता से कुछ सोचते ही अपने रथ में बैठ गये भवन जाने के लिये। यह जो महान् कार्य उन्होंने अपने ऊपर ले लिया है—उसके प्रत्येक अङ्ग पर उन्हें विचार कर लेना है। आज रात में ही सोच लेना है।

× × × ×

'वे सर्वेश्वर, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, सर्वसमर्थ परम प्रभु !' अक्रूरजी ने बहुत सोचा, रात्रिभर वे जगते रहे हैं। रात्रिभर उनका अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा है। 'क्या करना चाहिये ?' कंस अत्यन्त क्रूर है और अब तो उसका नग्न पैशाचिक रूप स्पष्ट हो गया है। क्या अर्थ है उसके इन मनोरथों का। यह क्षुद्र कीट—यह भी अपने को कुछ मान बैठा है।

'मुझे उन सर्वेश्वर के दर्शन होंगे ! मैंने ऐसा कौन-सा परम पुण्य या महान तप किया है जन्मान्तर में ? पता नहीं कौन-सा महादान उत्तम पात्र को दिया है ! आज मैं उन केशव को देखूँगा !' अक्रूरजी ब्राह्ममुहूर्त में तो नित्य ही उठ जाते हैं। आज निद्रा-त्याग का तो प्रश्न ही नहीं था, शय्या ही त्यागनी थी। कंस ने अपना स्वर्ण-रथ कल ही भेज दिया द्वार पर। नित्य-कर्म से निवृत्त होकर, भगवान् भास्कर को अर्घ्य निवेदित करके अक्रूरजी रथ पर बैठे। हाथ में रथ की रश्मि है, पर मन भावनाओं से भर गया है। शरीर का रोम-रोम उठ खड़ा हुआ है। कंस—अब कंसका स्मरण भी कहाँ है उनके चित्त में। उन्होंने सुना है कि साक्षात् उनके अनन्तशायी प्रभु ने धरा का भार दूर

करने के लिये अवतार ग्रहण किया है। आज उनके प्रत्यक्ष दर्शन होने हैं नन्दव्रज में। अक्रूरजी तो इस भावना से ही परम भक्ति में निमग्न हो गये हैं। उनके नेत्र वर्षा कर रहे हैं। रथ चलता भी है या नहीं, अश्व कहाँ जा रहे हैं, वे तृण चरने में लगे हैं या चल रहे हैं—कौन इधर अब ध्यान दे।

'ना, मेरे-जैसे विषयी पामर प्राणी के लिये उन उत्तमश्लोक का दर्शन तो वैसे ही दुर्लभ है, जैसे शूद्र के लिये पवित्र वेद-मन्त्रों का पाठ। भला, उन सच्चिदानन्दघन को कहीं अन्वेषण से पाया जा सकता है।' अपनी ओर विचार करते ही हृदय हाहाकार करने लगता है। ये चर्मचक्षु बिना उस दयामय की दया के कैसे उसका साक्षात्कार कर सकते हैं। वह नन्दव्रज में है—पर कहाँ नहीं है! अपने में इतना प्रेम कहाँ कि उसकी वह दिव्य झाँकी मिले।

'नहीं, नहीं—मुझ अधम को भी आज उन अच्युत के दर्शन होंगे ही। इस कालरूपी नदी में प्रवाह-परवश तैरते तिनकों-से जीव—कभी कोई कदाचित् किनारे आ ही लगता है। आज मेरे सम्पूर्ण अमङ्गल नष्ट हो गये। मेरा संसार में जन्म लेना सफल हुआ। योगिजन समाधि के द्वारा जिन श्रीचरणों का ध्यान करते हैं, आज मैं उन्हीं चरणों में प्रणाम करूँगा!' वे अनन्त करुणार्णव—उनकी असीम अनुकम्पा—उसका स्मरण होते ही अन्तर में उल्लास का स्रोत फूट पड़ता है।

'कंस ने मुझपर बड़ी कृपा की। आज उसी के अनुग्रह से मैं पृथ्वी पर अपनी इच्छा से ही अवतीर्ण उन श्रीहरि के पादपद्मों का दर्शन करूँगा, जिन चरणों की नखमणि-चन्द्रिका के चिन्तन से ही अब से पहले के समस्त महापुरुष इस संसार-सागर से पार हो गये हैं!

'मेरा कितना सौभाग्य है—आज मैं उन श्रीचरणों का दर्शन करूँगा, जिनकी अगाध श्रद्धा से भगवान् ब्रह्मा पूजा करते है, भगवान् शंकर जिन्हें चित्त से क्षणभर भी दूर नहीं करते और भगवती लक्ष्मी निरन्तर जिन्हें अपने कोमल करों से लालित करती रहती हैं। समस्त मुनिजन, सम्पूर्ण भक्तजनों के परमाराध्य उन श्रीचरणों का मैं दर्शन करूँगा, जो अपने सखाओं के साथ वन में गायों को चराते हुए घूमते हैं और गोपियाँ जिन्हें हृदय पर धारण करके अपने वक्ष में लगे कुङ्कुम से अनुरञ्जित कर देती हैं!

'कहीं वह गोपाल वन में आया न हो गोचारण के लिये! अक्रूरजी इधर-उधर देखने लगे चौंककर। गायें तो नहीं हैं, पर ये मृगों के यूथ अवश्य दाहिनी ओर हैं—बड़ा शुभ शकुन है। ये मृग मेरी दाहिनी ओर से जा रहे हैं; अवश्य मैं उन शोभाधाम का दर्शन पाऊँगा। वे सुन्दर कपोल, मनोहर नासिका, हँसते हुए-से परम करुणापूर्ण पद्म-पलाश-लोचन—आज मेरे नेत्र घुँघराली अलकों से घिरे श्रीमुकुन्द के उस लावण्य-धाम मुख की अपूर्व छटा का अवलोकन करके धन्य होंगे।

'सर्वसमर्थ प्रभु पृथ्वी का भार हरण करने के लिये अपनी इच्छा से ही इस समय अवतीर्ण हुए हैं। उनका वह लावण्य-धाम श्रीमुख—आज मुझे नेत्र पाने का परम लाभ मिलेगा।'

अक्रूरजी का हृदय अपने आराध्य श्रीनारायण के अवतार-ग्रहण की भावना से विभोर हो गया। वे उन प्रभु के परमैश्वर्य का चिन्तन करके भाव-क्षुब्ध होने लगे—'जो अपने तटस्थ निरीक्षण से ही असत् जगत् को सत्ताहीन होने पर भी सत्-सा बनाये हैं, जो अपने तेज से ही तम एवं भेद के भ्रम को निरस्त किये हैं, जो अपनी माया से अपने में ही निर्मित नाना जीवों में उनके प्राण, इन्द्रिय एवं बुद्धि आदि की वृत्तियों के अन्तर्यामीरूप से साक्षी हैं, जिनकी मङ्गलमय वाणी ही वेद है, जो नाना प्रकार के मिश्रित गुणों के अनुसार होनेवाले जन्म एवं कर्म का विधान करके जगत् को प्राणमय (चेष्टायुक्त), पोषणमय एवं पवित्र करती है और जिस वाणी से हीन पुरुष शवके समान मृतक-जैसा है, वे ही परम प्रभु अपने बनाये नियमों की रक्षा के लिये, देवताओं के कल्याण के लिये निश्चय ही यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं। वे अपने यश का विस्तार करते इस समय व्रज में हैं और देवता उनके निःशेष मङ्गलमय चरित्र का गान करते हैं। निश्चय आज मैं उन महत्पुरुषों की परम-गतिरूप परम गुरु एवं त्रिभुवन-सुन्दर नयनानन्द स्वरूप के दर्शन करूँगा! मैं भगवती लक्ष्मी के भी परमेप्सित रूप को धारण किये प्रभु को आज देखूँगा! आज मेरे सौभाग्य का उदय हुआ!

'निश्चय मैं उन सर्वेश्वरेश्वर के भुवन-मोहन स्वरूप का दर्शन करूंगा!' अक्रूरजी का हृदय स्थिर हुआ और तब वे सोचने लगे कि क्या करेंगे वे! कैसे उस त्रैलोक्य-सुन्दर को देखेंगे—'मैं झटपट रथ से कूद पड़ूँगा और अपने मूर्तिमान् भाग्य की उपलब्धि के लिये उन वनवासी गोपों के परम मित्र प्रभु परम-पुरुष के उन्हीं श्रीचरणों में प्रणाम करूँगा, जिन चरणों को आत्मोपलब्धि के लिये योगिजन स्थिर बुद्धि से निरन्तर हृदय में धारण करते हैं।'

'वे परम मङ्गलमय—मैं उनके पाद-पद्मों में पड़ जाऊँगा, तब अवश्य मेरे सिरपर अपने वे कमल-कर रक्खेंगे, जो कालरूपी सर्प के भय से उद्विग्न होकर शरण ढूंढ़नेवाले पुरुषों को सदा अभय देनेवाले हैं। मैं कितना भाग्यशाली हूँ! मैं आज उन्हीं चरणों को प्रणाम करूँगा, जिनमें अपनी अर्चा के उपहार निवेदित करके महर्षि विश्वामित्र त्रिभुवन की सृष्टि करने की शक्ति पा गये और दैत्यराज बलि ने इन्द्रत्व का वरदान पाया। ये श्रीचरण—व्रज-रमणियों के रासजनित श्रम को जो अपनी मादक सुरभि एवं स्पर्श मात्र से दूर कर देते हैं—मैं आज उन्हीं चरणों में प्रणाम कर सकूँगा।

'कंस ने मुझे दूत बनाकर भेजा है, पर वे अच्युत मुझे शत्रु-बुद्धि से कभी नहीं देखेंगे। उन सर्वान्तर्यामी से छिपा क्या है। वे भुवनद्रष्टा—वे परम क्षेत्रज्ञ अपने निर्मलचक्षु से बाहर और चित्त के भीतर भी समस्त प्राणियों की समस्त चेष्टाओं को देखते ही रहते हैं।' जो अन्तर्यामी है, क्षेत्रज्ञ है, भुवनद्रष्टा है, वह क्या अक्रूरजी के भाव नहीं जानता? वह कंस के दूत की भाँति इनसे कैसे मिलेगा! कैसे मिलेगा वह? अक्रूरजी की भावना ने एक रूप स्थिर कर लिया है—

'प्रणाम करके मैं प्रभु के श्रीचरणों के समीप अञ्जलि बाँधकर बैठ जाऊँगा, तब वे मन्द-स्मितयुक्त करुणार्द्र दृष्टि से मेरी ओर देखेंगे। मेरे जन्म-जन्मान्तर के समस्त पाप तत्काल नष्ट हो जायँगे और मैं उस दृष्टि से ही शङ्का—भयहीन परमानन्द को प्राप्त कर लूँगा।' वे दयामय, भला, वे केवल देखकर ही कैसे रह सकते हैं—'मैं उनका सुहृद् हूँ, जाति का हूँ और वे ही मेरे एकमात्र देवता हैं! वे तो मुझे अपनी दोनों विशाल भुजाओं से उठाकर हृदय से लगा लेंगे! मेरा कर्मबन्धन दूर—दूर हो जायगा और मेरा चित्त तो क्या, यह शरीर भी उनके स्पर्श से तीर्थ हो जायगा, दूसरे भी मुझे स्पर्श करके पवित्र हो जायँ—मैं इतना पावन हो जाऊँगा।'

'मैं उन परम पुरुष का आलिङ्गन प्राप्तकर सिर झुका लूँगा, हाथ जोड़ लूँगा और तब वे उत्तमश्लोक कहेंगे—'अक्रूर!' ओह, वे मेरा नाम लेकर मुझे पुकारेंगे! जिनके नाम निखिल सुर, मुनि, महर्षि लेते हैं—वे मेरा नाम लेंगे आज! मैं तो उसी क्षण सम्पूर्ण जन्मधारियों में महान् हो जाऊँगा! उस जन्म को धिक्कार, जिसे उन लीलामय का आदर न प्राप्त हुआ।'

'उनका न तो कोई प्रिय है, न सुहृद्। न उनका कोई शत्रु है न उपेक्षणीय।' उनके लिये तो सब एक-से हैं, तब क्यों वे अक्रूर का इतना स्वागत करेंगे—'ऐसा होने पर भी जैसे कल्पवृक्ष अपने पास आये व्यक्ति की कामना पूर्ण करता है, वैसे ही वे भक्तवत्सल भी भक्त का पालन करते हैं। उन्हीं को क्यों, मैं प्रणाम करूँगा उनके बड़े भाई को भी और वे यदुश्रेष्ठ मुझ विनीत को सस्मित-मुख आलिङ्गन करेंगे। मेरा हाथ पकड़कर वे मुझे भवन में ले जायँगे और भली प्रकार मेरा सत्कार करेंगे। सत्कार करके तब कंस उनके स्वजनों से कैसा व्यवहार करता है, वे मुझसे पूछेंगे।'

अक्रूरजी निमग्न हैं अपनी भावधारा में। कभी-कभी निद्रा से जगे की भाँति चौंकते हैं और फिर मग्न हो जाते हैं। जैसे वे गोकुल पहुँच गये हैं। राम-श्याम को प्रणाम कर रहे हैं। जैसे वे हृदय से लगा रहे हैं, स्वागत कर रहे हैं। प्रत्यक्ष की भाँति सब दृश्य मानस नेत्रों के सम्मुख आ गये हैं। नेत्रों से अश्रु चल रहे हैं। शरीर पुलकित है, अब समय का क्या पता लगे, किसे लगे?

'व्रज—यह व्रज आया! सहस्र-सहस्र गायों के खुरों के चिह्नों से भरा यह वन-पथ!' अक्रूरजी को बाह्य चेतना आयी और दृष्टि-पथ पर गयी। वे पथ को ध्यान से देखने लगे रथ पर से ही—'इधर से ही वे परमाराध्य गये होंगे।'

"बालकों के ये चरण-चिह्न—अरे, ये किसके चरण-चिह्न हैं ?' भला, ये चिह्न भी पहचान की अपेक्षा करते हैं। ध्वज, वज्र, अङ्कुश, कमल आदि से सुचिह्नित किनके श्रीचरण हैं? अक्रूरजी तो अपने महिमामय आराध्य के पादतल का ही निरन्तर चिन्तन करनेवाले हैं, इनसे ये चरण-चिह्न छिप सकते हैं। 'ये मेरे आराध्य के चरण-चिह्न हैं! यह उनकी पद-रज है !' जैसे रथ में से लुढ़क गये हों—मार्ग में लोटने लगे, धूलि मलने लगे अपने अङ्ग में वहाँ की।

ये वृद्ध उज्ज्वल-केश—परम बुद्धिमान् मथुरा-नरेश के दानाध्यक्ष—ये तो बहुत गम्भीर प्रकृति के हैं। इनके ये बहुमूल्य रत्नाभरण, कौशेय-वस्त्र—पर ये तो जैसे उन्मत्त हो गये हैं। स्वर्ण-रथ खड़ा है, अश्व अपने सारथि को आश्चर्य से देख रहे हैं और ये—ये तो लोट रहे हैं धूलि में। धूलि में लोटते जाते हैं, धूलि अङ्गों में मलते जाते हैं और रोते जा रहे हैं। बच्चों की भाँति फूट फूटकर रो रहे हैं ये तो।

व्रज में जाना है, राजप्रतिनिधि होकर जाना है और यह धूलि-धूसरित रूप? वस्त्र, आभरण, केश, शरीर—सुख सब अद्भुत हो उठा है। कोई धूलि-स्नान कर ले तो क्या रूप होगा उसका? कन्हाई के पास जाना है न, उसे प्रसन्न करना है, उसका कृपा-प्रसाद चाहिये और उसे तो यह व्रजरज अत्यन्त प्रिय है। सखाओं के साथ नित्य इसी रज में तो वह खेलता है, लोट-पोट होता है और गायों के चरणों से उड़कर यह रज जब उसकी अलकों, वनमाला, भाल, भ्रूमण्डल आदि को भूषित कर देती है—कनूँ की वह धूसरित छटा जिन नेत्रों ने देखी है, धन्य हैं वे नयन।

अक्रूरजी प्रातः मथुरा से चले हैं। उनके रथ के अश्व—कंस की अश्वशाला के ये सर्वोत्तम सुशिक्षित अश्व अपनी गति में वायु को भी पीछे छोड़ दें; ये अश्व न होते—अक्रूरजी क्या आज ही इस गति से नन्दग्राम पहुँच पाते। उन्होंने रथ का हाँका ही कहाँ, कभी रश्मि खींचे ध्यान-सा करते रहे, कभी मूर्ति बने बैठे रहे और कभी रथ से कूदकर भूमि पर ही घण्टों लोटते रहे। उन्होंने कहीं विश्राम नहीं किया, मध्याह्न-भोजन भी नहीं। आज तो दिन में जल भी नहीं पिया उन्होंने। जल ही पी सकते, शरीर का इतना ही ध्यान होता—मथुरा से नन्दगाँव है कितनी दूर! प्रातः चले थे वे और अब तो भगवान् भुवन-भास्कर पश्चिम में विदा भी हो रहे हैं—उन्हें तो इन सुशिक्षित अश्वों ने किसी प्रकार पहुँचा दिया है। अब भी मध्य-मध्य में एकाध क्षण को जो उन्हें चलने का स्मरण आया है, रथ-रश्मि ने उतने ही क्षण अश्वों को आगे बढ़ने का संकेत दिया है। बिचारे अश्व—वे तो संकेत की प्रतीक्षा ही करते रहे हैं।

× × × ×

गोदोहन का पुण्यकाल—इस समय व्रज में किसे अवकाश है कि देखे कि कौन कहाँ से आ रहा है। यह कंस का रथ—पर गोपों के वृषभ-रथ इससे कहाँ कम हैं, जो इस रथ में उन्हें कुतूहल जान पड़े। अक्रूरजी सीधे व्रजराज के गोष्ठ-द्वार पर ही रथ ले आये हैं। वे रहे सम्मुख राम-श्याम। यह दाऊ और कन्हाई की दिव्य छटा, आज इस समय ये स्वर्णगौर नीलकान्त दोनों भाई हो हैं इधर द्वार के सम्मुख। गोदोहन हो चुका, भद्र तो बाबा के साथ घर में भी चला गया। ये नीलाम्बर-पीताम्बरधारी, कमलदल-लोचन दोनों भाई—ये तो ऐसा लगता है कि किसी की प्रतीक्षा में ही यहाँ रुके हैं।

प्रतीक्षा में ही तो हैं ये दोनों। प्रातः वह महाघोटक केशी मरा था, कन्हैया गोचारण को चला और पता नहीं क्यों एकबार फिर मुड़ पड़ा था उस विशाल घोड़े को देखने के लिये उसी समय देवर्षि आ पहुँचे और उन्होंने तो पूरी प्रार्थना ही कर ली—पता नहीं क्या क्या कहा था उन्होंने—'आज ही अक्रूरजी आयेंगे, आप दोनों भाई मथुरा पधारेंगे। बड़ा अच्छा किया जो आपने इस विकराल घोड़े का रूप रखनेवाले दैत्य को मार दिया। इसके तो हिनहिनाते ही भय के मारे देवता स्वर्ग छोड़कर भाग खड़े होते थे। अब परसों आप चाणूर, मुष्टिक एवं दूसरे कंस के मल्लों को, कुवलयापीड़ हाथी को भी अग्रज को साथ लेकर मारेंगे और आपके द्वारा कंस को भी परसों ही मैं मारा गया देखूँगा!' देवर्षि सर्वज्ञ हैं, ज्यौतिष के परमाचार्य हैं, उन्होंने तो पूरी जन्मकुण्डली ही सुना दी—

किसे-किसे मारना है, क्या करना है-यह सूचना देना ही जैसे उनका उद्देश्य रहा हो। देवर्षि ने कहा है तो बात ठीक ही होनी चाहिये। दोनों भाई प्रतीक्षा ही तो कर रहे हैं। जो इस कन्हैया के दर्शनों के लिये प्रातः से परमोत्सुक है, उसकी यह प्रतीक्षा न करेगा?—यह तो सदा से—नित्य ही प्रतीक्षा करता है—'कोई आये! कोई पुकारे! किसी को उठाकर हृदय से लगाने का अवसर मिले!'

'ये हैं राम-श्याम! अपने तेज से दिशाओं को आलोकित करते, ये जगत्पत्ति जगत् के कल्याण के लिये अपने अंशके साथ धरापर पधारे हैं। ये ही हैं परम पुरुष—जगत् के परम कारण! मेरे आराध्य!' श्रीअक्रूरजी ने रश्मि फेंक दी हाथों से, रथ से कूदे और दण्ड की भाँति दोनों भाइयों के श्रीचरणों के पास गिर पड़े। साष्टाङ्ग प्रणिपात किया उन्होंने।

'यह श्वफल्क-पुत्र, यादव अक्रूर श्रीचरणों में प्रणाम करता है!' कहना तो यह चाहिये था; किंतु नियम के लिये भी कुछ नियम होता है न। प्रेम-विभोर अक्रूरजी का गद्गद् कण्ठ—वे क्या बोलने में समर्थ हैं? उनके नेत्र की धारा से भूमि आर्द्र हो रही है। सम्पूर्ण शरीर पुष्पित कदम्ब हो रहा है! वे तो पड़े हैं भूमि में।

'कौन है यह? धूलि से भरा सर्वाङ्ग, रोम-रोम खड़े, उज्ज्वल केश, वृद्ध शरीर—इस प्रकार कौन यह सहसा चरणों के पास मस्तक रखकर भूमि पर लेट गया है?' दाऊ या कन्हैया ने तो इस प्रकार का कोई भाव नहीं प्रकट किया। जैसे यह चिर परिचित है, यह तो होना ही चाहिये था। उठा रहा है कन्हैया, अपने कोमल करों से झुककर उठा रहा है इन वृद्ध को बलपूर्वक। दोनों विशाल भुजाएँ अक्रूर को उठाने में लगी हैं। श्याम जिसे उठाना चाहे—अक्रूरजी को उठाकर लिपट गया है यह उनसे। दोनों बाहुओं में इसने उन्हें भर लिया है।

कन्हैया के बाहु तनिक ढीले हुए और अक्रूरजी ने दाऊ को अभिवादन किया। अब उन्हें राम ने भुजाओं में भर लिया है। ऽ च्छा, यह दाऊ तो इन्हें भली प्रकार पहिचानता है। यह तो हाथ पकड़कर इन्हें गृह की ओर ले चला है। कन्हैया तो साथ चलेगा ही।

'अक्रूरजी!' मोहन के सम्बोधन में जो अनुराग है—यह तो सम्बोधन करके ही रह गया। इस समय कण्ठ भाव-क्षुब्ध है। अभी कुछ कहा नहीं जा सकेगा। अक्रूरजी तो केवल देख रहे हैं। उनका मन, वाणी, समस्त चेतना—'ओह, इतनी अनुकम्पा है प्रभु की! ये भक्तवाञ्छा-कल्पतरु—मैं धन्य हो गया!' वे अपने आप में रहे नहीं हैं।

× × × ×

'चाचा, आपने बड़ी कृपा की!' बाबा अभी सायं-गो-सेवा में लगे हैं तो क्या हुआ, राम-श्याम क्या अतिथि-सत्कार में विलम्ब होने देंगे। मोहन ने भवन में बैठाया उत्तम आसन पर अक्रूरजी को। अब तो रत्न-थाल में भरे यमुना-जल से दोनों भाई उनके चरण धोने बैठ गये हैं। जिनके श्रीचरण भगवान् विश्वनाथ सदा हृदय में धारण करते हैं—वे अपने कोमल करों से चरण धोयेंगे! अक्रूरजी—वे अतिथि हैं, उनकी पूजा-सत्कार होना ही चाहिये। वे चाहें-न-चाहें, यह हठी श्यामसुन्दर माननेवाला है? सम्भवतः भीतर से व्रजेश्वरी बालकों को प्रोत्साहित कर रही हैं। अक्रूरजी मनाकर भी कैसे सकते हैं। इस समय उन्हें कहाँ पता है अपने शरीर का। उन्होंने तो गोष्ठ में प्रणाम किया—इन नीलोज्ज्वल प्रभु ने उठाया उन्हें—बस! तब से ही उनका शरीर तो यन्त्र हो गया है। ये दोनों भाई हाथ पकड़कर ले आये हैं, बैठा दिया है; जो जी में आता है—करते जा रहे हैं। अक्रूरजी तो किसी दूसरे ही भावलोक में हैं।

भली प्रकार धीरे-धीरे दबा-दबाकर चरण धोये कन्हैया और दाऊ ने अपने सुकुमार करों से अतिथि के। सवत्सा कपिला गौ निवेदित की और मधुपर्क दिया। मधुपर्क—जब ये सम्मान्य अतिथि स्वयं नहीं ग्रहण करते, तब कनूँ ने अपने करों से उनके मुख में यह मधु-मिश्रित दही लगा दिया है। इन करों से इस प्रकार मधुपर्क मिले—ऐसा भाग्यशाली आतिथ्य क्या किसी को सहज प्राप्त होता है?

'बहुत श्रान्त हो गये हैं आप!' जैसे मधुपर्क दिया गया, वैसे ही आचमन भी सम्पन्न हुआ। दोनों भाइयों के नील-पीत उत्तरीय अतिथि के अङ्गों की धूलि को कब के स्वच्छ कर चुके हैं। अब तो चरण दबाये जा रहे हैं। मैया भीतर चली गयी है सम्भवतः द्वार के समीप से। उसे भोजन की व्यवस्था स्वयं देख लेनी है।

'आप भोजन करें अब!' आज दिन भर के पश्चात् अक्रूरजी ने यहीं मधुपर्क और जल लिया है। श्रीकृष्णचन्द्र हाथ पकड़कर आग्रह कर रहे हैं। राम ने यह विविध व्यञ्जनों का थाल लेकर सम्मुख रख दिया है। अब तो भोजन करना है, ये अमृत-पूर व्यञ्जन—जब अतिथि बनकर आये हैं, मनमें सत्कार पाने का भाव ले आये, प्रसाद कैसे प्राप्त हो! मन-ही-मन भोग लगाना है आराध्य को।

भोजन हुआ, आचमन के अनन्तर दाऊ ने ताम्बूल दिया, चन्दन लगाया, इत्र मला—पुष्पमाला पहिनायी—अतिथि का पूजन विधि पूर्वक करना चाहिये न। अच्छा, अब आये ये श्रीनन्द-राय! भोजन करने बैठने पर ता अक्रूरजी सावधान हो ही गये हैं। बाह्य चेतना लौट ही आयी है। उठकर देखते ही बढ़े, अभिवादन करना चाहते थे दोनों एक दूसरे का और परस्पर अङ्कमाल देकर एक हो रहे।

× × × ×

कितने सीधे, कितने सहृदय, कितने उदार हैं श्रीनन्दराय!' अक्रूरजी तो व्रजेश्वर के भाव पर ही विस्मित हैं। बहुत सीधे-सरल लोग मिले हैं उन्हें; पर ये श्रीव्रजराज—जिन्हें सर्वेश्वर ने पिता का गौरव दिया है, उनकी तुलना कहाँ मिल सकती है।

'कंस बड़ा क्रूर है! अरे जिस दुष्ट ने क्रन्दन करती अपनी बहिन के नवजात शिशुओं का वध कर दिया, वह अपने बन्धु-बान्धव और प्रजाजनों से कैसे व्यवहार करता होगा, यह समझा जा सकता है। मैं किस मुख से आप से कुशल पूँछूँ! रक्त-लोलुप आखेट के कुत्तों के मध्य में दीन पशुओं की भाँति हमारे सभी बान्धव पड़े हैं!' श्रीव्रजेश के नेत्रों से अश्रु की झड़ी लग गयी यह कहते ही। उन्होंने यह भी नहीं पूछा कि अक्रूरजी कैसे पधारे हैं। ये कंस के दानाध्यक्ष हैं, यह तो वे जानते ही हैं। द्वार पर कंस का स्वर्ण-रथ देख आये हैं—यह समझने का कारण ही नहीं कि अक्रूरजी नरेश से उत्पीड़ित है। ये कंस के लोगों में और कंस ने व्रजराज के प्राणाधिक प्रिय श्यामसुन्दर को मारने के लिये कितने प्रयत्न किये—कहाँ स्मरण करते हैं यह सब सहज सुहृद् ये श्रीनन्दराय। ये तो इस प्रकार उन्मुक्त हृदय से बोल रहे हैं, जैसे अपने किसी परम स्नेही के सम्मुख हों। इनका मिलना, इनका स्वागत—सभी तो यही बता रहा है कि ये अक्रूरजी को श्रीवसुदेवजी की भाँति ही अपना परम बन्धु ही मान चुके हैं। इनके सरल हृदय में किसी के प्रति दुराव भी रह सकेगा—ना, ऐसा तो सम्भव ही नहीं।

'ये बहुत थक गये जान पड़ते हैं। मेरे बठने से इन्हें संकोच होगा! बालकों के प्रति इनका कितना स्नेह है! बालकों ने आतिथ्य किया है, उनसे कुछ संकोचहीन भी हुए हैं!' बाबा ने थोड़ी देर बैठकर अनुरोध किया कि अक्रूरजी अब विश्राम करें। ये सम्मान्य अतिथि भी तो बार-बार अनुरोध कर रहे हैं कि सब लोग अब भोजन कर लें।

देवर्षि नारद ने बहुत कुछ बता दिया है। ये अक्रूरजी तो आ गये। अब आगे?' कन्हैया को शीघ्रता है। अतिथि के समीप किसी को रहना ही चाहिये। भोजन करके झटपट यह फिर आगया है यहाँ। 'कंस कैसा व्यवहार करता है हमारे प्रियजनों से?' इसे यह जानना है!

'चाचाजी, आप यहाँ तक सुखपूर्वक पहुँचे! आपको कोई कष्ट तो मार्ग में नहीं हुआ?' श्यामसुन्दर तो आज पूरा गम्भीर बन गया है। यह तो कहता ही जा रहा है—'आपको यहाँ कोई असुविधा तो नहीं? कोई संकोच न करेंगे! अच्छा, मथुरा में हमारे बन्धु-बान्धव तथा जाति के लोग कुशलपूर्वक तो हैं?'

क्या कुशल कहें, अक्रूरजी किसकी कुशल बतायें? नेत्रों से बिन्दु गिर रहे हैं। वाणी की बात नेत्रों ने ही पूरी कर दी। कनूँ को क्या समझने में कठिनाई हो सकती है—'यह कुल-कलङ्क मामा कंस जब तक शरीर में रोग की भाँति अपने यदुवंश में बढ़ा हुआ है, तब तक आपने उन बन्धुजनों की कुशल क्या पूछी जाय, जो उस नृशंस की प्रजा हैं!' इतने क्रूर, शिशु-हन्ता नरेश की प्रजा की कुशल ही कैसी!

कंस की क्रूरता क्या अकारण बढ़ी है, देवर्षि ने अभी प्रातःकाल ही तो बहुत कुछ सूचना दी है। कन्हैया वह सब इतना शीघ्र कैसे भूल जायगा—'मैं ही अपने माता-पिता के कष्ट का कारण हूँ! मेरे ही कारण उनके और पुत्र मारे गये। मेरे ही कारण वे बंदी किये गये हैं!' कमल-मुख तमतमा उठा है। विशाल लोचन बिन्दु गिराने लगे हैं। भौंहें और कुटिल हो गयी हैं।

दो क्षण श्यामसुन्दर मौन रहा, नेत्र पोंछ लिये अब इसने और अब तो यह नित्य-प्रसन्न-मुख गम्भीर—बहुत गम्भीर हो गया है। कुछ निश्चय कर लिया है इसने। यह तो गम्भीर स्वर में पूछ रहा है—'आज मेरा सौभाग्य जो आपके दर्शन हुए! मैं तो स्वयं आप से मिलना चाहता था। चाचाजी, आप कैसे पधारे हैं? बिना संकोच के मुझे आज्ञा दें, मैं क्या सेवा करूँ आपकी?' दाऊ भैया भी आ बैठा है समीप, यह तो तनिक ही पीछे आया; पर मोहन जैसे इस समय कुछ दूसरी ही धुन में है। ये नेत्र—ये कमल-लोचन अक्रूर के मुखपर स्थिर हो गये हैं।

'प्रभो!' अक्रूरजी का हृदय पुकार रहा है—यह मर्यादा का बन्धन—कितनी बोझल है यह मर्यादा भी; किंतु अब तो ये श्यामसुन्दर पूछ रहे हैं, इनसे कुछ छिपाया जा सकता है? अक्रूरजी छिपा सकते हैं? 'मुझे कंस ने भेजा है! मैं उसी क्रूर का अधम दूत हूँ! फूट पड़े अक्रूरजी। इन्होंने तो कंस की पूरी मन्त्रणा बता दी।

'बड़ा सुन्दर!' ये दोनों बन्धु तो हँस रहे हैं! ये ही जानें इनके हास्य का अर्थ। 'चाचाजी, आप विश्राम करें! हम प्रातः मथुरा चलेंगे!' अक्रूर को कुछ प्रार्थना करने का अवसर ही कहाँ है, ये तो चले—चले गये व्रजराज के पास! 'प्रभो, तुम्हारी इच्छा!' अब भला, क्या विश्राम करेंगे ये। इन्हें क्या निद्रा आनी है। इच्छा होती है, व्रजराज से जाकर कह दें सब; परंतु—करें क्या, इच्छा ही होकर रह जाती है। उठा नहीं जाता। कंस—ये राम-श्याम—एक ओर भय है तो एक ओर संकोच। बेचारे अक्रूरजी·······
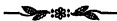
मथुरा-प्रस्थान

"अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥"

—भागवत १०।३९।१९

"बाबा, श्रीअक्रूरजी राजा कंस का निमन्त्रण लेकर आये हैं ! चतुर्दशी को वहाँ धनुषयज्ञ है, मल्लक्रीड़ा-महोत्सव है ! नरेश ने आपको, सब गोपों को आमन्त्रित किया है। अक्रूरजी कहते हैं कि इस अवसर पर यादव-राजधानी की शोभा देखने के लिये नृपति ने दाऊ भैया को और मुझे विशेषरूप से बुलाया है। हम दोनों को ले जाने के लिये ही अपना रथ देकर अक्रूरजी को भेजा है ! हम मथुरा चलेंगे ! कैसी है मथुरा ? अक्रूर जी हमें लेने आये हैं, हम कल सबेरे ही चलेंगे ! सभी जनपदों को नरेश ने आमन्त्रित किया है, सब लोग चलेंगे ! तुम सबको चलने को कहो न !' कन्हैया बाबा की गोद में आ बैठा है। यह कहता ही जा रहा है। मथुरा देखने को बहुत उत्सुक जान पड़ता है।

'मथुरा ? कंस के यहाँ ?' बाबा चौंके। 'बड़ा क्रूर, बड़ा निर्दय है कंस ! राम-श्याम वहाँ जायँगे ? लेकिन कंस ने आमन्त्रित किया है। दूसरे जनपद भी आमन्त्रित हैं। सब लोग कंस के आमन्त्रण पर जायँगे ही; यदि यहाँ से न जाय कोई -पहले से अकारण ही वह गोपों से असंतुष्ट है। बार-बार व्रज के विनाश का प्रयत्न करता है, अनेक असुर नायक उसके यहाँ मारे जा चुके। इस समय न जाने पर वह अपना अपमान मानेगा और तब आक्रमण के लिये पूरा बहाना मिल जायगा उसे। गोपों को, मुझे तो तो जाना ही चाहिये; पर राम-कृष्ण ? ये बालक क्या करेंगे जाकर वहाँ ? क्यों बुलाया है उस क्रूर ने इनको ? ये न जायँ—उसने अपना रथ भेजा है इन्हें बुलाने को। हम सब मथुरा में होंगे और इनके न जाने से क्रुद्ध होकर वह यहाँ कोई असुर—असुर-सेना ही भेज दे ?' व्रजेश्वर मस्तक झुकाकर गम्भीर चिन्ता में पड़ गये हैं। भाल पर स्वेदकण झलमलाने लगे हैं।

'बाबा, तुम गोपों को कहो न मथुरा चलने के लिये ! तुम तो अभी से सोने लगे ! सबको बतादो तो सब अभी अपने छकड़े प्रस्तुत करलें। बड़े सबेरे चल देंगे हम सब ! मैं मैया को बता दूँ, मेरे वस्त्र रक्खेगी वह, और...।' पूरी बात कहने का अवकाश कहाँ है इसे। यह तो भागा भवन में।

'बहुत उत्सुक है कृष्णचन्द्र ! इस हठी को यहाँ रोकना सरल नहीं है। बहुत रोयेगा, रो-रोकर अपने विशाल लोचन लाल कर लेगा ! क्या ठिकाना इसका—सखाओं को लेकर वन-पथ से भागकर पहुँचने का प्रयत्न करे !' बाबा को अपने इस चपल का भय ही कंस से अधिक है। यह हठ करने लगता है तो फिर क्या किसी की कुछ सुनता है ? योगमाया अन्तरिक्ष में मुस्करा रही हैं। बाबा का वात्सल्य—पर भू-देवी का भार—उसका भी ध्यान रखना है उन्हें। बाबा सोचने लगे हैं मथुरा जाने के सम्बन्ध में।

'हम सब साथ रहेंगे ! कंस ने तनिक भी कुटिलता की तो उसे पता लग जायगा कि गोप केवल गायें ही चराना नहीं जानते। हम उसे ऐसा पाठ पढ़ा देंगे—' ये तरुण गोप आवेश में आ गये हैं। ये सब-के-सब सशस्त्र साथ रहेंगे और राम-श्याम का कोई अनिष्ट हो जायगा ?

श्यामसुन्दर मथुरा देखना चाहता है, भय के कारण वह दुखी किया जाय, रोका जाय—वह देखना चाहता है तो क्यों न देखे ! कंस के सैनिकों से क्या गोप कुछ दुर्बल हैं !

'कन्हाई को मना लेना बहुत कठिन है ! कंस के क्रुद्ध होने का भी भय है यदि बालक न जायँ। अक्रूरजी धर्मात्मा हैं, उनपर विश्वास किया जा सकता है। बालकों को रथ पर ही जाना चाहिये। रथ का—नरेश के आमन्त्रण का आदर होना चाहिये। मथुरा में सावधान रहना चाहिये ! सब लोग चलें—सभी तरुण गोप अपने अस्त्र-शस्त्र ले लें ! अवसर ही पड़ा तो मथुरा में भी अपने कुछ समर्थक मिल ही जायँगे ! छकड़े जुते ही रहेंगे, आशङ्का होते ही बालकों को यहाँ भेज देना चाहिये।' ये वृद्ध गोप—ये उपनन्दजी भी इसी पक्ष में हैं कि कंस का आमन्त्रण स्वीकार किया जाय !

"छकड़े जोत लिये जायँ ! सम्पूर्ण गोरस, जो इस समय गृहों में हो, साथ ले लिया जाय ! हम कल प्रातःकाल ही मथुरा चलेंगे ! नरेश को देने के लिये अपने-अपने उपहार सब साथ ले लें ! मथुरा में इस बार बहुत बड़ा महोत्सव है ! दूर-दूर के जनपदों के लोग पहुँच रहे हैं। राजा कंस को उपहार देकर हम भी इस महापर्व को देखेंगे ! राम-श्याम चल रहे हैं ! नरेश ने आमन्त्रित किया है सब को ! सब लोगों को कल प्रातः ही प्रस्थान करना है।" श्रीव्रजराज की यह घोषणा पूरे नन्दग्राम में भेरी-रव के साथ घोषित की जा रही है। द्वार-द्वार, गली-गली घोषणा की आवृत्ति हो रही है। *'राम-श्याम जायँगे !' तब सभी को सूचना तो मिल ही जानी चाहिये।*

× × × ×

'कन्हैया मथुरा जा रहा है !' मैया इस बात को कैसे मान ले ! 'मथुरा—कंस की मथुरा जायगा श्याम ? सुना है कंस ने श्रीवसुदेव एवं देवकीजी को कारागार से मुक्त कर दिया है बहुत पहले से—क्या होता है इससे; अभी आज ही तो उसका वह असुर घोड़ा—वह महादैत्य केशी आया !' श्रीवसुदेव-देवकी पुनः कारागार में पहुँच गये हैं, यह बात यहाँ कहाँ जानता है कोई।

'गोप साथ जा रहे हैं, दाऊ संग है ! क्या हुआ इससे। मोहन को कैसे नेत्रों से ओट किया जाय !' मैया क्या करे ? कभी उसने श्रीव्रजेश की बात टाली नहीं। कभी कोई आग्रह नहीं किया। आज तो व्रजराज ने बताया है कि राम-श्याम के मथुरा न जाने में अधिक अनिष्ट की आशङ्का है। ऐसा न होता तो व्रजपति क्या इस आयोजन को अनुमति देते ? मैया का हृदय कहता है—'मना कर दे ! कह दे—नीलसुन्दर नहीं जायगा !' प्राण हाहाकार कर रहे हैं और रोते-रोते भी यह पता नहीं क्या-क्या सजाने, एकत्र करने में लगी है।

'यह पद्मगन्धा का नवनीत, यह मिश्री, ये अपूप और मोदक, मैया तो चाहती है कि व्रजराज बैठे रहें रात्रिभर उसके समीप और वह समझा दे ठिकाने से—'श्याम क्या पसंद करता है। कितना मिश्री पड़ेगी नवनीत में ! कितना दूध देना होगा कब-कब। किस प्रकार मनाकर उससे मुख धुलाया जा सकता है, कैसे भोजन करेगा। कौन-से वस्त्राभरण कब किस प्रकार पहिनाये जायँगे।' कोई यह सब ठीक-ठीक कर सकता है—मैया को विश्वास नहीं। उसका लाल बड़ा संकोची, बड़ा लज्जाशील है; कोई उसकी मनुहार कर लेगा—मैया का हृदय मानता ही नहीं। वह एक-एक बात बार-बार समझा देना चाहती है। उसका बस चले तो सभी गोपों से वह उसी बात को समझाये। उसकी सामग्रियों का संकलन—उसका समझाना और यह अश्रुधारा—इनमें किसी का ओर-छोर ही नहीं है।

'दाऊ ! अपने छोटे भाई को सम्हाले रहना, बेटा ! इसे छोड़ना मत ! भद्र, कोई कनूँ से लड़ाई-झगड़ा न करे ! तुम साथ ही रहना !' मैया तो आज बालकों तक की मनुहार करने लगी है। ये सब लड़के नगर-दर्शन के कुतूहल में हैं। इन्हें उत्सव देखने की धुन है। ये तो प्रसन्न हो रहे हैं। ये किलक रहे हैं, ये मैया की बात को कहाँ सुनते हैं। 'मथुरा कैसी है ? मल्ल-क्रीड़ा कैसी होगी ?' इन सबों को तो अपनी ही पड़ी है।

'दाऊ जा रहा है ! इसे पिता के दर्शन होंगे !' मैया को इस समय भी यह भूला नहीं है। माता रोहिणी तो कहती हैं—'अपने छोटे भाई के साथ ही रहेगा यह!' वे तो इसे भी यही समझा

चुकी हैं और बालक के 'हाँ' करने का क्या अर्थ। 'श्रीवसुदेवजी इसी बहाने एक बार पुत्र को देख सकेंगे !' मैया को तो यही एक तनिक शान्तिप्रद बात लगती है।

'राम मथुरा जा रहा है !' माता रोहिणी को पतिका स्मरण तो आता है; पर व्रज—इस व्रज को छोड़ने की तो कल्पना भी नहीं उठती उनके मन में। 'राम मथुरा जायगा, पिता के दर्शन होंगे इसे।' माता को यह आकर्षण तनिक भी उत्सुक नहीं कर रहा है। कन्हाई मथुरा जायगा—बड़ी ही आशङ्का की बात है और इसीलिये—केवल इसीलिये दाऊ को उसके साथ जाना ही चाहिये। वे तो व्रजेश एवं गोपों के साथ क्या जाना चाहिये, इस सबके आयोजन में लगी है। उन्हें ही तो ऐसी सभी यात्राओं की व्यवस्था सदा करनी पड़ती है। श्री व्रजरानी को बालकों की सामग्री संकलित करने से अवकाश कहाँ है।

× × ×

'श्यामसुन्दर बड़े भाई के साथ मथुरा जा रहा है !' गोपियों की व्यथा कोई कैसे समझ सकेगा। 'श्यामसुन्दर जा रहा है !' जैसे कोई उनके हृदय में कह रहा है—'यह तो जा रहा है! सदा के लिये जा रहा है !' इन सब के भी पिता, पुत्र, पति भाई, स्वजन हैं—वे सब भी मथुरा जा रहे हैं। उनके लिये भी आशङ्का है। यह बात तो उसके मनमें आये—जिसका कोई सचमुच हो। इनका कहाँ कोई है। कन्हाई को छोड़कर और भी कोई अपना विश्व में है—कहाँ किसी भी क्षण आता है यह इनके मन में ! 'कन्हाई जा रहा है ! अपना सर्वस्व कन्हाई चला जा रहा है !' व्यथा का पार नहीं है। 'घर के लोग जा रहे हैं, उनके लिये कुछ सामग्री भी प्रस्तुत करनी है।' जिन्हे जाना है, वे अपनी सामग्री स्वयं सजाने में लगे हैं। वे देखते हैं, जानते हैं और स्वयं उनका ही हृदय क्या कम शङ्कित, कम व्यथित है। गोपियाँ—कैसे गयी उनकी रात्रि, वे ही जानती हैं ! रोते, कलपते, विलखते लोचनों में क्या निद्रा आ सकती है ?

'कहीं रथ चला न जाय ? कहीं अक्रूर पहले ही प्रस्थान न कर दें ?' ब्राह्म-मुहूर्त नहीं हुआ और ये सबकी सब गोपियाँ आ गयीं—एकत्र होकर आ गयीं ये सब मार्ग के समीप। ये बालिकाएँ—ये बरसाने की कुसुम-कोमल कुमारियाँ इस अँधेरी रजनी में ही पथ के समीप प्रतीक्षा करने आ पहुँचीं ? किसी ने रोका नहीं ! किसी ने समझाया नहीं! आज कौन किसको रोके ? कौन किसे समझाये ? पिता, भाई—सभी पुरुष तो मथुरा जाने के लिये छकड़े सजा रहे हैं। उपहार-सामग्री, गोरस और अस्त्र-शस्त्र—साम, दान से कंस की दुष्टता कुण्ठित न हो तो दण्ड भी तो प्रस्तुत रहना चाहिये। गोपियाँ—वृद्धाएँ तो कब की नन्दभवन जा पहुँचीं। जो द्वार तक जा सकती हैं, वे घर में कब रुक सकती थीं। ये बालिकाएँ—ये तो एक ओर से ही एक झाँकी देखने की आशा में नेत्र लगाये बैठी हैं। इनके नेत्र—अजस्र धाराएँ चलाते ये नेत्र—ये तो सब यूथ-की-यूथ एकत्र हो गयी है। विलाप ही तो कर सकती हैं ये स्नेह की पुतलियाँ—

हाय रे सृष्टिकर्ता, तू बड़ा निर्दय है ! तुझमें दया का लेश भी नहीं। प्राणियों को प्रम-बन्धन से तू एक करता है और जब वे परस्पर पूर्णतः तृप्त भी नहीं हुए होते, उन्हें पृथक् कर देता है ! तेरी क्रीड़ा बालकों की भाँति विचारहीन है ! 'काली-काली अलकों से घिरा, सुन्दर कपोल एवं मञ्जुनासिका की अपरूप रूपराशिवाला, समस्त शोक को दूर करनेवाले स्मित से भूषित मोहन के भुवन-मोहन रूप को हमें दिखाकर फिर हम से दूर करता है—बड़ा ही अनुचित कार्य है यह तेरा।' भला, सृष्टिकर्ता क्या करें ? जो प्रणय, जो स्नेह इस व्रज में है—वे तो केवल यहाँ चरण-रज की कामना कर सकते हैं। वे इस नित्य-लीला में कुछ कर सकें—कहाँ शक्ति है इतनी उनमें।

'अक्रूर, तेरा नाम ही भर अक्रूर है; पर है तू बड़ा क्रूर ! तू तो हमारे नेत्रों के ही परम-धन को अज्ञ की भाँति हरण करने आया है। समस्त सृष्टि-सौन्दर्य जिसके अङ्ग-अङ्ग में है, उस श्याम सुन्दर को अब हम न देख सकेंगी !

'अक्रूर को ही क्यों दोष दिया जाय। यह नन्दनन्दन ही ऐसा है। एक क्षण में ही इसने हमारे सारे स्नेह को तोड़ दिया। घर, स्वजन, पति-पुत्रादि सभी बन्धु-बान्धवों का त्याग करके हम

इसकी दासियाँ हुई और यह अपने लिये आतुर हम सबों की ओर देखता ही नहीं ! यह तो 'नव-प्रिय, है—मथुरा जाने के लिये कितना उत्सुक हो रहा है।

'मथुरा की स्त्रियाँ धन्य हैं ! आज की रात्रि का प्रभात उनके लिये मङ्गलमय होगा ! निश्चय उनकी इच्छा आज पूर्ण होगी ! वे नगर में प्रविष्ट व्रज-नव-युवराज के स्मित-शोभित श्रीमुख की शोभा को आनन्द-पुलकित होकर अपलक लोचनों से पान कर सकेंगी !'

'वे नगर की स्त्रियाँ - वे नागरिकाएँ ! वे तो बड़ी चतुरा हैं ! मोहन है तो मनस्वी, पर कितना सरल है; वे सब अपने मधुर-मञ्जु वाणी से इसे अपने वश में कर लेंगी और तब भला, हम ग्राम्य कन्याओं की स्मृति क्यों आयेगी इसे ! हमारे लज्जापूर्ण स्मित, हमारी अटपटी चेष्टाएँ भला, उन नागरिकाओं की कहाँ तुलना कर सकती हैं। उनके समीप जाकर फिर श्याम हमारे पास कैसे आ सकता है।

'श्रीकृष्णचन्द्र क्या स्त्रियों के आकर्षण से ही मथुरा रह जायगा ? इसे अपने बन्धु-बान्धवों का स्मरण न आयेगा ? पर मथुरा में ही क्या कम बन्धु-बान्धव हैं ? सुना है गर्गजी ने कहा था कि यह पहले वसुदेवजी के गृह में उत्पन्न हुआ। मथुरा में तो पूरा ही यादव-कुल है।—'निश्चय आज दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि, सात्वत आदि समस्त मथुरावासी यादव-कुल के नेत्रों के लिये महोत्सव का दिन होगा ! निखिल गुणों के आधार, शोभा-सिन्धु इस देवकी-पुत्र को वे आज मार्ग में देखेंगे।' मथुरा के लोगों के लिये तो यह देवकी-पुत्र ही है न ! वे इसे अपना लेंगे—अपना कहकर रोक लेंगे ! यही तो सब से बड़ी आशङ्का है।

'पता नहीं किसने ऐसे पुरुष का नाम अक्रूर रखा ! यह तो अत्यन्त क्रूर जान पड़ता है ! देखो न, रंग-ढंग तो ऐसे हैं कि हम सब अत्यन्त दुखी हैं और हमें बिना आश्वासन दिये ही यह हमारे परम प्रिय को ऐसे मार्ग के उस पार ले जायगा, जहाँ हम, जहाँ हमारी गति ही नहीं।'

रोते-विलखते, क्रन्दन करते कितना समय गया—कौन कह सकता है; किंतु अब तो प्रकाश फैलने लगा ! कितना दारुण, कितना दुःखद है आज का यह प्रकाश ! आज प्रभात न होता—कुछ विलम्ब से होता—हाय ! प्रकाश—अब तो ये छकड़े नन्द-द्वार पर एकत्र होने लगे—'यह निर्दय अक्रूर—यह तो रथ पर पहुँच गया ! यह अपने रथ को सजाने-सम्हालने लगा है स्वयं और ये गोप—ये सब भी तो शीघ्रता कर रहे हैं ! ये क्यों रथ को सजाने में योग दे रहे हैं ? ये सब तो छकड़े लेकर रथ के पीछे चलने को प्रस्तुत भी हो गये ! बड़े दुर्मद हैं ये सब—बड़ी शीघ्रता पड़ी है इन्हें ! हमारा भाग्य ही प्रतिकूल है—ये वृद्ध गोप, नहीं तो ये बुद्धिमान वृद्ध गोप क्या [illegible] प्रकार उपेक्षा कर देते ! ये रोकते नहीं मोहन को मथुरा जाने से !

'कोई न रोके, हम सब स्वयं चलकर श्याम को रोकेंगी ! देखेंगी कि कैसे वह हमारी उपेक्षा करके चला जाता है !' कैसे होगा यह ? यहाँ सब बड़े-बूढ़े हैं, इनके सम्मुख कैसे बोला जा सकेगा ! आज एकान्त मिलने की आशा तो है नहीं ! 'ये बड़े-बूढ़े क्या कर लेंगे !' जब श्याम ही चला जायगा—ऐसी लज्जा, ऐसा संकोच किस काम का ?

'श्याम—मोहन के बिना तो हमें आधा निमेष बिताना भी कठिन हो जाता है और अब वह जा रहा है ! भाग्य ने हम दुखियों का सम्पूर्ण सौख्य नष्ट कर दिया। नील-सुन्दर—नील-सुन्दर जा रहा है, जिसके अनुराग-ललित स्मित, कोमल वचन, रुचिर क्रीड़ा, प्रेमावलोकन, सुधा-स्पर्श आदि में हम रास-गोष्ठी में पूरी रात्रि क्षण के समान व्यतीत कर देती हैं; सखियो, उसी श्रीकृष्णचन्द्र के बिना हम वियोग के घोर अन्धकार-सागर को कैसे पार कर सकेंगी ! जो दिनान्त में नित्य अपने बड़े भाई के साथ, सखाओं से घिरा वनसे ग्राममें आता है और गोखुरों से उड़ी रजसे धूसर अलकें, वक्षपर लहराती भुवन-मोहन वनमाला, अधरों पर वंशी रक्खे अपने स्मितपूर्ण कटाक्ष-निरीक्षण से हमारे चित्तका हरण करता है, उसके बिना हमारी क्या दशा होगी !

'क्या दशा होगी हमारी ?' श्याम चला जा रहा है ! हृदय पुकार-पुकारकर कहता है— वह अब जा रहा है ! अब कैसी लज्जा, कहाँ शरीर की सुधि ! 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! श्यामसुन्दर !' ये सब तो क्रन्दन करने लगी हैं । उच्च स्वर से विलख रही हैं ।

× × × ×

महर्षि शाण्डिल्य—ये द्विज-वृन्द—भगवती पूर्णमासी, आज तो यह वीतराग-समाज भी व्याकुल हो रहा है । महर्षि का मन्त्र-पाठ, विप्रों के आशीर्वाद—गद्‌गद वाणी आज क्या यह सब स्पष्ट होने देती है । भगवती पूर्णमासी ने तो भर लिया अङ्क में मोहन को और इनके कम्पित कर अलकों पर घूम गये । आज भगवती बोल नहीं पा रही हैं ।

वृद्ध गोपियाँ—श्याम सभी का है न ! राम-श्याम को सबका चरणवन्दन करना है, सबका आशीर्वाद लेना है । सब—सब तो दोनों को गोद में उठाकर हृदय से दबा लेती हैं और...कौन समर्थ है व्रज की दशा कहने में !

'कामदा ! धम ! प्रमोद !' कन्हैया को आज एक-एक गो से, एक-एक वृषभ से, एक-एक वत्स से मिलना है ! मिलना तो है इसे शुकों, सारिकाओं, मयूरों, मृगों—पता नहीं किनसे-किनसे । सब-के-सब आ गये हैं द्वार पर । यह जा रहा है—मथुरा जा रहा है । कब आना होगा—कौन कह सकता है । ये कन्हाई के नित्य सहचर—यहाँ तो क्षण भी युग हैं ! पुचकारकर, कण्ठ में बाहु डालकर, थपथपाकर—राम-श्याम सबसे मिल रहे हैं । सबको आश्वासन दे रहे हैं । ये पशु—ये पक्षी, ये कपि—सबकी एक-सी तो दशा है । व्याकुल तो दीखते हैं ये सम्मुख के पादप, ये तुलसी के वीरुध्, ये कुसुम-वल्लरियाँ !

वृद्धा गोपियाँ, सेवक, सेविकाएँ पशु, पक्षी, सभी तो आज व्याकुल हैं । दाऊ-कन्हैया जा रहे हैं । जा रहे हैं दोनों आज—सब से मिलना है । सब को आश्वस्त करना है । सब की व्यवस्था करनी है, कनूँ क्या किसी को भूल सकता है—'मेरी कपिला,को नित्य मोदक देना मैया ! मेरे इस मृग को तू स्वयं खिलाना !' यह तो सब की व्यवस्था बता रहा है । सब को मिलकर आश्वस्त कर रहा है ।

ये बालिकाएँ—कितनी संतप्त हैं ये सब ! ये तो क्रन्दन कर रही हैं । यह झूमा मयूर-मुकुट, यह फहरा पीताम्बर—'अरे, तुम सब इतना क्यों व्याकुल हो रही हो ! मैं कहाँ मथुरा टिक सकता हूँ । तुमसे पृथक् क्या मैं रह सकूँगा ? बहुत शीघ्र—बहुत शीघ्र लौटूँगा मैं । मुझे तो तुम यहाँ समझो ! वन में तो नित्य ही जाता हूँ न ! बस, मैं ऐसे ही झटपट आ जाऊँगा !' किसी के अश्रु पटुके से पोंछे, किसी के हाथों से ही । सब को ही इसने समझाया, आश्वस्त किया । ये बिचारी भोली बालिकायें—ये कितनी सरल हैं । कनू के कोमल अमृत वचन तो हृदय में ही पहुँच रहे सीधे । कितनी विह्वल—कितनो विभोर हो उठी हैं सब !

बहुत शीघ्रता की अक्रूरजी ने, आज अब तक उन्होंने स्नान तक नहीं किया । नित्य ब्राह्म-मुहूर्त में ही नियमपूर्वक वे स्नान करके भगवान् नारायण का ध्यान करने लग जाते हैं और आज तो सूर्योदय हो गया । श्री यमुनाजी पर आगे स्नान करेंगे, यह तो पहले ही सोच लिया उन्होंने । गोपों ने भी कम शीघ्रता नहीं की है; किंतु आज व्रज का जीवन प्राण जा रहा है, आज सभी से मिलना है उसे । व्रज का यह अनुराग-वारिधि—इस स्नेह के अकूल पारावार में अक्रूरजी विस्मित, थकित हो रहे हैं । वे रथ पर बैठकर प्रतीक्षा ही तो कर सकते हैं ।

ये आये राम-श्याम रथ पर ! अभी भी कहाँ रथ चल सकता है ! ये उपनन्द-पत्नी दौड़ती आ रही हैं ! ये महर्षि शाण्डिल्य, ये भगवती पूर्णमासी और ये व्रजेश्वरी—इस मैया की व्याकुलता, इसकी आर्त दशा, आज इसे अपना पता ही नहीं । यह तो उन्मादिनी-सी हो रही है ।

कन्हैया बार-बार रथ से उतरता है भाई के साथ । बार-बार इसे अङ्क में लेकर हृदय से लगाते हैं ये आर्तजन और फिर बैठता है किसी प्रकार । गोप—व्रजेश, सभी समझाने के प्रयत्न में हैं इन सबको । चल रहा है—चल रहा है यह क्रम......।

'चाचा, तुम किसी प्रकार चलाओ!' भरे लोचन हैं आज इस कमल-दल-लोचन के। यह दशा, यह क्रन्दन, यह विह्वल भाव—यह अब और नहीं देखा जा सकता।

'गोविन्द! दामोदर! माधव! श्यामसुन्दर!' ओह, ये दौड़ी आयीं बालिकायें। ये उन्मादिनियाँ—किसी ने रथ के अश्वों की रश्मि पकड़ी, कुछ रथके पहियों से लिपट गयीं, कुछ मार्ग में अड़ गयी हैं। व्रजेश्वर हैं, वृद्ध गोप हैं, स्वजन हैं—यह सब इस समय कौन देख सकता है। आघात लग सकता है, अश्व कूद सकते हैं—यही होता, मोहन का यह वियोग तो न सहना पड़ता।

'मैं आऊँगा! बहुत शीघ्र आऊँगा!' कन्हैया एक-एक की मनुहार करने लगा है रथ से उतरकर। एक-एक के अश्रु पोंछने लगा है और इसके लोचन—स्वयं इसके नेत्र जो भर आये हैं ····

'हाय! मोहन गया! वह जा रहा है रथ!' कहीं इस प्रकार इन घोड़ों के पीछे दौड़ा जा सकता है। ये वृद्धाएँ, ये विप्र, यह मैया और ये बालिकायें—अस्त-व्यस्त वस्त्र, बिखरे केश, फटे-फटे-से नेत्र—ये सब दौड़ रहे हैं, क्रन्दन कर रहे हैं, पुकार रहे हैं।

'नहीं सुना जा सकेगा यह क्रन्दन! नहीं देखी जा सकेगी यह विह्वलता।' तीव्र-तीव्र और तीव्र—अक्रूरजी रथ उड़ाये जा रहे हैं। कन्हैया, दाऊ—दोनों पीछे ही देख रहे हैं। झर रहे हैं दृग्। पटुके भींग चुके—किसे स्मरण है शरीर का।

'गया—रथ गया! वह केतु! वह रथ की धूलि!' जो जहाँ तक मार्ग में पहुँचा, वहाँ कटे वृक्ष की भाँति गिर गया। 'रथ की धूलि भी नहीं दीखती!' चेतना लुप्त हो गयी। मूर्च्छित हो गये सब-के-सब।

राम-श्याम गये! रथ गया! उसके पीछे छकड़े गये, गोप गये, बालक गये। कौन गिने—कौन-कौन गये, कौन रहा। व्रज में रहा कौन? जीवन चला गया—अब यह व्रज की विरह-व्यथित—प्रखर ताप-संतप्त—दावाग्नि-प्रज्वलित-सी भूमि—

कल्प-लतिकाएँ करीर की कँटीली झाड़ियाँ दीखती हैं! सुरपादप जिनकी स्पर्धा के भी योग्य नहीं था, वे फलभार से झुके झूमते नवतरु—शमी और पीलू प्रतीत होने लगे हैं वे! यह चिन्तामणि-चर्चित श्रीसेवित पुण्यधरा—आज तो यह ऊसर से भी गयी-बीती हो गयी है। ये पशु—ये पक्षी—इन पर कामधेनु और उच्चैःश्रवा अब भी निछावर हो सकते हैं; पर—पर गया वह व्रज की शोभा, सुख, उल्लास, श्री का साकार विग्रह! व्रजजन—अब इन व्रजजनों की व्यथा—मन कैसे उसकी छाया का भी स्पर्श कर सकता है।

× × × ×

रथ—वायु वेग से उड़ता रथ, कैसे इस समय छकड़े रथ का साथ दे सकते हैं। अक्रूरजी ने बता दिया है व्रजेश को कि वे कालिन्दी के तट पर यहाँ रथ रोककर स्नान-संध्या करेंगे। 'राम-श्याम के कलेऊ की सामग्री रथ में है ही। पूजा-ध्यान में विलम्ब हो सकता है। छकड़े भी मार्ग से हटकर यहाँ आयें और प्रतीक्षा करें, आवश्यक नहीं है यह। व्रजेश को गोपों के साथ आगे चलना चाहिये।'

'श्रीअक्रूरजी परम धार्मिक हैं। वे कभी कोई भी शङ्काप्रद कार्य कर नहीं सकते। राम-श्याम उनके साथ सुरक्षित हैं। छकड़े रथ से आगे चलें, यह तो सभी प्रकार ठीक है। गोप नहीं चाहते कि उनके पहुँचने से पूर्व ही दाऊ और कन्हैया मथुरा पहुँचें। जब रथ के साथ छकड़े नहीं दौड़ सकते, तब छकड़ों को आगे ही चलना चाहिये। वहाँ नगर के समीप निवास की व्यवस्था भी करनी है। बालकों को पहुँचते ही विश्राम मिलना चाहिये। कंस से सावधान रहना अत्यन्त आवश्यक है। नगर के समीप उपवन में ही छकड़ों को रोककर शिविर खड़े करना अधिक निरापद है।' श्रीव्रजराज गोपों के साथ इस प्रयत्न में हैं कि जितनी शीघ्र हो सके, वे मथुरा के समीप पहुँच जायँ। रथ को आने में कितनी देर लगती है। . . . . . .

श्रीअक्रूरजी ने मार्ग से रथ को तनिक मोड़ लिया है। कालिन्दी के तट पर आकर रथ खड़ा हुआ! दाऊ और कन्हैया दोनों स्वयं उतर पड़े रथ से। बहुत अश्रु बहा है लोचनों से, मुख धोना आवश्यक ही हो गया है। दोनों ने मुख धोकर निर्मल, स्वच्छ, शीतल जल पिया पद्म-पत्रों के पुटक बनाकर और अब तो अक्रूरजी ने रथ को सघन छाया में खड़ा कर दिया है। दोनों पुनः आये रथ के समीप। अक्रूरजी ने आग्रह न किया होता—यह वृक्षमूल, ये हरित मृदुल तृण, इनपर विश्राम करने में जो आनन्द है; पर ये वृद्ध दानाध्यक्ष नहीं मानते। इनका आग्रह है, ये बैठा रहे हैं तो रथ में ही बैठना है।

'आप दोनों कलेऊ कर लें! मैं यहीं जल ला देता हूँ।" लेकिन आज क्या कलेऊ अच्छा लगेगा! रोती-विलखती मैया, दूर गये सखा—ना, कलेऊ की तो इच्छा ही नहीं है। अक्रूरजी को अतिकाल हो रहा है अपने नित्य कर्म के लिये। वे कलेऊ का अधिक आग्रह करेंगे भी नहीं! 'आप यहीं रथ में बैठे रहें और तब तक मैं स्नान कर लूँ! मुझे संध्या करने में कुछ विलम्ब होगा! यदि आप……।'

'चाचा, आप भली प्रकार स्नान करें, संध्या करें और पूजन करें। हम दोनों भाई उकतायेंगे नहीं। आप शीघ्रता न करें!' आज कन्हैया इन श्वेतकेश अक्रूरजी के सम्मुख गम्भीर हो गया है। इसने उनको संकोच करते तो देख ही लिया है। अक्रूरजी को तो यही चाहिये। वस्त्र उतार कर रथ में रख दिये। पदुका और उत्तरीय—पर आज संध्या और भगवान् नारायण का मानसिक पूजन दोनों जल में ही कर लेने हैं। तटपर आकर पूजन करने की सुविधा यात्रा में है नहीं।

अक्रूरजी तो श्रीयमुनाजी में स्नान का संकल्प कर डुबकी लगानेवाले हैं; पर यह कनूँ इस प्रकार बड़े भाई की ओर क्यों देख रहा है? इसके चपल नेत्र तो कुछ कहते हैं। 'वह क्रन्दन करती दौड़ती पगली-सी मैया, वे मूर्ति-से ठिठके महर्षि शाण्डिल्य, वे स्पन्दन-हीना भगवती पूर्णमासी, वे स्नेह की स्निग्ध पुतलियाँ—वह कामदा, नन्दा, कपिला, कृष्ण धर्म, गौरव—बाँ-बाँ, करते पशु, हाहाकार करते-से पक्षी—कितने दुखी थे सब! बहुत देर हो गयी, बहुत देर हुई वहाँ से चले! बहुत परिहास हुआ। वृन्दावन की सीमा यहीं समाप्त होती है। क्या धरा है मथुरा में? यह रथ में बैठना—ऐसे ही तो वहाँ स्वर्ण-पाषाण-भवनों में मन मारकर बंदी-सा रहना होगा! अभी ही तो इन अक्रूरजी ने वृक्षमूल में मृदुल दूर्वादल पर विश्राम नहीं करने दिया! मथुरा के लोग ऐसे ही होंगे! बाबा, गोप, सखा—वे दो-चार दिन में लौट आयेंगे। ये अक्रूरजी डुबकी लगाने जा रहे हैं! हम लोगों ने भी तो स्नान नहीं किया है आज। एक डुबकी और हाँ—यह अच्छा अवसर है! अक्रूरजी—इनकी क्या चिन्ता करनी है। वे भगवान् विष्णु के श्वेत-कृष्ण केश, उनको भी अवसर मिलना चाहिये। अपनी खटपट वे सम्हालते रहें!' पता नहीं यही सब या कुछ और—पर कनूँ के नेत्र कुछ कह रहे हैं। योगमाया अन्तरिक्ष में तनिक चञ्चल हो उठी हैं। शास्त्र इस नन्दनन्दन के लिये कहते हैं—

'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।'

× × × ×

'ये राम-श्याम—वसुदेवजी के ये दोनों कुमार, ये स्नान करने आ गये रथ से?' श्रीअक्रूरजी ने डुबकी लगायी है। वृद्ध पुरुष ठहरे, शरीर की अब अधिक सावधानी रखनी पड़ती है। इस निर्मल शीतल जल में डुबकी लगाकर नेत्रों को भीतर खोल देने से वे स्वच्छ हो जाते हैं। गायत्री का जप करते-करते ही डुबकी लगाकर नेत्र खोले थे जल में उन्होंने। कौन बताये इन वयोवृद्ध नीतिज्ञ दानाध्यक्ष से कि सामान्यतः जल में नेत्रों से भीतर की वस्तुएँ इतनी स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ा करतीं।

'मैं दोनों को रथ पर छोड़ आया था!' झट से मस्तक जल से निकालकर खड़े हो गये अक्रूरजी। 'रथ पर कोई नहीं है, अश्व कोई ऊधम न करने लगें?' मुख घुमाकर देखा उन्होंने रथ की ओर—देखा और फिर नेत्र मलकर देखा—'राम-श्याम तो वे क्या रथ पर बैठे हैं! दोनों इधर ही देख रहे हैं। नहीं—इनके रथ से उतरने के तो कोई लक्षण नहीं। कितने शान्त बैठे हैं दोनों! तब जल में क्या देखा मैंने? मेरा क्या भ्रम ही था? बहुत स्पष्ट तो देखा था इन दोनों को मैंने जल में!' ठीक निश्चय करने के लिये पुनः डुबकी लगाकर देखना आवश्यक ही है।

सिद्ध, चारण, गन्धर्व और ये असुर--असुर भी हाथ जोड़े मस्तक झुकाये--यह समस्त समुदाय स्तुति कर रहा है, गद्‌गद् वाणी से स्तुति कर रहा है। किसकी? ये क्या कमलतन्तु-से भगवान अनन्त हैं सम्मुख! उज्ज्वल स्निग्ध शत-सहस्र ज्योत्स्ना-धवल प्रकाश--सहस्र-फण मौलि, फणों पर प्रदीप्त ज्वाला मात्र-सी मणियाँ और एककुण्डलधर, नीलाम्बरधारी ये भगवान् अनन्त--शेष--ये भी अपने सहस्र मुखों से एकाग्र स्तवन में लगे हैं! इन शेषजी के कुण्डलाकार भोग पर ये जो पद्मपराग-पीत तडित्कान्त कौशेयवस्त्रधारी नवदूर्वादलश्याम आदिपुरुष हैं--समस्त वाणी के परम स्तवनीय ये आदिपुरुष! कमल-किञ्जल्क-अरुणाभ दीर्घ लोचन, प्रलम्ब चतुर्भुज शान्त स्वरूप, परम सुन्दर प्रसन्न वदन, स्मित-शोभित करुणावलोकन, सघन धनुषाकार भ्रूमण्डल, मकर-कुण्डल-भूषित सुन्दर कर्ण, झलमल करते दर्पण-से कपोल, विद्रुम-निन्दक अरुण अधर, दीर्घ स्थूल बाहु, विशाल वक्ष और उसपर श्रीवत्स, शङ्ख-सा रुचिर कण्ठ, पल्लवदल-सा, त्रिवली-मण्डित उदर और उस पर यह मञ्जु-रोमावली, गम्भीर नाभि-हृदय, केहरी-सी कटि, तुङ्ग कटि-तट और यह ज्योतिमयी रत्न-मेखला, कदली-स्तम्भ-सुन्दर ऊरु, मनोहर जानु, परम सुन्दर पद और ये पदतल--इन अरुण मृदुल उत्तुङ्ग पदतलों की शोभा--ये उत्तुङ्ग गुल्फ, पल्लव-कोमल अङ्गुलि-दल, यह नखमणि-चन्द्रिका की छटा! बड़े बहूमूल्य ज्योतिर्मय आभूषण हैं! किरीट, अङ्गद, कटिसूत्र, रत्नमाला, कुण्डल, नूपुर--इन आभूषणों को भी भूषित करनेवाला यह श्रीअङ्ग। पद्म, शङ्ख, चक्र और गदाधारी, श्रीवत्सलाञ्छित कौस्तुभकण्ठ, वनमाली परम पुरुष--सुनन्द, नन्दादि पार्षद, सनकादि मुनिगण, जगत् स्रष्टा पितामह, भगवान् रुद्र, सभी प्रजापति महर्षि, प्रह्लाद-नारदादि परम भागवत--सभी तो स्तवन कर रहे हैं इन पुरुषोत्तम का। श्री, पुष्टि, गिरा, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, जया, विद्या, अविद्या आदि शक्तियाँ और स्वयं मायादेवी भी मूर्तिमती होकर इनकी सेवा कर रही हैं। ये मेरे आराध्य श्रीनारायण!' अक्रूरजी आनन्द-विह्वल हो गये। रोम-रोम खड़े हो गये, नेत्रों से प्रेमाश्रु चलने लगा, वाणी गद्‌गद् हो गयी। बड़ी कठिनाई से कुछ काल में अपने को तनिक स्थिर किया उन्होंने। दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर सिर से अञ्जलि लगाकर भाव-क्षुब्ध कण्ठ से वे सचराचर के परमाराध्य, सुरासुर-वन्दित चरण अपने परम इष्ट *श्रीनारायण की स्तुति करने लगे।*

अक्रूरजी स्तुति कर रहे हैं--परम भागवत, परम ज्ञानी अक्रूरजी स्तुति कर रहे हैं अपने आराध्य की--अपने सम्मुख प्रकट परमैश्वर्यमय सुषमा-सिन्धु आदिपुरुष भगवान् नारायण की। तत्वज्ञान, निर्गुण परमार्थ-तत्व, सगुण-साकार चिन्मय रूप, भू-भार-हरणार्थ उस दयामय के अवतार-विग्रह और उनकी अपार महिमा--पता नहीं क्या-क्या! अक्रूरजी स्तुति करते रहे--चलती रही उनकी स्तुति। भगवान् नारायण--इष्टदेव ने कृपा की, जन्म-जन्म की लालसा सफल हुई। जीवन कृतार्थ हुआ। हृदय में जो अपार भावसागर उमड़ पड़ा है, वाणी उसे कैसे व्यक्त कर सकती है। भगवान् नारायण के गुणों का, महिमा का, कृपा का पार नहीं है और पार नहीं है हृदय की उमंग का, उल्लास का। अब स्तुति क्या विराम ले सकती है। शत सहस्र कल्पों की आयु प्राप्त हो और यह स्तवन का सौभाग्य मिले--स्तुति क्या तब भी तुष्ट होगी? अक्रूरजी करते रहे, करते रहे और सहसा वह शोभा, करुणा, वात्सल्य, ऐश्वर्य की मूर्ति अदृश्य हो गयी। अदृश्य हो गया वह सब वैभव। वाणी स्वतः मूक हो गयी, हृदय तड़पने लगा--जैसे महा सर्प की मणि छीन ली गयी हो।

'दयामय की यह अपार दया! मैं अधम, पामर प्राणी कहाँ इस योग्य था!' अक्रूरजी ने अपने आपको आश्वस्त किया। जल से मस्तक उठाया ऊपर उन्होंने। कुछ क्षण कुछ क्षण ही तो वे उस दिव्य छटा को देख सके हैं! बहुत विलम्ब हो गया! वे कुछ क्षण--पर वहाँ के कुछ क्षण तो पता नहीं कितने छोटे-बड़े होने में समर्थ हैं!

'मध्याह्न समीप है! गोप अब तक पहुँच भी गये होंगे! व्रजेश्वर प्रतीक्षा करते होंगे! सब व्याकुल होंगे। राम-श्याम ने अब तक कलेऊ भी नहीं किया!' पहली बार--जीवन में पहली बार अक्रूरजी अपने नित्यकर्मों में शीघ्रता कर रहे हैं। किसी प्रकार विधि पूरी कर रहे हैं।

विधि ही तो पूरी करनी है अब। जब वह परम फल प्राप्त हो गया--वह इन सब विधियों का लक्ष्य--वह तो प्रतीक्षा कर रहा है, सम्मुख रथ पर बैठा प्रतीक्षा कर रहा है। शीघ्रता से किसी प्रकार पूरा भर कर देना है इन नित्य के कर्मों को।

'चाचा, आप बड़े चकित जान पड़ते हैं! आपके तो चरण ही भूमि पर ठीक नहीं पड़ रहे हैं। आपने कोई अद्भुत वस्तु देखी है? देखी तो है, क्या देखा है? कहाँ देखा? भूमि में, आकाश में या जल में?' कन्हैया ठीक ही पूछ रहा है। अब भी अक्रूरजी को बार-बार रोमाञ्च हो रहा है। अब भी उनके नेत्र भरे-भरे हैं। अब भी उनका शरीर कम्पित, पुलकित हो रहा है। ऐसा बिना कारण तो कैसे होगा।

'भूमि में, आकाश में, जल में जितने भी आश्चर्य सम्भव हैं, वे सब आप में ही तो हैं! मैं साक्षात् आपको देख रहा हूँ। आप विश्वात्मा मेरे सम्मुख हैं, इससे अधिक आश्चर्य मैं और क्या देखूँगा।' अक्रूरजी की वाणी फिर गद्‌गद हो गयी है। नेत्र फिर टप-टप बिन्दु गिराने लगे हैं। पर विलम्ब हो रहा है! रथ के अग्रभाग पर आकर बैठ गये वे। रश्मि हाथ में ली और चुप-चाप अश्वों को हाँक दिया। इस समय अब और बोला नहीं जा सकेगा। कन्हाई पूछे भी क्या, पता नहीं ये अक्रूरजी क्या-क्या कह गये। ये रोने लगे हैं! ऐसी बात पूछी ही क्यों जाय कि कोई रोने लगे। यह बड़े भाई की ओर देखने लगा है। रथ भागा जा रहा है--भागा जा रहा है मथुरा की ओर।

× × × ×

'कन्हैया आया नहीं। रथ का तो अब तक चिह्न भी दिखायी नहीं पड़ता।' गोप आकुल हो गये हैं। बालक दूर-दूर तक मना करने पर भी दौड़ लगा--लगाकर लौट आते हैं। कब के छकड़े यहाँ पहुँच चुके हैं। कितनी देर हो गयी इन वस्त्र-शिविरों को खड़े हुए। अब तो पूरी व्यवस्था हो गयी। वस्तुएँ यथास्थान सुसज्जित हो चुकीं। अब तक राम-श्याम क्यों नहीं आये?

'अक्रूरजी भगवान् नारायण के परम भक्त हैं। उन्हें अपनी उपासना में बहुत विलम्ब लगता है। ध्यान करने लगे और मन एकाग्र हो गया........!' यह सब तो ठीक; किंतु--किंतु बहुत विलम्ब हो गया। मध्याह्न होने को आया। दोनों बालक रथ पर बैठे उदास हो रहे होंगे! कोई है भी तो नहीं उनके समीप। दोनों बड़े संकोची हैं, बार-बार आग्रह करने पर तो कुछ कठिनता से भोजन करते हैं, भूखे होंगे दोनों! अपने-आप वे कलेऊ करेंगे ही नहीं।' बाबा को एक-एक पल युग हो रहा है। उनके नेत्र पथ की ही ओर लगे हैं।

'हम सब-के-सब चले आये! एक छकड़ा तो रथ के साथ रह गया होता।' अब इस पश्चाताप में लाभ भी क्या है। किसे पता था कि अक्रूरजी के नित्यकर्म में मध्याह्न हो जायगा। 'अब एक दो छकड़े जाकर देख आयें!' किसी को पता नहीं रथ कहाँ कालिन्दी-तट पर रुका है। एक अनुमान है--बस। पता हो या न हो, छकड़े तो पुनः जोते जाने लगे हैं। गोप कब तक प्रतीक्षा करें।

'वह धूलि दीख रही है गगन में! वह धूलि मार्ग की ओर से इधर ही आती जान पड़ती है!' एक सूक्ष्मतम रज-रेखा--लेकिन अब कुछ क्षण ही और प्रतीक्षा की जा सकती है।

'रथ आया! कनूँ आ रहा है!' बालक दौड़े और दौड़ तो पड़े हैं ये तरुण गोप। रथ आया--दिखायी पड़ा और आया। घोड़े रश्मि खींच लेने से सहसा खड़े हो गये। यह कूदा दाऊ--यह कन्हाई। बाबा ने, गोपों ने, सखाओं ने अङ्क में भर लिया। यहाँ तो सब काम साथ ही हो जाते हैं।

ये अक्रूरजी अब भी खड़े हैं। ये बोलते नहीं, पर इनके विनीत नयन क्या अपनी बात नहीं कह रहे हैं? कन्हाई सुहृदों के मध्य से, श्रीअक्रूरजी का हाथ अपने कोमल हाथों में लेकर उसने कहा--'चाचा, आप इस रथ के साथ पहले नगर में प्रवेश करें! हम

तनिक विश्राम करके तब नगर-दर्शन करेंगे !' बात तो ठीक है, कंस को सूचना तो मिल जाय कि उसके आमन्त्रित अतिथि पहुँच गये हैं। अब उसे सावधान हो जाना चाहिये।

अक्रूरजी—ये तो व्याकुल हो गये हैं इतना सुनकर ही। मोहन को पाकर फिर छोड़ना भी पड़ेगा—कितनी दुःखद कल्पना है। हाथ जोड़कर भरे कण्ठ से प्रार्थना ही तो की जा सकती है—"नाथ, आपको छोड़कर मथुरा में जाना नहीं चाहता मैं ! भक्त-वत्सल प्रभु, मैं आपका भक्त हूँ, मेरा परित्याग न करें आप ! मेरे घर अपने बड़े भाई, गोपगण तथा सभी बालकों के साथ आप पधारें ! अपने श्रीचरण की रज से इस दीन की कुटिया को पवित्र करें ! इस अनाथ को सनाथ बनायें ! हम गृहस्थ हैं, हमारे गृह में आप पधारेंगे, आपके चरणोदक का सौभाग्य मिलेगा मुझे—वह चरणोदक जिससे पितर, अग्नि, देवता—सब तृप्त हो जाते हैं। जिन श्रीचरणों को प्रक्षालित करके असुरेश्वर बलि महान् यशस्वी हो गये, अपार ऐश्वर्य पाया उन्होंने और आप में ऐकान्तिकी गति प्राप्त की, उन्हीं पाद-पद्मों को प्रक्षालित करने की मेरी लालसा है ! मैं अपने गृह में आपके श्रीचरण प्रक्षालित कर सकूँ ! आपका चरणोदक—वह तो त्रिभुवन को पवित्र करता है। भगवान् शंकर उसी पादोदक को ही तो मस्तक पर धारण करते हैं और सगर के ब्रह्मशाप दग्ध साठ सहस्र पुत्र तो उसके स्पर्श से ही स्वर्ग पहुँच गये। देवदेव, जगन्नाथ, उत्तमश्लोक, पुण्य-श्रवण-कीर्तन, यदुश्रेष्ठ, नारायण ! आपको नमस्कार !" वाणी रुद्ध हो गयी है। स्वर में विवशता है। नेत्र कहते हैं—प्रभो, आप सर्वतन्त्र हैं; किंतु यह एक दीन की प्रार्थना है।

श्याम ने पुनः हाथ पकड़ा स्नेह से अक्रूरजी का। उन्हें रथ के समीप ले आया—'चाचा, आप इतने कातर न हों। मैं अपने अग्रज के साथ अवश्य आप के घर आऊँगा, पर पहले यदुकुल के परम शत्रु को ठिकाने लगा देना है मुझे। जो भी मेरे सुहृद हैं, उनका परम प्रिय, उनकी वाञ्छा-पूर्ति ही तो मेरा एकमात्र कार्य है।'

श्रीकृष्णचन्द्र का आग्रह है—आदेश ही तो है यह। अक्रूरजी ने रथ हाँका विवश होकर 'ये गोप, ये ग्वाल-बाल, ये राम-श्याम उनके घर जायँ, कंस क्या करेगा ?' पर अब कंस का भय कहाँ है उनमें। 'ऐसे भाग्य कहाँ कि इन सुरासुर-अर्चित श्रीचरणों से इतनी शीघ्र इस अधम की कुटी पवित्र हो।' कितने खिन्न-से जा रहे हैं ये। रथ हाँका नहीं जाता, बार-बार पीछे देखते हैं। अब भी कोई पुकार ले···।

'कन्हैया थक गया, बहुत भूखा है।' बाबा को एक ही चिन्ता है। अक्रूरजी के गृह जाकर उन्हें भी कंस के कोप का भाजन बनाना बाबा को स्वीकार हो ही नहीं सकता। 'कितने' कितने साधु, कितने सरल हैं अक्रूरजी। बालकों में किसी ने कलेऊ नहीं किया अब तक। कन्हाई के बिना कौन भोजन करे। सब क्षुधित हैं, मध्याह्न हो गया; अब तो इन सबको भोजन कराना है। मोहन सखाओं के साथ भोजन करने की ही शीघ्रता में है।

—❀⊃❀⊃❀—

नगर-दर्शन

"आर्द्रावलोकितधरापरिणद्धनेत्रमाविष्कृतस्मितसुधामधुराधरोष्ठम् ।
आद्यं पुमांसमवतंसितबर्हिबर्हमालोकयन्ति कृतिनः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥"

—श्रीलीलाशुक

'बाबा, हम सब नगर देखने जाते हैं!' यह चञ्चल कृष्णचन्द्र—ये बालक, गोपों ने, बाबा ने कितना चाहा कि सब भोजन करके तनिक विश्राम कर लें। ये सब इतनी देर यहीं रहे, इतना ही क्या कम है। सबों ने परस्पर सम्मति कर ली है—'बाबा के साथ, गोपों के साथ नगर-दर्शन में आनन्द नहीं आयेगा।' यह मित्र-मण्डल जाने को प्रस्तुत भी हो चुका।

'अरे रुको, तुम्हारे साथ गोपों को कर देता हूँ। मैं ही चलता हूँ, रुको तो!' कन्हैया तो वह हँसता भाग चला। दाऊ, भद्र—सभी लड़के तो जा रहे हैं। बाबा चञ्चल हो उठे हैं।

'हम सब इतने तो हैं!' यह भद्र अपने को किसी गोप से कम चतुर कहाँ मानता है। 'हम अकेले ही जायँगे! किसी को साथ नहीं ले जायँगे!' यह तो स्वर ही कहता है कि 'आग्रह नहीं चलेगा। कोई साथ जाय तो रूठ जायँगे हम लोग।'

'तुम सब कहीं भूल गये मार्ग तो?' मथुरा कोई ग्राम तो है नहीं। इन बालकों का क्या ठिकाना, किधर जायँगे। ये अकेले ही नगर में जायँ—ना, यह तो ठीक नहीं है। गोप प्रस्तुत हो चुके हैं झटपट अपने लकुट लेकर।

'ना, हम अकेले जायँगे! भूलेंगे नहीं, पूछ लेंगे!' यह तोक—यह अब रूठने वाला ही है। बालक माताओं से, घर से दूर हैं। कहीं ये यहाँ रूठ गये, रोने लगे—कौन मनायेगा। कैसे इन्हें शान्त किया जा सकेगा। किसी प्रकार ये उदास न हों, इनका मन लगा रहे—यही क्या कम है। गोपों के पद उठकर भी रुक गये हैं। इन सबों को नगर देख ही आने देना चाहिये।

'कोई धूम मत करना! किसी को चिढ़ाना मत! कोई कुछ दे भी तो मत लेना! किसी के यहाँ से—किसी दूकान से कुछ उठाना मत!' बाबा को पता नहीं क्या-क्या चेतावनी देनी है। बालक अपनी उत्सुकता में 'हाँ' तो कर रहे हैं; पर ये इन बातों को ध्यान में रख सकेंगे?

'शीघ्र आ जाना! विलम्ब मत करना! मथुरा में किसी को अप्रसन्न मत कर लेना!' बाबा का हृदय वेग से उछल रहा है। बालक मानते नहीं—मथुरा—कंस—कहीं कोई कुछ कह न दे इन सबों को। ये चञ्चल कुछ ऊधम न करने लगें!

'हम झट आ जायँगे! दाऊ भैया है न हमारे साथ!' कन्हैया के साथ दाऊ है, फिर डर किस बात का। जैसे दाऊ विश्व में सब से बड़ा, सब से चतुर, सब से महान् है। हाँ है तो—बालकों के लिये तो दाऊ ऐसा ही है।

'हम शीघ्र आ जायँगे!' यह बल भी कह रहा है। बल—इसका स्वर ही कहता है—बाबा, मैं हूँ न, फिर डरने की क्या बात है।

'कृष्ण बड़ा भोला, बड़ा सीधा है। बालक बड़े संकोची हैं। मथुरा में कोई भी परिचित नहीं। अपरिचितों से ये संकोचवश बोल तो सकेंगे ही नहीं, धूम तो क्या करेंगे। उत्सुक हैं सब, देख आने देना चाहिये इन्हें नगर को!' किसी प्रकार बाबा को, गोपों को अपने मनको संतोष देना है। लड़के तो सब दौड़ते-कूदते चले ही गये; किंतु इन तर्कों से क्या संतोष हो सकता है। 'कंस—उसके उद्धत अनुचर'''! कंस ने आमन्त्रण देकर बुलाया है अपने रथ से, उसके आमन्त्रितों का

अनादर करने का साहस किसी को होगा नहीं ! पर'''!' बाबा का हृदय नहीं मानता। गोप ब्रज की ओर ही नेत्र लगाये ठिठके खड़े हैं। अब क्या हो सकता है। प्रतीक्षा ही करनी चाहिये अब तो।

× × × ×

मथुरा—चारों ओर दुर्गम परिखा से घिरी यह यादव-राजधानी! ताम्र के कोष्ठ हैं परिखा के ऊपर और यह स्फटिक का उत्तुङ्ग गोपुर, विशाल स्वर्ण के कपाटों से भूषित, स्वर्ण-तोरण-मण्डित यह नगर-द्वार जैसे आज श्रीकृष्णचन्द्र के स्वागत के लिये ही उन्मुक्त हुआ है।

ये नाना प्रकार के सभा-भवनों की श्रेणियाँ, ये उच्च भवन और इनको घेरकर हरित मेखला की भाँति नगर-परिखा के भीतर यह चारों ओर सुन्दर उपवन। भवनों पर स्वर्ण-कलश जगमग कर रहे हैं, सभी छज्जे एवं छतें तक स्वर्ण की ही हैं और स्थान-स्थान पर वैदूर्य, हीरक, नीलमणि, विद्रुम, पुष्पराग, आदि निर्मल बहुमूल्य रत्नों की ये वेदियाँ और इन वेदियों पर ये पशु-पक्षी आदिकों के लिये रखे अन्न, पक्वान्न—कंस चाहे जितना क्रूर हो, परम धार्मिक यादवकुल अपनी अर्चा के उपहार किसी-न-किसी रूप में तो उस विश्वात्मा को अर्पित करेगा ही। रत्न-वेदियों पर यह बलि-अन्न, यह अन्तर की उसी श्रद्धा का तो उपहार है।

गवाक्षों से सुगन्धित अगुरु का धूम्र निकल रहा है, उनके पास ये कपोत कूजन कर रहे हैं और ये मयूर धूम्र को सम्भवतः मेघ समझकर कुट्टिमों (चबूतरों) पर नृत्य करने में मग्न हैं। सभी आपण, पथ, चत्वर सींचे गये हैं—अवश्य ये दिनमें कई बार सींचे जाते होंगे; अन्यथा इस दिवस के तृतीय प्रहर में क्या ये इस प्रकार सिञ्चित मिलते माल्य, दूर्वाङ्कुर, तण्डुल, लाजा इस मार्ग पर इतस्ततः फैला है। श्यामसुन्दर के प्रवेश से पूर्व ही यह मङ्गल विधान—क्या पता, कोई पुण्यात्मा पुरुष इधर से गया हो पहले भी।

द्वार-द्वार पर जलपूर्ण स्वर्ण-कुम्भ सजे हैं और वे दधि एवं चन्दन से चर्चित हैं; उन पर आम्र-पल्लव सज्जित करके दीपकों को रखा गया है और पुष्प-प्रपूजित हैं ये सब कुम्भ। कदली के स्तम्भों में झूमती धारें, बँधे हुए तोरण, मङ्गल-पट्टिका, और इन द्वारों के ही ऊपर तो सीधे वेणु के उच्च दण्डों में पताकाएँ फहरा रही हैं।

मथुरा—नित्य सुसज्जित, नित्य मङ्गलमयी मथुरा की आज तो कुछ शोभा ही दूसरी है। आज मथुरा का अधिष्ठाता आया है यहाँ! पुरी का कोना-कोना, अणु-अणु जैसे जगमग करने लगा है। 'आज वसुदेव-पुत्र आयेंगे!' मथुरा-निवासियों ने कितने उल्लास से सजाये हैं अपने गृह। कितनी उमंग से ये पथ परिष्कृत हुए हैं और ये मङ्गल-विधान—उन अनदेखे कुमारों के लिये कितना स्नेह, कितना आदर लिये मङ्गल-विधान प्रातः से बार-बार नूतन होते रहे हैं।

कंस सम्राट् सही, भय एवं शक्ति से ही तो उसका शासन है। कैसे उसे यह स्वागत-सम्भार कभी प्राप्त होता। वह भीरु—वह शङ्कालु कंस—वह क्रूर क्या इसे सह पाता! वह तो निकलता है तो गृहों के गवाक्ष तक बंद करा देते हैं उसके अनुचर। उसे सब से भय ही लगा रहता है। लेकिन आज—आज तो वह प्रेमघन आ रहा है। आज तो वह आ रहा है, जिसके रूप, शील, आकर्षण, माधुर्य को सुनते-सुनते प्राण आतुर हो गये हैं। पिपासा प्रदीप्त हो उठी है। आज उसे देखा जा सकेगा, वह आयेगा! मथुरा आज भी यदि भरपूर न सजे तो कब सजेगी।

वे महाभागा ब्राह्मण-पत्नियाँ—धन्य हैं वे, जिन्होंने राम-श्याम को देखने का सौभाग्य प्राप्त किया वन में ही। वे जब उस अपरूप रूप-माधुरी का वर्णन करने लगती हैं—नेत्र धारायें चलाने लगते हैं, शरीर पुलकित हो जाता है, कण्ठ रुद्ध हो उठता है। वे तो स्मरण से ही विह्वल-सी रहा करती हैं। कितने आग्रह, कितने अनुरोध से बार-बार नगर-नारियों ने उनसे पूछा है उसी बात को और वे सब तो जैसे थकती ही नहीं। इतने दिनों से जिसका वर्णन सुना है, आज वह आयेगा! आज उसे नेत्र देख सकेंगे।

'अक्रूर आये! रथ आ रहा है!' एक बार खलबली-सी हुई प्राणों में। उत्सुकता-चञ्चल पद ठिठक गये—'रथ तो खाली ही है!' लाजा, दूर्वाङ्कुर, अक्षत की कुछ मुट्ठियाँ पथपर उत्सुकता में

ही बिखर गयी थीं। 'वे आ गये हैं! नगर द्वार से बाहर उद्यान में व्रजराज ने शिविर डाला है।' प्राणों की प्रतीक्षा और—और आतुर हो उठी है!

'आये—राम-श्याम आये! अपने सखाओं के साथ वे राजपथ से आ रहे हैं!' पता नहीं किसने कहाँ, किससे कहा; पर कहा—बात विद्युत्-गति से नगर में फैल गयी। नगर में दौड़-धूप मच गयी। 'मार्ग पर—राजमार्ग पर!' भला, इतना स्थान राजमार्ग पर दोनों ओर कैसे निकले कि पूरा नगर एक ही स्थान पर एकत्र होकर दर्शन कर ले। पथ के दोनों ओर जन-समुदाय का ठट्ट ही तो लगना है।

दधि, अक्षत, पुष्प, माल्य, चन्दन, दूर्वांकुर और उपहार—ये अर्चा के उपहार तो कब से प्रतीक्षा कर रहे हैं। कोई भोजन कर रहा था, उसने शीघ्रता में हाथ धोये, पूजन थाल उठाया और भागा। कुछ ने तो उत्तरीय कंधे पर भी डालने का अवकाश नहीं पाया। बेचारी नारियाँ—सबसे अधिक उत्सुकता उन्हीं में तो है, उन्हीं के श्रवण तो विप्र-पत्नियों के संवाद से पवित्र होने का सौभाग्य पा सके हैं। नारियाँ—अब क्या उनके प्राण अपने वश में हैं? अधर-राग नेत्रों में, अञ्जन अधरों में या एक नेत्र में अञ्जन और दूसरे में अधर-राग, एक कान में कुण्डल के स्थान पर नूपुर—वे चाहे जैसे दौड़ पड़ी हैं। 'कहीं वे आगे न चले जायँ!' भोजन का थाल पड़ा रह गया है, आधे अङ्गों में उबटन लगा है, स्नान के लिये बैठकर जल डाल लिया था ऊपर—वस्त्र आर्द्र ही हैं—कौन देखे यह सब। कौन सोचे इन बातों को। देखने का वह परमपात्र, वह सौन्दर्यघन, हृदयहारी आ गया है! उसे देखना है—अभी देख लेना है! कोई सोते से उठकर दौड़ी, कोई बच्चे को दूध पिलाते से पृथक् करके। राजपथ के दोनों ओर के छज्जे झूम उठे। पथ पुरवासियों की पंक्ति से मण्डित हो गया।

× × × ×

राम-श्याम आ रहे हैं! बड़े भाई के साथ, सखाओं से घिरा यह मोहन आ रहा है! नीलाम्बरधारी, स्वर्ण-गौर दाऊ और सजल-जलद-नील, पीताम्बर-परिधान यह कान्ह। मयूर-पिच्छ का मुकुट, कपोलों पर झलमल करते रत्न-कुण्डल, घुँघराली स्निग्ध अलकों में उलझे सुमन, विशाल भाल पर चन्दन-खौर के मध्य गोरोचन-तिलक, सघन कुटिल भ्रूमण्डल, अरुणाभ सुदीर्घ चपल-लोचन, स्मितशोभित बिम्बाधर, मञ्जुचिबुक, कम्बुकण्ठ, सुपुष्ट स्कन्ध, केयूरकङ्कणमण्डित विशाल बाहु, पीन भुजदण्ड, उन्नत वक्षपर लहराती वनमाला, केहरी की-सी क्षीण कटि पर रत्नमेखला, सुकुमार लाल-लाल चरण, मत्तगयन्द-से झूमते, घूमते, सखाओं के साथ कुछ बोलते, हँसते, इधर-उधर चपल-चपल देखते ये राम-श्याम आ रहे हैं। ये शोभा के सिन्धु, लावण्य की प्रतिमा-से भुवन-मोहन गौर-कृष्ण और इनके ये सखा—ये सब-के-सब बालक—एक-से अलंकृत, एक-से चपल और इनका यह सौन्दर्य—वृद्ध सृष्टिकर्ता के कर इतनी शोभा का सृजन कर सकते हैं? काम—मन्मथ—वह तो इनकी छाया का लेश पा जाय तो पता नहीं क्या-से-क्या बन जाय! पर बालक कुछ चकित-से, संकुचित-से दीखते हैं। यह नवीन नगर, इतने अपरिचित लोग—फिर भी कितने प्रसन्न, कितने चञ्चल, कितने मञ्जु हैं सब।

बालक सचमुच कुछ संकुचित-से हैं। कन्हैया अक्रूरजी के साथ रथ से उतरा—कितनी उमंग से दौड़े थे ये हृदय से लगाने। कनूँ ने भी तो उसी आतुरता से भुजाएँ फैला दीं। क्यों—पता नहीं क्यों भद्र को लगा—उसका ही कनूँ है यह? कुछ अद्भुत, कुछ विचित्र, कुछ ऐसा जो कहा न जा सके, समझ में न आये—पर कुछ लगता है हृदय में। कान्ह कुछ दूसरा-सा अद्भुत-सा लगता है। भद्र को, तोक को, सबको ही कुछ प्रतीत हुआ—होता है! यह व्रज नहीं है, मथुरा है न! श्याम यहाँ आकर कदाचित् कुछ गम्भीर हो गया है। इस अपरिचित स्थान में आने का ही कुछ प्रभाव होगा। कुछ है—ऐसा, जो हृदय से जाता नहीं है। यह अलंकृत, रत्नप्रदीप्त, ऐश्वर्यमय नगरी, ये उपहार लिये उत्सुक पुरवासी—बहुत कुछ देखने को है; पर मन जैसे उचटा-उचटा-सा है इन सबों का।

"यह रूप-राशि! यह शोभा का कल-कल झरता महासागर! धन्य हैं गोप, कृतार्थ हैं गोप-बालाएँ, सौभाग्यशाली हैं व्रजजन! पता नहीं कितने महापुण्य किये होंगे उन्होंने कि व इन राम-श्याम को निरन्तर देखते हैं! इनके समीप रहते हैं!" जन-जन पुलकित हो रहा है। प्रत्येक हृदय आशीर्वाद की वर्षा कर रहा है; पर प्रत्येक कण्ठ बाष्प-मूक हो चुका है। छज्जों से, मार्ग के दोनों ओर से अक्षत, कुसुम, लाजा, दूर्वाङ्कुर, चन्दन की अनवरत वर्षा हो रही है। बालकों के अङ्गों पर केसर-मिश्रित चन्दन के पीत एवं दधि के उज्ज्वल बिन्दु बढ़ते जा रहे हैं। अलकों में सुमन उलझते ही जा रहे हैं।

महामाणिक्य, अद्भुत रत्न-पच्ची, मूल्यवान् वस्त्र—पता नहीं क्या-क्या करों में लिये लोग हाथ फैलाये पथ के दोनों ओर उत्सुक खड़े हैं--'ये कुछ ले लें! कुछ स्पर्श कर दें! पूछ ही लें कि यह क्या है। एक बार देख लें!' नीराजन के मञ्जु थाल सार्थक हो रहे हैं! उपहार कमल-लोचनों के दृष्टिपात से परिपूत होते जा रहे हैं! सबको तुष्ट करते, नेत्रों में ही सबका सत्कार लिये ये राम-श्याम सखाओं-से घिरे चले जा रहे हैं।
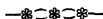
रजक-मोक्ष

"नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्ति नेच्छन्त्यसाधवः।
तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥"

—भागवत १० । ६८ । ३१

कन्हैया है ही विचित्र रुचि का, कोई युग-युग की साधना से पुनीत अर्चा करते-करते श्रान्त होता है और जैसे इसे पता ही नहीं हो और कहीं बलात् माखन-चोरी करेगा और मना करने पर चिढ़ायेगा भी। ये बेचारे नागरिक-जन—ये मथुरा के सम्पन्न व्यवसायी, कितनी उत्सुकता से, कितनी श्रद्धा से दोनों हाथों पर अपने बहुमूल्य उपहार आगे किये नेत्रों में अपार अनुरोध लिये कब-से खड़े हैं। श्यामसुन्दर यदि स्वीकार कर ले उनके ये उपहार—कृतार्थ हो जाय उनका श्रम। लेकिन यह कनूँ—यह तो किसी के उपहार को स्पर्श ही नहीं करता। क्या है इन वस्तुओं में—व्रज में, नन्दभवन में ऐसे वस्त्र, ऐसे रत्न वन्दी, गायक, सेवक राशि-राशि समय पर निछावर पाते रहे हैं। इन तुच्छ वस्तुओं में क्या आकर्षण है कि इनकी ओर ध्यान दिया जाय। कोई गोपकुमार कौतुक से भी तो नहीं देखता इनकी ओर।

देखने की क्या यहाँ कोई वस्तु नहीं? है क्यों नहीं, वह क्या सम्मुख से एक रङ्गकारों का समूह आ रहा है। ये रजक रङ्गकार—कितने सुन्दर, कितने बहुमूल्य, कितने सुरङ्ग वस्त्र हैं इनके समीप। वस्त्रों को सुसज्जित करके ये स्वर्ण-यष्टियों पर सजाये जा रहे हैं। ऐसे वस्त्र कहीं लपेटे जा सकते हैं। इनमें तो रेखा तक नहीं पड़नी चाहिये। कितने आकर्षक हैं ये वस्त्र, कन्हैया अभी से आगे देखने लगा है। इसकी दृष्टि—ओह, ये वस्त्र इसे बहुत अच्छे लगे जान पड़ते हैं।

ये रजक—यह इनका प्रधान, कितना गर्विष्ठ है! यह किस अहंकार से चला आ रहा है। ये सम्मान्य पुरजन मार्ग के दोनों ओर खड़े हैं, ये वृद्ध द्विजजन अर्चा के उपहार लिये हैं और यह रजक—क्या हुआ जो यह वस्त्र धोता नहीं, रँगता है। रङ्गकार सही—है तो धोबी ही; पर इसका यह घमंड, यह अपने पूरे दल-बल के साथ राजपथ से अकड़ता चला आ रहा है। न द्विजों के प्रति सम्मान, न किसी का संकोच। इसका यह भाव तो गोप-कुमारों तक को अच्छा नहीं लगा जान पड़ता। ये सब बालक—ये किस प्रकार देख रहे हैं राम-श्याम की ओर—ये तो जैसे कहते हैं—'दाऊ भैया, कनूँ, देख तो यह कितना धृष्ट धोबी है! यह तो किसी की ओर देखता तक नहीं। ऐसा अकड़ता आ रहा है, जैसे हम सबों को ही एक ओर होकर इसे मार्ग देना पड़ेगा! तू इसे तनिक फटकारेगा नहीं?'

रजक—क्या हुआ जो वह रजक है। महाराज कंस का अपना रङ्गकार वह। महाराज उसे मानते हैं, फिर क्यों किसी का संकोच करे वह और सो भी आज—आज तो उसके पास स्वयं महाराज के वस्त्र हैं। इन्हीं वस्त्रों को महाराज कल के महोत्सव में धारण करके रङ्गशाला में विराजेंगे। इस अवसर पर धारण करने के लिये महाराज ने ये सर्वोत्तम बहुमूल्य वस्त्र विशेष रूप से रँगने के लिये दिये थे उसे। आज वह राज-वस्त्र पहुँचाने जा रहा है, दूसरों को चाहिये कि उसके लिये मार्ग छोड़ दें। ये वस्त्र—महाराज के इन वस्त्रों में तनिक भी मोड़, नन्हीं-सी रेखा भी नहीं पड़नी चाहिये। वस्त्रों के प्रति उसकी सावधानी—सीमातीत सावधानी—अन्ततः इसी प्रकार तो वह इन समस्त मथुरा के लोगों को दिखा सकता है कि उसकी क्या महत्ता है, कितना प्रभाव है उसमें।

ये वस्त्र—रङ्गकारों के करों की स्वर्ण-यष्टियों में लहराते, जगमगाते ये रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र। वस्त्र तो बहुत सुन्दर हैं। चक्रवर्ती सम्राट्-से प्रभावशाली मथुरा-नरेश जिन वस्त्रों को कल के महोत्सव में धारण करना चाहते हैं—कल के महोत्सव में, मथुरा-नरेश के लिये कल के महोत्सव-सा महान् तो कदाचित् राजसूय का महाभिषेक भी नहीं और उसमें वे इन वस्त्रों को धारण करना चाहते हैं—वस्त्रों के आकर्षण का इससे अधिक परिचय और क्या होगा। इससे अधिक—इससे भी अधिक—यह भुवन-मोहन कन्हाई इन वस्त्रों की ओर देखने लगा है, इनकी ओर आकृष्ट हुआ है—सुन्दर, पवित्र, भाग्यशाली वही तो है, जिसे यह लेना चाहे!

× × × ×

"भाई, तुम्हारे पास ये बड़े सुन्दर वस्त्र हैं! धुले हुए, स्वच्छ, मनोहर रंगों से सजे हुए!" वस्त्र हैं—उत्तम वस्त्र हैं और उन्हें लेने की इच्छा भी है तो फिर बचा क्या? श्याम कुछ चाहे और न मिले, कुछ दूसरे की भी वस्तु होती है—कहाँ सीखा, कहाँ, समझा है इसने। सभी तो इसकी इच्छा के पूर्व ही अनुरोध करते हैं कि यह उनकी वस्तु स्वीकार कर ले। कोई वस्तु अच्छी लगे तो माँग लेने में संकोच कैसा। वस्त्र अच्छे हैं यही तो—कौन जाने मथुरा-नरेश के कल के महोत्सव-मनोरथ की कामना का यहीं से कदन प्रारम्भ नहीं करना है इसे। जो भी हो—वस्त्र सुन्दर हैं, पहनने की इच्छा है और यह कन्हाई माँग रहा है—"देखो न, ये सब लोग हम लोगों का सत्कार कर रहे हैं! तुम भी इन वस्त्रों में से हमारे अनुरूप वस्त्र हमें दे दो! डरो मत, तुम यदि हमें वस्त्र दोगे तो तुम्हारा परम मङ्गल होगा—इसमें तनिक भी संदेह की बात नहीं है!"

'संदेह की बात नहीं—परम मङ्गल होगा!' वस्त्र भी देने हैं तो अकेले आप को ही नहीं—पूरे मण्डल को। ऐसे वस्त्र—इतने सुन्दर वस्त्र भला, सखाओं को, बड़े भैया को पहनाये बिना कन्हाई कैसे पहिन लेगा। उसे सब वस्त्र चाहिये भी कहाँ। यही—उसे पीताम्बर, दाऊ को नीलाम्बर, सखाओं को उनके वस्त्रों के अनुरूप—बस, इतना ही तो।

'वस्त्र चाहिये!' यह धोबी तो विचित्र ही ढंग से बोलने लगा है। इसके सुरा-घूर्णित लाल-लाल नेत्र—कर्कश कण्ठ और यह तो डाँटने लगा है—"अपना मुख तो देखो पहले! ऐसे ही वस्त्र पहनकर क्या नित्य जंगल-जंगल, पर्वतों में घूमते रहे हो तुम सब? ये वस्त्र तुम्हारे ही योग्य हैं? बड़े धृष्ट हो तुम लोग! महाराज के वस्त्रों की कामना करते हो! भाग जाओ यहाँ से! मूर्खो, यदि जीने की इच्छा हो तो फिर कभी ऐसी प्रार्थना किसी से मत करना! तुम लोगों जैसे उद्धत लोगों को नरेश मृत्यु-दण्ड तक दे सकते हैं! यह न भी हो तो तुम्हें वे पिटवायेंगे, कारागार में डाल देंगे और तुम्हारी समस्त सम्पत्ति छीन ली जायगी!'

'अरे, यह रजक—यह नीच इस प्रकार बड़बड़ाता जा रहा है और इस राजपथ पर, इतने लोगों के सम्मुख—यह कनूँ को इस प्रकार डाँट रहा है!' नहीं, यह सहा नहीं जा सकता। भद्र अब एक शब्द नहीं सह सकेगा। उसका स्वर्ण-गौर मुख अरुणाभ हो गया है। यह बढ़ा, यह चला—यह उठा लकुट!

'हूँ!' बड़ा अच्छा किया! कन्हाई की एक हुंकार, दाहिना हाथ उठा और बस—रजक का सिर तो भुट्टे-सा धड़ से टूट गिरा भूमि पर और कूदने लगा। यह रक्त से लथ-पथ हो गयी है श्याम की हथेली! बालक प्रसन्न हो गये हैं। आगे, पास दौड़ आये हैं और मोहन—कमल-सुन्दर मुख पर रोष की यह मन्द अरुणिमा—कितनी छटा, कितनी सुषमा है इस रोष में भी।

"बाप रे!" ये भागे उस प्रधान रजक के अनुचर। कहाँ वस्त्र, कहाँ स्वर्ण-यष्टियाँ! प्राण बच जायँ—यही बहुत है। बिचारे अपने आभूषण, कटि में बँधी स्वर्ण-मुद्राएँ, सब फेंककर भागे जा रहे हैं। फेंकते जाते हैं—'कहीं ये बालक पीछा न करें! दौड़ायें नहीं किसी वस्तु के लिये उन्हें! हाथ से—केवल हाथ से उनके प्रमुख का मस्तक उड़ा दिया........ओह!' बहुत सुना है उन्होंने और आज यह प्रत्यक्ष........नहीं, प्राण नहीं देना है उन्हें। काल! मृत्यु—भागे जा रहे हैं वे। कहाँ?

किधर ? जहाँ जा सकें, जिधर प्राण बचें ! दूर—दूर भाग जाना चाहते हैं वे। 'पुकारें ? महाराज को पुकारें ? ना, कण्ठ से शब्द ही नहीं निकलेगा ! कहीं पुकार सुनकर ये बालक पीछे दौड़ पड़ें........?

× × × ×

वस्त्र—रंग-बिरंगे, चमकते धुले वस्त्र—इन्हीं वस्त्रों को तो कन्हाई माँग रहा था। अब ये बिखरे पड़े हैं। धोबी भाग गये—उनका भागना—उनका भय—बालक ताली बजाकर हँस पड़े। पुरजन—किसी ने तनिक भी खेद का भाव नहीं दिखाया। 'ये रजक—ये गर्वोद्धत धोबी—अच्छी शिक्षा मिली इन्हें।' जैसे सबके हृदयों में श्रद्धा का एक ज्वार ही और उमड़ पड़ा है।

'भैया, देख तो ! ये वस्त्र तुझे कितने सुन्दर लगते हैं !' श्याम ने नीले-नीले वस्त्र चुनकर बड़े भाई को सजाया। हाथ में लगा रक्त तो उसने पहले ही पोंछ दिया इन्हीं वस्त्रों में से एक वस्त्र में। अब तो वह स्वयं अपने लिये वस्त्र चुनने लगा है।

'तू तो रंग-बिरंगा हो गया है !' तोक ने चिढ़ाया मधुमङ्गल को। सचमुच इसने कितने अटपटे रंगों के वस्त्र एक साथ लपेट लिये हैं।

'तू इन वस्त्रों में उलझकर गिर जायगा !' यह तोक तो इस प्रकार इन वस्त्रों में लिपट गया है कि कैसे चलेगा, यह सोचा ही नहीं इसने। सभी की तो यही दशा है—वस्त्र ही अटपटे हैं। सीधी बात—कछनी बाँधी और पटुका कंधे पर धरा—अब ये टेढ़े-सीधे वस्त्र—पर बड़े सुन्दर वस्त्र हैं। कनूँ इन्हें लपेट रहा है तो सुन्दर ही हैं। सब अपनी समझ से ठीक ही पहन रहे हैं। अब वस्त्र उनके आकार के अनुरूप नहीं—ठीक सजे नहीं, यह वे जानें भी कैसे।

'कितने भोले, कितने सरल, कितने सुन्दर हैं ये बालक !' वृद्ध वायक—स्नेहमय यह दर्जी बढ़ आया है किसी प्रकार भीड़ में से आगे। 'ये नगर-जन—ये लोग देख-देखकर मुस्कराते हैं, इन सरल बालकों की सहायता नहीं करते !' वृद्ध का स्नेह नेत्रों से झरने लगा है।

'आप आज्ञा दें तो मैं इन वस्त्रों को ठीक कर दूँ !' वह कतंरी लाया है, सूचिका लाया है, कौशेय-सूत्र लाया है। 'इसी बहाने इन्हें सम्मुख खड़ा रखकर देख सकेगा—स्पर्श कर सकेगा वह !' हृदय स्नेह-मग्न हो रहा है उसका।

'हाँ बाबा, तू मेरे वस्त्र ठीक कर दे ! झटपट कर दे !' झटपट कर दे !' यह तोक आ खड़ा हुआ वायक के सम्मुख। 'इस मधुमङ्गल के मत करना भला !'

'मैं आप सबके वस्त्र ठीक किये देता हूँ ! अभी किये देता हूँ !' नेत्रों में जल भरा है, शरीर का पता ही नहीं, पर हाथ चल रहे हैं—शीघ्रता से चल रहे हैं। कतंरी, सूचिका, वस्त्रों के मोड़—पता नहीं क्या-क्या कर रहा है वह। ये शत-सहस्र बालक—सभी को शीघ्रता है, सभी को पहले अपने ही वस्त्र ठीक कराने हैं। सबके ही वस्त्र तो एक साथ ठीक हो गये ! कैसे हो गये—पूछने की बात नहीं है। अन्तरिक्ष में कनूँ के श्रीचरणों के पीछे वह जो कोई महाशक्ति चला करती है—.......

वस्त्र ठीक हो गये—ये शेष वस्त्र, यह रजकों का छोड़ा हुआ द्रव्य, आभूषण—इनको कौन पूछे। जो वस्त्र ठीक लगे, शरीर पर आये, चुन लिये गये—अब इनको कौन देखे। बालकों को इनसे क्या सम्बन्ध। वे तो अभी इन पर चरण रखते आगे चले जायँगे। उनके चरणों के पाँवड़े बन जायँ ये—इतना बड़ा भाग्य भी क्या सहज प्राप्त हुआ करता है।

'बाबा, वस्त्र ठीक हो गये न ?' बाबा—श्याम इस वृद्ध वायक को आज बाबा कह रहा है। वायक—दर्जी—वात्सल्य का सागर उमड़ आया है उसके अन्तर में। वह कहाँ सुनता है, कहाँ देखता है कि उसका कार्य समाप्त हो चुका। यह कार्य कभी न समाप्त होता ! ये श्याम-गौर—ये इसी प्रकार उसके पास, उसके सम्मुख खड़े रहते। वह इनके वस्त्र ठीक किया करता—सदा, सदा, वह बस, ऐसे ही वस्त्र ठीक करता रहा—ये खड़े रहते !

'बाबा !' कन्हैया और क्या दे सकता है इस प्रेम के धनी को। किस मुख से इससे कहे वर माँगने के लिये और अब है ही क्या जो देने को रह गया है। वृद्ध वायक--वह तो इस लेन-देन की सीमा से परे, बहुत परे पहुँच चुका है कब का।

'बाबा, वस्त्र ठीक हो गये !' वस्त्र ठीक हो गये--कन्हैया का कण्ठ भी स्निग्ध हो चुका है। 'अब हम जायँगे !' ना, यह बात मुख से निकल नहीं सकेगी। कहाँ जायगा ? कैसे जायगा वह ? वृद्ध ने जिन रज्जुओं में उसके श्रीचरण आबद्ध किये हैं--'आगे जायगा राजपथ पर ! अग्रज, सखाओं के साथ आगे जाना है वह। वृद्ध के लिये--वृद्ध के सम्मुख से--नहीं, वहाँ से तो अब कहीं नहीं जाना है उसे ! वहाँ से कहीं भी जाया जा भी तो नहीं सकता !' 'बाबा, तुम मेरा सारूप्य प्राप्त करो और जब तक लोक में रहो, परम ऐश्वर्य, अतुल सम्पत्ति, व्याधिहीन सबल शरीर, अव्याहत स्मृति एवं अबाध इन्द्रिय-शक्ति प्राप्त हो !' बाष्प-रुद्ध मोहन के कण्ठ का यह वरदान कोई सुने या न सुने, वे जगत् की अधिष्ठात्री भी तो मस्तक झुकाकर स्वीकार कर ही चुकीं। और अब आगे भी तो जाना ही ठहरा पथ पर; आगे-आगे-जा रहे हैं ये राम-श्याम सखाओं के मध्य। इनके ये नव-वस्त्र-भूषित श्रीअङ्ग, ये रंग-बिरंगे कौशेय के बहुमूल्य वस्त्र--ये नगर-दर्शन करने जा रहे हैं।

सुदामा माली

"भक्तिस्त्वयि स्थिरतया भगवन् यदि स्याद् दैवेन नः फलितदिव्यकिशोरवेशे ।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान् धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः ॥"

—श्रीलीलाशुक

'मेरे प्रभु—मेरे आराध्य पधारेंगे !' यह मालाकार सुदामा, आज कितने वर्षों पर सफल होगी प्रतीक्षा ! कितने वर्षों पर आज अँधेरे-अँधेरे ही वह कुसुम-चयन के लिये उठा। वे दिन—हाँ, वे भी दिन थे—'सुदामा की माला !' मथुरा में किसी को महोत्सव करना हो, किसी को भगवान् नारायण की विशेष आराधना करनी हो—सुदामा का स्मरण पहले किया जाता। कई दिन पहले उससे अनुरोध—हाँ, अनुरोध ही किया जाता। उसकी बनायी वनमाला के बिना क्या श्रीविग्रह का शृङ्गार पूरा हो सकता है ! सुदामा की माला—जैसे हृदय ही गूँथ दिया करता है वह। ऋतु, सौन्दर्य, सुरभि, सौकुमार्य—पता नहीं क्या-क्या ध्यान रखता है वह। कला—माल्य-मन्थनकला है और उसके कलाकारों का अभाव कहाँ है; किंतु—किंतु सुदामा की जराजीर्ण कोमल अँगुलियाँ, सुमन जैसे उसके स्पर्श से ही खिल उठते हैं। उसकी कला—कौन स्पर्धा कर सकता है इस वृद्ध से !

दिन गये—वे दिन गये जब मथुरा में भगवान् नारायण को घर-घर सोत्साह अर्चा समर्पित होती थी, जब भव्य उपकरणों से मन्दिरों की झाँकी मानव के नेत्र-हृदय के कलुष को नित्य अपवारित किया करती थी। महाराज उग्रसेन—पर उनके स्थान पर बलात् कंस राजा हुआ ! पिता को बन्दी करके सिंहासन पर बैठनेवाला—वैसे ही उसके अनुचर। सुदामा की कला सुप्त हो गयी, वर्षों से प्रसुप्त। 'वह वृद्ध—बहुत वृद्ध हो चुका !' बहाना तो उचित ही है; पर सत्य—सत्य क्या छिपा है किसी से, सुदामा की अँगुलियाँ किसी के विलास का प्रसाधन प्रस्तुत करेंगी ? सुदामा की माला—वह तो श्रीहरि—उन परमाराध्य का ही उपहार है। उद्धत, गर्विष्ठ कंस सिंहासन पा ले—हृदयासन कहाँ मिला है उसे किसी का और सुदामा—यह माली सुदामा—नारायण को छोड़कर किसी मानव के कण्ठ में इसकी माला पड़ेगी ? सुदामा ने सुमनों से ही विदा ले ली। सुमनों से विदा—सुमनों से ही क्रीड़ा करने वाली अँगुलियाँ विरक्त हो गयीं उनसे। जिसके प्राण पुष्पों के स्वर में बोलते हों—वह फूलों से विरक्त हो गया !

'मेरे आराध्य पधारेंगे !' वर्षों—कल्प-के-कल्प बीते लगते हैं उसे तो और आज इन दीर्घ कल्पों के पश्चात् जब वह कुसुम चुनने उठा ! आज कुसुम-चयन करना है ! माल्य-मन्थन करना है ! कुसुम—चिर-पितृ-वियोगी शिशु जैसे आज पिता को पाकर आनन्द-विह्वल हो उठे हों। उसके उद्यान में आज सम्भवतः लतिकाओं, वीरुधों, तरुओं तो क्या, क्षुपों—तृणों तक में पुष्प भर उठे हैं। पत्तों से भी अधिक पुष्प और पत्र—हाँ, ये अरुण, मृदुल हरित सुचिक्कण किसलय भी तो लगेंगे माल्य-मन्थन में।

राशि-राशि पुष्प और इन सुरङ्ग, सुरभित, सुकुमार पुष्पों के मध्य सुदामा—माली सुदामा जैसे पुष्प मन्दिर में बैठा इन पुष्पों का अधिष्ठाता देवता ही है ! कुसुम, किसलय, तुलसीदल, नव दूर्वाङ्कुर—सुरभित पत्र, दल, पता नहीं क्या-क्या अपने चारों ओर सजाये बैठा है वह। माल्य—कुसुम-स्तबक—पता नहीं, क्या-क्या बनाना है उसे। उसकी अँगुलियाँ व्यस्त हैं, नेत्र निर्झर बने हैं, रोम-रोम पुलकित है, वह आज वर्षों पर पुनः माल्य-मन्थन में लगा है।

सुदामा की सुप्त कला—नहीं, नहीं—यह कला क्या उसकी है! इतनी अनुपम मालाएँ बना भी सका है वह कभी। आज—आज ही तो उसके आराध्य आयेंगे! आज तो कला की अधिष्ठात्री भी हंस की पीठ से उसकी अँगुलियों के आसन पर आ विराजी हैं अपने को सार्थक करने के लिये। वह माल्य-ग्रन्थन कर रहा है—माल्य, स्तबक—पर कितने? पता नहीं कितने, वह बना रहा है, बनाता जा रहा है। कितने का प्रश्न कहाँ है—आज आराध्य आयेंगे! वे त्रिलोकेश्वर स्वयं पधारेंगे उसके यहाँ! हाँ, पधारेंगे, अवश्य पधारेंगे और वह रंग-बिरंगी, नाना प्रकार की मालायें, चित्र-विचित्र स्तबक बनाये ही जा रहा है। उसे संतोष ही नहीं हो रहा है किसी भी अपनी कृति से।

× × × ×

'कन्हैया कहाँ जा रहा है?' पूछे कौन। सखाओं को तो नगर देखना है। राजपथ से ही चला जाय, यही कहाँ आवश्यक है। श्याम इस वीथी से मुड़ पड़ा है, इधर भी तो देखना है कि क्या है यहाँ। नगरवासी—वे भी तो अनुगमन ही कर सकते हैं। ये परम स्वतन्त्र—भला, इन दोनों बन्धुओं से क्या पूछें वे और क्या अनुरोध करें? कंस—क्रूर कंस—अभी-अभी उसका मुख्य रजकार इन्होंने मार दिया है। उसके वस्त्र अब भी इनके अङ्गों पर हैं। सब तो महाभाग वायक—उस प्रेम स्निग्ध वृद्ध दर्जी की भाँति निर्भय नहीं हो सकते। आशङ्का, भय—पर इन भुवन-मोहन का साथ छोड़ना भी तो शक्य नहीं। हृदय इन्होंने चुरा लिया। अब पद तो स्वतः इनके पीछे चलते हैं।

'कनूँ, इस भवन में जा रहा है! यहाँ कुछ मिलेगा!' मधुमङ्गल की भङ्गी चपल हो रही है। वह भोग लगाने की ताक में है।

'यह तो दूसरे भवनों से बहुत छोटा, बहुत साधारण है! कौन रहता होगा इसमें!' भद्र अपनी ही उधेड़बुन में है। 'कन्हैया तो सचमुच इस भवन में ही जा रहा है। बिना पूछे, बिना सूचना दिये इस भवन में—किसका भवन है यह?'

'सुदामा, धन्य हो तुम!' नगर-वासियों के हृदयों में आज माली की वे श्रीनारायण के श्रीविग्रह के वक्षपर लहराती मालायें जैसे मूर्त हो गयी हैं। 'जो हमारे उपहारों की ओर देखता तक नहीं, हम जिसकी झाँकी के लिये इस प्रकार पीछे लगे हैं—हम क्या, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि युग-युग के तप से जिसकी एक झाँकी चाहते हैं, वह स्वयं तुम्हारे यहाँ आया है! तुम उसे लेने मार्ग तक भी नहीं गये और वह तुम्हारे भवन—सीधे तुम्हारे भवन पहुँचा है।' पता नहीं क्या-क्या भाव उठ रहे हैं अन्तर में। अब तो द्वार पर ही प्रतीक्षा करनी है। इस छोटे गृह में कितने लोग आ सकेंगे? भीतर जाकर भीड़ कर देने से लाभ? बाधा भी तो पड़ेगी इनके आमोद में।

श्याम—कन्हैया वह तो सीधे भवन में ही चला आया है। जो उसे कब से—कितने समय से हृदय में लिये पूजता है, जो उसी के लिये प्रातः से व्यस्त बैठा है, उसका भी भवन पूछना है? उसे भी क्या परिचय की आवश्यकता रह गयी है? श्याम तो सीधे भवन में आया है और कितना मुग्ध-सा देख रहा है। यह माली—यह तो देखता ही नहीं। यह तो अपने ही कार्य में तन्मय है। 'माली!' गूँजी मेघ-गम्भीर सुधा-सिंचित वाणी।

'माली!' इतनी सुन्दर मालाएँ—इतने सुन्दर स्तबक—सभी बालक उत्सुक हो गये हैं।

'माली!' सुदामा अस्त-व्यस्त उठा। 'प्रभो!' कितना विह्वल कण्ठ है उसका। वह तो उठा, खड़ा हुआ और दण्ड की भाँति भूमि पर गिर पड़ा।

'माली!' दाऊ और श्याम आगे बढ़ आये हैं माली के समीप। यह मोहन उसके मस्तक पर अपने अभय कर फेर रहा है।

'स्वामी!' माली तो जैसे अब चैतन्य हुआ है। उसके नेत्रों की वारिधारा ने श्रीचरण धो दिये हैं—'पर, पर आराध्य आये हैं और वे अब तक खड़े ही हैं!' सुदामा शीघ्रता से उठा, उसने आसन बिछाया और इस आसन पर विराजने का उसे अनुरोध कहाँ करना है।

अर्घ्य, पाद्य, आचमन और—'जब दयामय ने इतना दया की है तो इस कंगाल के यहाँ जो सम्भव है····!' कन्हैया से भला, इतनी अनुनय की क्या आवश्यकता है। यह तो सदा से ऐसे ही नैवेद्य के लिये क्षुधातुर है और ये सुमधुर फल, ये परम सुस्वादु कन्द—बालकों ने आनन्द से भोग लगाया। ताम्बूल, चन्दन और मालाएँ—आज ही तो मालाएँ सफल हुई। आज माल्य-मन्थन कृतार्थ हुआ। सुदामा ने सुन्दर, सुरभित मालाएँ पहिनायी अपने हाथों और स्तवक दिये करों में।

'आज मेरा जन्म लेना सफल हुआ! प्रभो, आपने इस अधम पर कृपा की, आपके पधारने से मेरा कुल पवित्र हो गया! सभी देवता, समस्त पितर मुझ पर प्रसन्न हुए आज! सर्वेश, आप ही जगत् के परम कारण हैं। यहाँ पृथ्वी पर तो आप प्राणियों के कल्याण के लिये, उनके अभ्युदय के लिये अवतीर्ण हुए हैं। जगदात्मा, सर्व-सुहृद्, दयामय, आपकी किसी के प्रति विषम दृष्टि भला, कैसे हो सकती है; पर जो आपका भजन करते हैं, उनपर आपका विशेष अनुग्रह होता ही है। स्वामी, मैं आपका सेवक हूँ! मुझे आज्ञा दें! आप किसी को कोई आज्ञा दें, यही आपका परमानुग्रह है! आपके आज्ञा-पालन का सौभाग्य प्राप्त हो दीनबन्धु!' बद्धाञ्जलि, गद्गद-कण्ठ सम्मुख खड़ा सुदामा तो स्तुति ही करने लगा है। यह स्तवन—ये बालक तनिक चकित-से हो रहे हैं।

'माली, हम तो तुम्हारी मालाओं के लिये ही आये!' कन्हैया के अधरों पर यह उज्ज्वल स्निग्ध स्मित। मालाएँ—माली सुदामा की मालाएँ—सुदामा तो आनन्दपूर में प्रवाहित होने लगा है। वह मोटी-मोटी वैजयन्ती वनमाला पहना रहा है पुनः सबको। उसकी ये मालाएँ—धन्य हैं ये।

'माली, हम बड़े प्रसन्न हुए! बड़ी सुन्दर हैं तुम्हारी मालाएँ! माँगो तो—तुम क्या लोगे? बिना संकोच के माँगो!' जो इतने स्नेह से, इतनी श्रद्धा से मालाएँ दे, उसे क्या उनके बदले में कुछ न मिलेगा! कोई अकड़ता, आँखें दिखाता तब तो बात दूसरी थी। फिर तो उसका सिर ठीक कर देना ही उचित रहता है; पर यह माली—सखाओं ने स्नेहपूर्वक श्याम की ओर देखा। कितना चतुर, कितना उदार है उनका कनूँ। देने के लिये अभाव क्या है। माली चाहे जो माँगे, लौटकर बाबा से कह ही भर तो देना है।

'आपके श्रीचरणों में मेरा अविचल अनुराग हो! जो आपके हैं—आपके भक्त हैं, उन्हीं से—केवल उनसे ही मेरा सौहार्द हो और समस्त प्राणियों के प्रति हृदय में सदा दयाभाव बना रहे!' क्या माँगा इस माली ने? यह तो कन्हैया के चरणों पर गिरकर अञ्जलि फैलाकर दीन की भाँति गिड़गिड़ा-सा रहा है। कनूँ जब स्वयं देने को उद्यत है—माँगता क्यों नहीं यह?

'अच्छी बात!' श्याम का स्वस्थ कण्ठ माली के प्राणों को परितृप्त कर गया। 'मैं अपनी ओर से तुम्हें बल, दीर्घायु, कान्ति, यश और सम्पत्ति देता हूँ—ऐसी सम्पत्ति जो तुम्हारे वंश में बढ़ती ही रहेगी!' मोहन ने हाथ रखा पुनः वृद्ध माली के मस्तक पर।

माली—वह तो तन-मन की सुधि ही भूल गया है। वह जिस आनन्द-सिन्धु में निमग्न है—पर बाहर नगरवासी आकुल हो रहे हैं। अब बाहर चलना चाहिये। कन्हैया ने दाऊ की ओर देखा। दोनों भाई सखाओं के साथ भवन से बाहर निकले। माली—महाभाग माली, वह तो इस समय शरीर-संसार दोनों से बहुत ऊपर है—बहुत ऊपर।

—❀—❀—❀—

कुब्जा पर कृपा

"मधुरैकरसं वपुर्विमोर्मथुरावीथिचरं भजामहे ।
नगरीमृगशावलोचनानां नयनेन्दीवरवर्षचर्षितम् ॥"

—श्रीलीलाशुक

'सुन्दरी, कौन हो तुम ?' यह कन्हाई है न, बड़ा चपल है यह । बेचारी कूबरी, पता नहीं कहाँ जा रही है । इतनी शीघ्रता से, इतनी उतावली में, इसी राजपथ से यह निकल जाना चाहती है इस नटखट के समीप से । इसकी यह कूबर से झुकी कटि—इसे तो देखकर सभी का जी चाहता है इसे चिढ़ाने को और फिर कान्ह—पता नहीं हाथ में स्वर्ण-थाल सम्हाले, रत्न-खचित पात्रों में विविध रङ्गों के अङ्गराग सजाये यह कहाँ चली जा रही है । कहीं भी जा रही हो, मोहन को तो चिढ़ाना है । पर यह क्या चिढ़ा रहा है ? सुन्दरी—सुन्दरी तो है यह । सुन्दर सुडौल कमल-मुख और यह युवावस्था—यदि कूबरी न होती........। श्याम तो पूछता ही जा रहा है—हँसता हुआ पूछता ही जा रहा है—"तुम किसकी हो ? किसके लिये ये अङ्गराग ले जा रही हो ? हमें बताओ तो ! तुम्हारे अङ्गराग तो बड़े सुरभित दीखते हैं, हम लोगों को यह अङ्गराग दो ! इससे तुम्हारा तत्काल कल्याण होगा !"

कुब्जा—किसकी बताये वह अपको ? दासी ही तो है—दासी की भला, क्या सत्ता—लेकिन यह विश्वविमोहन नव-जलधर-सुन्दर रूप, यह मादक बंक विलोकन, यह रस-स्निग्ध हास्य और यह स्वर—यह स्वर तो सीधे प्राणों को उन्मद बनाता भीतर—भीतर ही प्रविष्ट होता जा रहा है । कुब्जा—दासी कुब्जा, उसके हृदय में इस घनश्याम ने जो अपार रस-वर्षा कर दी है अभी—अभी और वह भी अकल्पित, अतर्कित, सहसा—कुब्जा के प्राण उसमें स्नात हो गये हैं । वह इस आग्रह—इस अनुरोध, इस सम्मान को सम्हाल सकेगी ! उसकी भी वाणी से रस फूट पड़ा है—"सुन्दर, मैं कंस की दासी हूँ और मेरा नाम त्रिवक्रा है !"

त्रिवक्रा—रूपके अनुरूप ही है नाम । बालक हँस पड़े हैं । मोहन मुस्करा रहा है; पर कुब्जा—आज इस रस-सागर ने उसे रसमय कर दिया है ! यह अनुलेपन चाहता है न, कुब्जा यह सौभाग्य छोड़ कैसे दे—"मेरा कार्य है अङ्गराग प्रस्तुत करना और मेरे हाथों का लगाया अङ्गराग भोजपति कंस को अत्यन्त प्रिय है !"

कंस की दासी है यह । अङ्गराग बनाना इसका कर्तव्य है और कंस को इसी के हाथ का लगाया अङ्गराग प्रिय है ! बेचारी इसी से इतनी शीघ्रता में जा रही थी । यह भी तो सम्भव नहीं कि स्वयं श्यामसुन्दर को अङ्गराग लगा दे और कंस के पास किसी दूसरे को भेज दे । यह उद्धत धोबी थोड़े ही है कि इससे बलात् अङ्गराग छीना जाय । न जाय कंस के समीप तो वह दुष्ट पता नहीं क्या दण्ड दे । कितनी सरल है यह !

"आपको छोड़कर भला, यह अङ्गराग और कहाँ सार्थक हो सकता है !" अरे, यह तो कंस की बात ही नहीं सोचती । अपना स्वर्ण-थाल लिये यह श्यामसुन्दर के सम्मुख ही आ गयी है । अपने हाथ से सजायेगी वह यह श्याम श्रीअङ्ग ।

"पहले भैया को !" दाऊ की ओर संकेत भर कर दिया मोहन ने और यह कस्तूरिका की सुरभि से पूर्ण श्याम अनुलेपन, कितना भव्य लगता है यह स्वर्ण-गौर दाऊ के श्रीअङ्गों पर। इसमें यह रक्तचन्दन-कुङ्कुम का मण्डन—कुब्जा की सुरुचि है ही प्रशंसनीय। श्याम के अतसी-कुसुम-कलेवर पर इसने गोरोचन केसर के पीत और कर्पूर-मलयज के उज्ज्वल अङ्गरागों से जो मण्डन किया है—भोजपति को यदि इसी दासी के करों का अनुलेपन प्रिय है तो आश्चर्य की बात क्या है! ये राम-श्याम—आज ये सब कंस के ही भाग पर अधिकार करने पर तुल गये हैं। भोजराज के वस्त्र ले लिये और अब यह उनका अङ्गराग—पर ये अपने अङ्गों के वर्णों से भिन्न अङ्गरागों में कितने सुन्दर हो गये हैं! कुब्जा—यह कूबरी तो एकटक—अनिमेष देखने लगी है इस दिव्य छटा को।

× × × ×

"तू चञ्चल मत होना भला !" क्या करने जा रहा है यह चपल। इसने अपने चरणों के द्वारा कुब्जा के दोनों पैरों के अग्रभाग दबा क्यो दिये ? दाहिने हाथ से ठुड्ढी पकड़ी और—तड़-तड़, कड़-कड़—एक हल्का झटका—लो !

'ओह !' आश्चर्य से कुब्जा थकित हो गयी। लोग स्तम्भित-से देखते रह गये। 'कूबर भाग गया ! कन्हैया ने सीधी कर दिया इसे !' बालकों ने सबसे पहले ताली बजायी और उनका प्रसन्न कोलाहल गूँज गया।

'तुम्हारा तत्काल कल्याण होगा !' नगर-वासियों ने मोहन की उस वाणी पर तब क्या इतना ध्यान दिया था ? तत्काल कल्याण—यह जन्म की कूबरी—एक पल, कदाचित् उससे भी कम—यह सीधी खड़ी है उनके सम्मुख। इन श्रीकृष्णचन्द्र ने तनिक स्पर्श किया इसे और यह—यह तो जैसे कोई सौन्दर्य की स्वर्ग-दिव्य सुन्दरी हो गयी इसी पल में। ये सीधे समान अङ्ग, यह रूप राशि—पुरवासियों ने हाथ जोड़े और मस्तक झुका दिया।

× × × ×

'ओह !' कुब्जा—अब कुब्जा कहाँ रही है वह ! पता नहीं कहाँ गया कूबर। लेकिन क्या शरीर ही बदला है ? वह स्पर्श—वह आधे पल का स्पर्श—उस स्पर्श ने शरीर के साथ पूरा अन्तः—समूचा भीतरी भाग बदल दिया। वह स्पर्श—वह स्पर्श—कुब्जा के प्राण जैसे जल से बाहर निकाले मत्स्य की भाँति तड़पने लगे हैं। यह रूप—यह त्रिभुवन-सुन्दर रूप—जैसे विश्व के अणु-अणु में यही रूप बस गया है। यह नीलसुन्दर—बस यही ! नेत्रों के सम्मुख जैसे और कुछ है ही नहीं।

"वीर, अब तुम यहाँ इस प्रकार क्यों खड़े हो ? प्यारे, आओ ! आओ चलो; हम घर चलें ! मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। पुरुष-श्रेष्ठ, तुम्हारे लिये मेरा चित्त उन्मथित हो रहा है, मुझपर कृपा करो ! आओ—घर चलो !" ये इतने नगरवासी, मथुरा का यह राजपथ—कुब्जा कहाँ देखती है यह सब। इसने तो कन्हाई के पटुके का छोर पकड़ लिया है और उसे अपने घर चलने का आग्रह करती खींचने लगी है।

'ये सखा, ये पुरजन और यह दाऊ भैया—यह क्या कर रही है ?' श्याम-सुन्दर ने देखा बड़े भाई की ओर, सखाओं की ओर और खुलकर हँस पड़ा। यह अच्छी रही—"सुन्दरी, तुम इतनी शीघ्रता मत करो ! तुम बहुत अच्छी हो ! बहुत अतिथि-वत्सला हो ! हम पथिकों पर तुम्हारा अपार अनुराग है ! तुम लौटो अब अपने घर ! मैं आऊँगा तुम्हारे यहाँ—अवश्य आऊँगा ! तुम घर तो चलो !"

'मैं आऊँगा—अवश्य आऊँगा !' कुब्जा को इससे अधिक सुनना भी कहाँ है। 'ये आयेंगे ! उसे आज्ञा-पालन करना चाहिये। वह दासी है—इन श्रीचरणों की दासी है अब तो और आज्ञा-पालन करना ही उसका कर्तव्य है, धृष्टता उचित नहीं—दुराग्रह—कहीं ये रूठ गये तो ? वह आज्ञा मानेगी—आज्ञा मानेगी वह !

'धन्य है यह दासी !' नारियों के भी तो हृदय है। 'ये कोटि-काम-कमनीय, मन्मथ-मन्मथ—और इस दासी को इनका स्पर्श मिला, सम्मान मिला !' हृदय पता नहीं कैसा हुआ जा रहा है। वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे हैं, केश-बन्ध स्वतः खुल गये हैं, आभूषण अङ्गों से अपने आप गिरते-से जा रहे हैं और ये सब तो जैसे मूर्तियाँ हों इन स्वर्ण-मणि-भित्तियों पर चित्रित की हुई।

ये मथुरा के सम्मान्य जन—अब साहस कुछ बढ़ गया है। 'वायक ने इनके वस्त्र ठीक किये, सुदामा ने माला पहनायी, कुब्जा दासी ने अङ्गराग लगाये—ये महामहिम, पर कितने सरल, कितने उदार हैं ! इनसे भला, संकोच क्या !' कन्हैया से भी कोई संकोच करे—कोई ताम्बूल खिला देता है, कोई मालाएँ पहना देता है, कोई चन्दन लगा जाता है और कोई नीराजन लिये प्रस्तुत है। राम-श्याम की अर्चा चल रही है। ये मन्द-मन्द चलते जा रहे हैं अन्तर के अनुराग की आराधना स्वीकार करते।

धनुर्भङ्ग

"शरणागतवज्रपञ्जरे शरणे शार्ङ्गधरस्य वैभवे ।
कृपया धृतगोपविग्रहे कियदन्यन्मृगयामहे वयम् ॥"

—श्रीलीलाशुक

'कल धनुर्यज्ञ है । गोप-गण कंस के उस महाधनुष की बड़ी प्रशंसा करते थे । बड़ी कठ तपस्या करके उसे वरदान के रूप में पाया है कंस ने । धनुष—कैसा होगा वह धनुष ?' कन्हैया मन में कुतूहल जगा है या यह कृष्णचन्द्र कंस की आशा की उस महारीढ़ को अभी ही देख-पर लेना चाहता है, कौन कह सकता है ।

'महाराज कंस के लिये वह धनुष अत्यन्त सम्मान्य है । उसे रखने के लिये एक विशा भवन बनवाया है उन्होंने, शतशः शूर अहर्निश सशस्त्र प्रमादहीन होकर उसकी रक्षा करते हैं । स्व महाराज कंस अपने करों से उसकी नित्य पूजा करते हैं । अन्ततः वे इसी धनुष को लेकर तो दिग्वि जयी हो सके हैं । उनके अतिरिक्त कोई उसे उठाने में समर्थ नहीं ! कल धनुर्याग है—कल वह धनु मल्ल-भूमि में लाया जायगा । उसकी विधिवत् अर्चा होगी । महाराज कंस चुनौती देंगे कि को उठा तो ले धनुष को—कोई नहीं उठा सकता । स्वयं महाराज उठायेंगे धनुष, उसपर प्रत्यञ्च चढ़ायेंगे और......!' पुरवासियों की वाणी आगे कहने में काँपती है । 'पता नहीं किस भाग्यही की आयु समाप्त हुई है । कंस धनुष उठायेगा—चढ़ायेगा, शर-संधान करेगा और........और व कहता है कि इस महाधनु को बलि भी तो चाहिये ! कोई-न-कोई उसके बाणों से विद्ध होगा— पता नहीं कौन, किसी को अनुमान तक नहीं हो पाता । बेचारा मुमूर्षु—वह दर्शक ही तो रहता है— एक चीत्कार और कोई भी दर्शक भूलुण्ठित होने लगेगा । कंस—उसके असुर अनुचर अट्टहा करेंगे ! प्रशंसा करेंगे चाटुकार निर्मम नरेश के लक्ष्यवेध की । कल—कल धनुषयज्ञ है, पता नह किसकी आयु समाप्त हो रही है । कंस की राजाज्ञा घोषित हो चुकी है—उपस्थित होना ही पड़ेग इस महायज्ञ में । उपस्थित न होने का अर्थ पता नहीं क्या लगाये वह कुटिल—और......।' भय से मुख पीत हो उठता है । कौन कह सकता है कि कल का लक्ष्य—बलिपशु वह नहीं हो जायगा !

'हूँ !' श्याम की यह हुंकृति, यह दृष्टि—यह हुंकार ही मानो अभयदान देती गूँज गयी है 'कहाँ है वह धनुष ?' उस नरहत्या से अपवित्र धनुष को महायज्ञ से पूर्व ही सम्भवतः पवित्र कर देना है इसे । धनुष न सही, रक्षक भीतर न जाने देंगे तो यह उसका भवन ही देख लेगा । पुर- वासियों से पूछता चला जा रहा है । 'भवन—बस, भवन बता दो ! धनुष है कहाँ ?' धनुष है तो देखा क्यों नहीं जा सकता । सखा उत्कण्ठित हो रहे हैं । हाँ, धनुष तो देखना ही है ।

× × × ×

'यह विशाल भव्य भवन—वह क्या धनुष रखा है ! धनुष तो द्वार के सम्मुख ही रखा है विशाल प्राङ्गण में । वज्र वेदिका पर यह पुष्प-पूजित, सिन्दूर-चर्चित, रत्न-खचित महाधनु ! कितना चित्र-विचित्र, कितना रंग-बिरंगा, कितना सुन्दर और कितना विशाल है यह !' बालक द्वार के समीप बढ़ आये हैं । अद्भुत है यह धनुष !

'कनूँ, तू देख तो सही ! तुमसे उठेगा यह ? तुमसे न उठे तो मैं आऊँ ।' पुरजन कहते थे कि यह किसी से नहीं उठता । अन्ततः यह अपने गिरिराज से भारी तो है नहीं । भद्र को लगता है कि बारी-बारी से इसे उठाकर देखा तो जाय, क्यों नहीं उठेगा । 'दाऊ भैया तो उठा ही लेगा !

सब मिलकर उठायेंगे !' उठाना है—सब मिलकर तो उठा ही लेंगे; पर यह कन्हैया ही यदि उठा ले, यही सबसे सुकुमार है। पीछे झगड़ेगा कि मैंने ही उठाया—पहले यही उठा देखे तो अच्छा।

'डरना मत, ये सब राक्षस ही हैं !' ये इतने सशस्त्र प्रहरी—ये सब तो बड़े ध्यान से द्वार की ही ओर देख रहे हैं। ये यदि धनुष न उठाने दें ? श्याम कहता है कि राक्षस हैं सब। काले-काले, मोटे-मोटे, बुरे-बुरे-से—अवश्य सब राक्षस ही हैं। 'राक्षस—बड़े दुर्बल होते हैं राक्षस तो। देखने में पहाड़-जैसे और उन्हें तो यह कनूँ ही चुटकी से मसल दे....। ये राक्षस हैं—खूब चिल्लायेंगे, पूरी धमाचौकड़ी करेंगे, घूरेंगे, गुर्रायेंगे—बड़ा आनन्द आयेगा ! राक्षसों से कौन डरे।' बालकों ने एक बार प्रहरियों की ओर देखा। सब-के-सब हँस पड़े। उपेक्षा, कौतुक-विनोद का यह उन्मुक्त हास्य।

'अरे, ठहरो ! रुको ! कहाँ आते हो तुम सब !' ये चिल्लाये प्रहरी। 'द्वार तक, द्वार से कुछ भीतर तक सही—पुरजन द्वार तक आकर महाराज के इस धनुष को आदरपूर्वक मस्तक झुका जाते हैं। ये बालक—बड़े सुन्दर बालक हैं ये। द्वार से कुछ भीतर आकर धनुष देख लें सब, क्या बिगड़ता है। कौतूहल शान्त हो जाय इनका; पर यह क्या, ये तो भीतर दौड़े आ रहे हैं !'

'ठहरो ! रुको ! छुओ मत !' शस्त्र उठाये प्रहरी झपटे। ये सब धनुष को छूना चाहते हैं। ओह ! यह श्यामकिशोर तो धनुष के समीप खड़ा हो गया वेदिका पर। बड़े धृष्ट हैं सब। इन्हें भगा देना होगा।

कन्हैया तो पहुँच भी गया धनुष के पास, यह उठाया इसने धनुष अपने बायें हाथ से। यह वेदिका पर नोक टेककर झुकाया इसने और लो—ज्या चढ़ गयी। अब तो यह उठाकर ज्या को खींचकर देख लेना चाहता है, कितना खिंच सकती है यह।

बालक ताली बजाते हैं, किलकते हैं ! प्रहरी आश्चर्य-चकित, आतङ्क-स्तब्ध झपटे आ रहे हैं, द्वार पर पुरजनों की भीड़ स्तब्ध-सी देख रही है। एक निमेष—एक पल ही तो। अच्छा खेल है यह भी। कन्हाई कूदा वेदी पर, धनुष उठा, ज्या चढ़ी, और उठाकर खींचने लगा है यह—एक निमेष ही तो लगा है इनमें और अब........... ।

एक भीषण शब्द—कोई महाग्रह जैसे भूमि पर गिरा हो ! सहस्र-सहस्र वज्रपात हुए हों ! दिशाएँ पूरित हो गयीं ध्वनि से। प्रतिध्वनि ने गगन गुञ्जित कर दिया। भवन की भित्तियाँ हिल उठीं। पक्षी चीत्कार करते गगन में व्याकुल भागने लगे हैं। पशुओं ने बन्धन तोड़ लिये हैं और वे दौड़ रहे हैं इधर-उधर चिल्लाते हुए। सभी चौंके, कुछ गिरते-गिरते बचे। प्रहरियों के हाथों से शस्त्र गिर पड़े।

यह कनूँ—इसने तो धनुष के दो टुकड़े फेंक दिये हैं वेदिका पर। यह पड़ा है कंस के गर्व का भग्न मेरुदण्ड। हो चुका धनुर्यज्ञ। श्याम तो इस प्रकार देख रहा है कभी सखाओं की ओर और कभी धनुष की ओर, जैसे कहता हो—'यह तो बहुत जीर्ण था। देखने में ही इतना मोटा था यह ! कितनी शीघ्रता से टूट गया, ऐसा क्षीणसत्व धनुष !'

× × × ×

'क्या हुआ ?' इतना भीषण शब्द ! कंस का मुकुट गिर पड़ा राजसभा में। भय के कारण शरीर काँपने लगा ! 'हुआ क्या ?' श्रीकृष्ण मथुरा में आ गये हैं, यह क्या भूलने की बात है ? पता नहीं क्या कर रहे हैं वे बालक !

'धनुष टूट गया !' यहाँ धनुष के प्रहरियों का तो जैसे रक्त सूख गया। 'पता नहीं महाराज क्या करेंगे !' स्तब्ध रह गये सब एक क्षण। 'पकड़ो। बाँध लो इन्हें ! भाग न जायँ ! इन्हें पकड़ ले चलो !' हाथ से गिरे शस्त्र उठाकर दौड़े वे सब द्वार की ओर। 'कोई बालक कहीं भाग गया—महाराज क्षमा नहीं करेंगे।'

'अच्छा !' यह दाऊ कूद गया अपने अनुज के समीप। यह उठा लिया इसने धनुष-खण्ड। 'बड़े दुष्ट हैं ये सब ! कनूँ को पकड़ना चाहते हैं !' दाऊ के नेत्रों में आयी अरुणिमा और अब ले धड़ाधड़ ! यह कन्हैया ने भी बड़े भाई का अनुकरण किया, इसने भी उठाया धनुष का दूसरा खण्ड।

'कनूँ ! कनूँ !' भद्र, वरूथप, सुबल—अब भला, कौन शान्त रह सकता है। ये उठे बालकों के हाथ के लकुट। 'ये दुष्ट राक्षस—ये उनके कन्हाई पर प्रहार करने चले हैं !'

'नहीं ! तुम सब तनिक खड़े तो रहो !' कन्हैया पुकारता है, रोकता है—'ये राक्षस ही तो हैं ! मैं अकेला ही बहुत हूँ और यह दाऊ भया.......।' हाँ, यह दाऊ भी मना करता है। यह तो नेत्रों के संकेत से ही रोकता है। दोनों अकेले ही इस धूम का आनन्द लेना चाहते हैं—बड़े वैसे हैं........पर दाऊ मना करता है न ! बालक लकुट उठाये प्रतीक्षा कर रहे हैं। कोई राक्षस राम-श्याम की मार से बचकर आगे बढ़ा—दोनों ओर ये सहस्रशः लकुट उसकी कपाल-क्रिया करने में एक क्षण नहीं लगा सकते।

'क्या हुआ ?' वहाँ कंस अभी चर ही भेजने की सोच रहा था और पहुँच गया एक रक्त से लथपथ प्रहरी—किसी प्रकार—किसी प्रकार भाग सका है—'महाराज, बलराम—श्रीकृष्ण ने धनुष तोड़ डाला ! रक्षकों को मार रहे हैं वे उन्हीं धनुष-खण्डों से !' कैसे मार रहे हैं—यह तो इसके अङ्ग ही बताये देते हैं।

'धनुष तोड़ डाला ! मार रहे हैं !' कंस तो जैसे भय से उन्मत्त हो जायगा। 'सेनापति ! दोनों चले न जायँ !' कहाँ इतना अवकाश है कि बताये कि कितनी सेना भेजी जाय। राम-श्याम—उनके लिये तो पूरी सेना भी पर्याप्त होगी, कंस का हृदय कहाँ यह मानता है।

सेना—इतनी शीघ्र जितनी भी सेना प्रस्तुत हो सकती है, उसे ही लेकर तो सेनापति को जाना है। स्वयं सेनापति को जाना है और फिर सेनापति जायँ या और कोई—धनुष-खण्ड लिये राम-श्याम दण्डधर यमराज की भाँति भवन में आघात जो कर रहे हैं ! आघात, रक्त की धारा, चीत्कार और बस। शवों की ढेरी ही बढ़नी है वहाँ। उस भवन-प्राङ्गण में भरे हुए सैनिक—बाण, भुशुण्डी, शतघ्नी—इनके उपयोग को अवकाश नहीं। भल्ल, मुद्गर, शक्ति, परिघ, खड्ग—हाथ उठे तो कोई शस्त्र प्रयुक्त हो। खड्ग कोष से आधा भी नहीं निकला, भल्ल उठ भी नहीं सका और मस्तक का कचूमर हो गया। फट्—फट्, भड़-भड़—आज ये गोरस के घट फोड़ने के चिर अभ्यस्त कर सिर फोड़ने में जुटे हैं। कहाँ ? किधर—विद्युत्-गति से ये कूदते, उछलते—कोई कहाँ देखे इन्हें। भवन-प्राङ्गण शवों से पट गया है। रक्त की धारा चल रही है जल निकलने के मार्गों से।

'भैया !' कन्हाई ने देखा इधर-उधर ! हाथ का रक्त टपकता धनुष-खण्ड फेंक दिया। 'अब इसकी क्या आवश्यकता है। कोई भी असुर तो नहीं दीखता यहाँ !' कोई कराहता भी नहीं है, खड़ा तो क्या होगा। दाऊ ने भी धनुष-खण्ड भूमि पर गिरा दिया।

रक्त से लथपथ वस्त्र—अलकों से रक्त की बूँदें टपक रही हैं और ये बालक—कितनी उमंग से अङ्कमाल दी है इन्होंने राम-श्याम को। इनके वस्त्र ही कहाँ अछूते हैं। ये कंस के वस्त्र—अब इन्हें यहीं विसर्जित कर देना चाहिये। अपने वस्त्र ही ठीक हैं। अपनी कछनी और पटुके के ऊपर ही तो सबों ने ये वस्त्र पहन लिये थे। अच्छा ही हुआ—अपने वस्त्र रक्त पड़ने से बच गये हैं। सबने रजक से छीने वस्त्र वहीं उतार फेंके। भवन-कक्ष के निर्मल जल से भली प्रकार प्रक्षालन हुआ अङ्गों का और स्नान-से किये निकले ये सब भवन से बाहर।

बिखरी अलकें, कटि में कछनी, कंधों पर पटुके—अङ्गराग, माल्य, अलकों के सुमन—सब विसर्जित हो चुके भवन में ही; वही वेष, हास्य—वही मन्द-गयन्द गति, वही चपल-चपल निरीक्षण—जैसे कुछ हुआ ही नहीं। जिस प्रकार आये थे शिविर से वैसे ही तो लौटे जा रहे हैं।

'कंस की उमड़ती-घुमड़ती अपार वाहिनी; वे शस्त्र-सज्ज विश्वप्रसिद्ध असुर—पूरी सेना ही आयी थी इन्हें मारने !' नगर के लोगों में पता नहीं क्या-क्या चर्चा फैलने लगी है—'भवन लोथों

से भरा पड़ा है ! जल निकलनेके मार्गों से भलभलाता रक्तनालों की भाँति प्रवाहित ही होता जा रहा है। पूरी सेना—मथुरा की प्रायः पूरी सेना मार दी इन दोनों भाइयों ने !' जितने मुख, उतनी बातें।

'कितनी देर ही लगी इन्हें भवन में ! शरीर पर न रक्त का एक बिन्दु है और न श्रम का एक स्वेद सीकर !' अद्‌भुत-अद्‌भुत बातें कहने लगे हैं लोग। "यह भुवन-मोहन रूप, यह तेजोमय श्रीविग्रह, यह पराक्रम, यह प्रगल्भता और उसपर भी यह शील, मृदुलता—अवश्य ये दोनों भाई देवश्रेष्ठ हैं !' मार्ग में दोनों ओर अब लोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर मस्तक झुकाने लगे हैं।

'ये लोग तो अब उस स्नेह से नहीं मिल रहे हैं ! वह उत्कण्ठा, वह स्वागत की प्रेमभरी आतुरता—ये तो अब बड़े गम्भीर बन गये हैं।' कन्हैया को क्या यह पूजा—यह गम्भीर श्रद्धा रुचिकर हो सकती है। उसे तो हृदय चाहिये—उन्मुक्त, संकोचहीन हृदय। अब भला, नगर-दर्शन में क्यों लगेगा उसका मन।

'बहुत विलम्ब हो गया ! बाबा प्रतीक्षा करते होंगे !' हाँ बहुत विलम्ब हो गया। भगवान् भास्कर पश्चिम गगन में अरुणाभ हो चले। अब लौटना चाहिये।

× × × ×

'कृष्णचन्द्र !' बाबा ने बाहु फैलाकर अङ्क में लिया। 'राम, तुम लोगों ने कोई धूम तो नहीं की ? किसी ने कुछ कहा तो नहीं ?' कितनी आशङ्का, कितना भय लिये व्याकुल होते रहे हैं ये गोपगण।

'बाबा, मथुरा बड़ी अच्छी है !' यह कन्हाई कहाँ प्रश्नों का उत्तर देता है। यह तो अपनी ही कहेगा। इसने क्या-क्या देखा है, कितनी अद्‌भुत वस्तुएँ देखी हैं।

'तुम लोग भूखे हो, पहले भोजन तो कर लो !' बाबा को ही कहाँ अपने प्रश्नों का स्मरण है। बालकों को हाथ-मुख धुलाना है। पता नहीं कहाँ-कहाँ घूमे हैं सब। उष्णोदक से भली प्रकार पद धोने से श्रान्ति दूर हो जायगी और कल शिवरात्रि है, व्रत का दिन है। आज इन्हें पायस-भोजन कराना है। सचमुच कन्हैया थक गया है आज। सभी थक गये हैं। इतना शीघ्र भोजन करके नहीं तो क्या ये सब निद्रित हो जाते ? सबोंने भोजन किये और सो गये। मोहन कितनी गाढ़ निद्रा में, कितने सुख से सोया है।

गजोद्धार

'नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि ।
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥'

—भागवत १०।६३।२७

कंस की व्याकुलता का पार ही नहीं है। बलराम, श्रीकृष्ण—वसुदेव के दोनों पुत्रों ने धनुष तोड़ डाला—वह धनुष, जिसे कंस को छोड़कर दूसरा कोई अब तक चढ़ा नहीं सका था। धनुष तोड़ा, रक्षकों को मारा—सहायता के लिये भेजे गये सैनिकों को भी मार डाला! अब क्या होगा? धनुष तो गया—गया उसके साथ धनुष-यज्ञ। एक अवसर था—धनुष पर ज्या चढ़ाकर, शर-संधान करके सहसा लक्ष्य बना लेते उसे—उस वसुदेव-पुत्र को! गया वह भी अवसर!' मल्ल हैं, हाथी है, और शूर हैं—कहाँ आशा टिकती है। 'यदि ये सब सफल न हो सके…!' अपने शयन-कक्ष में एकाकी कंस इधर-से-उधर घूम रहा है।

'हैं! यह क्या? यह क्या?' कक्ष के मणि-प्रदीप से यह जो छाया पड़ रही है भित्ति पर—इस छाया में तो मस्तक ही नहीं है! यह सिरहीन कबन्ध!' सिर है तो—कंस ने व्याकुल होकर अपना मस्तक टटोला! 'यह छाया में मस्तक क्यों नहीं है?'

'यह कौन है? कौन आया?' चीत्कार निकल गयी उसके मुख से। 'यह दो मस्तकों की छाया—कोई तो दूसरा नहीं आया है! यह तो उसी की छाया है। उसके तो एक ही सिर है—छाया के ये दो मस्तक! ये प्रदीप—ये तारक? भय के मारे कक्ष से प्राङ्गण में आ गया; पर ये सब तारे, सब प्रकाश दो-दो क्यों दिखायी पड़ते हैं उसे?'

'ये मेरी छाया में तो छिद्र ही छिद्र हैं! मेरे शरीर में से ये स्थान-स्थान से किरणें पारदर्शी हो गयी है!' कानों पर हाथ रख लिया उसने। ये अमङ्गल—ये अपशकुन! कहीं पीछा नहीं छूटता है इनसे। 'क्या, क्या प्राण-वायु का शब्द नहीं सुनायी पड़ रहा है?' नहीं ही तो सुनायी पड़ता है। इतनी सावधानी से कानों को बंद करने पर भी कहाँ सुनायी पड़ता है भीतर की वायु का कोई शब्द!

'ये वृक्ष—ये सब-के-सब स्वर्ण-पत्रों से जैसे मढ़ दिये गये हों!' भवन में निद्रा नहीं आती, बड़े अमङ्गल शकुन दीख पड़ रहे हैं। कदाचित् पुष्पोद्यान में तनिक विश्राम मिले—व्यर्थ है यह आशा। यहाँ नन्हे-नन्हे वीरुधों तक में जैसे चमचमाते सोने के पत्ते लग गये हों!

'मेरे तो पैरों के चिह्न ही नहीं बन रहे हैं!' दृष्टि भूमि पर गयी। 'नहीं बन रहे हैं—प्रयत्न करके, धूलि-भरे पुष्पों के आलवाल में पैर रख-रखकर देख लिये, चरण-चिह्न तो दीखते ही नहीं!'

'ये भूत, ये प्रेत, ये पिशाच—ये भयंकर, विकटाकार, वीभत्सरूप—ये आलिङ्गन कर रहे हैं!' किसी प्रकार अर्धरात्रि के पश्चात् शय्या पर लेटकर नेत्र बंद किये—ये अशुभ स्वप्न! कंस को स्वप्न में भी विश्राम नहीं है। स्वप्न में—स्वप्न में वह मुण्डित-मस्तक, सर्वाङ्ग में तेल लगाये, गधों के रथ पर दिगम्बर बना दक्षिण जा रहा है! दक्षिण जा रहा है—गले में शव के ऊपर की माला है, विष खा रहा है!' भय के मारे चीत्कार कर उठा वह।

जाग्रत् में न नासिका दीखती, न भ्रूमध्य! दिशाएँ प्रज्वलित जान पड़ती हैं और स्वप्न—स्वप्न और भी भयंकर हैं। ये मृत्यु-सूचक अपशकुन—यह उलूक उसी का नाम लेकर पुकार रहा है। ये श्वान रो रहे हैं रात्रि में भी और रो रही है शृगाली तथा मार्जार। ये मृत्यु-सूचक अपशकुन—मृत्यु! वे वसुदेव के लड़के—कल ही उनसे साक्षात्कार होना है! ये मृत्यु के दूत-से शकुन!' कंस के लिये रात्रि का प्रत्येक पल कल्प हो रहा है। कब रात्रि व्यतीत हो! कब प्रातःकाल हो!

ब्राह्ममुहूर्त—क्षितिज पर प्रकाश की क्षीण रेखा—आज तो कंस इस अँधेरे में ही अन्तःपुर से आ गया है मन्त्रणा-गृह में। 'आज शिवरात्रि है! गोप आज उपोषित रहेंगे! आज उपवास-दुर्बल होंगे सब और वे धर्मभीरु—आज लड़ाई, हिंसा से बचना चाहेंगे सब! आज ही तो अवसर है। बड़े प्रमादी हैं मन्त्रिगण! अब तक नहीं आये सब!' कंस ने सेवकों को आदेश दिया। आज वह स्वयं आयोजन करने लगा है।

'धनुष तो रहा ही नहीं। धनुर्यज्ञ की तो चर्चा ही नहीं करनी चाहिये। धनुष की चर्चा—उसे लेकर कुछ भी कहना नीति के अनुकूल नहीं। कहीं गोपों को पता लगे—उन्हें आशङ्का हो जाय—वे सब भाग खड़े हों दोनों लड़कों के साथ! मल्ल-क्रीड़ा-महोत्सव—आज तो मल्ल-क्रीड़ा-महोत्सव होना है।' कंस जान-बूझकर अब आज के महोत्सव को मल्ल-क्रीड़ा का रूप दे रहा है।

'कुवलयापीड़ को भरपूर सुरा पिला देना महामात्र! आज का सुयश तुम्हें—तुम्हारे महागज को प्राप्त होना ही चाहिये! सावधान रहना!' कंस अपने आयोजन के विषय में सबको एक बार पुनः सतर्क कर देना चाहता है। सेवकों को आदेश दे दिया गया है। मल्लभूमि पूजित हो रही है वहाँ। मञ्चों की पंक्तियाँ पहले से व्यवस्थित हैं। उन्हें पुष्प,माल्य,कौशेय-वितान,पताका, तोरणादि से अलंकृत किया जा रहा है।

'महाराज मल्लभूमि में पधार रहे हैं! पुरजन अपना-अपना स्थान शीघ्र ग्रहण कर लें!' मल्लभूमि से गूँजने लगा है यह भेरियों,शृङ्गों,तुरहियों का निनाद! पुरवासियों ने शीघ्रता की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—सभी अपने-अपने स्थानों पर आ गये! यदि भय न हो—कहाँ किसी में कुतूहल है। कंस का महोत्सव—क्रूरता, हिंसा, अपमान गुरुजनों का—और क्या होना है वहाँ। कौन स्वेच्छा से ऐसी अधर्मपूर्ण सभा में जाना चाहेगा। पर भय—भय के कारण ही तो ये पुरनारियाँ भी इतने सबेरे ही आ गयी हैं यहाँ। इन्होंने भी अपने लिये निश्चित स्थान स्वीकार कर लिये हैं।

'नगर के पुरवासी नर-नारी आ गये और आ गये आमन्त्रित सामन्त, अधीनस्थ नरेश!' कंस को मन्त्रियों ने सूचना दी। सब के आ जाने पर ही तो उसे आना चाहिये। 'महाराज मथुराधीश महाराज पधार रहे हैं!' बन्दियों ने जयघोष किया! सब लोग उठकर खड़े हो गये। मन्त्रियों से घिरा कंस—कहाँ है आज उसकी यह श्री, क्या हुआ तेज? आज तो वह देखता ही नहीं कि कौन कैसे अभिवादन कर रहा है। अमात्यगण अपने स्थानों पर रुके और सबसे उच्च, सर्वाधिक सुन्दर, सुविस्तृत, शस्त्र-सज्ज, रत्न-जटित स्वर्ण-मञ्च पर कंस सिंहासनासीन हुआ। सामन्तों, नरेशों, पुरजनों ने अपने उपहार निवेदित किये मञ्च के सम्मुख, अभिवादन किया चुपचाप और अपने-अपने स्थानों पर शान्ति से—नीरव-भाव से आकर बैठ गये।

वाद्यों के स्वर उच्च हुए। तुरहियों ने मल्लयुद्ध के ताल की गति अपनायी और ये अलंकृत कृष्णवर्ण, महाकाय, वज्रदेह मल्ल—ये अकड़ते, ऐंठते, झूमते चले आ रहे हैं यूथ-के-यूथ। इनके ये शिक्षक—जैसे मत्त गजराजों को लिये उनके गर्विष्ठ शिक्षक चले आते हों। यह चाणूर, यह मुष्टिक, यह कूट, ये शल और तोशल बन्धु—मथुरा के ये सर्वश्रेष्ठ शूर। कितने प्रसन्न हैं ये सब। वाद्य की गति पर कैसे झूमते आ रहे हैं। महाराज को अभिवादन करने में भी कितनी गर्विष्ठ पद्धति है इनकी। मल्लभूमि—ये ही तो इस मल्ल-भूमि की शोभा हैं। कितने स्नेह से देख रहा है कंस इन्हें। इसी दिन के लिये तो ये गजराज पाले गये हैं। आज इनके इस गठे, सुपुष्ट देह पर ही तो समस्त आशा अटकी है कंस की।

'व्रजाधिपति नन्दराय आये हैं! उन्हें मेरा आदेश सुनाओ कि शीघ्र पधारना चाहिये समस्त गोपों के साथ उनको रङ्ग-भूमि में। हम उनके आगमन की प्रतीक्षा करेंगे!' कितना सुसभ्य हो गया है यह कुटिल! कितनी शिष्ट हो गयी है इस सदा के उद्धत की वाणी। सचमुच यह व्रजाधिप की प्रतीक्षा ही तो कर रहा है। सब—दूसरे सब तो आ ही चुके, अब तो गोपों का ही आना शेष रहा है।

× × × ×

'श्री मथुराधिप ने मल्लक्रीड़ा-महोत्सव देखने के लिये आमन्त्रित किया है! वे पहुँच गये हैं, प्रतीक्षा कर रहे हैं!' व्रजेश को क्या पता था कि इतने सबेरे यह अयाचित आमन्त्रण पहुँचेगा।

महोत्सव इतनी शीघ्र प्रारम्भ हो गया ? हो तो गया ही, यहाँ से वाद्यों का स्वर सुनायी दे रहा है। उचित तो यही था कि नरेश से पूर्व ही वहाँ पहुँच गये होते। अब तो शीघ्रता--बहुत शीघ्रता करनी है।

कल बालक सब नगर देखने चले गये सायंकाल। पता नहीं कहाँ-कहाँ घूमते रहे। बहुत देर करके लौटे। बहुत थक गये थे। अभी-अभी तो श्रीकृष्णचन्द्र ने उठकर मुख-हाथ धोया है। आज शिवरात्रि है। ये बालक बड़े हठी हैं। ये सब गत कई वर्षों से व्रत करते आ रहे हैं। कलेऊ तो किसीको करना नहीं है। ये सब यदि शीघ्र प्रस्तुत हो जायँ।····

'बाबा, तुम चलो सब गोपों को लेकर ! मैं दाऊ भैया के साथ आता हूँ। मेरे साथ इतने सखा रहेंगे न ! तुम आगे चलो !' आज कन्हैया कितना गम्भीर बन गया है।

'तुम सब पीछे आओगे !' समय नहीं है। कंस का आमन्त्रण आ चुका। अच्छा ही है-- ये चपल साथ जाकर कोई अविनय न कर बैठें। इस समय आग्रह करने से यदि श्याम न माने-- रूठ जाय···विलम्ब हो रहा है। 'कोई चञ्चलता मत करना ! वहाँ आकर चुपचाप हम लोगों के समीप आ जाना। मैं प्रतीक्षा करूँगा।'

'मैं तो अभी आता हूँ, दाऊ की अलकों में थोड़े पुष्प लगा दूँ, बस !' श्याम को अपने भाई का शृङ्गार करना है अभी। इस समय यह किसी की बात सुनने से रहा। भाई का शृङ्गार—कौन कह सकता है कि बड़े भाई के पश्चात् छोटे भाई तोक एवं सखाओं के शृङ्गार में नहीं लग जायगा यह। यहाँ इतने सेवक हैं, सब सावधान रहेंगे। ये शिविर की, छकड़ों की, वृषभों की देख-भाल करेंगे।

हृदय न चाहे पर कंस - बड़ा क्रोधी, बड़ा क्रूर है कंस; उसका आमन्त्रण आया तो जाना ही है। बाबा गोपों को साथ लेकर शीघ्रतापूर्वक आये रङ्ग-भूमि में। अपने उपहार उन्होंने नरेश के मञ्च के सम्मुख निवेदित कर दिये।

'दोनों बालक तो नहीं आये !' कंस ने एक बार देख भर लिया। 'अच्छा ही हुआ ! अब वे इन गोपों से पृथक् रहेंगे !' गोपों पर एक दृष्टि भर डाल ली कंस ने। रङ्गशाला के सेवकों ने संकेत से स्थान सूचित कर दिया। बाबा अपने समस्त गोपों के साथ एक ही मञ्च पर चुपचाप बैठ गये।

× × × ×

''भद्र, कितने उच्च स्वर से ये दुन्दुभियाँ बज रही हैं ! उत्सव प्रारम्भ हो गया दीखता है !'' कन्हैया चलने के लिये उद्यत हो गया है। सभी उत्सुक हो गये हैं।

'अरे, यह इतना बड़ा मतवाला हाथी—यह तो रङ्ग-भूमि के द्वार पर ही झूम रहा है !' बालक दूर ही खड़े हो गये।

'हाथी तो मदमत्त है और यह अम्बष्ठ (महावत)—यह तो इस गजराज को हटाने का नाम ही नहीं लेता। मदिरा से घूर्णित इसके ये लोचन ! कितनी क्रूरता से घूर रहा है यह !' कन्हैया ने स्थिर दृष्टि से देखा गज को और उस गज के महावत को। दूसरे ही क्षण पटुके को कटि में कस लिया इसने। अलकों को समेटकर बाँधते हुए आगे-आगे बढ़ आया। श्यामसुन्दर ! गूँजा यह उसका मेघ-गम्भीर स्वर--'अम्बष्ठ, तूने रङ्गशाला के द्वार को क्यों रुद्ध कर रखा है ? हम भीतर जायँगे ! अपना गज हटा यहाँ से !

यह तो बधिर हो गया है। कितनी उपेक्षा का भाव है इस क्षुद्र में। श्याम क्या सह लेगा यह उपेक्षा ? कमलमुख गम्भीर-से-गम्भीर होता जा रहा है। भ्रुकुटियों में बल आ गया है-'गज हटा और मार्ग दे ! देर मत कर, चल हट; अन्यथा इस हाथी के साथ तुझे भी मैं यमराज के घर भेजता हूँ !'

'इस गोप के लड़के का यह साहस !' मदिरामत्त महावत ने दाँत पीसे ! उसके दोनों पैरों के अँगूठे गज की नेत्र-पुट-ग्रन्थि पर बलपूर्वक रगड़ उठे। फुँकारता दौड़ा यह गजराज— जैसे महाकाल ही दौड़ा आता हो।

'हाथी आया ! पकड़ लिया इसने तो कन्हैया को !' बालक चौंके, स्तब्ध-से हुए और तत्काल उनके मुख तनिक आश्वस्त हुए। यह नवनीत-स्निग्ध श्याम—इसे क्या हाथी पकड़ लेगा ? यह तो उसकी सूँड़ से फिसल निकला और उसी के पेट के नीचे इधर-उधर हो रहा है।

'कहीं पकड़ ले यह गज ! पकड़ न ले !' धक्-धक् कर रहे हैं हृदय। 'यह पकड़ लिया ! सूँघते, फुंकारते, घूमते गज ने पकड़ लिया—हाय ! कनूँ...!' सखाओं के प्राण—एक पल—एक पल यदि और लगे......

'चल हट !' छूटा—छूट गया श्यामसुन्दर! यह तो पीछे पहुँच गया। पूँछ पकड़कर खींच रहा है, बलपूर्वक खींचे लिये जा रहा है। चिग्घाड़ मारता यह सचल पर्वत खिंचता जा रहा है पीछे को। यह तो लगभग पचीस धनुष तक खींच ले गया ! बेचारा हाथी—यह चिरचञ्चल, बछड़ों की पूँछ पकड़कर दाहिने-बायें कितना घूम चुका है यह। बछड़ा न सही—हाथी तो और बड़ा है। क्रुद्ध फुंकार करता हाथी पकड़ने को झपटता है और कन्हैया दूसरी ओर कूदकर हो जाता है। कभी दाहिने, कभी बायें—हाथी इस खींचा-तानी में कैसे छूटे, यही समझ नहीं पाता। 'बड़ा सुन्दर खेल है यह तो' बालक तो ताली बजाने लगे हैं।

हाथी की पूँछ—बड़े कड़े, काँटे-से बाल होते हैं उसमें। कन्हाई के किसलय-कोमल, अरुण-मृदुल कर—ये और लाल हो उठे हैं। कब तक पूछ पकड़े रहे यह। यह छोड़ दी पूँछ। यह कूद आया हाथी के सम्मुख। 'तड़ाप !' एक थप्पड़—हाथी ही जानता होगा कि कैसी थप्पड़ है यह—छोटे-छोटे लाल-लाल चरण—अब तो यह भाग खड़ा हुआ।

'अब पकड़ा—अब पकड़ गया ! अब सूँड छू गयी !' बालकों के नेत्रों की पलकें जैसे स्थिर हो गयी हैं। 'पद एक पद—अब-अब—अब पकड़ा हाथी ने ! अरे, यह मोहन गिर पड़ा ! नटखट कहीं का ! यह तो जान-बूझकर गिरा था और यह क्या कूदकर हँसता हुआ खड़ा हो गया दूर !' हाथी ने समझा—देखा—गिर गया है उसे मारनेवाला। पूरे वेग से, पूरे बल से दाँतों को मारा भूमि पर उसने। पूरे दाँत धँस गये भूमि में।

'कुछ नहीं—कोई नहीं है यहाँ तो !' दूसरे ही क्षण हाथी ने समझ लिया अपनी भूल को। दाँत खींच लिये बल लगाकर। उसकी चिग्घाड़—उसका रोष और ऊपर से यह महामात्र अङ्कुशों की मार से मस्तक छेदे डालता है। भरपूर अङ्कुश मारकर प्रेरित कर रहा है।

'कनूँ ! कनूँ !' सखाओं ने हाहाकार किया। श्याम के प्रिय सखा—इनके प्राण परमार्त हो उठे हैं। यह क्रीड़ा अच्छी नहीं। सखा व्याकुल हैं। यह दाऊ—इसकी मुट्ठियाँ बँध गयी हैं। मुख अरुण होता जा रहा है। भ्रू-मण्डल खिंचते जा रहे हैं। एक क्षण—एक क्षण में ही यदि इसे रोष आ जाय - सारा खेल समाप्त हो जायगा। नहीं, यह खेल अब और नहीं चल सकता।

'हाथी !' हाथी दौड़ा आ रहा है। सखा चीत्कार कर रहे हैं। कन्हाई खड़ा—स्थिर खड़ा रहा। हाथ बढ़ाकर पकड़ ली गज की सूँड़ इसने और यह धमाका—ढह पड़ा यह पर्वत।

यह आया दाऊ—दाऊ इसी क्षण दौड़ पड़ा भाई की सहायता के लिये। केसरि-शावकों की भाँति राम-श्याम ने उस मतवाले गजराज की सूँड़ पर चरण जमाये और दोनों हाथों से हाथी के एक-एक दाँत मूली के समान उखाड़ लिये।

यह दुष्ट—यह क्रूर महावत—यह अब अपने अङ्कुश से ही आक्रमण करने झपटा है। हाथी के गिरते ही यह कूद गया भूमि पर और अब आक्रमण करेगा। हाथी के दाँत से ही एक हाथ—कपाल-क्रिया हो चुकी इसकी तो। रक्त की धारा चल रही है।

'कनूँ !' बालक दौड़ पड़े। 'कन्हैया ने इतना बड़ा हाथी मार दिया—यह हाथी भी राक्षस होगा !' राक्षस न होता तो क्या यह सुकुमार कन्हाई इतना बड़ा हाथी मार सकता था।

'तेरे हाथ तो देखूँ !' भद्र ने दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर देखना प्रारम्भ किया। बड़ी देर तक इस हाथ से इसने हाथी की पूँछ खींची है। कितना लाल हो गया है यह पल्लव-कोमल कर। कहीं खरोंच नहीं आयी—जैसे प्राण-दान मिल गया है सखाओं को।

'दुन्दुभियाँ बज रही हैं ! मल्ल-क्रीड़ा होती होगी !' श्याम ने गजदन्त लकुट की भाँति कंधे पर रख लिया। दाऊ तो पहले से रखे हैं। क्या जाने भीतर भी किसी से निबटना पड़े तो ? मल्ल-क्रीड़ा होती होगी—अब तो भीतर चलना चाहिये !

—❀◯❀◯❀—

मल्ल-मर्दन

"मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराड्विदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥"

—भागवत १०।४३।१७

'हाथी—महागज कुवलयापीड़—चिग्घाड़ें मार रहा है! क्रोध से फुंकारता है! कंस के प्राण कानों में आ गये हैं। जान पड़ता है, दोनों द्वार पर आ गये हैं!' अत्यन्त आतुर हो गया है। पता नहीं क्या होगा!

'हाथी—क्रुद्ध हाथी द्वारपर ही चिग्घाड़ रहा है! क्या बात है? क्या हो रहा है?' सबके नेत्र द्वार की ओर ही लगे हैं। सब उत्कण्ठित हैं। कंस का भय न होता—अवश्य सबके सब बाहर दौड़ जाते।

'अभी बालक आये नहीं! कहीं वे आते न हों!' गोपों की, बाबा की दशा वर्णन से बाहर है। 'ये प्रबन्धक—ये क्यों जाकर हाथी को हटवा नहीं देते? ये सब तो केवल देख भर रहे हैं द्वार की ओर। क्या यह भी इसी मल्ल-क्रीड़ा का कोई अङ्ग है? कोई हाथी से—क्रुद्ध हाथी से लड़ेगा?' कंस के ये वज्रदेह विशाल-काय मल्ल—क्या ठिकाना कि ये आज गज से ही युद्ध करनेवाले हों।

'एक धमाका—बड़ा भारी धमाका!' गज की फुंकारें, चिग्घाड़—सब तो मूक हो गयीं। क्या हुआ! महागज—महागज भी क्या मारा गया?' कंस का हृदय जैसे बैठा जा रहा है। लोगों के नेत्र और उत्कण्ठित हो रहे हैं।

लहराता मयूर-पिच्छ, पीछे समेटकर तनिक बाँधी हुई अलकें और उनमें से झाँकते से सुमन, कपोलों पर झलमलाते कुण्डल, दीर्घ कमलदल-लोचन, विशाल भाल पर स्वेद के मुक्ता-बिन्दुओं के मध्य गोरोचन-तिलक, बंकभ्रुकुटि, अरुणरेखा-से पतले अधर, वक्ष पर वनमाला, कण्ठ में मुक्ता-माल—यह आया श्यामसुन्दर। पटुका कटि में कसे, कंधों पर पुष्ट लकुट की भाँति उज्ज्वल, स्वर्ण-जटित दीर्घ गजदन्त रखे ये राम-श्याम! चरण रक्तारुण हो रहे हैं। वक्ष पर, भुजदण्डों पर, रक्त के बिन्दु हैं और गज के गण्ड से झरते मद के बिन्दुओं ने भी भली प्रकार भूषित किया है इन्हें। ये गुंजार करते भ्रमरों की टोलियाँ—यह भुवन-मोहनरूप, यह मल्ल-रङ्ग के अनुरूप वेश और यह मत्त-गयन्द-गति। इनके पीछे यह बालकों का यूथ—कितने प्रसन्न, कितने सुन्दर—कितने निर्भीक हैं ये बालक। ये तो द्वार पर आकर रुक गये हैं। यहीं से पूरी रङ्गभूमि देख लेना है इन्हें। बाबा—गोपगण कहाँ हैं, यह भी तो देखना ही है।'

'राम-श्याम—वसुदेवपुत्र—यह मल्लवेश! ये महागज के दन्त। यह वज्रदेह!' मल्ल-भूमि ही तो द्वार के सम्मुख है। मल्लों की दृष्टि गयी—'इनसे युद्ध? इनके शरीर से तो वज्र भी पिस उठेगा!' समस्त उत्साह, पूरा साहस एक क्षण में भर गया। अब तक व्यायाम चल रहा था उनका। अब तो सब धीरे से एक ओर जाकर बैठने लगे हैं।

'यह रूप, यह श्रीविग्रह, ये पुरुषोत्तम!' लोगों के नेत्र अपलक हो गये हैं। यह छवि—नेत्र को परम लाभ मिला है आज।

'काम—मूर्तिधर मन्मथ इनकी छाया से भी तुच्छ होगा !' स्त्रियों के शिरोवस्त्र कंधों पर आ गये हैं। वेणी के पुष्प गिरने लगे हैं। मुख स्वेद-बिन्दुओं से भूषित हो उठा है। कहाँ पता है उन्हें शरीर का। यह रङ्गभूमि—यह जन-समाज; पर वे तो इस नीलसुन्दर में एकाग्र हो गयी हैं।

'दाऊ—कन्हैया—ये बालक—आ गये ये सब !' गोपों में जैसे प्राण आ गये हों। यहाँ पुकारा नहीं जा सकता, किस प्रकार वे संकेत कर रहे हैं—बुला रहे हैं अपने इन प्राणप्रिय बालकों को। ये सब खड़े हैं, सम्भवतः उन्हीं को देखना चाहते हैं। उनका यह कन्हैया—यह राम ! उन्हीं के तो स्वजन हैं ये। ये उन्हीं के समीप तो बैठना चाहेंगे।

'ये गजदन्त—ये दण्डधर बन्धु !' कंस के इन सभासद् दुष्ट नरेशों की तो मुखश्री ही चल गयी। उन्हें लगता है, अब उन्हीं की बारी है। ये दुष्टों के शासक—कहीं पूछ न बैठें—'क्या किया है तुमने ? कहीं हमारे कृत्यों का विवरण इसी समाज में माँगने न लगे ! यदि इस उत्सव-सभा को ये न्याय-सभा बना लें—कौन समर्थ है इन्हें रोकने में !' मुख पीले हुए जा रहे हैं। निकल भागने का भी तो अवकाश नहीं। ये दोनों भाई अपने सखाओं के साथ द्वार रोके ही खड़े हैं, जैसे सबका इसी समय निर्णय करने का निश्चय कर लिया हो।

'राम-कृष्ण—ये शिशु !' बाबा के नेत्र ललक उठे हैं। 'हमारे बच्चे !' बच्चे—शिशु ही तो हैं राम-श्याम ! 'कितने सुकुमार हैं दोनों !' हृदय, मन, प्राण—सब नेत्रों में एकाकार हो गये हैं।

'आ गया ! आ गया यह मेरा काल ! इसने महागज को मार डाला है ! ये विशाल दन्त—यह आ गया ! मेरी ओर—ओह, मेरी ओर देख रहा है !' कंस के नेत्र फट-से गये हैं। वह घूर रहा है। उसके हाथों ने ढाल और खड्ग की मूठ सम्हाल ली है। उसे लगता है, अब आये—अब ये उसी के पास आयेंगे दानों भाई। ये विशाल गजदन्त उसी को मारने के लिये दोनों ने ले रखे हैं। उसी को ढूँढ़ते इधर-उधर देख रहे हैं।

'यह सुकुमार-विग्रह—इनका जो प्रभाव सुनते आये हैं, अभी-अभी तो इन्होंने महागज को मारा है !' मथुरा के विद्वान् समझ ही नहीं पाते इस नीलसुन्दर को। भला, कोई पुस्तकों के ज्ञान से इस कन्हैया को कभी समझ सका है ? विराट्—अनन्त, अपार, अगम्य विराट् लगता है यह इन पण्डितों को।

'प्रभो !' ये देवर्षि नारद, ये मुनिगण—ये क्यों हाथ जोड़कर प्रणिपात कर रहे हैं ? ये आत्माराम, हृदयगुहा में नित्य ज्योतिर्मय परमतत्त्व में एकाग्र रहनेवाले महायोगी—पर यह कन्हैया, यह इन्दीवरदल-श्याम, वही परम-तत्त्व तो यह सम्मुख खड़ा है कंधे पर गजदन्त रखे। सच्चिदानन्द की यह घनमूर्ति—इस श्रीविग्रह में जो छटा, जो माधुरी है—योगियों का वह अन्तस्तत्व जैसे शत-सहस्र-कोटि-कोटि-गुणित माधुर्य लेकर नेत्रों को, मनको, प्राण को—आज इस स्थूल जीवन को कृतार्थ करने बाहर आ गया है।

'हमारे परमाराध्य !' जैसे पिपासा से प्राण त्यागते चातकों को मेघके दर्शन हुए। 'भगवान् नारायण—वही सुनील ज्योतिर्मय अङ्ग-कान्ति, वही श्रीविग्रह और यह कौस्तुभ, श्रीवत्स, भृगुलता !' वृष्णिवंशियों ने कितना कष्ट, कितना उत्पीडन सहा है ! आज-आज आराध्य ने दया की। आज समस्त क्लेश दूर हुए ! सम्पूर्ण तप सार्थक हुआ।

'ये राम-श्याम—ये साक्षात् नारायण हैं ! यही वसुदेवजी के यहाँ इस संसार के प्राणियों पर दया करने के लिये अवतीर्ण हुए हैं। यही हैं देवकी के सप्तम और अष्टम पुत्र। कारागार में ये उत्पन्न हुए और गोकुल पहुँचाये गये महाभाग नन्दजी के यहाँ। अब तक ये गुप्तरूप से वहीं रहते थे। वहाँ इन भाइयों ने ही कंसके प्रधान-प्रधान असुरों को मारा है !' तनिक स्थिर हुआ चित्त। नेत्र तो अब भी इन राम-श्याम के चन्द्रमुख पर ही स्थिर हैं; किंतु हृदय का उल्लास वाणी में आ गया है। लोगों ने जो कुछ सुना है, परस्पर कहने लगे हैं। वे जो जानते हैं, सुन-सुनाकर वे जो भी उलटा सीधा जान सके हैं—कहाँ मीमांसा की है, उन्होंने अपनी सुनी बातों की। ये राम-श्याम—ये दोनों भाई महाशूर हैं। जो सुना है, उसमें संदेह का तो कोई कारण ही नहीं है। लोग बड़े उत्साह,

उल्लास से सुना रहे हैं परस्पर। बड़ी भव्य आशा है उनकी—'सभी लोग कहते हैं कि इन दोनों भाइयों के कारण यह यदुवंश लोक-विश्रुत हो जायगा। इनसे रक्षित होकर महान यश, लक्ष्मी और महत्व को प्राप्त करेगा ! धन्य हैं ये गोप, धन्य हैं गोपियाँ और धन्य हैं हम सब भी, जो अब इनका सांनिध्य प्राप्त करेंगे !'

× × × ×

'लोग बोल रहे हैं—पता नहीं क्या फुसफुसाहट चल रही है ! सब इन दोनों लड़कों की ओर ही देख रहे हैं।' कंस का रोष बढ़ता जा रहा है। वह मल्लों को घूर रहा है। 'ये सब क्यों चुपचाप बैठे हैं !'

'महाराज असंतुष्ट हो रहे हैं ! ये बालक अब गोपों की ओर जाना चाहते हैं। इन्होंने देख लिया है गोपों को !' चाणूर ने अवसर से लाभ उठाया। वह झट उठकर सम्मुख आ गया—"नन्द-नन्दन, सुनो ! बलराम, सुनो तो सही ! हम सब लोग तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। बड़ा अच्छा हुआ, तुम लोग समय पर आ गये। तुम लोग वीरों में प्रशंसित हो, मल्लयुद्ध करने में बड़े कुशल हो—यह सुनकर ही तुम्हें महाराज ने बुलवाया है। महाराज तुम्हारा मल्लयुद्ध देखना चाहते हैं !'

श्याम मल्लयुद्ध में कुशल है ! यह कैसी बात है ? क्या षड्यन्त्र है यह ? पर चाणूर तो कहता ही जा रहा है—'देखो, प्रजा यदि मनसे, वाणी से, कर्म से राजा का प्रिय करे तो उसका कल्याण होता है और यदि अप्रिय करे—उसका कल्याण हो नहीं सकता। तुम लोग गोपाल हो। गोपगण वनों में आनन्द से गायें चराते हुए मल्ल-क्रीड़ा करते ही रहते हैं। मल्लयुद्ध में तो गोप-जाति सदा से प्रख्यात है, अतः तुम लोग और हम सब भी महाराज का प्रियकार्य करें। महाराज को प्रसन्न करें। महाराज के प्रसन्न होने से सभी प्राणी हम पर प्रसन्न होंगे, क्योंकि राजा तो सर्व-भूतमय होता है।'

'मल्लयुद्ध—यह सजी-सजायी मल्ल-भूमि—है तो यह इसी योग्य। यह सुकोमल मृत्तिका—इसमें मल्लयुद्ध करना बड़े आनन्द की बात है।' श्याम ने एक बार बड़े भाई को ओर देखा। वहाँ तो सदा स्वीकृति है। दाऊ—कोई आ जाय, कोई लड़ ले ! दाऊ—इस बलको क्या सोचना है। कन्हैया ने सखाओं की ओर देखा नेत्र तिरछे करके और सम्मुखीन हो गया चाणूर के। 'तुम लोग इन भोजपति की प्रजा हो और हम वनवासी हैं—ठीक ही है यह। नरेश ने अवसर दिया कि हम उनका कोई प्रिय कार्य कर सकें, यह उनका परम अनुग्रह है; किंतु हम बालक हैं, अतएव अपने समान बलवाले बालकों के साथ भली प्रकार मल्ल-क्रीड़ा करके दिखावेंगे ! तुम लोग तो इस मल्ल-युद्ध-सभा के सभासद् हो, इसके नियमों को जानते ही हो; मल्लयुद्ध में कोई अधर्म नहीं होना चाहिये !"

'कितना उचित, कितना समयानुकूल विचार है ! ये बालक बालकों के साथ ही तो लड़ सकते हैं !' समस्त समुदाय प्रशंसा करने लगा है।

'तुम बालक हो !' यह दैत्य चाणूर तो ठहाका मारकर हँसने लगा है—'मुझे ही टालना चाहते हो ? तुम न बालक हो और न किशोर ही हो ! तुम तो समस्त बलवानों में श्रेष्ठ हो ! तुमने अभी-अभी सहस्र गजराज के समान शक्ति रखनेवाले कुवलयापीड को खेल-खेल में ही मार दिया है ! देखो, टालो मत ! आओ. तुम मेरे साथ आओ और ये बलराम मुष्टिक के साथ नियुद्ध करें ! आओ !' चाणूर ने तो थाप दी जङ्घा पर और पीछे मुड़कर देखा—मुष्टिक क्या संकेत नहीं समझता। यह खड़ा हुआ वह, यह थाप दी उसने भी।

'अच्छी बात !' कन्हैया किसी की उद्धत चुनौती सह लें ! कैसे हो सकता है यह। दाउ ने तो पहिले ही गजदन्त भूमि पर फेंक दिया। कछनी सम्हाल ली गयी है—बस ! इन मल्लों के समान लँगोट बाँधकर लड़ने को प्रस्तुत होकर तो कोई आया नहीं है। आवश्यकता भी क्या है ! दाऊ—श्याम, क्या आवश्यकता है लँगोट की। सखाओं के साथ ऐसे ही तो सदा मल्लयुद्ध किया है इन्होंने।

हाथों से हाथ, पैरों से पैर, जाँघों से जाँघें, घुटनों से घुटने, मस्तक से मस्तक, छाती से छातियाँ—यह चलने लगा है मल्लयुद्ध। एक दूसरे को खींचने, गिराने के प्रयत्न में जुट पड़े हैं ये। घुमाना, झटका देना, पकड़कर दबाना शरीर से, गिराना, खींचना, पीछे ठेलना, ऊपर उठा लेना, नीचे दबा देना, वेग से हटाना, स्थिर करना—सभी दाव-पेच चल रहे हैं। प्रत्येक दूसरे को जीत लेने का पूरा प्रयत्न कर रहा है।

× × × ×

'यह युद्ध—यह अधम युद्ध! कहाँ ये परम सुकुमार बालक और कहाँ ये लौहकाय पर्वत-से विशाल मल्ल! ये राम-श्याम तो अभी युवा भी नहीं हुए हैं, इनके ये कुसुम-कोमल कलेवर—कंस तो क्रूर है! ये मल्ल राक्षस हैं, हृदयहीन हैं सब; पर ये सभासद्—ये पुरजन—क्यों चुप हैं ये सब! बोलने का साहस नहीं होता तो यहाँ से उठ क्यों नहीं जाते! इस समाज के इस अधर्म का उत्तरदायी होना होगा। निश्चय ये सभी लोग अधर्मभागी होंगे! जहाँ अधर्म होता हो, वहाँ एक क्षण भी नहीं ठहरना चाहिये। इसीलिये तो बुद्धिमान् पुरुष ऐसे समाजों में जाते ही नहीं। जाना भी नहीं चाहिये; क्योंकि अधर्म का समर्थन करने या अधर्म होते देखकर भी बिना प्रतिवाद किये चुपचाप देखने से भी पाप का भागी होना पड़ता है!' स्त्रियाँ अत्यन्त कातर हो उठी हैं। उनमें परस्पर आलोचना चलने लगी है।

'शत्रु के चारो ओर उछलते, बल लगाते श्रीकृष्ण का मुख तो देखो! बड़े-बड़े स्वेद-बिन्दु आ गये हैं उसपर, जल-बिन्दुओं से भूषित विकच पद्मकोष के समान यह मुख-कमल!' दृष्टि स्थिर हो गयी है वहीं।

'तुम राम का मुख नहीं देख रही हो! कितना तमक उठा है यह मुख! लोचन लाल-लाल हो गये हैं और मुष्टिक के प्रति अमर्षभरा यह हास्य—कितनी अद्भुत है यह छवि!' इसके मन को दाऊ के आकर्षण ने थकित कर दिया है।

"व्रजभूमि धन्य है! कितनी पवित्र है वह भूमि, जहाँ ये परमपुरुष इस मानव-वेश में छिपे, वनधातुओं के चित्रों से श्रीअङ्ग सजाये वन-पुष्पों की मालाओं से भूषित, गायें चराते, वंशी बजाते अपने इन बड़े भाई बलराम के साथ इन चरणों से विचरण करते रहे हैं। ये भगवान् शंकर और भगवती लक्ष्मी द्वारा अर्चित श्रीचरण जहाँ विहार करते रहे हैं......।"

"त्रिभुवन में अनन्यसिद्ध यह लावण्यसार रूप, यह ऐश्वर्य, यश एवं श्री का एकान्त निवास वपु, यह नित्य नवीन परम दुष्प्राप्य झाँकी—पता नहीं गोपियों ने पूर्व जन्म में कितने महान् तप किये होंगे, वे इस त्रैलोक्य-मोहन को निरन्तर अपने नेत्रों से देखती रही हैं! इस रूप का नेत्रों से पान करने का सतत सौभाग्य मिला उन्हें....।"

"गाय दुहते, गोबर उठाते, दही मथते, गृह लीपते, झूले पर झूलते, रोते बालक को चुप करते तथा स्नानादि सभी कार्यों के समय इन उत्तम श्लोक में अनुरक्त चित्त से इनके यश का—इनकी लीलाओं का निरन्तर गान करती हैं, धन्य हैं वे गोप-बालाएँ।" जो निरन्तर लीला-गान करती हैं, नित्य अनुरक्त हैं, उन्हें इनके दर्शनों का नित्य सौभाग्य मिला—इसमें भला, आश्चर्य ही क्या।

'आगे अपार गायों का यूथ और उनके पीछे अधरों पर मुरली धरे, उसे भुवन-मोहन स्वर से बजाते, मत्तगयन्द-से झूमते, सदय दृष्टि से इधर-उधर देखते ये गोपाल—प्रातः वन में जाते समय और सायं वन से घर लौटते हुए इनकी स्मित-शोभित यह छटा! हमें तो कल्पना ही करनी है न! धन्य हैं वे, जो नित्य झटपट घरों से दौड़कर द्वार से, गवाक्ष से अपलक-नयन होकर इस झाँकी को देख सकी हैं।'

'हम भी गोपियों में होतीं! ये गोपियों के सौभाग्य; पर हाय-हाय! ये क्रूर, कुलिश-कठोर चाणूर-मुष्टिक!' स्त्रियों की अद्भुत दशा है। क्षण-क्षण पर भय और फिर विस्मृति—पता नहीं कौन-सा जादू है इस रूप-राशि में। पुरुष—वे तो जैसे प्रतिमाएँ हों। नेत्रों के पलक तक गिर नहीं रहे हैं।

गोप--फटे-से नेत्र, धक्-धक् करता हृदय, विवर्ण मुख-कान्ति--इन गोपों की व्यथा का क्या पार है। एक शब्द बोला नहीं जा सकता! एक चेष्टा, तनिक-सी गति--पता नहीं क्या परिणाम हो! कंस की कुटिलता--पर यह सब सोचने को अवकाश नहीं है। प्राण आतुर--त्रस्त--मूर्छित-से हो रहे हैं।

ये बालक--ये सब तो कभी चञ्चल होते हैं, कभी सन्न-से हो जाते हैं। कभी खिल उठते हैं और कभी पीताभ हो जाते हैं इनके मुख। ये यहाँ खड़े रह गये हैं। इधर-उधर झुककर झाँकते हैं। भय, संकोच--पता नहीं क्या-क्या होगा इन बालकों में। 'कन्हैया लड़ रहा है! इस राक्षस से कनूँ लड़ रहा है!' श्याम तनिक नीचे आता दीखा और ये सब तो इस प्रकार अलकें समेटने लगते हैं, पटुके सम्हालते हैं, जैसे ये स्वयं चाणूर को पहुँचते ही पछाड़ देंगे। इन सबों ने कछनी कस ली है, अलकं बाँध ली हैं। पटुके कटि में लपेट लिये हैं। ये तो मल्ल-भूमि में कूदने को उद्यत-से हैं। 'कनूँ--कनूँ सबसे दुबल है न। वह लड़ रहा है--भली प्रकार लड़ रहा है! यदि कनूँ दुर्बल पड़े--!' भद्र, सुबल, वरूथप--ये सब क्या प्रस्तुत हैं। 'चाणूर पहाड़-सा है तो क्या हुआ--राक्षस है न! कचूमर निकाल देंगे इसका!' ओष्ठ फड़क उठते हैं बार-बार। मुट्ठियाँ बँध-बँध जाती हैं। मुख अरुण हो गये हैं। इनका सखा लड़ रहा है न! दाऊ की क्या चिन्ता है; पर कनूँ--यह लड़ जो रहा है इस पहाड़-जैसे राक्षस से!

× × × ×

'ये स्त्रियाँ अत्यन्त भयभीत हैं, ये नगरवासी व्याकुल हो रहे हैं, ये गोप--ये तो जैसे काष्ठ हो गये हों!' इतना ही तो नहीं है। ये गोप-बालक--इनका सुकुमार कनूँ थकने लगा है, कितनी देर से लड़ रहा है वह। इनके धैर्य की सीमा समाप्त हो रही है। 'अब कूदा भद्र, अब--एक क्षण--बस, एक क्षण और!' श्यामने तनिक मुख घुमाकर चारों ओर देख लिया, देख लिया सखाओं को। उसकी दृष्टि ही कहती है--'तनिक रुको तो!'

'यह वज्र से बना है क्या?' चाणूर का अङ्ग-अङ्ग फटने लगा है। यह श्याम--यह देखने में ही सुकुमार लगता है। यह तो इतनी निष्ठुरता से दबाता, इस प्रकार थाप देता है, जैसे मुद्गर पड़ता हो। सर्वाङ्ग शिथिल होता जा रहा है। बार-बार भूमि पर गिरता है चाणूर, ओह--इस प्रकार भी विश्राम कहाँ। यह कृष्ण तो घुटनों से कटि को तोड़ ही देगा। वह फिर उठता है और फिर गिरता है! श्याम के प्रहार तो तीव्र--तीव्रतर होते जा रहे हैं। यह और वेग से और बलपूर्वक शरीर को पीसता जा रहा है। चाणूर किसी प्रकार छूटने का प्रयत्न कर रहा है। प्राण बच जाते--एक झटका--किसी प्रकार छुड़ा लिया उसने अपने को। 'यह तो फिर झपटा पकड़ने?' कूदकर ऊपर, बाज की भाँति झपटकर दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर पूरे बल से वक्ष पर प्रहार किया उसने।

'वज्रपात-सा घोष--कृष्णचन्द्र के श्रीवत्साङ्कित विशाल वक्ष पर असुरने घूसा मारा!' कोई कुछ सोचे, कुछ करे, इससे पूर्व चाणूर की दोनों भुजाएँ कन्हाई के कोमल हाथों ने जकड़ लीं। घूसा--वह तो जैसे मत्तगजेन्द्र पर किसी ने पुष्पमाल्य डाला हो! अब तो यह मयूर-मुकुटी इस महाकाय मल्ल को अपने मस्तक के चारो ओर घुमाने लगा है।

चाणूर का विशाल देह--केश बिखर गये हैं, माला टूटकर कब की गिर चुकी और अब तो विश्व घूमता--कुम्हार के चक्र पर चढ़ा तीव्रता से घूमता दीखने लगा है। अन्धकार--चारो ओर अन्धकार हो गया उसके लिये। 'गों-गों' उसका चीत्कार भी अस्पष्ट हो रहा है! बालक ताली बजाने लगे हैं और यह पटक दिया कन्हैया ने दैत्य को, जैसे धोबी वस्त्र को पत्थर पर पटक देता है। पूरा शरीर फट-सा गया। रक्त की धारा चलने लगी। बेचारा तड़प भी नहीं सका।

'चाणूर तो गया !' मुष्टिक ने भी किसी प्रकार छुड़ाया अपने को और पूरे बल से दाऊ पर मुष्टिकाघात किया उसने। यह दुष्ट भी वक्ष पर ही प्रहार करता है।

मल्ल-क्रीड़ा करते-करते यह घूसा—अच्छी बात ! दाऊ तो छोटे भाई की ही प्रतीक्षा कर रहा था। कन्हैया ने यह पटका चाणूर को ! यह दैत्य भी घूसा मारता है ?—'तड़'। लोग अपने मञ्चों पर उमक पड़े। रङ्ग-भवन प्रतिध्वनि से काँप उठा। हुआ कुछ नहीं है—बस, दाऊ भैया ने एक चपत भर जड़ दी है मुष्टिक की कनपटी पर और यह अति सुरापायी-सा लड़खड़ाता, मुख से रक्त फेंकता मुष्टिक गिरा ! अब तो गिर गया यह !

'पकड़ो !' यह कूट—इस मल्लयूथ का यह अग्रणी ! दो मल्ल मार दिये इन लड़कों ने इसके देखते-देखते ! यह तो क्रोधोन्मत्त दाँत पीसता झपट पड़ा है।

'अच्छा, तो यह दाऊ पर झपटा है ?' दाऊ—अब यह दाऊ रुष्ट हो चुका है। ये दुष्ट दैत्य—एक घूसा बायें हाथ का उपेक्षा से हँसकर धर दिया उसने। दाऊ का घूसा—कूट की तो कपाल-क्रिया हो चुकी।

'पकड़ो-पकड़ो !' ये शल-तोशल भी झपट पड़े हैं एक साथ ही। कूट दाऊ पर झपटा तो ये श्याम को ही पकड़ लें। 'चल !' बिचारे पूरे उठ भी नहीं पाये। कन्हाई ने उमकते-न-उमकते मस्तक पर ही एक-एक लात धमक दी कूदकर। श्याम के सुन्दर चरण रक्त से लाल हो गये। मस्तक फट गये शल-तोशल के—ऐसे फट गये कि भेजा बाहर निकल आया।

'बाप रे !' बेचारे मल्ल—अब किसका सिर व्यर्थ है जो इन चञ्चल चरणों से फुड़वाये ! मल्ल तो भागे, भाग गये सब रङ्ग-स्थल से बाहर। पता नहीं कहाँ तक भागते गये होंगे वे। उन्हें अब कंस या कोई भी क्या पा सकता है।

'मल्ल तो भाग गये ! यह अच्छी रही, आज मल्लक्रीड़ा-महोत्सव है ! मथुरानरेश और ये सब लोग मल्लयुद्ध देखने आये हैं और मल्ल तो ऐसे भागे कि कुछ बात—सखाओं ने ताली बजाकर बेचारों को और भगा दिया !' चरण रक्तारुण हो रहे हैं, सर्वाङ्ग में धूली लग गयी है। रक्त के बिन्दु झलमल करते स्वेद-कणों के मध्य बड़े भव्य हो गये हैं। यह कन्हैया मल्लभूमि के मध्य में खड़ा हो गया है। मल्लभूमि--उसमें पड़े ये पाँच मल्लों के शव। चाणूर का कृष्णवर्ण तो कहीं-कहीं से रक्त में से झलक रहा है। मुष्टिक के मुख के समीप की भूमि लथपथ हो चुकी है कीचड़ से और औंधा पड़ा है यह कूट। इसके तो मस्तक को जैसे मुद्गर से चूर्ण-चूर्ण कर दिया गया हो। ये शल-तोशल--ये दोनों तो बैठे-बैठे ही पीठ के बल लुढ़क पड़े हैं। इनके सिर के पास रक्त-कीच हो रही है और इस मल्ल-भूमि के मध्य ये राम-श्याम ! दाऊ छोटे भाई को कितने स्नेह से देख रहा है, जैसे पूछता हो—'कनूँ अब ? क्या चाहता है अब तू ?'

'मल्ल तो भाग गये, पर आज मल्लक्रीड़ा-महोत्सव है न ? कोई नहीं है तो न सही, ये सखा तो हैं !' श्याम ने बढ़कर भद्र का हाथ पकड़ लिया है और खींच रहा है। 'ये कंस के मल्ल—ये क्या जाने मल्लयुद्ध। मल्लयुद्ध तो अब होगा ! ये सखा ही तो कन्हैया की ठीक जोड़ हैं !'

'मैं नहीं लड़ूँगा !' भद्र जाना नहीं चाहता। 'कनूँ इतनी देर लड़ता रहा है, थक गया होगा !' इतने लोगों के मध्य इस प्रकार मल्ल-युद्ध करना क्या संकोच की बात नहीं है ? भद्र को संकोच हो रहा है। क्यों यहां कन्हैया दूसरे को नहीं खींच लेता ?

'नहीं, मैं तुमसे नहीं लड़ूँगा !' 'तुझे आज पटकूँगा !' श्याम अपनी धुन छोड़ने से रहा। आज उत्साह में है यह। बलात् भद्र को खींचकर उससे लिपट गया है यह।

'अच्छी बात !' अब भद्र क्या इतने लोगों के सम्मुख हार मान लेगा ? श्याम—इसने राक्षस को मार क्या दिया, बड़ा वीर मानने लगा है अपने को।

'वरूथप!' जब कन्हाई मल्ल-क्रीड़ा चलाने ही लगा तो दाऊ चुपचाप क्यों देखता रहे। अब यह वरूथप के साथ लड़ेगा। वरूथप ही तो सखाओं में इसके कुछ जोड़ का है।

राम-श्याम, वरूथप और भद्र—भला, इन सबों में ही क्या विशेषता है; सभी तो भीतर आ गये हैं मल्ल-भूमि के। और भी जोड़ियाँ तो उतर गयी हैं बालकों की। तालियाँ बजाते हैं बाकी सब। प्रशंसा करते हैं, उत्साह दिलाते हैं।

बालकों की यह मल्ल-क्रीड़ा! दुन्दुभियाँ, तुरहियाँ, वाद्य—कितने सस्वर, कितने तालबद्ध बजने लगे हैं ये सब वाद्य। ये भुवन-सुन्दर जोड़ियाँ, इनका यह अलौकिक, अद्भुत मल्लयुद्ध—वाद्यों को अभी ही तो सार्थक होना है।

'साधु! बहुत सुन्दर! हाँ, जय-जय!' कितना उत्साह, कितना उल्लास आ गया है लोगों में। सब मञ्च से बार-बार उठे जा रहे हैं। बार-बार पुकारते जा रहे हैं। बालकों को उत्साह दिला रहे हैं।

भद्र और कन्हाई, दाऊ और श्याम—ये अनुपम जोड़ियाँ, ये रुनझुन करते नूपुर, ये स्वेद-भूषित कमलमुख, यह अरुणाभा मुखों पर! कितनी उल्लासपूर्ण है यह मल्ल-क्रीड़ा। ये सब मल्ल-युद्ध कर रहे हैं।

—❀⊂❀⊃❀—

कंस-कदन

"प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥"

—भागवत १०।५१।५०

'बंद करो ! वाद्य बंद करो !' यह चिल्लाया कंस। प्रधान मल्ल मारे गये, शेष प्राण लेकर भाग गये और यह सब करनेवाले ये राम-कृष्ण—ये दोनों बालकों के साथ मल्ल-क्रीड़ा करने में लगे हैं। ये पुरजन—ये यादव—ये सब कितने प्रसन्न हो रहे हैं। किस प्रकार सम्मुख ही इन लड़कों की प्रशंसा कर रहे हैं ! कंस क्रोध से उन्मत्त हो गया है। नेत्र अंगार-से जल रहे हैं।

'वसुदेव के ये दोनों पुत्र बड़े दुष्ट हैं ! निकालो, इन्हें अभी पकड़कर नगर से बाहर निकाल दो !' सेना कल ही मारी जा चुकी, मल्ल भाग गये, अब कौन है इस आज्ञा को सुननेवाला ? कौन अपना सिर कच्चे घड़े के समान फोड़ने को दे ! लेकिन कंस उन्मत्त हो गया है। उसे कहाँ स्मरण है कि उसकी आज्ञा कोई सुन नहीं रहा है। 'निकालो इन्हें !' अब तो इनको मारने की कल्पना ही ध्वस्त हो चुकी। मारनेवाले तो भूमि पर पड़े हैं और कंस—कौन अपने काल से भिड़ने का साहस करे !

अब तो ये निकाल दिये जा सकें नगर से—कंस के मन में बड़ी-से-बड़ी कामना यही रह गयी है।

'गोपों की समस्त सम्पत्ति छीन लो ! दुर्बुद्धि नन्द को मार डालो !' गला फाड़कर पूरी शक्ति से चिल्ला रहा है कंस। उसे लगता है, उसकी आज्ञा उसके सेवक पूरा ही करते जा रहे हैं। प्रलाप—प्रलाप ही करता जा रहा है वह—'वसुदेव को भी मार दो ! बड़ा दुर्जन है, बड़ा कुटिल है वह और मार दो मेरे पिता उग्रसेन को उसके अनुचरों के साथ। वह भी मेरे विरोधियों का ही पक्षपाती है। मार दो ! इन सब को मार दो !'

'क्या बकवाद है ? कौन चिल्लाया ?' मल्लयुद्ध तो प्रथम पल ही बंद हो गया। सभी लोग स्तम्भित-से देखने लगे हैं कंस की ओर। ये बालक तो बड़े कौतुक से देख रहे हैं !

'यह बाबा को मारने की बात करता है !' भद्र ने घूसा बाँधा ! किंतु यह पागल हो गया है। कोई भी तो इसकी बात सुनता नहीं है। इसके सेवक भी तो इसका मुखभर देख रहे हैं।

'यह बकता ही जा रहा है ! सभी गुरुजनोंको अपशब्द बकता जा रहा है !' कन्हैया की भौंहें कठोर हो गयीं। यह चला श्याम मञ्च की ओर।

'आया ! कृष्ण आया !' कंस एक झटके में मञ्च पर खड़ा हो गया दाहिने हाथ से खड्ग खींचकर और बायें हाथ में चर्म (ढाल) सम्हालकर।

कन्हैया—यह कूदा कन्हैया। यह तो कंस के मञ्च पर ही पहुँच गया। विशाल राजमञ्च—कंस इधर-से-उधर कूद रहा है। दूर-दूर रहना चाहता है वह इस कृष्ण से और आघात भी करना चाहता है। यह दाहिने-बायें कूदता, उछलता कंस—कन्हैया से कूदकर कहाँ जायगा अब यह। श्याम ने बलपूर्वक झपटकर बाल पकड़ लिये इसके पीछे से झटका देकर। यह गिरा मुकुट—मथुरा का यह असुर-मुकुट तो गिर चुका। खड्ग—खड्ग तो तब चले जब उसको चलने का अवसर मिले ! श्याम ने तो इसे केश पकड़कर झटके से फेंक दिया इस उत्तुङ्ग मञ्च से नीचे और लो—यह कूदा कृष्णचन्द्र ! यह तो कंस के शरीर पर ही कूद पड़ा है।

नेत्र निकल आये हैं बाहर, मुख से रक्त की धार चल रही है। यह लोक को आतङ्कित करनेवाला महाक्रूर, घोर अहंकारी कंस—बिखरे केश, रक्त-लथपथ देह, अब यह धूलि में पड़ा है और अब भी इसका परित्राण नहीं। अब भी यह कन्हाई इसके केश पकड़कर घसीट रहा है इसके प्राणहीन शव को। लथेड़ रहा है—इस प्रकार जैसे सिंह हाथी को मारकर लथेड़ता है।

कन्हैया रुष्ट है। इसका रोष अब तक गया नहीं। अब भी भौंहें चढ़ी हैं, नेत्र अरुणारे हैं, मुख तमतमा रहा है। यह घसीट रहा है कंस के शव को। 'हाय-हाय! छोड़ दो! छोड़ दो!" सभी लोग तो पुकार रहे हैं। मर गया कंस तो; अब भला, यह उसके शव की दुर्गति क्यों? अन्ततः यह नरेश का ही तो शव है।

दुर्गति शव की—कंस का क्या बनता-बिगड़ता है इससे। यह शव—अब कोई कुछ भी कर ले इसका। कंस—असुर होकर भी कंस भाग्यशाली ही रहा। भय से ही सही, शत्रुता से सही, बराबर, अविराम, खाते-पीते, उठते-बैठते, जागते-सोते, प्रत्येक समय वह इसी श्याम का ही तो चिन्तन करता रहा है। इसी को देखते-देखते तो शरीर छोड़ा है उसने। वह महाभाग—वह तो सारूप्य को प्राप्त हो गया। चिन्मय मेघश्याम दिव्यदेह—भला, अब इस कुत्सित पार्थिव देह पर क्या मोह उसे।

ये कंस के आठो भाई—ये कङ्क, न्यग्रोध, सुनामा, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान्—ये अपने बड़े भाई का बदला लेना चाहते हैं। दुष्ट शस्त्र उठाकर दाँत पीसते दौड़े हैं। श्याम क्रुद्ध है, वह कंस के शव को घसीट रहा है, और ये दौड़े हैं उसकी ओर! दाऊ ने वह गज-दन्त का परिघ उठाया! बड़े वेग से झपटे थे ये आठो; किंतु दाऊ के हाथ का गजदन्त—वन में क्रुद्ध केसरी जब अपनी सटाएं झाड़ता क्षुद्र पशुओं को फेंकता जाता है, उसे क्या फिर किसी की ओर देखना पड़ता है। परिघ का एक हाथ और बस—ये बिछा दिये दाऊ ने आठों को भूमि पर। ये चले थे उसकी उपस्थिति में ही उसके अनुज पर आक्रमण करने!

"जय-जय!" यह गगन में अपार जय-घोष, यह स्तुति की सस्वर ध्वनि और गगन से गिरती यह दिव्य सुमनों की झड़ी! कंस मारा गया। देवताओं का भय दूर हो गया! वे आनन्दो-त्सव मना रहे हैं।

'कनूँ, छोड़ भी दे अब इसे! छिः क्या करता है तू!' श्याम ने भद्र की ओर देखा और संकुचित हो गया। सचमुच शव को घसीटना कुछ अच्छा नहीं है। अब ये सब चिढ़ायेंगे।

× × × ×

'हा नाथ! हा प्राणवल्लभ! आपके मारे जाने से हम सब मृत-सी ही हैं अब! ध्वस्त हो हो गये हमारे गृह! नष्ट हो गयी हमारी प्रजा!' ये अश्रु बहाती, मस्तक और वक्ष पीटती राज-रानियाँ! ये कंस और उसके भाइयों की स्त्रियाँ। केश बिखरे, वस्त्र अस्त-व्यस्त—ये असूर्यम्पश्या राज-वधुएँ; पर जब इनके सौभाग्य के आधार ही न रहे तो फिर किसके लिये लज्जा! शोक के आवेग में इन्हें अपना भी स्मरण कहाँ है।

'हृदयेश, आप नहीं हैं! आपके बिना हमारी भाँति ही यह आपकी राजधानी भी शोभा-हीन हो गयी है! इसके भी उत्सव और मङ्गल समाप्त हो गये! आप न रहे! निरपराध प्राणियों से आपने घोर शत्रुता कर ली थी और उसी द्रोह ने आपकी यह दशा की! अपराध भी किसका कहें, प्राणियों से शत्रुता करके कौन शान्ति पा सकता है!' पतियों के शरीर को अङ्क में लेकर, बार-बार उनका आलिङ्गन करती, उनके केश, मुख, अङ्ग में लगी रक्त कीच हटाती ये सब क्रन्दन कर रही हैं।

"ये श्रीकृष्ण—कितनों ने आप को समझाया कि ये ही समस्त प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले और उनके नष्ट करनेवाले भी हैं। ये ही एकमात्र सबके पालक हैं। इनकी उपेक्षा करके, इनसे द्वेष करके कोई किसी भी प्रकार सुख नहीं पा सकता; किंतु आप इस बात को न समझ सके। हाय, अन्त तक इसे समझ नहीं ही सके!' ये बेचारी नारियाँ, ये आयी थीं यवनिका के पीछे बैठकर मल्ल-क्रीड़ा देखने। किसे पता था कि यह सब देखना होगा।

यें तड़पती, क्रन्दन करती नारियाँ! ये दीना अबलाएँ। इनका सम्मान, इनका आतङ्क—मथुरा में ये सम्राज्ञियाँ—एक मुहूर्त पूर्व की ये महारानियाँ—कोई आश्वासन तक देनेवाला नहीं आज इन्हें। कोई यह कहनेवाला तक नहीं कि अब शोक मत करो! किंतु जिसका कोई नहीं होता, उसी का तो यह कन्हैया होता है। यह निराश्रयों का आश्रय—और कुछ भी हो, शत्रुता तो कंस के साथ समाप्त हो गयी. ये तो उसकी कुछ होती हैं न।

कमल-से लोचन करुणा से भर आये हैं। यह संकुचित-सा, अपराधी-सा बना कृष्णचन्द्र—यह आश्वासन देने आया है इन्हें बढ़कर। यह श्याम—यह तो जैसे क्षमा माँग रहा है। 'जीवन और मृत्यु दोनों पूर्व-निश्चित होते हैं! एक दिन तो यह शरीर जाता ही, इसके लिये शोक करना उचित नहीं है! मुझे आप सब क्षमा करें! अब आज्ञा दें कि मैं क्या करूँ ?

कन्हैया आश्वासन दे और शोक न दूर हो! पर ये शव--मथुरा के परम प्रतापी नरेश का यह शव है और आज इसे कोई उठानेवाला तक नहीं। नगर के लोग घृणा, उपेक्षा से मुख फेर रहे हैं। भय और स्वार्थ से कल तक चाटुकारी करने वाले लोग''''''पर क्या होगा ? ये पतियों के शव सम्मुख पड़े हैं, कैसे शोक दूर हो नारियों का। मोहन व्यस्त हो गया है। बाबा, गोप—अब श्याम चाहता है कि तत्काल इनकी अन्त्येष्टि का प्रबन्ध हो। अन्त्येष्टि तो होगी और धूमधाम से होगी। कृष्णचन्द्र, बलराम, श्रीनन्दराय--जब ये अग्रणी हो गये हैं, तब अन्त्येष्टि तो पूरे राजोचित ढंग से ही होगी। अब कौन है मथुरा में, जो इसमें सम्मिलित होने स्वयं न दौड़ पड़े।

पितृ-दर्शन

"सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥"

—भागवत १०।४५।५

कंस भाग गया, यदुकुल का संकट समाप्त हो गया, देवता पुष्प-वर्षा कर रहे हैं! पुरजन आनन्द मना रहे हैं, जयघोष कर रहे हैं! कंस के सेवक—उसके अनुचर—जब कंस ही नहीं रहा तो उसका अनुचर कौन? बहुत-से भाग गये और जो हैं, वे क्या अब कस के अनुचर हैं? सब हुआ, सब हो रहा है; पर इस महा-समारोह के प्रणेता इन राम-श्याम को जिन्होंने विश्व को भेंट किया वे—वे भुवनवन्द्य वसुदेवजी और चिर-दुःखिनी माता देवकी? ये उनके राम-श्याम आये, ये कुटिल कंस के षड्यन्त्र से बुलाये गये—समाचार पाकर उनके हृदय पर जो बीती···। 'भगवान् नारायण रक्षा करें!' कितनी स्नेहभरी आकुलता—

उन्मत्त गज कुवलयापीड़, चाणूर और मुष्टिक-से महामल्ल—और ये कुसुम-कलेवर बालक! इन्होंने मल्लों में—विश्व के विख्यात मल्लों को खेल-खेल में मार दिया!

कंस—नृशंस कंस इन भोले शिशुओं की मल्ल-क्रीड़ा भी नहीं देख सकता था। वह चिल्लाने लगा!' पता नहीं क्या हो? संवाद सुनने की स्थिरता भी कहाँ है! लौह-शृङ्खलाओं से बँधे पैर और हाथ, घेर कर खड़े सशस्त्र प्रहरी—इतनी भी शक्ति नहीं कि उठकर दौड़ें और अङ्क में छिपा लें अपनी हृदय-निधि को! रुदन—अश्रुधारा और वह भी नीरव! हिचकियाँ लेने की भी स्वाधीनता नहीं। इतनी विवशता, इतनी पीड़ा—कितनी बार मूर्छा आयी, कौन था वहाँ गिननेवाला!

'यह जयघोष! यह उल्लास! क्या हुआ! ये प्रहरी, ये कंस के अनुचर क्यों इस प्रकार आदर, विनय और आतुरतापूर्वक शृङ्खलाएं छिन्न करने लगे हैं? कंस मारा गया! श्याम ने उसे मार दिया! मारे गये उसके सब भाई राम के हाथों! कोई—कोई अब उसके पक्ष में चूँ तक करनेवाला नहीं रहा!' कौन कह रहा है? कौन सुना रहा है यह सुधा-संवाद!

'दौड़ें! दौड़कर हृदय से लगा लें इन दोनों परम प्राणों को!' शृङ्खलाएँ टूट चुकीं, विश्व के आर्तप्राणों के अनादि बन्धन को जो सदा से खण्ड-खण्ड करता आया है, उसकी उपस्थिति में कब तक रह सकती थीं ये जड शृङ्खलाएँ। वे तो टूट गयीं—टूट गयीं और टूट तो जाती हैं उसकी, जो इन भग्न शृङ्खलाओं का स्मरणभर कर लेता है। प्रहरी तो अब दूर मस्तक झुकाये, अञ्जलि बाँधे, थर-थर काँपते दीन-भाव से खड़े हैं। ये बिचारे प्रहरी—इन्हें तो अब अनुग्रह की एक दृष्टि की अपेक्षा है! सब हुआ, पर कौन दौड़ जाय? कैसे दौड़ जाय? हुआ करें बंदी-गृह के उन्मुक्त द्वार। 'कृष्णचन्द्र विजयी हुए!' आनन्द का जो अकूल पारावार उमड़ पड़ा है, शरीर तो जड हो गया उसके आवेग में। ये वसुदेवजी, ये माता देवकी—ये तो मूर्ति की भाँति बैठे हैं दोनों। नेत्रों से अविरल प्रवाह, रोम-रोम मस्तक उठाये—इतना आनन्द, इतना असीम आनन्द! कैसे सम्हाला जाय एक साथ।

× × × ×

'ये आये! ये आ रहे हैं राम-श्याम! ये चले आ रहे हैं, देवता पुष्प-वर्षा कर रहे हैं! गगन और धरा गूँज रहे हैं जयघोष से! सुरगण स्तुति कर रहे हैं! सुरगण भी स्तुति कर रहे हैं इनकी! ये देवताओं के भी प्रणम्य—सुरासुरविजयी कंस को मार दिया इन्होंने एक क्षण में! पर्वताकार

मल्ल इनके इस सुमन-मृदुल श्रीअङ्ग से पिसे पड़े हैं वे भूमि पर! सहस्र गजों की शक्ति रखने-वाले कुवलयापीड़ को इन्होंने हाथों से मार दिया!' धनुर्भङ्ग, अघासुर, बकासुर, केशी, अरिष्ट, धेनुक, पूतना आदि सबके वध की स्मृतियाँ आयीं फिर तो! 'महानाग कालिय को ह्रद में से बलात् निकाल दिया! सात दिनों तो हाथ पर गोवर्धन उठाये रहे!' कैसे कोई मान ले कि राम-श्याम सामान्य बालक हैं। कोई देवता भी इतनी शक्ति कहाँ पा सकता है।

'ये आदिपुरुष साक्षात् नारायण! विश्व के ये परम प्रभु!' बंदी-गृह के उस प्रसूतिकक्ष की सायुध, साभरण ज्योतिर्मय चतुर्भुज मूर्ति को क्या भूला जा सकता है? माता देवकी के अनुरोध पर ही तो वे परम पुरुष शिशु बन गये थे।

'विश्व के परित्राण के लिये, भूभार के हरणार्थ अपनी ही करुणा से पधारे ये पुरुषोत्तम! इनका कौन पिता और कौन माता! इन समदर्शी का कौन शत्रु और कौन मित्र! कंस अधम था, नृशंस था—उसे मार दिया इन्होंने! इनमें क्या माया, मोह, ममता हो सकती है? हम इनके पिता हैं, माता हैं—कैसी उपहासास्पद बात है यह!' हृदय मानता नहीं है। द्वन्द्व चल रहा है अन्तर में। 'यह सुकुमार स्वरूप, ये भोले चन्द्रमुख! ये अपने—अपने ही शिशु; किंतु यह स्तोत्र, यह परा-क्रम और यह अद्भुत माहात्म्य!' कुछ निश्चय नहीं हो पा रहा है!

× × × ×

'भगवान् वासुदेव की जय!' वासुदेव—वासुदेव ही तो! लोग तो पता नहीं क्या कहते हैं! 'वासुदेव—भगवान् वासुदेव—भगवान्...।' ये राम-श्याम—ये आये दोनों भाई। इनके पीछे ये व्रजराज श्रीनन्दराय, ये गोपगण, ये नगरवासी। ये सब लोग आज कितने उल्लास में हैं। 'वसु-देवजी की जय!' ठिकाना है इस गगनघोषी जयध्वनि का। वसुदेवजी, माता देवकी—ये राम-श्याम दौड़कर चरणों में पड़ें हैं और ये तो उठाते ही नहीं। 'भगवान् वासुदेव—भगवान्!' ये तो पीछे हट गये हैं! ठिठके-से खड़े हैं! नेत्रों से अश्रुधारा—यह अञ्जलि बाँधने का उपक्रम—ये किसे प्रणाम करेंगे? यह श्रीकृष्णजी, यह दाऊ, पड़े हैं ये दोनों चरणों में और ये उठाते नहीं! हृदय से नहीं लगाते!

'पिता! माँ' श्रीकृष्ण पुकार रहा है। कितना सुधा-स्निग्ध है यह स्वर।

'पिता—इन जगदात्मा का पिता!' वसुदेवजी का अन्तर्द्वन्द्व सीमापर पहुँच गया है।

'माँ—जो समस्त भुवनों को अपने भीतर लेकर अनन्तशायी हो जाता है, मैं उसकी माँ!' माता देवकी पति के समीप ठिठकी खड़ी हैं।

"पिता, क्षमा कर दो हमको! माँ, तू क्षमा नहीं करेगी?' श्यामसुन्दर तो भाव-विभोर प्रार्थना करने लगा है—'दैव विपरीत था, हम आपके समीप नहीं रह सके! हमारे शैशव, पौगण्ड और कैशोर का आनन्द नित्य-उत्कण्ठित होने पर भी नहीं मिल सका आपको और नहीं मिला हमें आपका स्नेह! नहीं मिला वह मोदभरा लालन! सम्पूर्ण पुरुषार्थों के देनेवाला यह देह जिनसे प्राप्त होता है, जो इसका लालन और पोषण करते हैं, उनके ऋण से सौ वर्षों की पूर्ण आयु में भी कैसे उऋण हुआ जा सकता है। पिता, माँ—जो समर्थ होकर भी अपने शरीर और सम्पत्ति से माता-पिता की सेवा नहीं करता, मरने पर उसे अपना ही माँस-भक्षण करना पड़ता है! वह तो श्वास लेते हुए भी मरा ही हुआ है जो वृद्ध माता-पिता, साध्वी स्त्री, शिशु-पुत्र, गुरु, ब्राह्मण और शरणा-गत की रक्षा नहीं करता! लेकिन हम कहाँ समर्थ थे! इस दुष्ट कंस के भय से नित्य उद्विग्न-चित्त रहकर हमारे ये इतने वर्ष व्यर्थ चले गये! हम कोई सेवा नहीं कर सके आप की! इस कुटिल कंस के भय से त्रस्त, विवश हुए हम आपकी शुश्रूषा करने में असमर्थ रहे, क्षमा कर दें आप हमें!" हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये अपराधी-सा खड़ा यह मयूरमुकुटी, यह नेत्रों में अश्रु लिये दाऊ—योग-माया आकुल हो गयी हैं। भगवद्भाव—वसुदेव-देवकी में यह जो भगवद्भाव आ गया है राम-श्याम के प्रति—यदि यह बना रहे—हो चुकी लीला! महामाया प्रमाद नहीं कर सकती।

'मेरे लाल !' ओह—कब से खड़े हैं ये ! ये सुकुमार हृदयधन—कितने दिनों पर मिले हैं ये। वसुदेवजी—माता देवकी—हाँ, दोनों—दोनों ने साथ ही भुजाएं फैला दीं और राम-श्याम को दबा लिया हृदय से।

पुलक-पूरित शरीर, नेत्रों से बरसती वारिधारा—दाऊ और श्रीकृष्ण की अलकें आर्द्र होती जा रही हैं ! स्नान करते जा रहे हैं दोनों। नेत्रों का यह परम-पावन प्रवाह—यही तो इनका चिरकांक्षित महाभिषेक है ! नेत्र झर रहे हैं, शरीर निश्चल निष्पन्द ! यह स्पर्श, यह सुख—चेतना तदाकार हो चुकी है और ये राम-श्याम—ये दोनों भी तो पिता के, माता के वक्ष को नेत्रों के जल से शीतल करते—वहाँ के वर्षों के ताप को शमित करते निष्पन्दन हो गये हैं।

दूर—व्रजेश्वर कुछ दूर ही तो ठिठककर रुक गये हैं गोपों के साथ। भला, पुरजन कैसे व्रजराज से आगे बढ़ने का साहस कर सकते हैं आज। राम-श्याम का यह मिलन—श्रीवसुदेवजी, देवकीजी—इनके इस आनन्द में व्याघात नहीं करना चाहिये। ये चिर-दुखिया—इनके हृदय का बाँध उन्मुक्त हुआ है आज ! आज इसमें दूसरे को बाधा नहीं देना चाहिये। यह मिलन—बालकों का वसुदेवजी से यह मिलन—बाबा के नेत्र तो अपलक हो रहे हैं। ये तो यहीं से गद्‌गद हो रहे हैं, शिथिल हो रहे हैं ! इनके नेत्रों से भी वही अजस्र प्रवाह चल रहा है।

'भगवान् वासुदेव की जय !' 'श्रीवसुदेवजी की जय !' 'व्रजराज श्रीनन्दरायै की जय !' जय ध्वनि तो गूंजती ही जा रही है।

'श्रीनन्दराय !' वसुदेवजी जैसे सोते-से जगे हों ! 'इस निधि के परम संरक्षक वे विपत्ति के दयामय बन्धु !' दोनों भुजाएँ फैलाकर विह्वल, आतुर दौड़े वसुदेवजी और यह दौड़े व्रजराज बाहु पसारे अपने परमबन्धु से मिलने ! यह उमड़ता सौहार्द-सिन्धु........

'श्री वसुदेवजी की जय !' 'व्रजराज श्रीनन्दराय की जय !' जय ! जय !! जय !!!

—*—

यादव महाराज उग्रसेन

''त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति ।
विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥''

—भागवत १० । ७२ । ४

'कंस बड़ा क्रूर, बड़ा निर्दय, बड़ा नृशंस निकला ! ऐसे पुत्र का पिता हुआ मैं—धिक्कार है मुझे !' महाराज उग्रसेन बंदी हुए और वह भी अपने ही पुत्र द्वारा। राज्य गया, सम्मान गया, सुख गया—यह बंदी-गृह; किंतु कहाँ इन्हें अपने अपमान का खेद है ।

'भोग का काल व्यतीत ही हो चुका था ! राज्य तो कंस का था ही। वह युवराज था—उसे सिंहासन देकर वन में चला जाता और नारायण का भजन करता !' महाराज कहाँ आसक्त थे राजकार्य में । वैसे भी तो सारे अधिकार कंस को उन्होंने ही दे रक्खे थे। 'दयामय श्रीहरि—उन अपार करुणासागर की दया का कहीं पार है । मैं कंस को राज्य देता—वह क्रूरकर्मा—प्रभु ने मुझे उसके अपराधों में निमित्त बनने से बचा लिया ।' जो इस बंदी बनने में भी आराध्य के अनुग्रह का साक्षात्कार करता है, कहाँ शक्ति है शोक में कि उसके हृदय का स्पर्श कर सके। महाराज तो इस बंदी-गृह में भी महाराज ही हैं । यह निश्चिन्तता, यह निर्भयता—कंस का कहाँ साहस है कि वह पिता के सम्मुख भी आये । भगवान् ने एकान्त का सुअवसर दिया है। महाराज अपने भजन-पूजन में उसका पूरा उपयोग कर लेना चाहते हैं ।

'कंस ने देवकी का पुत्र मार दिया !' यह स्वार्थी पिशुन कंस—यह कोई न कोई अत्याचार करता ही रहता है । 'प्रभो ! दयामय ! इस मूर्तिमान् पाप से पृथ्वी का परित्राण करो !' महाराज की प्रार्थना उनके हृदय से निकलती है। 'कंस पुत्र है, पुत्र के कर्मों में पिता का भी भाग होता है !' कितनी व्यथा होती है महाराज को ! इस शिशुघाती कंस से कब यदुवंश का त्राण होगा ! यह पवित्र भोजवंश का कलङ्क—महाराज ने कितनी बार अपने को धिक्कारा है। कितनी बार वे व्याकुल हुए हैं यह सोचकर कि कंस उनका पुत्र है। 'अवश्य मैं ही पापी हूँ ! मुझ में पाप न होता—यह क्या इतना दुर्जन हो जाता !'

'यदुवंश उत्पीड़ित हो रहा है ! लोग भाग रहे हैं ! कंस के अनुचर ऋषि-मुनियों के आश्रमों को ध्वस्त कर रहे हैं !' महाराज हृदय को वज्र बनाकर सुनते इन संवादों को ! प्राणों के समान जिन यदुवंशियों का पालन किया उन्होंने—निर्वासित हो रहे हैं, घर-द्वार छोड़कर जीवन के भय से भागने को विवश हो रहे हैं वे ! परमाराध्य, भुवनवन्द्य विप्रों पर अत्याचार—जिनकी सेवा में शरीर अर्पण करना भी वे अपना सौभाग्य समझते थे—उनका पुत्र उन्हीं परमपावन ऋषि-आश्रमों को ध्वस्त कर रहा है !' लज्जा, शोक, क्रोध,—पिञ्जरबद्ध केसरी और करे भी क्या ?

'देवकी के अष्टम पुत्र के बदले कन्या हुई ! वह भगवती कह गयी है—कंस का मारनेवाला कहीं उत्पन्न हो चुका !' महाराज को परम प्रसन्नता हुई उस दिन यह सुनकर। इस नृशंस से पृथ्वी की रक्षा तो हो !'

'साक्षात् नारायण ने अवतार धारण किया वसुदेवजी के यहाँ ! वे किसी प्रकार गोकुल पहुँच गये ! पूतना, बकासुर-अघासुर—कंस के प्रधान-प्रधान अनुचर खेल-खेल में मार दिये उन्होंने !' पता नहीं कैसे समाचार हैं ये—'आराध्य अवतीर्ण हुए—इस अधम पर भी दया करेंगे ! कहाँ ऐसा सौभाग्य हो सकता है। धरा पावन हो ! ये असुर नष्ट हों !' महाराज को इतने में ही संतोष है ।

'अरिष्ट को मसल दिया उन्होंने ! केशी यमलोक पहुँच गया ! अब कंस ने मथुरा बुलाया है उन्हें !' समाचार तो पहुँच ही जाते हैं और उन सर्वेश के समाचार—जिसके प्राण उसी में लगे हैं, जिसके कर्ण उसकी लीला-सुधा के चिर-पिपासु हैं, उससे कैसे छिपे रहते हैं उसके चरित !

'प्रभु पधारे मथुरा ! धन्य है यह भूमि !' महाराज के हृदय में तुच्छ कंस का भय आतङ्क नहीं उत्पन्न कर सकता। 'अब अवश्य यह अन्याय, अधर्म मिटकर रहेगा !' उनमें एक जीवन आ गया है इस विश्वास से।

'भगवान् वासुदेव की जय !' यह गूँजता गगनभेदी-घोष।

'भगवान् वासुदेव की जय !' पूरे उच्च स्वर से अपने एकाकी बंदी-कक्ष में महाराज ने जयघोष किया। कंस कैसे उन्हें मल्ल-रङ्ग में उपस्थित होने देता। वृद्ध महाराज को देखकर कहीं प्रजा में कुछ उत्तेजना हो........।

'कंस मारा गया ! श्रीकृष्ण ने मार दिया उसे ! उसके सभी भाई मारे गये !' महाराज के सभी पुत्र मार दिये गये—यह बात जैसे उनके हृदय को स्पर्श ही नहीं करती। 'सच, कंस मारा गया ? उसके सभी क्रूरकर्मा भाई मारे गये ? भगवान् वासुदेव की जय !' ये तो इतने उल्लास से जयनाद कर रहे हैं, जैसे यह वध चिर-अभीष्ट रहा हो इनका।

'कंस मारा गया ! यदुवंश का कलङ्क दूर हो गया !' एक घोर चिन्ता, तिल-तिल, क्षण-क्षण दबाये रहनेवाला शोक दूर हो गया। प्रभु—वे वासुदेव मथुरा में ही हैं ! वे करुणा-वरुणालय—मैं अधम सही, पापी सही, उनकी दया के वरदान की भी कोई इयत्ता है ! एकबार उन श्रीचरणों को देख पाता ! एक बार उस भुवन-मोहन-झाँकी को इन नेत्रों से देख लेता !' प्राणों में यह जो प्यास तड़पने लगी है—बढ़ती जाती है—बढ़ती ही जाती है यह। महाराज एक झाँकी की प्रतीक्षा लिये आकुल हो रहे हैं। वे ही दया करें तो—प्रार्थना करने का भी तो अधिकार नहीं है !

× × × ×

'महाराज उग्रसेन की जय !'

'यादव महाराज उग्रसेन की जय !'

'महाराज उग्रसेन और महाराज ? कौन हैं वे लोग ? क्यों यह जयघोष इस कारागार की ओर बढ़ता आ रहा है ? क्यों अब इस दुर्बल, कलङ्कित, शक्तिहीन को इस प्रकार लज्जित किया जा रहा है ?' महाराज चञ्चल हो उठे हैं। यह जयघोष—उच्च-से-उच्चतर होता जा रहा है यह !

'यह खुला द्वार ! कौन ? कौन ?' यह पीताम्बरधारी, मयूरमुकुटी, इन्दीवर-दल-नील वनमाली—इसका भी क्या परिचय अपेक्षित होता है। यह इसके साथ स्वर्ण-गौर, नीलाम्बरधारी ! महाराज तो जैसे मूर्ति बन गये हैं। पलकें गिरनी बंद, नेत्रों से वारिधारा, शरीर निष्पन्द !

'यादव महाराज उग्रसेन की जय !' यह घन-गम्भीर घोष ! यह श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं जयनाद करता आ रहा है।

'प्रभो ! करुणामय ! भक्तवत्सल ! इस अधम पर आपका इतना अनुग्रह !' महाराज को बहुत कुछ कहना था—वहाँ, कुछ भी तो स्मरण नहीं आता ! जो थोड़े शब्द हैं—गद्गद कण्ठ उन्हें प्रकट करने में समर्थ कहाँ है। यदि वे कुछ कहें भी—उनकी प्रार्थना के शब्द क्या सुने जा सकेंगे ? यह श्यामसुन्दर—यह तो बार-बार जयनाद कर रहा है—'महाराज उग्रसेन की जय !'

महाराज की प्रार्थना के शब्द—केवल प्रार्थना के शब्द ही इस जयघोष में डूब गये हों—डूब तो गये प्रार्थना के भाव भी ! यह कन्हाई मुस्कराया ! इसका हास्य ही तो मोहिनी माया है और यह कह रहा है—'नानाजी, क्षमा करें अपने इन अपराधी बच्चों को !' यह प्रणाम कर रहा है।

'बच्चे—बच्चे ही तो ! यह गौर-श्याम मूर्ति, यह सौन्दर्यघन श्रीविग्रह ! यह सुकुमार वय ! ये अपने ही तो बच्चे हैं !' उग्रसेनजी तो वात्सल्य-विभोर हुए, दोनों को वक्ष से लगाये अपने अश्रुओं से इनकी कुटिल अलकों को आर्द्र करने लगे हैं।

⌘ ⌘ ⌘ ⌘

'महाराज, सिंहासन को भूषित करें!' यह कैसा अनुरोध है। कंस की अन्त्येष्टि कितनी धूमधाम से करायी इन्होंने—दुष्ट, क्रूर, शिशुघाती कंस की अन्त्येष्टि! उसने इनके ही सात अग्रजों का जन्मते ही वध कर दिया और ये—ये दयामय उसकी अन्त्येष्टि में कितने व्यस्त रहे हैं; पर क्या मथुरा का राजसिंहासन इनके श्रीचरणों से पवित्र न होगा? महाराज उग्रसेन इस समय कुछ भी बोलने में असमर्थ हैं। उनका कण्ठ भर आया है।

'मैं वृद्ध, असमर्थ—जो बंदी रह चुका हो, उसका शौर्य तो अस्त हो चुका! मैं क्या शासन करूँगा! कहाँ इस प्रलोभन में डालते हैं आप! महाराज कुछ कहें या न कहें, उनके नेत्र तो सब कुछ कहे ही दे रहे हैं।

'महाराज, हम सब आपकी प्रजा हैं! हम बड़ी आशा से इस आयोजन में एकत्र हुए हैं! आप जानते ही हैं कि ययाति के शाप के कारण हम यदुवंशी राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकते! आप कृपा करें! आचार्य प्रतीक्षा कर रहे हैं!' ये श्रीकृष्णचन्द्र तो आज समस्त सभासदों की ओर से बोल रहे हैं। ये प्रजा हैं—ये त्रिभुवनपति सर्वेश—ये इस क्षुद्र की प्रजा! पर अपने भाव-स्निग्ध भक्तों के ये क्या नहीं बनते!

ययाति का शाप! अन्ततः उग्रसेनजी भी तो यदुवंशी ही तो हैं। उनके लिये भी तो वैसा ही, वही शाप है। भोजकुल ने अपने पूर्वजों के उस शाप की उपेक्षा कर दी और वृष्णिवंश सदा से मर्यादा की रक्षा करता आ रहा है। स्वयं उग्रसेनजी जब एक बार सिंहासन स्वीकार कर चुके हैं—कैसे कहें कि वह शाप तो मुझ पर भी वैसा ही है। वृष्णिवंश धन्य है! अपने पूर्वज के शाप—उसके वचन की मर्यादा का कभी भङ्ग नहीं किया उसने और आज श्रीकृष्णचन्द्र उसी गौरव को क्यों प्रोज्ज्वल न करें।

"महाराज, आप शङ्का न करें! सिंहासन पर आसीन हों और हम प्रजाजनों को आदेश दें! मैं आपका भृत्य हूँ—मैं आपकी आज्ञापालन में उपस्थित हूँ! किसी का साहस नहीं कि आपके आदेश का अतिक्रमण कर सके! आपके चरणों में श्रद्धाञ्जलि से अपने उपहार अर्पित करने में *महेन्द्र, वरुण, कुबेरादि समस्त देवता तक अपना सौभाग्य मानेंगे, सामान्य नरेशों की तो* चर्चा ही क्या!" त्रिभुवनाधीश जिसके पार्श्व में खड़ा होगा, महेन्द्रादि उसके पदों में प्रणत होने में अपने को धन्य मानेंगे ही।

ये श्रीकृष्णचन्द्र आग्रह कर रहे हैं! ये तृण को भी आदेश दे दें तो वह महेन्द्र के वैभव का अधिकारी हो जाय! ये जिसे गौरव दें, वही तो विश्ववन्द्य है। किस में साहस है इनकी इच्छा का प्रत्याख्यान करने का। ये चाहते हैं—इनका आदेश—इनकी आज्ञा के पालन में ही तो प्राणी का परम मङ्गल है और अब तो ये हाथ पकड़कर उठा रहे हैं। ये तो भ्रूसंकेत से किसी को अमरावती तो क्या, ब्रह्मलोक के अधीश्वर का आसन दे सकते हैं और अब ये हाथ पकड़कर जब बैठा रहे हैं राज्यासन पर उग्रसेनजी को—

'यादव महाराज उग्रसेन की जय!'

श्यामसुन्दर के जयघोष में ही समस्त मङ्गल-कृत्यों की पूर्णता हो चुकी! आचार्य गर्ग अब अभिषेक करेंगे, मङ्गल-पाठ होगा........होगी ही यह सब विधि तो। जहाँ मङ्गलों का स्वयं अधिष्ठाता अग्रणी है, वहाँ विधियों को भी तो धन्य होना है।

दोनों अञ्जलि फैलाकर अपने रत्नोपहार भेंट किये श्रीकृष्णचन्द्र ने और अभिवादन किया! कृतार्थ हो गया मथुरा का राजसिंहासन। दाऊ ने अपने उपहार देकर प्रणिपात कर लिया और अब तो इस पुण्यपर्व में, इस भुवनवन्द्य तीर्थ में अपनी श्रद्धा आवेदित करके पवित्र होना है सबको। जहाँ श्यामसुन्दर का मयूर-मुकुट नत हुआ है—उससे परम-पावन तीर्थ किसे कहाँ मिलना है। व्रजराज ने उपहार दिये अपने और ये नम्रता, सरलता की मूर्ति—महाराज ने सिंहासन से उठकर भुजाओं में भर लिया उन्हें। मथुरा के सिंहासन को प्रथम उपहार व्रजपति के द्वारा दिये जाने का पुरातन नियम सार्थक हो गया।

'व्रजेश, कंगाल है उग्रसेन ! आपकी अनुकम्पा ने इसे यहाँ बैठा दिया !' महाराज के प्रेम की सीमा नहीं है और सीमा नहीं है व्रजपति के प्रेम की !

बाबा ने उपहार दे दिया ! व्रजराज का उपहार—सिंहासन के पूर्णाधिकार की तो स्वीकृति हो गयी इस सम्मान से ही। औरों को तो अब अपने को सार्थक करना है। अनुगतों की पंक्ति में आना है।

× × × ×

'कौन-कौन चले गये हैं ? कहाँ चले गये हैं ?' श्रीकृष्णचन्द्र व्यस्त हो उठे हैं। कंस के भय से यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह, कुकुर आदि के वंशज यादव-गण, उनके परिजन, सुहृद्, सम्बन्धी—बेचारे स्वगृह, स्वदेश, त्यागकर पता नहीं कहाँ चले गये। कितना कष्ट, कितनी यातना सहनी पड़ी उन्हें। अब नित्य मथुरा से चर जाते हैं पता लगाने। नित्य सहस्र-सहस्र रथ जाते हैं—सबको लाना है, सम्मानपूर्वक ले आना है ! जन्म-भूमि उनका स्वागत करने को समुत्सुक है।

'कंस मारा गया ! महाराज उग्रसेन पुनः सिंहासनासीन हुए !' कितना मङ्गल-समाचार है ! लोग स्वतः गृहों को लौट पड़े हैं। दूसरे राज्यों में सम्मान, सम्पत्ति—सब सही, पर क्या वहाँ जन्म-भूमि सा अपनत्व मिलेगा ?

'सब के गृह राजकोष से बनवा दिये जायँ ! पूर्वापेक्षा विस्तृत, सुसज्जित बनवा दिये जायँ !' आदेश हो चुका है। भवनों की श्रेणियाँ प्रस्तुत हो गयी हैं ! 'आप अपने गृहों में सुख से निवास करें ! आप की ही कृपा से तो मथुरा की श्री है !' श्रीकृष्णचन्द्र तो तुच्छतम व्यक्ति को भी महत्ता देने लगे हैं। प्रत्येक का आदर, प्रत्येक का सत्कार और यह अपार धन-राशि—कंसकी की हुई हानि कितनी तुच्छ हो गयी है इसके सम्मुख। धन, रत्न, वस्त्र, गौ, वाहन, सेवक—सभी तो गृहों में राज्य-सेवक पहुँचा गये हैं। मथुरा का यह वैभव, राम-श्याम का यह अनुग्रह, अमरावती का अधीश्वर भी ईर्ष्या करे इससे। उत्कण्ठा हो देवराज के भी मनमें—यदि कंस ने उन्हें भी निर्वासित कर दिया होता ! यदि वे भी मथुरा में आ पाते—इतना सौभाग्य कहाँ उनका ।

—❀⊃❀⊃❀—
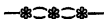
बाबा की बिदाई

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥"

कंस मारा गया। असुरों के उत्पात समाप्त हो गये। रहे-सहे कंस के अनुचर दिशाओं में भाग गये। महाराज उग्रसेन ने पुनः सिंहासन प्राप्त किया। देश-देशान्तरों में भागे यदुवंशी इतने दिनों के कष्ट के पश्चात् स्वदेश लौट रहे हैं। उनका सत्कार हो रहा है। यह सब हुआ श्रीकृष्ण के द्वारा! श्रीकृष्ण—श्याम, व्रज के युवराज—इसी कन्हैया ने ही तो इस विपत्ति से पूरे राज्य का उद्धार किया है। बाबा, गोप-गणों के आनन्द की कोई सीमा नहीं है। मथुरा में उनका गौरव सदा प्रथम कोटि का रहा है और अब—अब तो सभी उन्हें परम श्रद्धा, परमादर से प्रणाम करते हैं।

महाराज उग्रसेन ने चाहा था कि व्रजराज का आतिथ्य वे सिंहासन की ओर से कर सकें; लेकिन श्रीवसुदेवजी की श्रद्धा, उनका सौहार्द—बाबा मथुरा में हों और अन्यत्र कहीं किसी के अतिथि बनें—यह तो उन दुर्दिनों में भी शक्य नहीं था और आज—आज तो वसुदेवजी का भवन ही तो वास्तविक राज-सदन है। वे अपने इन भाई का सत्कार करने में आज कहाँ तृप्त हो पाते हैं।

श्रीवसुदेवजी का स्नेह, उनका आग्रह—दिन बीतते जा रहे हैं! व्रज में जाना है, नित्य वहाँ से संवाद आते हैं, नित्यचर यहाँ से जाते हैं—नित्य प्रस्थान का उपक्रम होता है, और—श्रीवसुदेवजी के प्रमानुरोध को तोड़ कैसे दिया जाय। श्याम अपने अग्रज के साथ देवकीजी के भवन में ही रात्रि-विश्राम करता है। अपने बड़े भाई से पृथक् रह भी तो नहीं पाता वह। आज-कल बहुत व्यस्त रहता है। महाराज उग्रसेन तो बिना उससे पूछे कोई काम करना ही नहीं चाहते। कन्हैया बहुत चतुर, बहुत बुद्धिमान् है छोटेपन से। निर्वासित यदुवंशी प्रायः नित्य आते हैं और वह उनको गृह-सम्पत्ति, वाहनादि दिलाकर उनकी व्यवस्था करता है। वही नगर की, सेना की, सभासदों की सम्पूर्ण व्यवस्था का संचालक हो रहा है आज। श्याम बहुत व्यस्त रहता है; बहुत व्यस्त रहता है और तब भी दिन में बार-बार आता है। पता नहीं क्या-क्या—कितनी अद्भुत बातें कहता है। किस प्रकार बाबा को समझाने का प्रयत्न करता है। कितनी बार आता है नित्य और कितना कार्य-व्यस्त है आज-कल। व्रज का यह युवराज—यह तो मथुरा का स्वतः-सिद्ध संचालक बन गया है। महाराज उग्रसेन का कितना स्नेह है इसपर। कंस ने मथुरा की समस्त व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त कर दी थी। कन्हैया सबको सँवारने में लगा है। उसे इसमें प्रसन्नता है। कुछ दिन ऐसा ही सही, अपने-आप दो-चार दिन में उत्साह शिथिल हो जायगा इसका और अभी मथुरा को भी तो उसके इन कार्यों की आवश्यकता है। प्रेमवश सब उसकी बात शीघ्र मान लेते हैं।

तपोवन पुनः वेदध्वनि से गगन को पवित्र करने लगे हैं। द्विजों की सविधि आहुतियों से उठा धूम्र दिशाओं को पावन करने लगा है। भगवान् नारायण के मन्दिरों से गूँजती शङ्ख-ध्वनि—घण्टा-निनाद मानव के कलुष को ध्वस्त-भ्रस्त करता है अब। मथुरा सम्पत्ति, सुख, मङ्गल का आकर हो गयी है। 'यह सब श्रीकृष्णचन्द्र का अनुग्रह है!' समस्त पुरजन, सभी नर-नारी यही तो कहते हैं। श्रीकृष्ण का अनुग्रह—पर श्रीकृष्ण को अब घर भी तो चलना चाहिये। गोपियाँ, गायें, बछड़े, व्रज भी भूमि का अणु-अणु, पत्र-पत्र उसकी आकुल प्रतीक्षा कर रहा है।

'कनूँ तो अब पूरा ही बदल गया !' सखाओं का मन इस मथुरा में कैसे लगे। यह महा-नगर, यह राज-सदन, ये ठाट-बाट और यह श्याम अब दिनभर सेवकों से घिरा आदेश देने में ही व्यस्त रहता है। यह लोगों के स्वागत-सम्मान में ही थका जाता है। आता है, मिलता है, हँसता है; पर वह वृन्दावन, वह उन्मुक्त कानन, वह स्वच्छन्द-क्रीड़ा। कहीं उपवन में स्वच्छन्द विचरण करनेवाला पक्षी पिंजरे में प्रसन्न हो सकता है। लौह-पिञ्जर न सही, यह स्वर्ण और रत्न का पिंजड़ा! कन्हैया इसमें स्वयं कितना दुबला हुआ जा रहा है। बालक तो व्यग्र हो गये हैं। श्याम चलता नहीं—वह चले तो ये भाग जायँ, छकड़ों की प्रतीक्षा भी न करें, भाग जायँ अपने व्रज में।

× × × ×

'अभी क्या शीघ्रता है!' श्रीवसुदेवजी बराबर व्रजेश को व्रज लौटने से रोकते जा रहे हैं। बराबर वे इस प्रश्न को टालते जा रहे हैं। कितना प्रेम है उनका अपने बन्धु से।

'कन्हैया को अब यहाँ भेज दें!' गोपों का आग्रह उचित ही तो है। बाबा कितने समुत्सुक हैं। कब तक इस प्रकार मथुरा में वे निवास करें।

'श्रीकृष्ण तो है ही आपका! अब दो दिन तो वह रह ले!' वसुदेवजी विह्वल हो जाते हैं। उनकी वह स्नेह-थकित दशा—बाबा का अनुरोध भी मूक बन जाता है।

'वासुदेव! भगवान् वासुदेव! वासुदेव श्रीकृष्ण!' ये मथुरावासी पता नहीं क्या कहते हैं। उस दिन कंस के मरने पर इन लोगों ने 'भगवान् वासुदेव' की जयध्वनि से गगन गुञ्जित कर दिया। गोपों को बड़ा अद्भुत लगा, उनके भोले, सरल, चपल कन्हाई को ये नगरवासी पता नहीं क्या-क्या बना देना चाहते हैं; किंतु—अब तो आशङ्का होने लगी है—'वासुदेव श्रीकृष्ण!' तो ये कृष्णचन्द्र को वसुदेवपुत्र बनाकर ले लेना चाहते हैं? कन्हैया को ही ले लेना चाहते हैं?

'वसुदेवजी श्रीकृष्ण को भेजने में बराबर आनाकानी करते जा रहे हैं। वे टालते जा रहे हैं। सुना है श्याम देवकीजी को 'माँ' कहता है। वह तो सभी को स्नेह करता है। उसपर सभी का अनुराग रहा है सदा से; पर यह जो नगर में चर्चा है! ये नगरवासी जो श्याम को वासुदेव कहने लगे हैं!' गोपों का हृदय शङ्कित होने लगा है। वे चिन्तित हो उठे हैं।

'हम सब यहाँ मर मिटेंगे! हम संग्राम करेंगे और इन नागरिकों को भी पता लगेगा कि गोपों की भुजाओं में कितनी शक्ति है! कन्हैया को लिये बिना कौन व्रज जायगा! हमारा युवराज और उसे ये यादव छल से छीन रहे हैं!' कितनी आशा, कितने उल्लास, कितने प्रेम का आधार है यह व्रजयुवराज! कितनी तपस्या से व्रज ने पाया है इसे। व्रज के इस जीवन-धन को खोकर व्रज कैसे जीवित रहेगा। गोपों में उत्तेजना आये, वे मरने-मारने पर उद्यत हो जायँ—क्या अस्वा-भाविक है इसमें।

'श्यामसुन्दर को आज चुपचाप भगा देना है! व्रजेश्वर और एक सबल यूथ साथ जायगा! हम लोग यहाँ शस्त्र-सज्ज सावधान रहेंगे! देख लेंगे मथुरा की शक्ति को! एक दिन सभी को मरना है! कोई अमर होकर यहाँ नहीं आया है! हमारे कन्हैया को हमारे रहते कोई छीन लेगा हमसे!' उत्तेजना सीमापर पहुँच चुकी। जब वृद्धों के चिन्ताशील मस्तक झुक जाते हैं, जब उनकी अनुभव-पक्व मेधा कोई मार्ग नहीं पाती, तभी तो तरुणों के सबल रक्त की उत्तेजना प्रज्वलित अङ्गार-सी फुंकारती पथ बना देती है। उसी समय तो युवकों के आवेश निराशा के अन्धकार में ज्योतिः दीप्त करते हैं।

'श्रीवसुदेवजी मेरे भाई हैं। वे हमारे परम सुहृद्—उनसे कलह की जाय!' व्रजपति का हृदय व्यथा से चीत्कार कर उठा है। वसुदेवजी से संघर्ष—यह भी क्या सोचने की बात है? 'मुझे एक अवसर दें आप सब! मैं आज ही सब बातें पूछ देखता हूँ! जिसने सत्य की रक्षा के लिये अपने नवजात शिशु क्रूर कंस के हाथों सौंप दिये, वह झूठ तो नहीं ही बोलेगा!' बाबा ने निश्चय कर लिया। मथुरा के लोग कुछ कहें, पर उन्हें अपने बन्धु पर पूरा भरोसा है। गोप भी तो अवि-श्वास का कोई कारण नहीं देखते।

× × × ×

'मैं किस मुख से कहूँ कि श्रीकृष्ण मेरा है ! वह देवकी की गोद में आया ! अँधेरी अर्ध-रात्रि में उसे उठाकर मैं रख आया ब्रजरानी के अङ्क में। और आज मैं उसे अपना कहूँ !' ये वसुदेवजी क्या कह रहे हैं ? इनके ये अश्रु, यह भाव-विह्वल दशा, यह थकित वाणी—असत्य तो नहीं कहते हैं ये।

'कृष्ण !' हाय--ओह ! हृदय पर ही जैसे वज्र पड़ा हो ! 'कन्हैया मेरा नहीं है ! नहीं है श्याम मेरा !' बाबा के नेत्र तो फटे, उन्मत्त-से हुए वे और संज्ञाहीन हो गये। यह विवर्ण—हे प्रभो ! योगमाया—योगमाया भी आतुर हो उठी हैं अन्तरिक्ष में। व्रजेश का वात्सल्य—बाबा के प्राण—पर वे योगमाया के आराध्य की निधि हैं। उनके सम्बन्ध में प्रमोद नहीं किया जा सकता।

'वह बालिका—मैं उसे आपके यहाँ से चोर की भाँति उठा लाया ! उठा लाया यहाँ ! मुझ अधम ने अपने पुत्र की रक्षा के लिये अपने ही भाई की एकमात्र कन्या की बलि दे दी !' वसुदेवजी ही कहाँ संज्ञा में हैं। वे भी तो प्रलाप कर रहे हैं। कौन सुने अब उनका यह प्रलाप ! कोई सुने या न सुने, वे तो कहते जा रहे हैं—'तुमने श्रीकृष्ण को पाला, अपने प्राणों क समान रक्षा की उसकी ! उसके लिये क्रूर कंस के कोप-भाजन बने ! असुरों के उत्पात सहे और मैं कृतघ्न—यह विश्वासघाती नीच—तुम मुझे धिक्कारो ! तिरस्कार करो मेरा ! आज तक मैं तुमसे कपट करता रहा ! अपने स्वार्थ के लिये मैंने तुम्हें धोखा दिया।'

'भाई !' ये व्रजराज तो संज्ञा पाते ही उन्मत्त-से आलिङ्गन करने लगे हैं वसुदेवजी को योगमाया--क्लान्त शान्त योगमाया—उन्हें ही जैसे जीवन का वरदान मिला है। व्रजराज का वात्सल्य—वे सर्वश शक्ति न दें, इन वात्सल्य-कातर प्राणों को टिकाने में कहाँ समर्थ हो सकती हैं वे। 'भाई ! श्याम तुम्हारा ही है। आचार्य गर्ग ने संकेत किया था, कहाँ समझ सका मैं उस समय ! तुम्हारा ही है कृष्ण ! ये तो इस प्रकार हृदय से लगा रहे हैं वसुदेवजी को, जैसे श्रीकृष्ण ही को भेंट रहे हों। अन्ततः वसुदेवजी कन्हैया के पिता हैं न !

'कृष्णचन्द्र अपना नहीं है ! नहीं है व्रज का कोई युवराज !' गोपों में से अधिकांश मूर्छित हो गये। सब के नेत्र जैसे सूख गये शोक के वेग में। मुख पीले हो गये एक क्षण—ये सब तो जैसे वर्षों के रोग-पीड़ित हों। शरीर में न तेज, न श्री, न शक्ति !

'कनूँ अपना नहीं है ?' ये सरल बालक—ये नवनीत-सुकुमार हृदय ! अब यह कृष्णचन्द्र आकर स्वयं एक-एक को उठा रहा है ! नाम लेकर पुकारकर, मुख पोंछकर, पटुके से अङ्ग पोंछता चेतना में ला रहा है और ये उठते हैं, नेत्र फाड़-फाड़कर देखते हैं उसकी ओर—नहीं, कनूँ उन्हीं का है। उन्हीं का--सदा से, सदा के लिये उन्हीं का ! कौन कहता है कि वह उनका नहीं है ! यह आशा न हो—उनके नन्हे सुकुमार-प्राण क्या एक पल टिक सकते हैं।

× × × ×

'बाबा, आप इतने व्याकुल क्यों होते हैं !' यह कन्हैया, यह दाऊ—ये दोनों व्रजराज के अङ्क में आ बैठे हैं। बाबा तो इन्हें हृदय से लगाये एक टक इनके कमल-मुख को देख रहे हैं। अश्रु-धारा चल रही है। हिचकियाँ बँध गयी हैं। श्याम अपने पटुके से बाबा के नेत्र बार-बार पोंछता जा रहा है।

'बाबा, आपने पिता से भी अधिक स्नेह से हमारा लालन-पालन किया ! अपने प्राणों से भी अधिक हमें माना !' कन्हैया का भी कण्ठ गद्‌गद हो गया है और यह दाऊ—दाऊ तो नहीं बोल सकेगा। इसने तो बाबा के अङ्क में मुख छिपा लिया है और कदाचित् अश्रु बहा रहा है।

'कौन कहता है कि मैं आपका पुत्र नहीं हूँ !' श्याम का यह स्वर—यही स्वर तो व्रज के जीवन का आशा-सूत्र है। 'कुछ भी कहें लोग, वही तो पिता है, वही तो वास्तविक माता है, जो असमर्थ माता-पिता द्वारा त्यक्त शिशुओं का पोषण अपने पुत्र के समान करते हैं। बाबा, मैं आपका ही पुत्र हूँ !'

'आप सब व्रज को पधारें ! यहाँ के सुहृदों के सुख की व्यवस्था करके हम दोनों भी स्नेह-कातर व्रज-बन्धुओं, अपने समस्त जाति-बान्धवों से मिलने शीघ्र ही आयेंगे !' श्यामसुन्दर ने एक-एक गोप, एक-एक गोप-बालक के अश्रु पोंछे पीतपट से। राम-श्याम सबसे मिले। सबको आश्वस्त करने का पूरा प्रयत्न किया।

'ये हमारी प्रसन्नता के लिये....!' ये बहुमूल्य वस्त्र, दिव्य रत्नाभरण, दुर्लभतम रसों के स्वर्ण-घट—इनकी यह विशाल राशि—गोपों को क्या यह सुरासुर-दुर्लभ सम्पत्ति आकर्षित कर सकती है ! जब उनका यह इन्द्रनील-मणि ही मथुरा में रहा जाता है—क्या काम आयेंगे ये वस्त्र, क्या होंगे ये आभरण ! किस उपयोग के हैं ये रस। कन्हैया जब अपने धूलि-धूसर अङ्गों से अङ्क में कूदते आ बैठने को समीप नहीं—वस्त्रों की कोमलता, सुन्दरता किस काम की है ? इन आभूषणों में किसकी झाँकी देखी जायगी अब ! कौन इन रसों का आस्वादन करके कृतार्थ करेगा इन्हें ? किंतु ये राम-श्याम के उपहार हैं, कन्हैया अपने करों से इन्हें पहना रहा है, सजा रहा है छकड़ों में। 'यह मैया के लिये, यह महर्षि शाण्डिल्य के लिये, यह....।' इसे तो एक गौ, एक वृषभ, एक बछड़ा, एक शुक-सारिका तक स्मरण है। गोपियों, गोपों, नन्हे शिशुओं, विप्रों, सेवकों और गायों, बछड़ों, वृषभों, गृहके—गोप गृहों के पालित पशु-पक्षियों तक के लिये नाम ले लेकर उपहार रखता जा रहा है यह। सबके लिये वस्त्र, आभूषण या उत्तम भोज्य रसादि—इन दोनों भाइयों के ये अपार उपहार कोई कैसे इन्हें अस्वीकार कर देगा ! ये ही स्मृति-चिह्न तो जीवन के आश्वासन-सूत्र हैं।

महाराज उग्रसेन, श्रीवसुदेवजी, मथुरा के ये मुख्यतम लोग—पूरी मथुरा ही तो व्रजराज को विदा करने एकत्र हो गयी है। महाराज ने अपने उपहार सीधे व्रज भेज दिये हैं। मार्ग में समस्त सुविधाओं की व्यवस्था हो चुकी है। अब तो सबके नेत्र निर्झर बने हैं। वाणी रुद्ध है। सब विह्वल हो रहे हैं। यह क्या पूरी मथुरा ही व्रज को जायगी आज ? छकड़े तो खाली ही जा रहे हैं। यह नीरव—प्रेमाकुल समाज—यह क्या पैदल ही व्रज तक चला जायगा।

'आज सब लौटें अब !' कन्हैया ने ही अनुरोध करके नगर-वासियों को लौटाया। जैसे वह तो अग्रज के साथ व्रज ही जा रहा है। नगरवासी—कितने आतुर, कितने विह्वल-से ये रुक गये हैं। कौन लौटेगा अभी। ये यहाँ खड़े हो गये हैं, यहीं से एकटक देख रहे हैं।

'महाराज पधारें अब !' बाबा ने किसी प्रकार अनुरोध किया। महाराज उग्रसेन—उन्हें तो लगता है कि अभी कुछ ही पद तो आये हैं। क्या किया जाय, अधिक अनुरोध से व्रजेश को कष्ट होगा। वे संकोच के कारण रथ पर भी बैठ नहीं रहे हैं। महाराज को विवश हो रुकना ही है।

'आपको भी लौटना चाहिये अब ! कृष्ण बड़ा संकोची है, इसे कष्ट न हो !' बाबा को पता नहीं क्या-क्या कहना है, पर कण्ठ कहाँ कहने देता है। अश्रु—हृदय की व्याकुलता—भुजा फैलाकर मिले वे वसुदेवजी से। वसुदेवजी की ही वाणी कहाँ व्यक्त हो पाती है ! कहाँ कह पाते हैं वे—'मेरे विपत्ति के परम सहायक, मेरे प्राणप्रिय बन्धु ! यह कृष्ण तो तुम्हारा ही है ! तुम्हीं आकर इसकी खोज-खबर लेते रहना !' पर नहीं—वे आज बोल नहीं पा रहे हैं। गोपों से, बालकों तक से बारी-बारी, बार-बार मिलते हैं। व्रजेश बार-बार लौटने का अनुरोध करते हैं ! अब रुकना ही चाहिये उन्हें ! व पुनः बढ़ चलते हैं—पद स्वयं चलने लगते हैं आगे और फिर वही मिलन, वही अनुरोध—वही व्याकुलता।

'राम-श्याम—इस कन्हैया को, दाऊ को भी विदा करना है !' प्राण हाहाकार करते हैं। कहाँ विदा करना है इन्हें ! ये साथ न हों—एक पद आगे बढ़ा जा सकेगा ?' बैल चल सकेंगे ? छकड़े ही घूमेंगे ! मथुरा के लोग वसुदेवजी के साथ इन्हें लौटता देखते हैं तो देखें,—श्यामसुन्दर—कन्हैया और यह दाऊ—यह क्या दोनों बाबा के साथ बैठे हैं छकड़ों पर। व्रज-सीमा दूर ही कितनी है। यह नन्दनन्दन—यह क्या मथुरा से आया है ? मथुरा से पहुँचाने वाले ही तो लौट सकते हैं। बाबा आ रहे हैं।' यह तो जैसे व्रज से ही आगे बढ़ आया है !

—❀❀❀—

माता रोहिणी मथुरा को

"यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥"

—भागवत ६। १५। ३

'मोहन आयेगा! बहुत दिन हो गये श्याम को मथुरा गये! पता नहीं गोप वहाँ क्या करने लगे! व्रजराज यदि नहीं आ सकते तो कन्हाई को भेज क्यों नहीं देते? वसुदेवजी राम को अब नहीं आने देंगे! कृष्णचन्द्र भी बड़े भाई के साथ होगा! नगर की धूम-धाम—पर बड़ा संकोची है वह! कौन मनुहारें करके उसे कलेऊ कराता होगा! वह भला, कैसे भोजन करता होगा! दूसरे क्या उसे भली प्रकार रख सकते हैं! संकोच के मारे वहाँ किसी से कुछ कह भी तो नहीं सकता!' मैया की चिन्ताओं का कोई अन्त नहीं है। पल उसे युग-से व्यतीत होते हैं। किसी का शब्द—किसी की पद-ध्वनि—ओह, वह दौड़ पड़ती है द्वार की ओर—'कोई आया तो नहीं मथुरा से!'

'प्रभात होने ही वाला है! नीलमणि उठते ही नवनीत माँगेगा! अभी पद्मगन्धा का दूध तो आया ही नहीं!' मैया भूल ही जाती है कि उसकी दधिमन्थन की शीघ्रता, दूध के लिये आकुलता का कोई अर्थ नहीं रहा है। वह तो स्नान के लिये जल मँगाती है कन्हाई के, उसके वस्त्र, आभरण, माल्य सजाती है और उसे कलेऊ कराने के लिये व्यग्र होती है। वह तो पगली-सी हो गयी है। माता रोहिणी उसे बार-बार सम्हालती है। सम्हालती तो हैं; पर उनका हृदय—वहीं क्या कम व्यथा के महावाडव का प्रदाह है।

'वह बजी मुरलिका! वह दीखती है आकाश में गोरज!' मैया ही क्या अकेली पगली हुई है? श्याम के स्वरूप की माधुरी—उस कृष्ण के आकर्षण ने तो पूरे व्रज को पागल बना दिया है। ये बालिकाएँ शृङ्गार करती हैं आतुरतापूर्वक और गोधूलि से पूर्व ही इनके रत्नथाल पुष्प, चन्दन, दूर्वाङ्कुर, लाजा, अक्षत आदि से सज जाते हैं। गवाक्षों पर नेत्र लगाये ये प्रतीक्षा करने लगती हैं। 'गायों को आगे करके, सखाओं से घिरा, अधरों पर मुरली रक्खे, धूलि-धूसर अलकें लहराता, नेत्रों में मादकता की वृष्टि करता मोहन आता होगा! आता ही होगा!' ये तो बिचारी भोली बालिकाएँ हैं—प्रतीक्षा तो करती हैं वृद्धाएँ। काँपते करों में नीराजन के मङ्गल-दीप सजाये ये गृह-द्वारों से बाहर वनपथ की ओर दृष्टि लगाये किसी की प्रतीक्षा ही तो करती हैं!

कन्हैया की प्रतीक्षा—श्याम की प्रतीक्षा जब आकुल प्राणों में सत्य हो उठती है, कौन कहेगा कि वह असफल हो सकती है। गायें हुंकार करती हैं, बछड़े गोदोहन के समय मुख ही लगाना नहीं चाहते माता के स्तनों से और पशु भागकर एकत्र हो जाते हैं छूटते ही नन्दद्वार पर। 'हुम्मा! हुम्मा! बाँ! बाँ!' यह कामदा, कपिला, धर्म, गौरव—श्रुतियों की साङ्गस्तुतियाँ चाहे असफल हो जायँ, तपःपूत मुनिजनों के गद्गद कण्ठ भले न सुने जायँ, पर क्या कनूँ इस पुकार की उपेक्षा कर सकेगा। गायें पुकारें और गोपाल उत्तर न दे!

श्याम कलेऊ न करे—मैया के मुख में क्या जल भी जा सकता है? मोहन को रत्न-पलने पर निश्चिन्त सुलाये बिना मैया को निद्रा आयेगी? ये बालिकाएँ—उस त्रिभुवन-सुन्दर की एक झाँकी प्रातः गोचारण को जाते और सायं वन से लौटते भी न मिल सके—इनके सुकुमार प्राण इन देहों में आबद्ध रहेंगे? कन्हैया पुचकारे नहीं, बलात् थनों से न लगाये—बछड़े क्या दूध पीने

चले हैं और गायें ही क्या दूध दे देंगी ? गोपाल यदि चराने न जाय—कौन पशु तृणों की ओर देखेगा ? कौन नन्दभवन के द्वार से हटनेवाला है ?

मैया अपने नीलमणि के मञ्जुचरित गुन-गुन गाती इधर से उधर लगी रहती है । गोपियों के कलकण्ठ गूँजते रहते हैं । पशु भरपूर दूध देते हैं, वन को जाते हैं । 'कन्हैया मथुरा से अब तक नहीं लौटा ! कृष्ण—श्यामसुन्दर !' जैसे शरीर में प्राण ही न हों ! रक्त की एक-एक बूँद अन्तर के ताप से सूख गयी हो । हिमश्वेत मुख, कोटर-गत फटे-फटे नेत्र, पाषाण-सा निश्चल शरीर—एक क्षण में पता नहीं क्या हो जाता है सबको । 'यह मयूरपिच्छ, यह मन्दस्मित, ये दीर्घ लोचन, यह वनमाल !' एक क्षण—एक ही क्षण में वही उमंग, वही आनन्द, वही उल्लास, वही कलगीत । 'कहाँ गया है कनूँ ! वह जा सकता है !' जैसे कुछ हुआ ही नहीं । अद्भुत है—रहस्यमय है यह व्रज ! विचित्र हैं यहाँ के लोग । यहाँ तो वन के तरु, लता तक एक क्षण में सूख जाते हैं । पत्ता-पत्ता पीला होकर झड़ जाता है और दूसरे ही क्षण किसलय, पत्र, पुष्प, फल—शाखा-शाखा झूमने लगती है ! कौन समझ सकता है इस व्रज-भूमि को । कैसे समझे कोई—यह प्रेमधारा कहां किसी की बुद्धि इनके अपार माहात्म्य का स्पर्श कर पाती है । .

× × × ×

'श्याम प्रसन्न है ! राम-श्याम बड़े आनन्द में हैं !' मथुरा से संदेश आते हैं । 'कन्हाई प्रसन्न है !' व्रज के लिये, गोपियों के लिये, मैया के लिये इतना ही संदेश क्या कम है । 'कनूं प्रसन्न है !' मैया को विश्वास नहीं होता । उसका नीलसुन्दर बहुत संकोची है । वह भला, क्या प्रसन्न होगा वहाँ । व्रजेश ने आश्वासन देने के लिये ही यह कहलाया होगा ! पर ये संदेश—प्राणों की पिपासा के लिये ये संदेश भी सुधा-सीकर हैं ।

'कंस मारा गया ! महाराज उग्रसेन पुनः मथुरा के सिंहासन पर आसीन हुए !' कितने मङ्गल-संवाद हैं ये । 'व्रजराज कब आयंगे ? श्याम कब आ रहा है ?' हृदय तो यही आवृत्ति करता रहता है दिन-रात ।

और जब व्रजराज आये—रात्रि के अन्धकार में, शान्त, शृङ्गनाद की हर्षध्वनि से रहित छकड़ों ने जब प्रवेश किया नन्दग्राम में ! वृषभों के गले की स्वर्ण-घंटियों ने ही सूचना दी और जैसे विद्युत् ने स्पर्श कर दिया हो सबको ! हाय—आरती के रत्नथाल झंकार करते हाथों से छूट गिरे, गवाक्षों पर मूर्छिता बालिकाओं को कोई सम्हालनेवाला भी नहीं था । गायों ने हुंकार की और फिर उनकी हुंकृति ही क्रन्दन बन गयी ।

दिवस के प्रकाश में साहस नहीं हुआ था ग्राम में आने का । बाबा, गोप-गण—वे अपने गण—वे अपने आपे में थे कहाँ । उन्हें कहाँ पता था कि कहाँ जा रहे हैं वे । वृषभ उन्हें लिये जा रहे थे ! छकड़े में जुते मूक प्राणी—उन्हें भी साहस नहीं हुआ प्रकाश में ग्राम में आने का । मुड़कर पीछे देखते, रुकते, क्रन्दन करते वे अन्ततः कालिन्दी के कछार में प्रतीक्षा करते रहे ! कौन शृङ्ग बजाता ? किसके कण्ठ उत्तर देते ? गोपियाँ दौड़ीं और मूर्छित हो गयीं । गायों ने रज्जुबन्धन तोड़ लिये, गोष्ठों से कूदीं, भागीं, छकड़ों के समीप आयीं और बस—जैसे वे काष्ठ की प्रतिमाएँ हों । वृषभ चलते जा रहे थे—पता नहीं कैसे चलते जा रहे थे । नन्द-द्वार पर हो उन्हें रुकना था । 'कन्हाई नहीं है ! नीलमणि नहीं आया मथुरा से !' कोई उत्तर देनेवाला भी नहीं । वह दौड़ने का उल्लास—'छकड़े आये !' वह विह्वल उत्कण्ठा और यह वज्रपात ! मैया खड़ी ही गिर गयी भूमि में । आज कोई किसी को उठाने, सम्हालने वाला नहीं ! पछाड़, मूर्छा !—व्रज में अब और क्या रहा है । चेतना—आनन्दजीवन—कहां आया वह ! वह तो आया ही नहीं मथुरा से !

× × × ×

मथुरा से रथ आया है । श्रीवसुदेवजी ने माता रोहिणी को बुलाया है ! वे पति-वियोगिनी—यदुकुल का वह संकट-काल गया, वह मथुरा का अभिशाप—मर गया वह कंस तो । अब तो महा-

राज उग्रसेन मथुरा के सिंहासन पर हैं और श्रीवसुदेवजी—उनके ऐश्वर्य, सम्मान का कोई क्या वर्णन करेगा। मथुरा के हृदयों पर तो उनके राम-श्याम का ही एकाधिपत्य है। कंस के अत्याचार—कब के समाप्त हो गये वे तो। उस समय के निर्वासित, पलायित यदुवंशी दूर-दूर देशों, दुरूह गिरि-काननों से चले आ रहे हैं। श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें गृह, सम्पत्ति, वाहन—सभी ऐश्वर्य से पूर्णतः तुष्ट कर दिया है। मथुरा के दिन लौटे—ऐसे लौटे हैं कि इस वैभव, इस ऐश्वर्य की कल्पना ही शक्य नहीं। श्रीवसुदेवजी की गिरि-गुहाओं में गुप्तरूप से छिपी पत्नियाँ—उनके सभी बन्धु बान्धव—सब तो आ गये मथुरा में। श्यामसुन्दर ने रथ भेज भेजकर बुलवाया सबको। अब वसुदेवजीने माता रोहिणी को बुलावाया है। सम्भवतः व्रजराज मथुरा में थे, इसीलिये अब तक उन्हें बुलाया नहीं गया है!

माता रोहिणी—व्रज सौभाग्य की वे मूर्तिमती अधिदेवता, उनके पतिदेव ने बुलाया है तो उन्हें जाना ही चाहिये। पुरजन, गोपियाँ—कोई भी और क्या कहे। हृदय—हृदय हाहाकार कर रहा है। माता रोहिणी—नन्दभवन की वे ही तो अधीश्वरी रही हैं। उनकी व्यवस्था, उनके स्नेहोपहार, उनके आदेश और उनकी वे मृदुल सूचनाएँ—समस्त समारोह, सारी व्यवस्था की वे सहज संचालिका-व्रज का वह प्राणधन नहीं रहा और अब ये अधिदेवी भी जायँगी!

'श्रीरोहिणीजी जायँगी—जाना ही चाहिये उन्हें!' व्रजेश तो जैसे पूरे सूने हो गये हैं। 'श्रीरोहिणीजी जायँगी—वे कभी जायँगी भी व्रज से—कितना सत्य; पर प्राणों ने एक क्षण को भी इसे कभी स्मरण किया हो—वे व्रज-सौभाग्य की मूर्ति और अब जायगी? छकड़े सज्जित होने लगे हैं। उपहार एकत्र हो रहे हैं राशि-राशि, तरुण गोपों को आदेश दे दिया गया है सशस्त्र, सावधान रथ के साथ जाने का। व्रज अपने अधिदेवता को उसके अनुरूप सम्मान ही से तो भेजेगा!

'पतिदेव ने बुलाया है!' माता रोहिणी को जाना चाहिये, उल्लास होना चाहिये उन्हें। उनके वियोग के दिन समाप्त हुए; पर कहाँ जाना है उन्हें? इस व्रज से, इन गोपियों से, इन दुखिया व्रजेश्वरी से दूर? व्रज—वह आपत्ति, वह कंस का भय और यह व्रज—शरण, छिः! व्रज में शरण देने या लेने की बात ही कहाँ है! श्रीव्रजराज—उदार, सरल, विनयी व्रजराज—सदा ही आदेश की प्रतीक्षा में रहे वे और व्रजरानी—ये अपनी सहोदरा, अनुजा-सी व्रजरानी—आज इस विपत्ति में इन्हें कैसे छोड़ दिया जाय! कौन देखेगा इस नन्द-भवन को? कौन सम्हालेगा इस उन्मादिनी-सी प्रेममयी व्रजेश्वरी को? ना कहीं नहीं जाना है उन्हें!

'राम-श्याम—कन्हाई—वह नीलसुन्दर नहीं है। हृदय तड़पता है उनके लिये। नेत्र आतुर हैं उसे देखने के लिये! यह सौभाग्य—यह सुख, यह तो जिनके साथ सदा मिला है, उन्हीं के साथ मिलना हो तो मिले! गोपियाँ तड़पती रहें, व्रजरानी उन्मादिनी बनी रहें और अपने नेत्र तृप्त किये जायँ—नहीं ऐसा नहीं होगा। क्यों ये गोप छकड़े जोतने में लगे हैं? क्यों ये व्रजराज कोष के सभी अमूल्य रत्न मथुरा भेजने का आयोजन कर रहे हैं? क्यों ये व्रजरानी उन्हें वस्त्राभूषणों से सजाने में अपनी व्यथा भूलकर जुटी हैं? कहाँ जाना है उन्हें। इस व्रज से, इस नन्द-भवन से, इन व्रजेश्वरी के समीप से कहाँ जाना है उन्हें? वे कहीं नहीं जायँगी! कहीं नहीं जाना है उन्हें!'

× × × ×

'दीदी, दया रखना हम पर!' ये देवरानियाँ—ये व्रजेश्वर के बन्धुओं की स्त्रियाँ—इनके ये भरे दृग, काँपते कण्ठ!

'महरानी जू! ....' ओह, गोपियों के कण्ठ तो करुणा से आगे असमर्थ ही हो गये हैं।

'माँ!' ओह, ये भोली बालिकाएँ! ये सुमन-कलिकाएँ माता के अङ्क में ही आकर मूर्छित हो गयी हैं।

'पगली, कहाँ जा रही हूँ मैं!' माता रोहिणी अञ्चल से इनके पीताभ मुखों के अश्रु भले पोंछ लें, उनके अपने नेत्र जो धाराएँ चला रहे हैं। ये बालिकाएँ—इनकी वेदना—क्या छिपा है, अब माता या मैया से—क्या उपाय है। माता के चरणों में मस्तक रखकर जब ये हिचकियाँ लेते-

लेते मूर्छित हो जाती हैं, आश्वासन का एक यह आश्रय था और आज वह भी छिना जा रहा है। मथुरा से रथ—फिर रथ आया है और वह माता रोहिणी को ले जायगा अब। बेचारी बालिकाएँ—इनके नन्हे प्राण........माता व्यग्र, व्याकुल हो उठी हैं। इनको छोड़कर—इन सबों को छोड़कर—ना, इन्हें छोड़कर कहीं नहीं जाना है उन्हें !

'माँ !' यह भद्र—यह दाऊ की दूसरी मूर्ति और आज यह इसका रूखा, म्लान विवर्ण कमलमुख, यह आज माता के अङ्क में भी नहीं आ पाया। यह तो उनके चरणों से लिपटकर ही रह गया। रुदन—अब इन दीर्घ लोचनों में अश्रु कहाँ हैं कि यह रुदन करे। यह तो फटी-फटी आँखों से मैया को, माता रोहिणी को इस प्रकार देख रहा है, जैसे चेतना ही नहीं। जैसे अपरिचित देश में अज्ञात वस्तुओं को देख रहा हो।

भद्र ! भद्र ! मेरे लाल !' माता रोहिणी अङ्क में लेकर, हिलाकर पुचकारकर इसे संज्ञा में लाने के प्रयत्न में हैं। वे व्याकुल हो उठी हैं। माता किसे-किसे संज्ञा में लायें। किसे-किसे कैसे आश्वस्त करें ! यह पड़ा है मैया के अङ्क में तोक ! वही नवघन-श्याम छटा, वही पीतपट, वही चन्द्रमुख—कन्हाई की मनुहारों का परम प्रिय यह उसका छोटा भाई—यह व्रजस्नेह की सुकोमल मूर्ति—आज यह इस प्रकार विपन्न-सा पड़ा है। यह सुबल, यह श्रीदाम, यह हास्य-मूर्ति मधुमङ्गल—माता इन बालकों को कैसे आश्वस्त करें ! कैसे इन्हें समझायें। स्वयं उनकी ही अन्तर व्यथा असीम हो रही है और यह रथ आया है उन्हें लेने !

× × × ×

'मैं अभागिनी हूं ! देवकी माता सही, पर अपने पुत्र के संकोची स्वभाव को क्या जाने वह। उसे क्या पता कन्हाई की रुचि का। मेरा नीलसुन्दर बहुत कष्ट पाता होगा ! कौन कौन उसे मनुहारें करके माखन खिलायेगा, कौन उसे दूध पिलायेगा ! वह तो अपने से अभी ठीक मुख भी नहीं धो पाता ! उसकी सुविधा कौन समझेगा वहाँ। किसी से वह खुलकर वहाँ कुछ माँग भी नहीं सकता ! तुम मेरी ओर देखो, बहिन ! मेरा लाल—तुम वहाँ रहो तो उसकी ठीक रुचि की व्यवस्था कर सकोगी ! उसके स्वभाव को तुम मुझसे अधिक ही जानती हो ! तुम उसे देख सकोगी—मेरे प्राणों को संतोष होगा ! तुम उसे सम्हाल लोगी—इस आशा पर मैं जीती रह सकूँगी ! दीदी, तुम मेरे लिये, कन्हैया के लिये पधारो मथुरा !" ये व्रजेश्वरी कातर कण्ठ से अनुरोध करने लगी हैं। माता रोहिणी के अश्रु अपने अञ्चल से पोंछती ये अनुरोध कर रही हैं। सच ही तो कहती है ये, इनके प्राण, इनके नेत्र—कहाँ भिन्न हैं ये माता रोहिणी से।

"मोहन को मथुरा में अवश्य संकोच होता होगा ! किससे वह कहेगा अपनी रुचि की बात। कौन उसकी सुविधा से परिचित है वहाँ !' ये गोपियाँ, ये बालिकाएँ, वे बालक—सभी तो अनुनय करते हैं कि माता मथुरा पधारें। 'उनके कनूँ को कष्ट होता होगा ! माता के वहाँ जाने से उसे सुख मिलेगा ! उनकी उचित सुविधा की व्यवस्था माता रोहिणी अवश्य कर सकती हैं !' उसे सुख मिले, वह प्रसन्न रहे, प्राणों की यही तो एकमात्र अभीप्सा है यहाँ। ये सब बड़ी दीनता से, बड़ी कातरता से अनुरोध कर रहे हैं—'माता इन सब पर अनुग्रह करें ! मथुरा पधारें वे !'

'कन्हाई को कष्ट होता होगा ! सच ही उसे कष्ट होता होगा ! देवकी को पता भी क्या कि नीलसुन्दर कब क्या चाहता है ! कैसे वस्त्र, कैसे आभरण, कैसे अङ्गराग, कैसे व्यञ्जन प्रिय हैं उसे ! वह संकोच—वह एक बार भी किसी से कुछ कहेगा नहीं ! बड़ा कष्ट पाता होगा वह !" माता रोहिणी का हृदय भी व्यथा से मसल उठा है। 'कनूँ कष्ट पाता होगा ! जाना चाहिये—जाना ही चाहिये तब उन्हें !' यह व्रज, ये व्रजेश्वरी, ये गोपियाँ, ये बालिकाएँ और ये बालक—कितना दुखद, कितना व्यथापूर्ण है यहाँ से जाने का विचार—पर जाना है—जाना ही चाहिये ! मोहन की सुविधा........।

रथ प्रतीक्षा कर रहा है ! गोप शस्त्र-सज्जित सन्नद्ध हो चुके हैं और ये मङ्गल विधान--ये स्वस्तिपाठ—रुदन को बलात् दबाकर ये अद्भुत आयोजन—कहाँ तक कोई अपने को रोके रहे। यह हिचकियाँ जो बार-बार फूट पड़ती हैं ! ये उपहार—इन उपहार देनेवालों के लोचनों के ये कातर-भाव और ये मस्तक झुकाये, म्लान वदन, परम विनीत व्रजराज—ये नम्रता की मूर्ति—आज। और उनका यह मूक अभिवादन--माता रोहिणी को अब कहाँ अपने शरीर का बोध है ? यह व्यथा, यह संताप—मैया सम्हाले है आज उन्हें। यह उन्मादिनी-सी मैया—माता ने सदा जिसे सम्हाला आज वह सम्हाले है उन्हें।

गोपियाँ चरण-वन्दन करती हैं ! बालिकएँ अङ्क में मुख छिपाकर सिसक उठती हैं और बालक—आज किसकी व्याकुलता का पार है। दास, दासियाँ—पशु तक क्रन्दन कर रहे हैं। उपनन्द पत्नी माता रोहिणी को किसी प्रकार रथ तक लायी हैं। ये मस्तक झुकाये वृद्ध, तरुण, युवा गोप—इनके नीरव नेत्रों से टपकते बिन्दु--माता क्या इसे देख पाती हैं। व्रजरानी के कण्ठ से लिपटी असुधप्राय माता रोहिणी; किंतु कन्हैया को मथुरा में कष्ट होता होगा ! उसको सुख मिलेगा माता के वहाँ रहने से ! व्रज आज अपनी अधिष्ठाता को इसीलिये तो विदा कर रहा है ! विदा ! माता रोहिणी व्रज से विदा हो रही हैं ! कौन जाने—वे व्रज से कभी विदा भी होती हैं !

—❀⊃❀⊃❀—

उपनयन

"सर्वज्ञत्वे च मौग्ध्ये च सार्वभौममिदं महः।
निर्विशन्नयनं हन्त निर्वाणपदमश्नुते॥"

—श्रीलीलाशुक

श्रीकृष्णचन्द्र की आयु का यह बारहवाँ वर्ष है। श्रीबलराम को एक वर्ष और अधिक हो चुके। दोनों भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार पहिले ही हो जाना चाहिये था। उपनयन का मुख्य काल; किंतु वे संकट के दिन—क्रूर कंस के वे नृशंस अत्याचार—उस समय तो जीवन की सुरक्षा ही चिन्तनीय थी। मथुरा के वे दिन बीत चुके। विदेशों में प्राण भय से भागे उत्पीड़ित यदुवंशी पुनः अपने गृहों में आ गये। मथुरा की श्री, मथुरा का ऐश्वर्य—अब तो अमरावती भी तुच्छ हो गयी है इस यादव राजधानी के सम्मुख। शान्ति हुई, निर्वासित—पलायित बन्धु-बान्धव आये—अब तो बालकों का द्विजाति-संस्कार हो जाना चाहिये। वसुदेवजी कितनी उमंग से लगे हैं! माता देवकी कितनी प्रसन्न हैं! राम-श्याम का उपनयन होगा! महर्षि गर्गाचार्य ने यह ग्रीष्मऋतु ही निश्चय की है इस संस्कार के लिये।

राम-श्याम का उपनयन होगा! महाराज उग्रसेन के लिये इससे बड़े महोत्सव का दिन और क्या होगा। 'श्रीकृष्णचन्द्र अपने अग्रज के साथ ब्रह्मचारी वेश में भिक्षाटन करेंगे!' मथुरा के नर-नारी कितनी बहुमूल्य सामग्रियाँ एकत्र करने लगे हैं! 'क्या देंगे वे? क्या देंगे वे?' जैसे कुछ देने योग्य है ही नहीं। सचमुच कहाँ है? क्या है उसे देने योग्य? वह त्रिभुवन का स्वामी, देह-मन-प्राण-हृदय का अधीश्वर—वह वासुदेव जब अपनी भिक्षा की झोली फैलायेगा—क्या है उसे देने योग्य?

× × × ×

आज उपनयन होना है। माता देवकी ने पुत्रों के साथ मङ्गल स्नान कर लिया है। कितना अनुरोध किया उन्होंने माता रोहिणी से—राम के उपनयन में वे मातृ-पद का भाग लें! माता रोहिणी—पता नहीं क्यों वे महोत्सवों के अवसर पर थकित, विषण्ण हो जाती हैं। 'व्रजेश्वरी के साथ—श्री व्रजरानी के साथ जब संस्कार में बैठी थीं!' व्रज का वह स्नेह, वह सत्कार, वह अपार प्रेम और आज क्या होगा व्रज का? कैसी होंगी व्रजरानी?' माता रोहिणी के भीतर जो स्मृतियों का महावाड़व जाग उठा है—उनमें कहाँ उत्साह रहा है! वे क्या किसी कार्य में योग देने की स्थिति में हैं!

'राम भी तो तुम्हारा ही है!' माता ने धीरे से अवकाश ले लिया है। श्याम व्रजेश्वरी का नहीं है—व्रजरानी केवल पालिका हैं उसकी—तब राम की भी वे केवल पालिका हो तो हैं। व्रजेश्वरी से अधिक वे कैसे स्वीकार कर लें। श्याम व्रजरानी का नहीं—राम तब उनका कहाँ है? देवकी के—दोनों देवकी के ही तो पुत्र हैं। 'माता का गौरव—हाय, व्रजेश्वरी—तुम्हें जब वह गौरव नहीं मिल सका....।' माता रोहिणी तो सूनी-सूनी-सी दर्शिका भर बनकर रह गयी हैं आज।

× × × ×

माता देवकी ने मङ्गल स्नान कर लिया राम-श्याम के साथ। आचार्य ने पञ्चदेवताओं का आह्वान, पूजन समाप्त कर दिया। पूर्वाभिमुख बैठकर बड़े भाई के साथ श्रीकृष्णचन्द्र ने स्वर्ण-राशि का दान कर दिया है तिल से भरे रत्न-पात्रों के साथ। श्रीवसुदेवजी पञ्चभूसंस्कार करने लगे हैं

और तब तीन ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प—तीन ही ब्राह्मण, शास्त्रीय विधि तो विधि ही है। ब्राह्मण तो तीन सहस्र भोजन कर लें--करेंगे ही, संकल्प तो तीन का ही होगा न। अब यह आचार्य-पूजन—महर्षि गर्ग का सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो रहा है। उनके मन्त्रपाठ गद्गद कण्ठ से स्पष्ट नहीं हो पा रहे हैं। वे आचार्य होंगे--श्रीवसुदेवजी उनका पूजन कर रहे हैं और आज वे आचार्य हो जायँगे राम-श्याम के! 'ये परम पुरुष—ये चिन्मय आनन्दघन निखिल भुवनैकवन्द्य और इनका आचार्य !' महर्षि के आनन्द की कोई सीमा नहीं है। सुरगुरु बृहस्पति, विद्या एवं ज्ञान की अधिष्ठात्री भगवती शारदा—क्या चर्चा इनकी। भगवती सावित्री--वे भगवती सावित्री जिनकी दीक्षा देकर महर्षि आज आचार्य होंगे--महर्षि का सौभाग्य, महर्षि की महिमा--आज वह उन भगवती सावित्री के लिये भी स्पर्धा से परे है। आज वे श्रीकृष्णचन्द्र के आचार्य होंगे ! त्रिभुवन का वह परमाधीश जिसके पदों में प्रणत होगा--किसका मस्तक उसके पादपद्मों में प्रणति से परिपूत होने की कामना न करेगा !

× × × ×

आज ये दिगम्बर राम-श्याम ! विधि—कितनी निष्ठुर होती है विधि। वे घुँघराली काली अलकें, वे स्नेहस्निग्ध—भुवन-मोहन चिकुर जाल और.... ..नापित के कर बार-बार काँपे हैं। कैसे वह अपना काम कर सका—स्वयं वह भी नहीं जानता ! इतना कठोर कर्म—और कोई दण्ड, और कोई प्रतिकार स्रष्टा को नहीं मिला उसके कर्मों का। क्या करे वह—श्रीवसुदेवजी का आदेश—ये राम-श्याम अनुरोध ही करने लगे उससे। वह क्षुद्र नापित—श्रीकृष्णचन्द्र उसके सम्मुख आ बैठें—आग्रह करें—इनका आग्रह टाल देने की शक्ति तो सम्भवतः स्रष्टा में भी न होगी। क्या करे वह—प्राण उन्मत्त हुए जाते, अपना पता नहीं। कैसे सम्पन्न हुआ उसका कार्य--कौन कह सकता है ! अब तो वह अपने एक-एक शस्त्र को पाषाण से तोड़ रहा है, छिन्न कर रहा है। ये शस्त्र--इन्हें क्या वह फिर स्पर्श करेगा ! उसके कर--जिन करों से उसने राम-श्याम के उत्तमाङ्ग छुये हैं, ये कर अब और किसी की सेवा करेंगे ? क्या आवश्यकता है इसकी। क्या अभाव है उसके समीप। आज उसे जो निछावर मिली है, सुरेश भी चकित रह जाय यह सम्पदा देखकर ! नापित--नापित कहाँ देखता है इस सम्पत्ति को ! उसे जो निछावर मिली है—छिः ! इन चमकते दमकते राशि-राशि पत्थरों की बात कहाँ है, उसे निछावर मिली है—उसके अन्तर में इन राम श्याम ने जो अनन्त अपार चिन्मय आनन्द की राशि उड़ेल दी है—कल्प-कल्प की तपस्या, युग-युग के साधन--महर्षियों के मानस इसकी स्पर्धा भी कहाँ कर पाते हैं। नापित--गद्गद कण्ठ, पुलकित तन, वाष्प नयन, उन्मत्तप्राय नापित--अब नापित कहाँ रहा वह। किस परमहंस को यह सहज स्थिति—यह आनन्दोन्माद उपलब्ध होता है।

× × × ×

केशर-पीत मुण्डित मस्तक के मध्य गोखुर दीर्घ शिखा, दिगम्बर वेश, यह श्याम अपने अग्रज की ओर देखकर तनिक-तनिक मुस्करा रहा है। आचार्य के दाहिने, अग्नि को सम्मुख करके पूर्वाभिमुख ये अब आ बैठे हैं। वाद्यों के उच्चतर नाद, विप्रों के मन्त्रपाठ, नारियों का मङ्गलगान, गगन से झरती अपार पुष्पराशि और सुस्वर सुरवाद्यों के साथ अमरों के स्तवन, अप्सराओं के नृत्य, गन्धर्वों के गायन—एक साथ, एक क्षण में रुक गये हैं सभी। भुवनघोषी मङ्गल कोलाहल और यह शान्ति—पुष्प के विकसित होने का स्पन्दन भी सुनायी पड़ जाय। 'महर्षि अब अपने शिष्य रूप में वरण करेंगे राम-श्याम को। यजमानों की कुलपरम्परा में प्राप्त महर्षि के ये शिष्य—आचार्य गर्ग, ये परम वीतराग और यह पुरोहिती—आज की आशा पर ही तो यदुकुल का पौरोहित्य स्वीकार किया था उन्होंने। 'किसी दिन परम-पुरुष मेरे यजमान होंगे !' यदि यह आशा न होती--आचार्य किसी नगर में आने वाले थे। आज सफल हुई आशा ! आज वे राम-श्याम का यजमान रूप में वरण कर रहे हैं। महर्षि के गद्गद कण्ठ का सङ्कल्प पाठ—इन स्वरों से अपने को परिपूत करने के लिये ही तो समस्त श्रवण समुत्सुक हो उठे हैं।

ब्रह्मा का वरण, ब्रह्मोपवेशन, अग्नि में स्रुवा से महर्षि की यह दीर्घ स्तम्भाकार आज्याहुति और—'ब्रह्मचर्यमागाः !' अब उनके ये आदेश-वाक्य ! कितनी श्रद्धा, कितनी नम्रता से राम-श्याम इन्हें स्वीकार करते, दुहराते जा रहे हैं। अब तो कौपीन वस्त्र दिया है महर्षि ने इनके करों में। यह मौंजी मेखला—इन सुकुमार कटियों में यह मेखला—महर्षि के कर भी कम्पित हो रहे हैं ये दिगम्बर बन्धु अब कौपीनधारी हुए हैं ! गौर-श्याम अङ्गों की यह छटा, यह कटियों में तीन वेष्टन से घुमाकर प्रवरग्रन्थि युक्त मेखला और उसमें बँधी ये पीत कौपीनें ! आज आचार्य ने अपने हाथों प्रणवपूर्वक गायत्री से शिखायें बाँध दी हैं इनकी।

स्वर्ण-कलश में स्थापित यज्ञोपवीत का अभिमन्त्रण, प्रक्षालन और दश बार गायत्री जप से उसका स्थापन। अब तो सर्वदेवमय यज्ञोपवीत में देवावाहन-पूजन चल रहा है। प्रणव, अग्नि, सर्प, सोम, मित्र, पञ्चपितर, प्रजापति, वायु, यम विश्वेदेव और ग्रन्थिदवता भगवान् ब्रह्मा, अनन्तशायी विष्णु, भगवान् रुद्र—सांग, सविधि पूजन कराया आचार्य ने।

"ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजाः॥"

आचार्य ने कलश से अपने कर सम्पुट में लिये यज्ञोपवीत, अभिमन्त्रित किये, भगवान भास्कर को दिखाये और पहना दिये। ये पीत कौशेय, हरिद्रा रञ्जित यज्ञोपवीत—राम-श्याम के श्री-अंगों पर इनकी यह अपूर्व छटा। अब यह नीरव—मौन ऐणेयाजिन परिधान, वाज्यजिन ग्रहण, और यह आया आचार्य के करों से पलाश-दण्ड करों में। दण्ड उछालना—इतनी देर में यही तो एक रुचि की बात हुई है। कृष्णचन्द्र ने जिस उल्लास से दण्डोच्छ्रय किया—सभी तो हँस पड़े हैं इस कौतुक से। आचार्य ने अपनी अञ्जलि में जल लेकर राम-श्याम की अञ्जलियाँ पूरित कर दीं और सूर्य-दर्शन के पश्चात् दक्षिण स्कन्ध पर हाथ रखकर हृदयका आलभन समाप्त कर दिया। प्रजापतियों को, पञ्चमहाभूतों को रक्षा का भार दिया। जो विश्व के भार को दूर करने आया है, जो त्रिभुवन का परम रक्षक है, उसकी रक्षा का भार ये पञ्चभूताधिदेवता वहन करेंगे ? अन्ततः इन्हें भी कृतार्थ होना है। श्रुति की परम्परा में जब यह श्रुतिका चरम अन्वेष्य अपने को आवेष्टित करने की मञ्जु लीला करने आया है—यही तो आता है ! यही तो सदा समस्त विधियों का गौरव देता है।

× × × ×

कदली-स्तम्भ शोभित, कौशेय वितान, रत्नों की झिलमिल करती झालरें। दिग्पालों की लहराती पताकाएँ। गगन में, धरा पर, चारों ओर ही तो स्तवन, गान, नृत्य, मङ्गलवाद्य-ध्वनि और मन्त्रपाठ चल रहा है।

दिशाओं में दीप-सज्जित सुपूजित मङ्गल कलश, रंग-बिरंगी वेदियों पर देवताओं ने प्रत्यक्ष आसन ग्रहण करके पूजा स्वीकार कर ली। अब तो राम-श्याम आचार्य के वाम भाग में बैठकर भगवान् हव्यवाह के आवाहन का आयोजन करने लगे हैं। ब्रह्मा का वरण, कुश-कण्डिका और अब करों में स्रुवा उठाये ये द्विधा रूपों में—काञ्चन गौर एवं नीलकान्त सुन्दर—जैसे साक्षात् यज्ञ-पुरुष ही यजन करने आ बैठे हों। आचार्य को केवल मन्त्र बोलने हैं। ये राम-श्याम—ये दोनों बन्धु—ये तो जैसे नित्य के अभ्यस्त हैं। यह स्फूर्ति, यह मञ्जु सावधान क्रियाशीलता—कौन यायजूक इतना कुशल हो सकता है। भगवान हव्यवाह—कहाँ वहन करना है आज उन्हें हवि। ये मूर्तिमान् देवता कब से आतुर हैं—कब से प्रतीक्षा कर रहे हैं—इन करों से हविर्भाग मिले, आह्वान की अपेक्षा हो सकती है किसी को। हवन, प्रतिष्ठा पूजन, प्रायश्चित्तात्मक हवन, पूर्णपात्र-दान, स्वस्तिपाठ, प्रोक्षण और बर्हिहवन, आचार्य को केवल संकेत करना है। मन्त्रपाठ करना है उन्हें। उनके यजमान—जिनकी निःश्वास श्रुतियों का उद्गम है, उनको क्या विधिनिर्देश की आवश्यकता हो सकती है।

'ब्रह्मचारी ! तुम लोग ब्रह्मचारी हुए आज से ! प्रमादहीन होकर नियमों का पालन करना ! दिन में शयन मत करना ! वाणी को नियन्त्रित रखना ! नित्य समिधायें लाना—पवित्र समिधायें !' महर्षि गर्ग कुमारों को अनुशासित कर रहे हैं। होंगे ये परात्पर पुरुष, होंगी श्रुतियाँ

इनका निःश्वास, आचार्य—जब आचार्य का गौरव दिया है इन्होंने, विधि तो पूर्ण ही होनी चाहिये। बद्धाञ्जलि, नतमस्तक कितनी श्रद्धा से ग्रहण कर रहे हैं दोनों बन्धु आचार्य का यह अनुशासन।

लग्नदान और आचार्य अब गुरुदेव हो गये हैं। राम-श्याम ने गुरुरूप में वरण किया है उन्हें। कितनी श्रद्धा, कितनी उमंग से पूजन कर रहे हैं दोनों भाई। जो ज्ञानघन लोक स्रष्टा के भी परम गुरु हैं, जिनके पावन पदों की आराधना भगवान् इन्दुमौलि अपने हृदय कमल में एकाग्र मानस करते थकते नहीं, उनके गुरु—उनके द्वारा यह अर्चा—महर्षि गर्ग का सम्पूर्ण शरीर जैसे निर्झर हो गया है! यह अनुग्रह--यह गौरवदान--महर्षि के अन्तर का अपार रस-सागर जैसे रोम-रोम से बह चला है। महर्षि गुरु हो गये हैं राम-श्याम के! वाद्यों के घन घोष, तुमुल जयध्वनि और महर्षि ने दोनों यजमानों के दक्षिण कर्णों के समीप मुख करके तीन-तीन बार गायत्री का उच्चारण कर दिया है। वे गुरु हो गये हैं, भूमि में लेटकर राम-कृष्ण प्रणिपात कर रहे हैं उनके श्रीचरणों में, पुष्प और फलों से भरी अञ्जलि आचार्य के चरणों में चढ़ाकर यह मस्तक रखा है उन्होंने। आशीर्वाद--आज ही तो आशीर्वाद की परा वाणी नाभि से उठकर कृतार्थ हुई है!

सावित्री-दान और गुरुदक्षिणा—रत्नों की यह अपार राशि! ये लक्ष-लक्ष गायें, ये वस्त्र, आभरण, तिल, स्वर्ण—कौन गिने इन्हें। वसुदेवजी के हृदय में जो उमङ्ग है—कितना अल्प, कितना नगण्य दान है यह! कुबेर का कोष—राम-श्याम के उपनयन की दक्षिणा दे सके, कहाँ है इतनी सम्पत्ति वहाँ। कुबेर के लिये तो यही सम्पत्ति स्पर्धा से परे है।

पञ्चायतन-दीक्षा और अब यज्ञोपवीत हुआ तो मध्याह्न-सन्ध्या भी तो करनी ही चाहिये। मध्याह्न सन्ध्या हुई और अग्नि समिन्धन। ब्रह्मचारी तो समित्-हवन ही करते हैं। जल से अग्नि को आवेष्टन करके एक समित् ली, कान से लगायी और आहुति दे दी। समिधा की केवल तीन आहुतियाँ। मौन होकर हवनीय अग्नि से कमलदलारुण कर तनिक उष्ण किये गये, मुख का मार्जन करना जो है। सात बार यह मुख प्रोञ्छन। विशाल भाल पर भस्म की यह भव्य छटा और यदि अग्निदेव आज्ञा पाते---अपने कोमल कान पकड़कर ये राम-श्याम का भूमि में मस्तक रखकर तीन-तीन बार वन्दना करें उनकी--कहाँ किसका प्रसाद प्राप्त करना है इन्हें। अग्निदेव इनकी कृपा के प्रसाद-लेश से ही धन्य हैं आज। पर ये लीलामय, ये अपने ही नियमों का यह आदर्श स्थापन करने ही तो आये हैं धरा पर।

× × × ×

"सौम्य, भिक्षा ले आओ! वृथालाप में समय नष्ट मत करना!" आचार्य को तो विधि के आदेश देने ही हैं।

गौर-श्याम अङ्ग, मुण्डित मस्तक पर बँधी हुई बड़ी-सी शिखा, विशाल भाल पर भस्म-त्रिपुण्ड्र, उत्तरीय के स्थान पर वाम स्कन्ध-वक्ष-पृष्ठ को घेरता बंध ऐणायाजिन, वाम कक्ष में अश्वाजिन, वाम कर में पलाश-दण्ड, दक्षिण स्कन्ध पर झोली पीत-कौशेय वस्त्र की, कटि में तीन बार लपेटी मौञ्जी मेखला, पीत कौपीन और ये राम-श्याम भिक्षा लेने चले हैं। ये भिक्षा माँगने चले हैं—'भिक्षां भवति देहि मातः!'

माता देवकी—उनके ये उपनीत राम-श्याम--इनकी ये झोलियाँ--अन्नपूर्णा कहाँ यह सौभाग्य पाती हैं! माता किन रत्नों से भरें इन झोलियों को! 'यह रत्न थाल--बहुत तुच्छ रत्न हैं इनके!' माता देखती रह गयीं एक क्षण अपने इन नूतन ब्रह्मचारियों का मुख और कब उनके करों ने झोली पूर्ण कर दी, कहाँ पता है इसका उन्हें! वे तो देख रही हैं, एकटक देख रही हैं इस अद्भुत छटा को।

राम-श्याम की ये छोटी झोलियाँ, इनके सुकुमार स्कन्ध—कितना आयेगा इनमें? आज किसे इस सौभाग्य से वञ्चित किया जाय? माताओं को, महाराज उग्रसेन को, नगरजनों को, राज्य के सम्मान्य आगतों को--सभी को तो यह सुअवसर प्राप्त करना है? सभी ने तो अन्तर की विशुद्ध अभीप्सा लेकर अपने उपहार प्रस्तुत किये हैं। अनन्त की झोली में कितना स्थान है—कौन कह

सकता है। श्रद्धा के कितने उपहार वह स्वीकार कर लेगा—वह अस्वीकार करना भी जानता है क्या ?

गुरुदेव—महर्षि गर्ग—उनके सम्मुख उनके इन नूतन शिष्यों ने अपनी झोलियाँ धर दी हैं। बद्धाञ्जलि महालक्ष्मी जिनके भ्रूभङ्ग के संकेत की प्रतीक्षा करती हैं, निखिल लोकों का समस्त ऐश्वर्य जिसकी मन्दस्मित की एक भंगी पर निछावर होता रहता है, वह—उसीने आज भिक्षा माँगी है! भिक्षा माँगी है उसने और अपनी झोलियाँ गुरुदेव के सम्मुख रखकर हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये बड़े भाई के साथ खड़ा है—'गुरुदेव कृपा करें! इस तुच्छ भिक्षा को स्वीकार कर लें!'

गुरुदेव—गुरुदेव कहाँ देखते हैं इस भिक्षा की झोलियों की ओर। उन्होंने तो झोलियाँ हाथ बढ़ा कर लीं और स्नेह से रख दीं। क्या है इनमें ? क्या आवश्यकता है यह देखने की। क्या नहीं है ? यह सम्पत्ति—ये रत्न—महर्षि ने कब इन पत्थरों कोई महत्त्व दिया है; पर नहीं—ये राम-श्याम के उपहार—इनकी महत्ता—इनका एक कण पाने के लिये तो अमरावती के अधीश्वर भी भिक्षुक बन जायँगे। महर्षि—किंतु महर्षि ने तो अपने इन शिष्यों को ही पाया है न! उनके सम्मुख ये पद्मपरागपीत और इन्दीवर-सुन्दर जो दो ब्रह्मचारी हाथ जोड़े खड़े हैं-क्या पाना रह गया है अब ?

ये हाथ जोड़े खड़े हैं! ये नवीन ब्रह्मचारी—इन्हें इनके आचार का उपदेश देना है। आचार्य ही तो सिखावेंगे इनका आचार इन्हें—'सौम्य, अब से तुम लोग भूमि पर मृगचर्म डाल कर शयन करोगे! मन लगाकर अध्ययन करना गुरुकुल में! दण्ड को सदा साथ रखना! अपने और गुरु के लिये नित्य पवित्र समिधाएँ लाना! प्रमाद हीन होकर नित्य समय पर अग्निदेव की आराधना करना!' आचार्य उपदेश दे रहे हैं। पता नहीं छोटे बड़े कितने नियम बताये जा रहे हैं! सभी नियम सावधानी से ही तो समझा देने हैं उन्हें।

× × × ×

राम-श्याम का उपनयन हुआ है आज। महर्षि ने उन्हें मङ्गल आशीर्वाद दिया है। विप्रों की वाणी थकती ही नहीं है आशीश देने में। वसुदेवजी के आनन्द-उल्लास की क्या सीमा हो सकती है आज। महर्षि कहाँ तक यह अपार दक्षिणा स्वीकार करने चलें। ये कौशेय-वस्त्राच्छादित, रत्नाभरण-भूषित सवत्सा गायों के लक्ष-लक्ष यूथ; ये अश्व, गज, वृषभ; ये अपार रत्न-राशियाँ—महर्षि क्या करें इनका। उनके एकान्त शान्त आश्रम में कहाँ स्थान है इनके लिये। क्या उपयोग इनका। कोई लेने वाला भी तो नहीं है। वसुदेवजी ने किसे इस योग्य रहने दिया है कि वह इनमें से कुछ किसी भी प्रकार स्वीकार कर ले! विप्रवर्ग, बन्दीजन, मागध, सूत—सब को ही तो इतनी भेंट दे दी है इन्होंने कि वे स्वयं ही देख रहे हैं—'कोई कुछ ले ले!' महाराज उग्रसेन के आग्रह की भी रक्षा करनी है सब को और ये वसुदेवजी—'ये गायें मैंने श्रीकृष्ण के जन्म के समय संकल्प की थीं! कंस ने मुझे बन्दी कर दिया। मेरी सम्पत्ति का हरण कर लिया उसने! मेरा संकल्प श्रीचरणों में सफल न हो सका! मुझ पर अनुग्रह करें! मुझे असत् संकल्प होने से बचा लें!' इन्होंने पता नहीं कितनी सहस्र गायें, अश्व, रथ, गज, रत्न का कब-कब संकल्प किया है। जन्म के समय ही तक तो बात नहीं है। 'अब षष्ठी हुई होती! अब नामकरण होता! अब होता चूड़ाकरण!' उस बन्दीगृह में अपने नीलसुन्दर को स्मरण करने के अतिरिक्त और क्या करते ये। स्मरण और संकल्प—आज ही तो अवसर मिला है उन संकल्पों को सत्य होने का। वसुदेवजी आज सबको स्मरण कर लेना चाहते हैं! महर्षि अपने यजमान के संकल्प को कैसे सत्य होने से वारित कर दें!

राम-श्याम उपनीत हो गये हैं। आज व्रत है—व्रत का दिन है सबका। ये अब गुरुगृह जायँगे। आज का मङ्गल अवसर—अश्रु नहीं आना चाहिये! नहीं आना चाहिये अश्रु! ये दूर जायँगे इन नेत्रों से—दूर जायँगे! मातायें क्या करें ? कैसे रोकें अपने हृदय को! पर ये राम-श्याम—ये उपनीत हुए! इनका यह ब्रह्मचारी वेष····।

—❀⊂❀⊃❀—

गुरुकुल में

"यस्य च्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो।
श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥"

—भागवत १०।८०।४८

भगवान् विश्वनाथ की पुरी, उनके त्रिशूल पर स्थापित उनकी मोक्षदा पुरी काशी—उन निखिल ज्ञानगुरु के धाम को छोड़ भगवती वीणापाणि और कहाँ निवास बनायें अपना। काशी—अध्ययन के लिये उत्सुक अन्तेवासियों का वह चिरपावन धाम; किंतु काशिराज पौण्ड्रक के मित्र हैं। कंस से ही सौहार्द था उनका। महाराज उग्रसेन से उनकी अनबन ही रही और जब कंस मारा गया—अब काशी कैसे जाना हो सकता है राम-श्याम का। उनकी ही राजधानी में ये उनके सखा कंस को ठिकाने लगाने वाले राम-श्याम जायँ—पता नहीं क्या हो! कौन इस आशङ्का को प्रश्रय दे!

काशी के सर्वश्रेष्ठ, सर्वमान्य सर्वशास्त्र पारंगत परमतापस महर्षि सान्दीपनि—जब महर्षि ही काशी में नहीं तो काशी जाकर कोई करे भी क्या। महर्षि काशी कैसे रहते—परम शैव महर्षि; किंतु काशिराज को जो भगवान् नारायण का नाम ही सह्य नहीं—कोई भी आराधक इस द्वेष के ऊमस भरे वातावरण में अपनी उज्ज्वल श्रद्धाञ्जलि कैसे निर्बाध अर्पित करें। द्वेष, हिंसा, उत्पीडन—महर्षि ने इस कुत्सित स्पर्धा के संग से दूर कर लिया अपने को, यह स्वाभाविक ही तो हुआ। भगवान् विश्वनाथ—वही तो महाकाल रूप में आसीन हैं उज्जयिनी में। महर्षि का आगमन—अवन्तिका विद्या-बुभुत्सु ब्रह्मचारियों की आराध्य हो गयी है।

अवन्तिका—महर्षि सान्दीपनि की लोकोत्तर ज्ञान ख्याति और भगवान् महाकाल का सान्निध्य। मथुरा और अवन्तिका का स्नेह सम्बन्ध भी तो है। राम-श्याम अवन्तिका में अध्ययन करेंगे। वसुदेवजी का ध्यान यदि अवन्तिका की ओर प्रथम जाय—स्वाभाविक है। उनकी बहिन राजाधिदेवी ही राजमाता हैं वहाँ की। राम-श्याम बुआ की—स्नेहमयी बुआ की राजधानी के समीप निवास करेंगे। महर्षि सान्दीपनि के आश्रम में वे सुरक्षित रहेंगे!

× × × ×

"मैं यादव वार्ष्णेय वसुदेव-पुत्र कृष्ण श्रीचरणों में प्रणिपात करता हूँ!" हाथों में सूखी पवित्र समिधायें लिये बड़े भाई से तनिक पीछे ही कृष्णचन्द्र ने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया गुरुदेव के सम्मुख! रथ कैसे आ सकता था आश्रम सीमा में और ब्रह्मचारी तो एकाकी ही आता है सदा गुरु चरणों में। ब्रह्मचारी—ब्रह्मचारी में क्या दरिद्र और क्या राजकुमार। भगवती शारदा के श्रीचरणों में सबको एक ही भूमि से तो अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनी पड़ती है। महर्षि सान्दीपनि अपने नियमों के प्रमादहीन पालन के लिये प्रख्यात हैं। वे महाकाल के परमोपासक—उन तपोधन के यहाँ किसी नियम की तनिक भी अवज्ञा चल नहीं सकती। उपनयन में जो भिक्षाटन कर चुका—गुरु का आशीर्वाद प्राप्त करने से पूर्व वह राजकुमार कहाँ है। वसुदेवजी पहुँचाने नहीं आ सके। नहीं आ सके महाराज उग्रसेन। महर्षि कोई धूमधाम क्षमा नहीं करेंगे। उनके चरणों में निवास पा जाना सौभाग्य की, श्रद्धा की ही बात है। अधिकारी छात्र ही आश्रय पाता है वहाँ। मार्ग में सुरक्षा—पर सुरक्षा कैसी, किसकी सुरक्षा! गुरु गृह जाते ब्रह्मचारी पर आक्रमण करे, ऐसा नीच कोई असुर भी नहीं हो सकता! असुर भी उसे क्षमा न करेंगे। गुरुदेव के पावन चरणों में ब्रह्मचारी

को एकाकी ही पहुँचना चाहिये। भिक्षा की झोली, पलाशदण्ड, ऐणेयाजिन, जलपात्र और कौपीन—वह अध्ययन करने आया है। गुरु-सेवा—तपस्या और कठोर व्रत से ही तो वे प्रतिभा की अधीश्वरी प्रसन्न होती हैं। उपकरणों की आवश्यकता कहाँ है उसे। सूत रथ लेकर अवन्तिका में अवस्थान करेगा! मथुरा से अवन्तिका—राम-श्याम क्या रथ भी स्वीकार करते, यदि यह इतनी स्थल दूरी न होती। आश्रम सीमा से ही रथ छोड़ दिया इन्होंने और ब्रह्मचारी के पास गुरुदेव के श्रीचरणों में उपस्थित होने के लिये समित् ही तो पावन उपहार है। समित्—उस व्रती के पास और हो भी क्या सकता है। गुरुदेव—वे निखिल ज्ञानके प्रकाश धाम, वीतराग, तपोमूर्ति—वे और कोई उपहार स्वीकार ही कहाँ कर सकते हैं। एक विद्याकामी ब्रह्मचारी आवेगा—उससे उपहार—कौन लेगा उससे उपहार! राम-श्याम ने उसी तपोवन से स्वतः समिधायें एकत्र कर ली हैं और अब तो वे महर्षि को प्रणिपात करते भूमि में पड़े हैं।

'यह जलद-गम्भीर सुधास्निग्ध स्वर! यह भुवन-मोहन रूप!' महर्षि अपनी वेदिका के मृगचर्म के आसन से आतुरतापूर्वक उठ खड़े हुए। उत्तरीय का ऐणेयाजिन खिसक गया भूमि पर! दोनों वलीपलित, रजतरोम भुजाओं ने राम-श्याम को उठा लिया और हृदय से लगा लिया।

'आयुष्मान् भव...!' गद्‌गद कण्ठ, अश्रुधारा से सिञ्चित होते श्मश्रु—भगवान् हव्यवाह हवनीय कुण्ड में अपनी लाल-लाल लपटों से हर्षोद्दीप्त हो उठे है! आहुतियों के हविष्य का सुरभित धूम्र जैसे दिशाओं को अपने उन्मद नृत्य से पूरित कर देगा! ये तरु, ये लतायें—सब झूम उठे हैं। ये आश्रम-धेनु—अभी प्रातः इन्हें दुहा गया है और अब इनके स्तनों की उज्ज्वल अखण्ड धारा भूमि का अभिषेक करने लगी हैं। बछड़े, मृग—आश्रम पशु एकत्र हो आये हैं। ये सूँघ लेना चाहते हैं राम-श्याम को। ये पक्षी—पर कौन देखे इन सबकी ओर! महर्षि शान्त, निष्कम्प दोनों भाइयों को हृदय से लगाये खड़े हैं! रोम-रोम उत्थित हो गया है उनका। गद्‌गद कंठ का आशीर्वाद अपनी अपूर्णता में भी साङ्ग पूर्ण हो गया।

'ये सौन्दर्यघन—ये अध्ययन करेंगे! हमारे साथ पढ़ेंगे ये!' आश्रम के अन्तेवासी—अपलक लोचन ये अभी तो देख रहे हैं। लोचन स्थिर हो गये हैं और स्थिर हो गया है मन भी। ये कुछ अभी सोचें—कभी क्या सोचने की स्थिति है।

'आज ही बहुत शुभ मुहूर्त है!' महर्षि ने आश्वस्त होते ही संकेत किया छात्रों को। मुहूर्त तो शुभ है ही। भला, ज्योतिर्विद्या के परमाचार्य महर्षि गर्ग का शोधित मुहूर्त—इससे शुभ मुहूर्त किसे मिल सकता हैं! जब कृष्णचन्द्र आया है, यह राम आया है पढ़ने—मुहूर्त नहीं आवेगा! श्याम का आगमन—इससे मङ्गल मुहूत और कब होगा और ऐसे छात्र मिलें—महर्षि क्यों विलम्ब करने लगे अध्यापन में। आज ये राम-श्याम आये हैं, आश्रम का अनध्याय तो अतिथि के आने से होता है। ये तो अन्तेवासी हैं—आज इनका वेदाध्ययन प्रारम्भ होगा! सभी व्यस्त हो गये हैं। पूरा आश्रम गोमय से उपलिप्त होगा, पुष्प-फल-दल, समित्, कुश, सभी एकत्र करना है! हविष्य-माल्य-ग्रन्थन, वेदियों पर देवताओं के मण्डल-निर्माण—नित्य अभ्यस्त कुशल कर लग गये हैं और कितनी देर होनी है इस सब में। राम-श्याम को स्नान करना है और तब सन्ध्या, तर्पण, देवार्चन, हवन। विधिवत् हवन के पश्चात् ही तो गुरुदेव इनका वेदाध्ययन प्रारम्भ करावेंगे। ये आज ही आये हैं, अपरिचित हैं स्थान से। सभी प्रयत्न में हैं, इनको प्रसन्न कर लें। मित्रता कर लें इनसे दूसरों से पहिले ही। इनको उचित कार्य समझाने हैं, आवश्यक सामग्रियाँ देनी हैं, स्थानों का परिचय कराना है! आज तो गुरुदेव ही स्वयं व्यस्त हैं। वे स्वयं ही इनकी समस्त सुविधाओं के आयोजन में लगे हैं। कहाँ स्नान करना है, कहाँ तर्पण होगा, कौन से पुष्प किस कार्य में आवेंगे—गुरुदेव स्वयं ही सब बता देना चाहते हैं। यह स्नेह, यह वात्सल्य जो उमड़ पड़ा है उनके अन्तर में।

× × × ×

राम और कृष्ण—कैसे छात्र हैं ये! यह निष्ठा, यह एकाग्रता, यह मेधा—गुरुदेव अपने इन शिष्यों के भुवनमोहन रूप, सौकुमार्य और शीलपर मुग्ध हुए थे एक ही दृष्टि में और अब—

यह नित्य नूतन आकर्षण—इनकी प्रतिभा का कोई पार ही नहीं है। प्रथम दिन देवार्चन, हवन और उस विस्तृत विधि से श्रान्त इन सुकुमार बालकों को केवल वेदारम्भ की विधि ही तो करा देनी थी! प्रथम दिन—अल्पारम्भाः क्षेमकराः—वह भी क्या अध्यापन का दिन होता है। गुरुदेव ने दो मन्त्र सस्वर बोले, आश्रम के अन्तेवासियों ने ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ कर दिया—बस ! मध्याह्नोत्तर तो धनुर्वेद का समय है। क्षत्रिय-कुमार अस्त्र-शस्त्र-चालन सीखते हैं। प्रथम दिन धनुष का विवरण—ज्या आदि का सैद्धान्तिक पाठ भी कहाँ चल पाता है। ब्रह्मचारी धनुष पर ज्या चढ़ाये—इतना क्या कम है प्रथम दिन के लिये।

'गुरुदेव, हम कल का पाठ सुना दें!' दूसरे दिन श्यामसुन्दर ने अनुमति माँगी। "कल का पाठ—भला, कल का पाठ ही क्या। एक बार—केवल एक बार मन्त्र बोले गये! कोई अंश स्मरण कर लिया होगा। कुछ चपल है यह कृष्णचन्द्र!" सहपाठियों ने सहास्य-नयन एक दूसरे की ओर देखा। महर्षि के अधरों पर स्मित आया। अनुमति दे दी उन्होंने।

'यह स्पष्ट उच्चारण! यह निष्कम्प स्वर! ये निर्दोष मुद्राएँ! यह अद्भुत कर-चालन!' ब्रह्मचारियों के आश्चर्य का पार नहीं! महर्षि अपलक देख रहे हैं श्रीकृष्ण की ओर! 'यह श्रीकृष्ण—यह तो अपनी धुन में है! यह ऋग्वेद की ऋचाओं का सस्वर पाठ कर रहा है—करता ही जा रहा है प्रारम्भ से! एक बार—केवल एक बार सुनकर इसने पूरा ऋग्वेद सस्वर स्मरण कर लिया!'

'गुरुदेव, मैंने मथुरा में आचार्य और विप्रवर्ग को इन ऋचाओं को कई प्रकार पाठ करते सुना है!' अब यह चलने लगा घन, जटा, माला, शिखा, रेखा आदि पाठ-क्रम। सारे स्वर, सारी शैलियाँ इस नीलसुन्दर के कण्ठ में ही निवास करती हैं क्या ?

'वत्स! कृष्णचन्द्र!' ये उठे महर्षि, इन्होंने दोनों बाहु फैलाकर अङ्क में दबा लिया श्याम को! 'यह श्रीकृष्ण—यह शिष्य है उनका!' महर्षि के नेत्रों से आनन्दाश्रु का प्रवाह चलने लगा है।

'गुरुदेव, मैं भी सुना सकता हूँ यह सब! इतना तो मुझे भी स्मरण हो गया है!' कौन अविश्वास कर सकता है इस पर। छोटे भाई ने जब सुना दिया है—बड़ा सुना देगा—क्या आश्चर्य की बात है।

'वत्स, निश्चय तुम सुना सकते हो!' महर्षि को अब क्या आवश्यकता रह गयी है कि राम से भी मन्त्र-पाठ सुनें वे। 'अब तुम लोग पढ़ो! मैं पाठ दे रहा हूँ!' कौन पढ़ा सकता है इनको—महर्षि क्या इसे समझते नहीं हैं—पर ये पढ़ने आये हैं उनके यहाँ! महर्षि के ज्ञान को धन्य करने आये हैं ये। ऐसे श्रुतधर छात्र मिले हैं—महर्षिके उत्साह की सी सीमा है आज।

'गुरुदेव क्या कर रहे हैं?' आश्रम के अन्तेवासी ब्रह्मचारी तो स्तब्ध हो रहे हैं। उनके गुरुदेव क्या कर रहे हैं आज। वे अध्यापन कर रहे हैं या स्वयं पाठ सुना रहे हैं! वे तो मन्त्र-संहिता, उनके ब्राह्मण, आरण्यक, कल्पसूत्र, शुल्वसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, सब धारा-प्रवाह बोलते जा रहे हैं। न भाष्य, न व्याख्या—वे तो जैसे स्वयं परीक्षा दे रहे हों और ये राम-श्याम—ये दोनों कितने एकाग्र बैठे हैं। गुरुदेव के मुखपर स्थिर दृष्टि किये ये तो इस प्रकार सुन रहे हैं, जैसे सब समझते जा रहे हैं। सब पहले से ही स्मरण है इन्हें।

× × × ×

कितना वात्सल्य, कितना स्नेह, कितना अनुराग है गुरुदेव का राम-श्याम पर! वृद्ध महर्षि—त्रिकाल संध्या, हवन, देवार्चन और उसपर यह श्रम! प्रातः भगवान् हव्यवाह् को आहुतियाँ देने के पश्चात् उनके विशाल भाल का स्वेद अध्यापन-वेदिका पर भगवती वीणा-पाणि ही पोंछती हैं। मध्याह्न-संध्या से पूर्वतक उनकी अविराम वाणी श्रुति, स्मृति, पुराण, दर्शन, सूत्र-ग्रन्थ—पता नहीं कितनी विद्याओं का पारायण कर जाती है और उनके ये अद्भुत शिष्य—ये राम-श्याम तो मानों कर्णों में ही स्मरण की शक्ति लिये आये हैं। श्रवण—एक बार श्रवण ही तो! मूल सूत्रों, मन्त्रों का श्रवण—कृष्णचन्द्र के लिये इतना तो बहुत अधिक है।

'वत्स, कृष्ण ! तुम अपने सहपाठियों को सूत्र का मर्म तो बता दो !' गुरुदेव आजकल अन्य विद्यार्थियों को कहाँ पाठ देते हैं। विद्यार्थी—श्याम कितनी सरल रीति से, कितने विस्तृतरूप में समझाता है। भाष्य, रहस्य—कोई भी भाष्य श्रीकृष्ण की इस व्याख्या से अधिक पूर्ण कहाँ हो सकता है। कौन-सा ऐसा रहस्य है जो यह नील-सुन्दर अपनी सहज वाणी में छोड़ गया हो।

मध्याह्नकृत्य समाप्त हुए और गुरुदेव ने पुकारा—'राम ! अपने अनुज के साथ चल तो वत्स ! आओ, तुम लोगों को धनुर्वेद का नूतन पाठ देना है न !' गुरुदेव भोजन के उपरान्त पूरा विश्राम भी नहीं करते हैं। राम-श्याम उनके चरण दबाते हैं और तब भी उनका अध्यापन चलता रहता है। धनुर्वेद के अङ्गोपाङ्गों की सैद्धान्तिक शिक्षा चलती रहती है। श्यामसुन्दर का आग्रह—आचार्य तनिक विश्राम कर लें ! गुरुदेव तो जैसे स्वयं समुत्सुक रहते हैं शिक्षा देने को ! राम-श्याम—सुकुमार बालक, इन दोनों के विश्रामका विचार न आये—गुरुदेव सम्भवतः भोजन के पश्चात् सीधे प्रयोग-भूमि पर उपस्थित हो जायँ। धनुर्वेद प्रयोग करके ही तो प्राप्त करने का विषय है। सैद्धान्तिक शिक्षा यदि प्रयोगभूमि में अभ्यस्त न हो—किस काम की है वह !

राम—यह राम जब धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर प्रयोग-भूमि में खड़ा होता है—मूर्तिमान् धनुर्वेद क्या इससे शौर्यशाली हो सकता है। राम और कृष्ण—ये दोनों भाई तो जैसे शिक्षाका नाम करने आये हैं यहाँ। गुरुदेव के जीर्ण-शीर्ण करों को कष्ट क्यों दिया जाय। उन तपोधन ने जो अस्त्र-शस्त्रों के सैद्धान्तिक प्रयोग बताये हैं--प्रयोग-भूमि में उन प्रयोगों के ये सक्रिय भाष्य--राम-श्याम की यह स्फूर्ति, यह हस्त-लाघव और यह प्रयोग की विविध भङ्गी--सहपाठी क्षत्रिय कुमार आश्चर्य से देखते रह जाते हैं और आचार्य--आचार्य जब उमंग में स्वयं धनुष लेकर दिव्यास्त्रों के प्रयोग देना प्रारम्भ करते हैं--राम-श्याम—भला, इनसे उत्तम अधिकारी कहाँ प्राप्त हो सकता है आचार्य को।

आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, सम्मोहनास्त्र, पार्वत्य, पाशुपत—पता नहीं कितने दिव्यास्त्र हैं। आचार्य तो इन्हें नारायणास्त्र और ब्रह्मास्त्र तक देने में एक क्षण नहीं हिचके। ये राम-श्याम—मूर्तिमान् धनुर्वेद सम्भवतः इनके चरणों में शिक्षा ही ग्रहण करने का अधिकारी है। लोग कहते हैं--वितस्ति-बाण संधान कर सकें--विश्व में दो-चार ही शूर हो सकते हैं ऐसे और उस दिन जब गुरुदेव ने वे नन्हे-नन्हे बाण दिये--कृष्णचन्द्र जैसे सदा से इनसे खेलने का अभ्यस्त हो। इसने तो हाथ में लेते ही केवल ज्या के सहारे उनकी पूरी वर्षा प्रारम्भ कर दी।

आनन्द—आशङ्का—आश्चर्य और कुतूहल का तृतीय प्रहर जब समाप्त होता है--सायं-संध्या तनिक विश्राम ही देती है ! गुरुदेव अब कलाओं की शिक्षा देंगे--त्रिभुवन-मोहन मुरलिका के छिद्रों पर अभ्यस्त पतली, कोमल, अरुण अङ्गुलियाँ और कालिय के फणों पर चित्र ताण्डव के अभ्यासी चरण—श्यामसुन्दर को क्या कला की शिक्षा प्राप्त करनी है ? अग्रज के साथ वह रात्रि के प्रथम प्रहर में कला सीखने को समुद्यत होता है—कलाओं को भी उसके सुकुमार स्पर्श से सार्थक हो जाना चाहिये। दिनभर के श्रम से थके गुरुदेव, उत्कण्ठित सहपाठी, आतुर-से आश्रम के पशु-पक्षी तक—सबके प्राणों में रस-सिञ्चन का यही तो समय है। खग नीड़ों से निकलकर प्रतीक्षा करते हैं, पशु कान उठाये निष्पन्द स्थित हो जाते हैं और मलय-मारुत मन्द-मन्द झूमने लगता है। नृत्य, गीत, वाद्य, चित्र, मूर्ति--पता नहीं श्रीकृष्ण ने कब सीखा होगा इन्हें। भाई के साथ महर्षि के निर्देशों को जब यह साङ्ग मूर्ति देने लगता है--प्रकृति जैसे निष्पन्द-मुग्ध-थकित हो रहती है। श्याम का स्पर्श स्वतः जैसे कला है ! इसके कर जिस सहज भाव से चलते हैं—तुम्बरु की वीणा, गन्धर्वों के वाद्य--कौन स्पर्धा कर सकता है ! श्रीकृष्ण की कला—यह श्यामसुन्दर सीखता है--प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक अङ्ग में यह नित्य मौलिकताओं की जो श्रेणीबद्ध परम्परा स्थापित करता चलता है—यह शिक्षा है इसकी ? यह तो जैसे प्रत्येक कला को अभिनव वरदान देने को ही प्रवृत्त हुआ है।

× × × ×

"कृष्णचन्द्र—सुकुमार, सरल, कृष्णचन्द्र कितना गुरुसेवी, कितना श्रमशील, तत्पर और मेधावी है !' गुरुदेव दोनों भाइयों की प्रशंसा करते थकते ही नहीं। दोनों ब्राह्म-मुहूर्त के प्रारम्भ में ही उठ जाते हैं, गुरुदेव के उठने से पूर्व तो स्नान भी हो रहता है उनका। महर्षि के लिये जल, दन्तधावन—छोटी-बड़ी समस्त सेवा जैसे ये दोनों स्वयं ही कर लेना चाहते हैं।

'आप बहुत श्रान्त कर देते हैं दोनों बालकों को !' गुरुपत्नी का कितना अगाध स्नेह है राम-श्याम पर। दोनों कितने तत्पर रहते हैं उनकी सेवा में, सुमधुर कन्द, मधुच्छत्रक, पक्क फल, मीठे अङ्कुर, मनोहर पुष्प—दोनों पता नहीं कितनी वस्तुएँ नित्य उनकी सेवा में उपस्थित करते रहते हैं। पता नहीं कब कहाँ से एकत्र कर पाते हैं इन सामग्रियों को। कुश और समिधा लेने कितने अल्पकाल को जाते हैं दोनों कानन में ! महर्षि कहते हैं कि उनके लिये पूरी समिधाएँ, पूरा कुश, पुष्प, दल—पूजा के सभी उपकरण येही दोनों संचय करते हैं। आजकल और ये जो राशि-राशि कन्द,फल,पुष्प—इतने मधुर, इतने पक्क, इतने सुरङ्ग फलादि क्या इसी तपः-कानन में हैं ? इतनी प्रचुर मात्रा में हैं ? अनेक बार कहने पर भी तो कभी कोई ब्रह्मचारी ऐसे फल नहीं ला सका ! कहाँ पा जाते हैं ये दोनों !

'तुमने इन्हें सामान्य राजकुमार ही मान लिया है ? कुल पचास दिनों में इन्होंने साङ्ग, सरहस्य सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा समाप्त कर दी है और अब मध्याह्नोत्तर में गज-विद्या एवं अश्व-विद्या के सूत्र सुनाने लगा हूँ। बारह दिन लगने हैं और पूरा ज्ञान इस विषय का प्राप्त कर लेंगे ये। तुम तो सायंशिक्षा स्वयं देखती हो। एक कला अपने समस्त भेदोपभेदों के साथ दोनों भाई नित्य अवगत कर लेते हैं और कृष्णचन्द्र उसमें नित्य आमूल जो नवीन शैली, नवीन चेतना देता जाता है—मैं इन्हें शिक्षित कर रहा हूँ ? इन्हें शिक्षा दे सकें, ऐसा हो कौन सकता है ! यह मेधा—यह ज्ञान किसी लोकपाल में भी सम्भव है—मेरी बुद्धि इसे मानती नहीं ! मुझे गौरव दिया है इन्होंने और मैं जितनी मुझमें शक्ति है, जितनी योग्यता है, उससे सेवा करने का प्रयत्न करता हूँ।' आचार्य पता नहीं क्या-क्या कह चलते हैं। राम-श्याम की चर्चा करते ही उनके नेत्र झरने लगते हैं। कण्ठ भर आता है। अपने इन दोनों छात्रों की चर्चा, इनका अध्यापन—जैसे दो ही कार्य रह गये हैं उनके लिये।

'राम-श्याम जब से आये, आश्रम के तरु फलभार सम्हाल नहीं पाते। लतिकाओं में पत्रों से अधिक पुष्प ही दिखायी दिया करते हैं। गायों के स्तनों से दुग्ध की धारा चला करती है। दिन भर वे उटज के द्वारपर हुंकार ही करती रहती हैं—उन्हें दुह लिया जाय। उनके स्तनों का दूध—कितना दुह सकता है कोई। मृग, केसरी, शशक, कपि, मयूर, हंस, शुक—ये सब वन-पशु और पक्षी दिन भर आश्रम में ही एकत्र रहते हैं और इतने शान्त, इतने संयत—ऐसे तो कभी नहीं थे ये। कोई मृग नीवारों को सूँघता तक नहीं। कोई कपि आश्रम-तरुओं के एक फल नहीं छूता ! उछलना तक नहीं डालियों पर। पता नहीं सब क्या आहार करते हैं। दिन भर यहीं घेरे रहेंगे और इतने स्वस्थ, इतने प्रसन्न—आश्रम में आनन्द की बाढ़ आ गयी है। ये राम-श्याम—ये जब से आये हैं, कपियों, भल्लूकों, वनगजों के उपहार कहाँ तक सम्हालें गुरुपत्नी ! ये वनपशु—उटज-प्राङ्गण इनके लाये फलों, कन्दों, पुष्पों से भरा रहता है। कितने अद्भुत, कितने सुस्वादु उपहार लाते हैं सब ! राम-श्याम के लाये उपहार ही कहाँ समाप्त हो पाते हैं कि इनका उपयोग हो। राम-श्याम—आश्रम के छात्र कहते हैं कि दोनों भाई मध्याह्न के पूर्व, वेदाध्ययन करके जब झोली कंधे पर धरे भिक्षाटन को निकलते हैं—कहाँ गये हैं दोनों किसी गृह में किसी दिन। वन-पशुओं में होड़ लगती है—कौन कितने उपहार अर्पित करेगा इनकी झोलियों में ! किसके फल या कन्द कितने नूतन—कितने सुस्वादु होंगे ! पशुओं तक ही बात कहाँ है, ये तो तरुओं से भिक्षा लेते हैं। लाल-लाल पद्मपाणि फैला और पक्व फल चू पड़ा, जैसे वृक्ष प्रतीक्षा ही करते रहते हों ! छात्र क्यों अत्युक्ति करेंगे ! ये दोनों भाई जब से आये—सभी छात्रों का भिक्षाटन बंद ही तो है उसी दिन से ! इनकी झोलियाँ—मध्याह्न में महर्षि के श्रीचरणों में जब ये अपनी झोलियाँ उपस्थित कर देते हैं—कितना आग्रह करते हैं महर्षि कि ये अपने लिये फल ले लें ! ये तो छाँटने लगेंगे आज्ञा पाते ही गुरुपत्नी के लिये, आचार्य के लिये, सहपाठियों के लिये, धेनुओं के लिये, कपियों और मृगों के लिये—पता नहीं कितने प्राणियों

को तृप्त करना रहता है इन्हें ! गुरुपत्नी यदि स्वयं आग्रहपूर्वक न खिला दें—इन दोनों को अपने भोजन का स्मरण आना ही नहीं है !' पता नहीं कितनी बातें आती हैं मन में। महर्षि कहते हैं—ये सामान्य राजकुमार नहीं—कोई देवता भी ऐसे नहीं हो सकते; किंतु इनके विषय में जब मन सोचने लगता है—वह तो इन्हीं के सम्बन्ध में सोचता ही है अब और कहाँ-से-कहाँ चिन्तनधारा जा रहती है—क्या ठिकाना रहता है।

'राम-श्याम—गुरुसेवा की मूर्ति ये सुकुमार बालक ! गुरुदेव के स्नान की, हवन की, पूजन की सम्पूर्ण सेवा, मध्याह्न और रात्रि में आचार्य के चरण दबाना और गुरुपत्नी की सभी सुविधाओं की व्यवस्था—ये दोनों तो और किसी को कुछ करने ही नहीं देते हैं। जल ये लायेंगे, फल-मूल-पुष्प इन्हें ही लाना है, काष्ठ दूसरे को लाने देते से रहे ये और गो-सेवा—भला, इसे कैसे कोई इनके रहते दूसरा कर पाये। उटज और आश्रम—प्रातः-संध्या से पूर्व सबको स्वच्छ कर देंगे, गोमय से उपलिप्त कर देंगे और तब आचार्य के चरणों में ऐसे उपस्थित होंगे, जैसे कुछ किया नहीं इन्होंने—कोई सेवा इन्हें भी चाहिये। कितने सरल हैं दोनों !' गुरु-पत्नी बड़े आग्रह से कुछ फल खिला पाती है। प्रातः सन्ध्या-वन्दन करके राम-श्याम लग जायँगे अपने कार्यों में और जैसे इन दोनों को देखते रहने के अतिरिक्त कोई कार्य रह ही नहीं गया है। क्या कार्य रह गया है ? महर्षि सदा के परम तापस—आजकल तो उनके लिये नीवार-रन्धन भी करना नहीं रहता। राम-श्याम के लाये फलों से आश्रम के पशु-पक्षी तक तृप्त हो जाते हैं और फिर इन अद्भुत स्वादिष्ठ फलों के रहते कौन कामना करेगा किसी और पदार्थ की। 'कोई सेवा, मातः ?' दोनों मस्तक झुकाये, भूमि में दृष्टि किये पता नहीं कितनी बार पूछ जाते हैं। गुरुपत्नी क्या कहें, कहने का कहाँ कभी अवकाश मिलता है उन्हें। एक पल और कोई-न-कोई कार्य स्वयं ढूँढ़ लेंगे दोनों—उसे करने में व्यस्त हो उठेंगे ! घुँघराली अलकें रूक्ष पड़ी हैं, सुमन-सुकुमार शरीर—पर ब्रह्मचारी हैं न दोनों ! गुरुपत्नी का वात्सल्य—वात्सल्य हृदय में उमड़ता है—नियम, आश्रम - मुख खुलते-खुलते रह जाता है ! कर बढ़ते-बढ़ते थकित हो जाते हैं। वे देखती रह जाती हैं एकटक—स्थिर—अपलक !

× × × ×

'राम-श्याम हमारे साथ पढ़ेंगे ! हमारे सहपाठी होंगे ये !' कितनी उमंग उठी थी अन्तर में उस प्रथम दिन ही। किस उल्लास से आश्रम के ब्रह्मचारियों ने स्वागत किया इनका।

'यह कृष्णचन्द्र —इन भाइयों की यह लोकोत्तर प्रतिभा !' दूसरे दिन आश्चर्य ने स्तब्ध कर दिया। आचार्य उचित ही तो अनुराग करते हैं इनका।

'सुकुमार श्याम—कोमल अरुण कर—यह क्या सेवा के लिये हैं !' विद्यार्थी कितना चाहते हैं कि दोनों भाई आश्रम का कोई काम न करें। कितना प्रयत्न करते हैं वे। आश्रम स्वच्छ—गोमय से लिपा-पुता स्वच्छ। गोशाला पहले ही किसी ने स्वच्छ कर दी ! गुरुपत्नी कहती हैं—गृह-मार्जन हो चुका, जल तो राम रख गया बहुत पहले और पुष्प तथा फल भी। समित्, कुश, दूर्वांकुर—कृष्णचन्द्र ने हवनीय वेदिका के समीप गुरुदेव के स्रुवादि के साथ छात्रों के आसन तक सजा दिये ! कब हो जाता है यह सब ? कब कर लेते हैं दोनों भाई—पता नहीं कब हो जाता है सब; पर जिस काम के लिये देखो, जहाँ जाओ—राम-श्याम ने कर दिया है ! पहले से सब कर दिया है ! गुरुगृह की, गुरुदेव की, गायों की ही नहीं—उन छात्रों की स्वयं की सेवा भी कर चुकते हैं ये दोनों। उनके आसन यथास्थान बिछ चुके, हवन की उनकी समिधाएँ आ गयीं; सुमन पत्र-पुटकों में सजा दिये गये, सूखे वल्कल यथास्थान रख दिये—कितनी सावधानी, कितनी चेष्टा कर ली सब ने; पर कृष्ण कब कर लेता है पहले ही—पता ही नहीं लगता।

'तुम दिन भर पढ़ते हो ! आश्रम की सेवा तो हम पर रहने दो !' कितने स्नेह से बार-बार आग्रह किया सब ने—'गुरुदेव की सेवा का सौभाग्य हमें भी तो कुछ मिले ! ब्रह्मचारी दूसरे से सेवा ले—यह तो अपराध है न, भाई !' राम हँसकर टाल देता है और श्याम—श्याम ही सारे कार्य कर लेता है और कहने पर हँसने लगता है।

'आप सब श्रेष्ठ हैं ! हम लोगों से पहले आये हैं ! आपकी सेवा से ही तो भगवती वीणापाणि प्रसन्न होंगी !' भगवती वीणापाणि—भगवती जिसकी सेवा में प्रत्यक्ष उपस्थित-सी दीखती हैं—पर कृष्णचन्द्र किसी का अनुरोध कहाँ सुनता है। 'मैं कहाँ कोई सेवा कर पाता हूँ ! कुछ भी तो नहीं कर पाता !' यह शील, यह सौहार्द, यह प्रेम—ऐसा सहपाठी मिले—आजन्म गुरुकुल में ही निवास करने को देवता भी आतुर हो उठेंगे।

सेवा, सम्मान-दान और प्रेम—श्रीकृष्ण—श्याम को जैसे अपने लिये सुविधा, मान, कुछ चाहिये ही नहीं। यह आनन्द और अनुराग की मूर्ति सबको तुष्ट करने, प्रसन्न करने, सत्कृत करने में ही लगा रहता है और जब इसकी प्रशंसा में कुछ कहो—मुख पर हाथ धर देगा ! ऐसा संकुचित होगा—कहने की बात नहीं। यह नम्रता—और आजकल यही सबका वास्तविक अध्यापक है। गुरुदेव ने सबकी शिक्षा छोड़ दी है इस पर। इसकी व्याख्या, इसका समझाना—ज्ञान की मूर्ति हृदय में अङ्कित करता बोलता है और तब भी कहेगा—'मैं छोटा हूँ न ! आपकी सेवा ही से तो भगवती भारती की कृपा-कोर मिल सकती है !'

राम-श्याम की सेवा—इनकी सेवा छात्रों तक ही कहाँ सीमित है। आश्रमधनुएं हुंकार करती हैं इनके लिये ! इनके करों के कोमल तृणों के बिना मृगशावक और बछड़े तक तृण छूना नहीं चाहते। दूध इन्हें ही दुहना है और बछड़ों का सत्कार ये दूसरे पर छोड़ने से रहे। पशु-पक्षी—सभी तो इन्हें घेरे रहते हैं। सबकी सेवा—जैसे संसार को स्नेह-दान के लिये ही यह श्याम आया है। तरु-लताओं का सिञ्चन, उनके आलवालों की भूमि की निराई—कैसे इतना समय मिल जाता है इन्हें। गुरुदेव बराबर पढ़ाते रहते हैं—रात्रि के प्रथम प्रहर में भी इनका अध्ययन चलता है और उस अध्ययन का मनन—आवृत्ति—क्या आवश्यकता है इसकी। कहाँ अवकाश है इसके लिये ! प्रमाद की क्या चर्चा ! नियमों में कहीं कोई शिथिलता कैसे सम्भव है और ये इतने कार्य—श्रीकृष्ण तो जब देखे, जो देखे—उसीके समीप, उसीकी सेवा में लगा रहता है ! उसे जैसे अवकाश-ही-अवकाश है ! किसी के कार्य, किसी सेवा के लिये समय न हो उसके पास—यह तो सोचा ही नहीं जा सकता।

× × × ×

'मातः, कोई सेवा ?' आज यह कृष्णचन्द्र गुरुपत्नी के सम्मुख सुदामा (श्रीदाम) के साथ आया है। विप्रकुमार श्रीदाम—यह ब्राह्मण-कुमार श्याम का प्रिय सखा हो गया है और अब तो ये दोनों संग ही रहा करते हैं।

'श्रीदाम, उटज में सूखा इन्धन नहीं है !' गुरुपत्नी जानती हैं कि कृष्णचन्द्र साथ ही जायगा। वह रोका नहीं जा सकता। आज दिन में मेघ नहीं रहे हैं। पावस में सूखा इन्धन समाप्त हो गया और प्रकाश है। यदि सायंकाल कहीं राम या कृष्ण को पता लगा कि इन्धन नहीं है तो वे उसी समय कानन में भाग जायँगे। इस वर्षाऋतु का क्या ठिकाना—अभी प्रकाश है, धूप है—अभी मेघ घिर आयें, वर्षा होने लगे। अभी ये काष्ठ ले आयें तो वर्षा में अँधेरे में इनके वन में जाने की आशङ्का न रहे।

'तुम और किसी को साथ ले लो ! बहुत दूर मत जाना ! जो भी थोड़ा बहुत काष्ठ मिले, लेकर शीघ्र लौट आना !' गुरुपत्नी ने स्पष्ट प्रकट कर दिया कि श्याम वन में न जाय तो अच्छा है।

'हम पर्याप्त काष्ठ ला सकेंगे !' कृष्णचन्द्र तो पहिले ही उटज से बाहर हो गया। वह क्या ऐसे अवसर पर कुछ और सुनने को रुका करता है।

'श्याम नहीं आया ! वह वन में चला गया !' गुरुपत्नी तो सम्भवतः दूसरे ही क्षण से प्रतीक्षा करने लगीं। अब ये मेघ घिरने लगे ! घटाएँ बढ़ने लगीं ! सूर्यास्त समीप आया। दिशाओं में अन्धकार छा रहा है ! 'कहाँ गये—कहाँ रह गये दोनों ! किस अशुभ मुहूर्त में मैंने आदेश दिया !' गुरुपत्नी व्याकुल हो उठी हैं ! वे उटज-द्वार पर दूर तक दृष्टि लगाये हैं। 'कृष्ण—कृष्ण वन में है !'

'श्यामसुन्दर वन में है !' महर्षि को समाचार दिये बिना और मार्ग नहीं। छात्र दूर तक देख आये ! कहीं पता नहीं है। कोई पुकार का उत्तर नहीं देता।

'यह मूसलाधार वर्षा ! श्रीचरण इस अन्धकार मयी रात्रि में कहाँ भटकेंगे ! प्रकाश जा नहीं सकता ! हमारी पुकार के स्वर इस वर्षा में सुनायी नहीं पड़ेंगे ! श्याम साथ है—श्रीदाम के लिये कोई आशङ्का की बात नहीं !' यह राम चरण पकड़ कर महर्षि को इस रात्रि में, इस वर्षा में वन में जाने से निषेध कर रहा है। 'श्रीदाम के लिये आशङ्का नहीं। श्याम साथ है !' अपने छोटे भाई पर इसका उचित विश्वास है, पर कृष्णचन्द्र वन में है ! वह इस अन्धकार में, इस महा वृष्टि में पता नहीं कहाँ होगा ! महर्षि के प्राण आतुर हैं।

'यह वर्षा ! यह प्रबल झञ्झावायु ! यह सूची-भेद्य अन्धकार !' महर्षि द्वारपर खड़े हैं उटज के। 'कृष्ण ! कृष्णचन्द्र ! श्यामसुन्दर !' गुरुदेव तो इस प्रकार पुकार रहे हैं, जैसे श्याम सम्मुख ही से उत्तर देगा ! 'ये बालक, यह राम—इन्हें रोका नहीं जा सकता ! इन्हें भी इस वर्षा, इस अन्धकार में ले नहीं जाया जा सकता !' महर्षि के चरण उठकर भी नहीं उठ पाते। उनके आतुर प्राण छटपटा रहे हैं।

राम--पर राम क्या करे ! ये वृद्ध गुरुदेव, ये ब्राह्मण-कुमार—इन्हें कैसे जाने दिया जा सकता है ! 'कृष्ण वन में है ! श्याम भाग रहा होगा !' राम को कौन-सी शक्ति यहाँ रोककर अब भी इस कठोर कर्तव्य में स्थिर किये है, यह वह स्वयं भी कहाँ समझ पाता है। कर्तव्य--गुरुदेव को किसी प्रकार रोके रहना ही कर्तव्य है इस समय उसका ! वह न हो, गुरुदेव पता नहीं कहाँ भटकेंगे-- कितना कष्ट उठायेंगे इस महारात्रि में।

'वह चमका पीतपट ! वह आया श्याम ! कृष्णचन्द्र !' विद्युत् की चमक, पत्तों के शब्द— गुरुदेव, छात्र--सभी तो बार-बार चौंकते हैं। बार-बार पुकारते हैं। सबको ही तो अब श्याम ही दीखता है प्रत्येक आहट में आता हुआ !

'कृष्ण नहीं आया ! कृष्ण--मैंने उसे भेज दिया ! वह आया नहीं !' गुरुपत्नी तो चेतना में ही नहीं हैं। वे मूर्छित होती हैं, चौंकती हैं और चिल्ला उठती हैं।

'श्याम का कुछ नहीं बिगड़ेगा ! उसपर संकट आ नहीं सकता ! हम बड़े सबेरे ढूँढ़ लायेंगे उसे !' राम ही तो सबका आश्वासन बना है। यह द्वारपर न खड़ा हो द्वार रोके.........।

× × × ×

पावस के मास--वन में सूखे काष्ठ क्या सरलता से मिल सकते हैं ? ब्रह्मचारी को वृक्षपर चढ़ना नहीं चाहिये--यह तपोवन--यहाँ के ये हरित, पुष्पित, पल्लवित, फलभार से झूमते वृक्ष-- यहाँ शुष्क काष्ठ कहाँ मिलते हैं। 'श्याम, बहुत वेग से वृष्टि होगी ! इन उमड़ते-घुमड़ते मेघों को देख तो !' श्रीदाम ठीक ही शङ्कित हुआ है। इतने दूर कानन में आ गये और अब वर्षा आ रही है।

'हम शीघ्र लौट चलें !' काष्ठ-चयन जितना हुआ, उसी पर संतोष करने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। वर्षा आ रही है। लौटना ही है अब !

'हम लोग मार्ग भूल गये !' श्रीदामा ने कृष्णचन्द्र की ओर देखा और फिर देखा गगन की ओर। अन्धकार बढ़ता आ रहा है ! मेघ तीव्रगति से ऊपर आ रहे हैं ! यह 'हर्र्‌ हर्र्‌' वर्षा आ रही है ! मार्ग ? मार्ग ? बड़ी-बड़ी बूँदे, तीव्र वर्षा, प्रबलतम मारुत।

भीगी अलकें, भीगे मृगचर्म, कक्ष में पलाश-दण्ड, थोड़े-सी समिधाएँ--मूसलाधार वर्षा, तीव्र झञ्झावायु, झूमते तरु, बार-बार गर्जन और मध्य में यह चपला का प्रकाश—अन्धकार बढ़ता जा रहा है ! बढ़ रहा है ! अस्त-व्यस्त, एक वृक्ष से दूसरे के नीचे परस्पर हाथ पकड़े भागते ये दो कुमार ! मार्ग ? मार्ग ? निखिल मार्गों का प्रेरक, सम्पूर्ण मार्गों का अन्वेष्य मार्ग चाहता है ! मार्ग— यह गहन कानन, यह बढ़ता अन्धकार, यह घोर वर्षा—मार्ग कहाँ मिले ! जो समस्त भव-भ्रान्तों का नित्य निष्कण्टक सरल मार्ग है--पर यह गुरु-सेवा ! आज यह श्यामसुन्दर गुरुदेव के लिये— उनकी सेवा के लिये इस महावर्षा में भटक गया है वन में।

अन्धकार—सूची-भेद्य अन्धकार! अपना हाथ भी नहीं दिखायी पड़ता! वर्षा के घटने का नाम नहीं! भगवान् भास्कर सम्भवतः अस्ताचल को चले गये! वर्षा—पवन—शरीर काँपने लगा है, रोम-रोम खड़े हो गये हैं, दन्तपंक्तियाँ शब्द-करने लगी हैं! गिरते-गिरते अनेक बार बचे! अब नहीं—अब इस अन्धकार में कहीं नहीं जाया जा सकेगा। चरण शान्त हो गये! अन्धकार गाढ़ हो गया। तरु-मूल में एक दूसरे से सटकर, सिकुड़कर, किसी प्रकार बैठे रहना है! बैठे रहना ही पड़ेगा!

× × × ×

'कृष्ण! कृष्ण! कृष्णचन्द्र!' यह विह्वल, यह कातर स्वर! ये गुरुदेव पुकार रहे हैं! रात्रि व्यतीत हो गयी—सूर्योदय हुआ! मेघ दूर हुए! अब तो श्याम आश्रम में पहुँचने को ही चला है श्रीदामा के साथ! गुरुदेव पुकार रहे हैं! प्रभात का समय—पता नहीं कब से चले हैं गुरुदेव। कहाँ-कहाँ भटकते रहे हैं! गुरुदेव, राम—सभी तो पुकार रहे हैं! सभी तो आ रहे हैं।

'कृष्ण! कृष्णचन्द्र!' यह प्रातःकाल—भगवान् भास्कर को अर्घ्य, संध्या, पितरों को तर्पण, देवताओं को आहुतियाँ—ये अखण्ड नियमनिष्ठ आचार्य—आज किसे स्मरण हैं नियम! कौन उनकी बात सोचता है। 'कृष्ण! कृष्णचन्द्र!' आतुर, विह्वल कण्ठ गूँज रहे हैं।

'प्रभो, यह वासुदेव कृष्ण श्रीचरणों में प्रणत है! दौड़ा श्याम, कहाँ अवसर मिला उसे प्रणाम करने का। दोनों बाहु फैलाकर दौड़े ये वृद्ध महर्षि!

'कृष्णचन्द्र!' महर्षि की वाणी कण्ठ से बाहर कहाँ आ पाती है! यह नेत्रों से बहती धारा!

× × × ×

'श्यामसुन्दर, देह धारियों के लिये शरीर ही परम प्रिय है! तुम्हारा यह भुवन-मोहन सुकुमार शरीर—मेरे लिये तुम रात्रि भर घोर वर्षा में गहन कानन में पड़े रहे! मैं अकिञ्चन ब्राह्मण—आशीर्वाद ही तो दे सकता हूँ मैं! इस लोक और परलोक में भी समस्त वैदिक ज्ञान—सम्पूर्ण छान्दस तत्त्व तुम दोनों भाइयों को नित्य स्मरण रहे!' वन से मार्ग तक महर्षि कहाँ बोलने में समर्थ हुए! आश्रम में प्रातः कृत्य कैसे हुआ—कौन कह सकता है; पर यह कृष्णचन्द्र अग्रज के साथ प्रातः-हवन के पश्चात् गुरु-चरणों में प्रणाम कर रहा है! महर्षि ने दक्षिण हस्त फैलाया—उनका आशीर्वाद ही तो निखिल ज्ञान का मूल है। उनका आशीर्वाद—इस आशीर्वाद के पश्चात् अध्ययन अपूर्ण कहाँ रह जाता है।

गुरुपुत्रानयन

"ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ।
वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥"

—भागवत १० । ७४ । २

गुरुदेव ने राम-श्याम को आशीर्वाद दे दिया है ! समावर्तन-संस्कार है आज तो इन दोनों भाइयों का। शिक्षा—शिक्षा तो इन्हें कौन दे सकता था। चारों वेद, उनके अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष—उपनिषत्, आरण्यक, धर्मसूत्र, कल्पसूत्र, शुल्वसूत्र, स्मृतियाँ, पुराण, इतिहास, षड्दर्शन और षड्विध राजनीति—गुरुदेव प्रातःकालीन शिक्षाकाल में केवल एक बार इनके मूल सूत्र ही तो बोलते रहे हैं ! दोनों भाइयों ने उस श्रवणमात्र से जो धारणा प्राप्त की है, कृष्णचन्द्र जो अद्भुत व्याख्या कर देता है—यह क्या शिक्षा से शक्य है। अपराह्न की शिक्षा में धनुर्वेद को साङ्ग, सरहस्य समाप्त कर दिया इन्होंने केवल पचास दिनों में और बारह दिनों की अपराह्न-शिक्षा में पूरा अश्व एवं गजों का परीक्षण, चालन, शिक्षण एवं चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त कर लिया। सायंकाल गुरुदेव एक-एक कला के शिक्षा-सूत्र ही तो बोलते थे—उन्हें मूर्ति देता, उनमें मौलिकता का नव-नव सृजन करता यह श्यामसुन्दर—चौंसठ दिन और चौंसठ कलायें—शिक्षा पूर्ण हो गयी ! आज तो इनका समावर्तन-संस्कार है।

राम श्याम का समावर्तन-संस्कार है ! धन्य हो गयी है अवन्तिका ! राजमाता राजाधिदेवी—आज उनके स्नेहमय भाई के ये दोनों पुत्र राजसदन आ सकेंगे ! इनका समावर्तन है राजमाता—राम-श्याम की बुआ—'महर्षि ने आशीर्वाद दे दिया है' कितना आनन्द हुआ है उन्हें इस समाचार से। दोनों के समावर्तन में सम्मिलित होने का सौभाग्य अवन्तिका को प्राप्त हुआ नगर में साज-सज्जा, उमंग का पार नहीं है आज। राम श्याम के लिये वस्त्र, आभरण, उष्णीष कञ्चुक, उपानह्, रत्नदण्ड—राजमाता तो स्वयं अपने करों से ही तैल, उद्वर्तन, उपलेपन, अङ्गराग पुष्पमाल्य तक प्रस्तुत कर लेना चाहती हैं ! जैसे उन्हें किसी को भाग नहीं देना है—किसी पर भरोसा नहीं है—वे सुकुमार गौर-श्याम—कौन उनके योग्य पदार्थ प्रस्तुत कर सकता है। नगर में जो उमंग, जो उत्साह जन-जन में, प्रत्येक अन्तर में उमड़ पड़ा है........।

उल्लास तो उमड़ चला है आज तपोनिरत प्रशान्त महर्षि सांदीपनि के आश्रम में 'कृष्णचन्द्र भाई के साथ जायगा !' कितनी दुःखद कल्पना है यह ! श्याम का स्नेह, सौहार्द और सामीप्य—पर यह भुवनसुन्दर, सुमनमृदुल, यह क्या इस तपोवन के योग्य है ! इसके इन घन श्याम अङ्गों पर क्या ऐणेयाजिन शोभा देता है ? यह रत्नमेखला-मण्डित होने योग्य कटि—मौञ्जी मेखला कितनी कष्टकर है ! कितनी व्यथा होती है श्याम की कटि में यह रूक्ष मेखला देखकर आज दूर होगी यह मेखला ! महर्षि पूजन करायेंगे देवताओं का, हवन होगा और दोनों भाई सहस्र धाराओं से स्नान करके मन्त्र के साथ मेखला का विसर्जन कर देंगे ! व्रत समाप्त हो जायगा

'गौर-श्याम अङ्गों पर जगमगावे नील-पीत सुकोमल वस्त्र ! कितनी भव्य मूर्ति होगी ! कितना आह्लाद होगा हमें !' ब्रह्मचारीगणों के सम्मुख अभी से दृश्य चल रहे हैं। सूर्योपस्थान करके दोनों भाई दन्तधावन करेंगे !' उदुम्बर की सुकोमल शाखा कब से ला रखी है उन्होंने। 'काली घुँघराली अलकें सुगन्धित कटु तैल से सिक्त होकर लहरा उठेंगी ! भला, ये अलकें इस प्रकार रूक्ष रहने और जटा बनने के लिये हैं ! हम इनमें सुमन गूँथ देंगे !' पता नहीं क्या-क्या सोच रहे

हैं वे। 'यवचूर्णा से उद्वर्तन, उष्णोदक-स्नान, मलयज-लेपन, हस्तोपलेप, प्राणायाम और तिलक' कितने ही सहपाठियों का उद्वर्तन-समारोह देखा है उन्होंने। अनेक बार भाग लिया है; पर आज—आज-जैसा उद्वर्तन क्या शक्य है—किसी की कल्पना में भी यह सौन्दर्य, यह उल्लास आ सकता है ! 'गुरुदेव मन्त्र-पाठ करेंगे ! हम सब सहायता करेंगे कर्मों में और महद्वास धारण करके, माला, उष्णीष, कञ्चुक, अलंकार, अञ्जन, उपानह्, रत्नदण्ड से शोभित राम-श्याम की भव्य-मूर्ति !' ब्रह्मचारी बालकों के शरीर पुलकित हो रहे हैं ! उनके मानस-नेत्रों के सम्मुख समावर्तन की एक-एक भङ्गिमा जैसे आनन्दसिन्धु का अपार स्रोत उद्वेलित करती उठती है !

गुरुदेव आज व्यस्त हैं ! ब्राह्ममुहूर्त से पूर्व ही उठ गये वे अपने आसन से। गुरुपत्नी—कहाँ रात्रि में विश्राम लिया है उन्होंने। विद्यार्थियों ने ही कहाँ पलकें बंद की हैं। पुष्पमाल्य, वन्दनवार, सुमन, अङ्कुर, दूर्वादल, पता नहीं क्या-क्या एकत्र किया है सबने। गोमयोपलिप्त, विविध मण्डलों-से मण्डित, कदली-किसलय, अङ्कुर, पुष्प, दल, फलों से सज्जित यह आश्रम-भूमि—यह शृङ्गार, यह शोभा—वनदेवी ने अपने करों से ही जैसे आज आश्रम को सजाया है। यह सात्त्विक सौन्दर्य—अमरावती का ऐश्वर्य रत्नों के कृत्रिम कुसुमों से बनाये गये पशु-पक्षियों की श्री से मण्डित हो सकता है, किंतु ये सहज विकच कुसुम-स्तबक, ये आनन्दोत्फुल्ल गुंजार करती अलि-अवलियाँ, ये थिरकते-कूजते पक्षी, ये कूदते—नृत्य करते पशु-यह शोभा साम्राज्यों का कोई भी ऐश्वर्य कहाँ पा सकता है और आज तो उन तपःपूत करों ने प्राणों के एकान्त स्नेह से इन्हें सजाया है, जिनके संकल्प से धरा पर अमरावती के वैभव का उपहास करनेवाला ऐश्वर्य चाहे—जब व्यक्त हो सकता है। वैभव और श्री के अधिष्ठाता जिनकी कृपा की आतुर प्रतीक्षा करते हैं, महर्षि सांदीपनि के उन भुवन-वन्दित ब्रह्मचारियों ने सजाया है आज आश्रम को। आज उनके सुहृद्-सखा राम-श्याम का उद्वर्तन-संस्कार है !

भगवान् महाकाल अखण्ड दुग्धाभिषेक से पूजित हो रहे हैं ! गूँज रहा है आश्रम शङ्ख-नाद और सस्वर साम-गान से ! गगन से होती पुष्पवृष्टि, सुरवाद्य, गन्धर्वों के मङ्गल-गान, अप्सराओं के नृत्य, जयनाद और धरा—धरा आज स्वर्ग से धन्य है ! अवन्तिका की धरा—आज इस पुण्य-धरा की स्पर्धा कहाँ ! नगर के जनों का सागर उमड़ता आ रहा है ! 'ब्रह्मचारी गुरुदक्षिणा दिये बिना माता-पिता के दर्शन नहीं कर सकता !' मथुरा को संवाद भले न भेजा जाय—अवन्तिका में ही क्या कम उपहार हैं ! राम-श्याम का उद्वर्तन-समारोह—किसे अपने मङ्गलउ-पहारों को सार्थक नहीं करना है ! बहुमूल्य रत्न-थालों में सजाये ये उपहार—आज इनके साथ नेत्र, मन, प्राण—जीवन को भी तो कृतार्थ होना है !

× × × ×

'आचार्यचरण पूर्णकाम हैं; पर हम बालकों को भी कृतकृत्य होने का सौभाग्य मिलना चाहिये !' उद्वर्तन-संस्कार पूर्ण हुआ। नूतन नील-पीत वस्त्रों में रत्नाभरण-भूषित ये राम-श्याम, इनकी यह अरूप रूप राशि, यह नयनानन्दकर शोभा—दोनों भाइयों ने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया महर्षि सांदीपनि के परम पावन पदों में और नासिकाग्र, भाल, भ्रूमण्डल रजो-भूषित हो गये। कितना गौरवमय है यह नम्रता, श्रद्धा का पावन अलंकार। अञ्जलि बाँधकर, मस्तक झुकाकर, घुटनों के बल बैठे दोनों भाई प्रार्थना कर रहे हैं—'श्रीचरणों के असीम अनुग्रह से उऋण होने की बात भी नहीं सोची जा सकती ! कौन ज्ञान के उस परमोज्ज्वल प्रकाश का प्रतिदान देने में समर्थ है और वह जिस स्नेह, जिस अनुराग से हमें प्राप्त हुआ—जन्म-जन्म तक इन पावन पदों के हम अकिंचन किंकर ही रहेंगे ! हम तो आदेश-पालन का गौरव चाहते हैं और यह धृष्टता—श्रीचरणों के स्नेह ने ही इसका साहस दिया है !'

'कृष्णचन्द्र ! राम ! वत्स... !' महर्षि ने आकुलतापूर्वक भुजाएँ फैलाकर उठा लिया, लगा लिया अङ्क में दोनों को। 'ये राम-श्याम, ये उनके शिष्य हुए ! इन घनज्ञान-विग्रह बन्धुओं ने गौरव दिया, कृतार्थ किया जीवन को और अब ये गुरु-दक्षिणा देना चाहते हैं !' गुरु-दक्षिणा—

'जो सेवा, जो श्रद्धा, जो सम्मान दिया है इन्होंने—किस अमरावती का अधीश्वर, कौन-सा जन था तप का अधिष्ठता उसके लिये उसके अंशमात्र के लिये आतुर न होगा ! कहाँ तुलना है उसकी और ये गुरुदक्षिणा देंगे !' महर्षि की वाणी असमर्थ हो गयी है। शरीर पुलकित है। नेत्रों की वारिधारा राम-श्याम की अलकों का अभिषेक कर रही है !

'गुरुदेव, हम बालकों के बाल-हठ की रक्षा के लिये ! हम पर कृपा करने के लिये—' श्याम का कण्ठ भी आर्द्र हो रहा है। कितना नम्र, कितना सरल, कितना श्रद्धा-भरा है यह स्वर !

'कृष्णचन्द्र ! वत्स ! तुम दोनों भाई भगवान् भास्कर को अर्घ्य देना नियमपूर्वक ! नित्य हवन करना ! ब्राह्मणों, गौओं, अतिथियों की रक्षा करना ! उनका सत्कार करना !' महर्षि जैसे कुछ सुनते ही नहीं हैं। वे तो गद्‌गद कण्ठ से उपदेश देने लगे हैं। उपदेश—गुरु-दक्षिणा के पश्चात् स्वगृह जाते ब्रह्मचारी को उपदेश देने जैसा यह उपदेश !

'श्रीचरणों की कोई भी तुच्छ सेवा का हमें सौभाग्य प्राप्त हो !' यह राम का आग्रह है। कितना विनय-भरा है यह आग्रह।

'राम-श्याम आग्रह कर रहे हैं ! इनका आग्रह टाल दे ऐसी शक्ति किसमें हैं ! ये कुछ कह रहे हैं, कुछ चाहते हैं, कुछ देना चाहते हैं ! क्या ? क्या ?' जैसे गुरुदेव के चित्त में कोई अज्ञात कर क्रियाशील हो गया है। राम-श्याम गुरुदक्षिणा देना चाहते हैं। दोनों का अनुनय-भरा आग्रह—उसे तो पूर्ण होना ही चाहिये।

'ये गुरुदक्षिणा के लिये आग्रह कर रहे हैं ! मथुरा जाना है अब इन्हें—जाना ही चाहिये ! ये मथुरा जायँगे—आश्रम से दूर मथुरा ! राम-कृष्ण जायँगे ! इस आश्रम से जायँगे अब ! क्या होगा ? क्या होगा आश्रम का ? ये पशु, ये पक्षी, ये गायें—राम-कृष्ण न होंगे तब क्या दशा होगी इनकी ! ये छात्र-वृन्द और वह मेरी ब्राह्मणी—बेचारी सरला, साध्वी ब्राह्मणी—वह इन्हें प्राणों से अधिक चाहती है ! कैसे जीवित रहेगी वह ! एक पुत्र था—आज यदि वह होता, ओह जब वह समुद्र में डूब गया—कितना रोई, कितनी व्याकुल हुई वह। आज वह होता—तनिक आश्वासन मिलता उसे। किसी प्रकार जीवन-धारण कर लेती !' महर्षि का मन पता नहीं कहाँ से कहाँ चला गया है।

'श्रीचरण संकोच न करें ! इन पावन पदों के प्रसाद से त्रिभुवन में कुछ भी अप्राप्य रहे, यह शक्य नहीं है !' रामका स्वर स्थिर है ! आश्वासन, अनुरोध, विश्वास—सभी तो है उसमें।

"ये राम-श्याम; इनका यह लोकोत्तर प्रभाव ! त्रिभुवन में क्या अप्राप्य है इन्हें ! ये आग्रह कर रहे हैं। ये सर्वसमर्थ—ब्राह्मणी के जीवन-धारण का उपाय यदि न हुआ—वह कैसे जीवित रहेगी !' महर्षि ने अपने को स्थिर किया। पत्नी से कुछ मन्त्रणा करने उठ गये वे उटज में ! पुत्र—किस माता के हृदय को पुत्रका वात्सल्य क्षुब्ध नहीं करता और इन राम-श्याम ने आचार्य-पत्नी के अन्तर में जो असीम वात्सल्य को स्रोत प्रवाहित कर दिया है यहाँ आकर। महर्षि जब पुनः लौटे—कुछ क्षणों में ही वे उटज से बाहर आये—स्वर स्पष्ट हो गया—'वत्स, तुम दोनों भाइयों के लिये त्रिभुवन में न कुछ अप्राप्य है और न अदेय ! हम सब ग्रहण-स्नान के लिये प्रभास गये थे ! मेरे पूर्वजों की आशा का आधार, मेरे पितरों को तृप्त करने वाला एक ही बालक था। अबोध बालक—समुद्र की उत्ताल तरङ्गें आयीं और अदृश्य हो गया वह उस जल-राशि में। मेरा गोत्र समाप्त हो रहा है ! ....'

'हम गुरुपुत्र को श्रीचरणों में उपस्थित कर देंगे !' श्याम ने बात पूरी होने से पूर्व ही मस्तक रखा गुरुदेव के पदों में ! 'सागर का इतना साहस !' राम ने छोटे भाई के साथ गुरुचरणों में मस्तक झुकाकर पीछे देखा ! उनका रथ—मथुरा से आया वह रथ अब तक अवन्तिका में ही तो प्रतीक्षा करता रहा है। सारथि प्रस्तुत है—'प्रभास !' आज्ञा से अधिक क्या चाहिये उसे।

× × × ×

ये महारथी, ये दुरन्त-विक्रम, वही गौर-श्याम श्रीअङ्ग, ये सागर के तट पर आये हैं। क्या हुआ जो धनुष नहीं है, नहीं है तापस वेष, नहीं है वल्कल, कपि-ऋक्ष-यूथ भी नहीं है साथ; इन्हें क्या किसी सहायक या अस्त्र की आवश्यकता हुआ करती है ? समुद्र त्रेता में ही बहुत सीख चुका है, अच्छी शिक्षा मिल चुकी है। श्रीराघव ने शर-संधान मात्र ही तो किया था, वे भ्रूमण्डल कुञ्चित हुए और जो महाज्वाला उठी थी उदधि के अन्तर में—वह महादाह और इस बार ये शौर्य-निधि स्वर्णगौर अग्रज हो आये हैं। उस बार श्रीरामानुज ने प्रारम्भ में ही शर-संधान का आग्रह किया था और आज आदेश दे सकते हैं ये ! ये नील-पीत पट, ये रत्नाभरण, यह महारथ और ये सागर-पुलिन पर उतरकर, बैठ गये हैं 'वेला' के समीप ! नहीं—समुद्र प्रमाद नहीं कर सकता ! ये दीर्घ लोचन, ये सघन भ्रूमण्डल—कितना भीषण है इन दृगों का रोष ! कितनी सुधास्निग्ध है इन लोचन-कोरों की कृपा ! जलनिधि उस कृपा का याचक बनेगा ! रोष की एक झाँकी त्रेता के अन्त में मिली और अब भी जैसे वही वाडवाग्नि के रूप में अन्तर का महादाह हो रही है। कृपा ही चाहिये इनकी !

अतल गम्भीर नीलवर्ण, तरङ्गोज्ज्वल-वसन, मौक्तिकाभरण महासागर मूर्त हुआ ! उत्ताल तरङ्गें और राम-श्याम के श्रीचरणों के समीप जैसे मस्तक रख दिया भूमि पर उन्होंने। अरुण अङ्गुष्ठाग्र तनिक आर्द्र हो गये। मुक्ताओं के उज्ज्वल उपहार पुलिन पर बिखर गये ! कहाँ, कहाँ देखते हैं ये दोनों बन्धु इस अर्चा को ! इनकी दृष्टि तो जल पर—असीम, अपार जल पर स्थिर है। क्षण—पुलिन पर एक क्षण बैठते-न-बैठते तो करों में रत्नोपहार लिये साकार समुद्र सम्मुख आ गया ! पृथ्वी पर मस्तक रखकर प्राणिपात किया सागर ने उपहार चरणों के सम्मुख रखकर !

'तुमने ग्रहण के समय स्नानार्थ आये हमारे गुरुदेव महर्षि सांदीपनि के बालक पुत्र का हरण कर लिया ! तुम्हारी भयंकर ऊर्मियों ने ग्रास बना लिया उस अबोध शिशु को ! चलो, झटपट ले आओ उसे !' यह जलद-गम्भीर स्वर—सागर का पूर्णिमा का क्षुब्ध गर्जन भी डूब जाय इसमें। कृष्णचन्द्र ने तो उपहार की ओर दृष्टि ही नहीं डाली ! यह स्वर—इसमें जो आदेश, प्रभुत्व, फटकार है—स्वर ही कहता है—'तुम्हें इसलिये इतना महान नहीं बनाया गया, इतनी शक्ति नहीं दी गयी कि तुम इतनी क्षुद्रता करो ! शिशु-हरण—लज्जा नहीं आती तुम्हें ! और मेरे सम्मुख आये हो ! जो हुआ, परिमार्जन करो उसे और स्मरण रखो !' पता नहीं कितनी भर्त्सना लिये है यह स्वर ! श्याम—वह तो इस प्रकार बोल रहा है जैसे कोई महाराजाधिराज बहुत अनुग्रह करके तुच्छ अपराधी को सम्मुख आने का अवसर देकर झिड़क रहा हो और सिन्धु—सिन्धु की तो समस्त सरसता जैसे आज ही स्वेद बन जायगी ! अञ्जलि बाँधे, मस्तक झुकाये, कम्पितगात्र बेचारा सिन्धु !

'प्रभो ! दयामय ! देव' कम्पितकण्ठ सागर ने प्रार्थना की—'मैंने बालक का हरण नहीं किया ! मैं तो अपने भीतर आये पदार्थों को भी पुलिन पर डाल देता हूँ ! मुझसे यह अपराध नहीं हुआ ! मेरे जल में एक दैत्य रहता है पञ्चजन ! वह जल में भीतर ही घूमनेवाला शङ्खरूपधारी महादैत्य—मैं उससे कैसे पार पा सकता हूँ। अवश्य ही उसी असुर ने बालक का हरण किया ! मुझे तो पता भी नहीं......!'

कहाँ श्याम को अवकाश है यह सब सुनने का। गुरुपुत्र को नीच असुर ले गया और वह समुद्र-जल में है—बस ! एक बार दृष्टि बड़े भाई की ओर गयी ! नेत्रों ने ही कह दिया—'भैया, अभी आया मैं ! इस असुर को तनिक देख तो लूँ !' कूद पड़ा वह वैसे ही ! समुद्र को तो अनुगमन ही करना है ! वह यों ही अपराधी है, इन महा महिम के गुरुदेव के पुत्रका हरण करनेवाला उसके जल में आश्रय लिये है !

पञ्चजन—महाअसुर पञ्चजन को अवकाश ही नहीं मिला ! उसके शङ्खमुख का आवरण किन्हीं करों ने नोच फेंका ! भीतर से खींच लिया उसे ! 'शिशुघाती—गुरुद्रोही घृणित असुर !' जैसे नन्हा शिशु मुट्ठी में लेकर वर्षा के छत्ते को फाड़ फेंके—दैत्य के चिथड़े हो गये !

'भैया, यह रहा असुर के शरीर का आवरक महाशङ्ख ! गुरुपुत्र तो असुर के उदर में मिले नहीं !' दो क्षण में कृष्णचन्द्र जलसे बाहर आ गया। 'यमराज से ही पूछना होगा !' प्राण

पृथ्वी में जीवित न हो तो यमलोक ही तो जायगा ! दोनों भाई रथमें बैठ गये । 'संयमनी !' यादव-सम्राट् के इस दिव्य रथ को संयमनी जाने में बाधा क्या है। रथ जा रहा है—यमराज की उस परमप्रिय पुरी संयमनी की ओर--अन्तराल में ऊपर दक्षिण जा रहा है रथ। समुद्र ने भूमि पर मस्तक रखा। पड़े रहें उसके उपहार, खड़ा रहा है बद्धाञ्जलि वह—इन पावन पदों में उपस्थित होने का सौभाग्य मिला उसे, यही क्या कम सम्मान है उसका ? वह क्षुद्र सेवक—वह इतने से ही क्या कृतार्थ नहीं हो गया है ?

यह रही संयमनी—यह दण्डधर महिष-वाहन सूर्यपुत्र धर्मराज की न्याय-नगरी ! पञ्च-जन के शरीर से निकला महाशङ्ख—श्याम ने अधर से लगाया उसे ! दिशाएँ पाञ्चजन्य के मङ्गल-निनाद से गूँज उठीं। परम-पावन पाञ्चजन्य की ध्वनि--नरकों की महाज्वाला शान्त हो गयी, रुरु और महारुरु-जैसे क्रूर सत्त्व जैसे सदा से सौम्य ही हैं। यमदूतों ने दण्ड फेंक दिये ! यातना-ग्रस्त—हाहाकार करते प्राणी—कहाँ गये नरक ? कहाँ गये वे घोरतम दृश्य ? कहाँ गयी वेदना ? वे तो सब-के-सब किसी दिव्यलोक में पहुँच गये दूसरे ही पल।

'क्या हुआ ?' चित्रगुप्त ने धीरे से लेखनी रख दी ! उनके कर्म-संस्कारों के लेख स्वच्छ हो गए ! उनके साक्षी--कहाँ कोई साक्षी है उनके समीप ! क्या हुआ यह ! उन अनुभवी लेखक ने आश्चर्य से देखा !

'मेरे आराध्य ! मेरे दयामय स्वामी !' धर्मराज तो दौड़े जा रहे हैं ! वे परम भागवत—प्रभुका शङ्खनाद पहचानने में क्या भूल हो सकती है उनसे ?

'करुणासिन्धु ! दयासागर ! प्रभो !' धर्मराज का स्वर गद्गद हो गया है। उनकी वाणी स्पष्ट नहीं हो पा रही है। 'यह दण्ड-लोक--यह क्रूर निवास और मेरा यह लोक-गर्हित कर्म ! पर प्रभु की कृपा का पारावार अनन्त है ! इस क्षुद्रपर आपने कृपा की ! मेरा यह लोक आज पवित्र हुआ !' ये भागवताचार्य, अर्घ्य, पाद्य, पुष्प--माल्यादि से विधिवत् अर्चन करके अब स्तवन करने लगे हैं ये ! अब इनकी स्तुति का, इनकी भाव-विह्वलता का ओर-छोर कहाँ !

'महाराज, हमारे गुरुपुत्र को आप यहाँ ले आये हैं ! आपका कोई दोष नहीं, आप उसके कर्मों के अनुसार धरापर मानव-शरीर का प्रारब्ध समाप्त होने पर ही लाये हैं; किंतु मैं उसे पुनः ले जाना चाहता हूँ। मेरी आज्ञा है—वह जहाँ भी हो, उसे लाकर तत्काल मुझे दे दें !' श्रीकृष्ण को शीघ्रता है। गुरुदेव प्रतीक्षा करते होंगे ! गुरुपत्नी व्यग्र होंगी ! यह दिव्य लोक--यहाँ के क्षण भी धरा के मास होने लगते हैं। यहाँ विलम्ब उचित नहीं। श्यामसुन्दर ने धर्मराज को कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया !

'जो आज्ञा !' श्रुति जिसका निःश्वसित हैं, जो निखिल नियमों का परम नियन्ता है, उसकी आज्ञा ही तो नियम है। धर्मराज को विलम्ब क्या होता।

× × × ×

'श्रीचरणों में और कोई सेवा समर्पित करने का सौभाग्य मिलता !' श्यामसुन्दर हाथ जोड़े मस्तक झुकाये आचार्य के सम्मुख खड़ा हो गया है।

'गुरुदेव की आज्ञा से अनुगृहीत होंगे हम !' यह राम खड़ा है छोटे भाई के समीप।

'मृत बालक—गुरुदेव ने मृत बालक चाहा ! कितने दिन हो गये थे उसे महासागर में विलीन हुए ! ये दोनों भाई ऐसे चल पड़े जैसे कहीं मार्ग में पड़ी तुच्छ वस्तु उठा लानी हो और इतना शीघ्र लौटा इनका रथ !' छात्रों, नगर-वासियों के आश्चर्य का पार नहीं है। 'रथ आया ! राम-श्याम आये ! गुरुपुत्र—गुरुपुत्र को ला रहे हैं !' कितना उल्लास, कितनी उमंग उठी थी। मृत गुरुपुत्र—जैसे बालक कहीं प्रवास से लौटा हो। वही आकृति, वही स्वरूप—अवस्था कुछ बढ़ गयी है और बहुमूल्य वस्त्र--रत्नाभरण—यमराज ने भी इस ब्राह्मण-कुमार की अर्चा की हो तो आश्चर्य क्या !

'राम-श्याम आये !' आचार्य के लोचन रथपर लग गये। गुरुपत्नी उटज से बाहर कब से पथ की ओर दृष्टि लगाये प्रतीक्षा कर रही थीं।

'तात ! मातः !' पुत्र रथ से उतर कर माता-पिता के चरणों पर गिरा—मृत्यु के मुख से लौटा पुत्र; करों ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। नेत्रों के जल से उसकी अलकों का अभिषिञ्चन चल रहा है; पर यह उसके लिये वात्सल्य उमड़ा है या इतनी देर पर लौटे इन गौर-श्याम के लिये, कौन कह सकता है। नेत्र तो राम-श्याम को ही अपलक देखने में लगे हैं !

'गुरुदेव !' महर्षि जैसे निद्रा से जागे हों। ये राम-श्याम—आचार्य तो भाव के अपार सागर में थकित हो गये थे। वे तो मूर्ति की भाँति स्थिर हो रहे थे। उनके ये दोनों परम सुन्दर शिष्य—इनका महान प्रभाव और वह शील ! अब ये बद्धाञ्जलि सम्मुख खड़े हो गए हैं ! ये आग्रह कर रहे हैं कि गुरुदेव और कोई गुरुदक्षिणा देने की आज्ञा दें। इनका आग्रह—इनका विनय—जैसे कुछ दिया ही नहीं है अब तक। महर्षि ने दोनों को अङ्क में खींच लिया। नेत्रों की धारा द्विगुण हो उठी।

'वत्स, मैंने क्या नहीं पाया ! तुमने गुरु-ऋण की जिस प्रकार निष्कृति सम्पादित की है—कौन समर्थ है इसमें ! मैं तुम्हारा गुरु हुआ, तुम्हारे जैसे शिष्य मिले मुझे, अब क्या कामना शेष रही मेरी। तुम्हारे आचार्य की कोई कामना शेष रह जाय—कैसे सम्भव है ! अब तुम अपने घर लौटो !' घर लौटो—गुरुदेव ने आज्ञा तो दे दी—पर कैसे दी, वे ही जानते हैं ! वाणी रुद्ध हो गयी किसी प्रकार स्वर सम्हाला उन्होंने—'तुम दोनों का भुवन-पावन यश लोक में विस्तीर्ण हो ! ब्राह्मण क्या आशीर्वाद दें तुम्हें—इस लोक एवं पर लोक में भी समस्त छान्दस ज्ञान—निखिल श्रुतियाँ सदा स्मृत रहें !'

दोनों भाइयों ने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया ! प्रणिपात किया गुरुदेव को बार-बार, गुरुपत्नी को और सहपाठियों को वन्दन किया, अङ्कमाल दी ! रथ प्रतीक्षा कर रहा है ! चल रहा है यह वन्दन, आलिङ्गन का पुनः पुनः क्रम ! 'राम-श्याम जायँगे !' आश्रम आकुल हो उठा है ! पशु-पक्षी, गुल्म, पादप, लता, तृण तक जैसे चञ्चल—व्यथित हो गये हैं। राम-कृष्ण को सबका सत्कार करना है ! सब के स्नेह का सम्मान पाना है। ये दोनों भाई जा रहे हैं—जा रहे हैं घर अपने और इस मङ्गल-अवसर पर अश्रु-निरोध करके स्वस्ति-पाठ करना है। गद्गद स्वरों का वह स्वस्तिपाठ ! श्रुति के स्वर इस स्नेह-कम्पन में ही तो पूर्णतः शुद्ध हो पाते हैं। स्वस्ति-पाठ, वन्दन, आशीर्वाद, जयघोष.......।

× × × ×

'राम-श्याम आ रहे हैं !' पाञ्चजन्य का जलद-गम्भीर स्वर, जैसे यह गूँजती ध्वनि युग-युग की परिचित है ! कब सुनी ? कहाँ सुनी ? प्रश्न ही नहीं है। शङ्खनाद गूँज रहा है—वासुदेव के अधरों से लगा शङ्खनाद ! 'श्रीकृष्णचन्द्र आ रहे हैं !' प्राणों में जो अपार उन्मद स्नेह उमड़ पड़ा है एक साथ—लगता है युगों के पश्चात् लौटे हैं वे लोचनों के परमधन ! कितनी व्यथा, कितनी प्रतीक्षा करते रहे हैं ये प्राण ! एक-एक जन मार्ग पर दृष्टि लगाये रहा है—'अब आयेंगे ! अब आ रहे होंगे !' ये प्रतीक्षा के लगभग साठ-सत्तर दिन—साठ-सत्तर कल्प भी इनसे कदाचित् छोटे ही होते होंगे ! और अब वे आ रहे हैं ! उनकी तो पदचाप भी श्रवण पहचान ले—यह शङ्खनाद ! अस्तव्यस्त वस्त्राभरण, करों में जो आया—वही झपटा उपहार—दौड़े, दौड़ चले ये नगर-जन राजपथ की ओर ! इनके ये वेश, ये उपहार—पर वे जो रथ से आ रहे हैं, ये कहाँ कभी व्यवस्था से की गयी अर्चा स्वीकार करते हैं ! उन्मद प्राणों की अस्तव्यस्त स्नेह-गद्गद अस्पष्ट पुकार ही तो आकर्षित करती है उन्हें। वे इसी अटपटे अर्चन के तो चिर अभ्यासी हैं !

'राम-श्याम आ रहे हैं !' पथ की अट्टालिकाएँ आतुर दृगों से झूम उठी हैं ! दृगों में उत्कण्ठा, उल्लास—पता नहीं क्या-क्या और करों में अक्षत, पुष्प, लाजा, चन्दन, दूर्वाङ्कुर—प्राण तो इतने में

ही सीमित हो गये हैं। 'रथ आ रहा है! मन्द-मन्द मुस्कराते, दृगों से इधर-उधर जीवन-सुध सिञ्चित करते राम-श्याम आरहे हैं!' पुष्प, माल्य, दूर्वाङ्कुर, दधि, लाजा—मार्ग का आस्तरण उच्च होता जा रहा है।

विप्रों की वेदध्वनि, नारियों के कलगान, मागध-वन्दियों के स्तवन, गृहों की पुष्पवर्षा, वाद्यों के साथ शङ्खों का मङ्गल-नाद और जयघोष—सुरों की सम्पूर्ण सेवा आज धरा की प्रतिध्वनि बन गयी है। ये राम-श्याम--ये कूदे रथ से! यह आचार्य-चरणों में वन्दन और यह भुजा फैलाये दौड़ते महाराज उग्रसेन और वसुदेवजी!

माता देवकी का रत्न-थाल नीराजन की सज्जा लिये उनके करों में प्रतीक्षा कर रहा है द्वार पर और माता का हृदय--राम-श्याम आ रहे हैं! गुरुकुल से शिक्षा लेकर लौट रहे हैं। पूजन, यज्ञ, महोत्सव—आज तो पूरी मधुपुरी श्रीवसुदेवजी के भवन में ही महोत्सव मनायेगी!

कुब्जा

"शृङ्गाररससर्वस्वं शिखिपिच्छविभूषणम् ।
अङ्गीकृतनराकारमाश्रये भुवनाश्रयम् ॥"

—श्रीलीलाशुक

'मैं तुम्हारे घर आऊँगा !' उस दिन राजपथ पर वे नीलसुन्दर मिले; उन्होंने वचन दिया ! उनकी वह मन्द मुस्कान, वह बंक विलोकनि, वह त्रिभुवन-मोहन रूप, वह हृदयहारिणी मधुरवाणी और वह स्पर्श—उनके कोमल करों का वह स्पर्श—वह भी क्या विस्मृत होने की वस्तु है ? प्राणों को वही स्पर्श तो निरन्तर आवृत्त किये है !

कंस—कंस मारा गया—नीलसुन्दर ने मार दिया उस अहंकार की मूर्ति को ! कुब्जा के लिये तो कदर्य कंस तभी मर गया, जब हँसकर उस मयूर-मुकुटी ने उससे अनुलेपन माँगा ! कंस—एक क्षुद्र घृणित कीट—कौन सोचे उसकी बात ! वह दासी—दासी हो तो; पर उस वनमाली पीताम्बरधारी की बिना मूल्य क्रीत दासी है वह—उसी की—उसी मोहन की वह दासी है।

'मैं आऊँगा !' उन्होंने वचन दिया है। दासी का क्या मान और क्या अपमान। वह तो दासी है, चाहे जब अपने उस हृदय-हारी स्वामी के द्वार पर जाकर अञ्चल फैला सकती है। वह कोई महारानी है कि उसे बुलाने की अपेक्षा होगी ! वह जायगी—एक बार, एक सहस्र बार जायगी ! लोग हँसेंगे—हँस लेंगे ! वे नीलजलधर झिड़केंगे—सुन लेगी मस्तक झुकाकर ! वह अन्ततः उनके उन अरुण चरणों की दासी ही तो है ! पर उन्होंने आने को कहा है—स्वयं आने का कहा है । तुच्छ दासी— वहाँ जाने से उन्हें संकोच होगा ! लोग पता नहीं क्या कहेंगे उन्हें ! उनका संकोच हो, उनका अयश हो—उन्होंने स्वयं आने को कहा है ! अवश्य आयेंगे वे ! वह प्रतीक्षा करेगी। यहीं प्रतीक्षा करेगी।

कुब्जा प्रतीक्षा करती है—'वे आते होंगे !' प्रातः अँधेरे ही वह अपनी दासियों से खीझने लगी है ! क्यों उसे शीघ्र जगा नहीं दिया गया ! गृह परिमार्जित नहीं हुआ, उसे अभी कक्ष सज्जित करना है ! शय्या के किसलय, कुसुम बदलने हैं ! अपना शृङ्गार करना है ! वह उनके सम्मुख बिना शृङ्गार किये कैसे जायगी ! बहुत कार्य है और उन्होंने कहाँ कोई समय बताया है। प्रातः-कृत्य करके यदि वे कालिन्दीकूल से इधर ही घूम पड़ें।' कुब्जा व्यस्त हो उठती है। उसकी आतुरता, शीघ्रता की सीमा नहीं है।

'मध्याह्न में अवसर मिलता होगा उन्हें ! कुसुम तो म्लान हो गये ! स्वेद ने मेरा अङ्गराग मलिन कर दिया !' निराशा तो जैसे मन को छूती ही नहीं। उन्होंने स्वयं कहा है—आयेंगे ही ! मध्याह्नोत्तर भोजन के पश्चात् विश्राम किया होगा ! ठीक समय तो अब हुआ है ! सायंकाल नगर-भ्रमण को निकल रहे होंगे ! मेरे यहाँ पधारने का उपयुक्त समय तो रात्रि का यह प्रथम प्रहर है ! गुरुजनों का संकोच होगा, अब सब के शयन के अनन्तर पधारेंगे ! बहुत कार्य हैं उन्हें, कल न आ सके—आज आते होंगे !' प्रतीक्षा चल रही है; नित्य नूतन—नित्य आशामय आतुर प्रतीक्षा। 'वे आते होंगे !' गृह बार-बार सज्जित होता है, पूजा के उपकरण परिवर्तित किये जाते हैं, शय्या के किसलय और कुसुम नूतन होते रहते हैं, पता नहीं कितनी बार दर्पण के सम्मुख जाकर वह अपने आप को देखती है। अपना शृङ्गार सुधारती है !

'वे आते होंगे !' जैसे एक अद्भुत उन्माद हो गया है। वह भोजन करने बैठती है और द्वार पर दासी को नियुक्त करके भी मध्य में ही झटपट हाथ धो लेती है। 'शीघ्रता करो !' स्नान पूरा हुआ नहीं और, शृङ्गार का आग्रह करने लगती है। कुसुम मुरझा जाते हैं, किसलय म्लान होते हैं,

दिन आता है, संध्या होती है और रात्रि भी चली जाती है। सखियाँ बार-बार नेत्र भर लेती हैं। दासियाँ दुखी होती हैं। न भोजन की चिन्ता, न स्नान का ध्यान। नेत्रों में निद्रा नहीं, शरीर का ध्यान नहीं। एक धुन, एक आशा—'वे आते होंगे! प्राणों की वह प्रतीक्षा शिथिल होना जानती ही नहीं। अवधि बीतती जाती है और आशा—वह तो क्षीण होने के स्थान में बढ़ती ही जाती है। न घर में चैन, न द्वार पर स्थिरता। 'वे आते तो नहीं!' कक्ष में से अट्टालिका पर भागती है और फिर कक्ष में—'वे आ रहे होंगे! कहीं शय्या के सुमन तो म्लान नहीं हुए!'

× × × ×

'श्रीकृष्णचन्द्र गुरु-गृह चले गये!' कुब्जा की प्रतीक्षा, उसकी आतुरता कहाँ शिथिल हुई। गुरु-गृह—क्या पता यह उसी को सनाथ करने का कोई ढंग निकाला हो उन श्यामसुन्दर ने! गुरुगृह से वे आ भी तो सकते हैं। पता नहीं कब आ जायँ। 'वे आये! उनका रथ आया! वे पुकारते हैं।' कोई आता हो, किसी की पदचाप हो समीप, किसी रथ का शब्द सुनायी दे—सैरन्ध्री कुब्जा को लगता है कि वे ही आ गये। वह चौंकती ही रहती है। कोई किसी को मार्ग में, समीप के सदन में पुकारे—'उन्होंने पुकारा मुझे!' वह दौड़ती है द्वार की ओर।

'श्याम! नीलसुन्दर!' प्राणों की प्यास अपरिसीम है। 'उस दिन उनका वह चिबुक-स्पर्श!' वे कोमल अङ्गुलियाँ तो जैसे अब भी चिबुक पर ही लगी हैं! प्राणों में नित्य-नूतन वह स्पर्श—वे आयेंगे! उन्होंने कहा है!—चल रही है प्रतीक्षा। प्रमादहीन जाग्रत् प्रतीक्षा!

'भगवान् वासुदेव की जय!' यह जयघोष, ये मङ्गल-वाद्य—'वे लौट आये! गुरुगृह से लौट आये वे!' कुब्जा कहाँ जाय! उसे कहाँ अवकाश है किसी महोत्सव में जाने का। वह गृह से बाहर जाय और वे आ जायँ तो? वह तो आतुर हो उठी है। गृहसज्जा, अर्चन-सामग्री, शृङ्गार—नित्य की साज-सज्जा द्विगुण हो उठी है।

'वे गुरुगृह से लौटे हैं, श्रान्त होंगे! पिता माता, बन्धु-बान्धव, सचिव, सभासद्—पता नहीं कौन-कौन मिलते होंगे। उन्हें अवकाश न मिलता होगा। बड़े सरल हैं, लोग छोड़ते ही न होंगे! वे उदार—वे अवश्य आयेंगे! वे आना चाहते होंगे, पर लोग—लोगों को भी तो वह भुवनमोहन रूप परम प्रिय है। वह तो दासी है! किससे स्पर्धा करे वह! वे परमोदार, वे भला, भूल सकते हैं! उन्होंने कहा है—न आना होता, क्यों कहते वे? वह दासी ही तो है, उसे झिड़क देना कितना सरल था! उन्होंने स्नेह से सम्मान किया उसका। उसे आने का वचन दिया और तब वे न आयें, कैसे हो सकता है! वे आते होंगे! अवश्य आते होंगे! क्या हुआ जो अब तक न आ सके! उन्हें अवकाश न मिला होगा! अब तो आयेंगे! आयेंगे ही!' चल रही है प्रतीक्षा! दिन बीतता है, रात्रि आती है और फिर दिन; पर कुब्जा—उसे तो जैसे अभी कल की बात लगती है जब उन सुन्दर ने उसके पैरों पर पैर रखा, कोमल करों से चिबुक उठाया और तनिक-सा झटका—कूबर पता नहीं क्या हो गया! वह कुब्जा—जन्म की त्रिवक्रा सीधी खड़ी थी, खड़े थे वे भुवनमोहन उसके सम्मुख मन्द-मन्द मुस्कराते—'मैं तुम्हारे घर आऊँगा!' उन्होंने ही तो कहा था। वह प्रतीक्षा कर रही है! प्रतीक्षा ही तो करनी है उसे!

प्रतीक्षा—प्रतीक्षा ही तो की जा सकती है उस मयूर-मुकुटी वनमाली की। उस चपल को कोई कहाँ ढूँढ़े! वही जब कृपा करके पधारे—उस धन्य क्षण की प्रतीक्षा ही तो समस्त साधनों का परम रहस्य है। प्रतीक्षा—आकुल प्राणों की सतत जागरूक प्रतीक्षा! और जब किन्हीं प्राणों में यह उन्मद प्रतीक्षा आ विराजती है—श्यामसुन्दर कब तक दूर रह सकता है उससे।

× × × ×

'वह आया रथ! वह दीखी ध्वजा! वे आ रहे हैं नीलसुन्दर!' और सचमुच यह आतुर प्रतीक्षा एक दिन तो सफल होनी ही थी। प्राणों की पुकार में ही वह नीलघन बँधा करता है और दासी कुब्जा के द्वार पर वही रज्जु उसे खींच लायी है। रथ—सचमुच रथ आया और द्वार पर रुका! उद्धव के साथ हँसता हुआ कूदा वह भुवन-मोहन! धन्य हो गयी कुब्जा!

कुब्जा—वह उठी, दौड़ी और जैसे भूल ही गयी कि क्या कर रही है! कहाँ है! क्या करना है! आनन्द की जो बाढ़ आयी—एक क्षण उसे अपना ही पता नहीं रहा और एक क्षण—'छः! कितनी असभ्य, कितनी ग्राम्या है वह! पता नहीं कैसे नाचने लगी! कहाँ उलझी! वे आये हैं और वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गया! माला टूट गयी! कुसुमाभरण स्रस्त हो गये! इसी रूप में सत्कार करेगी वह इन त्रिभुवन-सुन्दर का!' सखियों ने बड़े सुअवसर पर सहायता की। आसन, अर्घ्य, पाद्य, अङ्गराग, माल्य, पुष्प—वह क्या यह सब कर पाती! सखियों ने सहायता की और किसी प्रकार अर्चन सम्पन्न हुआ।

'आप खड़े हैं! विराजें!' ये उद्धवजी—श्रीकृष्णचन्द्र के साथ आये—उनके सखा! कुब्जा ने बड़े आदर से सत्कार किया! स्वयं आसन लाकर रक्खा!

'मैं अनुगृहीत हुआ!' उद्धवजी ने हाथ से स्पर्श किया आसन का, मस्तक झुकाया और भूमि पर ही बैठ गये। 'ये श्रीकृष्णचन्द्र—कितना अपार अनुग्रह है इनका! ये सखा मानते हैं, साथ रखते हैं! यहाँ भी आग्रह-पूर्वक साथ लाये!' गुरुदेव भगवान् बृहस्पति के प्रिय शिष्य उद्धवजी क्या शिष्टाचार भूल सकते हैं। यहाँ आसन कैसे स्वीकार करलें वे। यहाँ का आसन तो वन्दनीय ही है उनका।

'मैं अभी आऊँगा!' बंक दृगों की स्मितपूर्ण भाषा—श्यामसुन्दर ने केवल देखा एक बार उद्धवजी की ओर। मस्तक झुका लिया उद्धव ने। जैसे वे कहते हों—'प्रभु, आप जो करें, वही आप को शोभा देगा! क्या पता किसके मङ्गल के लिये आप कब कैसी लीला करते हैं! पधारिये—आप पूर्णकाम की लीला में किन पिपासु प्राणों का प्रतिबिम्ब है, यह आपकी कृपा से मैं देख सकता हूँ!' मस्त झुकाये पता नहीं क्या सोच रहे हैं उद्धवजी। इन्हें पता भी न लगा हो कि श्यामसुन्दर समीप से उसी समय भीतर चले गये-तो क्या आश्चर्य! ये ज्ञानमूर्ति—ये तो अपनी ही चिन्ताधारा में तन्मय हो रहे हैं।

× × × ×

'शृङ्गार अस्त-व्यस्त हो गया! मुख पर, शरीर में पता नहीं क्यों स्वेद की धारा चल पड़ी! वस्त्र आर्द्र हो गये!' कुब्जा शीघ्रता से चली गयी भवन में। आज वह जैसे उन्मादिनी हो गयी है। श्यामसुन्दर मोहन आये हैं! वे विराजे हैं आकर! वह तो उनके समीप से भाग आयी है—किसी प्रकार उनकी अर्चा करके भाग आयी है। इस अस्त-व्यस्त शृङ्गार को लेकर—इस दशा में कैसे रहे उनके सम्मुख।

'स्नान, वस्त्र, अङ्गराग, आभरण, माल्य, ताम्बूल, पुष्प, सज्जा—सखियाँ शीघ्रता नहीं करतीं! इनके कर चलते ही नहीं!' अन्तर में जो उत्सुकता है, किसी के कर कैसे उस गति से कार्य कर सकते हैं। किसी प्रकार शृङ्गार पूर्ण हुआ 'उन भुवनसुन्दर की अर्चा करनी है, वे आये हैं! प्रतीक्षा कर रहे हैं! वे कक्ष में आ गये हैं और आज यह अकस्मात् लज्जा! सखियों ने जो जीवनदायी उन्मद द्रव दे दिया है वह प्रेरणा न दे तो कदाचित् जाया ही न जा सके! वे कक्ष में आ गये हैं! आते ही सीधे कक्ष में आ गये! उन्हें अपने ही इस सदन में कहाँ पूछना था और अब बुला रहे हैं! कितने स्नेह से बुला रहे हैं!' कुब्जा के चरण जैसे उठते ही नहीं। लज्जा—पता नहीं कहाँ से यह लज्जा का अपार भाव दबाये दे रहा है आज और वे उठे, वे उठे वे हृदयहारी! उन्होंने स्वयं बढ़कर अपने कमल-करों में उसका कर ले लिया!

× × × ×

'अब तुम कुछ दिन तो यहीं रहो! मैंने कितनी प्रतीक्षा की, कितने दिनों पर आये तुम! अब तुम्हें मैं जाने नहीं दूँगी! कमलनयन, मैं तुम्हारा सङ्ग छोड़ने में समर्थ नहीं हूँ! अब मुझे छोड़ो मत!' धन्य हो गयी कुब्जा! श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे अपनाया, स्वीकार किया! उसकी चिर अभीप्सा पूर्ण हुई और अब उसका यह आग्रह—यह अपनत्व-पूर्ण आग्रह—मोहन इसकी उपेक्षा कर देगा? कर सकेगा? उद्धवजी प्रतीक्षा कर रहे हैं, विलम्ब हो रहा है। उसे लौटना है शीघ्र और यह आग्रह—यह कुब्जा का आग्रह—वह रथपर आ गया है; पर क्या कुब्जा के लिये! उस भवन से भी भला, कहीं जा सकता है वह।

—❀❀❀—

उद्धव व्रज में

"एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥"

"प्रभो !" आज उद्धवजी एकान्त में श्रीकृष्णचन्द्र के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये हैं। बड़ा संकोच है, बड़ी उत्सुकता है। उद्धवजी—श्यामसुन्दर ने अपना परम-प्रिय सखा बना रखा है। 'ये सच्चिदानन्दघन, यह तो असीम अनुग्रह है इनका कि इन्होंने मुझे यादव-सभा का मुख्य-मन्त्री ही नहीं बनाया, अपना परम अन्तरङ्ग बना रखा। ये दयामय—इनकी अपार अनुकम्पा—इसकी अकूल उदारता—जैसे मैं परम घनिष्ठ मित्र होऊँ ! उस दिन उन महाभागा सैरन्ध्री (कुब्जा) के यहाँ पधारे और तब भी मुझे साथ ले गये। मैं अकिञ्चन—कितना स्नेह है इन सर्व-समर्थ का मुझपर। पर ये आनन्दकन्द—ये नित्य प्रसन्न—एकान्त में इनकी यह क्या दशा हो जाती है। ये कमल-लोचनों से झरते बिन्दु—ये निःश्वास और जैसे शरीर की ही सुधि न हो। कौन सी चिन्ता है इन्हें? कालिन्दी-कूल पर इन श्यामल तरङ्गों को देखते ही ये क्यों इस प्रकार व्याकुल हो जाते हैं? ये आत्माराम, पूर्णकाम, चिन्मय श्रीकृष्णचन्द्र और यह विकल भाव—किसका चिन्तन इन्हें इतना अस्त-व्यस्त कर देता है ?' बहुत दिनों से उद्धवजी को पूछना है इस सम्बन्ध में। श्यामसुन्दर बार-बार इस प्रकार उदास हो जायँ—एकान्त मिला और जैसे वह आनन्द-मूर्ति और ही हो जाती है। इन विशाल लोचनों में अश्रु—हृदय मसल उठता है। यह श्रीकृष्णचन्द्र की स्थिति देखी नहीं जाती। साहस नहीं होता, पता नहीं पूछने पर कौन-सा मर्म किस शब्द से स्पर्श करके व्यथित हो उठे। तनिक-सी आहट मिली और श्यामसुन्दर पटुके से मुख पोंछकर भाव बदल लेते हैं। वे किसी पर प्रकट नहीं होने देना चाहते अपनी यह दशा। उन्हें संकोच होगा; जब वे प्रकट नहीं करते—पूछना क्या उचित होगा? पर देखा नहीं जाता ! अब हृदय मानता नहीं। 'आराध्य—अपने हृदयाराध्य की यह चिन्ता !' नन्हे-से बच्चे थे—साथ के बालक उछलते, खेलते और उद्धव अपनी अर्चा में लगते। बालकों को साथ लेते और बालकण्ठ गूँजने लगता—

हरि गोविन्द माधव मधुसूदन !
अच्युतानन्त केशव आनँदघन !!

माता पुकार रही है, भोजन को अतिकाल हो रहा है और बालक को अभी अपने आराध्य को भोग लगाना है, अभी शयन कराना है ! कभी कीर्तन, कभी पूजन और कभी ध्यान—ऐसा ध्यान जो कदाचित ही कोई योगी कर सके और वह हृदय का श्यामघन-मूर्ति—वह वनमाली, पीतपटधारी घनसुन्दर जन्म से जो हृदय में बसा—जब वह दृगों के सम्मुख आया—कहाँ अपरिचित था वह। हृदय ने उसे सखा कहा था और हँसकर उस परम उदार ने भुजाओं में भर लिया था प्रथम बार देखते ही सखा कहकर। वह बाल्य का—नहीं, नहीं, जन्म-जन्म का चिरसखा, प्राणों का परमाराध्य—वह उदास हो जाता है सहसा ! कोई व्यथा-सी है उसमें—हृदय कैसे सह ले इसे !

"सच्चिदानन्दघन, आनन्दकन्द, पूर्णकाम, सर्वेश, सर्वमय, समदर्शी, निर्विकार, निर्लेप, निर्गुण..." गुरुदेव—उन सुरगुरु ज्ञानमूर्ति भगवान बृहस्पति ने असीम अनुग्रह से अपने चरणों में स्थान दिया। देवगुरु का शिष्य होने का सौभाग्य मिला और उन्होंने भी स्नेह से एकान्त में अपने लोकपूज्य देवशिष्यों की अपेक्षा भी अधिक प्रेमदान करके जो उपदेश किये हैं—बुद्धि में गुरुदेव के आशीर्वाद से वे सतत जागरूक हैं। वह तत्त्वज्ञान—मूर्तिमान् वह परमतत्त्व—निखिलज्ञान का

परम लक्ष्य ही तो उनके सम्मुख है। गुरुदेव ने श्रीकृष्णचन्द्र के सम्बन्ध में जो कहा, श्रुति-पुराण—सभी तो कहते हैं—'ये परात्पर प्रभु, ये नित्य निरीह....!'

"ये स्नेहमय, दयामय, उदार-शिरोमणि सौन्दर्यघन! ये परम सुहृद्! इनके ये अश्रु, ये निःश्वास, यह व्यथित-भाव!' हृदय मस्तिष्क की बात सुनना नहीं चाहता। इन दृगों में अश्रु—नहीं, यह तो देखा नहीं जायगा।' उद्धव जी हाथ जोड़े सम्मुख आ गये हैं। वाणी भले कुछ न कहे, नेत्रों में जो मूकप्रश्न है, जो दयनीय वेदना है—कुछ कहना शेष रह जाता है क्या!

"उद्धव! मेरे परम प्रिय सखा!' आज तो श्यामसुन्दर ने नेत्र पोंछे नहीं। अपना कोई भाव छिपाने का प्रयत्न ही नहीं किया इन्होंने। उठकर हृदय से लगा लिया उद्धव को और दृगों का प्रवाह द्विगुण हो उठा। वाणी रुद्ध हो गयी कुछ क्षण!

"उद्धवजी, आप परमज्ञानी हैं! आप परम कुशल हैं व्यवहार में! आप ही मेरा यह काम कर सकते हैं!" बार-बार कण्ठ रुक रहा है। उद्धव का उत्तरीय आर्द्र होता जा रहा है नेत्रों के जल से। 'तुम व्रज चले जाओ भाई, एक बार! एक बार मेरे माता-पिता को आश्वासन दे आओ! माता....!'

'मेरा संदेश सुना देना गोपियों को! मेरे वियोग की प्रखरतम व्यथा जैसे दूर हो—प्रयत्न करना तुम! गोपियाँ—वे प्रेम की भोली मूर्तियाँ—मुझे छोड़कर उनका मन एक-आधे पल को भी कहीं नहीं जाता! उनके प्राण मुझमें लगे हैं। मेरे लिये उन्होंने देह के दूसरे सब सुख छोड़ दिये! नहीं—उद्धव जी, मुझे रोकिये मत! जिन्होंने मेरे लिये सम्पूर्ण लोकसुख—लोकसम्बन्ध, लोकप्रतिष्ठा छोड़ दी, सारे धर्मों को मुझपर न्योछावर कर दिया, जो मुझे ही परम प्रिय, परम श्रेष्ठ मानती हैं, मन से—प्राण से जो मुझमें ही लगी हैं, मैं उन्हें भूल सकूँ—ऐसा सम्भव नहीं है। मैं अपने हृदय में उन्हें धारण करूँगा ही! हाय, वे व्रज की नारियाँ—उनके प्राणों का परम श्रेष्ठ मैं उनसे दूर यहाँ आ बैठा हूँ, मेरा स्मरण करके उत्कण्ठा और विरह से व्याकुल वे बार-बार मूर्छित हो जाती होंगी! वे मच्चित्ता गोप-कुमारियाँ—मैं उनसे कह आया था कि मैं लौट आऊँगा। वे मुझपर कभी अविश्वास कर नहीं सकतीं। मेरे आने की आशा में किसी प्रकार बड़े कष्ट से वे प्राणों को रोके होंगी! उन आकुल प्राणों को तुम आश्वस्त करो उद्धव!'

'इतने के लिये आप इस प्रकार व्याकुल हैं!' जैसे इसमें चिन्तित होने की कोई बात ही न हो। उद्धवजी का स्वर कह रहा है कि—'गोप, गोपियाँ—बहुत सीधे, बहुत भोले हैं वे सब! उन्हें समझाने की, उनमें ज्ञान-ज्योति प्रकाशित करने की आवश्यकता है। उनका शोक, उनकी चिन्ता तो दूर कर देना कोई कठिन नहीं है।'

'उद्धवजी, व्रज में—उस व्रज में कितना प्रेम है! वह प्रेम का दिव्य धाम—वियोग जैसे मूर्त हो गया है वहाँ! आप वहाँ पधारें! वहाँ मेरे माता-पिता, स्नेहमयी गोपकुमारियाँ, मेरे···!' श्रीकृष्णचन्द्र बात पूरी करने में समर्थ कहाँ हो रहे हैं।

'दूसरों का तनिक भी कष्ट, स्वजनों का तनिक भी क्लेश आपके लिये असह्य है!' ये उद्धवजी तो अपनी धुन में जा रहे हैं। परम बुद्धिमान्, साक्षात् देवगुरु बृहस्पति के वरप्राप्त शिष्य—'भला, भोले व्रजवासियों को ज्ञान देकर उनका शोक दूर करना क्या बड़ी बात है! श्रीकृष्णचन्द्र क्यों आकुल बनें इसके लिये।' श्रीकृष्णचन्द्र—स्वजनों को वियोग-दुःख हो रहा है, इसलिये दुःखी हैं या उस प्रेम-भूमि, उन प्रेम-मूर्तियों का वियोग स्वयं उन्हें व्याकुल किये हैं, कैसे समझ सकेंगे उद्धवजी। 'आप आज्ञा दें और अपने इस सेवक पर विश्वास करें! रथ प्रस्तुत है, मैं आपके चरणों की कृपा से वहाँ के मनस्ताप को ज्ञान के आलोक में दूर कर आऊँगा! आप निश्चिन्त होकर भवन पधारें!'

'हाँ उद्धवजी, जैसे भी उन्हें संतोष हो, जैसे भी उनके प्राणों को तनिक शान्ति मिले—आप पधारें! रथपर चलें! व्रज···!' बहुत कुछ कहना है, बहुतों की स्मृति है! एक-एक के लिये कहने लगें—कभी समाप्त न होगा संदेश; पर ये उद्धव—ये क्या समझ सकेंगे? एक बार व्रज हो आयें ये। एक बार उस भूमि के दर्शन कर आयें! किसके लिये क्या संदेश दिया जाय! हृदय

क्या दो रहे हैं ? सन्देश देना क्या शेष रहा है ? पर उद्धव व्रज में जायँगे—कौन देखेगा इनकी ओर ? कौन सुनेगा इनके ज्ञानोपदेश ? व्रज के नेत्र क्या और कुछ देखते हैं ? वे और किसी की बात सुनते भी हैं ? ये व्रज में जायँ—ये प्रिय सखा, वहाँ इनका सत्कार तो पूरा होना ही चाहिये—'आप इस पटुके को कंधे पर रख लें ! यह कौशेय-पीतपट इस प्रकार पहिन लें—इस प्रकार ! व्रज के वे प्रणयी प्राण मेरे वस्त्र, मेरे आभूषण, मेरे वेश को देखकर संतुष्ट होंगे !' श्यामसुन्दर ने अपने करों से उत्तरीय धारण कराया; अपनी वनमाला, मयूर-मुकुट, गुञ्जामाल, अङ्गद, केयूर—सजाया अपने ही वस्त्राभरणों से उद्धव को !

'आप व्याकुल न हों !' यह वेश—क्या आवश्यकता है इसकी ? उद्धवजी कैसे इन स्नेह-सिन्धु को मना कर दें। अपने ज्ञान पर, अपनी शक्ति पर विश्वास है—विश्वास है अपनी सफलता पर; लेकिन श्रीकृष्णचन्द्र का यह प्रेमपयोधि—चुपचाप इसे स्वीकार ही तो करना है।

'बहुत कोमल, बड़े मानी, बड़े सुकुमार हृदय हैं ! आप परम बुद्धिमान् हैं ! कोई ऐसा शब्द, कोई ऐसी चेष्टा, जो उन्हें व्यथित करे—' भला, यह भी कहने की बात है ! श्यामसुन्दर कहाँ उद्धवजी की भङ्गी देख रहे हैं। ये तो रथपर बैठाकर भी समझाते ही जा रहे हैं—'बड़े मानी, बड़े स्नेह-पालित हृदय हैं ! वहाँ जो कुछ कहा जाय—मेरे लिये, आपके लिये, रुष्ट न होना भाई ! किसी के शब्दों पर न जाना ! कोई चेष्टा यदि वहाँ किसी को तनिक भी व्यथित करे···मुझे पूरा भरोसा है तुम पर ! वही करना, जिससे वहाँ प्राणों को तनिक आश्वासन मिले ! मेरी गायें, मेरे ···।'

'आप विश्वास करें !' श्रीकृष्णचन्द्र कितनी दूर आ गये रथके साथ, ये संदेश, यह भाव-विह्वलता—इनका क्या कहीं अन्त है; पर अब लौटना चाहिये उन्हें। बार-बार उद्धवजी आग्रह करके लौटा पाते हैं, रथ पर बैठाकर लौटते हैं ये वनमाली किसी प्रकार और फिर कुछ कहना है, फिर कुछ आवश्यक सूचना देनी है। उद्धवजी को वह सूचना आवश्यक जान पड़ती है या नहीं, यह देखने का अवकाश किसे है। रथ व्रज जा रहा है—उद्धवजी व्रज जा रहे हैं और ये रथ की ओर लगे कमल-नयन, यह अश्रुधारा, यह आत्म-विभोर विह्वल भाव—व्रज ! व्रज ! रथ व्रज जा रहा है !

× × × ×

'ये तरु, ये लताएँ, ये गुल्म, यह तृणराजि ! यह मर्त्यधरा है ? ये फलोंसे झुकी शाखाएँ ! ये पुष्प-स्तबक ! यह लहराती हरितिमा और सौरभ से झूमता वायु—नन्दन-कानन में भी इतना वैभव हो सकता है ? ये मृग, ये केहरी, ये नाचते मयूर और फण उठाये अहिगण—सत्व का इतना शुद्ध उद्रेक, यह सौन्दर्य और आनन्द का रस-प्रवाह ! यह व्रज है ! श्यामसुन्दर की क्रीड़ा-भूमि व्रज !' दृष्टि जहाँ जाती है, वहीं रह जाती है। अश्व तक ठिठककर देखने लगते हैं यह शोभा। यह पुष्पित, फलित, सुरभित कानन—ऋतुराज अपने ऐश्वर्य के उपकरण कदाचित् यहाँ से भिक्षा में पाते होंगे !

रथ—मथुरा से आता रथ ! पीताम्बर, मयूर-मुकुट—जैसे वन के अणु-अणु में उत्सुकता जाग उठी हो। वृक्ष झूमे, झूमी लतिकायें और तृणों तक में एक लहर-सी झूम गयी। पशुओं के ठट्ट मार्ग के दोनों ओर और पक्षियों से आच्छादित वृक्ष। नेत्रों में भरा अपार उल्लास—और एक क्षण, एक ही क्षण—'रथ ही है वह ! ये तो कोई और हैं !' जैसे किसी ने हिमप्रदेश से उठाकर ग्रीष्मतप्त मरुधरा में फेंक दिया हो।

'क्या हुआ ? क्या हो गया ?' उद्धवजी नेत्र फाड़-फाड़कर देखने लगे हैं इधर-उधर ! 'कहाँ आ गये वे ? यह स्वप्न है या पहला स्वप्न था ?' ठूँठ से खड़े कण्टक-पादप—सभी, खैर और पीलूके वन—पीत पत्रोंसे ढकी ऊसर-सी भूमि, कण्टकाकीर्ण लताएँ, करीर की झाड़ियाँ, दीन, कङ्काल-से पशु, मृतक-से पक्षी, शरीर को दग्ध-सा करता वायु—युग-युग-व्यापी अकाल ने जैसे इसी देश में निवास बना लिया है अपना। ग्रीष्म जैसे यहीं की उष्णता लेकर धरा में कभी-कभी पर्यटन कर आता है ! यह सुनसान—यह संताप—कहाँ गये वे सुरतरु ? कहाँ गयीं वे कल्प-लतिकाएँ ? वे सौन्दर्य, आनन्द, उल्लास की मूर्ति पशु-पक्षी और वह दिव्यमणि-भूमि—यह दैन्य, शोक, संताप की मूर्त धरा कहाँ से आ गयी ?

'क्या वृक्ष भी रोते हैं ?' आज उद्धवजी के आश्चर्य का पार नहीं है। वृक्षों के तनों से निकलती ये शत-शत धाराएँ ! यहाँ तो पाषाण के हृदय को फोड़कर ये अन्तस्ताप बह चले हैं। ये निर्झर—इनके स्वर में जो विकल वेदना है, ये रुदन ही तो कर रहे हैं ! रुदन—क्रन्दन तो कर रही हैं ये कालिन्दी ! उद्धव ने क्या श्रीयमुना की उन्मद हिलोरें नहीं देखी हैं ? नहीं सुना है उनका दिगन्त-पावन कल-कल गान; पर यह ध्वनि—यह प्राणों में हाहाकार करती गूँजती ध्वनि—यहाँ तो कलिन्दजा चीत्कार कर रो रही हैं ! पछाड़ें ले रही हैं उनकी ये तरङ्गे ! और ये कोटरगत-लोचन दीन पशु—ये दुर्बल पक्षी—अश्रु की ये धाराएँ ! वर्षा होती है, मेघ बहुत वेग से वर्षा करते हैं पावस में; पर यह जो तृण-तृण, कण-कण से अश्रु की धारा चल रही है ! पावस—वह गगन के वेदना की अश्रुवर्षा—वह तो जैसे यहाँ से उधार लिया अंश हो।

'शरीर में रोमाञ्च क्यों हो रहा है ? यह कम्प—यह पूरा शरीर काँपने क्यों लगा है ? कैसे हो रहा है चित्त।' उद्धवजी को कौन बताये कि यह ब्रज है ! यह प्रेम-भूमि है, जिसपर आप का रथ चल रहा है। इस दिव्य भूमि के ही दर्शन हुये हैं अभी आपको और यह स्वेद से लथपथ, नेत्रों में वर्षा लिये यह कम्प और रोमाञ्च-पूरित देह—दशा—अभी तो ब्रज के वे ब्रजवासी मिलेंगे ! इस प्रेम-भूमि में आप जब उस मयूर-मुकुटी को नहीं ला सके, वसन्त कैसे टिके। यहाँ तो अब ग्रीष्म, पावस और हिम-ऋतु ने एक साथ आधिपत्य कर लिया है।

'यह ब्रज ! यह ब्रजवन !' हृदय पता नहीं कैसा हो रहा है। 'ब्रजवासियों से मिलना है !' साहस साथ नहीं देता ! उद्धवजी—अब भला, लौटा तो कैसे जा सकता है। तनिक अन्धकार हो जाय—सहसा कोई देख न ले ! रात्रि भर में सम्भवतः हृदय आश्वस्त हो जायगा। अभी-अभी दिनके प्रकाश में तो जाने का साहस रहा नहीं। दिन ही कहाँ रहा है ! कितना विलम्ब हुआ मार्ग में। अश्व न चलें, न चलाये जायँ तो विलम्ब न हो !

यह ब्रजराज का गोष्ठ ! गोधूलि-वेला में यह दिशाओं को धूसर करके छायी गो-रज, ये हुंकार करते, परस्पर आमोद युद्ध करते उत्तुङ्ग वृषभ, गोष्ठों की ओर दौड़ती गायें। इनके स्तनों से झरती दुग्ध धारायें ! ये अलंकृत बछड़े इधर-उधर उछल रहे हैं। यह ऐश्वर्य, यह वैभव, यह उल्लास—यहाँ तो जैसे आनन्द मूर्तिमान् हो रहा है !

यह गोदोहन की मङ्गलध्वनि, यह दिशाओं में गूँजते शङ्ख, शृङ्गनाद और यह मुरली-ध्वनि—गोप कितने मग्न हैं अपने आनन्द में ! गोष्ठों में महेन्द्र-से रत्नासनों पर बैठे ये अलंकृत गोप, ये आभूषण-सज्जित गोपियाँ—ये तो अपने मधुर कण्ठ से राम-श्याम के भुवन-पावन चरितों का गान कर रही हैं। ये आनन्द-गद्गद गोप-कुमार, ये गम्भीर प्रशान्त गोप, ये उल्लसित गान करती गोपियाँ ! आज उद्धवजी निरन्तर आश्चर्य में पड़ रहे हैं। कैसा है यह ब्रज ? श्यामसुन्दर ने कहा था—सब मेरे वियोग में परम व्याकुल होंगे ! वन का वह दृश्य और यह आनन्द ! यह उल्लास। यह वैभव।

ये ब्रज के गृह, गोष्ठ—भगवान् अग्निदेव आहुतियों से परितुष्ट हुए हैं। अग्न्यागारों से उठता सुरभित धूम, आहवनीय-कुण्डों से उठती लाल ऊर्ध्वमुख लपटें, पुष्प-पूजित, सज्जित अग्नि-शालाएँ और अतिथि के लिये जैसे नित्य ही ये अर्घ्य, पाद्य, आसन, पुष्प प्रस्तुत रहते हैं ! पता नहीं कब कोई अतिथि पधारें ! अर्चा के सम्पूर्ण सम्भार प्रत्येक अग्निशाला में सज्जित हैं और गोप—गोप कितनी श्रद्धा से भगवान् भास्कर को अर्घ्य दे रहे हैं ! गोष्ठ पूजित हुए हैं ! प्रत्येक गौ अर्चा प्राप्त कर रही है और ये गृह-गृह से उठते श्रुतियों के सस्वर पाठ, देवार्चन, पितृ-पूजा, विप्रों का अर्चन—मङ्गल-प्रदीप, उठती हुई सुरभित धूप की धूम-राशि माल्य-तोरण-सजे गृह—प्रत्येक गृह में ही महोत्सव है ? प्रत्येक गृह में कोई यज्ञ या विराट् देव-पूजन है ? इतनी श्रद्धा, इतनी सात्त्विक श्रद्धा, इतना अर्चा-सम्भार ! अद्भुत है यह नन्दब्रज।

चारों ओर पुष्पित तरु-लता-पुञ्ज, गुंजार करती अलि-अवलियाँ—ये गृहों के बाह्योपवन ! ये इनकी वापियों में सम्पुटोन्मुख सरोज एवं विकासोन्मुखी कुमुदिनियाँ, ये कूजते हैं, चकोर; नाचते

मयूर, अद्भुत शब्द करते शुक-सारिका ! कुहकता पिक ! कहाँ है यहाँ वियोग ? कहाँ है वन की वह साकार व्यथा ? यह आनन्द, ये भाव-विभोर, श्रीसम्पन्न व्रजजन ! उद्धवजी चकित-से इधर-उधर देखते जा रहे हैं। कौन कहे इन परमज्ञानी को कि वह आनन्द-सिन्धु इस व्रज से कहीं जाता ही नहीं। आप के नेत्र उसे देखें या न देखें—ये व्रजवासी उसे देखते हैं ! अपने साथ ही देखते हैं। ये प्रमुदित गोप-कुमार—अधरों पर मुरली धरे, धूसर अलकें, गोरज-सनी वनमाला—उनके मध्य में उसका कनूँ वन से न लौटे—ये शृङ्ग बजा सकेंगे ! शृङ्ग तो बजते ही वेणु की प्रेरणा लेकर हैं। ये वृषभ—ये इस प्रकार युद्ध करें, इस प्रकार गर्जन-ध्वनि फूटे इनके कण्ठ से, यदि वह गोविन्द इन्हें देखकर प्रसन्न न होता हो। गोपाल न हो—गायें दूध देंगी ? बछड़े फुदक सकेंगे ? उस वनमाली को सूँघे बिना क्या कूद सकते हैं ? गोपियाँ राम-श्याम के मङ्गल-चरित गाने में लगी हैं ! वृद्ध गोप आराधना के अनन्तर ब्राह्मणों के सत्कार में लगे हैं। तरुण ग्वाल गो-दोहन में व्यस्त हैं—नीलसुन्दर की वन से लौटती एक झाँकी नेत्र न पायें, कुछ होगा ? कोई हिल भी सकेगा ? किसे देखकर मयूर नृत्य करते हैं ? किसे शुक पुकारते हैं ? हंस किसकी गति का अनुकरण करते हैं ? ये पुष्प, ये पादप, ये लताएँ, ये दिशाएँ—किसका परमानन्द व्याप्त है इनमें ? उद्धवजी उस व्रजेन्द्रनन्दन को न देखें, व्रज में वह न दीखे—किसके प्राण टिके रहेंगे ? लेकिन उद्धवजी के लिये तो समस्या ही है यह सब। चकित-चमत्कृत वे एक-एक पदार्थ, एक-एक व्यक्ति को देख रहे हैं ! किसे अवकाश है कि उनके रथ की ओर इस गो-पूजन की पावन वेला में ध्यान दे ! किसके नेत्र दिन भर से पिपासु नहीं बने थे उस वन से नित्य लौटनेवाले वनमाली की रूप-सुधा के ! अब गो-दोहन-काल—कौन दूसरी ओर ध्यान दे इस समय।

× × × ×

'उद्धव ! उद्धवजी !' मयूर-मुकुट, पीतपट और इन वस्त्रों में जो सुरभि है—श्याम के श्रीअङ्ग की यह सुरभि—यह भी क्या भूल सकती है। अपने पदों में प्रणत उद्धव को बाबा ने उठाकर हृदय से लगा लिया। ये उद्धवजी—बाबा के मथुरा रहते ही श्री कृष्णचन्द्र ने इन्हें सखाओं में ले लिया। बाबा को जैसे अपना कन्हाई ही मिल गया है आज ! नेत्रों से झरती वारि-धारा—अतिथि के लिये इससे पावन अर्घ्य कभी कोई दे सका है ! मथुरा से आये हैं उद्धवजी—बहुत देर में किसी प्रकार बाबा ने अपने को सम्हाला। 'भैया, भवन में पधारो !' बाबा को तो लगता है—ये उद्धव उनके श्याम-से ही तो हैं ! ये श्रान्त हो गये होंगे ! अब उद्धवजी का मना करना, संकुचित होना क्या काम आये ! बाबा तो अपने हाथों उनके चरण धोने लगे हैं, आचमन कराके स्नान कराने लगे हैं, अपने ही हाथों चन्दन, माल्य, पुष्प से शृङ्गार करने में लगे हैं उनका। जैसे पिता अपने श्रान्त सुकुमार पुत्र की परिचर्या में लगा हो—यह स्नेह, यह उमंग, यह वात्सल्य ! कैसे मना किया जाय इसे।

'तुम दूर से आये हो न !' भोजन के पश्चात् शय्या पर विश्राम करते ही बाबा ने उद्धव के चरण अङ्क में ले लिये। धीरे-धीरे दबाते जा रहे हैं उन्हें। 'कृष्णचन्द्र भी बहुत संकोची है !' बाबा को उद्धव की झिझक, उनके संकोच में अपने श्याम के स्वभाव के दर्शन होते हैं। अन्ततः श्याम के प्रिय सखा हैं न ये। उद्धवजी अब चाहे जितना कहें कि वे थके नहीं हैं, बाबा को तो बहाना ही जान पड़ेगा यह। यह मैया आ गयी है—यह आकर एक ओर बैठ गयी है। ठीक ही है इसका यह संकोच ! उद्धव को कहाँ देखा है इ[illegible] और परम ज्ञानी उद्धवजी—अभी मैया का वात्सल्य पाने के लिये श्याम के सखाओं का [illegible]त्कार कहाँ पाया इन्होंने। वही नीलवर्ण, वही मुकुट, वही पीतपट—मैया स्नेह-शिथिल है या संकोच से शान्त—कौन कह सकता है। कन्हैया का वह चापल्य और ये गम्भीर उद्धवजी—मर्यादा कुछ कहती है—हृदय कहता है, यह भी वैसा ही शिशु है, तनिक गम्भीर—कदाचित् नूतन गृह में संकुचित हो !' मैया बैठ गयी है बस, आकर। देख रही है—बार-बार उद्धव को, फिर भूमि को देख रही है। पता नहीं किस विचार में थकित-सी बनी है।

'महाभाग उद्धवजी, मेरे परम प्रिय सखा श्रीवसुदेवजी सुख से तो हैं? अपने पुत्रों के साथ सुहृदों सहित कुशलपूर्वक तो हैं वे? कितने दिनों पर, कितने क्लेशों के पश्चात् परित्राण पाया उन्होंने! धर्म-परायण, निर्दोष, साधुशील यदुवंशियों से नित्य द्रोह करनेवाला वह कंस—वह पापी अपने पाप से ही अपने अनुचरों के साथ मारा गया! सौभाग्य से यादवकुल का क्लेश दूर हुआ!' वाणी रुक रही है, मुख विवर्ण होता जा रहा है! कुछ कहना है, कुछ पूछना है, जैसे वह वाणी पर आता ही नहीं। बाबा ने नेत्र पोंछे किसी प्रकार।

'उद्धवजी! श्री कृष्णचन्द्र कभी अपनी इस माता का स्मरण करते हैं? कभी वे अपने सुहृदों, सखाओं, गोपियों, गोपों, गायों, व्रज, वृन्दावन, गोवर्धन का भी स्मरण करते हैं? कभी उन्हें स्मरण होता है कि हम सबके प्राणों के, सत्ता के एक वे ही स्वामी हैं! क्या अपने स्वजनों को देखने के लिये कभी एक बार भी वे आयेंगे यहाँ? उद्धवजी—हम तो तभी उनके स्मित-शोभित उस कमल-मुख को देख सकेंगे!' कन्हैया व्रज में आये तभी तो उसके कमल-मुख के दर्शन हों! मथुरा दूर न सही—श्याम का उपनयन हुआ, वह गुरुकुल से लौटा—अधरों पर वेणु धरे, गायों के पीछे चलता, वनधातु-चित्रित, चपल, चञ्चल, नटखट कनूँ और मथुरा में उसे देखा जाय? राज्य-कार्य में व्यस्त, गम्भीर, व्यवहार-पटु वासुदेव—व्रज के भोले प्राण कौन-सी परितुष्टि पायेंगे उसे वहाँ देखकर! वह संकुचित हो—वह यादव-पूजित—गोपों में रहा वह—संकोच में पड़े गोपों के वहाँ जाने से, दूसरे ही उसे देखकर अधरों में हँसे—प्राण कैसे सह सकेंगे इसे! ना, गोपों के लिये तो मथुरा दूर—बहुत दूर हो गयी है। वही आये व्रज में, वही पधारे तो उसके श्रीमुख के दर्शन हों! बाबा विह्वल हो गये हैं। उनका श्याम—वह मथुरा में है! वेदना सीमा पार करती जा रही है।

"उद्धव! कृष्णचन्द्र ने इस व्रज को दावाग्नि से, महाभयङ्कर प्रलय-वायु एवं वर्षा से, वृषासुर से, कालिय नाग से—अनेक दुस्तर विपत्तियों से बचाया! उन्हें नहीं आना था, नहीं रहना था यहाँ—क्यों बचाया भला, व्रज को? अनेक बार मृत्यु के दुरत्यय पाश से उन्होंने रक्षा की सब की! श्रीकृष्ण की वह शक्ति, वह चापल्य, वह दीर्घ कमल-लोचनों का चपल निरीक्षण, वह उस श्याम की हँसी, वह मधुर वाणी! हम सब के सर्वाङ्ग उसे स्मरण करके ही शिथिल हो जाते हैं। समस्त क्रियाएँ शिथिल हो जाती हैं!" बाबा पता नहीं क्या कह रहे हैं। वे स्वयं भी समझते हैं कि क्या बोल रहे हैं, इसमें संदेह ही है।

"यह कालिन्दी! श्याम इसके तट पर खेलता था। यह गिरिराज—कन्हाई गायों को लेकर नित्य इन पर क्रीड़ा करता था। यह वृन्दावन—इसकी पद-पद भूमि मोहन के चरणों के चिह्नों से अङ्कित है। ये कनूँ के खिलौने—ये क्रीड़ा-कुञ्ज, ये पशु ये पक्षी, यहीं इनसे चलती थी उसकी उनकी उन्मद क्रीड़ा!" जैसे बाबा इस भवन-कक्ष में बैठे-बैठे भी सम्पूर्ण भूमि प्रत्यक्ष देख रहे हैं। वे किसी दूसरे भावलोक में हैं।

'यह मयूरमुकुट, यह पीताम्बर, यह श्रीकृष्ण की अङ्ग-गन्ध!' कन्हाई ने अपने वस्त्राभरणों में उद्धवजी को यों ही नहीं भेजा है। यह वस्त्र, ये आभरण, यह गन्ध ही तो है जो बाबा को, मैया को बार-बार बहिर्जगत् में खींच लाती है। उनके व्याकुल प्राण इसी सूत्र में आबद्ध शरीर-पञ्जर में घूमे-घिरे रह जाते हैं। नहीं तो यह व्यथा—यह तड़पन........

'उद्धवजी, श्रीकृष्णचन्द्र के ये स्मारक चिह्न—इन्हें देखकर ही हमारे चित्त अपने हाथ में नहीं रहते। हम बेसुध-से हो जाते हैं। आप कुछ अन्यथा न सोचेंगे! हम मानते हैं कि राम-श्याम कोई सुरश्रेष्ठ हैं! वे देवताओं का कोई महान् कार्य करने ही धरा पर आये हैं! महर्षि गर्गजी ने यही कहा था। भला, सर्वज्ञ महर्षि की वाणी कैसे भ्रान्त हो सकती है। दस सहस्र हाथियों का बल रखनेवाला कंस, उसे कृष्णचन्द्र ने खेल के समान मार दिया, मार दिया उन पर्वताकार मल्लों को और हाथियों में सर्वश्रेष्ठ कुवलयापीड़ को इस प्रकार मार दिया जैसे सिंह पशुओं को सहज ही मार देता है! मैंने सुन लिया है—कंस का वह महाधनुष—तीन ताल विशाल, बज्रसार और उसे श्रीकृष्ण ने तोड़ दिया—ऐसे तोड़ दिया, जैसे गजराज इक्षुखण्ड तोड़ दे! उद्धवजी, यहीं व्रज में

हाँ! इन गिरिराज गोवर्धन को श्याम एक सप्ताह तक एक हाथ पर उठाये रहा, हाथ तक नहीं बदला उसने! प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त, बकासुर, केशी, अघासुर आदि दैत्य जिन्हें श्याम ने खेल में मार दिया—आप तो जानते ही हैं कि इनमें से प्रत्येक समस्त सुर एवं असुरों को जीत लेने की शक्ति रखता था! यह शौर्य, यह पराक्रम कृष्णचन्द्र का ....।' पता नहीं कितना कहना है, क्या-क्या कहना है। श्रीकृष्ण, कृष्णचन्द्र—उस कन्हाई के गुण, कर्म, रूप—कहीं पार है! बाबा का कण्ठ भर गया है। चेष्टा करके भी अब बोल नहीं सकेंगे वे। हिचकियाँ बँध गयी हैं।

'मेरा कनूँ! नीलमणि!' मैया विह्वल हो गयी हैं। कब से उसके स्तनों से वात्सल्य की उज्ज्वल धारा चल रही है। श्याम! कन्हाई!' नेत्र फटे-फटे-से हो रहे हैं! यह तो चेतना-शून्य हो रही है।

'यह अनुराग! यह वात्सल्य! परमपुरुष श्रीकृष्णचन्द्र में इतना प्रगाढ़ प्रेम!" उद्धवजी ने कल्पना भी नहीं की थी कभी इस सीमाहीन भाव की। वे चञ्चल हो उठे हैं। "बाबा! बाबा! मैया!" बाबा! मैया! जैसे कोई दूसरा ही उनके मुख से प्रकार उठा है। 'बाबा! मैया!' यह मयूर-मुकुट, यह पीतपट, यह आर्त स्वर—यही तो बाबा को, मैया को पुनः कुछ चेतना दे पाता है। इसी से तो वे बार-बार तनिक सावधान हो पाते हैं। उनके विवर्ण पीत-श्वेत बनते मुखपर तनिक आभा इसी से तो पुनः लौटती है।

'आप दोनों परम श्लाघ्य हैं! समस्त प्राणियों के लिये परम सम्मान्य हैं! अखिलगुरु, विश्वेश्वर साक्षात् नारायण में आप की इतनी प्रगाढ़ भक्ति है! इतनी दृढ़ निष्ठा है! ये राम और मुकुन्द ही विश्व के परम कारण हैं। ये ही प्रधान पुरुष हैं। समस्त प्राणियों के ये ही परम अन्वेष्य हैं! परम ज्ञान के ये ही अधीश्वर हैं! ये ही पुराणपुरुष हैं।'

'मृत्यु के अन्तिम क्षण में, शरीर छोड़ते समय एक क्षण के लिये जिनमें अपने शुद्ध मन को एकाग्र करके प्राणी कर्मबन्धन से त्राण पा जाता है, कर्मचक्र को त्यागकर परम प्रकाशरूप ब्रह्मपद को तत्काल प्राप्त कर लेता है, आप दोनों उन्हीं निखिलात्मा, सर्व-कारण-कारण मानवरूप में व्यक्त श्रीनारायण में अपने प्रगाढ़ भाव को नित्य स्थिर किये हैं! आप परम महात्मा हैं। भला, अब आप के लिये कौन-सा सत्कार्य, कौन-सा पुण्य शेष रहा! आपने समस्त पुण्यों, समस्त साधनों का फल प्राप्त कर लिया!'

'श्याम नहीं आयेगा? क्या कह रहे हैं ये उद्धव! प्राण-वियोग-काल में उसका ध्यान—पता नहीं क्या कह रहे हैं ये! ये तो प्रशंसा करते हैं स्नेह की! पुण्य-फल बताते हैं इसे! तो वह न आयेगा? उसके आने की आशा नहीं है?' बाबा, मैया—नेत्रों के प्रवाह सूख गये, मुख विवर्ण हो गया। अङ्ग जैसे काष्ठ हो गये।

'आयेंगे! बाबा! बाबा! श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्र ही आयेंगे!' बड़ी व्यग्रता से उठकर उद्धव जी ने व्रजराज को दोनों भुजाओं से सम्हाला।

'आयेगा कृष्णचन्द्र?' बाबा तो जैसे अब भी अर्धचेतना में पूछ रहे हैं। इनका स्वर कहाँ स्पष्ट होता है।

'आयेंगे—बहुत शीघ्र आयेंगे वे अच्युत! वे सात्त्वतपति प्रभु व्रज में आयेंगे और शीघ्र ही माता-पिता को प्रसन्न करेंगे!" उद्धव के वचनों ने जैसे श्रवणों में सुधा ढाल दी है। प्राण लौट आये हैं। चेतना आ गयी है बाबा में! मैया के नयन पुनः निर्झर बन गये हैं।

'सच' उद्धव—सत्य कहते हो तुम? कृष्णचन्द्र आयेगा यहाँ?" बाबा का गद्गद कण्ठ कुछ स्पष्ट हुआ है। एक आशा—जीवन के लिये एक आशा-सूत्र तो मिला!

'बाबा, श्रीकृष्ण ने कंस को मारकर रङ्ग-सभा में ही आप से पुनः आने की बात कही थी न! समस्त सात्वत-वंश जिनका साक्षी है, श्रीकृष्ण अवश्य अपने उन वचनों को सत्य करेंगे।" बाबा का यह अकूल प्रेम पारावार, यह आकुलता—उद्धवजी क्या इस समय स्थिर हैं, यह समय क्या सोचने का है कि श्रीकृष्णचन्द्र ने बाबा से व्रज लौटने की बात रङ्गशाला में कही या विदाई के समय! कही—सभी सात्वतों के सम्मुख कही—बस! और बाबा—'कृष्णचन्द्र आयेगा!' बाबा

को इस समय इन शब्दों से आगे-पीछे के वाक्य क्या सुनायी पड़ते हैं। वे इस समय कुछ सोचने, स्मरण करने की स्थिति में कहाँ हैं।

'श्रीकृष्ण आयेंगे! क्या कहा गया? श्यामसुन्दर ने तो ऐसा कोई आश्वासन दिया नहीं! यह असत्य—इसे सत्य हो जाना चाहिये, किंतु इस रूप में तो सत्य होता नहीं दीखता यह!' उद्धवजी जानते हैं अपने आश्वासन का महत्व! इसे असत्य कहना कितना अनर्थकारी हो सकता है! उन्हें ज्ञानोपदेश भी करना है। अपने वचनों को दूसरे अर्थ में सत्य बता सकते हैं वे। कम-से-कम अपना बौद्धिक संतोष तो हो जाय कि असत्य नहीं कहा गया! अपना उपदेश प्रारम्भ किया उन्होंने—'महा-भाग, आप लोग शोक न करें! आप श्रीकृष्ण को अपने समीप ही देखेंगे! वे तो समस्त प्राणियों के हृदय में वैसे ही विद्यमान हैं, जैसे काष्ठों में अग्नि।'

'न तो उनका कोई प्रिय है और न अप्रिय। न कोई उनसे श्रेष्ठ है न कनिष्ठ और न समान ही। वे अमानी, अद्वितीय सर्वत्र हैं, समदर्शी हैं। न उनका कोई पिता है न माता। न कोई स्त्री है उनकी न पुत्र। न कोई उनके लिये आत्मीय है न शत्रु। उनका न कोई देह है न जन्म है। सत्, असत्, मिश्रित—इन भौतिक योनियों में जन्म दे सकें—ऐसे कोई कर्म उनके नहीं हैं। वे तो अपनी लीला से, साधुजनों के परित्राण के निमित्त इन जन्मादिकों को स्वीकार मात्र करते हैं। वे गुणातीत निर्गुण परात्पर प्रभु सत्व, रज एवं तमोगुण को क्रीड़ापूर्वक ही संचालित करते हैं और इन गुणों के अधिष्ठाता-रूप से जगत की सृष्टि पालन एवं लय करते हैं। जैसे घूमनेवाले यन्त्र पर बैठने से पृथ्वी ही घूमती जान पड़ती है, वैसे हो निर्लिप्त आत्मा चित्त में अहंभाव करके अपने को कर्ता मान लेता है। वस्तुतः तो सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीहरि केवल आपके पुत्र ही नहीं हैं, वे तो समस्त देहधारियों के आत्मरूप एवं उनके माता-पिता हैं! जो कुछ दिखायी पड़ सकता है, सुना जा सकता है, था, है या होगा, वह चर-अचर, महत्-अल्प—सभी कुछ अच्युत ही हैं। अच्युत के बिना उनमें किसी की कोई भी पारमार्थिक सत्ता नहीं।'

उद्धवजी का तत्त्वज्ञान तो वे ही जानें; पर बाबा—मैया ने क्या अर्थ लिया इसका—'कन्हैया मथुरा में ही आबद्ध रहे, वहीं आसक्त रहे, ऐसी बात नहीं है। वहाँ वह कर्तव्य-पालन में ही न लगा है। न वहाँ कोई प्रिय है—अन्तरङ्ग है और अप्रिय तो होगा कहाँ से। वहाँ सभी समान हैं उसके लिये। वहाँ वह भला किससे खुले! किसे स्वजन बनाये! माता-पिता भी वहाँ नहीं! अब भी उसे माता-पिता के लिये सम्भवतः व्रज ही याद आता होगा! ये उद्धव भी बड़े भोले हैं—उसी-जैसे भोले! अरे यह तो सब जानते हैं कि अभी विवाह ही नहीं हुआ उसका और तब पुत्र?' एक हँसी आ गयी इस विषाद में भी बाबा को। मैया की नेत्र-वर्षा द्विगुणित हो गयी। पता नहीं कौन-से संचित स्वप्न साकार हो गये अन्तर में।

'कोई सुहृद् नहीं! कनूँ बहुत संकोची है। किसी से खुलकर मिल न सकेगा, यह तो पहले से ही अनुमान था। कोई कार्य उसे विवशतः नहीं करना पड़ता; पर क्रीड़ा के लिये वह करता सब है। खेलना बहुत प्रिय है उसे बचपन से! खेल के पीछे तो वह स्नान-भोजन भी भूल जाया करता है। वहाँ सब उसे ही माता-पिता मान बैठे हैं! नन्हा-सा सुकुमार कन्हाई—ये नगर के लोग पता नहीं कितना तंग करते होंगे उसे! अच्छा, तो उद्धव को, नगर के लोगों को भी सर्वत्र श्याम ही श्याम दीखता है! इनकी भी दशा व्रज की सी ही है?' उद्धवजी का ज्ञानोपदेश चल रहा है। बड़े उत्साह से, बड़ी उमंग से सुना रहे हैं वे। उन्हें लगता है—सफल हो रहे हैं वे। कितने ध्यान से सुन रहे हैं बाबा, कैसी एकाग्र है मैया। अश्रु, हास्य, कुछ व्याकुलता—पर अब वह रुदन, वह आकुलता नहीं है। अब अवश्य सफलता होगी।

बाबा—मैया! ज्ञान क्या होता है? मथुरा के लोग उनके कान्ह को अच्युत, भगवान्—पता नहीं क्या-क्या कहने लगे हैं। ये उद्धवजी उसी कन्हाई की ही तो बात कर रहे हैं। मथुरा में किसी से उसकी आत्मीयता न हुई, उसका मन न लगा और अब वह शीघ्र आनेवाला है। व्रज में

आने वाला है! यही तो? ये उद्धवजी उसी श्यामसुन्दर की चर्चा कर रहे हैं। बाबा के लिये, मैया के लिये इससे और प्रिय चर्चा क्या हो सकती है।

× × × ×

'कन्हैया को नवनीत चाहिये!' गोपियाँ ब्रह्म-वेला में ही नित्य उठ जाती हैं। दीपक जलाये, स्थान और पात्र स्वच्छ किये, प्रारम्भ हो गया दधि-मन्थन। कङ्कणों का क्वणन, चूड़ियों की झंकृति और दही में घूमती मथानी का घनघोष—यह मङ्गलमयी दधिमन्थन-ध्वनि और इस वाद्य के तालपर चल रहा है कोमल कण्ठों से झूमता उस अरविन्दनयन मयूरमुकुटी का चरित-गान! आत्मविस्मृत गोपियों का यह उन्मुक्त गान—दिशाएँ पवित्र हो रही हैं इस पावन स्वर-लहरी से।

'प्रभात हो गया!' उद्धव चौंके। पूरी रात्रि व्यतीत हो गयी उन्हें। उठे वे और बाबा से अनुमति ली। नित्यकर्म के लिये श्री कालिन्दी-तटपर जाना है। जाना तो बाबा को भी है, पर एकान्त चाहिये उद्धवजी को।

'यह रथ किस का है?' प्रभात में ही गोदोहन के लिये आये गोपों का ध्यान रथ की ओर गया। 'यह स्वर्णमय रत्नजटित रथ—मथुरा से ही आया लगता है!' मथुरा से कोई रथ आया है! गृह-गृह में बात पहुँचते कितनी देर लगती है।

'मथुरा से रथ? फिर अक्रूर तो नहीं आया! यहाँ से कमललोचन श्रीकृष्णचन्द्र को मथुरा ले गया वह कंस का स्वार्थ सिद्ध करने के लिये! अब क्यों आया यहाँ? अब क्या अपने उस मृत स्वामी का हम से प्रतिशोध लेने आया है?' गोपियों के दधि-पात्र पड़े रहे, नवनीत तैरता रहा, गृह-कार्य रह गये जहाँ-के-तहाँ। वे एकत्र हो आयीं नन्दद्वार पर। रथ को देखकर उनमें नाना प्रकार के विकल्प उठने लगे।

'कौन आया है?' गोपों का गोदोहन विरमित होने लगा। बालक श्री यमुना-तट की ओर दौड़े। भवन में जब कोई नहीं है—नहीं है, यह तो द्वार से ही जान पड़ता है, तब नित्यक्रिया करने ही गया होगा। कौन होगा? कनूँ—कब आयेगा कन्हाई? यूथ-के-यूथ बालक दौड़े!

'ये कौन हैं?' बालक—भोले सरल बालक खड़े रह गये। यह पीतपट, यह वनमाला, यह मुकुट—पर कनूँ चाहे जिसे अपने वस्त्राभरण दे देता है! वह क्या संकोच करता है कभी वस्त्रादि देने में? कनूँ—कन्हैया—नहीं आया वह? तब क्या पूछना है? क्या कह सकेंगे ये? संकोची बालक क्या कुछ पूछ सकेंगे? ये भरे, झरते लोचन, ये सूखे-से सुमन, ये शीत-ताड़ित सरोज-से मुख—उद्धव क्या कहें? कैसे कहें इनसे ज्ञान की बात? इनसे प्रवञ्चना भी कैसे की जा सकती है? नेत्र भर आये। यमुना-जल में टप्-टप् बिन्दु गिरने लगे। एक बार मस्तक उठाकर देखा और फिर झुका लिया। देखने तक की शक्ति नहीं। श्याम के ये सखा—ये आये हैं, अपने उस कनूँ की बात पूछने आये हैं! उद्धव—बेचारे उद्धव, सिर ही नहीं उठा पाते वे।

'गायें हुंकार कर रही हैं! कनूँ प्रतीक्षा करता होगा!' गायें पुकारें और गोपाल न आ जायँ—बालक पीछे मुड़े और भागे। जैसे उद्धव का स्मरण नहीं, उद्धव सम्मुख नहीं, यह भी नहीं कि क्यों आये थे यहाँ ये।

'प्रेमोन्मत्त व्रज!' उद्धव देखते रहे, एकटक देखते रहे दौड़ते-कूदते बालकों को। अभी रात्रि में ही क्या बाबा की, मैया की आत्मविस्मृति नहीं देखी है उन्होंने। कितनी बार मैया उठी मध्य में—'तनिक नीलसुन्दर को देख लूँ! कहीं सोते में वस्त्र तो नहीं खिसक गया!' बाबा कितनी बार विस्मृत हुए अपने को और ये बालक—अन्ततः तो ये भोले बालक ही हैं। अपने-आप उद्धव का मस्तक झुक गया।

× × × ×

'विशालबाहु, कमललोचन, पीताम्बरधारी, मणिकुण्डल-मण्डित, पवित्र मुस्कानवाले ये कौन हैं? यह सुन्दर वेश—यह उन श्याम सुन्दर का वेश, उन्हीं के वस्त्र और आभरण—ये वस्त्राभरण तो मोहन के ही हैं, इन्हें पहचानना क्या कठिन है! पर ये सब इन्होंने पाये कहाँ? कैसे

पाये ?' बड़ी उत्सुकता, बड़ी उत्कण्ठा है। गोपियाँ रथ देखकर ही यमुनातट की ओर चल प.
'कौन आया है ? क्यों आया है ?' उन्हें भी तो पता लगाना है और ये श्याम-शरीर, वन...,
मयूर-मुकुटधर—ये तो कालिन्दी-कूल से अपना नित्यकृत्य समाप्त करके इधर ही आ रहे हैं।
अवश्य इन्हें श्यामसुन्दर ने भेजा है। मथुरा से आये हैं ये और ये वस्त्राभरण—अवश्य मोहन ने
ही इन्हें यहाँ भेजा होगा !

'क्या संदेश लाये होंगे ये ?' उत्कण्ठा की सीमा नहीं है। एकान्त में ही तो इनसे पूछा जा सकता है। सब आ गयी हैं मार्ग के समीप। उद्धवजी आये समीप, सब ने झुककर प्रणाम किया। 'आप क्या दो क्षण यहाँ विराजेंगे ?' लज्जा, संकोच, बड़ी कठिनता से धीरे से कहा जा सका है यह। मन्द हास्य, सलज्ज निरीक्षण—मस्तक सब ने नीचे झुका लिये हैं, भूमि को देख रही हैं ! उत्तरीय का आसन डाल दिया है भूमि पर। उद्धवजी को स्वयं ही मिलना था इन से; पर भूमि पर ही तो बैठ सकते हैं वे। यह उत्तरीय तो प्रणम्य ही है उनका।

'हमें पता है कि आप श्रीयादवेश के पार्षद हैं ! आपके उन अधीश ने अपने माता-पिता को प्रसन्न करने के लिये आपको यहाँ भेजा है, नहीं तो व्रज में उनके स्मरण करने योग्य और भी कुछ है, यह तो हमें दिखायी ही नहीं पड़ता। माता-पिता से उनका स्नेह है और यह बन्धुओं का स्नेह-बन्धन छोड़ देना तो मुनियों के लिये भी कठिन होता है। दूसरों से मनुष्य जो मित्रता स्वार्थवश करता है, वह मैत्री तो स्वार्थपूर्ति तक ही होती है। स्वार्थ पूरा होने पर कौन किसका स्मरण करता है ! पशु-पक्षी तक तृण-जल जाने एवं फल न रहने पर वन एवं वृक्षों को छोड़ देते हैं ! कौन विद्यार्थी अध्ययन के पश्चात् आचार्य का स्मरण करता है ? किस असमर्थ नरेश की चिन्ता प्रजा ने की है ! स्वार्थ की मैत्री होती ही क्षणस्थायी है !' पता नहीं कहाँ गया संकोच, कहाँ गयी लज्जा, गोपियों को तो अपना ही पता नहीं रहता उस श्यामसुन्दर का स्मरण होने पर, फिर लौकिक आचार का किसे स्मरण रहे ! ये उद्धव—ये अपरिचित सज्जन, इनके सम्मुख क्या कहना है, क्या नहीं कहना है—यह सब कहाँ स्मरण है उन्हें ! वे तो क्रन्दन करने लगी हैं, सिसकने लगी हैं, हिचकियाँ लेने लगी हैं। जो उनके भीतर है—जो प्रेमरोप भरा है, वाणी में व्यंग बनकर भी कितना स्निग्ध है वह। उन्हें श्यामसुन्दर के बाल्य-चापल, कैशोर विहार—पता नहीं कितनी लीलाएँ स्मरण आ रही हैं। वे गाती हैं, रोती हैं, प्रलाप करती हैं। उद्धव—बेचारे उद्धवजी चुपचाप देख रहे हैं। चकित, स्तम्भित, मूक ! 'यह प्रेम श्रीकृष्ण में ! इन ग्राम्याओं में यह अपार अनुराग !'

कहीं से एक भ्रमर आ गया। भ्रमर—उसकी गुंजार, उसका वेश—एक की दृष्टि स्थिर हो गयी उस पर। 'यही तो आया है मथुरा से ! इसी को तो उस छली ने अपने वेश, अपने वस्त्रों में सजाकर भेजा है।' वह अपने भावोन्माद में ही उस भ्रमर को सम्बोधन करके कह चली—

'मधुप, तू उस कपटी का मित्र है ! हमारी सपत्नियों के वक्ष का कुङ्कुम उनकी वनमाला में लगकर तेरे श्मश्रुओं में लग गया है। इस श्मश्रुसे तू हमारे चरण मत छू ! जिसका दूत ही तू इस प्रकार का है, वह मधुपति ही उन मानिनियों के इस प्रसाद की उपहासास्पद विडम्बना को यादवों की सभा में धारण करें।'

'तू जैसे पुष्पों का एक बार रस लेकर उन्हें सर्वथा छोड़ देता है, वैसे ही उन्होंने अपनी सम्मोहिनी अधर-सुधा एक बार देकर हमें छोड़ दिया। पता नहीं वे सिन्धुजा कैसे उनके श्रीचरणों की निरन्तर परिचर्या करती हैं। अवश्य ही उन उत्तमश्लोक के मधुस्निग्ध कपट-जल्पों से रमा का चित्त आहृत हुआ है।'

'भ्रमर ! हमारे सम्मुख तू यह क्या उन यादवेश की कीर्ति का पुराण ले बैठा ! ये उनके लीला-यश-प्रसङ्ग तो उन विजय के सखा की मधुपुरवासिनी सखियों के आगे ही कहो ! उनके हृदय की आधि शान्त हो गयी है, अतः वे तेरे लिये अभीष्ट पूर्तिका विधान कर सकेंगी।'

'उनकी कपटभरी हँसी और भ्रूविक्षेप इतने मनोहारी हैं कि उनके लिये स्वर्ग, धरा और पाताल—तीनों लोकों में कौन-सी ऐसी स्त्री है, जो दुर्लभ हो। जिनके चरणरज की उपासना स्वयं

महालक्ष्मी करती हैं, उनके लिये हमारी गणना ही क्या है; किंतु दुखियों-दीनों पर दया करने की प्रसिद्धि लिये हुए उनका जो उत्तमश्लोक नाम है, वह क्या जल्प ही है ?'

'हमारे पैरों से अपना मस्तक तू हटा ले ! हम जानती हैं कि तू बड़ा चाटुकार है। तुझे अनुनय करना खूब आता है और इसी से तू मुकुन्द का दूत होकर आया है ! जिसके लिये हमने इस लोक के पति-पुत्रादि समस्त भोगों को छोड़ दिया, परलोक की चिन्ता छोड़ दी, वे हमारे प्रति सम्पूर्ण अकृतज्ञ होकर हमें त्यागकर चले गये; फिर उनके दूत का कैसे विश्वास कर लें हम।'

आज की तो उनकी यह निष्ठुरता नहीं है। 'व्याध की भाँति रामावतार में उन्होंने वानरराज वाली को छिपकर बींध दिया था, बेचारी शूर्पणखा के नाक-कान कटवाकर कुरूप कर दिया था; वामनावतार में दैत्यराज बलि को बलिपशु की भाँति बाँध दिया; ऐसे काले की मित्रता से बस ! पर किया क्या जाय, उनकी चर्चा छोड़ी नहीं जाती।'

कैसे छोड़ी जाय उनकी चर्चा—'जिनके लीलारूपी अमृत का कर्णपुटों से एक बार पान कर लेने से तत्काल राग-द्वेषादि द्वन्द्वात्मक चित्त-धर्मों के नष्ट हो जाने के कारण बहुत-से लोग अपने दुखित स्वजनों, कुटुम्बों एवं घरों को छोड़कर अकिञ्चन होकर पक्षियों की भाँति अनिकेत होकर भिक्षाटन करते फिरते हैं।'

पर यहाँ तो केवल कथा-श्रवण की बात ही नहीं; हमारे, श्रवणों में तो साक्षात् उनकी सुधामयी वाणी गयी है ! 'जैसे अज्ञ हरिणियाँ व्याध के छद्म-स्वर को सुनकर बँध जाती हैं, वैसे ही हमने उस छली की कपटवाणी का विश्वास किया; क्या करतीं, उनके नख-स्पर्श से हमारी स्मर-व्याधि और तीव्र हो जाती थी ! अब इन बातों को सोचने से ही परम व्यथा होती है, अतः उनके दूत, अब तुम इन बातों को छोड़कर कोई और चर्चा करो !'

'प्रियतम के सखा, तुम फिर आये हो ? तुम्हें हमारे प्रेष्ठ ने भेजा है ? अहो, तुम तो हमारे सम्मान्य हो; कहो, क्या चाहते हो ? तुम हम सबको मधुपुरी ले जाओगे ? पर सौम्य, वे तो नित्य अपनी वधू श्री को हृदय पर धारण किये उसके साथ ही रहते हैं न; फिर वहाँ हम लोगों को ले जाने से क्या लाभ ?'

'वे आर्यपुत्र इस समय मथुरा में ही तो हैं ? सौम्य, वे अपने इस पिता के गृह तथा अपने सखा गोपों का स्मरण करते हैं ? कभी वे अपनी इन दासियों की चर्चा भी करते हैं ? कभी हमारे सिरों पर वे अपनी अगुरु-सुरभि-चर्चित भुजाएँ रखेंगे ?'

'वे आयेंगे ? कभी उनकी विशाल भुजाएँ कन्धों पर पड़ेंगी ? यही तो पूछना है ! इसी के लिये तो प्राण आतुर हैं। भ्रमर कहाँ गया—कौन देखे उसे। सब के नेत्र उद्धव की ओर लगे हैं। नेत्र-प्राण जैसे नेत्रों में, श्रवणों में आ गये हैं। उद्धवजी को अवकाश मिला है। उनका शरीर रोमाञ्चित हो आया है। 'यह अनुराग ! यह उत्कण्ठा !'

'भगवान् वासुदेव में आप सबका चित्त इस प्रगाढ़ता से समर्पित है, आप समस्त लोकों के लिये पूजनीय हैं। आप स्वतः पूर्णार्थ हैं। भला, यह अनुराग पाने पर और क्या पाना रह जाता है। दान, व्रत, हवन, स्वाध्याय, संयम तथा और भी नाना प्रकार के सत्कर्मों के द्वारा श्रीकृष्ण की भक्ति पाने का ही प्रयास किया जाता है ! भगवान् उत्तमश्लोक में आप सब की ऐसी सर्वोत्तम नैष्ठिक भक्ति है—मुनिजन भी इसकी कल्पना नहीं कर सकते, यह उनके लिये भी दुर्लभ है। यह परम सौभाग्य की बात है कि पुत्र, पति, स्वजन, गृह आदि के मायिक प्रपञ्चों का त्याग करके आपने उन परम पुरुष का—जो आज श्रीकृष्ण रूप में आये हैं धरा पर, वरण किया ! आप सबने उन अधोक्षज में सर्वात्मभाव प्राप्त कर लिया है। आप तो महाभाग्यवती हैं ! आपने यह विरह जो मेरे सम्मुख व्यक्त किया है, वह तो मुझपर आपका महान् अनुग्रह हुआ ! अब आप अपने उन प्रेष्ठ के सुखदायी संदेश सुनें ! मैं अपने उन स्वामी का अन्तरङ्ग सेवक हूँ, इसी से उनके इन संदेशों को लेकर यहाँ आया हूँ।'

ये मथुरा की राज-सभा के विद्वान् ठहरे ! भला, कोई बात बिना विस्तृत भूमिका के कैसे कह देंगे ! गोपियाँ चुपचाप सुनती रहीं । पता नहीं क्या कहते रहे हैं ये उद्धवजी । जैसे कुछ उनकी समझ में नहीं आया । 'परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण, उनमें भक्ति, पता नहीं क्या-क्या—ये बातें क्या समझ में आने की हैं; पर अब ये श्यामसुन्दर का संदेश सुनायेंगे ! मुखों पर एक तटस्थता आ गयी थी; अब तो उत्कर्ण हो गयी हैं सब । 'श्याम का संदेश ! मोहन का संदेश ।'

'मैंने उन श्रीकृष्णचन्द्र के संदेश को ठीक-ठीक स्मरण कर लिया है । मैं उन्हीं के शब्दों में आपको वह सुनाये देता हूँ !' बड़ी कृपा—उद्धवजी का महान् अनुग्रह ! अपनी ओर से कुछ नहीं मिलायेंगे ! कोई भूमिका न बनायेंगे ! कोई व्याख्या-भाष्य न करेंगे ! मोहन का संदेश ! वह तो उसी रूप में प्राप्त होना ही चाहिये !

श्रीकृष्णचन्द्र ने आप सब से कहा है—"आप सब से मेरा सर्वात्मरूप से वियोग कभी नहीं और हो सकता भी नहीं । जैसे समस्त प्राणियों तथा पदार्थों में आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी व्याप्त हैं, वैसे ही मैं मन, प्राण, पञ्चभूत, समस्त इन्द्रिय एवं त्रिगुणों का भी आश्रय हूँ । मैं अपनी ही मायाशक्ति के प्रभाव से पञ्चभूत, इन्द्रिय एवं त्रिगुण स्वरूप इस जगत् को अपने में ही अपने ही रूप से बनाता हूँ । मैं ही इसका पालन करता हूँ, और मैं ही प्रलय करके इसे अपने में लीन कर लेता हूँ । मेरा यह आत्मस्वरूप ज्ञानमय एवं शुद्ध है । जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति एवं माया के गुणों द्वारा अन्वय-व्यतिरेक क्रम से विचार करने पर इनकी धारणा होती है । इन्द्रियों के द्वारा जो पदार्थ अनुभव में आते हैं, मन जिनका ध्यान करता है, वे सब—यह समस्त दृश्यमान जगत् स्वप्न की भाँति मिथ्या है । अतः मन एवं इन्द्रियों को रोक देना चाहिये, इनके निरोध से ही वास्तविक ज्ञानमय निद्राहीन स्थिति प्राप्त होती है । यही समस्त शास्त्रों का साररूप सांख्ययोग विद्वानों ने बताया है । त्याग, तप, दम, सत्यादि समस्त साधन इसी स्थिति को प्राप्त कराने के लिये हैं, जैसे सभी नदियों का अन्तिम गन्तव्य समुद्र ही है । मैंने स्वयं आप सबसे दूर रहकर यह संदेश उसी प्रकार भेजा, स्वयं आकर नहीं कहा—इसमें भी कारण है; मैं जो आप से दूर हूँ, परम प्रिय होकर भी आपके नेत्रों से दूर हूँ, वह तो इसलिये जिसमें आपके मन में अत्यन्त समीप रहूँ । आप सब निरन्तर मेरे ही ध्यान में लगी रहो, इसी इच्छा से मैंने यह किया है । स्त्रियों का चित्त जितना अपने से दूर हुए प्रेष्ठ में लगा रहता है, उतना वह नेत्रों के सम्मुख उपस्थित प्रियतम में एकाग्र नहीं रहता । मुझमें सम्पूर्ण रूप से मन को लगाकर, दूसरी समस्त वृत्तियों से छूटकर निरन्तर मेरा ही स्मरण करते हुए अविलम्ब आप मुझे प्राप्त कर लेंगी । ठीक उसी प्रकार मुझे प्राप्त कर लेंगी, जैसे मेरे साथ रात्रि में वन में रासक्रीड़ा के समय जब मैं छिप गया, तब मेरा साथ न पाकर कल्याणियों, आपने मेरे गुण, चरित्र का एकाग्र चित्त से चिन्तन किया और मुझे प्राप्त कर लिया !"

'भगवान् श्रीकृष्ण में परम अनुराग है इनका ! इतना विशुद्ध चित्त भला, किसका हो सकता है ! ज्ञान का परमाधिकार—किंतु भगवान् के ये ज्ञानसूत्र बहुत गूढ़ हैं ! पता नहीं अन्तिम बात क्या कह दी है उन्होंने । यह उनकी वैयक्तिक चर्चा है । शेष तो जैसे समस्त ज्ञान—मेरे ही हृदय के भावों को परिष्कृत सूत्ररूप दे दिया है उन सर्वज्ञ ने । ये भोली गोपियाँ—इन्हें समझाना होगा ! भली प्रकार व्याख्या करके समझाना होगा इस गहन तत्त्व को ।' उद्धवजी ने गम्भीरतापूर्वक दृष्टि उठायी । जैसे वे कहते हों—'कोई बात नहीं, जो अंश समझ में न आया हो इस संदेश का, उसे मैं समझा दूँगा ! मैं भली प्रकार जानता हूँ इस तत्त्व को ।'

'रास में वह श्यमासुन्दर का छिप जाना, वह शरत्पूर्णिमा, वह अन्वेषण और वह उसका मुस्कराते प्रकट होना ! वह छटा, वह रूप, वह कौमुदीस्नात रजनी—भला वह भी विस्मृत होने की है ! तो वह छली उसी प्रकार छिप गया है ! छिपने ही गया है मथुरा और उसी प्रकार प्रकट हो जायगा ! बड़ा चपल, बड़ा नटखट है ! वह इसी में प्रसन्न है तो ऐसा ही सही ! लेकिन ये विद्वान् लोग भी बड़े अद्भुत होते हैं । इन उद्धवजी ने इस सीधी बात के लिये पता नहीं कहाँ-कहाँ से आकाश-पाताल एक कर दिया !' इन गोपियों को उद्धव के तत्वज्ञान से क्या लेना है । श्यामसुन्दर

आयेगा, वह सहसा आ जायगा उस रास-रात्रि के समान—श्रवणों ने, प्राणों ने इससे अधिक सुना ही कहाँ है। सबके कमलमुख कुछ आश्वस्त हो गये हैं। अब उनकी स्मृति व्यवस्थित हो पायी है। अब तो ये उद्धवजी के प्रति बड़ा आदर व्यक्त करने लगी हैं।

"बड़ा अच्छा हुआ कि पापकर्मा कंस अपने अनुचरों के साथ मारा गया। बड़े आनन्द की बात है कि गुरुजनों के साथ अपने सभी उद्देश्यों को सिद्ध करके वे अच्युत इस समय कुशल-पूर्वक हैं। सौम्य, वे गदाग्रज वहाँ की नागरी सुन्दरियों के सलज्ज स्निग्ध हास्य, एवं चपल कटाक्षों से अर्चित होने पर भी क्या हमसे कभी प्रेम करते हैं? वे विलासप्रवीण, श्रेष्ठ स्त्रियों के परम प्रिय उन पुर-सुन्दरियों के हाव-भाव एवं मधुर वाक्यों से पूजित होते होंगे; फिर उनका चित्त उन्हीं में अनुरक्त क्यों न हो जायगा। उद्धवजी आप तो साधु पुरुष हैं; सच-सच बताइये, पुर-सुन्दरियों के मध्य एकान्त-चर्चा करते समय वे गोविन्द कभी हम ग्राम्याओं का भी स्मरण करते है? क्या वे उस रात्रि का स्मरण करते हैं, जब पूर्णचन्द्र की धवल ज्योत्स्ना में पुष्पित कुन्द-कानन एवं विकचकुमुद कालिन्दी-सलिल में इस वृन्दावन में अपनी प्रेयसियों के साथ विहार करते घूमते थे वे? रासगोष्ठी में थिरकते हुए उनके चरणों के नूपुर जब क्वणित होते रहते और हम सब उनके साथ उनके मनोज्ञ चरितों का गान करतीं! अरे इन्द्र भी ग्रीष्म के ताप से तप्त वन को बादलों के द्वारा सिञ्चित करते हैं। वे गोविन्द, वे दाशार्ह अपने ही वियोग के ताप में तप्त हम सबों को अपने नव-जलधर-सुन्दर श्रीअङ्ग के दर्शन से जीवन-दान देने क्या यहाँ पधारेंगे? भला, कृष्णचन्द्र क्यों आयेंगे यहाँ! उन्हें राज्य मिल गया। उनके शत्रु मारे गये। अब तो राजकुमारियों से विवाह करके अपने सुहृदों के साथ वे वहाँ आनन्दपूर्वक रहेंगे! अथवा वे महात्मा हैं, आप्तकाम हैं, श्रीपति हैं; हम वनवासियों से उन्हें क्या प्रयोजन या और किसी से उनकी क्या आसक्ति, वे तो नित्य कृतार्थ हैं, कृतात्मा हैं! उद्धवजी, स्वेच्छाचारिणी होने पर भी पिङ्गला ने ठीक ही कहा था कि परम सुख निराशा में ही है। हम यह बात न जानती हों, ऐसा नहीं है, जानती हैं; फिर भी श्रीकृष्ण को प्राप्त करने की आशा छोड़ी नहीं जाती। दुरत्यय है वह। हमारा भी क्या दोष, वे उत्तमश्लोक कहे जाते हैं, कौन उन्हें छोड़ने का उत्साह कर सकता है। वे रमा को नहीं चाहते, फिर भी वे चञ्चला श्री उनके वक्ष से एक क्षण के लिये भी पृथक् नहीं होतीं। फिर यह कालिन्दी, ये गिरिराज, यह वृन्दावन, ये गायें, यह वंशीध्वनि—इन सब में उनके जीवित, जाग्रत् स्मरण नित्य नेत्रों के सम्मुख हैं। बड़े भाई संकर्षण के साथ उन कृष्णचन्द्र ने यहाँ कितनी लीलाएँ की हैं। ये सब बार-बार उस नन्दनन्दन का हमें स्मरण कराते हैं। उन श्रीनिकेत लाल-लाल नन्हे-नन्हे चरणों को हम कैसे भूल जायँ! हम कहाँ समर्थ हैं उन्हें भूलने में! वह मन्द, गयंद के समान झूमती गति, वह ललित उदार हास, वह लीला-बिलोकन, वह सुधासनी वाणी, कैसे भूलें—कैसे भूलें हम उन्हें।"

डूब गयी सावधानी, भूल गयी स्मृति, शरीर और स्थिति; कातर कण्ठ क्रन्दन कर उठे—'हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे आर्तिनाशन! तुम्हारा यह गोकुल—यह व्रज संकट के समुद्र में डूबा जा रहा है! डूबा जा रहा है! बचाओ! इसे बचा लो, गोविन्द! गोविन्द!'

विस्मृति, क्रन्दन, अश्रु, स्वेद, कम्प, मूर्छा, हास्य, उन्माद, सुधि, व्यङ्ग, प्रार्थना, रुदन—इस असीम अनुराग-सिन्धु का पार कहाँ है। उद्धव इसका कैसे पार पा सकते हैं। यह तो है ही सीमाहीन! अनन्त! अनन्त!

× × × ×

व्रज का प्रेम-पारावार—व्रज—अद्भुत है यह व्रज! नर-नारी, वृद्ध-युवा, बालक-शिशु, गायें-बछड़े, पशु-पक्षी, यहाँ तो तरु-पर्वत तक अनुराग की घनीभूत प्रतिमाओं-से लगते हैं। यह क्षण-क्षण चकित, स्तम्भित करता व्रज! वियोग, आत्मविस्मृति, प्रेमोन्माद—जैसे यहाँ के कण ही उस दिव्य सुधा से निर्मित हुए हैं। एक क्षण में कण-कण में हा-हाकार उत्पन्न करती वियोग की महावाड़व-ज्वाला से संतप्त, मूर्छित, मरुप्राय और दूसरे क्षण जैसे अमरावती का वैभव कंगाल हो गया इस छटा को देखकर। यह मिलन और वियोग, वियोग और मिलन की शाश्वत अनुभूति!

उद्धव ज्ञानोपदेश करने आये थे—छिः! ज्ञान, कितना तुच्छ, कितना क्षुद्र है वह अद्वय-ज्ञान इस अमृत-सिन्धु के सामने। यहाँ किसी की भी चरण-रज का एक कण—ज्ञान उस कण से अपने को परिपूत करने की वाञ्छा ही कर सकता है। ये बाबा, यह मैया—ज्ञान का परमाराध्य इस वात्सल्य के लोभ में यहाँ ऊखल में बँधने आकर भी भूषित हुआ! इस स्नेह का बन्धन—अनन्त इसमें आबद्ध होने पर भी उत्फुल्ल होता है! ये गोप, ये गोप बालक—इन बालकों की सरलता, भोलापन, सौहार्द—वह आनन्दघन, योगिजनैकध्येय इन्हें पीठ पर चढ्ढी चढ़ाकर, अपने को कृतार्थ माने तो आश्चर्य क्या। ये गोपियाँ—ये गोप-कुमारियाँ—इनका अनुराग, इनकी तल्लीनता, इनका तदाकार चित्त—किस महा योगी ने इस सौभाग्य की कल्पना की है। युग-युग की समाधि से जिसके श्रीचरणों को अन्तर में एक क्षण के लिये पाने का प्रयास किया जाता है, वही—वही नव-जलधर-सुन्दर इनके मन, प्राण, हृदय, लोचनों में आ बसा है। ये उसे चेष्टा करके भी हटा नहीं पातीं। 'वह कुछ क्षण भूला रहे तो स्नान, गो-सेवा, गृह-कार्य तो तनिक व्यवस्थित हों!' पर उसके श्रीचरण तो आबद्ध हैं—अनुराग के असीम बन्धन में दृढ़ता से आबद्ध हैं यहाँ। वह चाहे तो भी जा कैसे सकता है।

गोपियाँ, गोप-कुमारियाँ—उद्धव को सबसे अधिक इन्हीं की कृपा प्राप्त हुई है। इन्हीं से वे कुछ सुन—समझ सके हैं। बाबा—मैया—वे वात्सल्य की मूर्तियाँ, उनका स्नेह, उनका लालन—वे तो समझते हैं, 'यह उद्धव अभी बच्चा ही तो है! श्याम की ही भाँति बच्चा।' भला, बाबा—मया से क्या पूछा जाय, क्या कहा जाय। गोपगण भी उन्हें उसी स्नेह का दान करते हैं और बालक—भोले चञ्चल, नित्य आत्मविस्मृत गोप-बालक—ये सब तो सदा 'कनूँ बुलाता है! वह कन्हाई आता है! वह वंशी बजी!' इनका प्रेमोन्माद थकित होना जानता ही नहीं। इनका उन्मुक्त हास्य, उन्मद क्रीड़ा और जब वियोग जगेगा—जैसे शरीर में प्राण ही न हों! ये किसी ओर देखकर भी जैसे कुछ नहीं देखते, नहीं सुनते! उस समय तो इन्हें देखकर पाषाण भी द्रवित हो उठते हैं। उद्धवजी-जैसे गम्भीर-प्रकृति परम विद्वान, ये बालकों के साथ कहाँ उछल सकते हैं। कैसे खेल सकते हैं।

गोपियाँ—गोपकुमारियाँ—सबसे अधिक चकित किया है इन्होंने उद्धवजी को। 'बाबा, मैया—वे तो वात्सल्य की मूर्ति हैं। गोप बड़े सरल हैं, वे सभी से स्नेह करते हैं और गोप-बालक—इन भोले बालकों में अनुराग असीम न बने तो बनेगा कहाँ; पर ये स्त्रियाँ—स्त्रियों में ममत्व, गृहासक्ति ही तो प्रधान होती है; कहाँ ये वनवासिनी ग्राम्या स्त्रियाँ, इनके लोक में सुने जानेवाले अनियमित आचार और कहाँ ये गोपकुमारियाँ—इनका यह परम पुरुष श्री कृष्णचन्द्र में दृढ़तम ऐकान्तिक भाव! श्रीकृष्णचन्द्र तो हैं ही समर्थ! बिना जाने भी यदि औषध का नियमपूर्वक सेवन हो तो वह रोग-नाश कर ही देगी। क्या हुआ जो ये श्यामसुन्दर के परम तत्व का मनन नहीं करतीं! ये निरन्तर उन्हीं में मन लगाये उन्हीं सच्चिदानन्दघन का चिन्तन तो करती हैं।'

उद्धवजी का गोपियाँ सत्कार करती हैं। ये उन्हें श्रीकृष्णचन्द्र के चरित्र सुनाते हैं और उनसे सुनते हैं। उनके भावोन्माद को निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। अब तो प्रथम ही उद्धवजी अभिवादन करते हैं उन्हें। वे संकुचित होती हैं, मना करती हैं—वे महिमामयी, वे त्रिभुवनवन्दनीया—उद्धवजी कैसे छोड़ दें यह सौभाग्य। उनका हृदय बार बार कहता है—"पृथ्वी पर शरीर-धारण का यही परम फल है, जो गोप-सुन्दरियों ने प्राप्त किया है। निखिलात्मा श्रीगोविन्द के श्रीचरणों में उनका भाव रूढ़ हो गया है, जिस भाव को संसार के भय से भीत मुनिगण और हम लोग भी पाना चाहते हैं। इस भगवत्कथामृत-रस के साथ ब्राह्मणकुल में जन्म लेने की क्या तुलना!" ब्राह्मण के श्रौतादि कर्म कहाँ और कथा का यह दिव्य रस कहाँ।

'इन स्त्रियों की महिमा देखो, कहाँ तो ये आचार-त्यक्ता वनवासिनी नारियाँ और कहाँ परम पुरुष श्रीकृष्ण में इनका यह अनन्य अनुराग! ठीक ही है—जैसे अनजान में भी अमृत के सेवन से समस्त रोग नष्ट हो ही जाते हैं, वैसे ही निरन्तर किसी भी भावसे भजन करने पर वे परम पुरुष कृपा करते ही हैं। उनका सांनिध्य प्राप्त ही होता है।'

भगवान् की कृपा का यह प्रवाह—'यह श्रीकृष्ण की ऐकान्तिक कृपा तो उनमें सतत अनुरागिणी पद्मा को भी प्राप्त नहीं हुई; फिर पद्मसुरभिवाली देवाङ्गनाओं को तो वह क्या प्राप्त होनी थी, जो कृपा इन गोप-सुन्दरियों पर हुई। रास-क्रीड़ा में श्रीकृष्ण की भुजाओं का आलिङ्गन करके, उन भुजाओं को स्कन्धों पर रखकर जो परमानन्द इन्होंने पाया, वह किसी अन्य को कहाँ लभ्य है।'

'मैं—मैं तो चाहता हूँ कि इन गोप-बालाओं की चरण-रेणु प्राप्त करने वाली इन लता गुल्मों, तृणादि में से ही कुछ होकर वृन्दावन में पड़ा रहूँ। मुझे तो इनके चरण-रज चाहिये, जिन्होंने परम दुस्त्यज स्वजन एवं श्रेष्ठ आर्य-मार्ग को ठुकराकर भी उन मुकुन्द में ऐसा निष्ठा प्राप्त की, जिनको श्रुतियाँ ढूँढ़ती ही रहती हैं।

'भगवती लक्ष्मी जिन श्रीचरणों की नित्य सेवा करती हैं, आप्तकाम भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शिव आदि जिनकी अर्चना करते हैं, सनकादि आत्माराम मुनिगण, परम योगेश्वर जिनका अन्तःकरण से निरन्तर ध्यान करते हैं, रास-गोष्ठी में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के उन्हीं चरण-कमलों को अपने वक्ष पर रख कर, उनका आलिङ्गन करके इन गोप सुन्दरियों ने अपने ताप का निवारण किया है! इनके सौभाग्य, इनकी श्रेष्ठता की क्या कल्पना करे कोई।'

'मैं तो नन्दव्रज की इन भुवनवन्द्या नारियों के श्रीचरणों के रज की वन्दना करता हूँ! उन नारियों के पदरज की वन्दना—जिनके कण्ठ से निकला श्रीहरि की कथा का गान त्रिलोकी को पवित्र करता रहता है।'

वन्दना—गोप-बालाओं के पद-रज की वन्दना—पद-रज की ही तो वन्दना की जा सकती है। वे सम्मुख पदवन्दन करने देने से रहीं। उन्हें संकोच में डालने का महापराध करने का साहस भी कैसे हो। ये वृष्णिकुल के मन्त्री, देवगुरु बृहस्पति के साक्षात् शिष्य, परम ज्ञानी उद्धव—और अब ये जब गोप-कुमारियाँ निकल जाती हैं कहीं से—उनके चरण-चिह्नों पर मस्तक रखते हैं, लोटते हैं उस रज में। फूट-फूटकर रोते हैं। विह्वल होते हैं ये धूलि-धूसर, परम कातर उद्धव—यह व्रजधरा है न!

× × × ×

कुछ क्षण—कुछ क्षण ही तो जैसे व्यतीत हुए हैं अभी और उद्धव कहते हैं कि उन्हें मथुरा जाना है! उन्हें कई मास हो गये व्रज में आये! श्रीकृष्णचन्द्र प्रतीक्षा करते होंगे! कई मास—कहाँ लगते हैं ये कई मास! कब प्रभात हुआ, कब गया दिन, कब रात्रि चली गयी—कहाँ पता लगा। श्रीकृष्णचन्द्र की चर्चा—उद्धवजी श्याम की चर्चा करेंगे! मन तो वैसा ही प्यासा है। वैसे ही दौड़ आते हैं सब। व्रजवासियों को कुछ क्षण-से ही तो बीते हैं ये कुछ मास! लेकिन उद्धवजी को जाना है—श्याम प्रतीक्षा करता होगा उनकी। ये वृष्णिकुल के मन्त्री हैं, मथुरा में प्रतीक्षा तो होती होगी ही! बाबा ने, मैया ने, गोपों ने, बालकों ने, गोपियों ने, कुमारियों ने—कभी किसी ने और कभी किसी ने रोक लिया—कहाँ तक इस प्रकार रोका जा सकता है! जब अपना ही वह मथुरा जा बैठा, ये उद्धवजी कब रहेंगे यहाँ। इनको अब रोकना भी कहाँ उचित है। रथ प्रस्तुत हो गया है! आज जायँगे ये!

उद्धवजी—कितना निष्ठुर होता है कर्तव्य! उन्हें जाना है, कर्तव्य है जाना! ये बाबा, यह मैया, ये गोप, ये बालक, ये गोपिकाएँ, यह वृन्दावन—यहाँ एक तृण तक बनकर रह जाने के लिये उनका हृदय क्रन्दन कर रहा है और जाना है—जाना है यहाँ से!

उद्धवजी आज जा रहे हैं—मथुरा जा रहे हैं—श्याम के समीप! 'यह पटुका दे देना, मैया!' 'यह नवनीत उसकी परम-प्रिय कामदा का है।' 'यह मयूर-पिच्छ....' 'यह गुञ्जा की माला अपने हाथों आप पहना दें उन्हें।' 'ये नन्हे पुष्प—ये उसकी अलकों में उलझकर बड़े सुन्दर लगेंगे।' उपहार—कौन कहता है कि ये उपहार हैं! यह हृदय का घनीभूत स्नेह—ये क्या पदार्थ हैं! बाबा, मैया, गोप, गोप-बालक, गोपियाँ, बालिकाएँ—सभी के अपने-अपने उपहार हैं—अपने ढंग के और

सभी को देने की अपनी पद्धति है! दे सकेंगे ये उपहार इन पद्धतियों से उद्धवजी? वे तो रुद्ध-कण्ठ, साश्रु-नयन देख भर रहे हैं। चुपचाप मस्तक झुकाये, विह्वल-वदन।

'कृष्णचन्द्र प्रसन्न रहे! तनिक अपना ध्यान रखे! वह हमारी कोई चिन्ता न करे! प्रसन्न रहे मोहन! प्रसन्न रहे!' संदेश—संदेश के शब्द, भाव चाहे कितने भिन्न हों; एक ही तो संदेश है सबका! यही एक बात तो कहनी है पूरे व्रज को!

उद्धव जा रहे हैं—इस पूरे व्रज का संदेश, उपहार लिये आज उद्धव जा रहे हैं! बाबा ने रथ पर बैठा दिया है उन्हें! बार-बार उतरना, बार-बार मिलना, बार-बार वन्दन और अब किसी प्रकार रथ चला है। रथ के साथ ही तो चला है यह व्रज! मैया मूर्छित हो गयी और ये दौड़ आये उद्धवजी! मैया—मैया भी चेतना में आकर उन्हें विदा कर रहीं हैं! उन्हें मोहन के पास जाना चाहिये। वह प्रतीक्षा करता होगा!

उपनन्दजीने सम्हाला अपने को! कितनी दूर तक आ गये व्रज के लोग। ये गोपियाँ, ये पीछे लगी आती बालिकाएँ—अब तो यहीं से विदा देना चाहिये सबको! विदा—व्रज से विदा! और बिचारे उद्धवजी बार-बार विह्वल होते, बार-बार एक-एक के पदों पर गिरते हैं तो क्या आश्चर्य!

अश्व आगे नहीं बढ़ते! उद्धव मुड़-मुड़कर देखते हैं—'कोई बुला ले! कोई पुकार ले! कोई कहे एक दिन और रुकने को!' पर मथुरा में कृष्णचन्द्र प्रतीक्षा करता होगा।

'वह रथ का ऊपरी कलश! वह ध्वजा! वह रथ से उड़ती धूलि गगन में! चला गया—रथ चला गया! उद्धवजी भी गये!' जैसे आज ही कन्हैया व्रज से मथुरा गया है! वही व्याकुलता, वही वेदना और मूर्छा........!

× × × ×

'उद्धव आये! उद्धव व्रज से आ रहे हैं!' पीतपट भूमि पर गिर गया! वनमाला उलझ गयी! मयूर-मुकुट खिसककर और तिरछा हो उठा। दोनों भुजाएँ फैलाये श्यामसुन्दर दौड़ा।

उद्धवजी आ रहे हैं! धूलि-धूसर सर्वाङ्ग—व्रज-रज में विह्वल होकर बार-बार लोट-पोट हुए, डगमग पद, रोमाञ्चित शरीर, नेत्रों में अश्रुधारा, जैसे कुछ देखते ही नहीं! लाल-लाल लोचन, चकित-से इधर-उधर देखते—'कहाँ किस अपरिचित स्थान में आ गये!' और ये प्रेमभूमि के पावन प्रसाद से परिपूत उद्धवजी—श्रीकृष्णचन्द्र ने भर लिया भुजाओं में!

उपहार, संदेश, उलाहने, वर्णन—यह सब आज की बात तो नहीं है। यह तो जीवन का मधुरतम संदेश है। यह तो अब सदा ही चलता रहना है। आज तो उद्धवजी विभोर हैं और उन्हें हृदय से लगाकर यह नीलसुन्दर भूल गया है अपने को भी। यह श्याम के शरीर में लगी उद्धव के अङ्गों की व्रज-रज, यह रोमाञ्च और यह अश्रुधारा—यह मिलन........।

—❀—❀—❀—

श्रीराधा

'या शेखरे श्रुतिगिरां हृदि योगभाजां
पादाम्बुजे च सुलभा व्रजसुन्दरीणाम्।
सा कापि सर्वजगतामभिरामसीमा
कामाय नो भवतु गोपकिशोरमूर्तिः ॥'

—श्रीलीलाशुक

श्रीराधा—कीर्तिकुमारी—श्रीवृषभानु-नन्दिनी—सौन्दर्य, सरलता, अनुराग की यह सुकुमार-मूर्ति और यह वियोग, यह महावाडव-प्रचण्ड वियोग! माता-पिता क्या करें, क्या बस है उनका! क्या छिपा है उनसे! उनकी यह हृदय-कलिका—यह अब जैसे इस विश्व में रहती ही नहीं। जहाँ देखेगी—कमल-लोचन वहीं स्थिर रहेंगे। एकटक अपलक निहारती रहेगी, चाहे जहाँ देखकर भी कुछ देखती है? कहाँ कुछ देखती है, कहाँ सुनती है, कहाँ कोई अनुभव करती है। यह तो जैसे उन्मादिनी हो गयी है। माता-पिता की व्यथा का पार नहीं। सखियाँ घेरे रहती हैं। कोई बलात् स्नान करा दे तो स्नान, मुख में कुछ दे दे तो भोजन और इस स्नान और भोजन का भी इसे क्या पता लगता है? 'श्याम! श्यामसुन्दर!' इसके अधर काँपते-से ही रहते हैं। कुछ कहती-सी—कुछ जपती-सी रहती है। क्या? ध्वनि कहाँ निकल पाती है।

श्रीराधा—यह उन्मादिनी कीर्तिकन्या, प्रातः अरुणोदय जैसे एक चेतना देता है। कुसुम, दधि, अक्षत, दूर्वाङ्कुर, चन्दन—साश्रुनेत्र सखियाँ सजा देती हैं। यह अपने गवाक्ष पर जब उन्फुल्लनेत्र आ बैठती है—माता के प्राणों में एक टीस-भरी क्षीण शान्ति-रेखा खिंच उठती है और फिर हृदय चीत्कार कर उठता है—'हाय' उनकी यह जाह्नवी-सी पावन-कन्या किसकी प्रतीक्षा कर रही है! यह पगली—पगली ही हो गयी!' किसलय-अरुण कर कुसुम बिखेरते हैं, दृगों में हास्य आता है। लाजा और दधि-चन्दन के बिन्दु—गायें चरने जा रही हैं। उनको लेकर गोपकुमार चले जा रहे हैं भवन के नीचे से। पर उन गोपकुमारों के आगे झूमता, घूमता, इधर-उधर अपने विशाल दृगों से चपल-चपल देखता वह मयूर-मुकुटी—अर्चा का वह परम अधिकारी—पर श्रीराधा के कर और किसपर कुसुम-वृष्टि कर सकते हैं। किन दृगों की कोर ने यह आनन्द-पुलक, यह सलज्ज-स्मित व्यक्त कर दिया है इन कीर्तिकन्या में। माता—वृद्धा गोपियाँ कहती हैं—'भोली बालिका पगली ही हो गयी।'

एक बार फिर—वे ही रागारुण दिशाएँ, गोरज-पूत कपोत-रोम-कर्बुर कपिश गगन, वही गायों की हुंकार और एक बार फिर उल्लास आता है इस उन्मादिनी में। फिर रत्न-थाल लाजा से पूर्ण होता है। फिर गवाक्ष से सुरभित सुकुमार सुमनों की वर्षा होती है। यह सब तो ठीक; पर गोपकुमार तो इतने धृष्ट नहीं हैं। वे सब तो इसका अपनी सगी अनुजा के समान सम्मान करते हैं। कितने क्षीण, कितने म्लान हो गये हैं सब अपने सखा के जाने से और सायं गवाक्ष में सुकुमार पाटल—कोई वन-कुसुम पता नहीं कहाँ से निक्षिप्त हो उठता है। दासियाँ—जब दूसरों की सावधानी ही कुछ न बता पायी तो बेचारी दासियाँ ही हैं न! वह कुसुम—वह अम्लान सुरभित कुसुम—अवश्य वह कोई देवप्रसाद ही होता है। उसे कितने आदर, कितने उल्लास से धारण करती हैं श्रीवृषभानु-नन्दिनी अपने मस्तक पर।

'भगवती महामाया भद्रकाली! दयामयी जगदम्बा! इस बालिका पर उनका अपार वात्सल्य है। इसने उनकी आराधना की और अब तो वे ही इस अबोध कन्या की रक्षा करती हैं।

उनका अनुराग, उनका स्नेह ही तो इस नवनीत की पुतली को इस महादाह में बचाये हैं। जब भी यह अधिक त्रस्त, विच्छिन्न होती है, भगवती का वात्सल्य मूर्त हो उठता है।' माता कीर्ति के लिये अपना समाधान है। महामाया भगवती उमा ही तो उनकी कन्या को अलक्ष्य रहकर भी पुष्पाभरण भूषित कर देती हैं। वे जगज्जननी, इस बच्ची पर परमवात्सल्य है उनका।

सखियाँ—सखियों की वेदना द्विगुण हो गयी है। उनकी यह प्राणाधिका अधीश्वरी—यह अब अपने आप में रहती ही नहीं। इसे जैसे सखियों की, संसार की, शरीर की स्मृति ही नहीं होती। यह म्लान वदन, यह अश्रु-प्रवाह—यह विवर्ण देह—सखियों के हृदय को जैसे कोई मसल रहा हो बाहर करके। और यह प्रसन्न होती है, प्रमुदित होती है, खिल-खिलकर हँसती है; जीवनदान-सा मिलता है बालिकाओं को।

श्रीराधा की यह वेणी, यह कुसुम-श्रृङ्गार—सखियाँ क्या इतना नहीं पहिचानतीं कि किन करों ने केशों में ये कुसुम लगाये हैं; इतनी ढीली, शिथिल वेणी कौन बाँधा करता है, किस कला के प्रतीक हैं ये कुसुमाभरण! ईर्ष्या—अमर्ष—इन बालिकाओं ने कहाँ जाना है इसे। सदा से ही तो ये इस प्रयत्न में रही हैं कि उनकी यह प्रिय सखी प्रसन्न रहे। इसी का आनन्द तो उनका जीवन है और यह कीर्तिदा-कुमारी—यह तो वितरित करने के लिये ही जैसे उनके मध्य आयी। इसने तो सदा सहेलियों को आगे रखा—सदा, सब समय। यह न होती—वे रसिक-शेखर क्या देखते किसी ओर। इसी की तुष्टि के लिये उनके कमल-लोचनों की कोर घूमती रही और यह तो जैसे नित्य दूसरों के लिये ही अनुरोधमयी—अनुग्रह-मूर्ति रही है। आज—आज भी क्या कृपा प्राप्त है किसी को उन भुवन-मोहन की ओर जो प्राप्त है—इसी भावमयी का अनुग्रह नहीं है, किस कृतघ्न हृदय में यह भाव उठेगा। किंतु—किंतु यह जो आत्मलीना हो गयी है। यह जो अपने को भूल ही-सी गयी है। इसने जो सर्वथा ही बाह्य दशा से निवृत्ति ले ली है—प्राण क्रन्दन करते हैं। बालिकाएँ निरन्तर व्यस्त रहती हैं—किसी प्रकार उनकी सखी को सुख मिले। वह प्रसन्न रहे। उसके ये अर्धोन्मीलित दृग, काँपते अधर—ओह!

⌘ ⌘ ⌘ ⌘

श्रीराधा—सरल, भावमयी राधा, पता नहीं क्या-क्या उठता रहता है मानस में, पता नहीं क्या-क्या नेत्रों के सम्मुख आता रहता है—

'वे कमल-लोचन, कितने चपल, कितने अनुरागपूर्ण! कितना सुधास्निग्ध कण्ठ—'तुम कहाँ रहती हो? मैंने तो नहीं देखा कभी तुम्हें? क्या नाम है तुम्हारा?' कितना ममत्व था वाणी में। खेलते-खेलते भाई के साथ नन्दगाँव चली गयी थी उस दिन। पता नहीं भैया श्रीदाम कहाँ गया। नन्दद्वार से तनिक दूर एक ओर प्रतीक्षा ही तो करनी थी। वह मयूर-मुकुट, वह पीतपट, वह वह वनमाला, वह चपलतापूर्ण सौहार्द—वे निकले द्वार से। मुझे संकुचित, भीत देखा होगा—दौड़ आये थे। किसी को अपना लेना ही तो उनका स्वरूप है। कितनी शीघ्रता से मेरा हाथ ले लिया था उन्होंने अपने करों में। यह हाथ—यह तो उसी दिन उन हाथों में चल गया। उनका आग्रह क्या टाला जा सकता है? वे अनुरोध करें और टाल सके—कहाँ किस हृदय में शक्ति है। भीतर ले गये, मैया के समीप और मैया—वह तो मैया ही है न! उसने जो वात्सल्य दिया, जिस प्रकार अङ्क में बैठाया, जिस प्रकार वेणी गूथी....' जैसे एक-एक क्रिया मूर्त बन गयी है।

"उनके साथ वह क्रीड़ा के दिन! कितना सम्मान करते वे। उनके सखा—उनके सभी सखा तो सम्मान करते, स्नेह करते—जैसे सगी बहिन है वह सबों की। कितने स्नेहमय, कितने भद्र हैं सब—सब भाई ही तो हैं। सखियाँ चपलता करतीं तो वे भी चिढ़ा लेते उन्हें। परस्पर के विवाद का निर्णय कराने आते और कितने मान से उनका निर्णय मान लेते। और वे—उनके सखा कहते 'राधा से कह दूँगा।' और एक बार जैसे सचमुच संकुचित हो उठते। 'कह दो!' ये उनके धृष्ट वचन क्या भीतर से उठ पाते थे।" जैसे आज भी चल रही है वही बाल-क्रीड़ा।

'राधा भाभी ! राधा भाभी !' भद्र बड़ा चपल है। वह चाहे जब चिढ़ाने लगता है और नन्हा तोक—वह तो जब ताली बजाकर सम्मुख आकर चिढ़ाने का प्रयत्न करता है, रोष भी नहीं आ पाता उस पर। उसे तो तब भी स्नेह से पुचकारने को ही हृदय चाहता है। सब बड़े वैसे हैं। सब हँसते हैं। ये सखियाँ भी तो मुस्कराती हैं। वे भद्र से झगड़ने लगते हैं और तोक—भला, तोक को कौन डाँट सकता है! वह उनका लाड़ला स्नेहमय छोटा भाई—उसे तो हँसकर ही टाला जा सकता है। उसके चिढ़ाने में भी कितना रस है। क्रीडा चल ही तो रही है। यह क्रीडा भी कभी-कभी क्या गत हुआ करती है।

'वे कलशियाँ फोड़ देते हैं। जल लाने नहीं देते। झूठ ही सब उनका परिहास करती हैं। उनकी अनुकम्पा—उनकी उदारता—उनके स्पर्श के लिये आकुल प्राणों को वे खीझ उठाकर भी परितृप्त कर देते हैं। उन्होंने क्या कलशी छीनने का नाट्य नहीं किया है? उनकी काँपती-सी अङ्गुलियाँ—भला, कहीं कठोरता हो सकती है उन मृदुल करों से। उनकी इच्छा—उनका प्रयास और असफल हो जाय—सखा उनका परिहास करें, प्राण इसे कैसे सह सकेंगे? उनका तो नाम होता है और अपने ही कर अपनी कलशी लुढ़का देते हैं। क्या दोष है उनका? ये सखियाँ कितना नेत्र बनाती हैं। उनकी खीझ—उनका चिढ़ना भी कितना मधुर है।' वह स्पर्श तो अब भी सीधे प्राणों को पुलकित कर रहा है।

'वे बछड़े चराने जाने लगे हैं। सिर पर दही की मटकी धरे, सखियों के मध्य इधर-उधर किसे ढूँढ़ते हैं आकुल लोचन? वे आयें—कहीं से, किसी कुञ्ज से दौड़कर आयें। मार्ग रोक लें और छीनकर धन्य कर दें इस मटकी को।' कितनी स्मृतियाँ—नहीं, नहीं, ये क्या स्मृतियाँ हैं? ये नेत्रों के सम्मुख, मन में, प्राण में नित्य-मूर्त आनन्द-क्रीडाएँ—जाग्रत्-क्रीडाएँ ही तो चला करती हैं ये। 'वह हेमन्त की भद्रकाली-पूजा, वह उनका वस्त्र लेकर कदम्ब पर जा छिपना और कितना अनुग्रह—व्रत में त्रुटि हो रही थी, जल में नग्नस्नान का अपराध हो रहा था, नारियों के अधौत वस्त्र उठाये उन्होंने और प्रायश्चित्त कराके पूर्ण कर दिया आराधना को। वे हैं ही अनुग्रहरूप—कितने सबेरे उठे उस दिन! कितना कष्ट किया।' उनके कुछ अपराध भी हैं, यह कहाँ आता है इस हृदय में।

'वे रास की रात्रियाँ! मयूर-मकुट लहराता और झुकता। कितना सम्मान दिया उन्होंने। कृत्रिम रोष का नाट्य भी सह्य नहीं था उन्हें। भ्रुकुटि बंक हुई और वे जैसे अपराधी ही हों। उनका असीम अनुराग और अनुकम्पा; क्या-क्या नहीं किया। क्या-क्या नहीं करते अपनों को प्रसन्न करने के लिये वे।' अनन्त अनुभूतियाँ हैं। अपार लीलाएँ हैं और वह मधुयामिनी—उसके संस्मरण से तो त्रिभुवन के प्राण पवित्र होते हैं।

'आज—आज भी तो वे ही भुवन-मोहन हैं सम्मुख। वही तो स्मित-शोभित छटा है उनकी। वही तो झुकता आता है मयूरपिच्छ। वे वेणी गूँथते हैं। कुसुमाभरणों से अङ्ग सजाते हैं। 'आज्ञा!' कितना मान देते हैं ये हृदयधन।' नेत्र जहाँ जाते हैं, वहीं चन्द्रमुख हँसता, वहीं मयूर-पिच्छ लहराता। मुरली की मादक स्वर-लहरी गूँजती ही रहती है श्रवणों में और यह तुलसी की पावन सुरभि—यह उनकी वनमाला की भुवन-पावन दिव्य गन्ध।

"वे नहीं हैं व्रज में! वे मथुरा चले गये। दूर-दूर हो गये वे हृदयेश!" एक स्मृति—एक विषमय, ज्वालामय स्मृति भी है। जैसे एक पल में सम्पूर्ण रक्त सूख जाता है, शरीर की अस्थियाँ तक सूख जाती हैं। अश्रु—कम्प—निःश्वास—मूर्छा और उत्ताप! जैसे समस्त जगत् प्रलय की महावह्नि में जला जाता है। भस्म हो रहा है ब्रह्माण्ड। हाहाकार मचता है सखियों में, कुररी-सी चीत्कार करती दौड़ती हैं वे स्नेहमयी जननी कीर्तिदा और बाबा वृषभानु जी सुनते ही मूर्ति-से रह जाते हैं। उनकी बच्ची—उनकी वियोगमयी कुसुम-कलिका। क्या देखना है उन्हें! उनके शरीर से जैसे चेतना पहले भाग जाना चाहती है।

'उद्धवजी, आप यहाँ देख भर लें।' सखियों ने दूर से दर्शन भर करा देना चाहा था उस दिन। यह वनमाला—उसकी दिव्य गन्ध, श्यामसुन्दर के अङ्गों की सुरभि लिये ये पीतपट,

उद्धव व्रज में उस हृदयहारी के उपकरणों से ही तो अलंकृत हो आये थे। यह सुरभि—यह नासिका से जाकर हृदय को मथित करती सुरभि! गोपकुमारियाँ क्या इसे भूल सकती हैं। तनिक-सी पलकें हिलीं—पता नहीं देखा, नहीं देखा और सखियों का क्रन्दन, दासियों की व्यथाभरी चीत्कार—उद्धवजी ने दूर से ही भूमिपर मस्तक रख दिया था उस दिन।

'यह स्मृति—यह हालाहल-भरी स्मृति भी आती ही है और तब—पर कोई सुधास्निग्ध स्वर मूर्छित प्राणों को पुकारता है। किसी का चिर-परिचित हृदयहारी स्पर्श जीवन को सहलाता है। कोई कहता है—'मैं तो यह रहा। क्या आज्ञा है?' और तब वही उन्माद-भरी भङ्गी, वही सलज्ज हास्य, वही स्वेद-धारा।

यह संयोग में वियोग—यह रसराज के अङ्क में महाभाव की मञ्जु मङ्गल-मूर्ति—यह वियोग की महाज्वाला और संयोग की अमर ज्योत्स्ना की पावन प्रतिमा। मन एवं बुद्धि से परे यह प्रेम की अतर्क्य महिमामयी मूर्ति—त्रिभुवन इन पद्मारुण अमल कोमल पावन-पदों में प्रणत होकर धन्य हो जाता है।

भद्र

''त्वच्छैशवं त्रिभुवनाद्भुतमित्यवैमि
यच्चापलं च मम वागविवादगम्यम् ।
तत् किं करोमि विरणन्मुरलीविलास-
मुग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम् ॥'

—लीलाशुक

'भद्र ! कहाँ है मेरा भद्र !' वह दिन—वह दारुण दिन, बाबा मथुरा से लौटे व्रज में और श्याम—श्याम नहीं आया ? नहीं आया श्याम ? दावाग्नि-दग्ध कानन भी इससे कम दयनीय होता है। मैया—एक पल में ही तो उसका समस्त शरीर जैसे रक्तहीन हो गया था और वह भूमि पर गिरी—ओह, कनूँ मैया को देख सकता इस दशा में। 'मैया !' किसके सुधास्निग्ध स्वरों ने उसके प्राणों को नवजीवन दिया था ? पर—पर भद्र कहाँ ? 'कहाँ है मेरा भद्र ?' भद्र तो कभी जान ही न सका कि उसका भी और कोई घर है, उसकी और भी कोई मैया है। व्रजेश तो यहाँ हैं—वह बाबा के पास भी नहीं, कहाँ गया ? कहाँ गया मथुरा से आने पर ? आज क्या भद्र भी न आया ? वह भी अपने घर गया ? भद्र नहीं और तब श्याम ? श्याम मथुरा–!' मैया की व्यथा, मर्च्छा, आर्ति कौन कहे !

'भद्र गोष्ठ में होगा !' कौन कहता है प्राणों के भीतर से ? कोई कहता है—'भद्र गोष्ठ में होगा ! गोष्ठ में ही होगा ! भद्र गोष्ठ में होगा और कृष्ण—कृष्ण भद्र को छोड़कर क्या टिकता है ? भद्र, तोक, श्याम—सब गोष्ठ में होंगे ! बड़े चञ्चल हैं, बड़े ही चपल हैं सब ! गायें—गायों में ही इन सबके प्राण जैसे बसते हैं। मथुरा से—इतनी दूर से आये, थके होंगे, भूख लगी होगी—सब सीधे गोष्ठ भाग गये ! इन सबों को अपनी भूख, अपनी प्यास का पता कहाँ रहता है। श्याम ! भद्र ! अरे कहाँ हो सब ?' मैया तो उन्मादिनी-सी दौड़ पड़ी थी गोष्ठ की ओर।

'श्याम नहीं जायगा !' भद्र—कमललोचन, स्वर्णगौर, नीलाम्बर-उत्तरीय, पीतपट-परिधान, कुसुम-कोमल भद्र—एक क्षण—एक पल भी कहाँ लगा था ! जैसे वह चम्पकवर्ण गाढ़ नील-लोहित हो गया हो; अङ्गयष्टि गिरी, झुकी, सूखी और—'भद्र ! भैया भद्र !' कनूँ ने ही तो उसके करों को ले लिया था अपने करों में। श्याम के विशाल दृगों में ही तो अश्रु भर आये थे !

'भद्र, तू रोता है ? हँसी में भी रोता है !' कनूँ—बड़ा नटखट है यह कन्हैया। भला, यह भी कोई हँसी है कि वह कहे कि व्रज नहीं जायगा वह। गोविन्द—गो, गोप, गोव्रज का वह इन्द्र—वह व्रज छोड़कर क्या नगर में निवास करेगा ! मार्ग भर किसका मयूर-मुकुट लहराता रहा ! कौन मनुहार करता रहा भद्र की। नहीं बोलता—तू नहीं जायगा न, नहीं बोलता मैं तुमसे !' और तब मानी भद्र को मनाने में किसके कोमल कर व्यस्त बने रहे मार्ग भर !

'कन्हाई नहीं आया !' कौन कहता है ? कौन कहता है यह ? भद्र इसे देखने के योग्य है क्या ? श्याम नहीं आया—मार्ग में क्या हुआ, नन्हीं सुकोमल स्मृति में कहाँ तक क्या-क्या रहे। मथुरा का वैभव, वहाँ का सम्मान—कनूँ वहीं रह गया ! भद्र क्या मुख लेकर मैया के पास जाय ! कनूँ ! कनूँ ! उसका प्राणप्रिय भाई कनूँ—नहीं आया, नहीं आया वह !' भद्र—धूलि में सना, म्लान यह स्वर्ण-कुसुम !

'भद्र !' वही स्वर तो है ! वही है—भला, प्राण कहीं भ्रान्त हो सकते हैं इसे परखने में। कामदा पुकार रही है ! नन्दा हुंकार कर रही है ! धर्म गर्जन कर रहा है। 'अच्छा, अच्छा तो तू गोष्ठ में छिपेगा !' और भद्र कहाँ दुर्बल है कन्हैया से कि पीछे रह जाय वह।

'भद्र ! श्याम ! तोक ! कहाँ हो सब ?' यह धूलि से सना अङ्ग, यह गोमय से लथपथ वस्त्र, वे पलकों में छलके उज्ज्वल बिन्दु और यह किलकता, हँसता, कूदता भद्र ! मैया इसे क्या सहज पकड़ लेगी। मैया पगली हो गयी और भद्र—यह क्षण में मूर्छा, और फिर आनन्द किलक—यह भद्र ! यह क्या अपने में है ? यह क्या पागल है ? कौन जाने सत्य क्या है; पर कितनी कठिनता से मैया ले आयी इसे उस दिन गृह में ! इसे—अकेले इसे ही लाने में क्या मैया को कठिनता हुई ?

× × × ×

"मथुरा से आया है यह रथ !" उस दिन कितनी प्रसन्नता हुई थी। 'मथुरा से रथ—मथुरा, कन्हैया की मथुरा से—श्याम आया होगा !' कितनी आशा, कितने उल्लास से भद्र दौड़ा था उस दिन !

'उद्धव—वे ही नील अङ्ग, वही मुकुट, वही पीताम्बर—हुं, क्या हुआ इससे ! यह तोक—यह तोक की अङ्गकान्ति कहाँ प.ये उद्धव और कनूँ का पीतपट—भद्र और श्याम में कब निश्चय हो सका कि कौन-सी कछनी किसकी है ! नित्य ही तो दोनों के वस्त्र बदलते रहे हैं और मयूर-पिच्छ—वह तो श्याम के सिर पर ही शोभा देता है, या जब अपने करों से कनूँ अपने छोटे भाई को सजा देता है ! उद्धव—उद्धव तो देखते रह गये थे ठक्-से। यह छटा, यह शोभा और यह भाव।

'ये आये हैं रथ में ! श्याम नहीं आया ! श्याम नहीं आया मथुरा से !' रक्त के कण नाड़ियों में जहाँ-के-तहाँ रह गये ! पलकें खुली-की-खुली रहीं और देह—जैसे कुछ अत्यन्त कृश मूर्तियाँ कहीं से व्यक्त हो गयीं ! 'कनूँ ! श्याम !' सखाओं के प्राण पुकारें और उत्तर न मिले ! गौओं की हुंकृति, वंशी का भुवनमोहन स्वर—किसने पुकारा था ? कौन बुला रहा था ? किसकी पुकार पर हँसते-किलकते भागे थे सब पीछे की ओर ?

उद्धव—बड़े अद्भुत आये थे वे उद्धव भी ! मयूरमुकुट, पीताम्बर—कन्हैया का वेश और जब गायें नहीं चराना था, यह वेश क्यों बना रखा था ? गोपाल का वेश और गायें तो चराने आये नहीं कभी वे। एक दिन आकर कहते 'मुझे भी ले लो !' भद्र क्या अस्वीकार कर देता ! भद्र—बालक-सखाओं के नायक भद्र की स्वीकृति ही तो श्याम की स्वीकृति है ! उद्धव—ये मथुरा के लोग—ये नागरिक, जब ये स्वयं नहीं बोलते, कोई कैसे बोले उनसे। ये उद्धव तो देखते ही ठक्-से खड़े देखते रह जाते हैं ! ये तो सायंकाल पथ पर औरों के साथ प्रतीक्षा करते हैं नित्य !

'उद्धव जा रहे हैं। मथुरा जा रहे हैं ! श्याम के पास जा रहे हैं !' अन्ततः एक दिन तो सुनायी पड़ना ही था। 'उद्धव—श्याम के पास उद्धव ! श्याम मथुरा में है !' बालकों के कर क्या उपहार दे सकते हैं ? उनके नेत्र के अश्रु तक तो सूख जाते हैं एक क्षण में !

'ये पुष्प उन अलकों में उलझा देना !' किसने कहा था, कौन बता सकता है ! भद्र, तोक, सुबल—'श्याम नहीं ! श्याम उनके मध्य नहीं ;' वे इसे सोच भी सकते हैं ? 'श्याम !' सूखते बिम्बाधर, म्लान होते मुखचन्द्र, मुरझाते प्राण और आधा—आधा पल—'भद्र ! तोक ! भैया !' कौन पुकार लेता है उन्हें ? किसकी मुरली क्रन्दन-सा कर उठती है ? वे किसके पीछे हँसते-कूदते दौड़ पड़ते हैं ?

× × × ×

'श्याम मथुरा में है ! व्रज में नहीं—अब तक नहीं आया वह !' यह प्रसन्नता की मूर्ति—यह व्रज में आकर गोपाल बना चिर परमहंस—यह रोते प्राणों में आनन्द की सुधाधारा बहा देने वाला मधुमङ्गल ! मधु और मङ्गल—मधु और मङ्गल दोनों ही का यह मूर्तविग्रह ही हो तो है ! 'तू भोग लगा !' कन्हाई कितने मान से खिलाता रहा है उसे ! मधुमङ्गल का कौतुक—उसकी मोदक-रुचि—आनन्द, हास्य, विनोद की ही तो क्रीड़ा है वह और श्याम नहीं ! मधु तो ग्रीष्म से भी उत्तप्त हो उठा है ! कनूँ नहीं—कैसा मङ्गल, कैसा विनोद ! ये नित्य हँसते नेत्र—आज इन सूने—फटे-फटे-से नेत्रों को देखकर पाषाण भी बह चला है !

'कनूँ कहाँ है !' यह गिरा सुबल ! सुबल—श्याम का यह परम अन्तरङ्ग ! ये चम्पा गौर सुमन-सुकुमार अङ्ग—ये क्या धूलि में गिरने के लिये—इस प्रकार क्लान्त होने के लिये हैं कन्हाई इसी मुख को अपने पटुके से पोंछता था ! श्यामसुन्दर का यह साकार प्राण और श्याम नहीं ! एक पल—एक पल भी चेतना क्या कुछ और सोचने को सावधान रह पाती है !

'श्याम—कितना सरल, कितना सीधा, कितना उदार !' आज कहाँ कोई अपराध दीखता है उस नटखट का। 'मैं उसे झिड़कता, उससे लड़ता और वह तनिक देर में मनाने आ जाता ! लड़-झगड़कर भी एक क्षण पृथक् नहीं हो पाता ! चिढ़ता—वह तभी तो चिढ़ाता था, जब मैं प्रसन्न होता ! कनूँ न चिढ़ाये, न झगड़े—वह कुछ ही दूर हो जाय, प्राण तड़पने लगते और उसके बिना क्या रहा जा सकता है ! अपराध तो मेरा ही है ! भला, श्याम कहीं अपराध कर सकता है !' आज नहीं—आज यह सब अन्तर में उठे, इतना अवकाश नहीं ! ये तो पुरानी बातें हैं। ये तो तब की हुई, जब....पर आज आज की ही तो हैं ! अभी तो वह झगड़ चुका है—अभी, अभी ही तो ! 'श्याम मथुरा में है !' जैसे तीव्रतम विद्युत्-धारा स्पर्श कर गयी हो ! श्याम—जिसकी पीठ पर—सुकोमल पीठ पर चढ़ी कसी, जिस इन्दीवर-सुन्दर से लड़े, झगड़े, हँसे-कूदे-खेले, जो प्राणों में बसा है, नहीं है वह ? वेदना की अनुभूति की क्षमता भी कहाँ है हृदय में ! श्रीदाम—कन्हाई के मान की यह गौरव-मूर्ति—एक झोंका भी व्यथा का सह सके, इतनी शक्ति कहाँ है इस सुकुमार सुमन में। यह कम्प, यह वैवर्ण्य, यह गयी चेतना—यह गिरा लकुट और यह श्रीदाम......।

'कनूँ ! भैया कनूँ ! दादा रे !' यह तोक पुकारता है। तोक पुकारता है। तोक—श्यामसुन्दर का यह परम स्नेह-ललित, यह उसी की इन्दीवर-सुन्दर मूर्ति—यह उसका छोटा भाई तोक। तोक—नन्हा, भोला, अबोध तोक ! यह क्या अपने कनूँ के वियोग की कल्पना सहने के लिये है ? यह श्याम के स्नेह का सखा—यह व्रज के लाड़ की प्रतिमा—यह दुःखी हो—दुःख देखा भी है इसने ? कन्हाई अपने करों से इसके कंधे पर अपना पटुका सजाता। उसी का पीतपट कछनी बना है अब तक कटि में। चपल कन्हैया—अपने छोटे भाई का शृङ्गार करने में भूल ही जाता अपने को। श्याम के कोमल करों की कला तोक के अङ्गों में ही तो मूर्त होती। इसी के अङ्ग पर तो वह अपने कोमलतर चित्र बनाता। औरों को तो चिढ़ाने का ही प्रयत्न करता है वह; पर तोक—तोक को कौन चिढ़ा देगा ? तोक को हँसी में भी कोई छेड़े—किसमें साहस है इतना। कनूँ के विशाल लोचन—तोक किसी से रूठे, श्याम के लोचनों में पहले अरुणिमा आयी धरी है। तोक—कन्हैया इसके घन कुटिल कुन्तलों में पुष्प लगा दे, इसके लिये वनमाला गूँथ दे, इसका शृङ्गार कर दे—कन्हैया ही कर दे। दूसरों से तो यह एक पुष्प लेने से रहा और कनूँ—वही कहाँ अपने छोटे भाई को सजाने, उसका शृङ्गार करने में तृप्त होता है। एक-एक कुसुम, एक-एक किसलय स्वयं लायेगा वह—तोक को सजाना है और दूसरे कहाँ ठीक सुमन चुन पाते हैं। 'तोक, तू मेरे केश नहीं सजायेगा ?' सारे सखा मिलकर सजा लें श्याम को, पर उसे संतोष होने से रहा। तोक को अपने सुमन-चयन में विलम्ब भी तो लगता है। नन्हा तोक—नन्हे-नन्हे सुकुमार सुमन ही उसे रुचते हैं। अञ्जलिभर नन्हे सुमन और कनूँ के मेचक-स्निग्ध केशों में वह उलझा देगा। वह लाकर अपनी अञ्जलि उड़ेल देगा—बस ! कुछ कंधों पर, कुछ शरीर पर—कुछ तो केशों में उलझ ही जायँगे। घन कृष्ण केशों में उलझे तारक-से नन्हे सुमन—तोक ताली बजाकर हँसेगा, कूदेगा, नाचेगा और तोक यह शृङ्गार न कर ले-श्याम का केश शृङ्गार पूरा होने से रहा। कनूँ—इसके तो प्राण ही जैसे तोक में बसते हैं। सखाओं से घिरकर मध्य में बैठेगा भोजन करने; वाम हथेली पर एक ग्रास रख लेगा और तोक समीप आकर—सटकर न बठ जाय—कन्हैया क्या भोजन कर सकता है। कनूँ अपने करों से भोजन कराता है छोटे भाई को। इसकी हथेली के ग्रास का आधे से अधिक पहले यह तोक के मुख में ही तो देता है। 'तोक बेठा है ! तू उसे भोजन नहीं करायेगा।' मैया जानती है, उसका नीलसुन्दर अपने छोटे भाई को भूखा सुनते ही भाग आयेगा। तोक दूसरे के करों से भोजन करने से रहा। उसे तो किसी

प्रकार बैठा लेना है और तब श्याम भी कुछ मुख में ले ही लेगा। तोक के करों के ग्रास के लिये मुख बंद कर ले वह—यह कैसे हो सकता है।

तोक—यह उछलता, हँसता, नाचता तोक! यह सबको चिढ़ा आये, गोपियों को अँगूठे दिखा आये, उनका माखन उठा लाये, मटकी फोड़ आये, सखाओं के छीके छिपा दे, उनके लकुट उठाकर कुञ्ज में रख दे, उन्हें चिढ़ा ले—'यह तो तोक है! तोक ने किया है।' एक स्मित और बस! नन्हा भोला तोक! कौन चिढ़े, कौन रुष्ट हो उससे। उसे जैसे सभी छूट-ही-छूट है। श्रीदामा श्याम से झगड़ ले, गोपियाँ कन्हाई को खिझा लें—तोक को कोई पकड़े—कनूँ के धोखे में ही पकड़ सकता है। इसका दूर्वादल-श्याम अङ्ग, पीताम्बर—धोखे से ही पकड़ा जाता है और तब पकड़ने, खीझने वाले के मुख की ओर मुख मटकाकर, नेत्र नचाकर, अँगूठे दिखा देगा यह—'हूँ!' और—'अरे, यह तो तोक है!' एक हास्य-झेंप। तोक को कोई छेड़े—कन्हाई के काँपते अधर, कुटिल भ्रू, अरुणाभ मुख—पर नन्हे तोक को कोई छेड़े, क्यों छेड़े भला! श्याम तो भूल से छोटे भाई के पकड़े जाने पर आवेश में आ जाता है।

तोक—खेल में वह कहीं हार सकता है? 'चित भी मेरी, पट भी मेरी!' वह तो विजयी-ही-विजयी है! नन्हा तोक पीठ पर बैठेगा—कौन इस सुअवसर को जाने दे! तोक—सखाओं का केन्द्रीभूत स्नेह, व्रज के वात्सल्य की मूर्ति और आज—आज तोक पुकारता है! अपने परमप्रिय कनूँ को पुकारता है! 'कहाँ गया? कहाँ छिप गया कनूँ? क्यों नहीं बोलता? कनूँ! भैया! दादा रे!'

'कनूँ मथुरा है—मथुरा से आया ही नहीं वह!' हाच—तोक, पाटल-मृदुल तोक और उसके नन्हे प्राण—'नहीं है? नहीं आया कनूँ?' अब......

और यह भद्र—सखाओं का यह नायक भद्र! किसकी-किसकी व्यथा—किसकी-किसकी वेदना का वर्णन हो! ये क्रन्दन करती गौएँ—ये गोपकुमार, गोमाता ही तो परमाराध्य हैं इनकी—ये गायें, वृषभ, बछड़े क्रन्दन करते! 'गोपाल! गोपाल! गोविन्द!' सखा नायक भद्र कैसे एक क्षण सह ले इस व्यथा को।

'ये कंकाल से तरु, ये कण्टक लताएँ! यह पत्रहीन वन, यह तृणशून्य झुलसी-सी भूमि, यह निदारुण निदाघ-पवन, ये प्रज्ज्वलित दिशाएँ! यह हाहाकार करता गगन! गायें—क्रन्दन करती गायें! मूर्छितप्राय सखा! यह ज्वाला! गोविन्द! गोविन्द!' सुकुमार भद्र—उसके विशाल नेत्र खुले-के-खुले—यह गिरा वह। 'गोविन्द—गोविन्द नहीं है!'

× × × ×

'भद्र! भैया भद्र!' कौन अपने पीतपट से यह काञ्चन अङ्ग पोंछने दौड़ आया है! किसके कमललोचन बड़े-बड़े बिन्दु गिराने लगे हैं! 'भद्र! तू स्वप्न देखता है, भैया!'

'तू सोता ही रहेगा?' हैं, कौन खींचता है चुटिया? कौन किलकता, चिढ़ाता है! मधुमङ्गल चौंके नहीं तो क्या करे! 'मैं तेरे छीके के सारे मोदक खा लेता हूँ।' सारे मोदक—बड़ा चपल है यह, कुछ कठिन नहीं इसके लिये और मधुमङ्गल अब दौड़ेगा ही। इस अपने नटखट सखा से अपना छीका बचाना ही चाहिये उसे।

'सुबल, देख न गायें कितनी दूर चली गयी हैं! मुझसे इतनी दूर नहीं जाया जायगा! तू उठ—उठ तो तू!' कौन कहता है? कौन अनुनय करता है? किसके स्नेह-सने स्वर हैं ये। सुबल—ओह, गायें दूर चली गयीं, सचमुच दूर चली गयीं। सुबल—उसका कनूँ कैसे इतनी दूर जा सकता है। कन्हैया थके, क्या आवश्यकता है इसकी।

'दाम! तेरा कन्दुक कहाँ है, कुछ पता है तुझे?' कन्दुक—कन्दुक छिपा दिया इस चपल ने। 'तू साँप पर सोने मत जा! ले जा कन्दुक लेना है तो!' ना, दाम अब कन्दुक के लिये नहीं झगड़ेगा! इस नटखट का क्या ठिकाना—उस दिन यह कन्दुक के पीछे ह्रद में ही कूद पड़ा।

कन्दुक—पर कन्दुक उसका है न ! कहाँ—कहाँ छिपाया इसने ! क्या कहता है यह ! श्रीदाम क्यों ऐसे ही छोड़ दे।

'आया ! ले, आ गया ! देख तो—तेरी अलकों में लगाने को कितने सुन्दर कुसुम लाया हूँ !' तोक पुकारे और उत्तर न मिले ! तनिक विलम्ब हो गया—पुष्पों के लिये कुछ दूर चला गया था—इतना ही तो।

ये लहराती कुसुम-स्तवकों से झूमती लतिकाएँ, ये फलभार से विनम्र तरु, यह मृदुल हरित तृणराजि, यह मन्द शीतल सुरभित समीर, ये हुंकारती गायें, फुदकते वत्स, गर्जन करते वृषभ—इन नाचते मयूरों, गुंजार करते भ्रमरों, कलरव करते पक्षियों के मध्य यह वृन्दावन—व्रज का यह अतुल सौन्दर्य ! व्रज में वियोग—इन प्रेम-प्रतिमाओं में व्यथा—एक पल की लहर, आयी और गयी ! यह आ ही भर तो जाती है—श्याम—यह इनका श्याम, यह कदम्बमूल में ललित त्रिभङ्गी, यह लहराया मयूरमुकुट—यह आयी मुरली अधरों पर ! यह ध्वनि—यह विश्वचेतना को एकाकार कर गूँजती ध्वनि ! शाश्वत—चिरन्तन यह स्वर-लहरी !

—❀—❀—❀—

"रागान्धगोपीजनवन्दिताभ्यां
योगीन्द्रभृङ्गेन्द्रनिषेविताभ्याम् ।
आताम्रपङ्केरुहविभ्रमाभ्यां
स्वामिन् पदाभ्यामयमञ्जलिस्ते ॥"

—श्रीलीलाशुक

गोस्वामी तुलसीदासजी रचित

श्रीरामचरितमानस

अद्वितीय और अलौकिक विजया नामक विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित

गोस्वामी तुलसीदासजी को निकट से देखनेवाले, मानस के दिग्गज विद्वान्, काशी की विभूति

मानसराजहंस स्वर्गीय पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी

के जीवन-व्यापी मानस अध्ययन, मनन तथा अनुभव की यह एक अनूठी देन
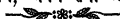
कविकुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरित मानस की असंख्य टीकाएँ और व्याख्यायें प्रकट हो चुकी हैं। परन्तु सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, कवितार्किक चक्रवर्ती पण्डित श्रीमहादेवजी शास्त्री, प्रिंसिपल, संस्कृत कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शब्दों में अन्य सभी टीकाकार 'मानस के ऊपर ही तैरते रहे हैं'। पर वेदादि-शास्त्र, पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र, तन्त्र और संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं के व्याकरण आदि में पण्डित श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी ने गहरे गोते लगाये हैं और मानस के सब मोती संसार के सामने रख दिये हैं। पूज्य स्वामी करपात्रीजी महाराज का कथन है कि त्रिपाठीजी की इस व्याख्या में पाण्डित्यपूर्ण शास्त्रीय मर्यादाओं के अनुसार विषय का प्रतिपादन किया है, जिसमें सदाचरण, धर्माचरण तथा भक्ति-ज्ञान-निष्ठा का प्रभाव झलकता है। उपरोक्त पण्डित श्रीमहादेवजी शास्त्री का मत है कि इस निर्मल, ललित, सरल, गंभीर, विशद तथा सुश्लिष्ट भाष्य में मानस की आज तक की न सुलझी हुई गुत्थियों (ग्रन्थियों) का अद्भुत भेदन, गुप्त रहस्यों का प्रखर प्रकाश, रसों का लालित्यपूर्ण अभिव्यञ्जन और भक्ति सुरभरिणी का अखण्ड पीयूष प्रवाह प्राप्त होता है। ऐसा भाष्य 'भगवत्प्रेरणा' से 'महापुरुष' ही कर सकते हैं।

स्व० त्रिपाठीजी की इस विजया व्याख्या की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें मानस से ही मानस का रहस्य समझाने की परिपाटी का अनुसरण किया गया है और रामचरितमानस तथा गोस्वामीजी की अन्य रचनाओं के द्वारा ही मानस का मर्म प्रकट करने पर बल दिया गया है। इस परिपाटी से सम्पूर्ण ग्रन्थ की संगति लगाने में त्रिपाठीजी को कई-कई स्थलों का मर्म उद्घाटित करने के लिये महीनों तक मनन करना पड़ा है, जिससे प्रत्येक पंक्ति का वही अर्थ प्राप्त हो गया है जो स्वयं गोस्वामीजी महाराज को अभिप्रेत था। इसी लिये प्रायः सभी मानस प्रेमियों ने त्रिपाठीजी को मानसराजहंस की उपाधि से अलंकृत किया है। सच पूछा जावे तो इस विजया टीका द्वारा अब मानस रहस्य को समझना आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, अध्यापक-छात्रगण आदि सभी के लिये अत्यन्त सरल हो गया है। यही कारण है कि मानस प्रेमी इसके लिये आज वर्षों से लालायित थे। राम-राज्य का वस्तुतः आदर्श देखना हो तो इस व्याख्या को देखने से ही पता चलेगा। त्रिपाठीजी महाराज की यह अद्वितीय व्याख्या उनकी कथा में ही प्रकट होती थी, जिसे सुनने के लिये सुदूर देश-देशान्तरों के निवासी भी उनके निवास-स्थान पर पहुंचते थे। भक्तों की प्रार्थना पर त्रिपाठीजी ने अपनी व्याख्या को पुस्तकाकार में प्रकाशित करने के लिये निश्चय किया और इसके प्रत्येक प्रूफ का स्वयं संशोधन किया। ग्रन्थ की छपाई पूर्ण होने ही वाली थी कि वे वैकुण्ठवासी हो गये।

विश्वनाथजी महाराज की असीम कृपा से त्रिपाठीजी महाराज की यह अनूठी देन इसी तुलसी जयन्ती के पुनीत अवसर पर प्रकाशित हो गई है। सम्पूर्ण पुस्तक पक्की कपड़े की तीन जिल्दों में नयनाभिराम छपाई के सहित बड़े साइज के २००० पृष्ठों में समाप्त हुई है। सचित्र पुस्तक का मूल्य ३०) रुपया रक्खा गया है। इतना बड़ा ग्रन्थ बहुत बड़ी संख्या में छापना संभव नहीं हो सकता, फिर भी सैकड़ों प्रतियों के आर्डर हमें पहले ही मिल गये हैं। अतएव मानस के प्रेमी मानसराजहंस जी के प्रसाद को प्राप्त करने में विलम्ब न करें।

मोतीलाल बनारसीदास—संस्कृत-हिन्दी पुस्तक विक्रेता—नेपालीखपरा, पो० ब० ७५, बनारस